देश-विदेश की बदलती हुई परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य मे नवीनतम् सामग्री से सुसज्जित, हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्यिक, शैक्षिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक एवम् जीवन-वृत्तात्मक निबन्धो का 'सर्वश्रेष्ठ सग्रह' ।

राजहंस हिन्दी निबन्ध

विभिन्न बोर्डों एवम् विश्वविद्यालयो की परीक्षाओ मे सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियो एवम् समस्त प्रतियोगिता परीक्षाओ के लिए सरल भाषा मे लिखे हुए हिन्दी के आधुनिकतम निबन्ध

लेखक

डॉ० आर० एन० गौड पी० ई० एस०

एम० ए०, पी-एच० डी०, साहित्यरत्न, आचार्य

पूर्व प्रधानाचार्य

राजकीय इण्टर कॉलिज, मेरठ ।

"हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास", "राजहंस सस्कृत निबन्ध", "राजहस इण्टरमीडिएट हिन्दी भाषा-भास्कर", "राजहस हाई स्कूल हिन्दी भाषा-भास्कर", "राजहस जूनियर हाई स्कूल हिन्दी भाषा-भास्कर", तथा "कमला नेहरू खण्ड काव्य" आदि के रचयिता ।)

पूर्णतया सशोधित एवम् परिवर्द्धित चौंतीसवाँ सस्करण १९९४

प्रकाशक

राजहंस प्रकाशन मन्दिर

धर्म-आलोक,रामनगर, मेरठ (उ प्र)

प्रकाशक :
महेन्द्र प्रसाद गोयल
राजहंस प्रकाशन मन्दिर (रजि०)
धर्म-आलोक, रामनगर
मेरठ (उ० प्र०)।

तार : "राजहंस" मेरठ।
फोन : कार्यालय : २२३५८
डिपो : २७१३८
प्रेस : ७६५६५
पंकज : २२८९२
निवास : ७२२०१

"विद्वान लेखकों द्वारा लिखी हुई श्रेष्ठ पुस्तकें विद्यार्थियों को सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराना ही "राजहंस" का एकमात्र उद्देश्य है।"

पहला	संस्करण	१९६०	अट्ठारहवाँ	संस्करण	१९७९
दूसरा	संस्करण	१९६१	उन्नीसवाँ	संस्करण	१९८०
तीसरा	संस्करण	१९६२	बीसवाँ	संस्करण	१९८१
चौथा	संस्करण	१९६३	इक्कीसवाँ	संस्करण	१९८२
पाँचवाँ	संस्करण	१९६५	बाईसवाँ	संस्करण	१९८३
छठा	संस्करण	१९६७	तेईसवाँ	संस्करण	१९८४
सातवाँ	संस्करण	१९६८	चौबीसवाँ	संस्करण	१९८५
आठवाँ	संस्करण	१९६९	पच्चीसवाँ	संस्करण	१९८६
नवाँ	संस्करण	१९७०	छब्बीसवाँ	संस्करण	१९८७
दसवाँ	संस्करण	१९७१	सत्ताईसवाँ	संस्करण	१९८८
ग्यारहवाँ	संस्करण	१९७२	अट्ठाईसवाँ	संस्करण	१९८९
बारहवाँ	संस्करण	१९७३	उन्तीसवाँ	संस्करण	१९९०
तेरहवाँ	संस्करण	१९७४	तीसवाँ	संस्करण	१९९०
चौदहवाँ	संस्करण	१९७५	इकत्तीसवाँ	संस्करण	१९९१
पन्द्रहवाँ	संस्करण	१९७६	बत्तीसवाँ	संस्करण	१९९२
सोलहवाँ	संस्करण	१९७७	तैंतीसवाँ	संस्करण	१९९३
सत्रहवाँ	संस्करण	१९७८	चौंतीसवाँ	संस्करण	१९९४

मूल्य : ४२·०० रु० मात्र
राजहंस हिन्दी निबन्ध एक रजिस्टर्ड पुस्तक है।
(रजिस्ट्रेशन नं० IV—१४८५)

एक निवेदन

आपकी दृष्टि में परीक्षा की दृष्टि से यदि कोई उपयोगी निबन्ध आपकी प्रिय पुस्तक **'राजहंस हिन्दी निबन्ध'** में नहीं है, तो उसकी सूचना हमें देने की कृपा करें, जिससे नया संस्करण प्रकाशित होते समय उसका विशेष ध्यान रक्खा जाये। **"राजहंस हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता १९९४"** के विषय में विवरण देखिये पृष्ठ ५, ६ पर। धन्यवाद !

—प्रकाशक

मुद्रक : राजीव गोयल, राजहंस प्रेस, राजहंस नगर गढ़ रोड, मेरठ।
रोशनी प्रिंटिंग प्रेस, देहली।
36/OF/793/5

दो शब्द

Vaishali Jain

आज के शिक्षा-प्रधान युग मे हिन्दी निवन्ध की वहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं, और सभी अपनी-अपनी दृष्टि से अच्छी हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'राजहस हिन्दी निबन्ध' छात्रो के सर्वांगीण विकास को दृष्टि मे रखकर लिखी गई है। इन निवन्धो से इण्टरमीडिएट, हायर सेकेण्ड्री, बी० ए०, विशारद, प्रभाकर आदि कक्षाओ के छात्र विशेष लाभ उठा सकेंगे तथा हाई स्कूल के विद्यार्थियो के लिए भी यह कम हितकर नही है, ऐसी मुझे आशा है। जुलाई १९६० मे 'राजहस हिन्दी निवन्ध' का प्रथम सस्करण विद्यार्थियो के हाथ मे पहुँच गया था। छ महीने मे प्रथम सस्करण समाप्त हो गया। छात्रो ने इसे अपनाया और इसकी उपयोगिता का अनुभव किया, मुझे प्रसन्नता है कि आज इसका चौतीसवाँ सस्करण प्रकाशित हो रहा है।

नवीन सस्करण मे उन सभी नवीनताओ का समावेश किया गया है, जो आए दिन विश्व के रंगमच पर अभिनीत हो रही हैं। प्राय सभी निवन्ध नवीन सामग्री से सुसज्जित किये गए है। परीक्षा की दृष्टि से हितकर नवीन निवन्धो जैसे शेयर घोटाला १९९२, नौवें राष्ट्रपति श्री शकर दयाल शर्मा, ओलम्पिक ९२, इन्सैट दो-ए ९२, सोवियत सघ का पतन, विनाशकारी भूकम्प, जवाहर रोजगार योजना, पचायती राज विधेयक, उग्रवाद, भीमराव अम्बेडकर, प्रधानमन्त्री श्री नरसिम्हा राव, दसवी लोकसभा १९९१, राजीव गाँधी का दुर्भाग्यपूर्ण दलन, राम जन्म-भूमि और बाबरी मस्जिद आदि ज्वलन्त विन्दुओ को भी सम्मिलित किया गया है। **उच्च कक्षाओ तथा प्रतियोगिता-परीक्षाओ की विषय-सामग्री पर भी पूर्ण दृष्टि रखी गई है।**

आशा है भारतवर्ष के छात्र-जगत मे इस पुस्तक ने जो ख्याति प्राप्त की है, इस सस्करण से वह ख्याति और भी अधिक बढ़ेगी। राजस्थान, मध्य प्रदेश, विहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, प० बगाल, उडीसा, आन्ध्र, असम, जम्मू-कश्मीर, महाराष्ट्र, गुजरात, पजाब, और हिमाचल ऐसे राज्य हैं जिसके निवासी छात्रो एव विद्वान गुरुजनो ने इस पुस्तक को हृदय से अपनाया है। नेपाल के प्रिय छात्रो मे इस पुस्तक ने लोकप्रियता प्राप्त की है। उनके समक्ष कृतज्ञता-ज्ञापन यदि औचित्य नही तो कर्तव्य अवश्य है।

यदि गुरुजन अपने सुझाव एवम् विचार भेजने की कृपा करेंगे, तो उन्हें तत्काल सादर साकार रूप देने का प्रयास किया जाएगा। विद्यार्थी भी यदि अपनी सुविधा और असुविधाओ को लिखते रहे, तो यह "सोने मे सुहागा" के समान होगा।

आदर सहित,

—डॉ० आर० एन० गौड

इस संस्करण के नवीन आकर्षण

१. शेयर घोटाला १९९२
२. भारत के नौवें राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा (१९९२)
३. पच्चीसवें ओलम्पिक खेल १९९२
४. अन्तरिक्ष अनुसंधान में एक नये युग का प्रारम्भ १९९२
५. सोवियत संघ का पतन १९९१
६. विनाशकारी भूकम्प १९९१
७. दसवीं लोक सभा के चुनाव १९९१
८. भारत के नौवें प्रधानमन्त्री श्री नरसिम्हा राव
९. राजीव गाँधी का दुर्भाग्यपूर्ण दमन
१०. आरक्षण एवम् सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय
११ राम जन्म-भूमि और बाबरी मस्जिद
१२. भारत रत्न डॉ० भीमराव अम्बेडकर
१३. उग्रवाद की चुनौती और राष्ट्रीय अखण्डता
१४. जवाहर रोजगार योजना १९८९
१५. पंचायती राज विधेयक १९८९
१६. 'अग्नि' तथा अन्य प्रक्षेपास्त्र १९८९

चौतीसवाँ संस्करण १९९४

कौन-सा निबन्ध कहाँ है ?

मुख्य नवीन निबन्ध

साहित्यिक निबन्ध

शैक्षिक निबन्ध

वैज्ञानिक निबन्ध

कुछ निबन्धों की रूप-रेखा

VAISHALI
VAISHALI JAIN

निबन्ध रचना

अंग्रेजी शब्द 'ऐस्से' का हिन्दी में निबन्ध, पर्यायवाची है। ऐस्से' फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। विदेशी विद्वानों के मतानुसार सब प्रकार के बंधनों से मुक्त स्वच्छन्द रचना को निबन्ध कहते हैं। निबन्ध बड़े से बड़े और छोटे से छोटे विषय पर लिखा जा सकता है। अंग्रेजी विद्वानों के मतानुसार निबन्ध की कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। दो चार पृष्ठों का भी निबन्ध लिखा जा सकता है और अधिक से अधिक पृष्ठों का भी। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि 'निबन्ध' अनियमित और 'असम्बद्ध' रचना को कहते हैं इस रचना में "मन की उन्मुक्त उड़ान होती है।" वास्तव में "निबन्ध वह रचना है जिसमें किसी विषय पर कोई लेखक सीमित समय और सीमित शब्दों में अपना क्रमबद्ध विचार व्यक्त करता है।" निबन्ध की पृष्ठ भूमि में लेखक का व्यक्तित्व होता है, उसके मनोभाव होते हैं। एक ही विषय पर लिखे गये भिन्न-भिन्न लेखकों के विचारों में भिन्नता होना स्वाभाविक ही है इसलिये निबन्ध लेखन में, जितना लेखक के व्यक्तित्व का महत्व होता है, उतना विषय का नहीं। अत्यन्त शुष्क विषय को भी लेखक अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व से चमका देता है। निबन्ध लिखने में दो वस्तुओं की आवश्यकता होती है—(१) सामग्री, (२) शैली। सुन्दर निबन्ध लिखने के लिये सुन्दर शैली की आवश्यकता है। केवल शैली से ही काम नहीं चल सकता, उसके लिये सामग्री भी चाहिये। शैली अच्छी हो और सामग्री कुछ न हो तब भी अच्छा निबन्ध नहीं लिखा जा सकता। अतः सामग्री और शैली दोनों अन्योन्याश्रित हैं। न अकेली शैली से काम चल सकता है और न अकेली सामग्री से ही।

सामग्री

निबन्ध लेखन में सामग्री अत्यन्त आवश्यक तत्व है। इस मुख्य तत्व के अभाव में न कोई लेख लिखा जा सकता है और न कोई निबन्ध। सामग्री एकत्र करना कोई साधारण काम नहीं है। इसमें कई बातों के योग की आवश्यकता पड़ती है। हम जिस संसार में रहते हैं, उसकी प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण करें, उसके विषय में हमें पूरा ज्ञान होना चाहिये। हमें भिन्न-भिन्न स्थानों का पर्यटन करना भी आवश्यक है, क्योंकि बिना देशाटन के हम किसी वस्तु का यथातथ्य वर्णन नहीं कर सकते। निबन्ध लिखने की प्रमुख बात है कि हमारा भिन्न भिन्न वस्तुओं पर गम्भीर अध्ययन होना चाहिये और विशेष रूप से उस वस्तु पर जिस पर हमें निबन्ध लिखना है। हमारा शब्द भण्डार विशाल और विस्तृत होना चाहिये। हमें यह देखना चाहिए कि जिस विषय पर हमें निबन्ध लिखना है, उस विषय पर प्रसिद्ध निबन्धकारों के क्या विचार हैं। अध्ययन के लिये हमें उच्च कोटि के लेखकों के ग्रन्थ चुनने चाहिएँ केवल अध्ययन मात्र से कल्याण नहीं हो सकता। अध्ययन के पश्चात् मनन की परम

आवश्यकता है। जिस विषय को आप लिखना चाहते हैं, उस पर गम्भीरतापूर्वक मनन कीजिये और बुद्धि की कसौटी पर कसकर देखिये कि इसमें तथ्य कहां है। निबन्ध-लेखन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु अभ्यास है, बिना अभ्यास के निबन्ध लिखना बालू की दीवार उठाना है, प्रायः देखा जाता है कि ऐसे व्यक्ति जिनके पास न विचारों की कमी है न अध्ययन की, परन्तु निबन्ध लिखते समय कभी आकाश को देखते हैं, और कभी पृथ्वी को। वैसे तो संसार के प्रत्येक क्षेत्र में अभ्यास की बहुत आवश्यकता है, परन्तु निबन्ध-लेखन में विशेष रूप से, क्योंकि इसमें तो बिना अभ्यास के लेखक एक पग भी आगे नहीं बढ़ पाता।

शैली

शैली का अर्थ है 'किसी काम को करने का ढङ्ग'। निबन्ध लिखने में एक ढङ्ग की आवश्यकता होती है। निबन्ध लिखने मे सुन्दर-सुन्दर सार्थक शब्दो का प्रयोग करना चाहिये, वाक्य व्यवस्थित और सुसंगठित होने चाहियें। इसके साथ-साथ वाक्य छोटे हों और सरल हों। भाषा में रोचकता और प्रवाह लाने के लिये बीच-बीच में लोकोक्तियों, मुहावरों तथा अलंकारों का प्रयोग होना चाहिए। निबन्ध की भाषा अत्यन्त सुबोध, सरल एवम् परिष्कृत होनी चाहिए। तद्भव शब्दों के स्थान पर यदि तत्सम शब्दों का प्रयोग किया जाये तो और भी अच्छा है। अन्य भाषाओं के शब्दों को भी; जो हिन्दी में प्रचलित हों, प्रयोग में लाना चाहिए, इसमें भाषा की सुबोधता में वृद्धि होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि निबन्ध की शैली सरल, शुद्ध, सुबोध और प्रभावोत्पादक होनी चाहिये।

आरम्भ, मध्य और अवसान

निबन्ध का आरम्भ आकर्षक और प्रभावोत्पादक होना चाहियें, जिससे पाठक के हृदय में रुचि और उत्सुकता उत्पन्न हो सके। निबन्ध की प्रस्तावना का विषय के मध्य और अन्तर में गहन सम्बन्ध रहता है। प्रस्तावना संक्षिप्त होनी चाहिए, परन्तु सारगर्भित निबन्ध का प्रारम्भ आप, विषय से सम्बन्धित किसी कवि की उक्ति से; विषय की परिभाषा से, आवश्यकता या महत्व प्रदर्शित करते हुए अथवा विषय की वर्तमान अवस्था और महत्व दिखाते हुए कर सकते हैं। निबन्ध के मध्य भाग मे निश्चित रूप-रेखाओं द्वारा विषय का पूर्ण विवेचन करना चाहिये। अनावश्यक और अप्रमाणित बातों को निबन्ध के स्थान नहीं देना चाहिये। इससे निबन्ध की कलेवर-वृद्धि तो हो जाती है; परन्तु विषय में नीरसता आने का भय बना रहता है। अवसान में समस्त निबन्ध का सारांश निहित होता है। निबन्ध की समाप्ति इस प्रकार करनी चाहिए; जिससे पाठक को यह प्रतीत न हो कि यह एकदम कैसे हो गया अर्थात् विषय को शनैः शनैः अवसानोन्मुख करना चाहिये। निबन्ध अपने में पूर्ण होना चाहिये, जिससे पाठक की उसके विषय में समस्त जिज्ञासायें स्वतः शान्त हो जाएं।

निबन्धों के प्रकार

मुख्य रूप से निबन्ध तीन प्रकार के होते हैं—वर्णनात्मक, विवरणात्मक और विचारात्मक।

वर्णनात्मक

इन निबन्धों में वस्तु विशेष का सजीव वर्णन किया जाता है। पाठकों का वर्णन के द्वारा ही वस्तु का दर्शन कराने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार के निबन्धों में प्राकृतिक और अप्राकृतिक दोनों प्रकार की वस्तुओं का समावेश होता है। इस प्रकार के निबन्ध लेखन में सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति तथा कुशल कल्पना की आवश्यकता होती है।

विवरणात्मक

इन निबन्धों में बीती हुई घटनाओं, युद्ध कथाओं, जीवनियों, पौराणिक वृत्तान्तों आदि के वर्णन होते हैं। इस प्रकार के निबन्धों में क्रमबद्धता की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। जो घटना पहिले हुई हो उसका वर्णन पहले जो घटना के मध्य में हुई हो, वर्णन मध्य में और जो घटना अन्त में हुई हो, उसका वर्णन अन्त में करना चाहिए। उसका इस प्रकार के निबन्धों में इतिहास की भी नीरसता नहीं आनी चाहिए। वर्णन सरल और आकर्षक हो जिससे पाठकों की रुचि निबन्ध पढ़ने में ज्यों की त्यों बनी रहे।

विचारात्मक

इन निबन्धों में विचार अथवा बुद्धि तत्व का आधिक्य रहता है। इनमें प्राय आकारविहीन, समस्यायें आती हैं—तर्क व्याख्या आदि का समावेश होता है। इनमें लेखक किसी विषय पर अपनी सम्मति प्रकट करता है और अपने तर्कों एवम् दृष्टान्तों से उसे प्रमाणित करता है। विचारात्मक निबन्ध लिखने के लिये विषय सम्बन्धी यथोचित ज्ञान और लिखने की योग्यता अत्यन्त आवश्यक है। गम्भीर अध्ययन और चिन्तन के अभाव में विचारात्मक निबन्ध नहीं लिखे जा सकते। ऐसे निबन्धों की भाषा स्वत कुछ कठिन और गूढ़ हो जाती है। फिर भी लेखक को भाषा में प्रभावोत्पादकता के साथ सरलता लाने का प्रयत्न करना चाहिये।

आशा है कि उपरिलिखित बातें छात्रों को निबन्ध लिखने में सहायक सिद्ध होंगी।

शेयर घोटाला

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था मे बैंक मेरुदण्ड के रूप मे कार्य करते हैं। विकास और विनाश इनकी विश्वसनीयता पर निर्भर करता है। व्यापार का मूलाधार बैंक ही होते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में सन् ९२ मे एक ऐसा भूकम्प आया, जो नीचे थे, वे आकाश के प्रासादो मे जा बैठे और गगन चुम्बी अट्टालिकाओ मे थे वे धराशायी हो गये। बैंक खाली होने लगे। शेयरो की ऊँचाई आकाश छू रही थी और भारत सरकार असमंजस में थी कि यह क्या हुआ। वित्तमन्त्री श्री मनमोहनसिंह पत्रकारो के प्रश्नो के उत्तर देने से कतरा रहे थे।

१ भूमिका
२ स्थिति की भयावहता
३ जांच कार्य
४ उपसंहार

भयंकर आंधी और तूफान सदैव कुछ क्षणो के लिये ही आते है। वे चिरस्थायी नही होते। तूफान के बाद की शान्ति कभी-कभी सुखद भी होती है और कभी-कभी दुखद भी। विनाश जब अपनी सीमाओ का अतिक्रमण कर आता है तो यह शान्ति सुखद न होकर दुखद बन जाती है। भारत में 'शेयर घोटाले' के तूफान के बाद जो शान्ति आई वह सुखद थी। तूफान, सरकार की जागरूकता के कारण सीमाओ का अतिक्रमण न कर सका था। भारत सरकार ने तत्परता और जागरूकता के साथ बिगड़ती स्थिति को अपने नियन्त्रण मे लिया। धन कुबेरो और दलालों के यहाँ छापे डाले गये। शेयर धारको को कब्जे मे लिया गया। बैंको के खाते सील करके छानबीन प्रारम्भ हुई। सारे देश मे आयकर विभाग ने एक साथ छापे डाले।

विदेशी बैंकों से मिलकर भारतीय अर्थव्यवस्था को चौपट कर देने वाले दलालो को गिरफ्तार किया गया। देशद्रोही अभियुक्तो को सी० बी० आई० के सुपुर्द किया गया, गहन छान बीन शुरु हुई। उन बहुत से अभियुक्तों में से मुख्य अभियुक्त हर्षद मेहता था जिसने लगभग चवालीस अरब रुपयो का घोटाला किया था। २८ फरवरी, १९९२ को हर्षद मेहता को आर्थिक अपराधो के चक्रव्यूह में सी० बी० आई० ने घेर लिया। एक के बाद दूसरे अपराध और अभियुक्त खुलते गये। वास्तविकताएँ सामने आने लगीं। आश्चर्य में स्तम्भित करने वाले तथ्य सामने आने लगे। बिगड़ती स्थिति को बड़ी सूझ-बूझ से नियन्त्रित कर लिया गया।

सी० बी० आई० की जाँच को लोक सभा ने पर्याप्त न समझकर संसद्-सदस्यों की संयुक्त संसदीय समिति की घोषणा की। उसमें पक्ष और विपक्ष दोनो प्रकार के संसद् सदस्य रक्खे गये। तीस सदस्यीय इस समिति के अध्यक्ष पूर्व केन्द्रीय मन्त्री श्री रामनिवास मिर्धा हैं।

प्रतिभूति घोटाले की जाँच कर रही संयुक्त संसदीय समिति की २२ जून, १९९३ की मसौदा रिपोर्ट में कहा गया है कि सभी बैंकों को सख्त संसदीय नियन्त्रण में लाया जाये। रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि वित्त मन्त्रालय ने प्रतिभूतियों और बैंकों के लेन-देन पर बारीक नजर रखी होती तो अर्थव्यवस्था में प्रतिभूति घोटाले के रूप में सामने आई गड़बड़ियों से बचा जा सकता था। रिपोर्ट में विदेशी बैंकों को एक तरह से घोटाले की जड़ बताया गया है और कहा गया है कि इस प्रकरण में सबसे बड़ी भूमिका इन्हीं बैंकों की रही है। विदेशी बैंक चाहें तो अपने विपुल संसाधनों, सम्पर्कों और आक्रामक नीतियों से अर्थव्यवस्था को भारी आघात पहुँचा सकते हैं।

समिति ने अपनी व्यापक रिपोर्ट में रिजर्व बैंक की कार्य प्रणाली पर भी चोट की है उसमें कहा गया है कि वित्तीय संस्थानों की जाँच करने की कोई प्रणाली नहीं है यहाँ तक कि रिजर्व बैंक के अनुसंगी नेशनल हाउसिंग बैंक की जाँच उसकी स्थापना के बाद अब तक नहीं की गई। रिपोर्ट में वित्त-मन्त्रालय की आलोचना की गई है। रिपोर्ट में वित्तमन्त्री डा० मनमोहनसिंह के इस कथन को असंगगत बताया है कि १९९२ के शुरू में शेयर बाजार की तेजी, सरकार द्वारा शुरू की गई उदारीकरण की नीतियों का परिणाम था। मसौदा रिपोर्ट में खेद के साथ कहा गया है कि वित्तमन्त्री यह नहीं समझ पाये कि उनके मुँह से निकली हल्की-फुल्की बात भी देश की अर्थव्यवस्था को बहुत ज्यादा प्रभावित कर सकती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि डॉ० सिंह ने शेयर बाजार में सट्टाबाजी की अतिशयता पर ध्यान नहीं दिया। इस सम्बन्ध में उनका यह बयान उद्धरित किया गया है कि वह इस बात से अपनी नींद हराम नहीं करेंगे। रिपोर्ट में कहा गया है कि वित्त-मन्त्रालय अपने ही नियम कानून के अनुपालन को सुनिश्चित कराने में विफल रहा जिसके कारण भी प्रतिभूतियों और दोनों के लेन-देन में काफी गड़बड़ी हुई। आदि-आदि।

समिति के विद्वत्तापूर्ण और छान-बीन भरे इस निर्णय से तथा आगे आने वाले अपने अन्तिम निर्णय से सरकार को एक सुदृढ़ मार्ग-दर्शन मिलेगा तथा ऐसी गम्भीर गलतियों की पुनरावृत्ति नहीं होगी, ऐसी आशा की जाती है। सट्टा स्पष्ट जुआ होता है उससे सदैव बचना चाहिये। जुए में विनाश से युधिष्ठिर तक न बच सके तो साधारण व्यक्ति की तो बिसात ही क्या है।

आरक्षण

एवं

उच्चतम न्यायालय का निर्णय

बाग का कुशल माली, बाग के सभी तरु-लता गुल्मों, पुष्पों और फलो वाले छोटे-बड़े पादपो, को समान प्यार देता है, सभी को वर्षा और आतप से, आंधी और तूफान से, कीड़े और मकोड़ो से, रोग और क्रूर हाथो से बचाता है, उनका पालन और पोषण करता है। अपने परिश्रम के फलस्वरूप चमन को खिलता और हँसता हुआ देख कर उनके आत्म सन्तोष की सीमा नही रहती। वह यह कभी सोच भी नही सकता कि कुछ कलियाँ खिल-खिलाकर हसने लगें और कुछ अकाल में ही धूल धूसरित हो जायें। अगर बहार आती है तो सब पर आये। अगर कुछ खिले और कुछ मुरझा गये और कुछ ने अपने मूक स्वरो मे, करुण क्रन्दन किया तो यह उद्यान के माली की अकुशलता, अदूरदर्शिता और विवेकहीनता ही कही जायेगी।

आरक्षण
1. भूमिका।
2. आरक्षण का इतिहास।
3. आरक्षण की घोषणा।
4. देश मे प्रतिक्रिया।
5. उर्दू अखबारों का मत।
6. अन्य दलीय मत।
7. उपसहार।

'आ समन्ताद् रक्षित इति आरक्षित' इस विग्रह से आरक्षण का अर्थ है चारो ओर से रक्षा प्रदान करना। 'आरक्षण' शब्द अंग्रेजी के शब्द Reservation का हिन्दी रूपान्तर है। इस शब्द का प्रयोग देश में सर्वप्रथम लार्ड मिन्टो ने १६०६ ई० के भारत शासन अधिनियम के अन्तर्गत किया था, जिसके अनुसार भारत के कुछ वर्गों को निर्वाचन में पृथक् प्रतिनिधित्व देने की बात कही गई थी। इसके बाद 'आरक्षण शब्द का प्रचार और प्रसार बढता ही गया। स्वाधीनता के बाद हमारे सविधान निर्माताओ ने महात्मा गाँधी व अन्य समाज सुधारकों के प्रयत्नो से प्रभावित होकर स्वतन्त्र भारत के सविधान में देश की अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए अनेक प्रावधानों का समावेश किया।

भारत के सविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियो को देश की जन-संख्या का एक ऐसा विशेष वर्ग माना गया है, जिसको राष्ट्रीय स्तर तक लाने के लिए विवेकपूर्ण सरक्षण, सहायता तथा सुनिश्चित कार्य योजना की आवश्यकता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सविधान के अनुच्छेद ३४१ तथा ३४२ में प्रावधान लिपिबद्ध किया गया है। इसके अनुसार इन जातियों को राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा तथा सस्कृति के क्षेत्र में अनेक सुविधायें दी गईं।

संविधान के अनुच्छेद १५ (४) में यह उपलब्ध किया गया है कि देश के किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। इसी उपबन्ध को ध्यान में रखकर उच्चतम न्यायालय ने तमिलनाडु (मद्रास)

सरकार के 'मेडिकल व इन्जीनियरिंग कॉलेजों' में जाति और धर्म के आधार पर सीट आरक्षित करने के लिए लिये गये निर्णय को अवैधानिक घोषित करके राज्य सरकार के इस तर्क को मानने से इन्कार कर दिया कि ऐसा हर वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाने के उद्देश्य से किया गया है। संविधान और उच्चतम न्यायालय के निर्णय का सम्मान बनाये रखने के उद्देश्य से सरकार ने १९५१ ई० में प्रथम संविधान संशोधन पारित करके यह प्रावधान कर दिया कि सरकार सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए भी विशेष कानून बना सकती है। उल्लेखनीय है कि अन्य पिछड़े वर्गों के लिए यह प्रावधान संविधान के अनुच्छेद ३४० में किया गया है। संविधान का यही संशोधन अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण की वर्तमान समस्या का जन्मदाता है।

संविधान के तथाकथित प्रावधान को कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रपति ने २९ जनवरी, १९५३ ई० को 'काका साहब कालेलकर' की अध्यक्षता मे 'प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग' का गठन किया। इस आयोग ने समाज की २३९९ जातियों को पिछड़ा वर्ग की श्रेणी में रखा और इनमें से ८३७ जातियो को सर्वाधिक पिछड़ी जातियाँ घोषित की। लेकिन आयोग की दोषपूर्ण कार्य-प्रणाली एवं संस्तुतियो के विरोध मे देश में बवन्डर मच गया और आरोपो-प्रत्यारोपो का दौर चल पडा। फलस्वरूप सरकार ने इस आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार नही किया और कुछ दिनो के बाद यह मामला शान्त हो गया।

सन् १९७७ में केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के बाद आरक्षण की समस्या पुनः सामाजिक और राजनीतिक वाद-विवाद का केन्द्र बन गई। अतः इस समस्या के समाधान के लिए जनता सरकार ने १ जनवरी १९७९ ई० को बिहार के पूर्व मुख्यमन्त्री ,विन्देश्वरी प्रसाद मण्डल' की अध्यक्षता में 'द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग' का गठन किया इस आयोग ने ३१ दिसम्बर १९८० में अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत कर दी। इस रिपोर्ट में ३,७४३ जातियों को पिछड़े वर्ग की श्रेणी में रखा गया है। इस आयोग ने अपनी सूची में १९३१ की जनगणना को आधार वर्ष बनाया है।

जनता सरकार के पतन के बाद कांग्रेस सरकार ने मण्डल आयोग की रिपोर्ट को उपेक्षित कर दिया और यह तर्क दिया कि मण्डल आयोग की स्थापना का मन्तव्य राजनीति से प्रेरित था। इस तर्क के परोक्ष में यह तथ्य था कि इस आयोग की स्थापना तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई वे उपप्रधान मन्त्री व गृह मन्त्री चौधरी चरण सिंह की पदच्युति से उत्पन्न राजनीतिक बवण्डर को रोकने के लिए किया था।

सन् १९८९ के सार्वजनिक निर्वाचन में राजनीतिक लाभ और जन समर्थन प्राप्त करने के लिये राष्ट्रीय मोर्चा दल ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में यह वायदा किया कि यदि केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार सत्तारूढ़ हो जाती है, तो वह मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करेगी।

सार्वजनिक निर्वाचन में विजयी होकर राष्ट्रीय मोर्चा दल की सरकार सत्तारूढ़ हो गई। लेकिन परिस्थितियो की विडम्बना देखिये कि लगभग १० वर्ष तक उपेक्षित पड़ी मण्डल आयोग की सिफारिशो को लागू करने का निर्णय पूर्व प्रधानमन्त्री वी० पी० सिंह ने उसी प्रकार आतुरता और शीघ्रता से लिया, जिस प्रकार मोरार जी देसाई ने लिया था।

सात अगस्त १९९० को लोक-सभा का मानसून सत्र प्रारम्भ हुआ। संसद के दोनों सदनों में तत्कालीन प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने पिछड़े वर्गों के लिए

मण्डल आयोग की रिपोट पर सरकारी फैसले की घोषणा की कि सामाजिक व शैक्षिक रूप मे पिछडे वर्ग के लिए केन्द्रीय और सावजनिक उपक्रमो मे २७ प्रतिशत पद आरक्षित रहेंगे। इस आरक्षण की घोषणा से पूव १ अगस्त १९९० को तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह, उप प्रधानमन्त्री श्री देवीलाल को अपनी सरकार मे म बर्खास्त कर चुके थे। श्री देवीलाल ने ९ अगस्त ९० को अपने समर्थन मे एक विशाल किसान रैली का आयोजन किया था। सात अगस्त की इस आकस्मिक घोषणा के गभ म वी० पी० सिंह की राजनीतिक लाभ प्राप्ति निहित थी।

इस आरक्षण के विरोध और समथन मे सहसा समस्त उत्तर भारत मे विरोध और विद्रोह का ज्वालामुखी फूट पडा। तोड-फोड की घटनायें अपनी चरम सीमा में चलती रही। पुलिस को जगह-जगह अश्रु गैस और लाठी चाज का प्रयोग करना पडा। छात्रो के आक्रोश को देखकर विद्यालय और महाविद्यालय बन्द करने पडे। एक ओर मिठाइयाँ बँटी तो दूसरी ओर आत्मदाह हुए। एक ओर वी० पी० जिन्दाबाद हुये तो दूसरी ओर मुर्दाबाद हुये। इस तरह सारे देश में एक जाति सघष की स्थिति बन गई। राजनीतिक पार्टियो के शीर्षस्थ नेतागण भी अपने अपने मतदाताओ के मनोनुकूल वक्तव्य देते रहे परन्तु किसी ने सवमान्य समाधान ढूढने का प्रयास नही किया। सत्य यह भी है कि किसी सामान्य राजनेता ने मण्डल आयोग की रिपोट को न देखा है और न पढा है। कुछ प्रबुद्ध युवाओ ने उच्च न्यायालय एव सर्वोच्च न्यायालय मे अपनी-अपनी याचिकायें दायर की है जिसके कारण आरक्षण के क्रियान्वयन पर इस समय रोक लगी हुई है।

आरक्षण की प्रतिक्रिया उर्दू अखबारो मे भी हुई। 'नई दुनियाँ' नाम के उर्दू अखबार ने लिखा कि या तो आरक्षण पूरी तरह ही समाप्त कर दिया जाये या फिर उसका आधार आर्थिक हो और अगर ऐसा नही होता है तो मुसलमानो को २० प्रतिशत आरक्षण की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिये। अखबार का कहना है कि आज मुसलमानो की हालत हरिजनो से कही बदतर है। मुसलमानो मे ऊची-नीची जाति का सवाल नहीं है। सफ्जे मुसलमान ही पिछडेपन, तालीमी पसमादगी (शैक्षिक तौर पर पिछडे) इफ्तसादी बदहाली (आर्थिक तगी) की अलामत बन गया है। "अखबारे-नौ" ने लिखा है कि प्रधानमन्त्री वी० पी० सिंह ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में दिये आश्वासन के मुताबिक यदि पिछडे वर्गों के लिए मण्डल आयोग की सिफारिशो को लागू करने की घोषणा कर दी तो एक वग विशेष ने हाय-तोबा मचाना शुरू कर दिया और अब रिजर्वेशन के नाम पर मुसलमानो को सडको पर लाने की एक साजिश रची जा रही है।

अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) कमेटी ने १४ सितम्बर १९९० को सम्पन्न हुई अपनी कार्यकारिणी की मीटिंग मे कहा कि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार और तत्कालीन प्रधानमन्त्री वी० पी० सिंह ने अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय सकट की घडी मे सकीण राजनैतिक स्वाथ के लिये देश की एकता, अखण्डता और सामाजिक सद्भाव को दाँव पर लगाकर देश को विभाजन के कगार पर पहुँचा दिया है। कार्यकारिणी के राजनीतिक प्रस्ताव मे कहा गया कि "राष्ट्रीय मोर्चा सरकार मे 'नीति और निणय शून्य' सम्पूर्ण दिग्भ्रम और बदहवासी के कारण पहल उग्रवादियों, अलगाववादियो और देश का अहित चाहने वाले लोगों के हाथ में चली गई है।"

वी० पी० सिंह के बाद आये प्रधानमन्त्री श्री चन्द्रशेखर सुलझे हुए राजनेता थे। देश की भावी पीढ़ी की उन्नति और कल्याण के लिए व्यापक जनहित में पग उठाये। जून १९९१ में प्रधानमन्त्री श्री पी० वी० नरसिंहाराव के प्रधानमन्त्रित्व में, कांग्रेस सरकार पुनः पदारूढ़ हुई उसने इस समस्या का सर्वमान्य और सामञ्जस्य पूर्ण हल निकालते हुए जिससे सामाजिक विद्रोह की आग शान्त हो सके एक अधिसूचना के द्वारा आर्थिक आधार पर दस प्रतिशत का प्राविधान किया था।

परन्तु १६ नवम्बर, १९९२ को सर्वोच्च न्यायालय की सम्पूर्ण पीठ ने मण्डल आयोग से सम्बन्धित दो अधिसूचनाओं पर अपना ऐतिहासिक निर्णय देकर वी० पी० सिंह सरकार की अधिसूचना को स्वीकार करते हुये नरसिंह राव सरकार की आर्थिक आधार की दस प्रतिशत वाली अधिसूचना को रद्द कर दिया। इस प्रकार पिछड़े वर्ग के लिए २७ प्रतिशत आरक्षण पर सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। सर्वोच्च न्यायालय की सम्पूर्ण पीठ के नौ न्यायमूर्तियों में से छः ने आरक्षण के पक्ष में अपना निर्णय दिया तथा तीन न्यायमूर्तियों ने इसके विरोध में अपना निर्णय दिया।

१. नौवें राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा

नौवें राष्ट्रपति डॉ० शकर दयाल शर्मा

भारतवर्ष धमप्राण देश है उसकी आत्मा धममयी है, उसका शरीर भले ही विभिन्न सस्कृतियों का समूह हो परन्तु प्रत्येक सस्कृति एव सभ्यता के गभ मे धम की ही ध्वजा फहराती हुई मिलेगी। धार्मिक दृष्टिकोण से नौ का अक अत्यन्त महत्त्वपूण अक है। भगवान राम का जन्म नौ के अक वाली तिथि को ही हुआ था, इसीलिए उसे राम नवमी कहते हैं। भगवती महामाया दुर्गा की आराधना और उपासना के लिए भी नवरात्रियो में नौ दिन का व्रत रखा जाता है। भगवती का सानिध्य प्राप्त करने के लिये भी नवाक्षर वाले महामन्त्र का जप करके मानव ऋद्धि-सिद्धियो की प्राप्त करता है। ईश्वर के स्मरण के लिए जिस माला का आश्रय लिया जाना है उसमें एक सौ आठ दाने होते हैं जो बारह में नौ का गुणा करने से ही पूण होते हैं। तात्पय यह है कि सिद्धि, साधना एव कल्याण के लिये धार्मिक दृष्टि से नौ का अक अत्यन्त उपलब्धि पूण है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी नौ का अक परब्रह्म की भाँति अपने में पूण रहता है। देखिय —

१ यदि हम अकों १,२,३,४,५,६,७,८, व ९ को आपस में जोड़े तो योग ४५ आयेगा या ४+५=९

२ यदि हम किसी अक को ९ से गुणा करें तो प्राप्त सख्या के अकों का योग ९ ही होगा।

९×१ = ० , ९+०=९
९×२ = १८, १+८=९
९×३ = २७, २+७=९
९×४ = ३६, ३+६=९
९×५ = ४५, ४+५=९
९×६ = ५४, ५+४=९
९×७ = ६३, ६+३=९
९×८ = ७२, ७+२=९
९×९ = ८१, ८+१=९

अत नौ के अक से विभूषित राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा देश को अद्वितीय सफलता और अभूतपूर्व उपलब्धियों की ओर ले जायें तो आश्चर्य ही क्या है।

डॉ० शर्मा का जन्म १९ अगस्त, १९१८ को भोपाल में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम खुशीलाल शर्मा और माँ का नाम सुभद्रा था। आगरा

के सेंट जॉन्स कालेज में इनकी शिक्षा हुई। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य, हिन्दी और संस्कृत में एम. ए. किया। उसके बाद उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से एल. एल. एम. किया।

१९३९ में वह तीन साल तक लखनऊ विश्वविद्यालय छात्रसंघ के पदाधिकारी रहे। इसी दौरान उन्होंने एथलेटिक्स, नौकायन और तैराकी में रुचि दिखायी। वे तीन साल तक लखनऊ विश्वविद्यालय के तैराकी चैम्पियन रहे। १९४० में उन्होंने लखनऊ में वकील के रूप में प्रैक्टिस शुरू की।

डॉ० शर्मा ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की तथा लंदन विश्व-विद्यालय से लोक प्रशासन में डिप्लोमा हासिल किया। उन्होंने ब्रिटेन के लिनकन्स इनमे बार एक्ट ला की डिग्री प्राप्त की।

१९४६ से १९४७ तक उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में कानून पढाया। १९४७ से १९४८ तक वह अमेरिका के हारवर्ड लॉ स्कूल के फैलो रहे।

भोपाल लौटने पर डॉ० शर्मा भोपाल रजवाड़े को भारतीय सघ में विलय कराने के आन्दोलन में कूद पडे। उन्हे आठ महीने तक कारावास भुगतना पड़ा।

रजवाड़े के विलय के बाद १९५० में भोपाल राज्य कांग्रेस (इ) के अध्यक्ष तथा दो साल बाद वह भोपाल राज्य के मुख्यमंत्री बने। वे अप्रैल १९५२ से नवम्बर १९५६ तक मुख्यमन्त्री रहे।

डॉ० शर्मा को १९६८ में अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) का महासचिव बनाया गया। एक साल बाद कांग्रेस का विभाजन हो गया। १९७२ में कांग्रेस का महाधिवेशन कलकत्ता में हुआ। जिसमे डॉ० शर्मा ने औपचारिक रूप से पार्टी अध्यक्ष का कार्यभार संभाल लिया। वे १९७४ तक इस पद पर रहे।

१९७१ में लोकसभा चुनाव जीतने के बाद डॉ० शर्मा को १९७४ मे इन्दिरा गांधी मंत्रिमडल में सचार मन्त्री बनाया गया। आपातकाल के बाद १९७७ के आम चुनाव में कांग्रेस की हार तक वह केन्द्र में सचार मन्त्री रहे। १९७७ में वह चुनाव हार गये।

राजनीतिक घटनाक्रम ने ढाई साल बाद फिर करवट ली और डॉ० शर्मा १९८० के चुनाव में जीतकर लोकसभा में आये। वे अगस्त १९८४ तक लोकसभा सदस्य रहे।

इसी बीच आन्ध्र प्रदेश मे श्री भास्कर राव के दलबदल के बाद एन. टी. रामाराव की सरकार को बर्खास्त कर दिया गया और एक खासा विवाद उठ खड़ा हुआ।

डॉ० शर्मा को राज्यपाल बनाकर आंध्र प्रदेश भेजा गया। उन्होंने राजनीतिक सूझबूझ के साथ इस विवाद को सुलझाया और श्री रामाराव दोबारा मुख्यमन्त्री बने।

१९८५ में डॉ० शर्मा को पंजाब का राज्यपाल बनाकर भेजा गया। अगले साल उन्हें महाराष्ट्र का राज्यपाल बनाया गया।

१९८७ में डॉ० शर्मा उपराष्ट्रपति के चुनाव में कांग्रेस इ के उम्मीदवार बने। तीन सितम्बर १९८७ को उन्होंने उपराष्ट्रपति का पद संभाला।

डॉ० शर्मा इस समय दिल्ली, पंजाब और पांडिचेरी विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति भी हैं। वे गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान (वि वि) के भी कुलाधिपति हैं।

भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद और भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के भी वह अध्यक्ष हैं। शान्ति निरस्त्रीकरण और विकास के लिये दिये जाने वाले इंदिरा गांधी पुरस्कार की अन्तर्राष्ट्रीय ज्यूरी के वह अध्यक्ष हैं। डॉ० शर्मा जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल फंड के उपाध्यक्ष तथा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के सदस्य हैं।

उन्होंने पांच पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'क्रान्ति द्रष्टा कांग्रेस' 'एप्रोच द इण्टरनेशनल एप्रेयस जवाहर लाल नेहरू, 'द मदर आफ माडर्न कामनवेल्थ' प्रमुख हैं। १९७१ से १९७४ तक उन्होंने सोशलिस्ट इंडिया का भी सम्पादन किया। 'इलम ओ नूर' (उर्दू) और ज्योतिष पत्रिकाओं का भी उन्होंने संपादन किया।

डॉ० शर्मा और उनकी पत्नी विमला के परिवार में दो पुत्र और एक पुत्री हैं। उनकी एक अन्य पुत्री गीतांजलि की हत्या १९८५ में हुई थी। आतंकवादियों ने गीतांजलि और उनके पति ललित माकन को गोली मार दी थी।

राजनैतिक उपलब्धियों की चरम सीमा पर वरिष्ठ स्वतन्त्रता सेनानी डॉ० शर्मा उस दिन पहुँचे जब १६ जौलाई १९९२ को उन्हें भारत का नौवां राष्ट्रपति चुन लिया गया।

कांग्रेस (इ) के प्रत्याशी के रूप में उन्होंने भारतीय जनता पार्टी और राष्ट्रीय मोर्चे के समर्थित उम्मीदवार प्रो जी जी स्वेल को तीन लाख २९ हजार ३७९ मतों से पराजित किया। डॉ० शर्मा ने २५ जौलाई को राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण की।

देश के इस सर्वोच्च पद के चुनाव परिणाम के अनुसार डॉ० शर्मा को सर्वाधिक दो हजार आठ सौ पैंसठ मत प्राप्त हुए जिनका मूल्य ६ लाख ७५ हजार ८६४ है, जबकि श्री स्वेल को एक हजार पांच सौ दो मत मिले जिनका मूल्य ३ लाख ४६ हजार ४८५ है।

इसी पद के प्रत्याशी काका जोगिन्दर सिंह उर्फ 'धरती पकड़' को मात्र चार मत प्राप्त हुए जिनका मूल्य एक हजार एक सौ पैंतीस है। रामजेठमलानी को भी जिन्होंने श्री स्वेल के पक्ष में चुनाव से हटने की घोषणा की थी, १३ मत मिले जो मूल्य की दृष्टि से दो हजार सात सौ चार मतों के बराबर हैं। चुनाव अधिकारी सुदर्शन अग्रवाल के अनुसार डॉ० शर्मा को ६४·७८ व श्री स्वेल को ३३·२१ प्रतिशत मत मिले। इसके अलावा श्री जोगिन्दर सिंह उर्फ 'धरती पकड़' ने ११ प्रतिशत व रामजेठमलानी ने २६ प्रतिशत मत प्राप्त किये।

देश के सर्वोच्च पद के लिये अपने निर्वाचन के तुरन्त बाद डॉ० शर्मा ने भरोसा दिलाया कि भारत को शांति, सौहार्द, खुशहाली और सामाजिक न्याय की भूमि बनाने का महात्मा गांधी का सपना साकार करने में वह अपना भरसक योगदान करेंगे।

यह डॉ० शर्मा के जीवन का एक भावुक क्षण था। उन्होंने कहा कि इस निर्वाचन

में लोकतंत्र की आंतरिक शक्ति एक बार फिर प्रकट हुई है और मैं अपने कन्धों पर आई जिम्मेदारी महसूस कर रहा हूँ।

डॉ० शर्मा को कांग्रेस (इ) शासित राज्यों के अलावा पश्चिम बंगाल में भी भारी समर्थन मिला जहाँ वाम मोर्चे की सरकार है। वाम मोर्चा ने पहले ही डॉ० शर्मा के समर्थन की घोषणा कर दी थी।

श्री स्वेल को गैर कांग्रेस (इ) शासित राज्यों बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में भारी समर्थन मिला।

संसद के ५१० सदस्यों ने डॉ० शर्मा को तथा २१८ ने श्री स्वेल को मत दिया। संसद के प्रत्येक मत का मूल्य ७०२ है। इस प्रकार संसद से डॉ० शर्मा को तीन लाख ५८०२० मत मिले जबकि श्री स्वेल को मिले मतों का मूल्य एक लाख ५३ हजार ३६ है।

उत्तर प्रदेश में डॉ० शर्मा को १२८ और श्री स्वेल को २८० मत पड़े।

संसद के १४ मत अवैध घोषित किये गये जिनका कुल मत मूल्य ९८२८ है। संसद से एक वोट धरती पकड़ को और दो वोट राम जेठमलानी को मिले। राज्यसभा के महासचिव सुदर्शन अग्रवाल ने परिणामों की अधिकृत घोषणा की।

पश्चिम बंगाल विधानसभा के सभी २९२ वोट डॉ० शर्मा को मिले। कांग्रेस (इ) के अनुमानो के अनुसार उन्हें ८७ वोट मिलना चाहिये था जबकि उन्हें १२८ मत मिले श्री स्वेल का समर्थन उत्तर प्रदेश के २८० विधायकों ने किया जबकि एक वोट श्री राम जेठमलानी को मिला और पांच वोट अवैध घोषित किये गये। वहाँ प्रत्येक विधायक के मत का मूल्य २०८ था।

श्री जेठमलानी को दो सांसदो के अलावा ९ राज्यो में एक और एक राज्य में दो वोट मिले। उन्हें प्राप्त १३ मतों का मूल्य २७०४ रहा जबकि धरती पकड़ को संसद के एक मत के अलावा तीन राज्यो मे एक-एक मत मिला उन्हें प्राप्त कुल चार मतों का मूल्य ११३५ रहा।

श्री जेठमलानी ने १३ जुलाई के मतदान के पूर्व स्केल के पक्ष मे चुनाव से हटने की घोषणा की थी।

मध्य प्रदेश की ३२० सदस्यीय विधानसभा मे प्रत्येक विधायक का मत मूल्य १३० था। इनमें से ९५ विधायको ने डॉ० शर्मा को तथा २३५ ने श्री स्वेल को वोट दिया। एक-एक वोट श्री धरती पकड़ और श्री राम जेठमलानी को मिले और सात मत अवैध घोपित किये गये।

बिहार मे डॉ० शर्मा को १२६ और श्री स्वेल को १७२ वोट मिले। धरती पकड़ भी एक वोट पाने में सफल हुए जबकि एक मत अवैध घोषित किया गया। बिहार में विधायको का मत मूल्य १७४ है।

राजस्थान मे डॉ० शर्मा को ८४ और श्री स्वेल को ११० वोट मिले। धरती पकड़ तथा राम जेठमलानी को भी एक-एक मत मिले तथा तीन मत अवैध घोषित हुए। वहाँ, विधायकों का मत मूल्य १२९ है।

डॉ० शकर दयाल शर्मा को आन्ध्र प्रदेश में २०४ और स्वेल को ७३ मत मिले जबकि वहाँ आठ मत अवैध पाये गये। प्रत्येक विधायक का मत मूल्य १४३ है।

असम में डॉ० शर्मा को ६९ और स्वेल को १९ मत मिले। श्री राम जेठमलानी ने एक मत प्राप्त किया तथा पाँच मत अवैध घोषित किये गये।

गुजरात में डॉ० शर्मा को १०५ और श्री स्वेल को ६६ मत मिले। जेठमलानी को एक मत मिला तथा तीन मत अवैध घोषित हुए।

स्वेल को अपने पैतृक राज्य मेघालय मे २३ और डॉ० शर्मा को ३६ वोट मिले। वहाँ प्रत्येक विधायक का मत मूल्य १७ है।

केरल में डॉ० शर्मा को १३२ तथा स्वेल को २ वोट मिले। पश्चिम बगाल के अलावा डॉ० शर्मा को अरुणाचल प्रदेश, सिक्कम तथा त्रिपुरा मे भी शत प्रतिशत वोट मिले। हिमाचल में डॉ० शर्मा को ,९ और स्वेल को ४६ मत मिले। कर्नाटक मे शर्मा को १९७ और श्री स्वेल को २२ मत मिले। महाराष्ट्र विधान सभा मे डॉ० शर्मा को १७५ और श्री स्वेल को ५३ वोट मिले। श्री जेठमलानी भी यहाँ से १ वोट ले गये। तमिलनाडु में डॉ० शर्मा २२८ और स्वेल पाँच वोट पा सके जबकि उडीसा में स्वेल को ११९ और डॉ० शर्मा को २३ वोट मिले।

पजाब में डॉ० शर्मा को ९७ और श्री स्वेल ने १५ वोट हासिल किये। मिजोरम मे श्री शर्मा को २६ और श्री स्वेल को १३ मत मिले। गोवा के ४० विधायकों मे से २७ ने डॉ० शर्मा को तथा ११ ने श्री स्वेल को वोट दिया। जेठमलानी को एक वोट मिला तथा एक वोट अवैध घोषित हुआ। यहाँ प्रत्येक विधायक का मत मूल्य २० है।

२५ जौलाई, १९९२ को प्रात ११ बजे डॉ० शकर दयाल शर्मा ने दुनिया के सबसे बडे लोकतन्त्र के नौवें राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण करने के बाद देशवासियो से सर्वधम सद्भाव के आदश सिद्धात के अनुरूप सभा धर्मों के मूल तत्व की आतरिक एकता को स्वीकार करने की अपील की।

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एम कानिया समकालीन इतिहास के साक्षी ससद भवन के केन्द्रीय कक्ष में एक गरिमापूण समारोह में सुबह ठीक सवा ग्यारह बजे डॉ० शकर दयाल शर्मा को पद व गोपनीयता की शपथ दिलायी तथा निवतमान राष्ट्रपति रामास्वामी वेंकटरामन द्वारा आसन बदलने के साथ ही उन्होने विधिवत् इस पद का दायित्व सभाल लिया।

समारोह में प्रधानमन्त्री उनके मन्त्रिमण्डल के सदस्य, लोकसभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल, राज्यसभा की उपसभापति डॉ० नजमा हेपतुल्ला, सशस्त्र सेनाओं की तीनों प्रमुख, राजनयिक मिशनो के प्रमुखो और विशिष्ट लोगो के अलावा मदर टेरमा और श्रीमती सोनिया गाधी भी उपस्थित थी।

डॉ० शर्मा के शपथ ग्रहण करते ही पूरा इलाका तोपों की गडगडाहट से गूँज उठा। राष्ट्रपति को २१ तोपों की सलामी दी गयी।

भोपाल में गुलिया दाई की गली से राष्ट्रपति भवन तक की डॉ० शर्मा की जीवन

यात्रा, स्वतन्त्रता संग्राम में उनकी विशिष्ट भूमिका तथा स्वाधीनता के बाद उच्च प्रशासनिक पदों के अपने दायित्वों के निर्वहण की प्रेरक जीवन गाथा है।

शपथ ग्रहण के तुरन्त बाद अपने भावपूर्ण सम्बोधन में डॉ० शर्मा ने अथर्ववेद गीता, अशोक के शिला लेखों, जैन, ईसाई, बौद्ध, और सिख धर्मों के अनेक उद्धहरणों के जरिये सर्वधर्म सद्‌भाव की भारतीय संस्कृति की व्याख्या की।

उन्होंने देशवासियों से धार्मिक सद्‌भावना कायम करने का आह्वान करते हुये कहा कि हमें गुरु गोविन्द सिंह द्वारा रचित उन पंक्तियों का अनुसरण करना चाहिये जिनमें मन्दिर और मस्जिद पूजा और नमाज तथा पुराण और कुरान में कोई फर्क नहीं कराया गया है।

डॉ० शर्मा ने कहा कि हमें अपनी आजादी और उस आजादी की उपलब्धियों की रक्षा करनी है। हमें यह याद रखना है कि समानता के बिना आजादी निरर्थक सी हो जाती है और सामाजिक और आर्थिक न्याय के बिना समानता का कोई अर्थ नहीं रहता।

राष्ट्रपति ने अपने भाषण में कहा कि सभी धर्मों के मूल तत्व की आंतरिक एकता को स्वीकार करना सभी नागरिकों के लिये आवश्यक है। इसकी आवश्यकता देश की प्रगति के लिये भी है। इसलिये भी यह जरूरी है कि भारत विश्व में आपसी साझेदारी, शांति और विकास में अपना योगदान कर सके।

डॉ० शर्मा ने पहले अपना भाषण अंग्रेजी में दिया। वह जब भाषण कर ही रहे थे तब श्रोताओं में किसी ने आवाज लगायी कि भाषण हिन्दी में करें। निर्धारित कार्य-क्रम के अनुसार राज्यसभा की उपसभापति डॉ० नजमा हेपतुल्ला को भाषण का हिन्दी अनुवाद पढना था लेकिन डॉ० शर्मा ने स्वयं ही बाद में इसका हिन्दी अनुवाद भी पढा।

शपथ ग्रहण समारोह समाप्ति के बाद एक जुलूस की शक्ल में उन्होंने निवर्तमान राष्ट्रपति रामा स्वामी वेंकटरामन के साथ केन्द्रीय कक्ष से प्रस्थान किया।

राष्ट्रपति भवन पहुँचने के बाद उन्होंने शपथ पुस्तिका पर हस्ताक्षर किये। इससे पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियों के भी इस पर हस्ताक्षर हैं। डा० शर्मा ने शपथ पुस्तिका पर हस्ताक्षर से पूर्व श्री वेंकटरामन से हाथ मिलाया। हस्ताक्षर के बाद राष्ट्रपति के सचिव श्री पी० मुरारी ने डॉ० शर्मा का अभिनन्दन किया। इसके पूर्व श्री वेंकटरामन और उनके उत्तराधिकारी डॉ० शर्मा को काफिले के साथ राष्ट्रपति भवन से परम्परागत ढंग से शपथ ग्रहण स्थल ले जाया गया।

संसद भवन के प्रवेश द्वार पर प्रधानमन्त्री पी० वी० नरसिंह राव, मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एम० एच० कानिया, लोकसभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल और राज्यसभा की उपसभापति डॉ० नजमा हेपुतुल्ला ने निवर्तमान और निर्वाचित राष्ट्रपतियों की अगवानी की।

विशिष्ट व्यक्तियों के केन्द्रीय कक्ष में पहुँचने पर वहाँ मौजूद लोगों में हलचल मच गयी। डॉ० शर्मा और श्री वेंकटरामन के धीरे-धीरे मंच की तरफ बढ़ते ही पूरा कक्ष बिगुल की ध्वनि से गूंज उठा।

प्रथम महिला श्रीमती विमला शर्मा पहली कतार मे बैठी थी। उनकी बगल में श्रीमती जानकी वेंकटरामन और श्रीमती सोनिया गांधी बैठी थी।

पूर्व राष्ट्रपति जैल सिंह, प्रधानमन्त्री पी० वी० नरसिंह राव और दो पूर्व प्रधानमन्त्रियो चन्द्रशेखर और विश्वनाथ प्रताप सिंह के साथ बैठे थे। कई राज्यो के राज्यपाल और मुख्यमन्त्रियो सहित अनेक गणमान्य लोग खचाखच भरे हाल मे मौजूद थे।

निवर्तमान राष्ट्रपति रामास्वामी वेंकटरामन, पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह और प्रधानमन्त्री पी० वी० नरसिंह राव समेत अनेक मुख्यमन्त्रियों व गणमान्य लोगो ने डॉ० शंकर दयाल शर्मा को देश का नौवां राष्ट्रपति निर्वाचित होने पर बधाई दी है।

राष्ट्रपति वेंकटरामन ने डॉ० शर्मा की राष्ट्रपति चुनाव मे जीत की घोषणा के तुरन्त बाद आज उन्हें पत्र भेजकर बधाई दी। राष्ट्रपति के विशेष दूत ने इस पत्र के साथ डॉ० शर्मा को गुलदस्ता भेंट किया।

प्रधानमन्त्री पी० वी० नरसिंह राव बधाई देने के लिए डॉ० शर्मा के निवास पर सबसे पहले पहुँचने वालों मे थे। राव जब डॉ० शर्मा के निवास पर गये तब डॉ० शर्मा और उनकी पत्नी विमला शर्मा ने उनकी आगवानी की और श्री राव की बधाई स्वीकार की। इस अवसर पर राव ने कहा कि देश को सही व सुयोग्य राष्ट्रपति मिला है। राज्यों के मुख्यमन्त्रियों तथा विभिन्न दलों के नेताओ ने नवनिर्वाचित राष्ट्रपति को बधाई दी।

अपने पुत्र के राष्ट्रपति चुने जाने पर उनकी माता सुभद्रा देवी फूली नही समा रही थीं। एक बीमार किशोर को दवा थमाते हुए वे अपने भरे पूरे परिवार के साथ उन लोगो के अभिवादन स्वीकार कर रही थी जो इस नगरी के लाडले सपूत की उच्चतम उपलब्धि पर उन्हे बधाई देने पहुँचे थे। वे बता रही थी कि बचपन मे डॉ० शर्मा सवेरे-सवेरे तालाब मे तैरने और कसरत करने के बाद दूध जलेबी और कचौरियों का जमकर नाश्ता किया करते थे।

उन्होंने कहा कि जब वे ऊंची पढ़ायी के लिये विदेश जाने लगे तो लोगो ने हमें रह रहकर डराने की कोशिशें की कि वे मैम ब्याह लायेंगे और मांस, मदिरा का सेवन करने लगेंगे मगर पूरे परिवार को भरोसा था कि ऐसा कुछ भी नहीं होगा और वे मन लगाकर पढ़ाई करते रहेंगे। हमारा भरोसा सही साबित हुआ।

श्रीमती सुभद्रा देवी ने बताया कि डाक्टर साहब की भगवान में गहरी आस्था है। वे हर दिन करीब तीन घण्टे पूजा पाठ करते हैं। यात्रा के समय पूजा की सामग्री साथ ले जाते हैं। मगर स्वभाव में कोई कट्टरता नहीं है।

उन्होंने बताया कि डाक्टर साहब ने अपनी पुत्री गीतांजलि और दामाद सांसद ललित माकन की कुछ समय पूर्व आतंकवादियों द्वारा दिल्ली में हत्या कर दिये जाने पर एक वर्ष तक अन्न ग्रहण नहीं किया वैसे भी वे लम्बे समय तक उपवास रखते रहते हैं।

राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा की पत्नी श्रीमती विमला शर्मा ने कहा कि ईश्वर की असीम कृपा से आज डॉ० शर्मा को देश के सर्वोच्च पद पर कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्रीमती शर्मा आज यहाँ अपने निवास पर संवाददाताओं से बातचीत कर रही थी। उन्होंने कहा कि ईश्वर मुझे भी इतनी शक्ति प्रदान करे कि मैं भी उनको पूरा सहयोग दे सकूं।

देश के नौवें राष्ट्रपति के रूप में डॉ० शंकर दयाल शर्मा के शपथ लेने पर उनके अपने गृह नगर भोपाल में लोगों ने दिन में ही दीवाली मनायी।

खासकर पुराने भोपाल में लोगो की खुशी देखते ही बनती थी गुलियादाई का वह महल्ला जहाँ डॉ० शर्मा का पैतृक निवास है चहल-पहल का केन्द्र था। वहाँ लोगों ने अपने घरों में दिन में ही रोशनी कर रखी थी। यही नजारा अन्य जगहों पर भी था।

सुबह से ही लोगों को दूरदर्शन पर शपथ ग्रहण समारोह का इन्तजार था जैसे-जैसे समारोह के प्रसारण का समय नजदीक आता गया घरो और बाजारों में टी० वी० सेटों के सामने लोगों की संख्या बढ़नी गयी। शपथ ग्रहण कार्यक्रम पूरा होते ही युवक नाचते गाते सड़कों पर निकल पड़े और अबीर गुलाल उड़ाकर तथा मिठाई बाँटकर खुशी का इजहार किया। राजधानी के कई स्कूलों में अवकाश घोषित कर दिया गया।

२५ जौलाई को नौवें राष्ट्रपति के पद पर आसीन होने के पश्चात् डॉ० शर्मा ने २७ जौलाई को तिरुपति पहुँचकर तिरुमाला पर्वतमाला में स्थित श्री वेंकटेश्वर मन्दिर में भगवान् वेंकटेश्वर की पूजा अर्चना की। डॉ० शर्मा ने पूजा से पहले अपना मुण्डन करवाया। उनके साथ उनकी पत्नी भी थी। राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा के आगमन पर मन्दिर की परम्पराओ के अनुकूल उनका स्वागत (महाद्वारम) पर किया गया। मन्दिर के पुजारियों और वैदिक पंडितों ने राष्ट्रपति को आशीर्वाद दिया। इससे पहले डॉ० शर्मा के तिरूपति आगमन पर राज्यपाल कृष्ण कांत, मुख्यमन्त्री ए. जनार्दन रेड्डी और वरिष्ठ अधिकारियो ने उनका हार्दिक स्वागत किया। डॉ० शर्मा ने रात तिरूमाला मे व्यतीत की और दूसरे दिन सुबह सत्यसाई बाबा के निवास पुन्तापटती गये। तिरूपति पहुँचने के तत्काल बाद राष्ट्रपति तिरगना पर्वत गये। जहाँ उन्होंने बालाजी के दर्शन किये। राष्ट्रपति बनने के बाद डॉ० शर्मा की यह पहली यात्रा थी।

इससे पूर्व डॉ० शर्मा का मद्रास पहुँचने पर गर्मजोशी से स्वागत किया गया। वे वायुसेना के एक विशेष विमान से तिरूपति जाते हुए थोड़ी देर के लिए मद्रास भी रूके थे। श्री शर्मा दम्पत्ति के स्वागत के लिए तमिलनाडु के राज्यपाल भीष्म-नारायण सिंह, मुख्यमन्त्री जय ललिता उनके मन्त्रिमण्डल के सदस्य व अन्य कई अधिकारी उपस्थित थे।

१ अगस्त, ९२ को दिल्ली में राष्ट्रपति डॉ० शर्मा ने प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के दरगाह पर चादर चढ़ाई राष्ट्रपति ने खड़ी बोली के प्रारम्भिक कवि अमीर खुसरो के मजार पर भी श्रद्धा सुमन अर्पित किये। डॉ० शर्मा दरगाह के प्रमुख पीर जामिन निजामी से भी मिले जिन्होंने उन्हे पवित्र कुरान की एक प्रति उसके अंग्रेजी अनुवाद के साथ भेंट की। दरगाह के अन्य पीरों ने भी उन्हें पगड़ी तथा प्रसाद भेंट किया।

भारतीय गणराज्य के नौवें राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा एक प्रखर न्याय-विद् और अनुभवी प्रशासक होने के साथ-साथ उन गिने-चुने राजनीतिज्ञों में से हैं जिनकी शालीनता के सभी कायल हैं। ७४ वर्षीय डॉ० शर्मा विधि और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। पिछले चालीस वर्षों से एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से उन्हें प्रशासन चलाने का व्यापक अनुभव रहा है। पिछले पांच वर्षों से इस महान् देश के उप-राष्ट्रपति के रूप में उन्होंने जो सेवायें की हैं वे सदैव स्मरणीय रहेंगी। पूर्व भोपाल राज्य के मुख्यमन्त्री, केन्द्र सरकार के संचार मन्त्री तथा आंध्र प्रदेश, पंजाब, और महाराष्ट्र में राज्यपाल के रूप में वे अपनी प्रशासनिक दक्षता का देश के आगे सबूत प्रस्तुत कर चुके हैं।

नौवें राष्ट्रपति डॉ० शर्मा से देश की जनता को बहुत कुछ आशायें हैं चमत्कार-पूर्ण समृद्धि की और केन्द्र सरकार के चमत्कारिक पथ प्रदर्शन की। क्योंकि नौका अंक अत्यन्त शुभ, पुण्य प्रद, अपराजेय एक एवं चमत्कारपूर्ण होता है।

२. २५वाँ ओलम्पिक खेल—९२

वर्तमान काल में खेलों का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। विश्व के लगभग सभी देशों में खेलों के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। विश्व शिक्षण पद्धतियों में खेल द्वारा शिक्षा के सिद्धान्त पर बल दिया गया है। खेल एक निरर्थक क्रिया न होकर बालक की एक महत्वपूर्ण एवं स्वाभाविक-प्रक्रिया है। सबसे पहले यूनानी विचारक प्लेटो ने खेल के महत्त्व को समझा था। लेकिन उसने खेल को शारीरिक विकास का साधन बताया था। इसके बाद फ्रोबेल नामक शिक्षा शास्त्री ने अपनी किण्डर गार्डन पद्धति का आधार-भूत सिद्धान्त 'खेल' रखा। उसका कहना था कि खेल बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, इसलिए इसका सम्बन्ध शिक्षा से जोड़ देना चाहिए, क्योंकि खेल ही खेल में बालक ऐसी शिक्षा ले सकता है, जो अन्य साधनों द्वारा प्राप्त करनी असम्भव है। श्री कुक ने खेल को सीखने का महत्वपूर्ण साधन बताया है। उनका कहना है कि बालक सीखने के लिए खेलता है। खेल में बालक की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ स्पष्ट, बलवती तथा आदर्श रूप में प्रकट होती हैं।

ओलम्पिक खेल

१ प्रस्तावना—खेलों का महत्त्व।
२ खेलों का संक्षिप्त इतिहास।
३ बार्सीलोना में ओलम्पिक खेल ९२।
  (क) उल्लास पूर्ण प्रारम्भ।
  (ख) वैभवपूर्ण समाप्ति।
४ ओलम्पिक खेल की पदक तालिका।
५ ओलम्पिक खेलों में भारत की स्थिति।
६ उपसंहार।

खेलों का इतिहास अति प्राचीन है। प्रागैतिहासिक काल से ही खेल मनुष्य के मनोरंजन का प्रमुख साधन रहे हैं। आधुनिक काल में तो खेलों का महत्त्व अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। आजकल विश्व भर में खेलों की अनेक प्रतियोगितायें होती हैं, जिनमें ओलम्पिक खेल, एशियाई खेल और राष्ट्र मण्डली खेल अन्तर्राष्ट्रीय खेल

प्रतियोगिताओ मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

ओलम्पिक खेलों का इतिहास काफी पुराना है। सर्वप्रथम यूनान के नगर राज्य एथेन्स में ७७६ ईसा पूर्व में ओलम्पिया पर्वत पर खेल-कूद की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया था। उसके बाद ६७ ई० तक पूर्व मे खेल एथेन्स मे ही हुए, परन्तु ३९४ ई० में आन्तरिक सघर्षो के कारण यूनान के सम्राट थ्योडोसियस ने इन खेल प्रतियोगिताओं को बन्द करवा दिया। इसके बाद फ्रांस के लार्ड बैरन पाइरे दि कुवरतीन ने आधुनिक खेल व प्रतियोगिताओ को पुनः प्रारम्भ करवाया सन् १८९६ ई० में प्रथम आधुनिक ओलम्पिक खेल प्रतियोगिता यूनान के नगर एथेन्स में आयोजित की गई। इसके बाद से प्रति चार वर्ष के बाद विश्व विभिन्न देशो के बड़े-बड़े नगरों में ओलम्पिक खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया है जो इस प्रकार है—

१. १८९६ में एथेन्स में, २. १९०० में पेरिस में, ३. १९०४ मे सेन्ट लुइस में, ४. १९०८ में लन्दन में, ५. १९१२ में स्टाक होम में, ६. १९१६ में बर्लिन में, (प्रथम विश्वयुद्ध के कारण रद्द), ७. १९२० मे एन्टवर्प में, ८. १९२४ में पेरिस में, ९. १९२८ में एम्सटर्डम मे, १०. १९३२ में लास एंजिल्स में, ११. १९३६ में बर्लिन में, १२. १९४० में टोकियो मे (द्वितीय विश्व युद्ध के कारण रद्द), १३. १९४४ में लन्दन में, (द्वितीय विश्व युद्ध के कारण रद्द), १४. १९४८ में लन्दन में, १५. १९५२ में हेलसिंकी में, १६. १९५६ में स्टाक होम और मेलबोर्न में (स्टाकहोम में केवल घुड़सवारी की प्रतियोगिता हुई थी), १७ १९६० में रोम में, १८. १९६४ में टोकियो में, १९. १९६८ में मेक्सिको सिटि में, २०. १९७ में म्यूनिख में, २१ १९७६ में मांट्रियल में, २२. १९८० में मांट्रियल मे, २३. १९८४ में लास एंजिल्स में, २४. १९८८ में सिओल में, २५. १९९२ मे बार्सीलोना मे तीर से मशाल जलते ही दुनिया के तीन महान् आपेरा गायकों के स्वरो के बीच दुनिया का सबसे बड़ा खेल मेला २५, जौलाई, १९९२ को शुरू हो गया।

ऐतिहासिक मोंटरजुइक स्टेडियम मे हुए उद्घाटन समारोह में पचास हजार दर्शक करीब चार घण्टे तक एक तरह से परियों की दुनिया में ही घूमते रहे। समारोह में हिस्सा ले रहे २०,५७३ लोगो ने स्टेडियम को किसी रोमांटिक फिल्म के सैट में तब्दील कर दिया। उद्घाटन समारोह की शुरुआत 'होला' यानी दोस्ती के संदेश के साथ हुयी। फूलो का एक गुलदस्ता स्टेडियम मे समूची दुनिया का स्वागत कर रहा था। पीटर मिनशेल के बनाये कपड़ो में सजे २८०० संस्कृतिकर्मियो ने मुस्कान बनायी जो बाद में बार्सीलोना खेलो के प्रतीक चिन्ह में तब्दील हो गयी। चिड़ियों के देवता ने २०० इन्सानी परिन्दों के साथ स्टेडियम में प्रवेश किया और यह काफिला गुलदस्ते की ओर बढ़ा। स्टेडियम में मौजूद ५६५०० दर्शको ने 'होला-होला' की आवाज से माहौल को सजा दिया। नृत्य गीत और संगीत के खुशरंग कार्यक्रम दर्शको के मन को मोह रहे थे। स्पेन के महाराजा जुआन कार्लोस ने महारानी सोफिया के साथ प्रेसिडेन्ट बाक्स में प्रवेश किया। उनका स्वागत अन्तर्राष्ट्रीय ओलम्पिक समिति (आई० ओ० सी०) के अध्यक्ष जुआन अन्तोनियो समारांच, बार्सीलोना के महापौर तथा खेलो की आयोजन कमेटी (सी० ओ० ओ० बी०) के प्रमुख पास्कल सारागल और अन्य लोगो ने किया। इसके बाद बार्सीलोना

कैटालोनिया और स्पेन के ध्वज फहराये गये। सफेद कपड़ों में सजी ६०० नर्तकियों ने कैटालोनिया का हजारों साल पुराना सारडाना नृत्य पेश किया। ओलम्पिक छल्ले बनाये गये औ डेढ़ हजार कबूतर आकाश की ओर उड चले। बिजली की कड़क के साथ स्टेड्स से उतरे ३०० ड्रम वादकों के साथ कैटालोनिया के २०० संगीतकार भी आ मिले। भूमध्य सागर के अथाह जल से बदले स्टेडियम में हकुलस अपने जलयान के साथ प्रकट हुआ। सागर के बीच लहरें उग्र होती हैं और जमीन की आकाश से लड़ायी शुरू हो गयी। एक विशाल भवर ने जलयान को अपनी चपेट में ले लिया। यह ओलम्पिक उद्‌घाटन समारोह की सबसे जीवंत प्रस्तुति थी। जलयान पर सवार लोग मदद के लिये शंख बजाकर देवताओं की गुहार लगाते हैं।

ओलम्पिक मार्च पास्ट में १६९ देशों के १२००० स्पर्धियों ने हिस्सा लिया। इतिहास के इस सबसे बड़े खेल आयोजन में कुल रिकार्ड २५ प्रतियोगितायें हो रही हैं। आई०ओ० सी० अध्यक्ष, सी० ओ० ओ० बी० के प्रमुख और स्पेन के महाराज के भाषणों के साथ ओलम्पिक का शुभारम्भ हुआ। स्पर्धाओं खेलों और देशों की संख्या के लिहाज से यह अब तक का सबसे बड़ा ओलम्पिक है। मार्च पास्ट में सबसे पहले यूनान और अन्त में मेज-बान स्पेन की टीम थी। शाइनी विल्सन के नेतृत्व में भारत के ६० सदस्यीय दल ने ७२वें नम्बर पर स्टेडियम में कदम रखा। भारत से पहले हंगरी और बाद में इण्डोनेशिया के दल थे। भारत की महिलाओं ने नीली साड़ी पहन रखी थी। पुरुषों ने आसमानी पैंट और गहरा नीला ब्लेजर पहना हुआ था। खेलों के गान के बीच स्पेन के छह ओलम्पिक ओल-म्पिक ध्वज लेकर आये। माइकिल थ्योडोरकिस के संगीत संयोजन में ओलम्पिक गान को स्वर एग्नीस ब्लेट्स ने दिया। इसके साथ ही ओलम्पिक ध्वज लहरा दिया गया। एक तीरंदाज ने अपने धनुष से अग्नि बाण छोड़कर ओलम्पिक अग्नि को प्रज्ज्वलित कर दिया। एंजीलनो वडलेमेंटी ने अपने संगीत से माहौल को बेहद भावुक बना दिया था। इतिहास में पहली बार ओलम्पिक अग्नि को तीर से दिप्त किया गया था। खेलों की शपथ ली गयी और ११४ मीटर लम्बाई वाला दोस्ती का विशाल ध्वज लहरा उठा। इस रोमांचक शुरुआत के बाद दिलों में कामयाबी की तमन्ना लिए एथलीट पदक जीतने के अपने सपनों में रंग भरने के मकसद से तैयार हो गये।

खट्टी मीठी यादों के साथ चार माला जुदाई का दिन सहसा आखिर आज आ ही गया। पन्द्रह दिन पहले दुनिया भर से करीब दस हजार खिलाड़ी जब आये थे तो सबके चेहरे पर लाली थी पर आज सबके चेहरे जुदाई के रंजोगम में मुरझाये हुए थे। एक विकलांग तीरंदाज के तीर से जली ओलम्पिक ज्योति के बुझते ही मानो पूरे स्पेन में अंधेरा छा गया। स्वयं स्पेन के सम्राट जुआन कार्लोस भी आँखों ही आँखों रो पड़े। पूरा स्पेन उमड़ आया था आज इस खेल महाकुम्भ को अश्रुपूरित विदाई देने और कहने अमेरिका से कि अटलांटा, मैं अपने मेहमानों का ऐसा ही शानदार स्वागत करना जैसे हमने किया था और फिर ओलम्पिक झण्डा उतरते ही सब मौन हो गये वैसे ही जैसे शोक सभा में होते हैं। विदा लो, प्यारे कोबी न की एक चमचमाती नौका में आकर और अपने नवीन दोस्त अटलांटा से हाथ भी मिलाया तब अटलांटा बोला—'तुम्हारा

स्वागत है कोबी। चार साल बाद मेरे यहाँ आओगे तो.......तो जाने का नाम ही न लोगे'। कोब्री के सिर हिलाते ही समारांच ने घोषणा कर दी—इस महाकुम्भ के समापन कीव अगले महाकुम्भ में आमन्त्रण की।

ओलम्पिक का आखिरी दिन आज बिजली की कड़क,-आंधी और बरसात के बीच शुरू हुआ। लगता था समापन समारोह इस बार फीका रहेगा लेकिन समारोह शुरू होने के कुछ देर पहले मौसम ने मेहरबानी की और सूरज की किरणों ने आसमान से झांककर बार्सिलोना ओलम्पिक के समापन समारोह की अगवानी की।

आयोजकों ने शान्तिपूर्ण ढंग से इस ओलम्पिक को सम्पन्न कराने में सन्तोष व्यक्त किया। उन्होंने इसे जबरदस्त वित्तीय सफलता वाला ओलम्पिक बताया है जिसमें उपेक्षित ६० लाख डालर का लाभ अर्जित किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय ओलम्पिक समिति के अध्यक्ष जुआन अन्तोनियो समोरांच ने बार्सिलोना खेलों के समापन की घोषणा की और दुनिया के सभी देशों के खिलाड़ियों को चार वर्ष बाद अमेरिका के एटलान्टा शहर में होने वाले छब्बीसवें ओलम्पिक में फिर एकत्रित होने का आमन्त्रण दिया। इसी के साथ पिछली २५ जुलाई को एक सिद्धहस्त विकलांग तीरंदाज की प्रत्यंचा से छूटे तीर से प्रज्जवलित ज्योतिस्तम्भ का आलोक बुझ गया जिसके प्रकाश में यह खेल खेले गये, नये कीर्तिमान स्थापित हुए, कुछ पुराने, टूटे और विश्व बन्धुत्व का सन्देश चतुर्दिक फैला। बार्सिलोना ओलम्पिक खेलों का विदा वाक्य 'जीवन भर के लिये मित्र' ही था।

लगातार तीसरी बार भारतीय दल ने ओलम्पिक खेलो में खाली हाथ लौटकर असफलता की निकड़ी का नया कीर्तिमान स्थापित किया। ८० करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले देश के खिलाड़ियों के बार्सिलोना ओलम्पिक खेलों मे किये गये पदक विहीन प्रदर्शन के विरोध में लाखों खेल प्रेमियो की भावनाओं को ठेस पहुँचायी है। ओलम्पिक खेलों में अधिकारियों और खिलाड़ियों के अस्सी सदस्यीय दल ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। भारतीय खिलाड़ी १२ स्पर्धाओं में भाग लेने के बावजूद एक में भी अपनी उपस्थिति का एहसास नही करा पाये। भारतीय दल १९८४, १९८८ और अब १९९२ ओलम्पिक खेलो में जैसे रीते हाथों गया था, वैसे ही लौट आया था। हालाकि ९२ के खेलों में लिम्बाराम और हाकी टीम से भारत को कुछ आशाएँ जरूर थीं, लेकिन यह आशाएँ पूरी नही हो पायी। वैसे भारत को पिछले ४० वर्षों से हाकी के अलावा किसी अन्य स्पर्धा में, कभी कोई पदक नही मिला। अपवाद के तौर पर १९५२ के ओलम्पिक खेलों का नाम दिया सकता है, जब भारत के के० सी० जाधव ने कुश्ती में एक पदक जीतकर ओलम्पिक इतिहास में अपना नाम दर्ज कराया था।

हाकी में भारत का अतीत का स्वर्णिम प्रदर्शन सिर्फ इतिहास के पन्नों में ही दर्ज होकर रह गया है। अब उसे अपनी पहचान बनाना तो दूरक्वालीफाई करने के लाले पड़ गये हैं। भारत की इस बार हाकी में हुई दुर्गती ने उसकी सारी तैयारी और अजलन शाह टूर्नामेंट ओलम्पिक क्वालिफाइंग दौर और यूरोप दौरे की सफलता का नशा उतार कर रख दिया है। प्रमुख प्रशिक्षक बालकिशन सिंह की 'टोटल हाकी' की अवधारणा ओलम्पिक में

ओलम्पिक खेलों के अन्तिम दिन पदक जीतने वाले ६४ विभिन्न देशों की स्थिति इस प्रकार रही—

देश	स्वर्ण	रजत	कांस्य	कुल	देश	स्वर्ण	रजत	कांस्य	कुल
राष्ट्रकुल टीम	४५	३८	२८	१११	इथोपिया	१	०	२	३
अमेरिका	३७	३४	३७	१०८	अल्जीरिया	१	०	१	२
जर्मनी	३३	२१	२७	८१	एस्तोनिया	१	०	१	२
चीन	१६	२२	१६	५४	लियुआनिया	१	०	१	२
क्यूबा	१४	६	११	३१	स्विट्जरलैण्ड	१	०	०	१
स्पेन	१३	६	२	२१	जमैका	०	३	१	४
हंगरी	११	१२	७	३०	नाइजीरिया	०	३	१	४
द० कोरिया	११	५	१२	२८	लातोविया	०	२	१	३
फ्रांस	८	५	१६	२९	आस्ट्रिया	०	२	०	२
आस्ट्रेलिया	७	९	११	२७	नामीबिया	०	२	०	२
कनाडा	६	५	७	१८	द० अफ्रीका	०	२	०	२
इटली	५	५	८	१८	बेल्जियम	०	१	२	३
ब्रिटेन	५	३	१२	२०	क्रोशिया	०	१	२	३
रोमानिया	४	६	८	१८	युगोस्लाविया	०	१	२	३
चेकोस्लोवाकिया	४	२	१	७	ईरान	०	१	२	३
उत्तरी कोरिया	४	०	५	९	इजरायल	०	१	१	२
जापान	३	७	११	२१	चीन ताइपेयी	०	१	०	१
बुलगारिया	३	७	६	१६	मैक्सिको	०	१	०	१
पोलैण्ड	३	६	९	१८	पेरु	०	१	०	१
नीदरलैण्ड	२	६	७	१५	मंगोलिया	०	०	२	२
कीनिया	२	४	२	८	स्लोवेनिया	०	०	२	२
नार्वे	२	४	१	७	अर्जेंटीना	०	०	१	१
तुर्की	२	२	२	६	बहमास	०	०	१	१
इण्डोनेशिया	२	२	१	५	कोलम्बिया	०	०	१	१
ब्राजील	२	१	०	३	घाना	०	०	१	१
यूनान	२	०	०	२	मलेशिया	०	०	१	१
स्वीडन	१	७	४	१२	पाकिस्तान	०	०	१	१
न्यूजीलैण्ड	१	४	५	१०	फिलीपींस	०	०	१	१
फिनलैण्ड	१	२	२	५	पुएर्टो रिको	०	०	१	१
डेनमार्क	१	१	४	६	कतार	०	०	१	१
मोरक्को	१	१	१	३	सूरीनाम	०	०	१	१
आयरलैण्ड	१	१	०	२	थाईलैण्ड	०	०	१	१
					कुल	२५७	२५६	२९६	८०९

भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान तथा अन्तरिक्ष आयोग का मुख्यालय बंगलौर में स्थित है। भारत का अन्तरिक्ष अभियान सन् १९६३ में श्री विक्रम सारा भाई के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। भारतीय वैज्ञानिकों और इन्जीनियरो के अथक परिश्रम और विलक्षण कार्य कुशलता के कारण भारत अन्तरिक्ष क्षेत्र में निरन्तर महत्वपूर्ण एवं अद्वितीय उपलब्धियाँ प्राप्त करता रहा है। भारत ने अब तक आर्यभट्ट १८ अप्रैल, १९७५, भास्कर प्रथम (७ जून, १९७९), रोहिणी आर० एस०-११ (१९ जुलाई १९८०), एप्पल (जून १९८१), भास्कर द्वितीय (२० नवम्बर १९८१), इन्सेट प्रथम-ए (१० अप्रैल १९८२), इन्सेट प्रथम-बी (३० अगस्त १९८३), भारत-सोवियत सयुक्त अन्तरिक्ष उड़ान (३ अप्रैल, १९८४), रोहिणी डी-२ (१७ अप्रैल १९८३), नामक उपग्रह अन्तरिक्ष में भेजकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान और उच्चकोटि का गौरव प्राप्त किया है। वास्तव में यदि निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से विवेचना की जाये तो प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का युग गगन-चुम्बी कीर्तिमानो का युग था। भारतीय वैज्ञानिको को श्रीमती गाँधी की सत्प्रेरणाओं, प्रशंसा और पुरस्कारों में अनेकानेक महत्त्वपूर्ण कीर्तिमान स्थापित किये चाहे वे विज्ञान के क्षेत्र में हों या युद्ध के क्षेत्र में, या साम्प्रदायिक एकता के क्षेत्र में या विश्व कूट-नीति के क्षेत्र में।

अन्तरिक्ष अनुसन्धान की इन्ही सफलताओं की श्रृंखलाओ में १० जौलाई, १९९२ की भारतीय वैज्ञानिको ने एक और महत्त्वपूर्ण कड़ी जोड़ दी जबकि भारत में निर्मित पहिले बहुउद्देशीय उपग्रह इन्सेट-२ ए को भारतीय समय के अनुसार प्रातः चार बजकर दस मिनट पर यूरोप के सबसे शक्तिशाली राकेट एरियन-४ के द्वारा गयाना अन्तरिक्ष केन्द्र से सफलतापूर्वक अन्तरिक्ष में छोड़ा गया। कर्नाटक में बेंगलूर और हसन स्थित अन्तरिक्ष केन्द्रों को उसी दिन उपग्रह के संकेत मिलने लगे। भारतीय अन्तरिक्ष आयोग के अध्यक्ष यू० आर० राव का कहना था कि उपग्रह बड़ी अच्छी तरह से काम कर रहा है।

उन्होने प्रक्षेपण के लिये एरियन स्पेस कम्पनी के योगदान की सराहना की और प्रक्षेपण को वेहद सफल बताया। मिशन नियन्त्रण कक्ष में उपस्थित व्यक्तियो ने हर्ष-ध्वनि के साथ प्रो० राव की घोषणा का स्वागत किया। एरियन स्पेस के अध्यक्ष चार्ल्स बिगोट से-अभियान पूरा होने की सूचना के बाद प्रो० राव ने बताया कि भारत में निर्मित यह पहला उपग्रह है और इसका सफल प्रक्षेपण निश्चित रूप से एक महान् उपलब्धि है। उन्होने बताया कि उपग्रह को भूस्थिर कक्ष में स्थापित करने और उसे चालू हालत में लाने का महत्त्वपूर्ण काम शुरू हो चुका है जो अगले १५ दिन में पूरा हो जायेगा।

१९०६ किलोग्राम वजन का उपग्रह 'इन्सेट-दो ए' भारतीय अनुसन्धान केन्द्र (इसरो) द्वारा अब तक बनाये गये १४ उपग्रहों में सबसे अधिक वजनी है। उपग्रह को जिस दीर्घ वृत्ताकार कक्ष में स्थापित किया गया है उसकी पृथ्वी से न्यूनतम दूरी १९८ किलोमीटर और अधिकतम दूरी ३५८१२ किलोमीटर होगी। यह प्रक्षेपण 'इसरो' के तीन दशक के अन्तरिक्ष कार्यक्रम में एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर सिद्ध होगा क्योंकि उपग्रह के सफल प्रक्षेपण के साथ ही आयातित उपग्रहों पर भारत की निर्भरता समाप्त हो गई और स्वदेशी सचार उपग्रहों के निर्माण के एक नये युग का सूत्रपात हुआ है।

१९९२—"इन्सेट २—ए"

'इन्सेट एक श्रृंखला के सभी चार उपग्रह अमेरिका से खरीदे गये थे। इस अभियान की तैयारी में एक महीने का समय लगा और अभियान पूरा होने में २६ मिनट लगे। राकेट की तेज गड़गड़ाहट से गूंजते कमरों में कुछ ही देर बाद शैम्पेन की बोतलें खुलने और एक दूसरे को बधाइयाँ देने का सिलसिला शुरू हो गया।

एरियन स्पेस का अभियान पूरा होते ही 'इसरो' का काम शुरू हो गया। 'इसरो' इन्सेट दो-ए को भू-स्थिर कक्ष में संचालित करने और ७४ डिग्री (पूर्व) देशान्तर में स्थापित करने का कार्य करेगा। उपग्रह को कक्ष में भेजने का काम जिस खूबी से पूरा हुआ है उससे यह आशा बलवती हो गई है कि इसरो बिना अधिक परेशानी के अपने काम पूरे कर लेगा।

राकेट से अलग होने के बाद सबसे पहले सी० एस० जी० रेडारों ने उपग्रह के संकेत ग्रहण किये उसके बाद वह कर्नाटक में हासन स्थित 'इसरो' के मुख्य नियन्त्रण केन्द्र की रेडियो परिधि में आया। हासन केन्द्र ने प्रक्षेपण के २८ मिनट ४५ सैकिण्ड बाद संकेत ग्रहण किये जबकि बेंगलूर केन्द्र को इसके एक मिनट बाद संकेत मिले।

प्रो० राव ने बताया कि उपग्रह पर चार करोड़ डालर की लागत आई जो विश्व बाजार में इसी तरह के उपग्रहों की कीमत का लगभग एक तिहाई है। इन्सेट-दो ए नौ वर्ष तक काम कर सकेगा। इस दौरान यह पहले से कक्ष में स्थापित इन्सेट एक-डी और अगले वर्ष छोड़े जाने वाले इन्सेट दो-बी के साथ मिलकर काम करेगा।

प्रक्षेपण के कुछ घण्टे पहिले तूफान आने की आशंका थी लेकिन प्रक्षेपण के समय हवा शान्त और आसमान साफ था। राकेट हजारों जेट इंजनों की गड़गड़ाहट के साथ शानदार ढंग से रवाना हुआ और देखते ही देखते आकाश में गुम हो गया। ४८० टन के विशाल राकेट को चार द्रव ब्यूस्टरों ने सुचारू ढंग से रवाना किया। उड़ान के साढ़े चार सैकिण्ड बाद अभियान के निदेशक पवेश गुएरिन ने सफल प्रक्षेपण का ऐलान किया तो नियन्त्रण कक्ष में मौजूद लोगों और पत्रकारों में खुशी की लहर दौड़ गई।

५८ मीटर ऊँचा चाँदी सा चमकता अरियन राकेट दूर से नीले अटलांटिक से निकलती एक विशाल पेंसिल सा दिखाई देता था। ध्वनि और प्रकाश को चौंधिया देने वाला नजारा पेश करते हुए राकेट पीली और नारंगी रंग की लपेटों के रूप में हजारों सूर्यों के बराबर उजाला छोड़ते हुए आकाश की ओर रवाना हो गया।

इन्सेट—२ ए के सफल प्रक्षेपण पर १० जौलाई, ९२ (उसी दिन) लोक सभा में वैज्ञानिकों तथा इस कार्यक्रम से सम्बद्ध अन्य लोगों को बधाई दी गई। अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने सदन को सूचित किया कि उपग्रह इन्सेट-२ ए का आज कोउरो (फ्रांस) से सफलतापूर्वक प्रक्षेपण किया गया। लोक सभा सदस्यों ने इस घोषणा का मेजें थपथपाकर स्वागत किया।

भारत के प्रधानमन्त्री श्री पी० वी० नरसिंहा राव ने इन्सेट-दो ए और संबंधित उपग्रह प्रक्षेपण यान ए० एस० एल० वी० के सफल प्रक्षेपण को भारत के शान्तिपूर्ण अन्तरिक्ष कार्यक्रम के इतिहास में मील का पत्थर बताया। प्रधानमन्त्री ने अपने सन्देश में भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन एवं अन्तरिक्ष विभाग के सभी वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को इस सफलता पर हार्दिक बधाई दी।

१२ अगस्त १९९२ को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी राज्य मन्त्री श्री पी० आर० कुमार मंगलम ने संसद मे बताया कि पूरी तरह देश में निर्मित इन्सेट-दो ए उपग्रह की सभी प्रणालियों ने दोष रहित ढंग से कार्य करना शुरू कर दिया है। उन्होंने बताया कि इसके प्रसारण चैनलों को चालू करने का काम ६ अगस्त, ९२ को शुरू किया गया था। और धीरे-धीरे ५ दिनों में इसके सभी चैनलों ने काम करना शुरू कर दिया। इससे 'अरब सैट' के आठ प्रसारण चैनलों की लीज पर सेवाओं को भी इसे स्थानान्तरित कर दिया गया है। लोक सभा सदस्यों ने मेजें थपथपाकर भारतीय वैज्ञानिकों की इस सफलता का स्वागत किया।

हमें आशा करनी चाहिए कि भविष्य में भारत के वैज्ञानिक अन्तरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्रों में इस उपलब्धि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त कर देश को गौरव के शिखर पर आसीन करने मे कोई कोर-कसर उठाकर नही रखेंगे जिससे भारत की जनता का कल्याण होगा, विकास होगा। ●

४. सोवियत संघ का पतन—१९९१

इक लख पूत सवा लख नाती,
ता रावण घर दिया न बाती।

ईश्वर की कैसी विडम्बना है कि जिनकी घोषणा की गर्जनाओं से संसार भयभीत हो उठता था, जिनका संकेत मात्र त्रस्तों और दुर्बलों को आश्रय और जीवन सम्बल प्रदान कर सकता था, जिनका आर्थिक वरहस्त विश्व के विकासशील देशों के दैन्य को दूर करने में समर्थ था, जिसका कृपा-कटाक्ष अभय दान देने में सक्षम था, कौन जानता था कि वह एक दिन जर्जर और शक्तिहीन राष्ट्र हो जायेगा और सहायता के लिए अमेरिका की ओर उन्मुख हो उठेगा। इस परिप्रेक्ष्य में कबीर की ऊपर लिखी पंक्तियाँ कितनी सत्य हैं यह कहने की आवश्यकता नही है। जिस रावण के एक लाख पुत्र थे, सवा लाख नाती थे उस रावण के यहाँ आज दिया जलाने वाला भी कोई नहीं, इसी को शक्ति की क्षणभंगुरता कहते हैं। इसी अवश्यम्भावी परिवर्तन को कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने निम्न पंक्तियों में कितना सुन्दर स्पष्ट किया है—

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल
भूतियों का दिगन्त छविजाल
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल
× ×
विपुल मणि-रत्नों का छवि-जाल
इन्द्रधनु की सी छटा विशाल
विभव की विद्युत् ज्वाला
चमक, छिप जाती है तत्काल।

यही परिवर्तन की तीव्र बिजली महाशक्तिशाली सोवियत संघ और उसके क्रान्ति दूत राष्ट्रपति गोर्वाच्योव पर पड़ी और एक दशक से चली आ रही उनकी विश्व प्रतिष्ठा धूलि धूसरित हो उठी। और वह स्थिति आ गई कि—

गैरों ने पढ़ी मेरे जनाज़े की नमाज,
जो अपने थे, वे वजू करते रह गये।

सोवियत संघ के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में समृद्धि एवं विकास लाने के लिये 'प्रेस्टोरिका' एवं 'ग्लासनोस्ट' अर्थात् गोपनीयता की समाप्ति एवं स्पष्ट और शासन को अप्रछन्न नीतियों के द्वारा राष्ट्रपति गोर्वाच्योव ने रूस सरकार की प्रशासन एवम् उदारवादी नयी प्रणालियों की घोषणा कर दी। राष्ट्रपति गोर्वाच्योव को आशा थी कि वे पूर्वीय योरुप में और अपने देश में एक महान् क्रान्ति ला रहे हैं। प्रारम्भ में इन सिद्धान्तों और सुधारों का लेनिनवाद और स्टालिनवाद के प्राचीन सिद्धान्तों में परिवर्तन लाने के लिए उत्सुक जनता द्वारा स्वागत किया गया। समस्त पूर्वीय योरुप में लाये गये आर्थिक, सामाजिक एवं जातीय परिवर्तनों से प्रभावित होकर समस्त विश्व ने राष्ट्रपति गोर्वाच्योव की दूरदर्शिता और महानता की प्रशंसा की। परन्तु बहुत से लोगों को यह भी सन्देह था कि गोर्वाचोव इन परिवर्तनों के फलस्वरूप होनेवाली घटनाओं को रोक पायेंगे भी या नहीं। फिर भी, दूरगामी प्रभाव और महत्त्व वाले प्रजातान्त्रिक सुधारों को रूस में लागू कर दिया गया और सोवियत साम्राज्य फिर भी ठीक प्रकार से चलता रहा और राष्ट्रपति गोर्वाच्योव उतने ही शक्तिशाली बने रहे जितने पहले थे। उनकी लोकप्रियता में भी कोई कमी नहीं आई।

हर जाति और हर रंग के कम्युनिस्ट पूर्वी योरुप भिन्न-भिन्न भागों के चुनाव में कूद पड़े। एक पार्टी के शासन के विरुद्ध तथा बहुदलीय प्रजातन्त्र के पक्ष में मतदान करके यह सिद्ध कर दिया कि एक पार्टी का शासन जनता में लोकप्रिय नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समय कई तत्कालिक सुधार लागू किये गये परिणामस्वरूप देश में दंगे और झगड़े भड़क उठे, रक्त-पात होने लगा। श्री गोर्वाच्योव दूरदर्शी नेता थे उन्होंने अपने 'प्रेस्टोरिका' के सिद्धान्त और विचारों द्वारा अपने समस्त सुधारों को एक दार्शनिक आधार प्रदान किया। परिणामस्वरूप सोवियत संघ के राजनैतिक ढाँचे में एक बड़ा परिवर्तन किया गया। श्री गोर्वाच्योव अपने चिरवांछित सुधारों को आगे बढ़ाते गये। इस प्रकार उन्होंने कन्जर्वेटिव जनता तथा उनकी पार्टी पर विजय प्राप्त की।

सोवियत संघ गम्भीर आर्थिक कठिनाइयों में फँस गया और जनता में भुखमरी फैलने लगी। यह स्पष्ट था कि शीतऋतु के आते-आते जबकि सारा देश बर्फ से ढक जाता है, देश को अपराजेय कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। किसी तरह, राष्ट्रपति गोर्वाच्योव ने अपने 'ग्लासनोस्ट' के सिद्धान्त से बहुत कुछ सीमा तक आर्थिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर ली। "ग्लासनोस्ट" या दार्शनिकता की खुली विचारधारा के परिणामस्वरूप गोर्वाच्योव को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महान् सफलता मिली। इनकी विदेश नीति ने इन्हें पश्चिमी योरोप और अमेरिका में एक दृढ़ संकल्प एवं दृढ़ स्थिति वाला नेता माना गया। इनका नारा था "योरोप हमारा मिला-जुला घर है।" अमेरिका से इनकी नई मित्रता ने इन्हें सोवियत बुद्धि-जीवी समाज में और बलशाली स्थान परिवर्तित लोगों के बीच लोकप्रिय बना दिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे सेना में खलबली मची और शनैः शनैः मनोवैज्ञानिक यह कुण्ठा बढ़ती गई कि 'सोवियत संघ विश्व में एक महाशक्ति है हम इस गौरवपूर्ण स्थान को विश्व की दृष्टि में खोते जा रहे हैं।' परन्तु इस विचारधारा ने सोवियत आर्थिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव डाला।

राष्ट्रपति बुश के साथ हुआ "सम्मिट सम्मेलन" भी पर्याप्त सीमाओं तक सफल रहा। बरसों से पड़ा पर्दा हटा और सोवियत रूस पश्चिमी प्रभाव के समक्ष खुलकर सामने आया। उसने पश्चिम की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया। परिणामस्वरूप उसने "कोल्डवॉर" युग को समाप्त किया और हथियारों पर प्रतिबन्ध लगाया। साथ ही मध्य यूरोप में पड़ी सेनाओं को रोका तथा सेनाओं में कमी की घोषणा की। नाटो (NATO) को सम्बोधित करने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया गया और वह व्यापार संधि कर, जो कि उनकी आन्तरिक इच्छा थी, अमेरिका से लौटे। अमेरिका के राष्ट्रपति बुश और उनके दाएँ हाथ सहयोगियों, विशेष रूप से जेम्स बेकर महोदय, जोकि देश के सचिव हैं ने गोर्वाच्योव को "एक दूरदर्शी व्यक्ति बताया जिसमें कि अभूतपूर्व साहस है और जो समस्त संसार की सहायता प्राप्त करने योग्य है।" उन्होंने अनुभव किया कि गोर्वाच्योव में लचक है, उत्तरदायित्व है, वो हठीले नहीं है और अपने पूर्वाधिकारियों की तरह अनावश्यक कठोर नहीं हैं। इसलिए जितनी सम्भव थी उतनी उन्होंने सोवियत संघ की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए संधियाँ कीं।

"कोल्ड वॉर" युग की समाप्ति हुई और परिणामस्वरूप महाशक्तियों में संधि हुई और १९९० इतिहास संधियों का वर्ष माना गया। विभिन्न संधियों जोकि बलशाली देशों के बीच हुई, में ये देखा गया :—

(i) उच्च स्तरीय वार्तालापों द्वारा मास्को में रासायनिक शस्त्रों में इकरारनामा हुआ।

(ii) सशस्त्र सेनाओं की कमी और परम्परागत हथियारों; जोकि यूरोप में स्थित थे, पर संधियाँ हुई और हस्ताक्षर हुए। तदोपरान्त यूरोप में स्थित न्यूक्लियर शस्त्रों में रुकाव पर इकरारनामा हुआ। दोनों महाशक्तियों में संधियाँ हुई कि न्यूक्लियर शस्त्रों पर रोकथाम लगाई जाए और उन्हें नष्ट कर दिया जाए। भविष्य में उन पर कोई परीक्षण न किया जाए? इस प्रकार दो महाशक्तियाँ एक साथ हो गईं एक नए युग का प्रारम्भ हुआ।

परन्तु सोवियत संघ के कुछ रूढिवादियों को गोर्वाच्योव की विशाल स्तर पर प्रशासनिक परिवर्तन एवं सुधार प्रणाली पसन्द नहीं आई। सैनिक आघात प्रारम्भ हो गये। अट्ठारह दिन पूर्व कम्युनिस्ट कट्टरपंथियों के विद्रोह के प्रयास से उत्पन्न उथल-पुथल की स्थिति के बाद राष्ट्रपति गोर्वाच्योव ने संसद् को भंग कर दिया और दस गणराज्यों के नेताओं को पूरी आजादी देने की घोषणा की। इस प्रकार सोवियत संघ का ७० वर्ष पुराना केन्द्रियकृत ढाँचा ५ सितम्बर, १९९१ को ध्वस्त हो गया, कुछ दिनों बाद राष्ट्रपति गोर्वाच्योव को तीन दिन के लिए कैद में डाल दिया गया।

राष्ट्रपति व उनकी पत्नी पर भयंकर मनोवैज्ञानिक घाव लगे। यह एक चमत्कार ही था कि वे बच गए और फिर सत्ता में आ गए। फिर बाल्टिक राज्यों ने विद्रोह का झण्डा उठा लिया औरअपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। फिर सोवियत संघ के अन्य प्रदेशों ने कोई न कोई कारण देकर, अपना असन्तोष व्यक्त करते हुए आजादी की दुहाई दी।

राष्ट्रपति गोर्वाच्योव ने पूरी कोशिश करते हुए देश को विभाजित होने से रोकना चाहा परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्हें बोरिस याल्टसिन जो कि रूस, के सबसे बलशाली राज्य, के राष्ट्रपति हैं, के रूप में एक प्रबल प्रतिद्वन्द्वी मिला। परिणामस्वरूप सोवियत साम्राज्य ग्यारह राज्यों में विभाजित हो गया। सोवियत संघ के स्थान पर स्वतन्त्र राज्यों के राष्ट्रमंडल का निर्माण हुआ। राष्ट्रपति गोर्वाच्योव को अपना पद खोकर रूस की राजनीति में एक छोटा-सा स्थान ग्रहण करना पड़ा। अब महाशक्ति के

स्थान पर कमजोर ग्यारह स्वतन्त्र राज्यों का राष्ट्रमण्डल है जो कि एक-दूसरे से लड रहे हैं। ससार की राजनीति में अपना स्थान खोकर अब यू० एस० एस० आर० पूरी तरह से विभाजित हो चुका है।

परिणामस्वरूप, अब ससार में एक ही महाशक्ति रह गई है और महाशक्तियो की प्रतिस्पर्धा अच्छे के लिए समाप्त हो गई। इससे ससार की राजनीति पर गहरा प्रभाव पडा है। विभिन्न देश दोनो में से किसी न किसी महाशक्ति के साथ थे। इससे ससार की गतिविधियों में स्थिरता थी और छोटे देश भी सुरक्षित थे क्योकि कोई न कोई महाशक्ति उनके साथ थी। अब ऐसी स्थिरता नहीं है और नए सशोधन लाने पडेंगे। खाडी युद्ध से ये स्पष्ट हो चुका है कि राष्ट्रीय रक्षक उपाय करने पडेंगे क्योकि अमरिका के एक छत्र प्रभुत्व को ससार की गतिविधियो से मिटाना है।

अब तक सोवियत सघ के रूप मे भारत को एक सच्चा और शक्तिशाली मित्र मिला हुआ था जिसके साथ उसने शाति और मित्रता की कई सधियाँ की थीं। लेकिन अब उसे विभिन्न सोवियत राज्यो से, जो कि आपस में लड रहे हैं, अलग-अलग सधियाँ करनी पडेंगी। गुटनिरपेक्ष गतिविधि अब सिर्फ विकासशील देशो के काम आ सकती है पर उन्हें एक महाशक्ति के प्रभुत्व से जो कि समस्त विश्व की राजनीति पर छाई हुई है नहीं रोक सकती। भारत को अपनी सुरक्षा के लिए क्षेत्रीय रक्षा के उपाय सोचने चाहिये।

और साथ ही साथ रक्षा के उपायो पर भी विचार करना चाहिये। आस-पास के अन्य छोटे देशो की राजनैतिक और आर्थिक दबावों को भी रोकना है और ये तभी रोका जा सकता है जब क्षेत्र के विभिन्न राज्यो मे दृढ सामजस्य हो। भारत को अपनी न्यूक्लियर आवश्यकताओं को फिर से देखना है और अपनी विदेशी नीतियो को बदलना है। अमेरिका की तरफ उसकी विदेश नीति का झुकाव विदित है और यह सरकार की सूझ-बूझ दर्शाता है।

हम आशा करते हैं कि विश्व राजनीति में आवश्यक परिवतन आने वाले समय में दिखाई पडने लगेंगे।

५ विनाशकारी भूकम्प–१९९१

प्रकृति, मानव-ससार को जहाँ बहुत कुछ देती है वहाँ कभी-कभी बहुत कुछ ले भी लेती है। जहाँ वह जीवन देती है वहाँ मृत्यु भी देती है। मनुष्य के लिये जहाँ वह साधन और सुविधायें प्रदान करती है वहाँ वह कष्ट और कठोरता भी प्रदर्शित करती है। जहाँ वह विकास में अपना पूर्ण सहयोग देती है वहाँ कभी-कभी विनाश में भी कोई कमी नहीं उठा रखती। उत्थान और पतन उत्कर्ष और अपकर्ष, विकास और विनाश ये ही सृष्टि के शाश्वत नियम हैं। कभी अतिवृष्टि होना और कभी अनावृष्टि होना, कभी भूकम्प आना और कभी महामारी फैलना, कभी-कभी टिड्डियो का दल पूरे खेतों को साफ कर जाता है और देश दुर्भिक्ष-पीडित हो जाता है, ये सब दैवी आपदायें कहलाती है। विद्वानो ने सस्कृत ग्रन्थो में इनको 'ईति' कहा है ये अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि भेदों से छ प्रकार की होती हैं। तात्पय यह है कि जिसे देने का अधिकार है उसे लेने का भी अधिकार है अन्तर इतना ही है कि लेते समय हमें हर्ष का अनुभव होता है और देते समय विषाद की गहन अनुभूति होती है।

१ प्रस्तावना।
२ भूकम्प के विनाश।
३ सहायता कार्य।
४ उपसहार।

२० अक्टूबर, १९९१ की उस काल रात्रि का वह अन्तिम प्रहार, जबकि उत्तर भारत का जन-मानस प्रगाढ़ निद्रा में डूबा हुआ था, इतिहास के पृष्ठों में कभी नहीं भुलाया जा सकता। जो सो रहे उनको सोते-सोते ही मृत्यु ने अपनी शरण में ले लिया। भवनों, प्रासादों और छोटे-छोटे घरों की छतों और दीवालों ने उन पर गिर कर अन्तिम वस्त्र का कार्य किया। प्रतीत होता था कि इनकी मृत्यु पर कोई रोने वाला न होने के कारण घरों की दीवालें और छतें शवों की छाती पर अपना मस्तक रखकर अनन्त विलाप में विलीन हो रही हों। गढवाल मण्डल के उत्तरकाशी और चमोली जिलों में असीमित विनाश था, हजारों घर ऐसे थे जिनमें कोई बचा ही नहीं। जो थोड़े बहुत बचे भी थे वे भयानक चीत्कार कर रहे थे।

विनाशकारी भूकम्प से पहाड़ गिरने लगे, सैंकड़ों स्थानों पर भूस्खलन हुआ। उत्तरकाशी और भटवाड़ी के बीच भागीरथी नदी पर बने पुल ढह गये। भारी भूस्खलन से भागीरथी का बहाव रुक गया, उत्तरकाशी में बाढ की गम्भीर समस्या पैदा हो गई। गंगोत्री और केदारनाथ का मार्ग अवरुद्ध हो गया। रुद्र प्रयाग में यात्रियों के आवास धराशायी हो गये। कितने यात्री मृत्यु के मुख में चले गये कुछ का पता नहीं। मनेरी भाला विद्युत गृह को अपूरणीय क्षति पहुँची। रिक्टर पैमाने पर ६·१ माप की तीव्रता वाले इस भीषण भूकम्प में हजारों मकान, सड़कें, पुल व संचार व्यवस्था ध्वस्त हो गई। इस पर्वतीय क्षेत्र का सम्पर्क सूत्र भी टूट गया। चमोली जिले में पहाड़ गिरने और भूस्खलन से केदारनाथ और बद्रीनाथ क्षेत्रों में भारी तबाही मच गई। भूकम्प के तेज झटके पूरे गढ़वाल और कुमायूं मण्डल में महसूस किये गये। देहरादून, मसूरी, ऋषीकेश, पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, नैनीताल, टिहरी, श्रीनगर आदि सभी पर्वतीय क्षेत्रों में भूकम्प के तेज झटकों ने पलग, खिड़कियाँ, आलमारियाँ और घर में रखे अन्य सामान पृथ्वी पर लुढ़का दिये। बर्तन आपस में बज उठे। गृहस्वामी और महिलायें, और बाल वृद्ध घर छोड़-छोड़कर मैदानों में भाग उठे। संसार में अपने प्राणों से प्यारी कोई दूसरी वस्तु नहीं होती :—

"प्राणेभ्योऽप्यधिकं समस्त जगतां नास्त्येव किंचित् प्रियं"

बी० बी० सी० लन्दन ने विश्व में तुरन्त सूचना प्रसारित कर दी कि "भूकम्प में मरने वालों की संख्या तीन हजार से ऊपर पहुँच चुकी है एवं लगभग दस हजार लोग घायल हुए हैं।" भूकम्प से प्रभावित पाँच सौ गाँवों में साढे सात हजार मकान धराशायी हो गये। हजारों लोग जो बच गये थे बेघर हो गये, जो महिलायें बच गई थीं, अनाथ हो गई जो पुरुष बच गये थे वे भी अनाथ हो गये और जहाँ केवल बच्चे ही बचे वे भ्रातृ-विहीन, पितृ-विहीन और मातृ-विहीन हो गये थे। चीत्कार और विलाप का दृश्य देखे नहीं बनता था। बचे-खुचे लोगों ने अपने-अपने बिस्तर सड़कों पर लगा लिये थे।

२० अक्टूबर, १९९१ की रात के अन्तिम प्रहर में आये भूकम्प के विषय में वैज्ञानिकों का कहना है कि उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में जो भूकम्प आया उससे निकली ऊर्जा जापान के हिरोशिमा पर गिराये गये तीस अणु बमों से निकलने वाली ऊर्जा के समान थी। ४५ सैकिन्ड तक आये इस भूकम्प की तीव्रता रिक्टर पैमाने पर

६.१ थी जो कि ३३० किलो टन पर परमाणु विस्फोट के बराबर थी। विशेषज्ञों के अनुसार भूकम्प का मुख्य बिन्दु अल्मोड़ा से कोई बीस किलो मीटर नीचे पृथ्वी की गहराई में था। यह स्थान भारतीय प्लेट और तिब्बत प्लेट से लगाने वाले मुख्य सीमा फाल्ट पर है। मुख्य भूकम्प विशेषज्ञ डा० एस० एम० चटर्जी ने बताया कि बीस किलो मीटर गहराई वाले बिन्दु से उठे सतही भूकम्प माना जा सकता है। ऐसे भूकम्प से व्यापक नुकसान होता है जबकि कम गहराई वाले बिन्दु से अपेक्षाकृत कम नुकसान होता है।

विनाशलीला की भयानकता को देखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार ने युद्ध स्तर पर बचाव एवं राहत कार्य प्रारम्भ किया था। फंसे हुए लोगों का पता लगाने व राहत दलों को मौके पर पहुंचाने के लिये निरन्तर उड़ान भर रहे वायु सेना तथा प्रदेश सरकार के हेलीकोप्टरों के चालकों ने भारत तिब्बत सीमा के निकट दूरदराज के इलाकों में विदेशी पर्यटकों समेत सैंकड़ों लोगों को वहां फंसे हुए देखा। विमान चालकों के अनुसार बद्रीनाथ, केदारनाथ व चमोली के ऊपरी इलाकों में कई हजार लोग फंसे हुए हैं। भूकम्प से भूस्खलन के कारण भागीरथी के रुके हुए प्रवाह को भारत-तिब्बत सीमा पुलिस के जवानों ने विस्फोट करके उसे पुनः खोल दिया।

भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों के मौके पर अध्ययन के लिए २१ अक्टूबर को पहुँचकर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री कल्याणसिंह ने अधिकारियों को युद्धस्तर राहत कार्य शुरू करने के आदेश दिये। मुख्यमन्त्री कल्याणसिंह ने प्राकृतिक आपत्तियों पर दुःख व्यक्त करते हुए कहा कि 'भूकम्प पीड़ितों के लिए चिकित्सा एवं पुनर्वास के कार्य में धन की कमी को आड़े नहीं आने दिया जायगा। भूकम्प से हुए विनाश की घड़ी में हमारा सबसे पहला काम पीड़ितों को रोटी, चिकित्सा व कपड़ा आदि आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराना है, उन्होंने कहा किसी को भी दवा व भोजन के अभाव में मरने नहीं दिया जायेगा।" सरकारी सूत्रों ने विनाशकारी भूकम्प से १७५ करोड़ रुपये की क्षति का अनुमान लगाया था।

"जाको राखे साइयां, मार सके न कोय"

यह कहावत उस समय चरितार्थ हुई जब भारतीय स्टेट बैंक उत्तरकाशी का दुमंजिला भवन पूरी तरह गिर गया और उसकी दूसरी मंजिल पर रह रहे शाखा प्रबन्धक श्री० स्टीफन की पत्नी और पुत्री भी इसमें दब गए। [illegible] घंटों के बाद उन्हें मलबे से जिन्दा निकाल लिया गया था। मां और बेटी को मानो दोबारा जान आई थी। इसे 'जिन्दगी' चमत्कार ही कहा जा सकता है।

विनाशकारी भूकम्प से टिहरी बांध की बुनियाद भी हिल गई और पहाड़ियों में दरारें पड़ गईं। टिहरी बांध का मलबा बह कर गिरता रहा। सेना और स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा युद्ध स्तर पर सहायता कार्य में बहुत कुछ सम्भाला। सेना के हवाई जहाजों तथा हेलीकोप्टरों के अतिरिक्त खच्चरों से चिकित्सा एवं खाद्य सामग्री पहुँचाई गई। डाक्टरों के दलों को तत्काल पीड़ितों के उपचार के लिए भेजे। उत्तरकाशी के हुर्र गाँव में केवल ५ लोग ही जीवित बचे थे जबकि इस गाँव की जनसंख्या १२० थी।

२३ अक्टूबर को प्रधानमन्त्री श्री नरसिम्हा राव उत्तर काशी पहुँचे। उन्होंने भूकम्प से प्रभावित कुछ हिस्सों का दौरा किया तथा अस्पतालों में घायलों से भेंट कर उनके दुःख-दर्द दूर करने का आश्वासन दिया। उन्होंने इस क्षेत्र का हवाई सर्वेक्षण भी किया। प्रलयकारी भूकम्प की विभीषिका से प्रभावित लोगों को तत्काल सहायता देने के लिये प्रधानमन्त्री श्री राव ने प्रधानमन्त्री राहत कोष से मुख्यमन्त्री श्री कल्याणसिंह को ८० लाख रुपये दिये। प्रधानमन्त्री ने कहा कि केन्द्र सरकार राहत कार्यों में राज्य सरकार को भरपूर सहायता देगी।

प्रधानमन्त्री ने केन्द्र सरकार द्वारा उ० प्र० को ७० करोड़ रुपये की तात्कालिक मदद की घोषणा की। उधर थल सेना की एक फील्ड रेजीमेंट भूकम्प पीड़ित क्षेत्रों में २०० वाहनों में दवा, टेंट और राहत सामग्रियाँ लेकर भेज दी गईं। मलवे में दबे शव निरन्तर मिलते रहे और सैनिक उन्हें निकाल-निकाल कर गंगोत्री में बहाते रहे। उत्तर काशी से १२ किलोमीटर दूर मानपुर-जिन्दा और किशनपुर गाँवों में इस भूकम्प ने जो तबाही मचाई वह रोंगटे खड़े करने वाली थी। पूरे उत्तर काशी में शवों के सड़ने से वातावरण दूषित हो उठा था।

अच्छे और बुरे समय हर देश, हर समाज, और हर व्यक्ति पर आते हैं और चले जाते हैं। सुखद या दुःखद स्मृतियाँ ही मानव हृदय में या इतिहास के पृष्ठों पर शेष रह जाती हैं। गढ़वाल प्रखण्ड में और विशेष रूप से उत्तरकाशी और चमोली जिलों में भूकम्प के कारण सैकड़ों व्यक्तियों की जो मौतें और धन-जन की जो भारी हानि हुई वह राष्ट्रीय शोक का विषय होने के साथ-साथ चिन्ता का विषय भी है। भारत में, विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा, भूकम्प कम आते हैं अतः यहाँ के निवासियों की मानसिकता भूकम्प के सन्दर्भ में बहुत ही अविकसित है। देश के नागरिकों की भूकम्पों के मामले में सावधानी बरतने की मानसिकता यदि विकसित होती तो कम से कम निर्माण के समय इस बात पर अवश्य ध्यान दिया जाता कि वे भूकम्प के झटके सह सकें। विश्व के जो भी देश भूकम्प से प्रभावित होते हैं वहाँ भवन निर्माण की प्राविधिकी भारतीय निर्माण की प्राविधिकी से बहुत भिन्न है। गढ़वाल क्षेत्र में भूकम्प से जो भारी क्षति हुई उसका कारण यही है कि ये मकान भूकम्प के झटकों को सहने की दृष्टि से बनाये ही नहीं गये। चिन्ता की बात है कि भारत का दो-तिहाई भाग विश्व की उस पट्टी में आता है जिसे भूकम्प प्रभावित माना जाता है फिर भी देश की जनता को भूकम्पो के सन्दर्भ में कोई जानकारी नहीं दी जाती। दिल्ली की बहुमंजली इमारतों की, यदि कभी भूकम्प आया तो क्या दशा होगी? सरकार को सोचना चाहिये।

१. दसवीं लोक सभा के चुनाव—९१

दो भिन्न संस्कृति, दो भिन्न सभ्यताऐं, दो भिन्न धर्म, दो भिन्न सम्प्रदाय, दो भिन्न विचारधारायें, दो भिन्न मत, दो भिन्न मान्यतायें जिस प्रकार कभी एक नहीं हो सकतीं उसी प्रकार दो भिन्न मानसिक धरातल भी कभी एक नहीं हो सकते। जब तक कि एक पक्ष अपने अहं और अस्तित्व को समाप्त करके दूसरे पक्ष के प्रति अन्तरतम से समर्पित हो न हो जावे। दिन कभी रात के साथ मेल नहीं खा सकता क्योंकि दोनों की संस्कृति और मान्यताऐं पृथक्-पृथक् ही नहीं अपितु नितान्त भिन्न हैं, और यदि कभी दोनों निकट आने के लिये प्रयत्नशील भी हुए तो चारों ओर सध्या का अन्धकार फैलने लगता है, संक्रमण बेला आ उपस्थित होती है।

नौवीं लोक सभा के चुनाव ८९ में हुए। पिछले अनुभवो की प्रतिक्रिया हुई, भारत के मतदाता ने अपने मनोनुकूल मतदान किया। प्रत्याशियों के नाटकीय अभिनय और वायदे अधिक सफल न हो सके। परिणामस्वरूप लोक सभा की सदस्यता के ठेकेदार पराजित होते चले गये। नवीन आकृतियाँ, नये व्यक्तित्व, नवोन्मेष और नवोन्माद के साथ नौवीं लोक सभा में आसीन हुए। परिप्रेक्ष्य पुरातन था केवल परिवेश ही परिवर्तित था।

किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत के अभाव ने शासन की भूख समाप्त कर दी। लेकिन फिर भी दोनीय, एवं प्रान्तीय और कुछ अखिल भारतीय दलों ने मिलकर मर्यादित राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की स्थापना की। मोर्चे में बिना सम्मिलित हुए भारतीय जनता पार्टी ने अपना समर्थन उद्घोषित कर दिया। स्वार्थ, विवेक की गति को समाप्त कर देता है। राज भोग के सुख, समागमो की स्वप्निल लालसा औचित्य की सीमाओं का उल्लंघन कर बैठे तो आश्चर्य ही क्या है। कुछ ओर विदेशी विचारकों की मान्यताओं के समर्थक, दूसरी ओर तुष्टीकरण नीति के पोषक एवं सामाजिक न्याय के उद्घोषक, तीसरी ओर भारतीय संस्कृति एवं 'भारतीय राष्ट्रवाद के उपासक। विभिन्न मान्यताओं एवं विचारधाराओं की यह त्रिवेणी बीच-बीच में झटके सहती हुई ग्यारह महीने प्रवाहित हुई। अपनी मान्यताओं और अपने हितों पर कुठाराघात होते देख भारतीय जनता पार्टी ने सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। परिणामस्वरूप मोर्चा सरकार का पतन हो गया तथा जनता दल विभाजित हो गया। कांग्रेस के समर्थन से समाजवादी जनता पार्टी ने शासन की बागडोर फिर सम्भाली। चार महीने बाद कांग्रेस ने भी झटका दिया और सरकार धराशायी हो गई। तत्कालीन समाजवादी प्रधानमन्त्री श्री चन्द्रशेखर ने सरकार के धराशायी होने से पूर्व ही संसद भंग कर दसवीं लोक सभा के लिये नये चुनाव कराने की राष्ट्रपति से संस्तुति कर दी।

चुनाव आयोग ने अप्रैल ९१ में अधिसूचना जारी करते हुए २० मई, २३ मई और २६ मई ९१ की तिथियाँ दसवीं लोक सभा के सदस्यों के निर्वाचन के लिये निर्धारित कर दीं। विभिन्न राजनैतिक दलों ने जनता को अपने-अपने वायदों से रिझाना आरम्भ कर दिया। घोषणा-पत्र जारी किये गये। पुराने झुर्रियाँ पड़े हुए राजनैतिक चेहरों पर एक बार फिर से मुस्कराहट दौड़ने लगी, नवयुवकों का नया खून भी उबाल भरने लगा। टिकटार्थी अपने दल-बल के साथ पहिले अपने प्रान्तों की राजधानियों में घेरा डाले रहे फिर दिल्ली की दौड़ शुरू हुई। कुछ सफलता के साथ और कुछ असफलता को साथ लेकर घर वापस आ गये। चुनाव प्रचार में किसी ने धन झोंका, किसी ने धर्म और जाति झोंकी; किसी ने बाहु बल ही दाव पर लगा दिया। युद्ध और प्रेम में सब कुछ सम्भव होता है। सिद्धान्त और मर्यादाएँ ताक पर उठाकर रख दी जाती हैं डेमोक्रेसी में, जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ होती है निरक्षरता भरे लोकतन्त्र में। साक्षर भी निरक्षर की भाँति व्यवहार करने लगते हैं।

कुछ हिंसक घटनाओं और कुछ मतदान केन्द्रों पर कब्जे की घटनाओं के साथ मतदान का २० मई का प्रथम चरण समाप्त हुआ। ४० प्रतिशत भारत के भाग्य विधाताओं के भाग्य मतपेटियों में बन्द होकर निर्वाचन अधिकारियों के कब्जे में पहुँच गये। चुनाव प्रचार के लिये तमिलनाडु गये पूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी की सहसा २१ मई ९१ को निर्मम हत्या कर कर दी गई। देश में फैली शोक लहर को दृष्टि में रखते हुए चुनाव आयोग ने भी मतदान के दूसरे और तीसरे चरणों को तीन सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया। दूसरे और तीसरे चरण के मतदान के बाद मतगणना सम्पन्न होने पर २० जून १९९१ तक दसवीं लोकसभा की दलीय स्थिति इस प्रकार रही :

कुल सीटें—५२४ चुनाव हुए—५११ परिणाम घोषित—५०७

कांग्रेस (इ)	२२५	भाजपा	११९	जद	५५
माकपा	३५	भाकपा	१३	सजपा	५
तेलगुदेशम्	१३	असम०	१	झारखण्ड०	६
शिवसेना	४	मुस्लिम लीग	२	कांग्रेस (स)	१
आ० पीपुल्स कांग्रेस	१	एस० एस० पी०	१	निर्दलीय	१२

१९ मई १९९१ को श्री पी० वी० नरसिम्हाराव को सर्व सम्मति से कांग्रेस संसदीय दल का नेता चुना गया। सर्वाधिक संख्या वाला दल होने के नाते राष्ट्रपति श्री वेंकटरमण ने श्री राव को सरकार बनाने के लिये आमन्त्रित किया। २१ जून १९९१ को मध्याह्न १२ बजकर ५३ मिनट पर श्री पी० वी० नरसिम्हाराव को एक भव्य समारोह में भारत के नवें प्रधानमन्त्री पद की शपथ ग्रहण कराई तथा चार सप्ताह में लोक सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के आदेश दिए। १२ जौलाई १९९१ को प्रधानमन्त्री ने लोक सभा में विश्वास मत प्राप्त करने में सफल सिद्ध हुए। उनके पक्ष में २४१ मत तथा विपक्ष में १११ मत पड़े। प्रधानमंत्री ने स्पष्ट घोषणा की कि "उनकी सरकार प्रमुख विपक्षी दलों से सलाह मशाविरा किये बगैर देश पर कोई फैसला नहीं थोपेगी" नये प्रधानमंत्री से देश को बहुत आशायें हैं।

२. भारत के नवें प्रधानमन्त्री श्री नरसिम्हा राव

कौन जानता था कि भारत के मन सरोवर में अभी कुछ वर्षों पूर्व खिले हुए कमल के फूल की पखुड़ियाँ विधाता की क्रूर मार से अनजाने ही धराशयी हो जायेंगी। सहसा समस्त घटना चक्र बदल गये। राजीव जी के स्थान पर नये कांग्रेस अध्यक्ष को ढूंढने के लिये कांग्रेस के पदाधिकारियों और मई ९१ के निर्वाचन में चुनकर आये कांग्रेसी सांसदों की दृष्टि चारों ओर दौड़ने लगी। दीर्घकालीन राजनैतिक एवं प्रशासनिक अनुभवों से युक्त कांग्रेस की नीतियों और सिद्धान्तों के प्रति यावज्जीवन समर्पित, गम्भीर विचार एवं व्यक्तित्व वाले श्री पी० वी० नरसिम्हा राव पर जाकर दृष्टि रुक गई तथा लोकतन्त्र की मर्यादा के अनुरूप उन्हें सर्वसम्मति से कांग्रेस अध्यक्ष चुन लिया गया। जून ९१ में दसवीं लोक सभा का गठन हुआ। सबसे बड़े दल का नेता होने के नाते राष्ट्रपति श्री वेंकटरमन ने उन्हें देश के नवें प्रधानमन्त्री पद के लिये आमन्त्रित किया। उन्हें तथा उनके मन्त्रिमण्डल को शपथ ग्रहण कराई गई। श्री राव भारत के नवें तथा दक्षिण भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री हैं। वे २८ जून ९१ को सत्तर वर्ष के हो चुके हैं। वे अपने राजनैतिक जीवन काल में बड़ी से बड़ी अकाट्य समस्याओं से कभी भयभीत नहीं हुए तथा सदैव विवेकपूर्ण सुलझा हुआ समाधान ढूंढा है।

१ प्रस्तावना।
२ प्रारम्भिक जीवन एवं शिक्षा।
३ राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ।
४. उत्कर्ष के पथ पर।
५. प्रधानमन्त्री के रूप में।
६. उपसंहार।

श्री राव एक परम अनुभवी प्रशासक के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने केन्द्र सरकार में रहकर रक्षा मन्त्री, विधि मन्त्री, विदेश मन्त्री, स्वास्थ्य मन्त्री, शिक्षा मन्त्री आदि महत्त्वपूर्ण पदों पर रहकर निष्ठा और सफलतापूर्वक कार्य किया है। आन्ध्र प्रदेश सरकार में १९६२ मे वे सर्वप्रथम मन्त्री बनाये गये थे। वे अपने गृह प्रान्त आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमन्त्री भी रहे हैं।

आन्ध्र प्रदेश के करीम नगर जिले में श्री राव का जन्म [illegible] कृषक परिवार में हुआ था। उन्होंने उस्मानिया विश्वविद्यालय, बम्बई विश्वविद्यालय तथा नागपुर विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। श्री राव विज्ञान और विधि के स्नातक हैं। परन्तु भाषा वैज्ञानिक के रूप में उनकी ख्याति इनके वैज्ञानिक रूप को आच्छादित कर लेती है। श्री राव को अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, तेलगू, कन्नड़, मराठी, पर्शियन, अरबी, स्पेनिश और फ्रेंच भाषा में दक्षता प्राप्त है। वे स्वाध्याय एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि के अनुरूप बुद्धिजीवी तथा स्वभाव से कवि हृदय हैं। श्री राव जब केन्द्र में विदेश मन्त्री थे तब विश्व में इन्हें बहुभाषा विशेषज्ञ के रूप में सम्मान प्राप्त होता था। साहित्य में असाधारण योग्यता से प्रभावित होकर साहित्य एकेडेमी ने इन्हें लेखक के रूप में प्रथम पुरस्कृत किया था।

हैदराबाद की निजाम सरकार ने १९३८ में श्री राव के कॉलेज में 'वन्दे मातरम्' के गान पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। श्री राव ने विद्यार्थी के रूप में इसका जमकर विरोध किया। यह आन्दोलन लम्बा चला और श्री राव इस आन्दोलन के नेता रहे। श्री राव का राजनैतिक जीवन यहीं से प्रारम्भ होता है। यद्यपि इस आन्दोलन से इनके अध्ययन में बाधा पहुँची। आन्ध्र प्रदेश में अंग्रेजों ने जब दमन चक्र चलाया तो खिन्न होकर श्री राव ने अपने वकालत के पेशे को छोड़ दिया और १९४२ के महात्मा गांधी के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में कूद पड़े। जनता ने श्री राव की त्याग और तपस्या को पहिचाना और स्वीकार किया। १९५७ से ये करीम नगर जिले के मैन्थानी विधान सभा क्षेत्र से २० वर्षों तक आन्ध्र प्रदेश विधान सभा के जनता द्वारा सदस्य चुने जाते रहे, जिनमें १० वर्षों तक मन्त्री पद पर रहे और ३ वर्ष आन्ध्र प्रदेश के मुख्य मन्त्री पद को सुशोभित किया। १९६२ के सामान्य निर्वाचनों के बाद संजीव रेड्डी मन्त्रिमण्डल में इन्हें प्रथम बार मन्त्री बनाया गया था परन्तु संजीव रेड्डी के बाद जब ब्रह्मानन्द रेड्डी मुख्य मन्त्री बने तब भी श्री राव उनके मन्त्रिमण्डल में मन्त्री रहे। केन्द्रीय मन्त्रि मण्डल में इन्दिरा जी के प्रधान मन्त्रित्व काल में तथा राजीव गांधी के प्रधान मन्त्रित्व काल में श्री राव ने अनेक विभागों को योग्यतापूर्वक सम्भाला परन्तु जब वे विदेश मन्त्री थे वह उनके जीवन का अद्वितीय समय था।

श्री राव का यद्यपि बाह्य रूप से गम्भीर प्रकृति वाला व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है परन्तु आन्तरिक रूप से वे सरल सरस, एवं कवि हृदय व्यक्ति हैं। यह रूप कभी-कभी लोक सभा में भाषण के समय देखा जा सकता है। श्री राव में वाद-विवाद चातुर्य, भाषण चातुर्य और वाक्-चातुर्य के कौशल का अद्वितीय संयोग है। १९८० में विदेश मन्त्री के रूप में जब इन्होंने लोक सभा में अपना चमत्कारी भाषण दिया था तो विपक्ष ने अपने सभी प्रस्ताव सहर्ष वापस ले लिये थे और इनकी सभी अनुदान मांगे स्वीकार कर ली गई थी।

राजीव गांधी की निर्मम हत्या के बाद कांग्रेस पार्टी तथा अन्य राजनैतिक पार्टियों के समक्ष यह प्रश्न मुंह बांयें खड़ा था कि देश का प्रधानमन्त्री किसे बनाया जाये जो देश के [illegible] निपूर्ण समाधान खोज सके और देश को स्थिर और मजबूत सरकार दे [illegible] पी० वी० नरसिम्हाराव का नाम आया सभी ने एकमत होकर अपनी स्वीकृति दे दी यहां तक कि शरद पंवार जैसे प्रतिद्वन्दी भी देश हित में पीछे हट गये। और श्री राव को संसदीय पार्टी का नेता चुन लिया गया। हालांकि लोक सभा में कांग्रेस का बहुमत नहीं है फिर भी श्री राव के सामंजस्य, दक्षता, निपुणता और कार्यकुशलता को देखते हुए अनेक पक्षों ने लोक सभा में उन्हें अपना समर्थन दिया और विश्वास मत प्राप्त करने में विजयी बनाया। जिससे कि देश को स्थायी सरकार मिल सके।

देश जब महान् आर्थिक संकट से गुजर रहा हो ऐसे समय में प्रधानमन्त्री श्री राव का दायित्व बहुत गम्भीर हो जाता है। श्री राव ने ज्यों ही प्रधानमन्त्री पद की शपथ ग्रहण की त्यों ही आर्थिक संकट का प्रश्न सबसे पहिले सामने आया। उन्होंने अपने बुद्धि कौशल एवं वित्त मन्त्री श्री मनमोहन सिंह के चातुर्य से तत्काल सुलझाया

परन्तु पहिले जनमत को विश्वास में लिया। अब कश्मीर और पंजाब की समस्या भयकर रूप धारण करके सामने खड़ी है और तत्काल उपचार चाहती है। श्री राव की विवेकपूर्ण, अनुभवों से भरी हुई निर्णायक क्षमता तथा सबको साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति इन समस्याओं को भी सुलझा लेगी, ऐसा देशवासियो को विश्वास है। पिछली दो वर्ष की सरकारों ने इन सन्दर्भो मे कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और यदि दिया भी तो कोई विशेष सफलता नही मिली।

श्री राव ने अपने मन्त्रिमण्डल के निर्माण में जिस योग्यता एव निर्भीकता का परिचय दिया है वह भी प्रशसनीय है। उनके मन्त्रि मण्डल में समाज के प्रत्येक वर्ग को और इस विशाल भारत के प्रत्येक राज्य तथा सास्कृतिक विभिन्नताओं को प्रतिनिधित्व दिया गया है। उन्होंने प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा० मनमोहन सिंह जैसे ख्याति प्राप्त व्यक्तित्व को वित्त मन्त्री, शरद् पँवार जैसे शक्ति सम्पन्न और कुछ करने की क्षमता रखने वाले व्यक्तित्व को रक्षा मन्त्री और एस० बी० चह्वाण जैसे सुलझे व्यक्तित्व को गृह मन्त्रालय सौंपा है। सब श्री माधव राव सिन्धिया, राजेश पायलट और जगदीश टाइटलर आदि प्रगतिशील व्यक्तित्व वाले व्यक्तियो को मन्त्रिमण्डल मे उपयुक्त स्थान दिये गये हैं।

श्री राव की चारित्रिक विशेषता यह है कि वे निरन्तर विपक्ष के नेताओं सांसदों से सम्पर्क बनाये रखते हैं तथा महत्त्वपूर्ण विषयों पर परामर्श लेते रहते हैं जिससे सहयोग और सहमति की भावना बनी रहती है जिसका प्रारम्भ अच्छा और सुखद हो उसका अन्त भी अच्छा ही रहता है। देश को श्री राव से बहुत सी आशायें हैं। समस्या और काटों से भरे क्षणों में श्री राव ने देश की बागडोर सम्हाली है। देश की जनता को विश्वास है कि उनकी सकल्प दृढ़ता, विवेक और विचारशीलता निश्चय ही राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान करेगी। हम श्री राव के संरक्षण में राष्ट्र के सुखद भविष्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

२. राजीव गाँधी का दुर्भाग्यपूर्ण वलन

देश का दुर्भाग्य देश को ले डूबता है, समाज का दुर्भाग्य समाज को ले बैठता है और व्यक्ति का दुर्भाग्य उसे विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर देता है। दुर्भाग्य से तात्पर्य है बुरे दिनों का संयोग। बुरे दिन चाहे देश के हों, समाज के हों या व्यक्ति के हों, सब बने बनाये खेल को बिगाड़ देते हैं। खेल बिगड़ने में देर भी नहीं लगती। एक हवा का झोंका इधर से उधर गया और खेल खत्म हो गया। बड़े-बड़े स्वप्न एक क्षण में मिट्टी में मिल जाते हैं, बड़ी-बड़ी कल्पनायें कल्पनातीत हो जाती हैं, भविष्य की सुनहरी किरणें अन्धकार में तिरोहित हो जाती हैं, शहनाई वादन करुण चीत्कार में बदलने में देर नहीं लगती। गम्य अगम्य हो जाता है और लक्ष्य अलक्ष्य में परिवर्तित हो जाता है। गरिमा मण्डित अट्टालिकायें धूल चाटने लगती हैं और महामानव चिता की राख में बदलजाते हैं।

1. प्रस्तावना।
2. ऐतिहासिक महापुरुषों का अविस्मरणीय अन्त।
3. राजीव गांधी का पुनः जन विश्वास प्राप्ति का प्रयास।
4. निर्मम हत्या।
5. राजीव गांधी के जन-कल्याणकारी कार्यों पर संक्षिप्त दृष्टि।
6. उपसंहार।

२१ मई १९९१ को देश का दुर्भाग्य जागा और उसने एक बार फिर करवट बदली। एक बार यह दुर्भाग्य तब जागा था जब महात्मा गांधी को प्रार्थना सभा में ही समाप्त कर दिया गया। देश हिचकियां भर रो उठा था, लोग कहते कि अब कौन रास्ता दिखायेगा इस समस्या भरे देश को और फिर सिर पीटने लगते। जवाहरलाल जी के समझाने-बुझाने और धैर्य देने पर जनता की हिचकियां रुक पायी थीं। १८ वर्षों के बाद देश के दुर्भाग्य ने फिर करवट ली और पं० नेहरू चल बसे। विश्व अवाक् रह गया और देश अनाथ हो गया। जनता के नेत्रों ने अपनी अजस्र अश्रुधाराओं से उन्हें अर्घ्य दिये पर हृदय में से उठती हाय न रुक सकी। लोग कहते कि अब क्या होगा इस देश का। पं० जी का नाम ले लेकर लोग रो उठते। दुर्भाग्य फिर जागा, करवट बदली और इन्दिरा जी को एक झटके में ले बैठा। विश्व ने फूलों की श्रद्धान्जलियां चढ़ाईं लेकिन देश के असंख्य जन मानस ने अपने आँसुओं के अर्घ्य चढ़ाये। सिर पीटा, छातियां कूटीं, आत्मदाह और आत्महत्यायें हुईं पर दुर्भाग्य हँसता रहा। देश की कमर टूटी पर अजर और अमरों का यह देश धैर्य और सान्त्वनाओं के सहारे धीरे-धीरे फिर उठा, सम्भला, और आगे बढ़ने के लिए पैर बढ़ाये।

युवकों के प्रेरणा स्रोत प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की ८९ में अपने ही लोगों के

कुठाराघातों से खिन्न होकर मध्यावधि चुनावों की घोषणा से लोग अवाक् और स्तब्ध रह गये थे। बहुमत वाली सरकार जनता का विश्वास प्राप्त करने के लिए फिर जनता जनार्दन के सामने गई। चुनाव हुए पर परिणाम विपरीत गया। इस परिवर्तन में सभी विश्वास करते हैं जनता भी इस परिवर्तन को चाहती थी, मीठा खाते-खाते बहुत दिन हो चुके थे, कहीं कुपच न हो जाये इस भय से नमकीन और खट्टा खाना स्वाभाविक था।

"मीठो भावै लौन पर ज्यों मीठे पर लौन"

राजीव गांधी के पक्ष की पराजय होनी ही थी दूसरा पक्ष विजयी रहा है। १७ महीनों के अन्तराल में दो सरकारें आईं और गईं। तत्कालीन एवं अल्पकालीन प्रधानमन्त्री श्री चन्द्रशेखर ने लोक सभा के पुनः मध्यावधि चुनावों की घोषणा कर दी। मई १९९१ का तीसरा सप्ताह इसके लिए सुनिश्चित किया गया। राजीव गांधी अपने दुगुने और चौगुने उत्साह एवं विश्वास के साथ जनता के सामने फिर कूद पड़े। पिछले दो वर्षों के कटु अनुभवों के आधार पर जनता राजीव गांधी की ओर उमड़ पड़ी। देश के कोने-कोने में असीम स्नेह और आदर के साथ जनता ने राजीव को सुना। उनकी नीतियों और सिद्धान्तों की सराहना की। उनके स्वागत और सत्कार में जनता समुद्र उमड़ पड़ा।

देश के कोने-कोने में अपनी नीतियों का प्रचार और प्रसार करते हुए लोकतन्त्र के महान् उपासक देश को इक्कीसवीं सदी में ले जाने को अहर्निश आतुर श्री राजीव गांधी जब दक्षिण भारत पहुँचे तो देश का क्रूरतम दुर्भाग्य खिल-खिलाकर अट्टहास कर उठा। मद्रास के पेरम्बदूर गांव में जनता दर्शनों के लिये उमड़ रही थी, देश-विदेश के फोटोग्राफर उनके फोटो खींचने के लिये फ्लैश लाइट ऑन किये हुए फोटो खींच रहे थे। माल्यार्पण करने में होड़ लगी हुई थी, पत्रकार आगे बढ़कर कुछ पूंछने के लिए लालायित थे। दुर्भाग्य ने अन्तिम अट्टहास किया और एक आत्मघाती महिला राजीव गांधी के चरण-छूने और माल्यार्पण करने निकट आई, उसने अपनी बैल्ट में लगा बटन दबाया, उसकी कमर में बंधे बम का विस्फोट हुआ और देश के पूर्व एवं भावी प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी के शरीर के चिथड़े आकाश में उड़ उठे और फिर दूर-दूर धराशायी हो गये। भयभीत जनता भाग खड़ी हुई। पुलिस ने चारों ओर घेरा डाल लिया। इस हृदय विदारक दुर्घटना की कुछ ही क्षणों में सारे विश्व में खबर फैल गई। विश्व के सूचना प्रसारण माध्यमों ने प्रमुखता से इस विधि की विडम्बना का प्रसारण प्रारम्भ कर दिया। देश एक बार फिर स्तब्ध रह गया। देश की निरीह और निराश्रित जनता एक बार फिर असहाय हो उठी। देश की जनता के साथ दुर्भाग्य ने एक बार फिर क्रूरतम खेल खेला दिया। सेना के विमान द्वारा श्री राजीव गांधी का शव दिल्ली लाया गया। अपने नेता के अन्तिम दर्शनों के लिये जनता उमड़ पड़ी। अन्तिम दर्शनों के लिये राजीव गांधी का शव तीन मूर्ति भवन में ठीक उसी जगह रक्खा गया था जहाँ उनके नाना पं० जवाहरलाल नेहरू और उनकी माँ श्रीमती इन्दिरा गांधी को शोक विह्वल

राष्ट्र ने उनको अन्तिम विदाई दी थी। राजकीय सम्मान के साथ शक्ति-स्थल पर पहुँची शव यात्रा समाप्त हुई। आँसुओं से अर्घ्य और काँपते हाथों से फूलों की श्रद्धांजलि देते हुए अपार जन समूह ने अपने नेता को अन्तिम प्रणाम किया। विश्व के राजनेताओं ने अपनी श्रद्धांजलियाँ दीं। २४ मई ९१ को ५.२५ सायम् तथा उनके प्रिय पुत्र राहुल ने उन्हें चिता की अग्नि को समर्पित कर दिया। भाग्य क्या नहीं कर लेता!

अपने स्वर्णिम कार्यकाल में उन्होंने जो कुछ किया वह भारतीय जनता के कल्याण के लिये किया तथा विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत को प्रतिष्ठापूर्ण पद पर आसीन कराया। भोपाल गैस काण्ड में अनाथ हुए बच्चों और असहाय हुई महिलाओं और पुरुषों को उन्होंने ही प्रश्रय दिया। असम समस्या जिसे वर्षों से कोई हल नहीं कर पाया था अत्यन्त धैर्यपूर्वक वार्ताओं द्वारा उसका हल ढूंढ लेना राजीव की ओजस्विता एवं विवेक का ही परिचायक है। देश की सीमाओं की सुरक्षा के लिये वे हर समय जागरुक रहे। एशियाई राष्ट्रों के सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने अपनी बुद्धि और विवेक का जो परिचय दिया उससे एशिया के राष्ट्राध्यक्ष भी आश्चर्य चकित रह गये। दक्षेस सम्मेलन को भी राजीव गाँधी ने नई दिशा प्रदान की और उसे आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

राजीव गाँधी की ही साहसी प्रेरणायें थी जिन्होंने अपने कार्यकाल में कम दूरी पर मार करने वाले मिसाइल 'पृथ्वी' (२५ फरवरी ८८) तथा सतह से हवा में मार करने वाली मिसाइल 'त्रिशूल' के सफल परीक्षणों के बाद लम्बी दूरी के बैलेस्टिक प्रक्षेपास्त्र 'अग्नि' के अभूतपूर्व निर्माण हुए और उनके छोड़ने में सफलतायें मिलीं। १५ जून १९८९ को आन्ध्र प्रदेश की एक जन सभा में कहा था—"भारत ने कभी किसी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया है और वह यह भी नहीं चाहता कि कोई अन्य देश उसके आन्तरिक मामलों मे हस्तक्षेप करे। कई देशों ने भारत को सतह से सतह पर मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र 'अग्नि' के खिलाफ चेतावनी दी थी लेकिन भारत अपने निश्चय पर दृढ़ रहा और अग्नि का सफल परीक्षण किया। इस परीक्षण से देश सुरक्षा की दृष्टि से मजबूत तथा आत्म-निर्भर हुआ है।" कम्प्यूटर प्रणाली को प्रोत्साहन, प्रेरणा, प्रयोग एवं उसका संवर्धन राजीव गाँधी के दिशा-निर्देशों का ही फल है जो भारत को अन्य उच्च शिखर पर ले जाने के लिए गतिशील है।

जनता के कल्याण के लिये राजीव गाँधी ने अपने कार्यकाल में अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिये। राजनैतिक अस्थिरता को समाप्त करने के लिये उन्होंने अदम्य साहस दिखाया जिसके परिणामस्वरूप १९८५ में दल परिवर्तन सम्बन्धी विधेयक लोक सभा में पारित हुआ इस प्रकार चार दशकों से चली आ रही दल बदल राजनीति कानूनन समाप्त हो गई। गरीब जनता के असीम कल्याण के लिये और देश के नवयुवकों की बेरोजगारी दूर करने के लिये राजीव गाँधी ने २८ अप्रैल १९८९ को संसद में 'जवाहर रोजगार योजना' की घोषणा की। सन् १९८९ में पूरे देश में पं० जवाहर लाल नेहरू

जन्म शताब्दी समारोह आयोजित हो रहे थे। राजीव गांधी ने पं० जवाहरलाल नेहरू जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में भारत की गरीब ग्रामीण जनता को यह योजना उपहार स्वरूप प्रदान की। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण इलाको में- गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने वाले ४४ करोड परिवारों के कम से कम एक सदस्य को रोज्गार उपलब्ध होना चाहिये।

जनता और शासन के बीच सत्ता के दलाल और बिचौलियों को समाप्त करने के उद्देश्य से राजीव गांधी ने १५ मई १९८९ को बहुप्रतीक्षित ६४वां पचायती राजविधेयक सविधान सशोधन संसद मे पेश किया। यह जनता तक 'स्वराज' पहुँचाने का प्रयास था, यह एक राजनैतिक क्रान्ति थी। ५ जून १९८९ को अपने निवास पर एकत्र हुए कार्यकर्त्ताओं से कहा था कि ८० करोड लोगों की शिकायतों का निस्तारण करने के लिये पांच हजार विधायक और पांच सौ सांसद काफी नहीं है। घूम फिर कर गांव और गलियों की समस्यायें मुख्यमन्त्रियों तथा स्वय प्रधानमन्त्री के पास लाई जाती हैं। पचायती राजप्रणाली से अस्सी करोड जनता की आवाज सुनने का अधिकार २० लाख नुमाइन्दो के पास आ जायेगा जो निश्चय ही बहुत बडा है। तब समस्याओं का निस्तारण पंचायतघरों, मुहल्ले, गांव और ब्लॉक स्तर पर ही हो जाया करेगा। इन प्रतिनिधियों को सौ से लेकर पांच सौ लोग चुनेंगे जो निश्चित रूप से सत्ता की दलाली करने वालो पर अंकुश लगाने का काम करेगी।

शिक्षित बेरोजगारों के लिये राजीव गांधी के १९८८ में व्यापक ऋण योजना प्रारम्भ की। इन्दिराजी के प्रयासों के फलस्वरूप अब तक अशिक्षित बेरोजगारों के लिये ही बैंकों से ऋण दिया जाता था परन्तु राजीव गांधी ने इस क्षेत्र को और अधिक व्यापक बनाकर शिक्षितों को भी सहारा दिया।

स्वर्गीय राजीव गांधी ये कुछ ऐसे अमर कीर्ति स्तम्भ हैं जिन्हें इतिहास और भारत की जनता कभी भुला नहीं सकती। यदि विधाता असमय में उन्हें हमसे न छीनता तो भारत का भविष्य ही कुछ और होता। भारत को इक्कीसवीं सदी में ले जाने की उनकी कल्पना थी। उस कल्पना को साकार रूप देने के लिये वे सतत प्रयत्नशील रहे। देश का दुर्भाग्य कि वे आज नहीं हैं।

४. आरक्षण

बाग का कुशल माली, बाग के सभी तरु-लता गुल्मों, पुष्पों और फलों वाले छोटे-बड़े पादपों, को समान प्यार देता है, सभी को वर्षा और आतप से, आँधी और तूफान से, कीड़े और मकोड़ों से, रोग और क्रूर हाथों से बचाता है, उनका पालन और पोषण करता है। अपने परिश्रम के फलस्वरूप चमन को खिलता और हँसता हुआ देखकर उसके आत्म सन्तोष की सीमा नहीं रहती। वह यह कभी सोच भी नहीं सकता कि कुछ कलियाँ खिल-खिलाकर हंसने लगें और कुछ अकाल में ही धूल धूसरित हो जायें। अगर बहार आती है तो सब पर आये। अगर कुछ खिले और कुछ मुरझा गये और कुछ ने अपने मूक स्वरों में करुण-क्रन्दन किया तो यह उद्यान के माली की अकुशलता, अदूरदर्शिता और विवेकहीनता ही कही जायेगी।

'आ समन्तात् रक्षितः इति आरक्षितः' इस विग्रह से आरक्षण का अर्थ है चारो ओर से रक्षा प्रदान करना। 'आरक्षण' शब्द अंग्रेजी के शब्द Reservation का हिन्दी रूपान्तर है। इस शब्द का प्रयोग देश में सर्वप्रथम लार्ड मिन्टो ने १९०९ ई० के भारत शासन अधिनियम के अन्तर्गत किया था, जिसके अनुसार भारत के कुछ वर्गों को निर्वाचन में पृथक् प्रतिनिधित्व देने की बात कही गई थी। इसके बाद 'आरक्षण' शब्द का प्रचार और प्रसार बढता ही गया। स्वाधीनता के बाद हमारे संविधान निर्माताओं ने महात्मा गाँधी व अन्य समाज सुधारकों के प्रयत्नों से प्रभावित होकर स्वतन्त्र भारत के संविधान में देश की अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातितों के लिए अनेक प्रावधानों का समावेश किया।

भारत के संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को देश की जनसंख्या का एक ऐसा विशेष वर्ग माना गया है, जिसको राष्ट्रीय स्तर तक लाने के लिए विवेक-पूर्ण संरक्षण, सहायता तथा सुनिश्चित कार्य योजना की आवश्यकता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये संविधान के अनुच्छेद ३४१ तथा ३४२ में प्रावधान लिपिबद्ध किया गया है। इसके अनुसार इन जातियों को राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा तथा संस्कृति के क्षेत्र में अनेक सुविधायें दी गईं।

संविधान के अनुच्छेद १५ (s) में यह उपलब्ध किया गया है कि देश के किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं

किया जायेगा। इसी उपबन्ध को ध्यान में रखकर उच्चतम न्यायालय ने तमिलनाडु (मद्रास) सरकार के 'मेडिकल व इन्जीनियरिंग कॉलिजों' में जाति और धर्म के आधार पर सीट आरक्षित करने के लिये लिये गये निर्णय को अवैधानिक घोषित करके राज्य सरकार के इस तर्क को मानने से इन्कार कर दिया कि ऐसा हर वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाने के उद्देश्य से किया गया है। संविधान और उच्चतम न्यायालय के निर्णय का सम्मान बनाये रखने के उद्देश्य से सरकार ने १९५१ ई० में प्रथम संविधान संशोधन पारित करके यह प्रावधान कर दिया कि सरकार सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए भी विशेष कानून बना सकती है। उल्लेखनीय है कि अन्य पिछड़े वर्गों के लिए यह प्रावधान संविधान के अनुच्छेद ३४० में किया गया है। संविधान का यही संशोधन अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण की वर्तमान समस्या का जन्मदाता है।

संविधान के तथाकथित प्रावधान को कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रपति ने २९ जनवरी १९५३ ई० को 'काका साहब कालेलकर' की अध्यक्षता में 'प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग' का गठन किया। इस आयोग ने समाज की २३९९ जातियों को पिछड़ा वर्ग की श्रेणी में रखा और इनमें से ८३७ जातियों को सर्वाधिक पिछड़ी जातियाँ घोषित किया। लेकिन आयोग की दोषपूर्ण कार्य-प्रणाली एवं संस्तुतियों के विरोध में देश में बवण्डर मच गया और आरोपों प्रत्यारोपों का दौर चल पड़ा। फलस्वरूप सरकार ने इस आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया और कुछ दिनों के बाद यह मामला शान्त हो गया।

सन् १९७७ में केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के बाद आरक्षण की समस्या पुनः सामाजिक और राजनीतिक वाद-विवाद का केन्द्र बन गई। अतः इस समस्या के समाधान के लिये जनता सरकार ने १ जनवरी १९७९ ई० को बिहार के पूर्व मुख्यमन्त्री 'विन्देश्वरी प्रसाद मण्डल' की अध्यक्षता में 'द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग' का गठन किया। इस आयोग ने ३१ दिसम्बर १९८० में अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत कर दी। इस रिपोर्ट में ३,७४३ जातियों को पिछड़े वर्ग की श्रेणी में रखा गया है। इस आयोग ने अपनी सूची में १९३१ की जनगणना को आधार बना बनाया है।

जनता सरकार के पतन के बाद कांग्रेस सरकार ने मण्डल आयोग की रिपोर्ट को उपेक्षित कर दिया और यह तर्क दिया कि मण्डल आयोग की स्थापना का मन्तव्य राजनीति से प्रेरित था। इस तर्क के परोक्ष में यह तथ्य था कि इस आयोग की स्थापना तत्कालीन प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई ने उपप्रधान मन्त्री व गृह मन्त्री चौधरी चरण सिंह की पदच्युति से उत्पन्न राजनीतिक बवण्डर को रोकने के लिए किया था।

सन् १९८९ के सार्वजनिक निर्वाचन में राजनीतिक लाभ और जन समर्थन प्राप्त करने के लिये राष्ट्रीय मोर्चा दल ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में [illegible] वादा किया कि

यदि केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार सत्तारूढ़ हो जाती है, तो वह मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करेगी।

सार्वजनिक निर्वाचन में विजयी होकर राष्ट्रीय मोर्चा दल की सरकार सत्तारूढ़ हो गई। लेकिन परिस्थितियों की विडम्बना देखिये कि लगभग १० वर्ष तक उपेक्षित पड़ी मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने का निर्णय पूर्व प्रधानमन्त्री वी० पी० सिंह ने उसी प्रकार आतुरता और शीघ्रता से लिया, जिस प्रकार मोरारजी देसाई ने लिया था।

सात अगस्त १९९० को लोक सभा का मानसून सत्र प्रारम्भ हुआ। संसद के दोनों सदनों में तत्कालीन प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने पिछड़े वर्गों के लिए मण्डल आयोग की रिपोर्ट पर सरकारी फैसले की घोषणा की कि सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिये केन्द्रीय और सार्वजनिक उपक्रमों में २७ प्रतिशत पद आरक्षित रहेंगे। इस आरक्षण की घोषणा से पूर्व १ अगस्त १९९० को तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह, उप-प्रधानमन्त्री श्री देवीलाल को अपनी सरकार में से बर्खास्त कर चुके थे। श्री देवीलाल ने ९ अगस्त ९० को अपने समर्थन में एक विशाल किसान रैली का आयोजन किया था। सात अगस्त की इस आकस्मिक घोषणा के गर्भ में वी० पी० सिंह की राजनीतिक लाभ प्राप्ति निहित थी।

इस आरक्षण के विरोध और समर्थन में सहसा समस्त उत्तर भारत में विरोध और विद्रोह का ज्वालामुखी फूट पड़ा। तोड़-फोड़ की घटनायें अपनी चरम सीमा में चलती रहीं। पुलिस को जगह-जगह अश्रु गैस और लाठी चार्ज का प्रयोग करना पड़ा। छात्रों के आक्रोश को देखकर विद्यालय और महाविद्यालय बन्द करने पड़े। एक ओर मिठाइयाँ बंटी तो दूसरी ओर आत्मदाह हुए। एक ओर वी० पी० जिन्दाबाद हुए तो दूसरी ओर मुर्दाबाद हुए। इस तरह सारे देश में एक जाति संघर्ष की स्थिति बन गई। राजनीतिक पार्टियों के शीर्षस्थ नेतागण भी अपने-अपने मतदाताओं के मनोनुकूल वक्तव्य देते रहे परन्तु किसी ने सर्वमान्य समाधान ढूंढने का प्रयास नहीं किया। सत्य यह भी है कि किसी सामान्य राजनेता ने मण्डल आयोग की रिपोर्ट को न देखा है और न पढ़ा है। कुछ प्रबुद्ध युवाओं ने उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय में अपनी-अपनी याचिकायें दायर की हैं जिसके कारण आरक्षण के क्रियान्वयन पर इस समय रोक लगी हुई है।

आरक्षण के प्रतिक्रिया उर्दू अखबारों में भी हुई। 'नई दुनियाँ' नाम के उर्दू अखबार ने लिखा कि या तो आरक्षण पूरी तरह ही समाप्त कर दिया जाय या फिर उसका आधार आर्थिक हो और अगर ऐसा नहीं होता है तो मुसलमानों को २० प्रतिशत आरक्षण की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिये। अखबार का कहना है कि आज मुसलमानों की हालत हरिजनों से कहीं बदतर है। मुसलमानों में ऊँची-नीची जाति का

सवाल नहीं है। मफ्के-मुसलमान ही पिछड़ेपन, तालीमी पसमांदगी (शैक्षिक तौर पर पिछड़े) इक्तसादी बदहाली (आर्थिक तंगी) की अलामत बन गया है। "अखबारे-नौ" ने लिखा है कि प्रधानमन्त्री वी० पी० सिंह ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में दिये आश्वासन के मुताबिक यदि पिछड़े वर्गों के लिये मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा कर दी तो एक वर्ग विशेष ने हाय-तौबा मचाना शुरू कर दिया और अब रिजर्वेशन के नाम पर मुसलमानों को सड़कों पर लाने की एक साजिश रची जा रही है।"

अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) कमेटी ने १४ सितम्बर १९९० को सम्पन्न हुई अपनी कार्यकारिणी की मीटिंग में कहा कि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार और प्रधानमन्त्री वी० पी० सिंह के अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय संकट की घड़ी में संकीर्ण राजनैतिक स्वार्थ के लिये देश की एकता, अखण्डता और सामाजिक सद्भाव को दाव पर लगाकर देश को विभाजन के कगार पर पहुँचा दिया है। कार्यकारिणी के राजनीतिक प्रस्ताव में कहा गया कि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के 'नीति और निर्णय शून्य' सम्पूर्ण दिग्भ्रम और बदहवासी के कारण पहल उग्रवादियों, अलगाववादियों और देश का अहित चाहने वाले लोगों के हाथ मे चली गई है।

वी० पी० सिंह के बाद आये प्रधानमन्त्री श्री चन्द्रशेखर सुलझे हुए राजनेता थे। देश की भावी पीढ़ी की उन्नति और कल्याण के लिये व्यापक जनहित में जो पग उठायें। वैसे न्यायालय का निर्णय अभी प्रतिक्षित है। वह जब भी आयेगा और जो भी आयेगा वह सर्वमान्य होगा। जून १९९१ में प्रधानमन्त्री श्री पी० वी० नरसिम्हाराव के प्रधानमन्त्रित्व में कांग्रेस सरकार पुन पदारूढ हुई है। आशा है वह इस समस्या का सर्वमान्य और सामञ्जस्य पूर्ण हल ढूंढ निकालेगी जिससे सामाजिक विद्रोह की आग शान्त हो सकेगी। अन्त में—

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्॥

५. राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद

भारत के संविधान में देश को एक धर्म निरपेक्ष राज्य अवश्य घोषित किया गया है, लेकिन आज भी भारतीय राजनीति में धर्म या सम्प्रदाय की विशेष भूमिका रही है।

हम धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना तो कर सके हैं। लेकिन धर्म निरपेक्ष समाज का स्वप्न अभी भी अधूरा है। देश में विभिन्न धार्मिक विश्वासों और विभिन्न राजनीतिक दलों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार तनाव और विवाद उत्पन्न होते रहे हैं। इन्हीं तनावों और विवादों ने हमारे समाज में साम्प्रदायिक वैमनस्य का विष फैलाया है, जो आज भारत के अनेक भागों में विद्यमान है। आज वस्तु स्थिति यह है कि धर्म और सम्प्रदाय राजनीति का शोषण करने लगे हैं, जबकि देश की स्वाधीनता के पूर्व राजनीतिज्ञ धर्म और सम्प्रदाय का शोषण करते थे। इस प्रकार भारत की राजनीति में धर्म से सम्बन्धित सम्प्रदाय राजनीतिक दलों के लिए 'वोट बैंक' बन गये हैं। इन सम्प्रदायों ने राजनीति क्षेत्र में प्रभावशाली बनने के लिए अपनी संस्कृति व धर्म का 'राजनीतिकरण' किया है और अवसर प्राप्त होने पर राजनीतिक दलों के साथ सौदेबाजी भी की है। भारत के दोनों प्रमुख सम्प्रदायों-हिन्दू तथा मुसलमानों में निहित इस राजनीतिक महत्वकांक्षा ने एक मामूली विवाद को आज एक ज्वालामुखी पर्वत बना रखा है, जिसकी आग में न केवल सैंकड़ों निरपराध असमय ही काल कवलित हो चुके हैं वरन् सम्पूर्ण उत्तरी भारत में अशान्ति, अराजकता, जातीय विद्वेष की भावना व्याप्त है। यह मामूली विवाद आज न केवल भारत के समाचार पत्रों में, वरन् विश्व के प्रमुख समाचार पत्रों में 'राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद 'विवाद' के शीर्षक से कुख्यात हो रहा है।

राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद विवाद की पृष्ठ भूमि समझने के लिए हमें भारतीय इतिहास के पन्नों को पलटना होगा। वर्तमान अयोध्या नगर, को रामायण तथा अनेक पौराणिक ग्रन्थों में राम जन्म स्थान बताया गया है। बौद्धधर्म के पाली ग्रन्थों तथा परवर्ती ग्रन्थों में भी इस नगर को राम जन्म भूमि के रूप में ही वर्णित किया गया है। पुरातात्विक प्रमाणों भी से यह सिद्ध होता है कि इस नगर में समय-समय पर अनेक मन्दिरों का निर्माण होता रहा है। मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद भारत में अनेक असहिष्णु सुल्तानों द्वारा मन्दिरों को विध्वंस करने तथा उनके स्थान पर मस्जिद बनवाने का कार्य किया गया। लेकिन सल्तनत युग में विशेष कर फिरोज तुगलक और सिकन्दरलोदी के शासन काल में अयोध्या में राम जन्म भूमि का अस्तित्व बना रहा, यह निर्विवाद सत्य है।

आज अयोध्या का मन्दिर व मस्जिद का यह विवाद-स्थल मुगल वंश के संस्थापक बाबर के शासन काल में अस्तित्व में आया था। बाबर की आत्म कथा तजुके बाबरी तथा मुस्लिम स्थापत्य कला के पर्सी ब्राउन सरीखे मर्मज्ञों के विवरणों से पता चलता है कि बाबर ने परम्परागत इस्लामी नीति के तहत कुछ मस्जिदों का निर्माण करवाया था। ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह भी पता चलता है कि सन् १५२८ में बाबर के सूबेदार मीर अब्दुल बकी ताशकन्दी (कुछ साक्ष्यों में मीर अब्दुल बकी) ने अयोध्या में मन्दिर को गिरवाकर उसके स्थान पर मस्जिद बनवाई थी। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि मथुरा और वाराणसी आदि स्थानों पर भी मुगल शासकों ने इसी तरह की मस्जिदों का निर्माण कराया, जो आज भी विद्यमान है।

सन् १५२८ से १८८३ ई० तक अयोध्या में मन्दिर मस्जिद विवाद सुप्त प्राय रहा। इसके बाद अंग्रेजों की कूटनीति के फलस्वरूप इस विवाद की आग सुलगने लगी। सन् १८८३ में फैजाबाद के अंग्रेज कमिश्नर ने मुसलमानों के विरोध को ध्यान में रखते हुये विवादास्पद स्थल पर पुन मन्दिर बनाने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया। सन् १८८५ में इस विवाद को लेकर अयोध्या में एक भीषण साम्प्रदायिक संघर्ष हो गया, जिसमें ७५ से अधिक लोग मारे गये। इसी वर्ष विवादास्पद स्थल के लिये मुकदमेबाजी भी शुरू हो गई। राम जन्म स्थान के महन्त अरघुतिदास ने फैजाबाद के सहायक न्यायाधीश की अदालत में मुकदमा दायर करके इस स्थान पर मन्दिर का निर्माण करने की आज्ञा माँगी, परन्तु न्यायालय ने इसकी अनुमति नहीं दी और जिला न्यायाधीश ने भी महन्त की अपील खारिज कर दी। इसके बाद २१ मार्च १९४५ को फैजाबाद के दीवानी न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि मस्जिद को बाबर ने बनवाया था और सुन्नी तथा शिया मुसलमान इसका प्रयोग करते रहे हैं।

२२ दिसम्बर १९४९ ई० का विवादास्पद स्थल पर राम, लक्ष्मण और सीता की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई, लेकिन २३ दिसम्बर को ही जिलाधीश के आदेश से वहाँ ताला डाल दिया गया और दोनों सम्प्रदायों के लिए वहाँ प्रवेश निषिद्ध (वर्जित) कर दिया गया। इसके बाद पुन मुकदमेबाजी का दौर आरम्भ हो गया।

सन् १९८४ म विवादास्पद स्थल पर मन्दिर निर्माण हेतु संघर्ष करने के उद्देश्य से 'राम जन्म भूमि मुक्ति यज्ञ समिति' का गठन किया गया। फरवरी १९८६ में फैजाबाद के न्यायाधी~ श्री पाण्डेय ने जिला प्रशासन को आदेश दिया कि विवादास्पद स्थल का ताला खोल दिया जाये, तब से इस परिसर का मुख्य द्वार खोल दिया गया। ताला खुलते ही मुसलमानों ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में याचिका दायर करके यथापूर्व स्थिति बनाये रखने की अपील की।

सितम्बर १९८८ म हैदराबाद में एक विश्व हिन्दू सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसमें आयोजकों ने सरकार से विवादास्पद स्थल के सम्बन्ध में कोई बातचीत न करने तथा बाबरी मस्जिद संघर्ष समिति के प्रस्तावित अयोध्या मार्च को रोकने की घोषणा

की। बाद में सरकार के परामर्श पर मुसलमानों ने १२ मार्च १९८९ को अयोध्या मार्च रद्द कर दिया।

सन् १९८९ में विश्व हिन्दू परिषद ने विवादास्पद स्थल पर २५ करोड़ रुपये की लागत से एक भव्य व विशाल मन्दिर बनाने का कार्यक्रम घोषित किया। १४ अगस्त १९८९ को उच्च न्यायालय की लखनऊ खण्ड पीठ ने अयोध्या में दोनों पक्षों को यथा-स्थिति बनाये रखने का आदेश दिया। २९ सितम्बर १९८९ को विश्व हिन्दू परिषद ने केन्द्रीय गृह मन्त्री और उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री के साथ एक समझौता करके अदालत के निर्णय को मानने का आश्वासन दिया तथा १९ अक्टूबर १९८९ को प्रस्तावित अयोध्या मार्च रद्द कर दिया, लेकिन शिलान्यास करने का निश्चय किया। ९ नवम्बर १९८९ को अयोध्या में शिलान्यास शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर केन्द्र सरकार ने यह तर्क दिया कि शिलान्यास स्थल विवादित स्थल से बाहर है।

२३ जून १९९० को हरिद्वार मे धर्माचार्यों के सम्मेलन में यह घोषणा की गई कि ३० अक्टूबर १९९० को अयोध्या में मन्दिर निर्माण (कार सेवा) शुरू किया जायेगा। अगस्त १९९० मे भारतीय जनता पार्टी भी इस विवाद में कूद पड़ी और भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष लाल कृष्ण अडवानी ने मन्दिर निर्माण हेतु जन समर्थन प्राप्त करने के लिए २५ सितम्बर १९९० ई० को सोमनाथ से अयोध्या की रथ यात्रा आरम्भ कर दी। १७ अक्टूबर १९९० ई० को भारतीय जनता पार्टी ने घोषणा की कि यदि अडवानी की रथ यात्रा रोकी गई या राम मन्दिर निर्माण में अवरोध उत्पन्न किया गया तो वह राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को दिया गया अपना समर्थन वापिस ले लेगी। २३ अक्टूबर १९९० को समस्तीपुर में अडवानी की गिरफ्तारी के तुरन्त बाद भारतीय जनता पार्टी ने केन्द्र सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। परिणामस्वरूप वी० पी० सिंह की सरकार का पतन हो गया।

इस अवधि में केन्द्र व राज्य सरकार ने अयोध्या में यथास्थिति को कायम रखने के लिए जबरदस्त तैयारियाँ की। फिर भी ३० अक्टूबर १९९० को हजारों की संख्या में कार सेवकों ने सुरक्षा बलों की भारी घेराबन्दी को तोड़कर अयोध्या में प्रवेश करने का प्रयास किया। इस अवसर पर सुरक्षा कर्मियों ने काफी संयम से काम लिया, इसी कारण कुछ कार सेवक मस्जिद तक पहुँच गये और वहाँ केसरिया झण्डा फहराने में सफलता प्राप्त कर ली तथा मस्जिद को भी आंशिक क्षति पहुँचाई। कार सेवकों की इन कार्य-वाहियों से क्षुब्ध होकर कुछ लोगों ने सरकार की कटु आलोचना की। फलस्वरूप २ नवम्बर १९९० को जब कार सेवकों ने पुनः वर्जित क्षेत्र में प्रवेश किया तो पुलिस ने कड़ी कार्यवाही, लगभग ढाई घण्टे तक हुई गोलाबारी में सैकड़ों लोग मारे गए और सैकड़ों घायल हो गए। इसके बावजूद भी कारसेवक हतोत्साहित नहीं हुए तथा ६ दिसम्बर १९९० से कारसेवकों ने अयोध्या में पुनः सत्याग्रह कार्यक्रम आरम्भ कर दिया है।

२३ अक्टूबर से २ नवम्बर १९९० तक हुई दुखद घटनाओ ने देश के अनेक राज्यो को साम्प्रदायिक दगों की आग में झोंक दिया। साम्प्रदायिकता की इस आग मे सैंकडो लोगों को अपने जीवन की आहुति देनी पडी और इस साम्प्रदायिक उन्माद मे १९४६–४७ की घटनाओ का पुन स्मरण करा दिया। इस साम्प्रदायिक उन्माद को शान्त करने के लिये केन्द्र व राज्य सरकारें अथक प्रयत्न कर रही हैं, परन्तु इसके लिये सरकारी प्रयास ही पर्याप्त नही हैं। लोगों को यह महसूस करना होगा कि सबको मिलजुल कर रहना चाहिए। इस समय यह विचार करना उचित नहीं है कि इन दुखद घटनाओं के लिए कौन दोषी है, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि हर मूल्य पर साम्प्रदायिक सद्भाव को बनाये रखा जाये।

आज राष्ट्रहित और जनहित के लिये यह आवश्यक है कि इस विवाद को आपसी बातचीत तथा सद्भाव से हल किया जाये। अत सम्बन्धित पक्षों को सरकार की मध्यस्थता के बिना ही परस्पर बातचीत करके इस विवाद का कोई समुचित हल निकालना चाहिए।

—

अत आज देश की इस सकट की घड़ी मे सभी नागरिको को जाति और धर्म का आपसी मतभेद भुलाकर अपनी समस्याओं व विवादो को स्वय ही मिल-जुलकर हल करना होगा, तभी हमारा भारत एक सच्चे धर्म निरपेक्ष देश का प्रतीक बनकर विश्व के समक्ष एक उत्कृष्ट उदाहरण रख सकेगा। ●

६ भारत रत्न डा० भीमराव अम्बेडकर

"हरि को भजे सो हरि सा होई"

यह उक्ति भारतीय सस्कृति मे अनन्तकाल से प्रचलित है। नारायण के समान आचरण करने पर मनुष्य नर से नारायण बन जाता है। मानव मात्र मे समता और आत्मैक्य के दर्शन करने वाला व्यक्ति स्वय ही ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। माधव के पदचिन्हों का अनुसरण करते-करते राधा स्वय माधव स्वरूप हो गई थी। तो क्या आश्चर्य है यदि बोधिसत्व (भगवान बुद्ध) के दर्शन को जीवन का आधार रूप देने वाले डा० अम्बेडकर स्वयं बोधिसत्व हो गये हों। मानव मात्र की सेवा मे अपने को समर्पित करने वाला व्यक्तित्व,

दलितों, दुखियों, शोषितों और पीड़ितों की दर्द-भरी मूक भाषा को अमर स्वर प्रदान करने वाला महामानव, समाज में कभी-कभी ही आविर्भूत होता है और वह जन-मानस में परमेश्वर की भाँति आराध्य बन जाता है। रहीम के शब्दों में :—

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय॥

श्री अम्बेडकर उन्हीं प्रतिभाओं में से थे। इनका जन्म अनुसूचित जाति के एक निर्धन परिवार में १४ अप्रैल १८९१ ई० को महाराष्ट्र के 'महू' छावनी में हुआ था।' वे अपने माता-पिता की चौदहवीं सन्तान थे। मेधावी छात्र अम्बेडकर ने १९०७ में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की और इसी वर्ष इनका विवाह रामबाई के साथ हो गया। १९१२ में इन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए लालायित अम्बेडकर के मन को शान्ति तब मिली जब बड़ौदा नरेश से इस कार्य के लिए उन्हें आर्थिक सहायता मिलने लगी। १९१३ में उच्च अध्ययन के लिये न्यूयार्क चले गये। अमेरिका, लन्दन तथा जर्मन में रहकर उन्होंने अपना अध्ययन पूरा किया। १९२२ तक वे एम० ए०, पी-एच० डी० और बैरिस्टर दार एट लॉ बन चुके थे।

१९२३ से १९३१ तक का समय डा० अम्बेडकर के लिए संघर्ष एवं अभ्युदय का समय था। दलित वर्ग का नेतृत्व करने वाले डा० अम्बेडकर प्रथम नेता थे। इन्होंने 'मूक' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया जिससे दलितों में डा० अम्बेडकर के विचारों में आस्था और प्रसिद्धि का शुभारम्भ हुआ। गोलमेज कान्फ्रेंस लन्दन में भाग लेकर इन्होंने पिछड़ी जातियों के लिये पृथक् चुनाव पद्धति और विशेष माँगें अंग्रेज शासन से स्वीकार करायी। दलितों के लिए उनका कहना था :—

शिक्षित बनो, संघर्ष करो, संगठित रहो।

बाबा साहब अम्बेडकर ने २० मार्च १९२७ को 'महाड' में चौवदार तालाब सत्याग्रह किया। बढ़ती हुई ख्याति से शक्ति अर्जन करते हुए २ मार्च १९३० को डा० अम्बेडकर ने नासिक मन्दिर प्रवेश का आन्दोलन प्रारम्भ किया। दलितों, अनुसूचित जातियों एवं पिछड़ी जातियों के अधिकार दिलाने के लिये ६ दिसम्बर १९३० को प्रथम गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिये लन्दन रवाना हुये तथा १५ अगस्त १९३१ को द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने लन्दन गये। डा० अम्बेडकर की प्रतिभा, तर्क शक्ति और कुशाग्रता से प्रभावित अंग्रेजों ने २४ सितम्बर १९३२ को पूना में इनसे ऐतिहासिक पैक्ट किया जो 'पूना पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। २७ मई १९३५ में इनकी धर्मपत्नी रामबाई का देहान्त हो गया। सहधर्मिणी के बिछोह से डा० अम्बेडकर को मानसिक आघात पहुँचा।

१३ अक्टूबर १९३५ को डा० अम्बेडकर ने अपने धर्मान्तर की घोषणा की। श्रमिकों और दलितों में चेतना जाग्रत करने तथा उन्हें सुसंगठित करने के लिये अगस्त १९३६ में स्वतन्त्र मजदूर दल की स्थापना की तथा उसकी अखिल भारतीय गतिविधियों

को आगे बढाने में लग गये। दलितों, शोषितों में शिक्षा का अभाव इन्हें सदैव खटकता था। ये समझते थे कि दलितों के बिना शिक्षित बने इनमें जागृति लाना सम्भव नहीं है इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये २० जून १९४६ को इन्होंने सिद्धार्थ महाविद्यालय की स्थापना की। अब तक डा० अम्बेडकर की ख्याति देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल चुकी थी।

देश की स्वतन्त्रता के प्रथम स्वर्णिम प्रभात में भारत के हृदय सम्राट प्रथम प्रधानमन्त्री पंडित ज्वाहर लाल नेहरू की पैनी और पारखी दृष्टि विधि विशेषज्ञ डा० भीमराव अम्बेडकर पर पडी। ३ अगस्त १९४७ को प्रधानमन्त्री प० नेहरू ने इनका स्वतन्त्र भारत के प्रथम मन्त्रिमण्डल में विधि मन्त्री के रूप में समायोजन किया तथा २१ अगस्त १९४७ को भारत की संविधान प्रारूप समिति का इन्हें अध्यक्ष नियुक्त किया गया। डा० अम्बेडकर की अध्यक्षता में भारत के लोकतान्त्रिक, धर्म-निरपेक्ष एवं समाजवादी संविधान की संरचना हुई जिसमें मानव के मौलिक अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा की गई। २६ जनवरी १९५० को भारत का संविधान राष्ट्र को समर्पित कर दिया गया। २५ मई १९५० को डा० अम्बेकर ने कोलम्बो की यात्रा की तथा १५ अप्रैल १९५१ को अम्बेडकर भवन दिल्ली का शिलान्यास किया। २७ सितम्बर १९५१ को डा० अम्बेडकर ने केन्द्रीय मन्त्रि परिषद् से त्याग पत्र दे दिया।

डा० अम्बेडकर की विद्वता और अपूर्व प्रतिभा का विश्व के विधि विशेषज्ञ लोहा मानते थे। ५ जून १९५२ को कोलम्बो विश्वविद्यालय ने उन्हें एल० एल० डी० की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया। १२ जून १९५३ को उस्मानिया विश्वविद्यालय ने इन्हें डी० लिट् की उपाधि से सम्मानित किया।

दिसम्बर १९५४ मे विश्व बौद्ध परिषद् में भाग लेने रंगून गये तथा बौद्ध धर्म के नेता के रूप में नेपाल गये। वहाँ विश्व बौद्ध सम्मेलन के अध्यक्ष ने इन्हें विशेष प्रकार से सम्मानित किया। १४ अक्टूबर १९५६ को डा० अम्बेडकर बौद्ध धर्म से दीक्षित हो गये। २० नवम्बर १९५६ को डा० अम्बेडकर ने 'बुद्ध और कार्ल मार्क्स' पर विद्वतापूर्ण तथा ओजपरक ऐतिहासिक भाषण दिया जो आज भी शोधकर्ताओं और विद्वानों का स्मरणीय बना हुआ है। डा० अम्बेडकर, विधिविशेषज्ञ, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक और अद्वितीय वक्ता होने के साथ-साथ विद्वान् साहित्यकार भी थे। इन्होंने "भगवान् बुद्ध और उनका धर्म" नामक महान् ग्रन्थ की रचना की जिसका समापन ५ दिसम्बर १९५६ को हुआ। ६ दिसम्बर १९५६ को यह महामानव महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गया।

आज (१९९० में) देश के कोने-कोने मे डा० अम्बेडकर जन्म शताब्दी समारोह मनाये जा रहे हैं। समाज उनका पुनीत स्मरण करके अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित कर रहा है। समाज को उन्होंने जो कुछ दिया उसके प्रतिदान में कृतज्ञता भरे नेत्रों से श्रद्धावनत समाज आज उनको नमन कर रहा है। भारत की राष्ट्रीय मोर्चा

सरकार ने डा० अम्बेडकर के जन्म शताब्दी वर्ष १९९० में उन्हें 'भारत-रत्न' की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया था।

भारत के दलितों और पीड़ितों को जीवन का सन्देश देकर, 'उठकर आगे बढ़ो' की संगीत लहरी सुनाकर, उन्हें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाकर, मृत्यु से अमरत्व का पथ दिखाकर भारत माता के सपूत डा० अम्बेडकर ने भारत की हृदय तन्त्री को जो झंकृत किया था आज उनमें से मधुर संगीत निकलने लगा है जिसे सुनकर मानवता प्रेमियों का हृदय आन्दोलित हो उठता है। युग की विचारधाराओं में परिवर्तन उपस्थित कर देने वाले ऐसे महापुरुषों को भारत-माता कभी-कभी ही जन्म देती है। देश का कल्याण चाहने वाले सभी भारतीयों का कर्त्तव्य है कि भारत रत्न डा० अम्बेडकर के बताये हुए पथ का अनुसरण करें।

७. उग्रवाद की चुनौती और राष्ट्रीय अखण्डता

१. भूमिका।
२. उग्रवाद।
३. पृथकतावाद।
४. प्रभावित प्रान्त :
५. अखण्डता की रक्षा का उपाय।
६. उपसंहार।

एक समय था जब भारत के पवित्र धरा-धाम पर द्वैतवाद की मन्दाकिनी में भक्ति के सुगन्धि पूर्ण पुष्प विकसित होते थे भारतीय उस मन्दाकिनी में आनन्द से डुबकी लगाकर अपने को धन्य समझते थे। एक समय आया जब अद्वैत-वाद ने जीव और ब्रह्म को एक परिधि में ला दिया और लोग कहने लगे थे कि "जीवो ब्रह्मैव नापरः" अर्थात् जीव ब्रह्म ही है। फिर समय आया एकेश्वरवाद का, कबीर और जायसी और नानकदेव की वाणियों ने उच्च स्वर से उसकी महिमा का वर्णन किया। वादों की परम्परा में छायावाद और रहस्यवाद भी पुष्पित और पल्लवित हुए। सहसा महादेवी कह उठी—

"शून्य मन्दिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी"

उधर सुमित्रानन्दन पन्त की स्वर लहरी गा उठी—

"न जाने नक्षत्रों से कौन निमन्त्रण देता मुझको मौन"

फिर समय आया अज्ञेय और नागार्जुन के प्रयोगवाद और प्रतीकवादों का। कहीं-कहीं प्रगतिवाद के भी गीत सुनाई दिए।

उपर्युक्त वादों से प्रभावित जनमानस हँसता था, मुस्कराता था, आनन्दातिरेक से रसानुभूति प्राप्त करता था, जीवन और मरण की गुत्थियों को सुलझाता था, अन्धकार से प्रकाश की ओर जाता था, मुमुक्षु मुक्ति को प्राप्त करता था, जिज्ञासु ज्ञान प्राप्त करता था। सहसा समय बदला, दिन के बाद रात्रि आती है और प्रकाश के बाद अन्धकार। समय बदलने पर शान्ति अशान्ति में बदल जाती और शहनाइयों के स्वर

मातम के स्वरों में परिवर्तित हो जाते हैं। प्रेम के आँसुओं को बहाने वाली आँखें आग उगलने लगती हैं। प्रेमालिंगन को उत्सुक और अधीर भुजाएँ भुशुण्डियों (बन्दूकें) का आलिंगन करने लगती हैं। माँग में सिन्दूर भरने को उत्सुक हाथ माँग के सिन्दूरों को पोंछ डालने में भी नहीं हिचकिचाये। समय बदला, वादों की परम्परा में छायावाद और रहस्यवाद के स्थान पर उग्रवाद आया। आँखें बदलीं, और आग उगलने लगीं। प्राण ले लेने वाली रायफल्स की गोलियाँ और शरीर के चिथड़े उड़ा देने वाले भयवाह बम विस्फोट। आग्नेयास्त्रों की अंधाधुंध बौछार और चीत्कार शून्य राजमार्गों पर बिखरे हुए शव जिनका न कोई पहिचानने वाला है और न उठाने वाला। बसें उड़ीं, रेल के डिब्बे धराशायी हुए, मीनारें उड़ीं, गगन-चुम्बी प्रासाद आग की लपटों ने राख कर दिये और उग्रवाद से जनमानस सन्त्रस्त हो उठा।

प्रश्न यह उठता है कि उग्रवाद कहाँ से आया। इस सन्दर्भ में हमें एक और वाद से भेंट हो जाती है और वह है पृथकतावाद। पृथक्तावाद ही उग्रवाद का जनक है। उग्रवाद पश्चिमी देशों की देन है। इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिये समय और संहार करना, देश की जनता को भयभीत करना, अपहरण, लूटपाट, आगजनी, बम विस्फोट, हत्याएँ करना तथा इन माध्यमों से शासन को अपनी इच्छित वस्तु देने के लिये बाध्य करना ही उग्रवाद की प्रमुख भूमिका है।

भारतवर्ष में पिछले दशक में उग्रवाद का जन्म हुआ था। और अब १९९१ में वह उग्रवाद भी उग्र रूप धारण किये हुए है। इस समय ये समस्या पंजाब, कश्मीर और असम में मुँह बाये खड़ी है। पंजाब में उग्रवादी खालिस्तान की माँग कर रहे हैं और काश्मीर में उग्रवादी पाकिस्तान में मिलने की। जहाँ तक पंजाब के सिक्खों का प्रश्न है वे राष्ट्रभक्त हैं, भारतीय हैं, उन्हें भारत से प्रेम है, सजग प्रहरी की भाँति उन्होंने सदैव भारत की सीमाओं की रक्षा की है। गुरु नानक देव जिन्होंने सिक्ख पंथ चलाया वे स्वयं हिन्दू थे। हिन्दुओं के धर्म, यज्ञोपवीत, गौ और मन्दिरों की रक्षा के लिये ही उन्होंने सिक्ख पंथ चलवाया। जो इस पन्थ में दीक्षित हो जाते थे वे केश, कृपाण आदि पचक-कारों को धारण करते थे। सिक्खों की रोटी और बेटी के सम्बन्ध हिन्दुओं से थे और हैं। हिन्दुस्तान से अलग होकर खालिस्तान की माँग और उसको प्रोत्साहन कुछ विदेशी ताकतें दे रही हैं। कुछ सिरफिरे लोग और कुछ दिग्भ्रमित नवयुवक यह माँग कर रहे हैं। शासन की ढील के कारण तथा उनको उचित मार्गदर्शन न मिलने के कारण पंजाब में उग्रवाद उत्तरोत्तर बढ़ रहा है संक्रामक रोग की भाँति। हजारों निरपराध एवं निर्दोष व्यक्ति मारे जा चुके हैं। हजारों घर उजड़ चुके हैं। आये दिन भयंकर बम विस्फोट होते हैं। उग्रवादी धीरे-धीरे उत्तर भारत में फैलते आ रहे हैं। जिसे उन्होंने मारने का मन बना लिया उसे मार ही दिया। पड़ोसी देश से प्रशिक्षण पाकर उग्रवादी नित्य भारत में आते रहते हैं।

यही स्थिति कश्मीर की है। हजारों उग्रवादी जब चाहें आग लगा देते हैं जब चाहें अपहरण कर लेते हैं, जब चाहें बसों को उड़ा देते हैं। अनेक बुद्धिजीवियों नेताओं

और सामाजिक कार्यकर्ताओं का अपहरण किया जा चुका है बाद में उनके क्षत-विक्षत शव ही प्राप्त होते हैं। विरोध करने की सजा मौत है। यहाँ पड़ोसी देश प्रशिक्षित उग्रवादी भेज रहा है और पंजाब में भी। परिणाम क्या होंगे ? इस स्थिति का सुखद पटाक्षेप कैसा होगा ? यह एक बड़ा जटिल एवं गम्भीर प्रश्न है।

राष्ट्र के आगे ये दो भयंकर चुनौतियाँ हैं। सरकार इन चुनौतियों का बहादुरी से सामना कर रही है और भारत की अखण्डता के लिये यह दृढ़प्रतिज्ञ है चाहे कितना ही संघर्ष करना पड़े। भारत की जनता को प्रधानमन्त्री ने कई बार दृढ़ शब्दों में आश्वासन दिया है कि भारत की अखण्डता को किसी कीमत पर भी आँच नहीं आने दी जायेगी।

इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता राष्ट्रीय एकता की है। यदि हम सभी भारतीय एक हैं तो कोई भी शत्रु हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई का नारा जो गाँधी के समय से चल रहा है, को जीवन में साकार रूप देने की आवश्यकता है। यदि दो भाईयों में प्रेम होगा तो तीसरा पड़ोसी आँख उठाकर भी नहीं देख सकता। इसी तरह हिन्दू-सिक्ख भी भाई-भाई की तरह जैसे अब तक रहते आये हैं वैसे ही रहते रहें। ईसाई, पारसी तथा अन्य धर्मावलम्बी भी अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए भाई-भाई की तरह रहें। एक दूसरे के धर्म की आलोचना या धर्म स्थल पर कुदृष्टि रखना पारस्परिक सौहार्द्र को छिन्न-भिन्न कर देता है।

इस समय हम अपने समस्त व्यक्तिगत या जातिगत स्वार्थों को तिलांजलि देकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाये तभी राष्ट्रीय अखण्डता भी सुदृढ़ होगी। राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए सरकार सतत् प्रयत्नशील है, आपका भी पूर्ण रचनात्मक सहयोग होना चाहिये।

८. जवाहर रोजगार योजना, १९८९

गरीब राष्ट्र के निवासी राष्ट्र के उत्थान के लिये क्या कर सकते हैं ? उनका चिन्तन, उनके विचार, उनका मनन तो अपने परिवार की रोजी-रोटी जुटाने तक ही सीमित रहता है। रोजी-रोटी और मकान की चिन्ता उन्हें न आगे बढ़ने देती है और न राष्ट्र ही आगे बढ़ पाता है। एक कहावत है "भूखे भजन न होई गोपाला, ले लो अपनी कण्ठी माला।" निश्चित ही भूखा व्यक्ति भगवान के प्रति भी उदासीनता बरतने लगता है। शिक्षा और स्वास्थ्य में विकास तो उनसे कोसों दूर रहता है। राष्ट्र और राष्ट्र के प्रति दायित्व

१. भूमिका।
२. गरीबी और बेरोजगारी।
३. उन्मूलन के उपाय।
४. 'जवाहर रोजगार योजना' प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी का गरीबी उन्मूलन का सर्वाधिक शक्तिशाली उपाय।
५. प्रधानमन्त्री की घोषणा।
६. उपसंहार।

का तो स्वप्न मे भी उसे विचार नहीं आता। विश्व की गतिविधियाँ उसके लिए आकाश के तारामण्डल की भाँति हैं। गरीब का जीवन अपनी दैनिक व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति, और अभावों से संघर्ष करते-करते ही पूरा हो जाता है। अतः विकसित, समृद्ध और सशक्त राष्ट्र निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि उसका प्रत्येक नागरिक, आर्थिक दृष्टि से समृद्ध और सशक्त हो क्योंकि व्यष्टि ही समष्टि की आधारभूत शिला होती है। यदि आधार दुर्बल और अक्षम है तो भवन का धराशाही होना कालान्तर में असन्दिग्ध होता है।

गरीबी और बेरोजगारी में कार्य कारण सम्बन्ध है। बेरोजगारी होगी तो गरीबी होगी। बेरोजगारी कारण है और गरीबी कार्य। आप कारण को मिटा दीजिए तो कार्य स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। यदि व्यक्ति को अपना शक्ति भर काम मिल जाये तो उसकी रोजी-रोटी और मकान की समस्या स्वयं सुलझ जायेगी। आज जो सड़कों पर लूटमार, राहजनी, चोरी, डकैतियाँ होती सुनाई पड़ती हैं ये सब बेरोजगारी का ही परिणाम है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार ३० करोड़ लोग आज भी गरीबी की रेखा के नीचे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। गरीब न अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सकता है और न बीमार पड़ने पर अपने बच्चों को अच्छा उपचार ही दिला सकता है अन्त में मृत्यु के मुख में चला जाना ही उसके भाग्य की इतिश्री होती है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से ही भारत सरकार की यह नीति रही है कि देश में से गरीबी दूर हो। गरीबी उन्मूलन भारतीय विकास नीति का एक अभिन्न अंग रहा है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में लगभग १८,००० करोड़ रुपये गरीबी दूर करने के अभियान पर खर्च किये जा रहे हैं। आज, विकास पर खर्च हो रहे प्रत्येक तीन रुपयों में से एक रुपया गरीबी उन्मूलन सम्बन्धी कार्यक्रमों पर खर्च किया जा रहा है। गरीबी उन्मूलन अभियान का सबसे अधिक चर्चित कार्यक्रम—समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (इंटीग्रेटेड रूरल डवलपमेंट प्रोग्राम) था। इसका प्रारम्भ १९७८-७९ में सीमित स्तर पर किया गया। छठी योजना में इसका विस्तार पूरे देश के ग्रामीण क्षेत्र तक कर दिया गया। सातवीं योजना में भी गरीबी उन्मूलन विकास-योजना का मुख्य बिन्दु रहा। यह अपेक्षा की गयी कि छठे योजना काल में इस कार्यक्रम से १.५ करोड़ ग्रामीण परिवारों को लाभ मिलेगा। बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों को जोड़कर यह छठी योजना में इस कार्यक्रम पर ४,५०० करोड़ रुपये व्यय किये गये। सातवीं योजना में व्यय बढ़ाकर ७,००० करोड़ रुपये रखा गया और यह अपेक्षा की गई कि इससे दो करोड़ लोग लाभान्वित होंगे। यह कार्यक्रम केवल उस वर्ग की जनता के लिये था जिसकी पारिवारिक वार्षिक आय ३,५०० रुपये से कम है। इंदिरा गाँधी का समस्त कार्यकाल 'गरीबी हटाओ' के लिए समर्पित रहा। परन्तु इन सब कार्यक्रमों के पीछे एक दुखद अनुभव यह भी रहा है कि इन कार्यक्रमों के माध्यम से जहाँ एक हाथ से गरीबों को सहायता दी जाती रही वहीं दूसरे हाथ से वह उसी वर्ग के पास चली जाती है जो धनी और सक्षम है।

गाँवों में गरीबों को विशाल पैमाने पर रोजगार दिलवाने के लिये प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने २८ अप्रैल १९८९ को संसद के 'जवाहर रोजगार योजना' की घोषणा की। सन् १९८९ में समस्त देश में पूरे वर्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू जन्म शताब्दी समारोहों का आयोजन किया गया। देश एक बार फिर पं० नेहरू की भूली बिसरी स्मृतियों में खो गया। भारतवासी सब जानते हैं कि वे भारत की जनता को कितना प्यार करते थे और बदले में भारतीय जनता उनकी एक आवाज पर, उन पर तन, मन, धन समर्पित करने को उद्यत हो जाती थी। गरीबों, मजदूरों और बेरोजगारों को रोजी-रोटी देने के लिये उन्होंने अपने अट्ठारह वर्षों के प्रधानमन्त्रित्व काल में क्या कुछ नहीं किया इसका इतिहास साक्षी है। भारतीयों के प्रति वही प्रेम प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी के हृदय में है। शिक्षा के विकास और प्रसार के साथ-साथ जनता के युवा वर्ग को रोजगार देने की समस्या प्रधानमन्त्री के समक्ष बहुत दिनों से मुँह बाये खड़ी थी। इसी दुर्दान्त समस्या के समाधान के लिये प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने पण्डित जवाहर लाल नेहरू जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में भारत की गरीब ग्रामीण जनता को 'जवाहर रोजगार योजना' उपहार-स्वरूप प्रदान की। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण इलाकों में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने वाले ४४ करोड़ परिवारों के कम से कम एक सदस्य को रोजगार उपलब्ध होगा। यह योजना २१०० करोड़ रुपयों से प्रारम्भ की गई है।

संसद के दोनों सदनों मे दिये गये वक्तव्य में २८ अप्रैल १९८९ को 'जवाहर रोजगार योजना" का पूर्ण विवरण एवं विशेषताओं का उल्लेख करते हुए प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने कहा कि "ग्रामीण क्षेत्रों में अभी तक चल रहे सारे रोजगार कार्यक्रम 'जवाहर रोजगार योजना' में शामिल हो जायेंगे। केन्द्र सरकार इस योजना पर ८० प्रतिशत मदद देगी। सदस्यों की तालियों की गड़गड़ाहट के बीच प्रधानमन्त्री ने कहा कि उक्त रोजगार योजना में ३० प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की की गई है। उन्होंने कहा कि 'हम अपने आधुनिक भारत के निर्माता जवाहर लाल नेहरू की-जन्म शताब्दी के अवसर पर ग्रामीण भारत के गरीबों को रोजगार की व्यवस्था उपलब्ध कराने के कार्यक्रम के तहत हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। गाँधी ने कहा कि तीन से चार हजार तक की आबादी वाली एक ग्राम पंचायत को 'जवाहर रोजगार योजना' के कार्यान्वयन के लिये प्रतिवर्ष ८० हजार से एक लाख रुपये प्राप्त होंगे। उन्होंने आशा व्यक्त की कि हम प्रत्येक निर्धन ग्रामीण परिवार के कम से कम एक सदस्य को उसके घर के नजदीक कार्यस्थल पर प्रतिवर्ष पचास से, लेकर एक सौ दिनों का रोजगार दे सकेंगे। उन्होंने बताया कि खानाबदोश जनजातियों को रोजगार दिलाने की एकीकृत योजनाओं को इस कार्यक्रम मे शामिल कर लिया जायेगा। इस योजना की एक विशेष बात यह है कि इसमें जितना रोजगार पैदा होगा उसका ३० प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया जायेगा। प्रधानमन्त्री ने कहा कि इस कार्यक्रम का उद्देश्य देश भर में ग्रामीण पंचायतों के हाथों में पर्याप्त धन-राशि देना है, जिससे वे भारी संख्या में ग्रामीण गरीबों के हित में जो ग्रामीण भारत का एक बड़ा भाग है, स्वयं अपनी ग्रामीण

रोजगार योजनायें चला सकें। उन्होंने कहा कि पिछले सात वर्षों के दौरान ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम देश भर की ५५ प्रतिशत ग्राम पचायतों तक ही पहुँचे हैं। 'जवाहर रोजगार योजना' का लक्ष्य प्रत्येक पचायत तक पहुँचना है। प्रधानमन्त्री ने सदस्यों की मेजों की थपथपाहट के बीच बताया कि सभी मौजूदा ग्रामीण मजदूरी रोजगार कार्यक्रम 'जवाहर रोजगार योजना' में शामिल कर लिए गये हैं। इस योजना का लाभ गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण भारत के ४४० लाख परिवारों तक देश के कोने-कोने में पहुँचेगा। उन्होंने कहा कि हम इस प्रकार का वित्तीय ढाँचा बना रहे हैं जिससे राज्यों को गरीबी की रेखा के नीचे की जनसख्या के अनुपात में धनराशि आवटित की जायेगी। यह धनराशि आगे जिलों को सौंपी जायेगी, जिसका निर्धारण पिछडेपन का मापदण्ड के अनुसार किया जायेगा जैसे जिले की कुल जनसख्या मे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियो की जनसख्या का हिस्सा, कुल मजदूरों की तुलना में कृषि मजदूरों का अनुपात और कृषि उत्पादकता का स्तर। गांधी ने कहा की इस कार्यक्रम में भौगोलिक रूप से विशिष्ट क्षेत्रों मे जैसे पहाडी, मरुस्थली तथा द्वीप समूह की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए विशेष ध्यान दिया जायेगा। प्रधानमन्त्री ने कहा कि यह कार्यक्रम ग्राम पचायतों को सौंपे जाने से लोगो को पहले की अपेक्षा इसके कहीं अधिक लाभ प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होंगे। उन्होंने कहा कि अब तक ऐसे कार्यक्रमो के लिये काफी बडी रकम ठेकेदारो और बिचौलियो पर खर्च हुई है। अन्य क्षेत्रो मे भी काफी अपव्यय हुआ है। इसके अलावा प्रशासन पर होने वाले खर्चे को कम किया जा सकता है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि पचायतो को वित्त व्यवस्था और कार्यक्रम को चलाने की जिम्मेदारी सौंपने से पहले कहीं ज्यादा बडी रकम कार्यक्रम पर खर्च की जायेगी। श्री गांधी ने उम्मीद जाहिर की कि इस कार्यक्रम का अमल इतना अधिक खुला और साफ-सुथरा होगा जितना पहले कभी नहीं हुआ। हर ग्रामवासी को यह मालूम होगा कि कार्यक्रम के लिये कितनी रकम उपलब्ध है और कौन-कौन सी योजनाओ पर रकम खर्च की जायेगी। वह यह भी जानकारी रखेगा कि इन योजनाओं पर उसके गाँव के कोने-कोने मे लोग काम कर रहे हैं। रोजगार हासिल करने वाले हर व्यक्ति को यह मालूम होगा कि वह कितना पारिश्रमिक ले रहा है और अन्य लोग कितना ले रहे हैं। उसे यह भी मालूम होगा कि उसे और अन्य लोगों को कितने-कितने दिनों का काम दिया जा रहा है। गांधी ने कहा कि जिन लोगों को धोखा दिया जाता है या वचित रखा जाता है, वे न केवल उसकी तत्काल क्षतिपूर्ति के लिए माँग कर सकेंगे बल्कि उनके हाथ में मत का वह आखिरी हथियार भी होगा जिससे वे उस पच या सरपच को उसके पद से हटा भी सकेंगे, जो उसे सौंपी गयी शक्तियो और जिम्मेदारियो का दुरुपयोग करता है। उन्होंने कहा कि इस योजना का लोकतन्त्र गाँव वालो के दरवाजे पर ही, जहाँ वह रहता है और काम खोजता है, कल्याणकारी राज्य को लाने का अवसर सुदृढ करेगा।"

भारतवर्ष के कांग्रेस शासित सभी प्रान्तों में इस कल्याणकारी योजना का हार्दिक स्वागत किया गया परन्तु विपक्ष ने आलोचना ही की। सभी मुख्य मन्त्रियों ने प्रदेश के

वरिष्ठ अधिकारियों को इस योजना को तेजी से लागू करने के निर्देश दिये हैं। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री नारायणदत्त तिवारी ने केन्द्र सरकार द्वारा नव-घोषित 'जवाहर रोजगार योजना' को प्रदेश में तत्काल प्रभावी ढंग से लागू करने की रणनीति तैयार करने के निर्देश दिये। श्री तिवारी ने कहा कि "यह योजना ग्राम सभाओं तथा ग्रामीण नेतृत्व के लिये एक चुनौती है। इस योजना के अधीन उत्तर प्रदेश के लिए केन्द्र सरकार द्वारा इस वर्ष ('८९ में ३६७·२८ करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। कुल राशि का ८० प्रतिशत केन्द्र सरकार और २० प्रतिशत राज्य सरकार देगी।" इसी प्रकार केन्द्र सरकार ने बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि प्रान्तों के लिए धनराशि आवंटित की है जिसका २० प्रतिशत मात्र ही प्रान्तीय सरकारें वहन करेंगी।

केन्द्रीय सरकार के तत्कालीन कृषि मन्त्री श्री भजन लाल ने १२ मई १९८९ को राज्य सभा में बताया था कि 'जवाहर रोजगार योजना' के अन्तर्गत प्रतिवर्ष गरीब लोगों के विकास पर २५ सौ से २६ सौ करोड़ रुपये तक की राशि खर्च होगी। उन्होंने इसे शानदार योजना बताते हुए कहा कि समूचे देश में इसका जोरदार स्वागत किया गया है। इस योजना से विशेष रूप से उन लोगों को फायदा पहुँचेगा जो गरीबी की रेखा से नीचे अपना जीवन बिता रहे हैं। कृषि मन्त्री ने कहा कि ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को रबी और खरीफ की फसल के कारण साल भर में लगभग छः माह तक रोजगार उपलब्ध रहता है, 'जवाहर रोजगार योजना' से उनके लिए करीब १५० दिन के लिए और रोजगार उपलब्ध कराया जा सकेगा। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम तथा एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए दी जाने वाली राशि को 'जवाहर रोजगार योजना' की राशि में शामिल कर दिया जायेगा। उन्होंने स्पष्ट किया कि इस वाले धन को जिला परिषदों के माध्यम से योजना के लिये आवंटित किये जाने ग्राम पंचायत को दिया जायेगा।

इस योजना के अन्तर्गत प्राप्त धन राशि का वितरण ग्राम पंचायतों द्वारा ही किया जायेगा। "इन प्रधानों, पंचों को सौ से लेकर पाँच सौ लोग चुनेंगे जो निश्चित रूप से सत्ता की दलाली करने वालों पर अंकुश लगाने का काम करेंगे। प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने कहा है कि फासला बढ़ने से भ्रष्टाचार बढ़ता है। सत्ता का गाँवों में हस्तान्तरण हो जाने से राज्यों को शक्ति मिलेगी और लोकतान्त्रिक विकास के बन्द मार्ग खुल जायेंगे।" निश्चित ही "जवाहर रोजगार योजना" पं० जवाहर लाल नेहरू के स्वप्नों को साकार करने तथा इन्दिरा जी के 'गरीबी हटाओ' आन्दोलन को सफल सिद्ध करने में समर्थ होगी। 'जवाहर रोजगार योजना' प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी का समाजवाद और गरीबी उन्मूलन की दिशा में उठाया हुआ वह ठोस कदम है जो इतिहास के पृष्ठों पर और भारतीय जनता के जन-मानस पर सदैव अंकित रहेगा। देश में जो बेरोजगारी हटेगी तो देश गरीबी से मुक्त होगा और जब गरीबी देश में से जायेगी तो देश समृद्ध और शक्तिशाली होगा।

६. 'अग्नि' तथा अन्य प्रक्षेपास्त्र, १९८९

प० जवाहर लाल नेहरू के संजोये हुये स्वप्न कुछ तो उनके जीवन काल में ही साकार हो उठे थे। अवशेष वैज्ञानिक उपलब्धियाँ उनकी सुपुत्री, जिन पर भारत को सदैव गर्व रहेगा, श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में एक-एक करके सफल और साकार हो उठी थीं। भारत को गौरव और गरिमा के शिखर पर पहुँचाने में इन्दिरा जी ने अपनी शक्ति और सामर्थ्य से अधिक प्रयास किया चाहे वह युद्धक्षेत्र हो या सामाजिक क्रान्ति का क्षेत्र हो। उन्होंने अन्तरिक्ष और परमाणु कार्य क्रमों को अद्वितीय प्रेरणा और प्रोत्साहन किया। वैज्ञानिक और सेनानायक सम्मानित और पुरस्कृत हुए। देश की अखण्डता की रक्षा करते हुए उन्होंने अपने रक्त की अंतिम बूंद भी भारत माता के चरणों में सादर समर्पित कर दी।

1. प्रस्तावना।
2. पूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयास।
3. भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी द्वारा किये गए ऐतिहासिक निर्णय।
4. पश्चिमी देशों द्वारा विरोध।
5. प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी द्वारा करारा उत्तर।
उपसंहार।

अमरीका, रूस, ब्रिटेन फ्रांस, और चीन इन पाँच राष्ट्रों के एकाधिकार को समाप्त करते हुए १८ मई १९७४ को प्रातः ८ बजे भारत ने जब अपना प्रथम परमाणु विस्फोटक किया था तब देश का कण-कण हर्षोल्लास से नाच उठता था। श्रीमती गांधी ने कहा था "भारत के वैज्ञानिकों ने अच्छा और व्यवस्थित काम कर दिखाया है। हमें और सारे देश को इन पर गर्व है।" निर्भीक सिंहनी की भाँति गर्जना करते हुये और उन्हें फटकार बताते हुये उन्होंने कहा था कि "शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिये भारत के अणु परीक्षण पर नाक-भौं सिकोड़ने वाले क्या यह मानते हैं कि बड़े देशों को विध्वंस के लिये अणु बम बनाने का अधिकार है और भारत जैसे विकासोन्मुख देश अपनी जनता की गरीबी तथा दूसरी मुश्किलों को हल करने के लिये भी अणु शक्ति का विकास नहीं कर सकते।"

१९ अप्रैल १९७५ को मध्यान्ह १ बजे भारत ने अपना पहिला उपग्रह 'आर्यभट्ट' अन्तरिक्ष कक्ष में स्थापित किया। अन्तरिक्ष में सफलता से कृत्रिम उपग्रह वह छोड़ने वाला भारत ग्यारहवाँ देश था। जब तक अमेरिका, रूस, पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, कनाडा, जापान और इटली इस विषय में सफलता प्राप्त कर चुके थे।

श्रीमती गाँधी ने इस आन्तरिक्ष अनुसंधान की महान् उपलब्धि पर असीम प्रसन्नता व्यक्त करते हुये कहा था "हमारा यह उपग्रह भारतीय वैज्ञानिकों की योग्यता तथा परिश्रम का प्रतीक है। आर्यभट्ट की प्रतिभा इतनी व्यापक थी कि हम पाँचवीं शताब्दी के इस खगोल शास्त्री को बीसवीं सदी का अर्थशास्त्री कह सकते हैं।"

१९७९ में भारत ने 'भास्कर'—प्रथम उपग्रह अन्तरिक्ष कक्ष में स्थापित किया। परन्तु भारतीय वैज्ञानिक भीतर ही भीतर इस बात पर घुटन महसूस कर रहे थे कि ये उपग्रह रूस की धरती से छोड़े गये थे। १८ जौलाई १९८० को भारतीय वैज्ञानिकों ने मद्रास से सौ किलोमीटर दूर श्रीहरिकोटा से प्रातः आठ बजकर चार मिनट पर 'रोहिणी' उपग्रह छोड़ा। इसी प्रकार भास्कर—दो, २० नवम्बर १९८१ को छोड़ा गया। इसी क्रम मे भारत ने अनेक उपग्रह अन्तरिक्ष मे भेजकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान एवं गौरव प्राप्त किया। ३ अप्रैल १९८४ को भारत के श्री राकेश शर्मा ने रूसी अन्तरिक्ष यात्रियों के साथ अन्तरिक्ष की यात्रा की। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने राकेश शर्मा से बातचीत करते हुये पूछा कि आपको वहाँ से भारत कैसा लग रहा है? राकेश शर्मा ने उत्तर दिया था—"सारे जहाँ से अच्छा।" श्रीमती इन्दिरा गाँधी भारत की इस अभूतपूर्व सफलता पर फूली न समाई थीं।

प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी की साहसी प्रेरणाओं ने इसी शृंखला मे अपने कार्यकाल के स्वर्णिम इतिहास में कम दूरी पर मार करने वाले मिसाइल 'पृथ्वी' (२५ फरवरी ८८) का तथा सतह से हवा में मार करने वाली मिसाइल 'त्रिशूल' के सफल परीक्षणों के बाद लम्बी दूरी के बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त्र 'अग्नि' के अभूतपूर्व निर्माण और उसके छोड़ने में अद्वितीय सफलता प्राप्त की। लम्बी दूरी का भारत का यह पहला प्रक्षेपास्त्र है। इसके साथ ही स्वदेशी स्तर पर प्रक्षेपास्त्र विकास में आत्म-निर्भरता के एक नये अध्याय के प्रारम्भ के साथ ही भारत विश्व का ऐसा छठवाँ देश हो गया जिनके पास मध्यम दूरी के बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त्र छोड़ने की क्षमता है। इससे पहले अमेरिका, सोवियत संघ, फ्रांस, चीन और इजरायल इस प्रक्षेपास्त्र का सफल प्रक्षेपण कर चुके हैं। अब भारत भी इन देशों में सम्मिलित हो गया है। यह प्रक्षेपण २२ मई को १९८९ प्रातः उड़ीसा के चाँदीपुर तट पर सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

इसके पूर्व २० अप्रैल १९८९ को 'अग्नि' का परीक्षण किया जाना था लेकिन उसके दागे जाने से कुछ सेकण्ड पूर्व ही कम्प्यूटर पर किसी त्रुटि का पता लगाने के बाद इसे स्थगित कर देना पड़ा था। फिर इसके लिये १ मई ८९ निश्चित की गई। परन्तु स्वचालित विलोम गणना के अन्तिम चरणों में कम्प्यूटर ने 'अग्नि' की एक उप-प्रणाली में आँकड़े से सम्बन्धित गलती पकड़ी। इसके बाद 'अग्नि' प्रक्षेपण मिशन के अधिकारियों ने गलती को ठीक करने के लिये परीक्षण प्रक्षेपण स्थगित करने का निर्णय लिया।

सतह से सतह पर मार करने वाले इस प्रक्षेपास्त्र का परीक्षण और प्रक्षेपण दो

हफ्तों में दूसरी बार स्थगित करना पड़ा। 'अग्नि' के पृथ्वी के वायु मण्डल मे पुनः प्रवेश करने के बाद इसका चौथा हिस्सा समुद्र मे एक निश्चित इलाके में गिरने वाला था। इस हिस्से को खोज निकालने के लिये नौ सेना के युद्ध पोत तथा हैलीकोप्टर बंगाल की खाड़ी में तनात किये गये थे। 'अग्नि' के निर्माण में देश के लगभग ४०० रक्षा वैज्ञानिक लगे हुये थे। 'अग्नि' की रेंज १६०० से लेकर २५०० किलोमीटर है और इसमें नवीनतम तकनीक तथा परिष्कृत प्रणाली का प्रयोग किया गया है। पुन २२ मई १९८९ के तात्। तीसरी बार भारत ने भूमि से भूमि पर ढाई हजार किलोमीटर की दूरी तक मार कर सकने की क्षमता रखने वाले इ। 'पहिले प्रक्षेपास्त्र का ७ बजकर १७ मिनट पर सफल प्रक्षेपण किया। जैसे ही 'अग्नि' को प्रक्षेपण बोड से छोड़ा गया, अपने पीछे आग की लपटें और धुऐं का गुब्बार छोड़ता हुआ यह प्रक्षेपास्त्र नीले आकाश की ओर उड़ गया इसके साथ ही रात-दिन इस कार्य में लगे ४०० से अधिक वैज्ञानिकों के चेहरे एकदम खिल उठे।

तत्कालीन रक्षा मन्त्री श्री के० सी० पन्त, रक्षा राज्य मन्त्री श्री चिंतामणि पाणिग्रही और वरिष्ठ रक्षा अधिकारियों ने आई० टी० आर० नियन्त्रण कक्ष से इस ऐतिहासिक दृश्य को देखा। रक्षा मन्त्री ने इस प्रक्षेपण को भारत के विज्ञान और प्रोद्योगिक की प्रगति में मील का पत्थर करार दिया। वैज्ञानिकों ने बताया कि 'अग्नि' में चार चरण के राकेट हैं जिनके लिये ठोस तथा तरल ईंधन का उपयोग किया गया है, 'अग्नि' में चौथे चरण की समाप्ति पर धरती के वातावरण में वापस लौटने पर उसे बंगाल की खाड़ी में प्राप्त करने के लिये भारतीय नौ सेना के जहाज तथा हैलीकाप्टर लगे हैं। इसके समुद्र में पूर्व निर्धारित स्थान पर ही गिरने की आशा है।

इस अवसर पर भारत के राष्ट्रपति श्री आर० वेंकटारमन ने भारत के रक्षा वैज्ञानिकों को बधाई देते हुये कहा कि यह सफलता उनकी कड़ी मेहनत और समर्पण की भावना से काम करने का परिणाम है। उन्होंने इसे विज्ञान के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हासिल करने की दिशा मे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि बताया। उपराष्ट्रपति डा० शकर दयाल शर्मा ने कहा कि यह सफलता इस बात का प्रमाण है कि विज्ञान और प्रौद्योगिक के क्षेत्र में भारत किसी से पीछे नहीं रहेगा। रक्षा मन्त्री श्री कृष्णपन्त ने वैज्ञानिकों को उनकी सफलता पर पुन बधाई देते हुये इस प्रक्षेपण को भारतीय विज्ञान विशेषत रक्षा विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूण उपलब्धि बताया और कहा कि प्रक्षेपण के बाद जो आँकडे मिले हैं उससे पता चला कि 'अग्नि' परियोजना पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार पूर्णतः सफल रही।

भारत के इस भूतपूर्व सफल परीक्षण से अमेरिका चिंतित हो उठा। अमेरिका के सैन्य मामलों के सहायक विदेश मन्त्री एलन होम्स ने कहा कि प्रक्षेपास्त्र अग्नि' के सिलसिले में उन्होंने भारत से उच्चस्तरीय विचार विमर्श करके अपनी बेहद चिन्ता से अव-

गत करा दिया है। उपसमिति के अध्यक्ष बेगमैन ने अमेरिकी सीनेट की एक बैठक में बोलते हुए आशंका व्यक्त की कि भारत के मध्यम दूरी के बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त्र 'अग्नि' के परीक्षण से भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों के सामान्यीकरण की प्रक्रिया पर बुरा असर पड़ेगा। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति प्रतिष्ठान से सम्बद्ध ज्योफरी कॅप ने कहा कि भारत विश्व ताकत बनने पर आमादा है, उन्होंने कहा कि भारत ने इतिहास की अपनी अनुभूतियों से शक्ति अर्जित की है तथा उसका इरादा वर्तमान परमाणु ताकतों खासतौर पर अमेरिका और सोवियत संघ से दबकर नहीं रहना है उसके उत्तर में अमेरिका स्थित तत्कालीन भारतीय राजदूत पी० के० कौल ने बुश प्रशासन से कहा है कि भारत का प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम पूरी तरह स्वदेश प्रयासों पर आधारित है और यह देश के [illegible] को समर्पित है। परमाणु कार्यक्रम की भाँति मिसाइल कार्यक्रम भी सैनिक उद्देश्यों के लिए नहीं है। भारत की आलोचना किसी तरह वाजिब नहीं है क्योंकि कुछ देश तो दूसरे देशों को भी प्रक्षेपास्त्र बेच रहे हैं। भारत की आलोचना करना अनुचित और अन्यायपूर्ण है। प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने १५ जून १९८९ को आन्ध्र प्रदेश में एक जनसभा में स्पष्ट घोषणा की कि—

"भारत ने कभी किसी भी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया है और वह यह भी नहीं चाहता कि कोई अन्य देश उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करे। उन्होंने कहा कि कई देशों ने भारत को सतह से सतह पर मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र 'अग्नि' के प्रक्षेपण के खिलाफ चेतावनी दी थी, लेकिन भारत अपने निश्चय पर दृढ़ रहा और 'अग्नि' का सफल परीक्षण किया। उन्होंने कहा कि इस परीक्षण से भारत सुरक्षा की दृष्टि से मजबूत तथा आत्म-निर्भर हुआ है, उन्होंने कहा कि हमारा देश अब ऐसे कुछ चुनीदा देशों में शामिल हो गया है, जिनके पास प्रक्षेपास्त्र हैं।" प्रधान मन्त्री ने २९ जून ८९ को इन्दौर में यह रहस्योद्घाटन किया कि "कुछ बड़ी शक्तियों के राजदूतों ने उनसे मिलकर धमकी दी कि यदि 'अग्नि' प्रक्षेपास्त्र परीक्षण किया गया तो भारत के विरुद्ध कार्यवाही की जायेगी। श्री गाँधी ने कहा कि लेकिन मैंने उन्हें स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया कि भारत 'अग्नि' का परीक्षण करेगा और कोई दबाव हमारे निर्णय को नहीं बदल सकता।"

बड़े हर्ष की बात है कि रक्षा विभाग द्वारा १९८३ को प्रारम्भ किये गये नियन्त्रित प्रक्षेपास्त्रों के विकास से समन्वित कार्यक्रम का यह तीसरा परीक्षण सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया जिससे विश्व के बड़े-बड़े राष्ट्र भी आश्चर्यचकित रह गये। इससे पहले जमीन से हवा में मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र 'त्रिशूल' तथा जमीन से जमीन पर मार करने वाली 'पृथ्वी' का परीक्षण किया गया था (भारत ने 'आकाश' और 'नाग' दो अन्य प्रक्षेपास्त्रों का भी विकास किया है लेकिन उनका प्रयोगशाला के बाहर परीक्षण नहीं किया गया है) लेकिन 'अग्नि' की सफलता के बाद तो भारत ने विशेष अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है क्योंकि 'बैलिस्टिक मिसाइल' तकनीक अभी तक दुनिया के केवल ७ देशों के पास है।

'अग्नि' के लिए रक्षा विभाग के वैज्ञानिक विशेष रूप से बधाई के पात्र हैं क्योंकि इसके विकास में किसी स्तर पर कहीं से कोई बाहरी सहायता नहीं प्राप्त की गई है। इसकी तकनीक, डिजाइनिंग तथा निर्माण सब कुछ भारतीय हैं। दर असल दुनिया का कोई भी देश यह तकनीक भारत को देने के लिये तैयार नहीं हुआ, इसलिये इसका विकास भारत के लिये एक चुनौती था। खुले विज्ञान के जगत में भी इसकी बहुत व्यावहारिक जानकारी नहीं है। इसलिये भारत को सब कुछ स्वयं करना पड़ा। इस तरह के प्रक्षेपास्त्रों से लैस पश्चिमी देशों ने जब देखा कि भारत इस दिशा में तेजी से प्रगति कर रहा है तो उन्होंने इसमें अवरोध उत्पन्न करने की पूरी कोशिश की। "त्रिशूल" परीक्षण की घोषणा जब लोक सभा में की गयी तो उसके छह महीने के अन्दर ही पश्चिम के सात विकसित देशों की बैठक हुई और उसमें परमाणु अप्रसार संधि की तरह का एक प्रस्ताव 'प्रक्षेपास्त्र अप्रसार' लाया गया। इन देशों ने तय किया कि वे किसी भी कीमत पर किसी देश को इसकी तकनीक नहीं देंगे और दूसरे इन लोगों ने दुनिया भर के देशों को आगाह किया कि वे इन प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण न करें। इस तरह के प्रस्ताव केवल भारत के 'मिसाइल प्रोजक्ट' को हतोत्साहित करने के लिये लाये गये, क्योंकि तब भारत के अलावा और कोई देश इस तरह की योजना पर कार्य नहीं कर रहा था। खुशी की बात है कि भारत इनके दबाव में नहीं आया और यहाँ के वैज्ञानिकों ने न केवल बिना किसी की मदद के इस कार्यक्रम को पूरा कर लिया बल्कि दूसरों को समानान्तर अत्याधुनिक तकनीक इस्तेमाल करके यह भी सिद्ध कर दिया कि भारतीय प्रतिभाएँ किसी तरह दूसरों से कम नहीं है।

इस प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम से यदि कोई देश सर्वाधिक क्षुब्ध है तो वह है अमेरिका। उसने निरन्तर कोशिश की कि भारत यह अभियान छोड़ दे। उसने सम्बन्धों में बिगाड़ आने की खुली धमकी दी लेकिन भारत सरकार ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। आश्चर्य की बात है कि पाकिस्तान ने इस पर कोई सीधी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की बल्कि उसके प्रतिरक्षा मन्त्री ने कहा कि 'अग्नि' से पाकिस्तान को कोई खतरा नहीं है क्योंकि इसका रेंज पाकिस्तान के बाहर है। इसकी मारक दूरी १६०० से २५०० किमी है इसलिए इसके क्षेत्र में तिब्बत, सोवियत संघ, ईरान, इराक आदि देश आयेंगे। भारत ने भी एक से अधिक बार यह वक्तव्य दिया है कि उसका प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम किसी देश के लिए या किसी अन्य के विरुद्ध नहीं है। यह केवल तकनीकी क्षमता प्राप्त करने के लिए शुरू किया गया है।

७ अगस्त १९९१ को भारत ने श्री हरि कोटा से जमीन से हवा में मार करने वाले 'पृथ्वी २' प्रक्षेपास्त्र का परीक्षण किया। रक्षामन्त्री श्री शरद पँवार ने इस अवसर पर यही घोषणा की कि "पृथ्वी के सफल परीक्षण के साथ ही भारत उन गिने चुने पाँच देशों में शामिल हो गया है जो इस तरह की क्षमता रखते हैं। इस श्रृंखला में प्रक्षेपास्त्रों की तीसरी कड़ी के रूप में जमीन से हवा में मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र का १० बजकर

५८ मिनट पर प्रक्षेपण किया गया। श्री पंवार ने कहा कि भारत बहुत उम्दा किस्म के हथियार बनाने में सक्षम है और 'अन्तर्राष्ट्रीय शस्त्र बाजार' में प्रवेश पा सकता है।"

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के दीक्षान्त समारोह में रक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला हैदराबाद के निदेशक डा० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम ने ६ अगस्त १६६१ को कहा था कि प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के तहत 'पृथ्वी', 'नाग', 'आकाश', 'अग्नि' और 'त्रिशूल' जैसे बहुउद्देश्यीय प्रक्षेपास्त्र भारत ने बनाये हैं। देश में ही बने प्रक्षेपास्त्र 'पृथ्वी' और 'त्रिशूल' को अगले वर्ष १६६२ में सेना को सौंप दिया जायेगा।

कुल मिलाकर इस कार्यक्रम को यदि सर्वांगीण परिप्रेक्ष्य में देखें तो मानना पड़ेगा कि यह भारत की वैज्ञानिक और तकनीकी क्षमता का एक अद्वितीय उदाहरण है जिस पर हम सभी को गर्व हो सकता है।

१०. पंचायती राज विधेयक, १६८६

भारतीय प्राचीन सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक न्याय और सामाजिक समता का मेरुदण्ड पंचायत व्यवस्था थी। यह वह व्यवस्था थी जिसके द्वारा समाज के प्रत्येक प्राणी को समान न्याय मिलता था, सबको सम्मानपूर्वक जीवन यापन का मार्ग-दर्शन मिलता था, सब एक-दूसरे को सहारा देकर आगे बढ़ाते थे, परस्परावलम्ब और सहानुभूति पुष्पित होती थी। न धनवान का क्रूर अंकुश निर्धन पर था और न निर्धन का निराशापूर्ण आतंक धनवान पर। राजा भी पंचायतों के निर्णय को शिरोधार्य करता था और निर्धन भी। इसलिये भारतीय सामाजिक व्यवस्था विश्व के पटल पर एक आदर्श और अनुकरणीय व्यवस्था मानी जाती थी।

पांच पंचों में, जनता परमेश्वर के दर्शन करती थी इसीलिए उन्हें "पंच-परमेश्वर" कहा जाता था। भारतीय संस्कृति की मान्यता थी कि जिस प्रकार परमेश्वर के विधान और निर्णय सत्य और अपरिवर्तनीय होते हैं वैसे ही पंच-परमेश्वर के भी निर्णय सत्य और कल्याणकारी होते हैं उन्हें बदला भी नहीं जा सकता। शनैः शनैः विकास और भौतिकता, विज्ञान और तर्कहीन तथाकथित ज्ञान, वैमनस्यशीलता

की मृग मरीचिका ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को झकझोरना प्रारम्भ कर दिया। साम्राज्यवाद और दासता ने अग्नि में घी का काम किया और वह आदर्श व्यवस्था और पवित्र प्रणाली समाप्त नहीं तो समाप्त प्राय अवश्य हो गई।

भारत भूमि पर महात्मा गांधी की अवधारणा ने भारतीय पुरातन संस्कृति को एक बार फिर संजीवनी प्रदान की। गांधी जी ने जहाँ एक ओर स्वतन्त्रता प्राप्ति की लड़ाई लड़ी वहीं दूसरी ओर गाँवों में बसे भारत के सामाजिक एवं आर्थिक अभ्युत्थान के लिये भी संघर्ष किया। गांधी जी ने स्वतन्त्र भारत में पंचायती राज व्यवस्था की परिकल्पना और उसके सुचारु सम्पादन की अनिवार्यता पर यावज्जीवन बल दिया। गांधी जी से निर्देशित और अनुप्रेरित कांग्रेस ने पंचायती राज व्यवस्था को अपने नीति निर्देशक सिद्धान्तों में ग्रहण किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान निर्माण के समय पं० जवाहरलाल नेहरू ने पंचायती राज व्यवस्था की अपरिहार्यता पर विशेष बल दिया। फलस्वरूप संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान में पंचायती राज व्यवस्था को स्वीकार किया। फलस्वरूप देश में पंचायत राज अधिकारियों और पंचायत सचिवों की प्रान्तीय स्तर पर नियुक्तियाँ हुई। प्रारम्भ में ऐसा लगा कि महात्मा गांधी का राम राज्य स्वप्न साकार होने जा रहा है, गाँवों में बसी भारत की आत्मा शायद फिर से जी उठे। परन्तु विकासवाद की दौड़, विज्ञान के उत्कर्ष, बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना, युद्धोपकरणों का निर्माण, और युद्ध-जन्य विभीषिकाओं की सुरक्षा की तीव्र गति ने महात्मा गांधी की इस आदर्श व्यवस्था को मन्थर गति प्रदान कर दी। इन्दिरा जी के शासन काल में इस दिशा में जीवनोन्मेष अवश्य हुआ परन्तु वांछित फल प्राप्ति संदिग्ध रही। हालांकि इन्दिरा जी के कार्य काल में देश ने अद्वितीय गौरव प्राप्त किया और देश चरमोत्कर्ष पर था।

समान सामाजिक न्याय, समान आर्थिक सहायता वितरण और गरीबी की रेखा से नीचे दबे लोगों को सुखद जीवन बिताने के उद्देश्य से प्रारम्भ की गई जवाहर रोजगार योजना में बिना भ्रष्टाचार के सभी सहभागी बन सकें आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) की कार्य समिति द्वारा प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की अध्यक्षता में दिनांक ९ मई १९८९ को निर्णय लिया तथा प्रस्ताव रक्खा गया कि संविधान में एक नया अध्याय जोड़कर निचले स्तर पर लोकतन्त्र की जड़ों को फैलाया जाये। कार्य समिति ने सरकार को संस्तुति भेजी कि वह देश के लोकतान्त्रिक ढाँचे में पंचायतों को उनका योग्य दर्जा दिलाने के लिये संविधान संशोधन विधेयक लाये। पंचायती राज संस्थानों को अधिकार देने के लिये संविधान में एक नया अध्याय जोड़ा जाये। कार्य समिति ने ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तर पर तीन स्तरीय पंचायत राज प्रणाली अपनाने, इनको आर्थिक एवं सामाजिक विकास की योजनायें बनाने के लिए पर्याप्त शक्तियाँ अधिकार देने तथा हर पाँचवें वर्ष इन संस्थाओं के चुनाव कराने की

संस्तुति की। कार्य समिति ने यह भी सिफारिश की कि पंचायती राज संस्थानों में आबादी के आधार पर अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिये सीटों के आरक्षण का संवैधानिक अधिकार दिया जाये तथा महिलाओं के लिये स्थान आरक्षित कर 'ऐतिहासिक कदम' उठाये जायें क्योंकि महिलायें ग्रामीण भारत के आर्थिक जीवन से गहरे रूप से जुड़ी हुई हैं।

२० मई १९८९ को अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) महासमिति का अधिवेशन हुआ तथा कार्य समिति के प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया। तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने इस अधिवेशन को ऐतिहासिक बताते हुए कहा कि इस विधेयक के आधार पर आठवीं योजना में काम शुरू हो जायेगा तथा नौवीं योजना में इसे पूरी तरह लागू कर दिया जायेगा। अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) कमेटी की महासमिति में पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी बनाने तथा उसे हर गाँव तक पहुँचाने के लिये संविधान में व्यापक संशोधन करके उसमें एक नया अध्याय जोड़ने की निम्नलिखित १३ सूत्री सिफारिश की।

१. पंचायती राज को संवैधानिक जनादेश प्रदान करने के लिए संविधान में एक नया भाग अंगीकार करना।

२. कम क्षेत्र वाले राज्यों या कम आबादी वाले राज्यों, जहाँ द्विस्तरीय ढाँचा पर्याप्त हो सकता है, को छोड़कर सम्पूर्ण देश में पंचायती राज त्रिस्तरीय ढाँचा स्थापित करना।

३. चुनाव आयोग के नियन्त्रण एवम् पर्यवेक्षण के अधीन सभी स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं के हर पाँच वर्ष में नियमित अनिवार्य चुनाव कराना।

जिस पंचायत राज संस्था को भंग कर दिया हो, उसे शेष कार्यकाल पूरा करने के लिए ६ महीनों के भीतर चुनाव द्वारा अवश्य पुनर्गठित किया जाये।

४. पंचायती राज संस्थाओं में सभी स्थान सामान्य वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव द्वारा भरे जायेंगे। इन संस्थाओं में निम्नलिखित का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के तरीके राज्य विधान मण्डलों द्वारा निर्धारित किये जायें—

(क) सांसदों एवम् विधायकों का

(ख) पंचायत राज संस्थाओं में तत्काल उच्च स्तर अर्थात् खण्ड तहसील, तालुका अथवा स्तर पर ग्राम पंचायतों के अध्यक्ष अर्थात् सरपंच, मुखिया, ग्राम प्रमुख आदि।

(ग) त्रिस्तरीय संस्था में मध्यवर्ती स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं में अध्यक्ष और सहकारी संस्थाओं एवम् भूमि बैंकों जैसी संस्थाओं के प्रतिनिधि पंचायती राज

संस्थाओं के सभी स्तरों पर केवल चुने हुए सदस्यों द्वारा उनमें से ही सभी पदाधिकारियों का चुनाव किया जाये। जहाँ राज्य के विधान मण्डल ऐसा चाहें तो ग्राम पंचायत का अध्यक्ष निर्वाचक मण्डल द्वारा सीधे चुना जा सकता है।

५ लोक सभा एवम् विधान सभा की भांति सम्बद्ध पंचायती राज संस्थाओं के प्रादेशिक अधिकार क्षेत्र में उनकी जनसंख्या के हिस्से के अनुपात में अनुसूचित जातियों एवम् अनुसूचित जन-जातियों के प्रतिनिधियों के लिये कम से कम एक स्थान के लिये स्थान आरक्षित किये जायें। इन प्रतिनिधियों को इसके लिए आरक्षित चुनाव क्षेत्रों में व्यापक मताधिकार द्वारा प्रजातान्त्रिक रूप से चुना जाये न कि इन्हें नामांकन या सहयोजन द्वारा नियुक्त किया जाये।

६ सभी पंचायती राज संस्थाओं में कम से कम ३० प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए अवश्य आरक्षित किये जायें। सभी महिला प्रतिनिधियों का इस प्रयोजन के लिये आरक्षित प्रादेशिक चुनाव क्षेत्रों में वयस्क मताधिकार द्वारा प्रजातान्त्रिक रूप से चुनाव किया जाये, न कि उन्हें नामांकन या सहयोजन द्वारा नियुक्त किया जाये। अनुसूचित जाति एवम् अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित कोटे में से ३० प्रतिशत स्थान या कम से कम एक स्थान के लिए इन समुदायों सम्बन्धी महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाये।

सामान्य चुनाव क्षेत्रों और आरक्षित चुनाव क्षेत्रों से महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों की कुल मिलाकर संख्या का निर्वाचित स्थानों में प्रस्तावित ३० प्रतिशत आरक्षण के भीतर समावेश किया जाये।

७ न्याय पंचायत निर्दिष्ट विषयों सम्बन्धी शक्तियों, अधिकारों तथा जिम्मेदारों पंचायती राज संस्थाओं को अवश्य सौंपी जानी चाहिए। इसके साथ-साथ उन संस्थाओं को आर्थिक साधनों की सुनिश्चित सुपुर्दगी की व्यवस्था भी होनी चाहिए तथा उनमें वित्तीय जिम्मेदारी का गहरा एहसास पैदा किया जाना चाहिए। इस प्रकार सभी स्तरों पर पंचायती राज संस्थायें निम्नलिखित बातों के लिए जिम्मेदार होंगी :—

(क) राज्य सरकार द्वारा दिये गये सामान्य मार्ग निर्देशों की रूप-रेखा में अपने-अपने कार्य-क्षेत्रों के अन्दर आर्थिक विकास तथा सामाजिक परिवर्तन के लिये योजना के मसौदे तैयार करना। योजनाओं के ये मसौदे उच्चतर स्तरों पर योजना तैयार करने तथा उसे अन्तिम रूप देने के लिए मूल उपयोगी साधन होंगे।

(ख) निर्दिष्ट शर्तों पर अपने अधिकार क्षेत्रों में आने वाली विकास परियोजनाओं, कार्यक्रमों तथा योजनाओं का कार्यान्वयन।

८ सौंपी गई शक्तियों तथा आर्थिक साधनों का पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों तथा पदाधिकारियों के नियन्त्रण में रहना अनिवार्य होगा। उन्हें इस प्रणाली से बाहर के प्राधिकारियों को स्थानान्तरित नहीं किया जाना चाहिए। सभी

विकास एजेन्सियों तथा विकास से सम्बद्ध अधिकारी को अनिवार्य रूप से पंचायती राज प्रणाली में लगाया जाना चाहिए।

९. पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत अर्थव्यवस्था सुपुर्दगी का मूलभूत सिद्धान्त है। अर्थ प्रबन्ध निम्नलिखित से सुनिश्चित किया जाना चाहिए :—

(क) निर्दिष्ट कर लगाने, वसूल करने तथा प्राधिकार उपयोग में लाने का अधिकार।

(ख) इन्हें निर्दिष्ट करों मे से राजस्व प्रदान करना।

(ग) सहायता अनुदान।

१०. हालांकि शक्तियों तथा आर्थिक साधनों की सुपुर्दगी से सम्बन्धित कानून बनाने की जिम्मेदारी राज्य के विधान मण्डलों के पास रहेगी परन्तु राज्य वित्तीय आयोग की स्थापना के लिए संवैधानिक प्रावधान अवश्य किया जाना चाहिए जिससे कि उन सिद्धान्तों की सिफारिश की जा सके जिनके आधार पर पंचायती राज संस्थाओं की मजबूत अर्थव्यवस्था सुनिश्चित की जा सके।

११. यह सुनिश्चित करने के लिये बड़ी धनराशियां जो पंचायती राज संस्थाओं को उपलब्ध होंगी का उचित उपयोग किया जाये और भ्रष्टाचार अथवा भाई-भतीजावाद न हो, लेखा प्रक्रिया को अवश्य ही सख्ती से लागू किया जाना चाहिये। इसके लिए भारत के महानियन्त्रक तथा लेखा परीक्षक की सहायता अवश्य ली जाये।

१२. ग्राम प्रशासन को पारस्परिक पद्धतियों और सामुदायिक विकास वाले उत्तर-पूर्वी राज्यों को यदि वे चाहें तो इन पारस्परिक पद्धतियों को जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है। संविधान की पांचवी और छठी अनुसूचियो के अन्तर्गत आने वाले अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जन-जातियों को भी इनकी वर्तमान संस्थाओं के लिए विशेष संरक्षण दिया जाना चाहिए। संघ शासित क्षेत्रों में पंचायती राज के कार्यान्वयन में वहीं की विशेष परिस्थितियों का ध्यान रखा जाना चाहिये।

१३ वर्तमान विधान का प्रस्ताव संवैधानिक संशोधन के अनुरूप बनाने के लिये इसका संशोधन करने हेतु राज्य विधान मण्डलों को पर्याप्त समय दिया जाना चाहिये। वर्तमान चुनी हुई राज्य संस्थाओं को अपना वर्तमान कार्यकाल पूरा करने की अनुमति देने पर विचार किया जाये।

१५ मई १९८९ को लोक सभा में प्रधान-मन्त्री राजीव गांधी द्वारा पंचायती राज्य विधेयक (लोक सभा) संसद में पेश होना था। इससे पूर्व १३ मई १९८९ को केन्द्र सरकार द्वारा इस ६४वें संशोधन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में एक वक्तव्य प्रसारित किया गया। इसमें कहा गया कि इस विधेयक का उद्देश्य तीन स्तरीय पंचायत व्यवस्था स्थापित करना है। विधेयक में चुनाव आयोग की देखरेख में आवधिक चुनावों और महिलाओं के लिए ३० प्रतिशत सीटों के आरक्षण का प्रावधान है। लेकिन प्रस्तावित विधेयक में राज्यपालों द्वारा स्थानीय निकायों को भंग करने का कोई प्रावधान नहीं

है। यह प्रावधान कुछ अखबारो में प्रकाशित विधेयक के प्रारूप में था और इसकी गैर-कांग्रेस (इ) मुख्य-मन्त्रियो एव विपक्षी दलों के नेताओ ने जमकर आलोचना की थी। पचायतो का चुनाव कराने की जिम्मेदारी पूरी तरह से निर्वाचन आयोग की होगी तथा इसके लेखाओं की जाँच का काम नियत्रक महालेखा परीक्षक को सौंपा गया है। पचायतो को वित्त उपलब्ध कराने की व्यवस्था राज्य की सचित निधि से की गई है। इसके अलावा पचायतो के बारे मे कानून बनाने का अधिकार राज्य विधान-मण्डलों का होगा। प्रधानमन्त्री राजीव गांधी द्वारा पेश किये जाने वाले इस सशोधन विधेयक में राज्यो मे प्रत्येक पाँच वर्ष मे वित्त आयोगो के गठन की व्यवस्था है, जो पचायतो की वित्तीय व्यवस्था की समीक्षा करेगा ताकि ये पचायतें चुगीकरो, शुल्को एव करो के माध्यम के सुदृढ वित्तीय व्यवस्था गठित कर सकें। यह विधेयक पूरे एक वर्ष तक प्रधान मन्त्री गांधी द्वारा विभिन्न राज्यों के जिला स्तर के प्रशासन तन्त्र के साथ विचार विनिमय और अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) महासमिति के सम्मलन मे पारित प्रस्ताव के बाद लाया जा रहा है। इस प्रस्ताव का नारा था "जनता को अधिकार।" विधेयक के उद्देश्यों एव कारणो सम्बन्धी वक्तव्य मे कहा गया है कि पचायती राज सस्थान के कार्यकलापो की समीक्षा ने दर्शाया है कि कई राज्यो में ये सस्थायें कई कारणों से कमजोर एव प्रभावहीन हो गई हैं। विधेयक के अनुसार पचायती राज सस्थाओं के कमजोर एव प्रभावहीन होने के पीछे जो कारण हैं उसमें समय-समय पर नियमित रूप से चुनाव नहीं कराना तथा इनमे समाज के कमजोर वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं देना और उनके पास पर्याप्त वित्तीय ससाधनों का नही होना है।

विधेयक में प्रावधान है कि सभी राज्यों मे तीन स्तरीय पचायती राज्य व्यवस्था स्थापित करना अनिवार्य है। ये तीन स्तर हैं—गाव, प्रखण्ड और जिला। लेकिन २० लाख से कम आबादी वाले राज्यो के लिये प्रखण्ड स्तर पर पचायतो की स्थापना आवश्यक नही। विधेयक मे यह भी प्रावधान है कि सभी स्तरो पर पचायतो की सभी सीटों को प्रत्यक्ष चुनाव के जरिये भरा जाये। विधेयक मे पचायतों में अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति और महिलाओ को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई है। इसमें पचायतो के लिये पाँच वर्षों का कायकाल निर्धारित किया गया है। किसी पचायत के अपने कार्यकाल से पहले ही भग कर दिये जाने की स्थिति मे भग करने के छः माह के भीतर नया चुनाव कराने का प्रावधान है। पचायत मे सभी स्तरों के पदाधिकारियों की नियुक्ति सीधे चुनाव के जरिये होगी, किन्तु राज्य विधान सभायें यदि चाहें तो वे पचायतों मे विधायको और सासदो को भी प्रतिनिधित्व दे सकेंगे, लेकिन इन प्रतिनिधियो को मतदान का अधिकार नही होगा।

विपक्ष के कडे विरोध के बाद प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने पचायती राज सस्थाओ के अधिकारो में और अधिक वृद्धि करने सम्बन्धी बहुप्रतीक्षित ६४वाँ सविधान सशोधन विधेयक १५ मई १९८९ को पेश किया। प्रधानमन्त्री ने कहा कि "इस विधेयक से जनता और शासन के बीच सत्ता के दलाल और बिचौलिये समाप्त हो

जायेंगे। श्री गांधी ने कहा कि विधेयक में पंचायतों को कर, शुल्क या टोल टैक्स लगाने और वसूलने का अधिकार दिया गया है तथा सामाजिक न्याय कार्यक्रमों, विकास कार्य, सार्वजनिक वितरण, रोजगार और ग्रामीण विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। विधेयक में प्रावधान है कि राज्य सरकार द्वारा कारण बताये जाने पर राज्यपाल पंचायत भंग कर सकता है लेकिन छः माह में नये चुनाव अनिवार्य होंगे। नागालैंड मिजोरम, जम्मू-कश्मीर, मेघालय, स्वायत्त जिला परिषद् वाले क्षेत्रों, आदिवासी क्षेत्र, निकोबार लक्षद्वीप, पॉडिचेरी और दिल्ली में यह कानून लागू नहीं होगा क्योंकि यहां या तो पहले ही पारम्परिक पंचायत व्यवस्था मौजूद है अथवा वहां विशेष परिस्थिति है। शेष सभी राज्यों को संविधान संशोधन के एक वर्ष के भीतर पंचायत कानून बनाने होंगे।"

इस विधेयक के द्वारा संविधान में एक नयी ग्यारहवीं अनुसूची भी जोड़ी गयी है जिसमें पंचायतों के कार्यक्षेत्र में निम्नांकित २९ विषय दिये गये हैं।

कृषि, कृषि विस्तार; भूमि सुधार और मृदा सुरक्षा, लघु सिंचाई, जल-प्रबन्ध और जल-विकास, पशु-पालन, दुग्ध उद्योग, कुक्कुट पालन, मत्स्य उद्योग, सामाजिक वनोद्योग और फार्म वनोद्योग, लघु वन उत्पाद, लघु उद्योग, खाद्य-प्रसंस्करण उद्योग; खादी ग्राम और कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, पेय जल, ईंधन और चारा, सड़कें, पुलिया, पुल, नौघाट, जल-मार्ग तथा संचार के अन्य साधन, ग्रामीण विद्युतीकरण जिसके अन्तर्गत विद्युत का वितरण भी है और पारम्परिक ऊर्जा स्रोत, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, शिक्षा-प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय, तकनीकी शिक्षा प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा,, प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय, सांस्कृतिक क्रिया-कलाप, बाजार और मेले, स्वास्थ्य और स्वच्छता, अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय, सूती और बाल विकास, समाज कल्याण, विकलांगों और मानसिक रूप से अविकसित व्यक्तियों का कल्याण, जनता के कमजोर वर्गों का एवं विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण, लोक वितरण प्रणाली तथा सामुदायिक सम्पत्ति का रख रखाव।

विधेयक में पंचायतों की शक्तियाँ, अधिकार और उत्तरदायित्व के सम्बन्धों कहा गया है कि इस संविधान संशोधन के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य सरकार कानून द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान कर सकें जो उन्हें स्वायत्त-शासी संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।

यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाये तो पंचायती राज विधेयक का उद्देश्य जनता तक 'स्वराज' पहुँचाने का प्रसार है, यह एक ऐसी राजनीतिक क्रान्ति है जिसका भारत की जनता के लिये विशेष महत्व है। इस महान् क्रान्ति की सफलता के लिये जनता के व्यापक प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यह प्रशिक्षण निर्दलीय और निर्लिप्त जनसेवी संस्थाओं द्वारा दिया जाना चाहिये। पंचायती राज की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसे सत्ता का हस्तान्तरण कितना और किस रूप में किया जाता है और

जिन लोगों को हस्तान्तरण किया जाता है वे कितनी जिम्मेदारी से अपने दायित्वों का निर्वाह करते हैं। राजनैतिक दल अगर इस योजना को अपनी स्वार्थपूर्ति का माध्यम न बनायें तो निश्चित ही यह योजना भारत की कायापलट करने में समर्थ हो सकेगी। पंचायती राज में सत्ता और प्रशासन के तीन स्तर होंगे—ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत समिति और जिला परिषद्। प्रत्येक स्तर पर स्थानीय निकाय को अपना कार्यों को पूरा करने के लिये साधन और अधिकार मिलना नितान्त आवश्यक है। आज गाँव में जाति और वर्ग के भेद और विभेदन इतने उभरे हुए हैं कि ग्रामीण जन-जीवन सत्रस्त-सा है। ग्रामीण समस्याओं का समाधान बिना सामूहिक प्रयत्न या बिना सामूहिक संकल्प सम्भव नहीं है। ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्विताओं के इस वातावरण में ग्राम पंचायतों और क्षेत्र पंचायतों के चुनाव दलगत राजनीति से ऊपर उठकर निष्पक्ष हो सकेंगे यह अभी संदिग्ध है। निर्लिप्त और सेवा भावना वाले व्यक्ति जब तक पंचायतों के विभिन्न पदों पर आसीन न होंगे तब तक निष्पक्ष विकास, निष्पक्ष वितरण और निष्पक्ष रोजगार उपलब्ध होना निष्फल बना रहेगा।

५ जून १९८९ को अपने निवास पर एकत्र हुए कांग्रेस कर्त्ताओं के बीच प्रधान मन्त्री राजीव गाँधी ने जो कुछ कहा वह नितान्त सत्य है। उन्होंने कहा था—

"कि विपक्षी दलों ने पंचायती राज व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन करने की सरकार की संविधान संशोधन विधेयक पेश करने की पहल में बाधा पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। राजीव गाँधी ने कहा कि सरकार पंचायतों को पर्याप्त अधिकार सौंपने के लिये कृत संकल्प है और उसने विपक्ष के अवरोध डालने के प्रयास को नाकाम कर दिया है।

उन्होंने बताया कि पूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर गरीबों तक सीधे पहुँचने का प्रयत्न किया। परिणाम यह निकला कि उस जमाने में बैंकों की सात-आठ हजार शाखाएं काम करती थीं, जबकि आज सवा चालीस हजार शाखाएँ गरीब जनता की सेवा में लगी हैं।

राजीव गाँधी ने कहा कि ८० करोड़ लोगों की शिकायतों का निस्तारण करने के लिये पाँच हजार विधायक और पाँच सौ सांसद काफी नहीं हैं। घूम फिर कर गाँव और गलियों की समस्या मुख्यमन्त्रियों तथा स्वयं प्रधानमन्त्री के पास लाई जाती हैं। इन साढ़े पाँच हजार जनसेवकों के अतिरिक्त और जो सीढ़ियाँ होनी चाहियें वे गायब हो चुकी हैं। अस्सी करोड़ लोग जब माँगों के लिये दरवाजे खटखटा रहे हों, तब रिक्तता का सूत्र सरमाएदारों और भ्रष्टाचारियों के हाथों में सन्तुलन की चाबी सौंप देता है। पंचायती राज प्रणाली से अस्सी करोड़ जनता की आवाज सुनने का अधिकार २० लाख नुमाइन्दों के पास आ जायेगा जो निश्चित ही बहुत बड़ा है। तब समस्याओं का निस्तारण पंचायतघरों, मुहल्लों, गाँव और ब्लॉक स्तर पर ही जाया करेगा। इन प्रतिनिधियों को सौ से लेकर पाँच सौ लोग चुनेंगे, जो निश्चित रूप से सत्ता की दलाली करने वालों पर अंकुश लगाने का काम करेगा।

प्रधानमन्त्री ने कहा कि फासला बढ़ने से भ्रष्टाचार बढ़ता है सत्ता का गाँवों में हस्तान्तरण हो जाने से राज्यों को शक्ति मिलेगी और औद्योगिक विकास के साथ

मार्ग खुल जायेंगे। उन्होंने कहा कि सत्तानशीनी का पुराना तरीका इन चालीस सालों में बेमानी हो चुका है। लोकतन्त्र की शक्ति प्रधानमन्त्री को और अधिकार देकर सामंतशाही बढाने से नहीं, वरन् लोकतन्त्र को जनता के हाथों में सौपने से निपट सकती है।

इसमें सन्देह नही है कि पंचायती राज विधेयक देश मे पंचायती राज की स्थापना की दिशा मे एक क्रान्तिकारी कदम है। लेकिन कुछ विशेष कारणों से यह विधेयक संसद मे पारित नहीं हो सका। जनता दल की नयी केन्द्र सरकार इस विधेयक को संसद में पुनः प्रस्तुत करने का निश्चय कर चुकी थी परन्तु वह ग्यारह महीनो में हीं समाप्त हो गई। श्री चन्द्रशेखर की सरकार की चार महीनो मे ही इति श्री हो गई। अब देखिये श्री पी० वी० नरसिम्हाराव की सामञ्जस्य, सहयोग और सहमति वाली स्थायी सरकार इस कल्याणकारी दिशा में क्या पद न्यास करती है। आशा है कि यह विधेयक कानून बन कर भारत मे राम राज्य की स्थापना करने में सफल होगा। ●

की मृग मरीचिका ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को झकझोरना प्रारम्भ कर दिया। साम्राज्यवाद और दासता ने अग्नि में घी का काम किया और वह आदर्श व्यवस्था और पवित्र प्रणाली समाप्त नहीं तो समाप्त प्राय अवश्य हो गई।

भारत भूमि पर महात्मा गांधी की अवधारणा ने भारतीय पुरातन संस्कृति को एक बार फिर सजीवनी प्रदान की। गांधी जी ने जहां एक ओर स्वतन्त्रता प्राप्ति की लड़ाई लड़ी वही दूसरी ओर गांवो मे बसे भारत के सामाजिक एवं आर्थिक अभ्युत्थान के लिए भी संघर्ष किया। गांधी जी ने स्वतन्त्र भारत में पंचायती राज व्यवस्था की परिकल्पना और उसके सुचारु सम्पादन की अनिवार्यता पर यावज्जीवन बल दिया। गांधी जी से निर्देशित और अनुप्रेरित कांग्रेस ने पंचायती राज व्यवस्था को अपने नीति निर्देशक सिद्धान्तो में ग्रहण किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान निर्माण के समय प० जवाहरलाल नेहरू ने पंचायती राज व्यवस्था की अपरिहार्यता पर विशेष बल दिया। फलस्वरूप संविधान निर्माताओ ने भारत के संविधान में पंचायती राज व्यवस्था को स्वीकार किया। फलस्वरूप देश में पंचायत राज अधिकारियों और पंचायत सचिवों की प्रान्तीय स्तर पर नियुक्तियाँ हुईं। प्रारम्भ मे ऐसा लगा कि महात्मा गांधी का राम राज्य स्वप्न साकार होने जा रहा है, गांवों में बसी भारत की आत्मा शायद फिर से जी उठे। परन्तु विकासवाद की दौड़, विज्ञान के उत्कर्ष, बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना, युद्धोपकरणो का निर्माण, और युद्ध-जन्य विभीषिकाओ की सुरक्षा की तीव्र गति ने महात्मा गांधी की इस आदर्श व्यवस्था को मन्थर गति प्रदान कर दी। इन्दिरा जी के शासन काल मे इस दिशा में जीवनोन्मेष अवश्य हुआ परन्तु वांछित फल प्राप्ति संदिग्ध रही। हालांकि इन्दिरा जी के कार्य काल मे देश ने अद्वितीय गौरव प्राप्त किया और देश चरमोत्कर्ष पर था।

समान सामाजिक न्याय, समान आर्थिक सहायता वितरण और गरीबी की रेखा से नीचे दबे लोगो को सुखद जीवन बिताने के उद्देश्य से प्रारम्भ की गई जवाहर रोजगार योजना में बिना भ्रष्टाचार के सभी सहभागी बन सकें आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) की कार्य समिति द्वारा प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की अध्यक्षता में दिनांक ६ मई १९८९ को निर्णय लिया तथा प्रस्ताव रखा गया कि संविधान में एक नया अध्याय जोड़कर निचले स्तर पर लोकतन्त्र की जड़ो को फैलाया जाये। कार्य समिति ने सरकार को संस्तुति भेजी कि वह देश के लोकतान्त्रिक ढांचे में पंचायतों को उनका योग्य दर्जा दिलाने के लिये संविधान संशोधन विधेयक लाये। पंचायती राज संस्थाओं को अधिकार देने के लिये संविधान में एक नया अध्याय जोड़ा जाये। कार्य समिति ने ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तर पर तीन स्तरीय पंचायत राज प्रणाली अपनाने, इनको आर्थिक एवं सामाजिक विकास की योजनायें बनाने के लिए पर्याप्त कानूनी अधिकार देने तथा हर पांचवें वर्ष इन संस्थाओं के चुनाव कराने को

संस्तुति की। कार्य समिति ने यह भी सिफारिश की कि पंचायती राज संस्थाओं में आबादी के आधार पर अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिये सीटों के आरक्षण का संवैधानिक अधिकार दिया जाये तथा महिलाओं के लिये स्थान आरक्षित कर 'ऐतिहासिक कदम' उठाये जायें क्योंकि महिलायें ग्रामीण भारत के आर्थिक जीवन से गहरे रूप से जुड़ी हुई हैं।

२० मई १९८९ को अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) महासमिति का अधिवेशन हुआ तथा कार्य समिति के प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया। तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने इस अधिवेशन को ऐतिहासिक बताते हुए कहा कि इस विधेयक के आधार पर आठवीं योजना में काम शुरू हो जायेगा तथा नौवीं योजना में इसे पूरी तरह लागू कर दिया जायेगा। अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) कमेटी की महासमिति में पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी बनाने तथा उसे हर गाँव तक पहुँचाने के लिये संविधान में व्यापक संशोधन करके उसमें एक नया अध्याय जोड़ने की निम्नलिखित १३ सूत्री सिफारिश की।

१. पंचायती राज को संवैधानिक जनादेश प्रदान करने के लिए संविधान में एक नया भाग अंगीकार करना।

२. कम क्षेत्र वाले राज्यों या कम आबादी वाले राज्यों, जहाँ द्विस्तरीय ढाँचा पर्याप्त हो सकता है, को छोड़कर सम्पूर्ण देश में पंचायती राज त्रिस्तरीय ढाँचा स्थापित करना।

३. चुनाव आयोग के नियन्त्रण एवम् पर्यवेक्षण के अधीन सभी स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं के हर पाँच वर्ष में नियमित अनिवार्य चुनाव कराना।

जिस पंचायत राज संस्था को भंग कर दिया हो, उसे शेष कार्यकाल पूरा करने के लिए ६ महीनों के भीतर चुनाव द्वारा अवश्य पुनर्गठित किया जाये।

४. पंचायती राज संस्थाओं में सभी स्थान सामान्य वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव द्वारा भरे जायेंगे। इन संस्थाओं में निम्नलिखित का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के तरीके राज्य विधान मण्डलों द्वारा निर्धारित किये जायें—

(क) सांसदों एवम् विधायकों का

(ख) पंचायत राज संस्थाओं में तत्काल उच्च स्तर अर्थात् खण्ड तहसील, तालुका अथवा स्तर पर ग्राम पंचायतों के अध्यक्ष अर्थात् सरपंच, मुखिया, ग्राम प्रमुख आदि।

(ग) जिलास्तरीय संस्था में मध्यवर्ती स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं में अध्यक्ष और सहकारी संस्थाओं एवम् भूमि बैंकों जैसी संस्थाओं के प्रतिनिधि पंचायती राज

संस्थाओं के सभी स्तरों पर केवल चुने हुए सदस्यों द्वारा उनमें से भी सभी पदाधिकारियों का चुनाव किया जाये। जहाँ राज्य के विधान मण्डल ऐसा चाहें तो ग्राम पंचायत का अध्यक्ष निर्वाचक मण्डल द्वारा सीधे चुना जा सकता है।

५ लोक सभा एवम् विधान सभा की भाँति सम्बद्ध पंचायती राज संस्थाओं के प्रादेशिक अधिकार क्षेत्र में उनकी जनसंख्या के हिस्से के अनुपात में अनुसूचित जातियों एवम् अनुसूचित जन-जातियों के प्रतिनिधियों के लिये कम से कम एक स्थान के लिये स्थान आरक्षित किये जायें। इन प्रतिनिधियों को इसके लिए आरक्षित चुनाव क्षेत्रों में व्यापक मताधिकार द्वारा प्रजातान्त्रिक रूप से चुना जाये न कि इन्हें नामांकन या सहयोजन द्वारा नियुक्त किया जाये।

६ सभी पंचायती राज संस्थाओं में कम से कम ३० प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए अवश्य आरक्षित किये जायें। सभी महिला प्रतिनिधियों का इस प्रयोजन के लिये आरक्षित प्रादेशिक चुनाव क्षेत्रों में वयस्क मताधिकार द्वारा प्रजातान्त्रिक रूप से चुनाव किया जाये, न कि उन्हें नामांकन या सहयोजन द्वारा नियुक्त किया जाये। अनुसूचित जाति एवम् अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित कोटे में से ३० प्रतिशत स्थान या कम से कम एक स्थान के लिए इन समुदायों सम्बन्धी महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाये।

सामान्य चुनाव क्षेत्रों और आरक्षित चुनाव क्षेत्रों से महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों की कुल मिलाकर संख्या का निर्वाचित स्थानों के प्रस्तावित ३० प्रतिशत आरक्षण के भीतर समावेश किया जाये।

७ न्याय पंचायत निर्दिष्ट विषयों सम्बन्धी शक्तियों, अधिकारों तथा जिम्मेदारी पंचायती राज संस्थाओं को अवश्य सौंपी जानी चाहिए। इसके साथ-साथ उन संस्थाओं को आर्थिक साधनों की सुनिश्चित सुपुर्दगी की व्यवस्था भी होनी चाहिए तथा उनमें वित्तीय जिम्मेदारी का गहरा एहसास पैदा किया जाना चाहिए। इस प्रकार सभी स्तरों पर पंचायती राज संस्थायें निम्नलिखित बातों के लिए जिम्मेदार होंगी:—

(क) राज्य सरकार द्वारा दिये गये सामान्य मार्ग निर्देशों की रूप-रेखा में अपने-अपने कार्य-क्षेत्रों के अन्दर आर्थिक विकास तथा सामाजिक परिवर्तन के लिये योजना के मसौदे तैयार करना। योजनाओं के ये मसौदे उच्चतर स्तरों पर योजना तैयार करने तथा उसे अंतिम रूप देने के लिए मूल उपयोगी साधन होंगे।

(ख) निर्दिष्ट शर्तों पर अपने अधिकार क्षेत्रों में आने वाली विकास परियोजनाओं, कार्यक्रमों तथा योजनाओं का कार्यान्वयन।

८ सौंपी गई शक्तियों तथा आर्थिक साधनों का पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों तथा पदाधिकारियों के नियन्त्रण में रहना अनिवार्य होगा। उन्हें इस प्रणाली से बाहर के प्राधिकारियों को स्थानान्तरित नहीं किया जाना चाहिए। सभी

विकास एजेन्सियों तथा विकास से सम्बद्ध अधिकारी को अनिवार्य रूप से पंचायती राज प्रणाली में लगाया जाना चाहिए।

६. पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत अर्थव्यवस्था सुपुर्दगी का मूलभूत सिद्धान्त है। अर्थ प्रबन्ध निम्नलिखित से सुनिश्चित किया जाना चाहिए :—

(क) निर्दिष्ट कर लगाने, वसूल करने तथा प्राधिकार उपयोग में लाने का अधिकार।

(ख) इन्हें निर्दिष्ट करों मे से राजस्व प्रदान करना।

(ग) सहायता अनुदान।

१०. हालांकि शक्तियों तथा आर्थिक साधनों की सुपुर्दगी से सम्बन्धित कानून बनाने की जिम्मेदारी राज्य के विधान मण्डलों के पास रहेगी परन्तु राज्य वित्तीय आयोग की स्थापना के लिए संवैधानिक प्रावधान अवश्य किया जाना चाहिए जिससे कि उन सिद्धान्तो की सिफारिश की जा सके जिनके आधार पर पंचायती राज संस्थाओ की मजबूत अर्थव्यवस्था सुनिश्चित की जा सके।

११. यह सुनिश्चित करने के लिये बड़ी धनराशियाँ जो पंचायती राज संस्थाओं को उपलब्ध होंगी का उचित उपयोग किया जाये और भ्रष्टाचार अथवा भाई-भतीजावाद न हो, लेखा प्रक्रिया को अवश्य ही सख्ती से लागू किया जाना चाहिये। इसके लिए भारत के महानियन्त्रक तथा लेखा परीक्षक की सहायता अवश्य ली जाये।

१२. ग्राम प्रशासन को पारस्परिक पद्धतियों और सामुदायिक विकास वाले उत्तर-पूर्वी राज्यों को यदि वे चाहे तो इन पारस्परिक पद्धतियों को जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है। संविधान की पाँचवीं और छठी अनुसूचियों के अन्तर्गत आने वाले अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जन-जातियों को भी इनकी वर्तमान संस्थाओं के लिए विशेष संरक्षण दिया जाना चाहिए। संघ शासित क्षेत्रों में पंचायती राज के कार्यान्वयन में वहाँ की विशेष परिस्थितियों का ध्यान रखा जाना चाहिये।

१३ वर्तमान विधान का प्रस्ताव संवैधानिक संशोधन के अनुरूप बनाने के लिये इसका संशोधन करने हेतु राज्य विधान मण्डलों को पर्याप्त समय दिया जाना चाहिये. वर्तमान चुनी हुई राज्य संस्थाओं को अपना वर्तमान कार्यकाल पूरा करने की अनुमति देने पर विचार किया जाये।

१५ मई १९८९ को लोक सभा में प्रधान-मन्त्री राजीव गांधी द्वारा पंचायती राज्य विधेयक (लोक सभा) संसद में पेश होना था। इससे पूर्व १३ मई १९८९ को केन्द्र सरकार द्वारा इस ६४वें संशोधन के उद्देश्यों के सम्बन्ध में एक वक्तव्य प्रसारित किया गया। इसमें कहा गया कि इस विधेयक का उद्देश्य तीन स्तरीय पंचायत व्यवस्था स्थापित करना है। विधेयक में चुनाव आयोग की देखरेख मे सावधिक चुनावों और महिलाओं के लिए ३० प्रतिशत सीटों के आरक्षण का प्रावधान है। लेकिन प्रस्तावित विधेयक में राज्यसरकारों द्वारा स्थानीय निकायों को भंग करने का कोई प्रावधान नहीं

है। यह प्रावधान कुछ अखबारो में प्रकाशित विधेयक के प्रारूप में था और इसकी गैर-कांग्रेस (इ) मुख्य-मन्त्रियों एव विपक्षी दलों के नेताओं ने जमकर आलोचना की था। पचायतो का चुनाव कराने की जिम्मेदारी पूरी तरह से निर्वाचन आयोग की होगी तथा उसके लेखाओ की जाँच का काय नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को सौंपा गया है। पचायतो को वित्त उपलब्ध कराने की व्यवस्था राज्य की सचित निधि से की गई है। इसके अलावा पचायतो के बारे मे कानून बनाने का अधिकार राज्य विधानमण्डलों का होगा। प्रधानमन्त्री राजीव गांधी द्वारा पेश किये जाने वाले इस सशोधन विधेयक मे राज्यो मे प्रत्येक पाँच वर्ष मे वित्त आयोगो के गठन की व्यवस्था है, जो, पचायतों की वित्तीय व्यवस्था की समीक्षा करेगा ताकि ये पचायतें चुगीकरो, शुल्को एव करों के माध्यम के सुदृढ वित्तीय व्यवस्था गठित कर सकें। यह विधेयक पूरे एक वर्ष तक प्रधान मन्त्री गांधी द्वारा विभिन्न राज्यों के जिला स्तर के प्रशासन तन्त्र के साथ विचार विनिमय और अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) महासमिति के सम्मेलन मे पारित प्रस्ताव के बाद लाया जा रहा है। इस प्रस्ताव का नारा था "जनता को अधिकार।" विधेयक के उद्देश्यों एव कारणों सम्बन्धी वक्तव्य मे कहा गया है कि पचायती राज सस्थान के कार्यकलापों की समीक्षा ने दर्शाया है कि कई राज्यो में ये सस्थायें कई कारणों से कमजोर एव प्रभावहीन हो गई हैं। विधेयक के अनुसार पचायती राज सस्थाओं के कमजोर एव प्रभावहीन होने के पीछे जो कारण हैं उसमें समय-समय पर नियमित रूप से चुनाव नहीं कराना तथा इनमे समाज के कमजोर वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं देना और उनके पास पर्याप्त वित्तीय ससाधनों का नही होना है।

विधेयक में प्रावधान है कि सभी राज्यो मे तीन स्तरीय पचायती राज्य व्यवस्था स्थापित करना अनिवार्य है। ये तीन स्तर हैं—गांव, प्रखण्ड और जिला। लेकिन २० लाख से कम आबादी वाले राज्यो के लिये प्रखण्ड स्तर पर पचायतो की स्थापना आवश्यक नही। विधेयक मे यह भी प्रावधान है कि सभी स्तरों पर पचायतो की सभी सीटों को प्रत्यक्ष चुनाव के जरिये भरा जाये। विधेयक मे पचायतों में अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति और महिलाओ को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई है। इसमें पचायतों के लिये पाँच वर्षों का कार्यकाल निर्धारित किया गया है। किसी पचायत के अपने कार्यकाल से पहले ही भग कर दिए जाने की स्थिति मे भग करने के छः माह के भीतर नया चुनाव कराने का प्रावधान है। पचायत मे सभी स्तरो के पदाधिकारियों की नियुक्ति सीधे चुनाव के जरिये होगी, किन्तु राज्य विधान सभायें यदि चाहें तो वे पचायतों मे विधायको और सासदो को भी प्रतिनिधित्व दे सकेंगे लेकिन इन प्रतिधियों को मतदान का अधिकार नहीं होगा।

विपक्ष के कडे विरोध के बाद प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने पचायती राज सस्थाओं के अधिकारों मे और अधिक वृद्धि करने सम्बन्धी बहुप्रतीक्षित ६४वाँ सविधान सशोधन विधेयक १५ मई १९८९ को पेश किया। प्रधानमन्त्री ने कहा कि "इस विधेयक से जनता और शासन के बीच सत्ता के दलाल और बिचौलिये समाप्त हो

मार्ग खुल जायेंगे। उन्होंने कहा कि सत्तानशीनी का पुराना तरीका इन चालीस सालों में बेमानी हो चुका है। लोकतन्त्र की शक्ति प्रधानमन्त्री को और अधिकार देकर सामंतशाही बढाने से नही, वरन् लोकतन्त्र को जनता के हाथों में सौंपने से निपट सकती है।

इसमें सन्देह नहीं है कि पंचायती राज विधेयक देश में पंचायती राज की स्थापना की दिशा मे एक क्रान्तिकारी कदम है। लेकिन कुछ विशेष कारणों से यह विधेयक संसद मे पारित नहीं हो सका। जनता दल की नयी केन्द्र सरकार इस विधेयक को संसद में पुनः प्रस्तुत करने का निश्चय कर चुकी थी परन्तु वह ग्यारह महीनों में ही समाप्त हो गई। श्री चन्द्रशेखर की सरकार भी चार महीनो मे ही इति श्री हो गई। अब देखिये श्री पी० वी० नरसिम्हारांव की सामञ्जस्य, सहयोग और सहमति वाली स्थायी सरकार इस कल्याणकारी दिशा में क्या पद न्यास करती है। आशा है कि यह विधेयक कानून बन कर भारत मे राम राज्य की स्थापना करने में सफल होगा। ●

१. "साहित्य समाज का दर्पण है"

अथवा

"साहित्य अपने व्यापक अर्थ में समाज के गूंगे इतिहास का मुखर सहोदर है"

अथवा

"साहित्य अपने समय का प्रतिबिम्ब होता है"

"हितेन सहितम्, सहितम्, साहितस्य भाव साहित्यम्" इस विग्रह के अनुसार साहित्य का शाब्दिक अर्थ है 'जिसमें हित की भावना सन्निहित हो।' अपने हित-अहित का भान तो पशु-पक्षियों को भी होता है, जैसा कि 'गोस्वामी' तुलसीदास स्वीकार करते हैं, 'हित अनहित पशु पक्षिहु जाना।' फिर इससे तो मानव एक बुद्धि-जीवी प्राणी ठहरा। उसे तो यह ज्ञान अवश्य होना चाहिये। मनुष्य की भाँति साहित्य भी हित चिन्तन करता है, परन्तु मनुष्य और साहित्य के हित चिन्तन में अवनि और अम्बर का अन्तर है। साधारणतया मनुष्य का हित चिन्तन संकुचित 'स्व' पर आधारित रहता है उसकी सीमित दृष्टि केवल अपना ही चक्कर लगाकर लौट आती है, परन्तु साहित्य का हितचिन्तन विश्वात्मैक्य और विश्व कल्याण की भावना पर आधारित होता है। एक व्यक्तिगत हित-चिन्तन है, दूसरा समष्टिगत। अत जिस ग्रन्थ में समष्टिगत हित-चिन्तन प्राप्त होता है, वही साहित्य है। इसीलिये विद्वानों ने 'ज्ञान-राशि' के सञ्चित कोष का नाम 'साहित्य' कहा है। प्रत्येक युग का श्रेष्ठ साहित्य अपने युग के प्रगतिशील विचार द्वारा किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित होता है।

साहित्य हमारी कौतूहल और जिज्ञासा वृत्ति को शान्त करता है, ज्ञान की पिपासा को तृप्त करता है और मस्तिष्क की क्षुधापूर्ति करता है। जठरानल से उद्विग्न मानव अन्न के एक-एक कण के लिये लालायित रहता है उसी प्रकार मस्तिष्क भी क्षुधाग्रस्त होता है, उसका भोजन हम साहित्य से प्राप्त करते हैं। केवल साहित्य के ही द्वारा हम अपने राष्ट्रीय इतिहास, देश की गौरव गरिमा, संस्कृति और सभ्यता, पूर्वजों के अनुभूत विचारों एवम् अनुसंधानों, प्राचीन रीति रिवाजों रहन-सहन और परम्पराओं से परिचय प्राप्त करते हैं। आज से एक शताब्दी या दो शताब्दी पहले देश के किस भाग में कौन सी भाषा बोली जाती थी, उस समय की वेश-भूषा क्या थी, उनके [illegible] धार्मिक विचार कैसे थे, धार्मिक दशा कैसी थी, यह सब कुछ [illegible] अध्ययन से ज्ञात हो जाता है। सहस्रों वर्ष पूर्व भारतवर्ष शिक्षा और आध्यात्मिक [illegible] में उन्नति की चरम सीमा पर था, यह बात हमें साहित्य ही बताता है। हमारे पूर्वजों के श्लाघ्य कृत्य आज भी साहित्य द्वारा हमारे जीवन को अनुप्राणित करते हैं। कवि बाल्मीकि की पवित्र वाणी आज भी हमारे हृदय मरुस्थल में मंजु मंदाकिनी प्रवाहित कर देती है। गोस्वामी तुलसीदास जी का [illegible] काव्य आज [illegible] में भटकते हुए असंख्य भारतीयों का आशीर्वाद की भाँति पथ प्रदर्शन कर रहा है। कालिदास का अमर काव्य भी आज के शासकों के समक्ष रघुवंशियों के लोकप्रिय शासन का आदर्श उपस्थित कर रहा है। जिस देश और जाति के पास जितना उन्नत और समृद्धिशाली साहित्य होगा वह देश और वह जाति उतनी ही अधिक उन्नत और समृद्धिशाली समझी जायेगी। कितनी ही जातियाँ और कितने ही नवीन इस

उत्पन्न हुए परन्तु ठोस एवम् स्थायी साहित्य के अभाव में उन्हे काल-कवलित होना पड़ा। आज भारतवर्ष युगों-युगों से अचल हिमालय की भाँति अडिग खड़ा है, जबकि प्रभंजन और झंझावात आये, और चले गये। यदि आज हमारे पास चिर समृद्ध साहित्य न होता तो न जाने हम कहाँ होते और होते भी या नही, कुछ कहा नही जा सकता।

साहित्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। ये परस्पर अन्योन्याश्रित है।

साहित्य समाज का दर्पण है

१. प्रस्तावना।
२. साहित्य की उपयोगिता।
३. साहित्य और समाज का सम्बन्ध।
४. साहित्य पर समाज का प्रभाव।
५. उपसंहार।

समाज यदि शरीर है, तो साहित्य उसकी आत्मा। साहित्य, मानव मस्तिष्क की देन है। मानव सामाजिक प्राणी है, उसका संचालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा सब कुछ समाज मे ही होता है। वह परावलम्बी और स्वावलम्बी ज्ञान के आधार पर अपना ज्ञानार्जन करता है फिर उसके हृदय में एक नैसर्गिक लालसा उत्पन्न होती है कि वह भी अपनी भावना और विचारों को संसार के आगे अभिव्यक्त करे। साहित्यकार समाज का प्राण होता है। वह तत्कालीन समाज की रीति-नीति, धर्म-कर्म और व्यवहार-वातावरण से ही अपनी सृष्टि के लिये प्रेरणा ग्रहण करता है और लोक भावना का प्रतिनिधित्व करता है। अतः समाज की जैसी भावनायें और विचार होंगे, तत्कालीन साहित्य भी वैसा ही होगा। यदि समाज मे धार्मिक भावना अधिक होगी तो साहित्य भी उस भावना से अछूता नहीं रह सकता और यदि समाज मे विलासिता का साम्राज्य है, तो साहित्य भी शृंगारिक होगा, क्योंकि साहित्यकार लोक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। साहित्य सृष्टा भी प्रतिभा-सम्पन्न होने के कारण अपने साहित्य की छाप समाज पर छोड़े बिना नही रह सकता। साहित्य मे वह शक्ति है जो तोप तथा तलवारो में भी नहीं होती। भिन्न-भिन्न देशो मे जितनी भी क्रान्तियाँ हुई, वे सब वहाँ के सफल साहित्यकारो की ही देन है। प्लेटो और अरस्तू के नवीन सिद्धान्तो ने राज्य और अधिकारो के स्वरूपो को ही बदल दिया। जयपुर के राजा जयसिंह जिन्हें मंत्रियो और सभासदों की शुभ सम्मति न बदल सकी, महाकवि बिहारी के एक दोहे ने उसका मार्ग सदैव के लिये प्रशस्त कर दिया। साराश यह है कि समाज, साहित्य को और साहित्य, समाज को प्रभावित किये बिना नही रह सकता। साहित्य और समाज [illegible] आश्रित है, अवलम्बित हैं।

समाज के वातावरण की नीव पर ही साहित्य का प्रासाद खड़ा होता है। जिस समाज की जैसी परिस्थितियाँ होंगी वैसा ही उसका साहित्य होगा। साहित्य समाज की प्रतिध्वनि, प्रतिच्छाया और प्रतिबिम्ब है। आचार्य महावीर प्रसाद जी का यह कथन कि "साहित्य समाज का दर्पण है" नितान्त सत्य है। किसी देश के, किसी समय का ठीक-ठीक चित्र यदि हम कही देख सकते है, तो वह देश के तत्कालीन साहित्य में सम्भव है। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर सिंहावलोकन करने से हमे स्पष्ट हो जायेगा कि समय और समाज के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य मे भी परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल एक प्रकार से युद्ध युग था, मुसलमानो के आक्रमण आरम्भ हो गये थे, हिन्दू राजपूत अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए **"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्"** इस गीता के सिद्धान्त पर विश्वास करते हुए आक्रमणकारियों से लोहा लेते और हँसते-हँसते युद्ध-भूमि में अपने प्राणोत्सर्ग कर देते थे।

राज्य-वृद्धि तथा स्वाभिमान की तृप्ति के लिए भी परस्पर युद्ध हो जाते थे। कभी-कभी स्त्रियों की सुन्दरता भी युद्ध का आह्वान कर लेती थी। उस समय के साहित्यकार चारण थे जो लेखनी के चमत्कार के साथ साथ तलवार के कौशल मे भी कुशल होते थे। अपने-अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करके उन्हें युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने तथा युद्धों का सजीव चित्रण करने मे ही उनके कर्त्तव्य की सार्थकता थी। अतः तत्कालीन साहित्य में वीर-रस प्रधान रचनायें हुईं और साहित्य, समाज के युद्धमय वातावरण से अछूता न रह सका।

विदेशियों का भारतवर्ष में आधिपत्य हो चुका था, राजपूतों में जब तक शक्ति थी, साहस था, तब तक वीर काव्य अग्नि मे घृत का काम करते रहे, परन्तु जब धन-जन की शक्ति नष्ट हो गई तब स्तवन और साहसमात्र से क्या लाभ होता क्योंकि "निर्वाणदीपे कि तैलदानम्" अर्थात् जब दीपक बुझ गया तब उसमे तेल देने से क्या लाभ। निरीह और निराश्रित जनता को पग पग पर आपत्तियों का सामना करना पड़ता था। उनके जीवन में निराशा अपना घर किये जा रही थी। विपद्ग्रस्त व्यक्ति ही ईश्वरीय सहायता की याचना करता है, संसार में निराश व्यक्ति ही भगवदाश्रय ग्रहण करता है। इसीलिए भक्ति-काल आया और कवियों ने भक्ति काव्य की रचना की।

तात्पर्य यह है कि समाज के विचारों, भावनाओं और परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार और उसके साहित्य पर निश्चित रूप से पड़ता है। अतः समाज का दर्पण साहित्य का होना स्वाभाविक ही है। साहित्य अपने समय का प्रतिबिम्ब है, वह समाज के गूंगे इतिहास का मुखर सहोदर है।

२ मेरा प्रिय कवि

अथवा

"बिहारी के काव्य मे गागर मे सागर भरा हुआ है"

मेरा प्रिय कवि (महाकवि बिहारी)
१ प्रस्तावना।
२ जीवन वृत्त।
३ आचार्यत्व।
४ बहुज्ञता।
५ संयोग वर्णन।
६ वियोग वर्णन।
७ भक्ति वर्णन।
८ अलंकार प्रयोग।
९ उपसंहार—हिन्दी साहित्य में महाकवि बिहारी का स्थान।

आविर्भाव का समय—अपनी अपनी मन की बात है। किसी को मीठा अच्छा लगता है और किसी को खट्टा और नमकीन। किसी को मीठा दूध अच्छा लगता है, तो किसी को मिर्चों वाली चाट। हिन्दी साहित्य के अथाह समुद्र म अनेक महाकवि रत्न हैं। किसी को कोई रत्न पसन्द है किसी को कोई। महाकवि बिहारी का नाम आते ही मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है। उनकी अपार विद्वत्ता, गहन पाण्डित्य और चमत्कारपूर्ण काव्य सौष्ठव के सामने मस्तक स्वतः ही झुक जाता है। बिहारी की कविता हृदयंगम करने के लिए यह आवश्यक है कि जिस समय बिहारी ने काव्य रचना की थी, उसका पूर्ण ज्ञान हो। तभी हम उस महाकवि की पंक्तियों को समझ सकेंगे। [illegible] बिहारी सत्रहवीं शताब्दी [illegible] थे। इनके [illegible] सुमना और [illegible] भी इसी [illegible] विद्यमान थे। परन्तु जब बिहारी की अवस्था छोटी ही थी तब तक तुलसी का स्वर्गवास हो गया था। बिहारी ५

समकालीन कवियों में भूषण तथा देव के नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। यह समय भारतवर्ष के लिए सुख और समृद्धि का समय था, देश में सर्वत्र शान्ति छाई हुई थी। जहाँगीर और शाहजहाँ विलास की सरिता में गोते लगा रहे थे। "यथा राजा तथा प्रजा" की उक्ति उस समय पूर्णरूपेण चरितार्थ हो रही थी। प्रजा में भी विलासिता ने घर कर लिया था। अतः देश में ऐसे विलासमय वातावरण में रसिक जनों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। कविगण अपने आश्रयदाताओं को सन्तुष्ट करने के लिए विलासिता-प्रधान कविताओं की रचना करते थे।

जीवन वृत्त—महाकवि विहारी का जन्म सम्वत् १६५२ में ग्वालियर में हुआ था। ये जाति के माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम केशवराय था। इनकी ससुराल मथुरा थी, जैसा कि इस दोहे से स्पष्ट है—

जनम ग्वालियर जानिए, खण्ड बुन्देले, बाल।
तरुनाई आइ सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥

अपने पिता की श्रीकृष्ण के साथ समानता करते हुए विहारी लिखते हैं—

प्रगट भये द्विजराजकुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसव राइ॥

विहारी को अपनी ससुराल बड़ी प्रिय थी। वे वहीं जाकर रहने लगे परन्तु धीरे-धीरे इनका आदर-सत्कार कम होने लगा। वहाँ रहने पर इन्होंने जो अनुभव किया उसकी अभिव्यक्ति देखिये—

आवत जात न जानिए, तेजहिं तजि सियरान।
घरहिं जवाईं लौं घट्यौ, खरौ पूस दिन मान॥

ससुराल से निरादृत होकर ये सम्भवतः जयपुर चले गये। महाराजा जयसिंह ने अपनी नवेली रानी के प्रेम में पड़कर सब राजकाज भुला दिया था। विहारी ने अपने कवित्व के बल पर अन्योक्ति का आश्रय लेकर उन्हें इस मोह-निद्रा से जगा दिया। कवि की दशा यह थी—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहि काल।
अली, कली ही सौं बिंध्यौ, आगे कौन हवाल॥

विहारी का व्यक्तित्व पूर्ण रसमय था, नारी सुन्दर हो या कुरूप, सभी पर अपनी जान देते थे। उन्होंने लिखा है, "नारि सलौनी सांवरी नागिन लौं डसि जाय।" स्वाभिमानी और स्पष्टवादिता में वे रसिकता से भी एक पग आगे थे। एक ओर जयसिंह की मोहनिद्रा भंग की, दूसरी ओर मुगलों का पक्ष लेकर हिन्दू राजाओं के आक्रमण करने से जयसिंह को रोका भी—

स्वारथु, सुकृत न, स्रमु वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज, पराए पानि परि, तू पंछिनु न मारि॥

आचार्यत्व—अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति विहारी ने कोई लक्षण-ग्रन्थ नहीं लिखा। कारण यह था कि जिस पद की लालसा से तत्कालीन कवि लक्षण-ग्रन्थ लिखते थे, वह राजकवि का पद उन्हें पहले ही प्राप्त हो चुका था। शृंगार के जितने भी अनुभव, विभाव, संचारी भाव हो सकते हैं, इन सबके पुष्ट उदाहरण उनकी 'सतसई' में मिलते हैं। उनका प्रत्येक दोहा स्वयम् में लक्षण ग्रन्थ है। स्थान-स्थान पर अभिधा, लक्षणा, व्यंजना आदि शक्तियों के उनके काव्य में दर्शन होते हैं। इसलिये इनके दोहों को "नाविक के तीर" की संज्ञा दी गई है, जो देखने में छोटे लगते हैं, परन्तु घाव बड़ा गहरा करते हैं।

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक के तीर। देखत में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर॥

भाव सबलता में ये महाकवि सिद्धहस्त थे। एक ही दोहे में बिहारी ने अनेक अनुभाव, भाव सौन्दर्य तथा सूक्ष्म मनोवृत्तियों का चित्रण बड़ी योग्यता पूर्वक किया है—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सों बात॥

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनु हँसै दैन कहै नटि जाइ॥

बहुज्ञता—बिहारी में सर्वतो मुखी प्रतिभा थी, प्रकाण्ड पाण्डित्य था। उन्हें गणित ज्योतिष, दर्शन विज्ञान, वैद्यक आदि विभिन्न विषयों का पर्याप्त ज्ञान था। सर्वप्रथम बिहारी की दार्शनिक पंक्तियों को लीजिये। दर्शन सम्बन्धी गूढ़ रहस्यों को उन्होंने कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—

मैं समुझ्यो निरधार, यह जगु काँचो काँच सो।
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जगत्॥

जगत जनायौ जिहि सकल सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौं आँखिन सबु देखियै आँखि न देखी जाँहि॥

यद्यपि इन बातों को साधारण आदमी भी जानता है कि यह संसार असार है, इसमें सब कुछ ब्रह्म का ही स्वरूप है, परन्तु इन उक्तियों को काव्य रस से सींचकर पाठकों के सामने कोई कोई विद्वान् ही रख सकते हैं। इसी प्रकार बिहारी ने गणित के दो सामान्य नियमों को नायिका का सहारा लेकर बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—

कहत सबै बेंदी दिए, आँकु दसगुनों होतु।
तिय लिलार बेंदी दिए, अगनित बढ़त उदोतु॥

कुटिल अलकु छुटि परतु मुख बढ़िगो इतो उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यों, दाम रुपैया होतु॥

विषम ज्वर में वैद्य प्रायः सुदर्शन चूर्ण दिया करते हैं—

यह बिनसतु नगु राखिकै जगत् बड़ो जसु लेहु।
जरी विषम जुर ज्याइयै, आइ सुदरसन देहु॥

उनके ज्योतिष सम्बन्धी दोहों से स्पष्ट है कि उनका ज्योतिष शास्त्र का अन्य विषयों की अपेक्षा अच्छा अध्ययन था। उन्होंने इन दोहों में उसी जानकारी का परिचय दिया है—

मंगल बिन्दु सुरंग, मुख ससि केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगतु॥

इसी प्रकार बड़ी सुन्दरता से उन्होंने राजनीतिक बातों पर भी प्रकाश डाला है इस विषय में यह दोहा अधिक प्रसिद्ध है—

दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यों न बढ़ै दुख द्वन्द।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चन्द॥

महाकवि बिहारी ने रसराज शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के वर्णन में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है। प्रेम के संयोग वर्णन में कविगण प्रायः आलम्बन के रूप में तथा उसके हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है, उसी का वर्णन किया करते हैं। नायक नायिकाओं में परस्पर हास्य विनोद की उक्तियाँ भी होती हैं। ऋतुओं का वर्णन भी

उद्दीपन के रूप में किया करते हैं। बिहारी ने भी इन सभी परम्परागत बातों का वर्णन किया है। प्रेमी अपने प्रिय के प्रेम में ऐसा लीन हो जाता है कि उसे प्रिय की साधारण से साधारण वस्तु भी अधिक प्रिय प्रतीत होती है। प्रेम ने नायिका को पागल बना दिया है। नायक पतंग उड़ा रहा है। उसकी पतंग की परछाईं नायिका के आँगन में पड़ रही है। नायिका पागल सी उसे पकड़ती फिर रही है। पतंग की छाया के स्पर्श में उसे नायक के संस्पर्शज सुख का आनन्द प्राप्त हो रहा है—

उड़ति गुड़ी लखि ललन की अँगना अँगना माहि।
बौरी लौं बौरी फिरति, छुवत छबीली छाँहि॥

जब प्रेमी अपनी सीमा से अधिक प्रेम में तल्लीन हो जाता है, तब उसे आत्म-विस्मरण हो जाता है, वह अपने आपको ही प्रिय समझने लगता है—

पिय कैं ध्यान गही गही, वही रही ह्वै नारि।
आपु आपु ही आरसी, लखि रीझति रिझवारि॥

प्रेम को अपनी प्रियतमा का संयोग प्राप्त करने में कैसा भी कष्ट उठाना पड़ता है, वह उसे अपना सौभाग्य समझता है। नायिका के पैर में काँटा लगा, परन्तु साथ ही उसका जीवन भी सार्थक हो गया और हो भी क्यों न, जबकि स्वयं प्रियतम ने अपने हाथ से आकर निकाला—

इहिं काँटें मो पाँइ गड़ि, लीनी मरति जिवाइ।
प्रीति जनावत भीति सों मीत जु काढ्यौ आइ॥

नायक-नायिका "आँख-मिचौनी" का खेल खेल रहे हैं, परन्तु **"दोऊ चोर मिहीं-चनी खेलु न खेलि अघांत"**। भला वे क्यों अघाने लगे, जबकि—

प्रीतम-दृग मिहचत प्रिया, पानि-परस सुख पाइ।
जानि पिछानि अजान लौं, नेंकु न होति जनाइ॥

नायिका को नायक से मजाक करने की सूझी है, वह सोने का बहाना करके पलंग पर जा लेटी। परन्तु—

मुख उघारि पिउ लखि रहत, रह्यौ न गौ मिस सैन।
फरके ओठ उठे पलक, गए उघरि जुरि नैन॥

नायक नायिका की गोद में से बच्चे को ले रहा है। शिशु के प्रति वात्सल्य भावना का तो नायिका को पता नहीं चलता, परन्तु—

लरिका लैबे के मिसहिं, लंगर मो ढिग आइ।
गयौ अचानक आँगुरी, छाती छैल छुवाइ॥

वियोग वर्णन—बिहारी ने विरह की सभी दशाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया है। वियोग का सबसे निखरा हुआ रूप प्रवास में दृष्टिगोचर होता है। बिहारी ने भी इसीलिए प्रवास का सबसे अधिक वर्णन किया है। प्रिय के सामने प्रेम का स्वाँग दिखाना तो सरल है, परन्तु सबसे सच्चा प्रेम वही है, जो अपने प्रियतम के विरह में पागल हो उठता है। यही कारण है कि बिहारी ने विरह का विशद वर्णन किया है। परन्तु कहीं-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन उपहासास्पद अवश्य बन गया है। नायिका को विरह की अग्नि में इतना तपा देना स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता कि औंधाई हुई गुलाब जल की शीशी बीच में ही सूख जाये—

औंधाई सीसी सुलखि, विरह बरति बिललात।
बिचहीं सूखि गुलाब गो, छींटों छुयौ न गात॥

विरहावस्था मे किसी काम मे चित्त नही लगता। प्रकृति के वे पदार्थ जो प्रियतम की उपस्थिति मे अत्यन्त सुखद प्रतीत होते हैं, वे ही विरह मे दुखदायी बन जाते हैं। ये भाव बिहारी ने कितनी सुन्दरता से व्यक्त किये हैं —

हौ हीं बौरी विरह बस, कै बौरो सबु गाउ।
कहा जानि ए कहत हैं, ससिहि सीतकर नाँउ॥

नायक को परदेश से लौट अभी थोडा ही समय हुआ है और उन्हें फिर विदेश-गमन की लगन उठ आई है। इस पर सखी कितनी सुन्दर उक्ति कहती है—

अजौं न आए सहज रंग, विरह दूबर गात।
अब ही कहा चलाइयतु, ललन चलन की बात॥

नायक और नायिका विरहावस्था मे एक दूसरे को पत्रों द्वारा सन्देश भेजा करते थे। नायिका के द्वारा बिहारी ने नायक को जो सन्देश भिजवाया है, वह बहुत ही मार्मिक है—

कागद पर लिखत न बनत, कहत सदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरो हियो, मेरे हिय की बात॥

भक्ति वर्णन—बिहारी भक्ति के विषय मे किसी विशेष सिद्धान्त के मानने वाले नहीं थे, उन्होने सगुण और निर्गुण दोनो प्रकार का वर्णन किया है। अपने मत के विषय में उन्होंने लिखा है—

अपने अपने मत लगे बादि मचावत सोर।
ज्यौं-त्यौं सबको सेइबो, एकै नन्द किसोर॥

बिहारी भगवान से मुक्ति की याचना करते हुए कहते हैं—

मोहूँ दीजै मोषु, ज्यौं अनेक पतितनु दियौ।
जो बाँधे ही तोषु, तौ बाँधौ अपने गुननि॥

भगवान् को ही अपना मानकर धनवानो के प्रति उनकी यह उक्ति कितनी सुन्दर है—

कोऊ कोटिक सग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति जदुपति सदा, विपति बिदारनहार॥

अलङ्कार प्रयोग—बिहारी के काव्य मे यमक, श्लेष, अनुप्रास, असङ्गति आदि अलकार के अनेक उदाहरण भरे पडे हैं—

अनुप्रास—यमक, वीप्सा, युक्त—
रनित भृंग घटावली, झरत दान मधुनीर।
मंद मंद आवत चल्यो, कुंजर कुंज समीर॥

यमक—तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान।

श्लेष—चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यौं न सनेह गम्भीर।
को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

उत्प्रेक्षा—सोहत ओढे पीत पटु, स्याम सलोने गात।
मनौं नीलमनि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात॥

बिहारी के काव्य के विषय मे गोस्वामी राधाकृष्ण जी ने लिखा है कि "यदि सूर सूर तुलसी शशी, उडुगन केशवदास हैं, तो बिहारी पीयूषवर्षी मेघ हैं, जिनके उदय

होते ही उसका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है। फिर उसकी वृष्टि से कवि कोकिल कुहुकने, मन मयूर नृत्य करने और चातक चहकने लगते हैं।" बिहारी का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है, उपरोक्त पंक्तियों से पर्याप्त स्पष्ट है। अपनी समास शक्ति और समाहार योजना के अद्वितीय पाण्डित्य के कारण बिहारी ने निस्सन्देह गागर में सागर भर दिया है।

३. आपके प्रिय निबन्धकार की शैलीगत विशेषतायें

अथवा

मेरा प्रिय लेखक—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

अथवा

हिन्दी में वैज्ञानिक समालोचना के जन्मदाता

मेरे सर्वप्रिय लेखक, निबन्धकार एवं हिन्दी मे वैज्ञानिक समालोचना के जन्मदाता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी हैं। शुक्ल जी हिन्दी के अद्भुत समालोचक, उच्चकोटि के निबन्धकार तथा सहृदय एवम् भावुक कवि थे। उनकी जैसी मौलिक विवेचना शक्ति, लेखकों के मनोभावों का सूक्ष्म निरीक्षण तथा गुण-दोषों के मूल्यांकन की अपूर्व क्षमता आज तक के समालोचकों एवं निबन्धकारों मे दृष्टिगोचर नहीं होती। हिन्दी गद्य साहित्य मे जो स्थान शुक्ल जी को प्राप्त है, वह स्थान अन्य किसी लेखक को नहीं मिल पाया।

शुक्ल जी का जन्म सम्वत् १९४१ में बस्ती जिले के अगोना ग्राम में हुआ था। शुक्ल जी के पिता का नाम चन्द्रबली था, जो सुपरवाइजर कानूनगो थे। हम्मीरपुर से स्थानान्तरित होकर जब ये राठी ग्राम में पहुँचे तब शुक्ल जी की शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। घर पर संस्कृत का अध्ययन कराया जाता था और स्थानीय मिडिल स्कूल में उर्दू और अंग्रेजी का। लन्दन मिशन स्कूल से हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् शुक्ल जी इण्टर में पढ़ने के लिये प्रयाग आये। पढ़ना प्रारम्भ किया। गणित में कमजोर होने के कारण परीक्षा मे सफल न हो सके। इसके पश्चात् इन्होंने एक अंग्रेजी ऑफिस में बीस रुपये मासिक की क्लर्की कर ली। परन्तु उनकी स्वाभिमानी प्रकृति को यह कार्य रुचिकर न था फलस्वरूप उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और मिर्जापुर के मिशन स्कूल में ड्राइङ्ग मास्टर हो गए। इसी बीच में उनके कई साहित्यिक निबन्ध "सरस्वती" में प्रकाशित हुए तथा साहित्य प्रेमियों द्वारा सम्मानित हुए। शुक्ल जी की साहित्यिक प्रतिभा से प्रभावित होकर काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने उन्हें "हिन्दी शब्द सागर" के सम्पादन का कार्यभार सौंपा। इसके पश्चात् शुक्ल जी की नियुक्ति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में हो गई। यह आलोचक-सम्राट सम्वत् १९९७ में हिन्दी संसार से चल बसा।

मेरा प्रिय लेखक

१. प्रस्तावना।
२. जीवन परिचय।
३. हिन्दी साहित्य में शुक्ल जी का योगदान।
४. उपसंहार।

शुक्ल जी ने हमें सर्वथा नवीन एवम् मौलिक ग्रन्थ दिए हैं। चिन्तामणि, विचार वीथी, काव्य में रहस्यवाद, आपके उच्चकोटि के निबन्ध संग्रह हैं। गोस्वामी तुलसीदास, सूर तथा जायसी की समालोचनायें और हिन्दी साहित्य का इतिहास शुक्ल जी की अमर कृतियाँ हैं। "बुद्ध चरित" तथा "अभिमन्यु वध" आपके काव्य ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त शुक्ल जी ने कुछ पुस्तकों के हिन्दी में अनुवाद भी किये।

शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास, तुलसीदास, सूर एवं जायसी की समालोचना के रूप में जो कुछ लिखा है, वह उस क्षेत्र में लगभग अन्तिम ही समझा जाता है। यद्यपि उनके बाद भी कुछ प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति हुए हैं फिर भी उनकी प्रतिभा को कोई नुकसान नहीं पहुँच पाया। शुक्ल जी की आलोचना उनके चिन्तनशील मस्तिष्क की देन होते हुए भी हृदय की सरसता लिये हुए है। शुक्ल जी के व्यक्तित्व के विषय मे कहा जाता है कि वे बादाम की भाँति थे, ऊपर से कठोर, शुष्क, नीरस, परन्तु हृदय गुणग्राही तथा सरल था। ठीक इसी व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप उनकी शैली पर है। हिन्दी में प्रथम बार शुक्ल जी ने वैज्ञानिक विश्लेषण शैली को अपनाया। एक सफल वैज्ञानिक की भाँति उन्होंने प्रत्येक विषय को बड़ी गहराई से साथ देखा और बहुत दूर तक उसका विश्लेषण किया। शुक्ल जी ने निबन्धों की गहनता से थक कर बीच बीच में हास्य और व्यङ्ग का रस भी छिटका दिया है। गहन एवम् गम्भीर विचारों में उलझे हुए पाठक के मस्तिष्क के लिये हास्य और व्यङ्ग की फुलझड़ियाँ मरुस्थल में मरुद्यान की भाँति प्रतीत होती हैं।

शुक्ल जी की भाषा, क्या निबन्धों में, क्या समालोचनात्मक रचनाओं में और क्या काव्य में सभी जगह अत्यन्त परिष्कृत, परिमार्जित और साहित्यिक है। उसमें जो गम्भीरता, संयम और सौष्ठव है वह अन्य किसी लेखक या समालोचक से दुर्लभ है। शुक्ल जी की भाषा सब प्रकार के भावों के प्रतिपादन में सर्वथा समर्थ है, चाहे वे भाव कितने ही सूक्ष्म एवम् जटिल हों। उनका शब्द चयन सुन्दर और वाक्य-विन्यास व्यवस्थित है। शुक्ल जी ने भाषा में शब्दाडम्बर अथवा चमत्कार-प्रदर्शन की ओर ध्यान नहीं दिया, अपितु नपी-तुली भाषा में ही भावों की अभिव्यक्ति उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है, यही कारण है कि शुक्ल जी की भाषा में शैथिल्य लेशमात्र भी नहीं मिलता।

शुक्ल जी की भाषा के शब्द उनके भावों के प्रतिनिधि हैं। उनके वाक्य उनके विचारों के प्रतीक हैं। विचार पूर्णतः शृंखलाबद्ध हैं। शब्द द्वारा प्रत्येक विचार एवम् भाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। भावों के उतार-चढ़ाव के साथ साथ भाषा में भी उतार चढ़ाव है। शुक्ल जी ने जहाँ दुरूह भावों का प्रतिपादन किया है, वहाँ उनकी भाषा संस्कृत प्रधान एवम् क्लिष्ट है। यह विद्वानों की भाषा है, साधारण जन-समाज की नहीं। फिर भी शुक्ल जी ने अपनी भाषा को सरल एवम् बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले उर्दू और अंग्रेजी के शब्द भी अपना लिये हैं। मुहावरों और कहावतों का भी अच्छा प्रयोग किया है। शुक्ल जी की भाषा कहीं भी उलझी हुई प्रतीत नहीं होती।

शुक्ल जी जहाँ एक ओर गम्भीर विचारक थे वहाँ उनमें छिपी हुई भावुकता भी थी। शुक्ल जी का प्रकृति के प्रति विशेष प्रेम था। यह प्रेम उनकी रचनाओं में कृत्रिम एवम् काल्पनिक वर्णन के रूप में नहीं अपितु वास्तविक रूप में मिलता है। शुक्ल जी काव्य-शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। उन्होंने रस और अलंकारों का सूक्ष्म अध्ययन

किया था, इसलिए उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर अलंकारों का प्रयोग स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। उनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ वे देखते है कि विषय इतना कठिन है कि स्पष्ट प्रतिपादन कर लेने पर भी पाठक ग्रहण करने मे असमर्थ होगे, वहाँ अन्त में सारी बात लिखने के बाद "कहने का तात्पर्य यह है" लिखकर दुबारा समझाने का प्रयत्न करते है।

शुक्ल जी के वाक्य कही-कही पाणिनि के सूत्र जैसे प्रतीत होते है। उनकी शैली की यह प्रमुख विशेषता है कि उन्होने सदैव थोड़े में बहुत कहा है। उदाहरणस्वरूप **"भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है।" "बैर क्रोध का आचार या मुरब्बा है।"** इत्यादि।

शुक्ल जी की शैली को हम तीन भागों में विभाजित करते हैं—**(१) आलोचनात्मक शैली, (२) गवेषणात्मक शैली और (३) भावात्मक शैली।** आलोचनात्मक शैली शुक्ल जी के चिन्तनशील मस्तिष्क की देन है। इस शैली की भाषा संस्कृत प्रधान है, वाक्य छोटे और गम्भीर हैं। इस शैली मे उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। गवेषणात्मक शैली में भावों की दुरूहता के साथ-साथ भाषा अपेक्षाकृत जटिल एवम् गम्भीर है। इस शैली में उनका दार्शनिक रूप प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। भावात्मक शैली मे शुक्ल जी ने उत्साह, करुणा, घृणा जैसे मनोदशा सम्बन्धी निबन्ध लिखे है। इस शैली की भाषा व्यावहारिक, विचार शृंखलाबद्ध तथा वाक्य-विन्यास व्यवस्थित है।

हिन्दी साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्थान अद्वितीय है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता थे, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उनका संस्कार किया था। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य का यथोचित मूल्यांकन किया। उन्होने साहित्य के जिस अङ्ग पर भी लिखा अधिकारपूर्वक लिखा। उनकी प्रत्येक रचना में उनके गम्भीर व्यक्तित्व के दर्शन होते है। वे एक असाधारण साहित्यकार थे। हिन्दी साहित्य सदैव उनका ऋणी रहेगा।

४. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण

प्रकृति मानव की चिरसङ्गिनी रही है। अपने दैनिक जीवन के कृत्यो से उसका जब-जब मन ऊबा, तब-तब उसने प्रकृति का आश्रय लिया। उसने अनुभव किया कि प्रकृति उसके दु.ख मे दु.खी और सुख मे सुखी है। आकाश, सूर्य, तारागण, समुद्र, मेघ, विजली, द्रुमलतायें, पशु-पक्षी, ऊषा की अरुणिमा, इन्द्रधनुष, हरियाली, ओसबिन्दु, लहराते खेत, नदी की उन्मत्त लहरो को देखकर उसे सङ्घर्षमय जीवन के क्षणो मे कुछ विश्राम मिला, आगे बढ़ने के लिये प्रेरणा और नई शक्ति प्राप्त हुई। आज भी तारों से जगमगाते हुए आकाश एवं सरिता की उन्मादिनी तरंगो को देखकर मनुष्य की आत्मा आनन्द विभोर हो जाती है। प्रातःकालीन ऊषा की लालिमा से रंजित ओस बिन्दुओ से मंडित हरियाली पर टहलते समय, वृक्षो की ऊँची-ऊँची शाखाओ पर बोलते हुए तथा आकाश में उड़ते पक्षियो को देखकर सहसा ही मन मयूर नृत्य करने लगता है। वह प्रकृति के प्रति आकर्षित होता है और अपना प्रेम प्रकट करता है।

मनुष्य के हृदय पर प्रकृति के सौन्दर्य का चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है। सावन और भादो के काले-काले बादल, बसन्त की हरीतिमा, शरद पूर्णिमा का दुग्ध धवल

हिन्दी काव्य मे प्रकृति चित्रण

1. प्रस्तावना।
2. प्रकृति और मानव।
3. हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण।
4. उपसंहार।

ज्योत्स्ना, होली के अवसर पर पके-पकाए गेहूँ के स्वर्णिम खेत और उनमे क्रीडा सलग्न विभिन्न पक्षियों को देखकर सभी भावुक हृदय प्रसन्न हो उठते हैं। कवि की वाणी भी अपनी सुन्दर भाषा में प्रकृति की चिर सुषमा को प्रकट कर देती है। वैसे तो कविता जीवन की आलोचना है व्याख्या है, मानवी सुख दु ख उसके विषय हैं, परन्तु प्रकृति के साथ ऐक्य स्थापित करके अपने मन के भावों को प्रकाशित करने मे कवि को विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है।

विश्व के अन्य साहित्यों की भाँति हिन्दी साहित्य म प्रकृति चित्रण का महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त है। हिन्दी के आदि काल से लेकर आज तक भारतीय कवियो ने प्रकृति का किसी न किसी रूप मे आश्रय ग्रहण किया ही है। चन्दबरदाई, विद्यापति, जायसी, तुलसी, सूर, बिहारी, देव, घनानन्द, भारतेन्दु श्रीधर पाठक, रामचन्द्र शुक्ल, हरिऔध, प्रसाद, पन्त, निराला आदि कवियो ने प्रकृति के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करके प्रकृति के रस माधुर्य से अपने काव्य को सरस बनाया है।

हिन्दी साहित्य मे प्रकृति को विभिन्न रूपो में ग्रहण किया गया है। वीरगाथा काल में प्रकृति, अलकार विधान एव उद्दीपन के रूप मे प्रयुक्त हुई। पृथ्वीराज रासो से एक उदाहरण अलकार विधान पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

कुटिल केस सुदेस पोह, परिचियउत पिक्क सद्,
कमलगन्ध, बयसंध हंसगति चलति मन्द मन्द।
सेत वस्त्र सोहे सरीर, नख स्वाति बूद जस,
भ्रमर भवहि भुल्लहि सुभाव, मकरन्द बास रस॥

इसी प्रकार मैथिल कोकिल विद्यापति ने प्रकृति को उद्दीपन के रूप मे ही ग्रहण किया है। विद्यापति के काव्य की विशेषता प्रकृति के शोभन एव आकर्षक उपमानो के चयन मे ही है। भक्तिकाल मे राधा कृष्ण विषयक श्रृङ्गारिक उद्दीपनो और प्रस्तुत योजना में ही प्रकृति का अकन हुआ, किन्तु उसे स्वतन्त्र स्थान प्राप्त न हो सका। निर्गुण पथ की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर ने उपदेश, रहस्य, अलकार तथा प्रतीक के रूप मे प्रकृति को ग्रहण किया है।

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी,
तेरे ही नाल सरोवर पानी। (प्रतीक)
नैना नीझर लाइया, रहट बसे निसि याम,
पपीहा ज्यो पिव पिव करों, कबरु मिलहुगे राम। (अलकार)
घुमत सखी रस भरत नाल जँह शब्द उठे असमानी हो,
सरिता उमडि सिन्धु को सोख नहिं कुछ जात बखानी हो। (रहस्य भावना)

जायसी ने भी उद्दीपन के रूप में तथा रहस्य भावना की अभिव्यक्ति करने मे प्रकृति का प्रयोग किया है। सूफी मत मे प्रकृति को परब्रह्म परमेश्वर का प्रतिबिम्ब माना जाता है। इसलिये प्रकृति का कण-कण अपने प्रियतम से मिलने के लिये लालायित रहता है। सूर ने अपने काव्य मे उद्दीपन और अलकार के रूप मे प्रकृति का जो वर्णन

किया है, वह अद्वितीय है। उद्दीपन के रूप में सूर का यह प्रकृति-वर्णन अपनी तुलना नहीं रखता—

> बिनु गोपाल बैरिन भई कुन्जें,
> तब ये लता लगति अति शीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजें।
> वृथा बहति जमुना खग बोलत, वृथा कमल फूलें अलि गुंजें।
> पवन, पानि, घनसार, सजीवनि-दधिसुत किरन भानु भई भुंजें।

तुलसी ने उद्दीपन तथा अलंकार के अतिरिक्त प्रतीक, आलम्बन, उपदेश रूप का भी पर्याप्त प्रयोग किया। तुलसी का चातक और मेघ, भक्त और भगवान बड़े सुन्दर प्रतीक हैं। उपदेश रूप में तुलसी ने प्रकृति का सुन्दर प्रयोग किया है—

> उदित अगस्त, पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखै सन्तोषा॥
> सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

रीति काल में बिहारी, देव, सेनापति, घनानन्द आदि कवियों को छोड़कर प्रायः प्रकृति के प्रति उत्साह का अभाव ही मिलता है। केवल ऋतु वर्णन एवं बारह-मासा के रूप में ही उनके दर्शन होते हैं वह भी केवल परम्परागत पद्धति के निर्वाह के लिये ही। बिहारी का मन्द पवन वर्णन देखिये—

> रनित भृङ्ग घंटावली झरत दान मधु नीर।
> मन्द-मन्द आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर॥

आचार्य केशव को प्रकृति के प्रति कोई विशेष प्रेम नहीं था। उन्होंने केवल कवि-कर्म पालन के लिये ही यत्र-तत्र केवल नाम गणनामात्र कराई है। रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने प्रकृति का उद्दीपन के रूप में ही वर्णन किया है। सेनापति ने अवश्य प्रकृति के प्रति मौलिक प्रेम प्रकट किया, तब आलम्बन के रूप मे उसका वर्णन किया रीतिकाल में अपने आश्रयदाताओं को अपने वाक् चातुर्य से प्रसन्न करने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझने वाले कविगण प्रकृति से निकट सम्पर्क स्थापित न कर सके। केवल यही उनकी दृष्टि में कवि-कर्म पालन था। इस प्रकार प्रकृति निरूपण की दृष्टि से प्राचीन कविता सम्पन्न और समृद्ध दृष्टिगोचर नहीं होती। भारतेन्दु युग मे भक्ति की पुनरावृत्ति एवं देशभक्ति के कारण प्रकृति को पुनः अपनाया गया। इस काल के कवियों का प्रकृति के प्रति आकर्षण तो रहा, किन्तु उनमें मानवीय व्यापारों की ही प्रधानता रही। रीतिकाल के अनुसार प्रकृति के उद्दीपन रूप का भी चित्रांकन किया गया। भारतेन्दु के पश्चात् पं० श्रीधर पाठक ने प्रकृति की द्रवण-शीलता का अनुभव किया। इन्होंने प्रकृति के उद्दीपन रूप में दाम्पत्य प्रेम और सात्विक भावों का समावेश करके सुन्दर नारी और जन्मदात्री माँ के रूप में अंकित किया। आचार्य द्विवेदी के प्रभाव से नायिका भेद के स्थान पर सुमन, कृषक, प्रभात हेमन्त आदि विषयों पर कवितायें हुईं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रकृति के सौम्य और उग्र, कोमल और कर्कश रूपों का वर्णन किया। मैथिलीशरण गुप्त तथा हरिऔध आदि कवियों ने प्रकृति को देश प्रेम की पृष्ठ-भूमि तथा देश के अंग रूप में महत्व प्रदान किया। हरिऔध जी का सांध्य वर्णन देखिये—

> दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला,
> तरु शिखा पर थी अब राजती, कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।
> विपिन बीच विहंग वृन्द का, कल निनाद विवर्धित था हुआ,
> ध्वनिमयी विविधा विहंगावली, उड़ रही नभ मण्डल मध्य थी॥

प० रामनरेश त्रिपाठी ने उसमें चैतन्यारोपण किया एवं मानवीकरण की प्रतिष्ठा की। छायावाद में आकर प्रसाद जी 'झरने की लहर' में रहस्यवाद के शीतल सुरभित समीर के साथ क्रीड़ा करने लगे। प्रसाद जी आस्तिक होने के कारण परमात्मा को प्रकृति में व्याप्त देखते थे। इसी कारण उनकी प्रकृति सम्बन्धी सौंदर्योपासना कुछ अधिक गम्भीर है। प्रकृति के हृदय को विकसित करने की स्वाभाविक शक्ति के विषय में प्रसाद जी कहते हैं—

नील नीरद देखकर आकाश में, क्यों खड़ा चातक रहा किस आस में।
क्यों चकोरी को हुआ उल्लास है, क्या कलानिधि का अपूर्व विकास है॥

परन्तु प्राकृतिक सौंदर्य का अपूर्वानन्द प्राप्त करने के लिए हृदय में भी भावुकता चाहिए। प्रसाद जी का विचार है कि—

बना लो, अपना हृदय प्रशान्त, तनिक तब देखो वह सौन्दर्य।

प्रसाद जी प्रकृति को कभी परमात्मा के सौंदर्य की झलक मानते हैं, कभी वे उसे लीलामय की क्रीड़ा के रूप में देखते हैं और कभी परमात्मा के रहस्य को दुर्भेद्य रखने के लिये अवगुंठन रूप मानते हैं। कामायनी में इस भावना का प्रत्यक्षीकरण होता है। प्रसाद जी के प्राकृतिक चित्रों में मानवी कार्यों का आरोप है।

अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा घट ऊषा नागरी।

निराला जी की ओजस्विनी वाणी ने प्रकृति में शक्ति का सचार किया। वे प्रकृति निरूपण क्षेत्र में कभी दार्शनिक बन जाते हैं और कभी भावुक भक्त। 'जागो फिर एक बार', 'पंचवटी प्रसंग', 'जागरण' आदि कवितायें उनके दार्शनिक सिद्धान्तों से पूर्ण हैं। अनवरत चिन्तन, अतिशय प्रेम और भक्ति की पवित्र भावना के बाद इनकी अन्तरात्मा पुकार उठती है—

मन के तिनके, नहीं जले अब शक भी जिनके,
बैठा नहीं उन्होंने अब तक कोना कोना, अपने जीवन का।

निराला जी की आनन्दानुभूति जड़ प्रकृति को भी चेतन बना देती है, प्रकृति और मानव का तादात्म्य हो जाता है। संध्या सुन्दरी, शरद पूर्णिमा की विदाई, जुही की कली, शेफालिका आदि कविताओं में मानव व्यापारों से पूर्ण प्रकृति के दर्शन होते हैं—

विजन वन वल्लरी पर, सोती थी, सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न,
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली।

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत प्रकृति की गोद में पले होने के कारण प्रकृति के अनन्य उपासक ही नहीं वरन् अनन्य मित्र बन गये हैं। वे कभी प्रकृति को मस्त, कभी सन्तप्त, कभी प्रफुल्लित और उल्लास एवं अनुरागपूर्ण देखते हैं। पंत जी के प्रकृति वर्णन में मानव और प्रकृति का तादात्म्य है। चराचर प्रकृति मानव के साथ मिलकर एकरूपता प्राप्त कर लेती है। मधुपकुमारियों का मधुकर गान उन्हें मुग्ध कर देता है। वे प्रार्थना कर उठते हैं—

सिखा दो ना हे मधुप कुमारि, मुझे भी अपने मीठे गान।

प्रकृति का प्रत्येक व्यापार उनके मन में आश्चर्य के भाव उदित कर देता है। कभी उनके हृदय में उत्साह भर देती है। अचानक बाल विहंगिनी का स्वर्गिक गान सुनकर आश्चर्य-चकित होकर प्रश्न करते हैं—

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि तूने कैसे पहिचाना ?

"नौका बिहार" नामक कविता में गंगा की शांत धारा का एक लेटी हुई शान्त क्लांत बाला के रूप में कैसा सुन्दर वर्णन किया है--

पैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विकल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर लहराता तार तरल सुन्दर,
चंचल अंचल सा निलाम्बर॥

सूखे हुए वृक्ष पर कली खिली है, मुस्कराती है। वह मानव को उपदेश देती है कि दुःख को भी हँसकर सहन करना चाहिये। मानव प्रयत्न करने पर भी इसका पालन नहीं कर पाता। कवि विवश होकर कहता है—

वन की सूखी डाल पर, सीखा कलि ने मुस्काना।
मैं सीख न पाया अब तक, सुख से दुःख को अपनाना॥

कवि प्रकृति के मनोरम और विस्तृत क्षेत्र के ममत्व परित्याग करके मानव सौंदर्य की संकुचित सीमा में बन्दी नहीं होना चाहता---

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन, भूल अभी से इस जग को॥

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने प्रकृति में सत्ता का एक गूढ़ गम्भीर रहस्य अनुभव किया, इस प्रवृत्ति ने प्रकृति चित्रण में विशेष सजीवता, सौन्दर्य और मोहकता उत्पन्न कर दी। त्रिपाठी जी की कविता का उदाहरण देखिये, जिसमें रहस्य के प्रति जिज्ञासा के भाव दृष्टिगोचर हो रहे हैं—

है वह कौन रूप, आकार, जिसके मुख की कांति मनोहर,
देखा करती है सागर की व्यग्र तरंगें, उचक-उचक कर।
धन में किस प्रियतम से चपला करती है, विनोद हँस-हँसकर,
किसके लिए ऊषा उठाती है, प्रतिदिन कर श्रृङ्गार मनोहर॥

महादेवी जी में भी प्रकृति चित्रण की अपूर्ण क्षमता है। प्रकृति का भयावह रूप देखकर वह चिन्तित हो उठती है--

घोर तम छाया चारों ओर घटायें घिर आई घनघोर,
वेग मारुत का है प्रतिकूल हिले जाते हैं पर्वत मूल,
गरजता सागर बारम्बार, कौन पहुँचा देगा उस पार॥

इनके अतिरिक्त डॉ० रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, आदि कवियों ने भी प्रकृति चित्रण किया है। डॉ० वर्मा ने "तारों भरी रात" का कैसा सुन्दर चित्र खींचा है—

इस सोते संसार बीच, जगकर रजनी बाले।
कहाँ बेचने ले जाती हो, ये गजरे तारों वाले।
कौन करेगा मोल, सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी।

५. राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का महत्व

जिस प्रकार शब्द से अर्थ को और अर्थ से शब्द को, शरीर से प्राण को और प्राण से शरीर को पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार हम राष्ट्र को भी साहित्य से पृथक् नहीं कर सकते और न साहित्य को राष्ट्र से। जिस प्रकार शरीर

और प्राण अन्योन्याश्रित हैं, बिना शरीर के प्राणो का अस्तित्व नही और बिना प्राणो के शरीर का महत्व नहीं ठीक उसी प्रकार साहित्य प्राण है और राष्ट्र उसका शरीर। जिस प्रकार निर्जीव शरीर का कोई मूल्य नही होता, ठीक उसी प्रकार साहित्यहीन राष्ट्र का कोई मूल्य नही। "मुर्दा है वह देश जहां साहित्य नहीं है"

राष्ट्र-निर्माण मे साहित्य का महत्व

१ प्रस्तावना।
२ हमारा प्राचीन साहित्य।
३ हमारी राष्ट्रीयता का विकास।
४ भारतीय मनीषियों के प्रयत्न।
५ अंग्रेजी शासन और हिन्दी।
६ हमारा कर्त्तव्य।
७ उपसंहार।

यदि हमारा साहित्य उन्नत है, समृद्धिशाली है तो हमारा राष्ट्र भी उन्नत होगा, समृद्धिशाली होगा और यदि हमारे यहां साहित्य का अभाव है, तो राष्ट्र का जीवित रहना भी दुर्लभ है। आज नही तो कल उसकी संस्कृति, उसकी सभ्यता निश्चित ही नष्ट हो जायेगी। निर्जीव राष्ट्र चिरस्थायी नही रह सकता।

हमारा प्राचीन साहित्य, संसार के अन्य किसी साहित्य की अपेक्षा अधिक समृद्ध था। हमारे देश को विश्व के लोग जगद्गुरु कहते थे। विश्व के समस्त अंचलो से लोग यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे। हम विद्या और बुद्धि मे, शक्ति और साहित्य मे संसार के सिरमौर थे, अग्रगण्य और अगुआ थे। हमने सभी देशो का अज्ञानान्धकार नष्ट करके उन्हे ज्ञानलोक दिया और उनका मार्ग प्रदर्शन किया था। विश्व हमे धर्मगुरु मानता था। हमारे आध्यात्मिक ज्ञान की श्रेणी और तुलना मे संसार का कोई ज्ञान नही ठहर सका। इङ्गलैण्ड और जर्मन निवासियो ने तो यहां आकर संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया है। संस्कृत साहित्य का अक्षुण्ण कोष हमारे भारतवर्ष की अमूल्य निधि है। इसी उच्च कोटि के साहित्य के बल पर राष्ट्र उन्नतिशील था, विश्व इसके सामने नतमस्तक होता था।

संसार परिवर्तनशील है जो वस्तु आज है कल वह उस अवस्था मे नही रह सकती। समय बदल सकता है समय के साथ साथ मनुष्य की बुद्धि, विचार और उसके कार्यकलाप भी बदल जाते हैं। सदैव किसी के दिन एक से नही रहते। गौरवमय, धन-धान्य और अनन्त महिमा-सम्पन्न भारतवर्ष का भाग्याकाश विदेशी आक्रान्ताओ से आच्छादित हो उठा। देश का सौभाग्य सूर्य प्रभाहीन सा दृष्टिगोचर होने लगा। यदि आप किसी राष्ट्र को अपनी दासता मे आबद्ध करना चाहते हैं और यदि आपकी यह भी इच्छा है कि यह दासता चिरस्थायी हो और आपके नागरिक आपके अन्ध भक्त बन जायें तब आपको सर्वप्रथम उस देश का, उस जाति का साहित्य नष्ट कर देना चाहिए तथा वहाँ की भाषा को नष्ट कर देना चाहिए। यदि आप किसी जाति की जातीयता और राष्ट्र की राष्ट्रीयता की भावनाओ को भूत के गर्भ मे सुला देना चाहते हैं तो आप उस देश और जाति की अमूल्य निधि साहित्य को समाप्त कर दीजिए। विदेशियो के अनेक आक्रमण हुए। नालन्दा और तक्षशिला के जगत प्रसिद्ध पुस्तकालय अग्नि को समर्पित कर दिए गए। परिणाम यह हुआ कि साहित्य के अभाव में हमारी राष्ट्रीयता विलुप्त सी हो गई। हम आश्रयहीन, निरालम्ब और असहाय बन कर मूक पशु की भाँति अत्याचार और अन्याय सहन करते रहे।

समय ने पलटा खाया। भारतीयो मे चेतना और स्फूर्ति फैली। जन-जीवन मे जागरण का उद्घोष हुआ। विदेशी आक्रान्ताओ के विरुद्ध आत्म-संगठन के विचार जनता के मानस सागर मे हिलोरें लेने लगे, परिस्थितियो के विवश मृतप्राय आत्म

जाति ने फिर करवट ली और अंगड़ाई लेकर उठ बैठी। शिवाजी ने हिन्दुओं की रं
और बेटी की रक्षा करने की शपथ ली, भूषण जैसे राष्ट्र कवियों का जन्म हु
शिवाजी की प्रशंसा में वे गा उठे—

"राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यो"

भूषण ने अपनी अनेक मार्मिक उक्तियों द्वारा हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए शिवा
को सचेष्ट कर दिया। वे कहने लगे—

"साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत है

बस, फिर क्या था कुछ समय में ही आर्य जाति फिर हुंकार भरने लगी।

"पुत्र बुन्देल को बंसंगिनी भुजंगिनी-सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।"

इत्यादि उक्तियों में भूषण ने महाराजा छत्रसाल को भी शत्रुओं से भिड़ने के लि
आगे बढ़ाया, परन्तु यह सब कुछ तो राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव मात्र था। सबसे क
समस्या उस समय भाषा की थी, क्योंकि समस्त देश की भाषा एक नहीं थी। इस का
समस्त देश का सामूहिक संगठन दुर्लभ-सा प्रतीत हो रहा था। फिर भी सूर, तुल
दादू, कबीर, रामानुज, चैतन्य महाप्रभु, नानक आदि महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न भाषा
का आश्रय लेकर देश में सामाजिक और जातीय संगठन का सूत्रपात किया। अ
साहित्य द्वारा इन महापुरुषों ने संत्रस्त मानवता की रक्षा की। विदेशियों के अत्याच
पक्षपात, हृदयहीनता आदि चरम-सीमा पर थे। इन राष्ट्रनिर्माताओं ने अपने अनव
प्रयासों से भयभीत जनता के हृदय में आत्मरक्षा और आत्मविश्वास को जागृत किय
जनता के लिए स्नेह और संगठन का मार्ग प्रदर्शित किया। युगों से जनता के हृदय
घर की हुई संकीर्ण विचारधाराओं को समाप्त करके संगठन का अमोघ मन्त्र प्रद
किया। तुलसी ने राम कथा द्वारा जनता को संगठित रहने तथा आततायियों को स
नष्ट कर देने का जो पाठ पढ़ाया वह अद्वितीय था। शक्ति, शील और सौन्दर्यपूर्ण र
जनता के दुख-सुख के साथी बन गए। रामचरित मानस ने विनाश के कगार पर ख
हुई हिन्दु जाति को बचा लिया। कवि प्रशंसा में गा उठा—

"नारी भवसागर से उतारती कवन पारि,
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो।"

मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ जो भारतवर्ष में उपद्रवी बन कर आ
थीं, इन महापुरुषों के प्रयत्नों और उपदेशों से प्रभावित होकर आर्यों के साथ मि
घुल गईं। साहित्य का प्रभाव अमिट होता है।

अंग्रेजों के पदार्पण ने देशवासियों की देश-प्रेम भावना को और भी बढ़ा दिय
परन्तु फिर भी यही समस्या थी कि कोई भी देशी भाषा ऐसी नहीं थी जिसका दे
व्यापी प्रभाव हो। क्योंकि समस्त देश के लिए एक भाषा और उसी भाषा में उस
साहित्य होना परम आवश्यक है। भारतीयों की अनन्त साधनाओं, तपस्याओं
बलिदानों की पृष्ठभूमि में भारतीय साहित्यकारों का देश-प्रेम पूर्ण साहित्य था, जिस
फलस्वरूप देश विदेशियों से मुक्त हुआ। आज हम स्वतन्त्र हैं। देश की राष्ट्रभाषा
सिंहासन पर हिन्दी को प्रतिष्ठित किया जा चुका है। राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्रे
संगठन में जो बाधायें उपस्थित हो रही थीं अब वे समाप्त हो जाएँगी।

आज भारतीय साहित्यकारों का पवित्र कर्त्तव्य है कि वे ऐसे साहित्य का निर्मा
करें जिससे राष्ट्र के आत्म-गौरव और गरिमा की वृद्धि हो। देश का सर्वांगीण विक

और सामूहिक चारित्रिक पुनरुत्थान सत्साहित्य पर ही निर्भर करता है। आज देश का साहित्यकार अपने कर्त्तव्य का पालन न करते हुए देशवासियों का ईमानदारी से पथ-प्रदर्शन नहीं कर रहा। यही कारण है कि देश का चारित्रिक विकास रुक गया है, कर्त्तव्य-हीनता और स्वार्थ लोलुपता सर्वत्र व्याप्त है।

साराश यह है कि भारतवर्ष की उन्नति, उसकी गौरव-गरिमा, राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य की उच्चता पर निर्भर है। साहित्य की अवनत अवस्था मे कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता, यह नि सदेह सत्य है।

६. हिन्दी साहित्य में गीतिकाव्य परम्परा—उद्भव और विकास

हिन्दी साहित्य मे गीतिकाव्य परम्परा—उद्भव और विकास
१ प्रस्तावना (परिभाषा)।
२ उद्भव।
३ विकास।
४ आधुनिक प्रगति।
५ उपसंहार।

जब मानव के व्यक्तिगत अनुभव, भावावेश मे सगीतमय होकर कोमलकान्त पदावली के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं, उन्हें गीत कहते हैं। भारतीय समस्त साहित्य ही गेय होता था, इसीलिए गीतिकाव्य का भारतीय साहित्य में कोई पृथक् अस्तित्व नहीं रहा। जैसा कि अंग्रेजी में गीति को 'लिरिक' कहते हैं। लिरिक का अर्थ है कि लायर पर गाया जाने वाला। लायर एक प्रकार का बाजा होता है, उसी पर गाये जाने के कारण इसका नाम लिरिक पड़ा। कुछ समय के बाद बाजे पर गाये जाने की बात समाप्त हो गई और शब्द माधुर्य तथा लय से सम्बन्ध रह गया। कालान्तर मे 'आत्माभिव्यक्ति ही उसकी एकमात्र कसौटी रह गई और वह अन्तर्जगत पर ही केन्द्रीभूत हो गया। अत व्यक्तिगत भावना ही गीत का प्राण बन गयी। गीत के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं, परन्तु उनकी आधारभूत बातें एक-सी हैं। हीगल का विचार है, 'जब कवि विश्व के अन्त -करण मे पहुँचकर आत्मानुभूति करता है, तब उसे अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार काव्योचित भाषा मे व्यक्त कर देता है, उसे गीत कहते हैं।" अर्नेस्ट राइस के अनुसार, 'सच्चा गीत वही है जो भाव या भावात्मक विचार का भाषा मे स्वाभाविक विस्फोट हो।" महादेवी वर्मा का विचार है कि "गीत का चिरतन विषय रागात्मिकता वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख एव दु खात्मक अनुभूति से रहेगा।" साधारणत गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुखात्मक अनुभूति का शब्द रूप है, जो अपनी अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय और कोमलकान्त पदावली से सयुक्त हो। अत गीत की निम्नलिखित विशेषताएँ हो सकती हैं—

१—सगीत से पूर्णाभिव्यक्ति। २—अन्तर्जगत् का चित्रण। ३—सक्षेप मे अभिव्यक्ति। ४—सहज स्फुरित उद्गार। ५—कोमलकान्त पदावली।

भारतवर्ष में गीतिकाव्य की परम्परा अति प्राचीन है। सामवेद ऋचाओं से प्रारम्भ होकर उपनिषद् की स्तुतियों तथा बौद्धों की कथाओं तक में उसके तत्व मिलते हैं। इनमें केवल धार्मिक, सामाजिक तथा शान्तिमय तत्व ही व्यक्त हुआ करते थे। धीरे धीरे आगे चलकर उसमें ओज की आभा प्रस्फुटित होने लगी और इन गीतों ने विस्मृत

की वेशभूषा पहिनना प्रारम्भ कर दिया। वीरगाथा काल में इसी प्रकार के वीर गीतों की रचनाएँ हुई, जिन्होंने राजा तथा प्रजा दोनों को युद्ध भूमि के लिए प्रोत्साहित किया। वीर क्षत्राणियों को चिता में आत्मसात् करने के लिए प्रेरित किया। आदिकाल के गीतिकार केवल गीतिकार ही नहीं थे लेखिनी के चमत्कार के साथ तलवार के कला-कौशल मे भी निपुण होते थे।

भक्तिकाल मे आकर गीतिकाव्य को व्यवस्थित रूप प्राप्त हुआ, यह काल गीति-काव्य का विकास काल कहा जा सकता है। विचार की चरम सीमा मीरा के पदो में दृष्टिगोचर होती है। सूर के पूर्व यद्यपि कबीरदास जी ने भी पर्याप्त संख्या में पद लिखे थे, परन्तु ज्ञान की शुष्कता और निर्गुणवाद के प्रति आग्रह करना इतना अधिक था कि वे गीत के आवश्यक माधुर्य से वंचित हो रहे। न उनमें संगीत समता पर ही कोई ध्यान दिया गया और न कोमलकान्त पदावली पर। कबीर से पूर्व गीतिकाव्य में प्राण सचार करने वाले दो महाकवि थे, एक जयदेव दूसरे विद्यापति। जयदेव ने संस्कृत मे "गीत गोविन्द" की रचना की तथा विद्यापति ने मैथिली भाषा मे राधा और कृष्ण का गुणगान किया। इन दोनों कवियों ने राधा कृष्ण की लीलाओं को संगीतमय भाषा में व्यक्त किया था।

सूर भी राधा कृष्ण की लीलाओं के गायक थे। उनकी शैली पर जयदेव और विद्यापति की शैली का प्रभाव था। इसका अर्थ यह है कि इन्होंने उनका अन्धानुकरण किया। सूर ने अपने पूर्ववर्ती इन दोनों कवियो से शृंगार भावना और कोमलकान्त पदावली अवश्य ली, परन्तु उन्हे अपने रंग मे रंगकर उपस्थित किया। तुलसी, मीरा, नन्ददास, आदि सभी भक्तिकालीन कवियों ने गीतिकाव्य की रचना की।

रीतिकाल में गीतों का समुचित विकास नहीं हुआ अपितु उत्तरोत्तर उनका ह्रास ही होता गया। रीतिकाल में न भावो की मौलिकता थी और न भाषा एवं शब्द लालित्य। संगीतात्मकता की दृष्टि से भी न कोई विशेषता थी, न वैचित्र्य। संगीत का जो उत्कर्ष और महत्व भक्तिकाल मे था, वह रीतिकाल में न रहा। वह बाजारू होकर निम्न श्रेणी का हो गया था। आधुनिक युग में गीतिकाव्य का पुनरुद्धार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से पुनः प्रारम्भ हुआ। भारतेन्दु एवम् सत्यनारायण कविरत्न ने व्रजभाषा पद शैली को ही अपनाकर राधा-कृष्ण की प्रेमानुभूति मे पवित्र गीतो की रचना की वियोगीहरि जी ने व्रजभाषा में सुन्दर पदों की रचना की।

आधुनिक युग में नवीन गीत शैली का श्रीगणेश प्रसाद जी ने किया। भारतेन्दु युग और प्रसाद युग का सन्धिकाल द्विवेदी युग के नाम से पुकारा जाता है। इस युग मे केवल वर्णन प्रणाली तथा इतिवृत्तात्मकता का ही प्राधान्य रहा। इस युग के प्रमुख गीतिकार श्रीधर पाठक तथा मैथिलीशरण गुप्त हैं। गुप्त जी ने किसी स्वतन्त्र गीतिकाव्य की रचना नहीं की, उनके गीत उनके प्रबन्ध काव्यों में यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। द्विवेदी युग में गीतिकाव्य का जो रूप प्रच्छन्न रूप से प्रभावित हो रहा था, वह छायावाद युग में विशेष रूप से प्रत्यक्ष हुआ। प्रसाद जी ने छायावाद के रूप मे जिस प्रकार गीति-काव्य के स्तर को ऊँचा किया, उसी प्रकार के नाटकीय गीतों को भी। प्रसाद जी के नाटकीय गीत अत्यन्त मनोहर एवम् सुन्दर हैं।

आधुनिक गीतिकाव्य पदावली साहित्य से भिन्न कोटि का है। प्राचीन गीतिकाव्य का आधार भारतीय संगीत की राग-रागनियाँ थीं। निराला जी के गीतों में भाषा और शब्द-चयन भावों के अनुरूप हैं। निराला जी ने अपने संगीत के विषय में स्वयं कहा

है—"जो सगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है, ताल प्राय सभी प्रचलित हैं, प्राचीन ढग रहने पर भी ये नवीन कण्ठ से नया रग पैदा करेंगे।" निराला जी का एक सुदर गीत देखिए—

अलि घिर आये घन पावस के, लख ये काले काले बादल
नील सिन्धु में खिले कमल दल हरित ज्योति,
चपला अति चचल सौरभ के, रस के।

पन्त जी की कविता मे यद्यपि प्रगीतत्व का पूर्ण निर्वाह नही है, फिर भी कुछ गीत बहुत सुदर हैं। उनमे सगीत की प्रचुरता है, भावो की मनोहरता है, शब्द-चयन भी सुन्दर है—

सिखा दो ना हे मधुप कुमारि! मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरो से, करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान।

श्री रामकुमार वर्मा के गीतो में भावपूर्णता, तन्मयता, आत्म-समर्पण और आत्माभिव्यक्ति पद-पद पर मिलती है—

देव मैं अब भी हू अज्ञात! एक स्वपन बन गई तुम्हारे प्रेम मिलन की बात,
तुम से परिचित होकर भी मैं, तुमसे इतनी दूर?
बढ़ना सीख सीख कर मेरी आयु बन गई क्रूर।
मेरी सांस कर रही मेरे जीवन पर आघात॥

आधुनिक काल में, इस दिशा मे थोडा बहुत आग्रह केवल निराला जी का ही था। आज का गीतिकाव्य अग्रेजी और बगला की प्रतिस्पर्धा मे खडा किया गया है। गुप्त जी, महादेव, राजकुमार तथा नवीन के गीत भी भारतीय शैली पर अवस्थित हैं। महादेवी जी के गीत अपनी सहज गतिशीलता, वाग्विदग्धता के कारण सजीव हैं। विरह की आह में अनजान कविता उनके हृदय में बहने लगती है। उनकी करुणातुर प्रार्थना कितनी नारी सुलभ है, सुकुमार है—

जो तुम आ जाते एक बार! कितनी करुणा कितने सन्देश,
पथ में बिछ जाते बन पराग! गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग आँसू लेते वे पद पखार।

इस करुणा के असीम सांग में वह केवल नार भरी दुख की क्षणिक बदली है—
मैं नीर भरी दुख की बदली!
विस्तृत नभ का कोना कोना, मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली।
जीवन के शून्य क्षणों में उनका विरही मन सहसा गा उठता है—

अलि कैसे उन को पाऊँ?
वे आँसू बनकर मेरे इस कारण ढुल-ढुल जाते।
इन पलकों के बन्धन में, मैं बाँध बाँध पछताऊँ॥

महादेवी जी के गीत लोकप्रिय एव साहित्य की निधि हैं। उनकी अपनी शैली है, अपनी प्रवृत्ति है

निराला जी सौन्दर्योपासक कवि हैं, उनके गीतो में उनकी अपनी कला है और कुशल भावुक गायक। घनघोर बादल की भयकरता को देखकर कवि का मानस उद्वेलित हो उठता है। वह उसका आह्वान करके कहता है—

बादल बरसो।
घेर घेर घोर गगन धारा धाराधर ओ॥

बच्चन जी अपने काव्य में सर्वत्र गीति-प्रधान कवि हैं। संसार की नश्वरता और निराशा की गहरी अनुभूति में उन्होंने मानव जीवन का बड़े मनोयोग से अध्ययन किया है। बच्चन जी के जीवन के यथार्थ और दार्शनिक तत्व को कविता का रूप दे देने की अपूर्व क्षमता है। इन गीतिकारों के अतिरिक्त, सोहनलाल द्विवेदी, नरेन्द्र शर्मा, गोपाल सिंह नैपाली, भगवती चरण वर्मा, आदि आधुनिक युग में श्रेष्ठ गीतिकार हैं। आधुनिक काल प्रायः गीतों का युग है। बिना गाई हुई कविता को तो कोई सुनने को भी तैयार नहीं होता। इन गीतों का भविष्य क्या होगा कुछ कहा नहीं जा सकता।

७. मुसलमान कवियों की हिन्दी सेवा

राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमानों के कुछ भी सम्बन्ध रहे हों, परन्तु साहित्यिक क्षेत्र में मुसलमानों ने हिन्दी की अमूल्य सेवा की, वे हिन्दुओं के अधिक निकट आये। भारतीय सभ्यता और संस्कृति से वे अत्यधिक प्रभावित हुए, धार्मिक क्षेत्र में यद्यपि वे एकेश्वरवाद को मानते थे। उनका मूलमन्त्र था—'ला इला इल अल्लाह' अर्थात् अल्लाह के सिवाय कोई दूसरा अल्लाह नहीं। इतना होते हुए भी, वे भारतीय कृष्ण-भक्ति परम्परा से बड़े प्रभावित हुए। पुरुषों ने ही नहीं मुसलमान स्त्रियों ने भी कृष्ण की पावन लीलाओं का वर्णन किया। यद्यपि उस समय का शासन-सूत्र मुसलमानों के ही हाथों में था, पारस्परिक कटुता दोनों ओर से हृदय में समाई हुई थी, फिर भी मुसलमानों में भी कुछ महापुरुष ऐसे थे, जो कृष्ण-भक्ति में और भक्तिकाव्य के प्रणयन में हिन्दुओं से कम नहीं थे। इन्हीं मुसलमान भक्त कवियों की प्रशंसा में एक दिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मुख से निम्न पंक्ति सहज ही मे फूट निकली थी—

> मुसलमान कवियों की हिन्दी सेवा
> १. प्रस्तावना।
> २. मुसलमानों द्वारा हिन्दी सेवा—
> (क) आदिकाल में,
> (ख) भक्तिकाल में,
> (ग) रीतिकाल में,
> (घ) आधुनिक काल में।
> ३. उपसंहार।

"इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिन्दुन वारिये।"

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही मुसलमान कवियों ने अपनी अमूल्य साहित्यिक कृतियों से हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की। खड़ी बोली हिन्दी के आदि कवि खुसरो अब से लगभग ७०० वर्ष पहिले सम्वत् १३०० के लगभग विद्यमान थे। वे बलबन के पुत्र मुहम्मद के आश्रित कवि थे। इन्होंने अपनी पहेलियों और मुकरियों द्वारा जनता का खूब मनोरंजन किया। अरबी, फारसी के साथ-साथ इन्हें संस्कृत का भी पर्याप्त ज्ञान था। संस्कृत भाषा में भी इन्होंने काव्य रचना की थी। ये बड़े विनोदी स्वभाव के थे, इनका सांसारिक वैभव भी बढ़ा-चढ़ा था। खुसरो की लोकप्रियता का एक विशेष कारण यह था कि उन्होंने जन-साधारण की बोल-चाल की भाषा को अपनाया तथा उसमें हास्य का पुट भी पर्याप्त मात्रा में रखा। उदाहरण-स्वरूप कुछ रचनाएँ उद्धृत की जा रही हैं, जिनमें यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी—

(हास्य) खीर पकाई जतन से, चरखा दिया जलाय,
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजाय,
और फिर "ला पानी पिला।" -

× × ×

(मुकरी) वह आए तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल, क्यों सखि साजन ? ना सखि ढोल॥

(पहेली) एक थाल मोती से भरा सब के सिर पर औंधा धरा।

भक्ति काल में चार धारायें प्रवाहित हुईं—दो निर्गुन के अन्तर्गत तथा दो सगुण के। निर्गुण पन्थ की दोनों धाराओं में मुसलमान कवियों ने अमूल्य योगदान दिया। ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर मुसलमान थे, इसमें संदेह नहीं। नीमा नीरू के पालन-पोषण ने उनके मन में इस्लामी संस्कार पूर्णरूप से जमा दिए। अपढ़ होते हुए भी, अपने अनुभवों के आधार पर कबीर ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की वह अमूल्य है। कबीर के हमें तीन स्वरूप प्राप्त होते हैं—कवि, ज्ञानी तथा समाज सुधारक। वे एक सच्चे समाज-सुधारक थे। उन्होंने ज्ञान की गहन गुत्थियों को अपने विचित्र प्रतीकों और रूपकों द्वारा जनता को समझाने का प्रयत्न किया। आत्मा और माया के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट कराने वाला वैचित्र्य देखिये—

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तत् कथ्यौ गियानी॥

× × ×

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।
तेरे ही नाल सरोवर पानी॥

इसी प्रकार, 'नैया बिच नदिया डूबी जाये" आदि उलटवासियों द्वारा गम्भीर तथ्यों को समझाने की चेष्टा की है। जिस रहस्यवाद की आज के कवि छीछालेदर कर रहे हैं उसी ज्ञानात्मक रहस्यवाद के वे जन्मदाता थे। आध्यात्मिक प्रेम और विरह की जैसी तीव्र अनुभूति हमें कबीर की रचनाओं में मिलती है, वैसी अधिकांश हिन्दी के कवियों में प्राप्त नहीं होती।

कबीर के पश्चात् प्रेमाश्रयी शाखा के प्रधान कवि मलिक मुहम्मद जायसी का नाम आता है। ये महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की कोटि में आते हैं। जायसी ने अपने पद्मावत काव्य से जिन दोहों और चौपाइयों का मार्ग प्रशस्त किया था आगे चलकर तुलसी ने उन्हीं का अनुकरण किया। जायसी का पद्मावत उनकी कीर्ति का अक्षय स्तम्भ है। इसमें लौकिक और अलौकिक प्रेम का सामञ्जस्य उपस्थित किया गया है—

तनु चितउर मन राजा कीन्हा, हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीन्हा।
गुरु सुआ जेई पंथ दिखावा, बिन गुरु जगत् को निरगुन पावा।
नागमति यह दुनिया धन्धा, बाँचा सोई न एहि चित बन्धा।
राघव दूत सोई सैतानू माया अलाउद्दीन सुलतानू।

प्रेममार्गी शाखा तो एक प्रकार से मुसलमान कवियों की ही थी। कुतबन शेरशाह के पिता हुसैनशाह के दरबारी कवि थे। इनका मृगावती नामक काव्य अत्यन्त प्रसिद्ध है, इस पुस्तक में चन्द्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर की राजकुमारी की प्रेम-कथा का वर्णन है। प्रेम मार्ग की कठिनाइयों का अच्छा वर्णन है, जो साधक के लिए बड़ी उपदेश प्रद है। इस काव्य में रहस्य भावना की प्रधानता है। मंझन कवि

ने मधुमालती की रचना की, तो उस्मान ने चित्रावली की। इसके अतिरिक्त, शेख नबी, कासिमशाह, नूरमुहम्मद तथा फाजिलशाह आदि कवियों ने भी सुन्दर प्रेम गाथायें लिखीं।

अकबर के सेनापति बैरमखाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना ने भी अपने नीतिपूर्ण दोहों से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की। बरवै छन्द के तो जन्मदाता ही वे थे। बरवै नायिका भेद और मदनाष्टक उनकी सुन्दर रचनाएँ हैं। बरवै या प्रारम्भिक छन्द देखिए—

प्रेम प्रीत को बिरवा चलयो लगाइ।
सींचत की सुधि लीजिओ कहूँ मुरझि न जाइ।

बिहारी के दोहे तो रसिकों के हृदय में घाव करते थे, परन्तु रहीम के दोहे सबको समान रूप से बाँधते हैं, चाहे वे रसिक हों या नीतिज्ञ।

रहिमन यों सुख होत है बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि आँखिन को सुख होत॥
×   ×   ×
रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥

राम-भक्ति शाखा में यद्यपि कोई मुसलमान कवि नहीं हुआ परन्तु कृष्ण-भक्ति ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि ताज नामक मुसलमान महिला भी कह उठी—

नन्द के कुमार कुरबान तेरी सूरत पै।
हौं तो मुगलानी, हिन्दुवानी ह्वै रहौंगी मैं॥

ताज की तरह शेख की नाम रंगरेजिन भी हिन्दी की भक्त कवियित्री थी जिसके प्रेम में फँसकर आलम कवि ब्राह्मण से मुसलमान बन गये थे। आलम की गणना हिन्दी के प्रसिद्ध मुसलमान कवियों में की जाती है। यह प्रसिद्ध दोहा, आलम का ही है—

कनक छरी सी कामिनि, काहे को कटि छीन।

शेख ने इनका उत्तरार्द्ध यों पूरा किया—

'कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन।'

इस पर मुग्ध होकर आलम ने शेख से विवाह कर लिया।

विशुद्ध कृष्ण-भक्ति का उज्ज्वल स्वरूप हमें रसखान की रचनाओं में प्राप्त होता है। पठान होते हुए भी इनका मन कृष्ण-भक्ति में रमा हुआ था। परिष्कृत भाषा और भाव सौंदर्य की दृष्टि से रसखान का स्थान हिन्दी के गिने-चुने कवियों में है। सूरदास को छोड़ कर रसखान की तुलना में कोई भी भक्त कवि नहीं ठहरता। आज भी उनके सवैये और कवित्त बड़े प्रेम से कहे और सुने जाते हैं—

रसखान कबहुँ इन आँखिन सौं ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं॥
×   ×   ×   ×
मानुस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन॥

भक्ति काल के इन कवियों के अतिरिक्त कादिर और मुबारक आदि कवियों ने भी कृष्ण की वन्दना के स्वरों में अपने स्वर मिलाये, जिनका गुंजन आज भी कभी-कभी इधर-उधर सुनाई पड़ जाता है।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में भी मुसलमानो ने योगदान दिया। वैसे तो रहीम ने भी रीति ग्रन्थ लिखा है। पठान सुल्तान ने बिहारी की सतसई की तरह कुण्डलियाँ लिखी थीं। रीतिकाल मे सैयद रसलीन प्रसिद्ध कवि हुए। ये सम्वत् १९७४ के आस पास विद्यमान थे। इनकी अङ्ग दर्पण नाम की पुस्तक प्रसिद्ध है। आज भी निम्नलिखित दोहा जो कि इन्ही के द्वारा लिखा गया था, अधिकांश लोग बिहारी का समझते हैं—

अमी हलाहल मद भरे, सेत श्याम रतनार।
जियत, मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवन इक बार॥

आगरे में सम्वत् १७९७ मे नजीर अकबराबादी हुए, जिन्होंने सर्वसाधारण की भाषा में बड़ी मधुर रचनायें कीं। इन्होंने हिन्दी में उर्दू शब्दों का प्रयोग किया। एक उदाहरण देखिए—

यारो सुनो ये दधि लुटैया का बालपन।
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥

पद्य के अतिरिक्त गद्य का हिन्दी साहित्य क्षेत्र भी मुसलमानो का ऋणी है। खड़ी बोली का श्रीगणेश भी खुसरो ने किया था। गद्य मे इंशाअल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' मे यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि इसमे हिन्दवी छुट और किसी बोली की पुट नहीं है, आधुनिक काल मे मुसलमान हिन्दी से दूर भागने लगे, इसका मुख्य कारण था, अंग्रेजो द्वारा पारस्परिक द्वेष और भेद भावना का विष-वमन करना। उनकी नीति सफल हुई, मुसलमान हिन्दी और हिन्दुओ से दूर हो गए। फिर भी मुंशी अजमेरी, शंकर हुसैन रायपुरी, अध्यापक जहूरबख्श, मीर अहमद बिलग्रामी आदि लेखकों ने हिन्दी में अच्छा गद्य लिखा है।

अब भारतवर्ष स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र भारत मे सरकार हिन्दी और उर्दू की समान उन्नति के लिए प्रयत्नशील है। आज उर्दू के बहुत से विद्वान् हिन्दी में लिखने का प्रयास कर रहे हैं। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। अतः सभी भारतीय नागरिक राष्ट्रभाषा की उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं।

८. हिन्दी साहित्य मे उपन्यासो का उद्भव और विकास

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समय की कठोर आवश्यकताओं ने जहाँ गद्य के विकास में योग दिया, वहाँ उपन्यास साहित्य की भी श्रीवृद्धि हुई। अङ्गरेजी तथा उससे प्रभावित बङ्गाली तथा मराठी उपन्यासों ने हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। भारतेन्दु जी के समय में अन्य भाषाओं के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया गया, मौलिक उपन्यासों की रचना भी हुई। मौलिक उपन्यासों में श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु', राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू' तथा बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' और 'नूतन ब्रह्मचारी' समाज में विशेष आदृत हुए। भारतेन्दु जी ने भी एक उपन्यास लिखा

हिन्दी साहित्य मे उपन्यासों का उद्भव और विकास

१ प्रारम्भ।
२ प्रेमचन्द पूर्व युग।
३ प्रेमचन्द युग।
४ प्रेमचन्द उत्तर युग।
५ उपसंहार।

आरम्भ किया था, वह दुर्भाग्यवश पूरा न हो सका। बङ्गला आदि से अनूदित उपन्यासों में 'दुर्गेश नन्दिनी,' 'सरोजिनी,' 'दीप निर्वाण' आदि प्रसिद्ध थे, इसी प्रकार अंग्रेजी या मराठी भाषाओं से भी कई उपन्यासों का अनुवाद हुआ। तिलस्मी ऐयारी के उपन्यास लिखे जाने लगे। इस क्षेत्र में बाबू देवकीनन्दन खत्री को विशेष सफलता प्राप्त हुई। इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यासों के पाठक और लेखक दोनों ही पैदा किये। प्रेमाख्यानक उपन्यासों में किशोरी लाल गोस्वामी और जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी मुख्य थे। इन दोनों के उपन्यासों ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उस काल में कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना हुई, जिसमे किशोरीलाल गोस्वामी का 'रजिया बेगम' तथा मिश्र बन्धुओं का "वीरमणि" उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक सभी विषयों के उपन्यास हिन्दी के क्षेत्र में आ चुके थे, परन्तु उनमें उच्च कोटि के साहित्य का प्रायः अभाव था, कृत्रिमता अधिक थी।

प्रेमचन्द पूर्व युग—प्रेमचन्द से पूर्व का युग सन् १८७० से १९१६ तक माना जाता है। इस युग के उपन्यासों को हम पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं—सामाजिक उपन्यास, तिलस्मी ऐयारी के उपन्यास, जासूसी उपन्यास, प्रेमाख्यानक और ऐतिहासिक उपन्यास। सामाजिक उपन्यासों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का "भाग्यवती" सामाजिक समस्या को लेकर लिखा हुआ सबसे प्रथम मौलिक उपन्यास था। इसकी रचना १८७७ में हुई थी। यह अपने समय में बहुत लोकप्रिय रहा। श्रीनिवासदास का "परीक्षा गुरु" भी मौलिक सामाजिक उपन्यास है, परन्तु इनका वस्तु विन्यास अधिक सुन्दर नहीं है, स्थान-स्थान पर अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत के नीतिपूर्ण उद्धरणों के कारण पाठक का हृदय ऊबने लगता है। बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', किशोरी लाल गोस्वामी का 'हृदयहारिणी', लज्जा राम मेहता का 'परतन्त्र लक्ष्मी' कार्तिक प्रसाद का 'दीनानाथ', हनुमन्तसिंह का 'चन्द्रकला', राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू' अच्छे सामाजिक उपन्यास थे। कुछ और भी उपन्यास लिखे गये थे जिनमें सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया था, परन्तु उनमें उपदेश वृत्ति इतनी अधिक है कि उपन्यास की रोचकता नष्ट हो जाती है।

हिन्दी मे तिलस्मी और ऐयारी का भाव फारसी कहानियों के अनुकरण से आया। सन् १८९१ में देवकीनन्दन खत्री ने 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता संतति' नामक दो उपन्यास लिखे। ये ऐयारी की रचनायें इतनी लोकप्रिय हुई कि जो हिन्दी पढ़ना भी नहीं जानते थे उन्होंने केवल इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही हिन्दी पढ़ना सीखा। इससे प्रभावित होकर अन्य उपन्यासकारों ने भी तिलस्मी और ऐयारी का प्रयोग किया। किशोरीलाल गोस्वामी जैसे प्रसिद्ध लेखक भी अपने 'स्वर्गीय कुसुम' और लवंगलता' नामक उपन्यासों में इस बीमारी से बच न सके। देवकीनन्दन खत्री के अतिरिक्त देवीप्रसाद शर्मा ने 'सुन्दर सरोजनी', हरेकृष्ण जौहर ने 'भयानक भ्रम', जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 'बसन्त मालती' आदि उपन्यास लिखकर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार के उपन्यासों का एक ढेर-सा लगा दिया।

हिन्दी के उपन्यासकारों को जासूसी उपन्यासों की प्रेरणा, पश्चिम की पुलिस चोरों से भरे हुए उपन्यासों से प्राप्त हुई। इस शाखा के सबसे प्रमुख लेखक गोपालराम गहमरी थे। इनके कथानक स्वाभाविक होते थे। 'जासूस की चोरी', 'जासूसो पर जासूस', 'किले में खून', 'खून का भेद', 'खूनी खोज' आदि आपके प्रसिद्ध उपन्यास थे।

चन्द्रशेखर क 'अमीर अली ठग' 'शशिबाला', किशोरीलाल गोस्वामी का 'जिन्दे की लाश' आदि इस कोटि के उपन्यास हैं।

सामाजिक उपन्यासों को छोडकर अधिकाश अन्य सभी उपन्यासों का विषय प्रेम ही होता था। तिलस्मी और ऐय्यारी के उपन्यासो मे भी प्रेम के अतिरिक्त रूप के दर्शन होते हैं। इनके अतिरिक्त किशोरीलाल गोस्वामी ने भी 'लीलावती', 'चन्द्रावती', 'तरुण तपस्विनी' आदि उपन्यासों मे भी प्रेम का ही वर्णन किया है।

ऐतिहासिक उपन्यास भी इस युग में लिखे गये, परन्तु उनमें ऐतिहासिक अनुसधान के आधार पर राजनैतिक एवम् आर्थिक परिस्थितियों के चित्रण का अभाव है। ब्रजनन्दन सहाय ने 'लाल चीन' जिसमें गयासुद्दीन बलबन के एक गुलाम की कहानी है, लिखा। मिश्र बन्धुओ का 'वीरमणि', किशोरीलाल गोस्वामी का 'राजकुमारी', 'तारा', 'चपला' 'लखनऊ की कब्र' इस प्रकार के उपन्यास हैं। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासों में औपन्यासिक तत्वो के समुचित सामजस्य का अभाव था। अधिकाश उपन्यास घटना-प्रधान, मनोरजन या कौतूहलवर्धक होते थे। फिर भी आगे के युग के लिये उपन्यास के पाठकों को तैयार करने का श्रेय इन्ही उपन्यासो एव उपन्यासकारो को है। देवकीनन्दन खत्री की व्यावहारिक भाषा को ही प्रेमचन्द ने अपना आधार बनाया।

प्रेमचन्द युग—प्रेमचन्द युग सन् १९१७ से १९३६ तक माना जाता है। प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को एक नया मोड प्रदान किया, अपनी कृतियों से अपने समकालीन अन्य साहित्यकारो को प्रेरणा दी। प्रेमचन्द जी के लिखने के समय देश में राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हो गये थे। आर्य समाज का सुधार आन्दोलन तेजी से चल रहा था। प्रेमचन्द जी के उपन्यासों पर तत्कालीन सामाजिक एवम् राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने उपन्यास को तिलस्मी और प्रेमाख्यान की दलदलो से निकालकर मानव जीवन की दृढ नींव पर लाकर खड़ा कर दिया। इनके उपन्यासों की कथावस्तु कल्पना-प्रसूत न होकर मानव-जीवन की वास्तविकता से ओत-प्रोत है। चरित्र-चित्रण के क्षेत्र मे प्रेमचन्द जी ने नवीन परिवर्तन उपस्थित किया। उसमे उन्होंने स्वाभाविकता की प्रतिष्ठा की। उनकी सूक्ष्म दृष्टि महलों से लेकर झोंपडियों तक, खेतों और खलिहानो से लेकर बडी-बडी मिलो तक समान रूप से पडी। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कोरा यथार्थवाद या कोरा आदर्शवाद जन कल्याण नहीं कर सकता। अत उनका साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवादी ही रहा। उन्होंने इस तथ्य का उद्घाटन किया कि मनुष्य का चरित्र कोई स्थिर वस्तु नहीं, सगति और सम्पर्क से उसमें परिवर्तन होता रहता है। भले आदमी बुरे बन सकते हैं और बुरे आदमी भले। जो लोग यह चिल्लाते हैं कि कला, कला के लिये है उनका उन्होंने खूब विरोध किया। उनका विचार था कि कला वह है, जिससे हमारी सुरुचि जाग्रत हो, हमें आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति प्राप्त हो, हममे शक्ति और गति आवे। यही कारण है कि उन्होंने सभी समस्याओं के विषय मे चाहे वह राजनैतिक हों या सामाजिक, आर्थिक हों या धार्मिक, अपना पृथक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। यह निश्चित है कि कहीं-कहीं वे साहित्यकार न रह कर एव उपदेशक का रूप ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु समाज मे फैली कुरीतियों का स्पष्ट दिग्दर्शन कराने मे वे पूर्ण सफल हुए हैं। 'सेवा सदन' मे उस भयकर सामाजिक दोष का चित्रण किया गया है, जिससे विवश होकर हमारी कुल ललनायें और कुल वधुएँ वेश्या बन जाती हैं। 'प्रेमाश्रम' में एक ओर भारतीय किसान की निर्धनता और विवशता तथा दूसरी ओर विधवाओ की समस्या दिखाई गई है। 'निर्मला' वृद्ध विवाह और दहेज प्रथा के दुष्परिणामो का भडाफोड

करता है। 'गबन' में यह दिखाया गया है कि स्त्रियों का आभूषण-प्रेम, हरी भरी गृहस्थी को किस प्रकार ध्वस्त कर देता है। 'गोदान' मे किसान की विवशता तथा 'कर्मभूमि' मे जमींदार-किसान सम्बन्ध, अछूतोद्धार, मन्दिर प्रवेश, म्युनिसिपल कमेटी आदि सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। प्रेमचन्द जी ने हिन्दी में ग्यारह उपन्यास लिखे है जिनमे—सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्म-भूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन और गोदान प्रमुख हैं। प्रेमचन्द युग के अन्य प्रतिभासम्पन्न उपन्यासकारो मे जयशंकर प्रसाद, विशम्भर नाथ कौशिक, बेचन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन तथा वृन्दावन लाल वर्मा आदि प्रमुख है।

जयशंकर प्रसाद जी के उपन्यासों मे सुधार का मूल मन्त्र निहित है। 'कंकाल' 'तितली', 'इरावती' (अपूर्ण) मे 'कंकाल' आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। उपन्यासकार प्रसाद की भाषा न दुरूह है और न दार्शनिकता से युक्त। वह स्वाभाविक है, फिर भी प्रेमचन्द की सी नही। विशम्भरनाथ कौशिक उपन्यास लेखक मे प्रेमचन्द जी के अनुयायी थे। उनके वर्णन, कथोपकथन, पात्रो का चरित्र-चित्रण सभी कुछ प्रेमचन्द के समान थे। परन्तु मन को आन्दोलित करने की जितनी क्षमता कौशिक जी में है, उतनी प्रेमचन्द मे नही। 'माँ' और 'भिखारणी' इनके दो उपन्यास है। बेचन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन तथा चतुरसैन शास्त्री आदि उपन्यासकार प्रेमचन्द युग के ऐसे उपन्यासकार है, जिन्होने केवल यथार्थ के नग्न चित्रण पर ही अपनी दृष्टि डाली। इनकी दृष्टि केवल वैश्यालय और मदिरालयो के चारो ओर चक्कर लगाकर ही लौट जाती है। वृंदावन लाल वर्मा ने इस युग मे हिन्दी उपन्यास के एक विशेष अभाव की पूर्ति की। प्रेमचन्द के पहले और भी बहुत से ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये थे, परन्तु उनमे न लेखको का ऐतिहासिक ज्ञान प्रकट होता था और न तत्कालीन चित्रण। इतिहास के आवरण मे केवल प्रेम कलाएँ होती थी। वृन्दावन लाल वर्मा ने 'गढ़ कुण्डार' और 'विराट की पद्मिनी' उपन्यास लिखकर इस दिशा के नये मार्ग का प्रदर्शन किया। भगवती चरण वर्मा का 'चित्रलेखा' इस युग का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें 'पाप क्या वस्तु है' इसका व्यक्तिगत ढङ्ग से बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है।

प्रेमचन्द उत्तर युग—सन् १९३६ से प्रेमचन्द के उत्तर युग में उपन्यास क्षेत्र में व्यक्ति के मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ी। एक पात्र को विभिन्न परिस्थितियो में डालकर उसके हृदयगत भावो, प्रेरणाओ, रहस्यो का उद्घाटन और विश्लेषण करना ही उपन्यासकारो का उद्देश्य हो गया। सामाजिक समस्याये अब भी उपन्यास से होती है, परन्तु लक्ष्य व्यक्ति ही होता है, समाज नहीं; समाज को गौण स्थान दिया जा रहा है। इस नवीन धारा के प्रवर्त्तक श्री जैनेन्द्र जी ने 'परख' 'तपोभूमि' 'सुनीता' 'कल्याणी' 'त्यागपत्र' आदि उपन्यास लिखे है। इलाचन्द्र जोशी ने कथा क्षेत्र के फ्राइड और एडलर के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का प्रयोग किया है। 'सन्यासी' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। 'शेखर' एक जीवनी अज्ञेय जी का उपन्यास के क्षेत्र मे एक नवीन प्रयोग है। कथावस्तु की दृष्टि से न इसमे कोई कथा है और न घटनाओ का तारतम्य। इसलिये इसमे कोई मनोरजन की सामग्री भी नही है, केवल व्यक्ति विशेष द्वारा अतीत की घटनाओ का विश्लेषण मात्र है।

यशपाल के उपन्यासो मे मार्क्सवादी सिद्धान्तो का प्रचार है। 'दादा कामरेड' 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप' आपके उपन्यास हैं। इन उपन्यासो मे लेखक ने कांग्रेस कार्यक्रम की अपेक्षा कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम को अधिक उपयोगी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। रामेश्वर शुक्ल अचल ने 'चढती धूप', 'उल्का', 'नई इमारत' और 'मरु प्रदीप' उपन्यास लिखे है। सामाजिक जीवन मे परिवर्तन और क्रान्ति

के लिए उनके उपन्यासों मे विशेष प्रेरणा है। श्री राहुल सांकृत्यायन ने 'जय-यौधेय' और 'सिंह सेनापति' उपन्यासो में भारत के बहुत पुराने गणतन्त्रो की पृष्ठभूमि बनाकर कल्पित पात्रों का आश्रय लेकर ऐतिहासिक उपन्यासधारा को एक विशेष दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया है। वृंदावन लाल वर्मा ने तो इस युग मे ऐतिहासिक उपन्यासो की झड़ी-सी लगा दी। उनकी 'झांसी की रानी' तथा 'मृगनयनी' उपन्यासो ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की है। यशपाल की 'दिव्या' भी ऐतिहासिक उपन्यास है। ऐतिहासिक वातावरण की दृष्टि मे लेखक पर्याप्त सफल हुआ है। चतुरसेन शास्त्री की 'वैशाली की नगर वधू' सर्वोत्तम ऐतिहासिक कृति है। गोविन्दवल्लभ पन्त के 'अमिताभ' नामक उपन्यास में गौतम बुद्ध की जीवन गाथा वर्णित है। यह उपन्यास और जीवन-चरित्र के बीच की वस्तु है।

इसके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'तीन वर्ष', प्रताप नारायण श्रीवास्तव के 'विदा', 'विकास', 'विसर्जन', 'विजय', निराला की 'अप्सरा', 'अलका', 'चोटी की पकड़', भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'प्रेम पथ', 'लालिमा', 'पिपासा', 'पतिता की साधना' उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें', सितारों का खेल', जयशंकर भट्ट की 'वह जो मैंने देखा', रांगेय राघव का 'घरौंदे', सियारामशरण गुप्त की 'गोद', 'अमित आशा', 'नारी', 'सूझ', कंचनलता सब्बरवाल का 'मूक तपस्वी', 'भोली भूल' आदि उपन्यास आज के युग के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

आज के स्वतन्त्र भारत मे हिन्दी साहित्य के उपन्यास अंग की जितनी वृद्धि हो रही, है उतनी किसी और अंग की नहीं। बड़े बड़े उपन्यास लिखे जा रहे हैं। हिन्दी के राष्ट्र भाषा घोषित हो जाने के कारण अन्य भाषा-भाषी विद्वान भी हिन्दी की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। भारतेन्दु युग में उपन्यासो के अनुवादो की धारा बड़ी तीव्रता से प्रवाहित हुई थी, यह प्रेमचन्द युग मे आकर कुछ मंद पड़ गई थी। लोगों में मौलिक उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति जागृत हो गई थी। आज के युग मे फिर अनुवादों की धारा तीव्र गति से प्रारम्भ हो रही है। विभिन्न भाषाओं के उपन्यासों के हिन्दी में अनुवाद किये जा रहे हैं। कितना सुन्दर होता कि यदि भारतीय विद्वान् अपनी मौलिक कृतियों से हिन्दी साहित्य के कलेवर की श्रीवृद्धि करते, परन्तु फिर भी उपन्यास साहित्य बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है।

९ हिन्दी साहित्य मे कहानियों का उद्भव और विकास

कहानी के मूल मे जिज्ञासा और अभिव्यक्ति दो प्रबल मनोवृत्तियां कार्य करती हैं। सभ्यता के प्रारंभिक क्षणो म जब मनुष्य ने भाषा सीखी होगी तब मनोगत अनुभवों का दूसरों पर व्यक्त करने और दूसरो के अनुभव सुनने के लिए कहानी का आश्रय लिया होगा। अत कहानी साहित्य की सबसे प्राचीन विधा है। कहानियो का प्रारम्भ ऋग्वेद से होता है। इन कहानियो मे कहानी के सभी तत्व विद्यमान हैं उनमें वार्तालाप है, कथावस्तु और उद्देश्य हैं। आगे चलकर ब्राह्मण ग्रन्थों म उपनिषदो पुराणो और जातकों मे कहानियाँ मिलती है। इसके पश्चात् बृहत्कथा,

हिन्दी साहित्य मे कहानियों का उद्भव और विकास

वेतालपंचविंशति, सिंहासन-द्वात्रिंशिका, शुभ सन्तति आदि कथाएँ प्राप्त होती हैं। इन कहानियों में नीति कथन तथा मनोरंजन का आदेश था। पंचतन्त्र और हितोपदेश आदि ग्रन्थ भी इसी प्रकार के हैं। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में भी कथा साहित्य का लिखित और मौलिक क्रम मिलता रहा। नाथपंथियों और सिद्धों के उपदेश भी कथाओं के माध्यम से प्रभावित होते थे। हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास के आरम्भ के पूर्व कथा साहित्य का यही रूप था। उसमें नीति, धर्म एवम् सदाचार के प्रतिपादन के लिए घटना और पात्रों की योजना की जाती थी।

हिन्दी साहित्य में कहानियों का श्रीगणेश वीरगाथाकाल से ही प्राप्त होता है। वीरों की कथाएँ गीतों में पायी जाती थीं। इन वीरगाथाओं को जनता पद्य के माध्यम से ही कहती और सुनती थी। ढोला-मारु, हीर-रांझा, बेताल पच्चीसी आदि कहानियाँ जन-साधारण में बड़े चाव से सुनी जाती थीं। इन्हीं गाथाओं में शनैः शनैः प्रेम कथाओं का समावेश होने लगा और आगे चलकर सूफी कवियों ने इन्हें प्रेम गाथाओं के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। भक्तिकाल में लेखकों ने अनेक भक्तों की कथाओं का संग्रह किया, जिनमें "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" तथा "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" अधिक प्रसिद्ध हुई। इनमें केवल उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की विशेषता रहती थी। इनकी भाषा ब्रजभाषा होती थी, जो गद्य के लिए अधिक उपयुक्त नहीं थी। खड़ी बोली में गद्य रचना सन् १८०० से प्रारम्भ होती है और तभी से उनमें कहानियों का प्रारम्भ होता है। हिन्दी गद्य के प्रवर्त्तकों में लल्लूलाल और सदल मिश्र ने संस्कृत कथाओं के आधार पर कहानियाँ लिखीं। लल्लूलाल ने सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, माधवानल, काम कला, शकुन्तला तथा प्रेम सागर की रचना की, सदल मिश्र ने, "नासिकेतोपाख्यान" लिखा। इन लेखकों का अभिप्राय भाषा के स्वरूप को स्थिर करना अधिक था अपेक्षाकृत कहानी लिखने के। इसके पश्चात् फारसी तथा उर्दू से "किस्सा तोता-मैना", "किस्सा साढ़े तीन यार", "चार दर्वेश", "बागो बहार" आदि के अनुवाद हुए। इसी समय इन्शाअल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी, राजा शिवप्रसाद ने 'राजा भोज का सपना' लिखा। इन्शाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को विद्वान् मौलिक एवं हिन्दी की प्रथम कहानी स्वीकार करते हैं। भारतेन्दु जी ने भी "कुछ आपबीती और जगबीती" लिखी। उस समय देश में राष्ट्रीयता की भावनाएँ जग रही थीं। भारतीयों का अंग्रेजों से सम्पर्क स्थापित हो चुका था, देश सुधार की भावनाएँ लोगों में उठने लगी थीं। बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द आदि ने अनेक व्यंग्यात्मक कथाएँ लिखीं परन्तु इन कहानियों में कहानी के नूतन तत्वों का अभाव था। उन्हें आधुनिक कहानी नहीं कह सकते हैं।

आधुनिक मौलिक कहानियों का आरम्भ द्विवेदी युग से माना जाता है। इस समय हम भारतीय पाश्चात्य संस्कृति से पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुके थे। बंगाल की छोटी-छोटी कहानियों का प्रभाव हिन्दी पर पड़ता जा रहा था। रातों-रात महल बनकर तैयार हो जाना, फूंक मार कर मुर्दा जिन्दा कर देना, पशु-पक्षियों का तर्क-वितर्क करना आदि अस्वाभाविक बातें हिन्दी कहानियों में से निकल गई थीं तथा उनका स्थान बुद्धिवाद एवम् मनोविज्ञान ने ले लिया था। 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ ही साथ आधुनिक कहानियों का जन्म समझना चाहिए। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी सन् १९०० में सरस्वती में प्रकाशित हुई। आचार्य शुक्ल का विचार है, "यदि इन्दुमती किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है, तो यह हिन्दी की सबसे पहली मौलिक कहानी ठहरती है, वास्तव में इस कहानी पर अंग्रेजी कवि शेक्सपियर के

टेम्पेस्ट नाटक की छाप है, साथ ही साथ इसमें यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति भी नहीं है।" सन् १६०३ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त बाजपेयी ने 'पंडित और पंडितानी' लिखी। १६०७ में बंग महिला की 'दुलाई वाली' तथा 'जाम्बुकीय न्याय', १६०६ में वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबंध भाई' तथा मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' और 'निन्यानवे का फेर', १६१० में जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम', १६११ में राधिकारमण सिंह का 'कानों में कंगना', १६१३ में विश्वम्भरनाथ कौशिक की 'रक्षा-बन्धन', १६१५ में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था', नामक कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। इनमें से केवल तीन—'दुलाई वाली', 'ग्राम' और 'उसने कहा था', में ही नूतन तत्वों का समावेश हो पाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की भी 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी आधुनिक लक्षणों से युक्त है।

हिन्दी के क्षेत्र में प्रेमचन्द की कहानियों से एक नवीन युग का आरम्भ हुआ। हिन्दी के क्षेत्र में आने से पूर्व प्रेमचन्द उर्दू में लिखा करते थे। सन् १६०७ में 'सोजे वतन' के नाम से इनकी पाँच कहानियों का संग्रह उर्दू में प्रकाशित हो चुका था। इन कहानियों में तीव्र राष्ट्रीय भावना होने के कारण सरकार ने उसे जब्त कर लिया था। सन् १६१५ से वे हिन्दी में लिखने लगे थे। सन् १६१६ में हिन्दी में उनकी पहली कहानी 'पंच-परमेश्वर' प्रकाशित हुई थी। प्रेमचन्द अपने युग के प्रतिनिधि कलाकार थे। उन्होंने लगभग २०० कहानियाँ लिखीं जो लगभग बीस पच्चीस संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी कहानियाँ घटना प्रधान, चरित्र-प्रधान, सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, हास्य-प्रधान सभी प्रकार की हैं। पूस की रात, बूढ़ी काकी, शतरंज के खिलाड़ी, पंच-परमेश्वर, गुल्ली डण्डा, बड़े घर की बेटी, इनकी कुछ सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द जी को हिन्दी का सर्वप्रिय कहानीकार बनाने का श्रेय उनकी भाषा शैली को है। उन्होंने सर्वत्र साधारण व्यवहार में काम आने वाली चलती और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है। उर्दू क्षेत्र से आने के कारण मुहावरों में लोकोक्तियों की झड़ी-सी लगा देना तथा मीठा व्यंग्य करना इनकी शैली की साधारण-सी बात है। सामाजिक कुरीतियों, राजनैतिक दोषों, धार्मिक पाखण्ड का उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द बीच-बीच में चुटकी लेते चलते हैं। प्रेमचन्द उपन्यास की अपेक्षा कहानी के क्षेत्र में अधिक सफल हुए। भारतीय जीवन का कोई वर्ग या कोई पक्ष ऐसा नहीं जो उनकी दृष्टि से बचा हो।

प्रेमचन्द युग के प्रमुख लेखकों में सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ कौशिक, जयशंकर प्रसाद, रायकृष्ण दास, बेचन शर्मा उग्र तथा चतुरसेन शास्त्री आदि हैं। सुदर्शन तथा विश्वम्भरनाथ कौशिक दोनों ही कहानी क्षेत्र में प्रेमचन्द के अनुयायी हैं। दोनों की कहानियाँ प्रेमचन्द के आधार पर ही चली हैं। इनकी भाषा प्रेमचन्द के समान ही सरल एवं आकर्षक है। इन्होंने पारिवारिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ लिखीं। सुदर्शन ने तो कुछ सांस्कृतिक कहानियाँ भी लिखी हैं। उनके 'परिवर्तन', 'नगीना', 'पन-घट', 'तीर्थयात्रा', 'गल्पमंजरी', 'सुप्रभात', 'चार कहानियाँ', 'सुदर्शन सुधा' आदि के अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कौशिक जी ने भी लगभग ३०० कहानियाँ लिखीं, जिनमें "ताई", 'अशिक्षित का हृदय', 'दुबे जी की चिट्ठियाँ', बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रेमचन्द की भाँति सुदर्शन जी ने भी यथार्थ और आदर्श का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

प्रसाद जी की कहानियों में जीवन की स्थूल समस्याओं की ओर इतना ध्यान नहीं दिया गया जितना मानव के हृदय में होने वाले संघर्ष को मूर्तरूप देने का। भाषा और शैली की दृष्टि से भी प्रेमचन्द और प्रसाद में आकाश और पाताल का अन्तर है। प्रसाद जी मुख्य रूप से कवि थे, अतः उनके कवित्व का प्रभाव उनकी भाषा पर पड़ना

स्वाभाविक ही था। प्रसाद जी की कहानियाँ भावुकता और कल्पना-प्रधान हैं। ये कहीं-कहीं रहस्य भावना से भी प्रभावित दृष्टिगोचर होती हैं। इनकी कहानियों में काव्यतत्व की प्रधानता है। प्रतिध्वनि, आकाशदीप आंधी तथा इन्द्रजाल प्रसाद जी के कहानी संग्रह हैं।

जिस प्रकार सुदर्शन तथा कौशिक प्रेमचन्द की धारा के कहानीकार थे उसी प्रकार प्रसाद जी की शैली के भी कुछ अनुयायी थे, जिनमे रायकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास, चण्डीप्रसाद हृदयेश आदि प्रमुख थे, जिन्होंने प्रसाद जी से मिलती-जुलती शैली में कहानियाँ लिखी। रायकृष्ण दास ने भावप्रधान कहानियाँ लिखी, जिनकी भाषा मधुर और अलंकारमयी होती है। चित्रात्मक दृश्य उपस्थित करने मे रायकृष्ण दास जी अधिक सफल हुए थे।

प्रेमचन्द और प्रसाद के अतिरिक्त एक तीसरी धारा भी थी, जिनके प्रवर्त्तक थे बेचन शर्मा उग्र और चतुरसेन शास्त्री। ये लोग यथार्थवादी थे। इन्होंने समाज की कुरीतियों का नग्न चित्रण प्रस्तुत किया है। उग्र जी सामाजिक कहानियों की अपेक्षा राजनीतिक कहानियो में अधिक सफल हुए। उनकी फड़कती हुई भाषा और क्रान्तिकारी भावना ने उन्हें उनकी सफलता मे पर्याप्त योग दिया। उग्र जी के 'दोजख की आग', 'चिनगारियाँ', 'बलात्कार', 'सनकी अमीर' नाम के चार कहानी संग्रह हैं। शास्त्री जी के 'राजकण' और 'अज्ञात' नाम से दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'दे खुदा की राह पर', 'दुखवा कासो कहूँ मोरी सजनी', 'भिक्षुराज', 'कंकड़ों की कीमत' ये शास्त्री जी की प्रसिद्ध भावपूर्ण कहानियाँ है। इस युग के कहानीकारों में राधिकारमण प्रसाद सिंह, शिव पूजन सहाय, वृन्दावनलाल वर्मा, पन्त, निराला, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि का स्थान प्रमुख है।

वर्तमान युग श्री जैनेन्द्रकुमार से प्रारम्भ होता है। सन् १९१७ मे जैनेन्द्र हिन्दी क्षेत्र में आ चुके थे। प्रेमचन्द की मृत्यु १९३६ में हुई, उनके जीवन काल में ही कहानी में परिवर्तन होने लगा था। ग्रामीण जीवन के स्थान पर नागरिक जीवन, कृषकों के स्थान पर मजदूर और धर्म के स्थान पर अर्थ का विश्लेषण होने लगा था। जैनेन्द्र ने हिन्दी को एक नवीन दिशा प्रदान की। इनकी भाषा, शैली और दृष्टिकोण सबमें एक निजी विशेषता है। इनका दार्शनिक व्यक्तित्व इनकी कहानियों मे सर्वत्र स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। जैनेन्द्र ने कहानी के विषयों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया। इनके एक रात, स्पर्धा, जयसन्धि, ध्रुव यात्रा, दो चिड़ियाँ, वातायन, फाँसी, कथा माला, पाजेब, नीलम देश की राजकन्या, आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इस युग के अन्य प्रतिनिधि लेखक श्री इलाचन्द जोशी, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल और निराला हैं।

इलाचन्द जोशी की कहानियों में मानव जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों और दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। इनकी सभी कहानियों में वातावरण एक सा रहता है इसलिये कहानी की रोचकता पाठक की दृष्टि मे कम हो जाती है। अज्ञेय भी वातावरण तथा भावप्रधान कहानियो के सफल लेखक है। इन्होंने पात्रो के कथोपकथन और चरित्र-चित्रण मे मानव प्रवृत्तियों को मार्मिकतापूर्ण चित्रित किया है। भगवतीचरण वर्मा की कहानियाँ मानव जीवन की उलझी और गम्भीर परिस्थितियो को लेकर चलती रहती हैं। 'खिलते फूल', 'दो बाँके', 'इंस्टालमेंट' इनके कहानी संग्रह हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क समाज की कुरीतियो और रूढ़ियों को अपना लक्ष्य बनाकर उन पर तीक्ष्ण प्रहार करते हैं, ये यथार्थवादी लेखक हैं। एकांकी नाटक तथा कहानी दोनों पर इनका समान

अधिकार है। यशपाल प्रगतिवादी कलाकार हैं। मनोविज्ञान के आधार पर इन्होंने अपनी कहानियो मे बडे सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है। इनकी कहानियो में प्रौढता, रमणीयता, व्यापक सहानुभूति, मनोविश्लेषण आदि सभी गुण हैं। निराला जी की चित्रण शक्ति अपूर्व है, इनकी शैली कवित्वमयी है, कहानियाँ भावात्मक और वातावरण प्रधान हैं। स्थान-स्थान पर व्यग और विनोद के भी दर्शन हो जाते हैं। इन्होंने अपनी कहानियो के बैसवाडे के ग्राम्य जीवन के बहुत सुन्दर और स्वाभाविक चित्र उतारे हैं। वृन्दावनलाल वर्मा ने अपनी कहानियों का कथानक मध्य युग के भारतीय इतिहास से लिया, 'शरणागत' और 'कलात्मकला का दण्ड' इनके दो कहानी सग्रह हैं। उपर्युक्त कहानीकारो के अतिरिक्त अन्य कितने ही कलाकार अपनी रचनाओ द्वारा कहानी साहित्य के भण्डार को भर रहे हैं।

विकास की दृष्टि से हिन्दी के कथा साहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है। भारतीय कलाकारो ने वर्णनात्मक तथा घटनाप्रधान कहानियो से प्रारम्भ करके आज विश्व की समस्त प्रचलित शैलियो को अपना लिया है। अभी हास्यरस की कहानिया लिखने की ओर बहुत कम लेखको का ध्यान है। आशा है, भविष्य में इस अभाव की पूर्ति हो जाएगी।

१०. हिन्दी साहित्य मे नाटको का प्रारम्भ और प्रगति

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व हिन्दी में नाटक साहित्य नही के बराबर था। जो कुछ था भी वह नाममात्र के लिए था। उन नाटको में न नाटकीय लक्षण थे, न मौलिकता। अधिकाश नाटक सस्कृत के नाटकों के आधार पर लिखे हुए पद्यबद्ध नाटकीय काव्य थे। इस प्रकार के नाटको में पन्द्रहवी शताब्दी मे लिखा गया विद्यापति का 'रुक्मिणी परिणय' तथा 'पारिजात परिणय', सत्रहवी शताब्दी में हृदयराम द्वारा लिखा गया 'हनुमन्नाटक', महाराज यशवन्तसिंह का लिखा हुआ 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक', अठारहवी शताब्दी का देव कवि द्वारा लिखा गया 'देव माया प्रपच' तथा नेवाज कृत 'शकुन्तला नाटक' उन्नीसवी शताब्दी मे लिखा गया। महाराज विश्वनाथ सिंह का 'आनन्द रघुनन्दन' तथा ब्रजवासी का 'प्रबोध चन्द्रोदय' आते हैं।

हिन्दी नाटको का व्यवस्थित रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल से ही दृष्टिगोचर होता है। पारसी थियेटरों और नाटक कम्पनियो के असाहित्यिक एव अव्यवस्थित नाटको की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भारतेन्दु जी ने नाटक लिखना आरम्भ किया। भारतेन्दु ने जिस नाट्य-पद्धति का श्रीगणेश किया वह अपने अतीत से भिन्न थी। उन्होने पद्य के स्थान पर गद्य, राम और कृष्ण के स्थान पर सामाजिक तथा राजनैतिक विषयो को ग्रहण किया। भारतेन्दु जी ने स्वय भी सस्कृत, बगला तथा अग्रेजी नाटको का अच्छा अध्ययन किया था। इनमे से इन्होंने कुछ नाटको का हिन्दी में अनुवाद भी किया था।

> हिन्दी साहित्य मे नाटकों का प्रारम्भ और प्रगति।
> १ प्रारम्भ।
> २ भारतेन्दु युग।
> ३ द्विवेदी युग।
> ४ प्रसाद युग।
> ५ आधुनिक युग।
> ६ उपसहार।

भारतेन्दु युग के नाटककारो मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही प्रमुख नाटककार थे।

उन्होंने लगभग १३ मौलिक तथा अनूदित नाटकों की रचना की। भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेरनगरी, प्रेमयोगिनी, चन्द्रावली, वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति, 'विषस्य विषमौषध' आदि आपकी मौलिक नाट्य कृतियाँ हैं। मुद्रा राक्षस, धनजय विजय और रत्नावली संस्कृत नाटको के अनुवाद हैं। 'कर्पूरमंजरी' प्राकृत से अनुवाद किया हुआ नाटक है। 'विद्या सुन्दर' तथा 'भारत जननी' नाटको का बंगला से अनुवाद किया। वेनिस नगर का महाजन शेक्सपियर का अंग्रेजी नाटक 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद है। भारतेन्दु के नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र' सबसे अधिक प्रसिद्ध नाटक है। इससे राजा हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा तथा उनके चारित्रिक बल की पौराणिक कथा को एक कलात्मक नाटकीय स्वरूप प्रदान किया है। भारतेन्दु जी की नाट्यकला पर संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला तीनों भाषाओं के नाटकों का प्रभाव है। भारतेन्दु ने इन भाषाओं के नाटकों का अनुकरण नही किया, अपितु संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी की नाट्यकला में समन्वय स्थापित किया। इन्होने रंगमंच के उपयुक्त नाटको की रचना की। उन्हें रंगमंच का विशेष ज्ञान तथा अनुभव था। वे स्वयं नाटको के अभिनय मे भाग लेते थे। यही उनकी सफलता का रहस्य था।

भारतेन्दु के समकालीन लेखको मे लाला श्रीनिवास दास ने 'रणधीर', 'प्रेम मोहिनी', 'प्रह्लाद चरित्र', 'सप्तसवरण' तथा 'संयोगिता स्वयंवर', ये चार नाटक लिखे। रायकृष्णदास ने 'दुःखिनी बाला', 'पद्मावती', 'धर्मपाल' तथा 'महाराणा प्रताप' नाटकों की रचना की। बालकृष्ण भट्ट के प्रकाश मे आए हुए 'दमयन्ती स्वयंवर', 'वेणी संहार' और 'जैसे काम वैसा परिणाम' तीन नाटक प्रसिद्ध हैं। बद्री नारायण चौधरी प्रेमधन ने 'भारत सौभाग्य', 'वीरांगना रहस्य' और 'वृद्ध विलाप' नाटक लिखे। प्रतापनारायण मिश्र ने 'गौ संकट', 'कलि कौतुक', 'हठी हमीर' आदि नाटकों की रचना की। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'मयंक मंजरी' और 'नाट्य सम्भव' आदि नाटकों की रचना की। भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों द्वारा लिखे गये नाटकों में सामाजिक कुरीतियों के प्रति तीखा व्यंग्य होता था। उस समय के लिखे गए प्रहसनों में सामाजिक समस्याओं पर खुलकर प्रहार किया गया।

आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी युग में नाटको का विशेष विकास नहीं हो पाया। यद्यपि इस बीच मे भी कई नाटको की रचना हुई, परन्तु बद्रीनाथ भट्ट के अतिरिक्त कोई विशेष प्रतिभाशाली नाटककार उत्पन्न न हुआ। इसके कई कारण थे, सर्वप्रथम हमारे यहाँ रंगमंच का अभाव था तथा अभिनय कला का प्रचार कम था सभ्य समाज में अभिनय को अच्छी दृष्टि से नही देखा जाता था। इस युग में हिन्दी नाटक संस्कृत के प्रभाव से मुक्त होकर पाश्चात्य नाटकीय शिल्प का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। भारतेन्दु ने जिस हिन्दी रंगमंच की स्थापना की थी वह भी पारसी थियेटर कम्पनियो की तड़क-भड़क, जनता की भद्दी रुचि, गद्य-पद्य मिश्रित चलती हुई भाषा तथा उर्दू लेखकों के चुलबुलेपन के कारण स्थिर न रह सका। इन्हीं कम्पनियों की प्रेरणा से रंगमंचीय नाटक लिखे गये जिनमें नारायण प्रसाद बेताब, आगा हश्र कश्मीरी, हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा आदि नाटककार प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त इस युग में जो साहित्यिक नाटक लिखे गये उनमे बद्रीनाथ भट्ट के 'कुरुवन दहन', 'चन्द्रगुप्त', 'तुलसीदास', और 'दुर्गावती', माधव शुक्ल का 'महाभारत', मिश्र बन्धुओं का 'नेत्रोन्मीलन' तथा आनन्द प्रसाद खत्री का 'संसार स्वप्न' आदि उल्लेखनीय हैं। इसी युग में मैथिलीशरण गुप्त ने 'चन्द्रहास' और 'तिलोत्तमा' तथा माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक लिखा।

जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी के नाट्य साहित्य मे नये युग का सूत्रपात किया। प्रसाद जी युगान्तरकारी नाटककार थे। उन्होंने अपने भावपूर्ण ऐतिहासिक नाटको मे राष्ट्रीय जागृति, नवीन आदर्श एव भारतीय इतिहास के प्रति अगाध श्रद्धा प्रस्तुत की। प्रसाद जी ने बौद्धकालीन भारत के इतिहास को आधार बनाकर, ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त घटनाओ, परिस्थितियो तथा चरित्र का समावेश किया। प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों मे सबसे पहली रचना 'राज्यश्री' है। इसमे हृषकालीन भारत का चित्रण है। 'अजातशत्रु' से प्रसाद जी को नाटककार के रूप मे ख्याति हुई। 'स्कन्द-गुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' प्रसाद जी के सर्वोत्कृष्ट नाटक हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' ऐतिहासिक नाटक है, इसमे नाटककार ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्राचीनकाल में भी विधवा विवाह होते थे। 'सज्जन' और 'जनमेजय का नागयज्ञ' इनके पौराणिक नाटक हैं, परन्तु पौराणिक नाटको की प्राचीन पद्धति से ये नाटक कुछ भिन्न हैं। 'कामना' और 'एक घूट' प्रसाद जी के भाव नाट्य हैं। प्रसाद जी दार्शनिक एवम् कवि थे। अत उनकी समस्त रचनाओ मे गम्भीर चिन्तन, द्वन्द, सूक्ष्म चरित्र चित्रण गम्भीर सांस्कृतिक वातावरण तथा सुगठित कथानको के कारण प्रसाद जी के नाटक बहुत उच्चकोटि के हैं। प्रसाद जी के नाटक साधारण पाठक के लिये न होकर साहित्यिक अभिरुचि के पाठक और परिष्कृत रुचि के दर्शकों के लिये हैं।

प्रसाद युग के अन्य नाटककारो मे माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कृष्णार्जुन युद्ध' सुदर्शन ने 'अजन्ता', बेचन शर्मा उग्र ने 'महात्मा ईसा', प्रेमचन्द ने 'कर्बला' नामक नाटक लिखे। गोविन्दवल्लभ पत भी प्रसाद युग के एक श्रेष्ठ नाटककार थे। इन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक तथा पौराणिक सभी प्रकार के नाटक लिखे। इनके 'अगूर की बेटी' सामाजिक, 'राजमुकुट' तथा 'अन्त पुर के छिद्र' ऐतिहासिक और 'वरमाला' पौराणिक नाटक हैं। इसके अतिरिक्त १९५१ मे इनके दो नाटक और प्रकाशित हुए थे—'ययाति' और 'सिन्दूर बिन्दी'। पन्त जी के नाटक रगमच की दृष्टि से सफल माने गये है। भाषा सरल और सुबोध है।

आधुनिक युग के नाटककारो मे हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशकर भट्ट सेठ गोविन्ददास तथा उपेन्द्रनाथ अश्क अधिक प्रसिद्ध हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र मे विशेष ख्याति प्राप्त की है। इनके नाटक मुस्लिमकालीन भारत के इतिहास से सम्बन्धित हैं तथा उनमें आधुनिक समस्याओं के समाधान ढूढने का सफल प्रयास किया गया है। रक्षाबधन, विषपान, आहुति, प्रतिशोध, प्रकाश स्तम्भ आदि आपके ऐतिहासिक नाटक हैं। प्रेमी जी ने 'पाताल विजय' नाम से एक पौराणिक नाटक भी लिखा है। इन्होने अब तक एक दर्जन से भी ज्यादा नाटक लिखे हैं, ये सभी अभिनय के लिए उपयुक्त है और परिस्थिति एव पात्रानुकूल भाषा है। इतिहास और कल्पना का समन्वय आपके नाटको की विशेषता है। प्रेमी जी के नाटक ओजपूर्ण, चरित्र-चित्रण गम्भीर तथा विचार नवीन हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के अधिकाश नाटक समाज सम्बन्धी एव समस्या मूलक हैं। समस्या मूलक नाटको मे मिश्र जी को अधिक सफलता प्राप्त हुई। उनका बुद्धिवादी दृष्टिकोण है। इन्होंने समस्या के चित्रण में पात्रों की मन स्थिति तथा अन्तर्द्वन्द्व का भी यथार्थ चित्रण किया है। इनके अधिकाश नाटक तीन अकों के हैं, सवाद छोटे हैं तथा नाटको में पर्याप्त गतिशीलता है। इन्होने दो एक ऐतिहासिक नाटक भी लिखे हैं। मिश्र जी के नाटको मे अशोक, सन्यासी सिंदूर की होली, राक्षस का मन्दिर मुक्ति रहस्य, आधी रात, वत्सराज, दशाश्वमेध आदि मुख्य हैं। इनमें अशोक, वत्सराज, दशाश्वमेध ऐतिहासिक नाटक है।

उदयशंकर भट्ट ने ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटक लिखे हैं। ऐतिहासिक नाटकों में 'विक्रमादित्य', 'सिंधुपतन', 'मुक्तिपथ' तथा 'शक-विजय' हैं। ऐतिहासिक नाटकों के पात्रों के चरित्र-चित्रण में भट्ट जी अधिक सफल नहीं कहे जा सकते। पौराणिक नाटकों में भट्ट जी अधिक श्रेष्ठ हैं। इन दोनों में कथानक महाभारत की कथा पर आधारित है। विश्वामित्र और राधा दोनों भाव नाट्य हैं। क्रांतिकारी, नया समाज और पार्वती नवीनतम अभिनेय नाटक हैं। मेघदूत तथा विक्रमोर्वशी आदि कुछ रेडियो रूपक भी इन्होंने लिखे हैं।

सेठ गोविंददास ने सबसे बड़ी संख्या में नाटक लिखे हैं। इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक, राजनैतिक सभी प्रकार की समस्याओं के नाटक लिखे हैं। एकांकी नाटकों के क्षेत्र में सेठ जी ने सौ से भी अधिक नाटक लिखे हैं। चरित्र-चित्रण तथा रंगमंच की दृष्टि से इनके नाटक श्रेष्ठ हैं। कथोपकथन भी स्वाभाविक हैं, परन्तु अब तक सेठ जी किसी उत्कृष्ट प्रभावोत्पादक नाटक की रचना नहीं कर पाये। …के नाटकों में हर्ष, प्रकाश, सेवापथ, शशिगुप्त, बड़ा पापी कौन, आदि उल्लेखनीय … हिन्दी नाटक के क्षेत्र में सेठ गोविंददास जी ही ऐसी विभूति हैं, जिनके नाटकों में …दृश्य में गत ४० वर्षों के राजनैतिक और सामाजिक जीवन का जीता जागता स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

उपेन्द्रनाथ अश्क भी आधुनिक काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं। उन्होंने अपने नाटकों में समाज पर तीखे व्यंग किये हैं। अश्क जी के नाटकों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण यथार्थवादी ढंग से हुआ है। जय पराजय, पैंतरे, कैद और उड़ाके, छोटा बेटा, स्वर्ग की झलक और अंधी गली इन सभी नाटकों में समाज के ऊपर तीक्ष्ण व्यंग है। अश्क जी के सभी नाटक खेले जा चुके हैं तथा सफल सिद्ध हुए हैं।

उपर्युक्त नाटककारों के अतिरिक्त वृन्दावनलाल वर्मा तथा चतुरसेन शास्त्री ने भी पर्याप्त नाटक लिखे हैं। वर्मा जी का 'पूर्व की ओर' अपनी ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त सफल नाटक है। इन्होंने ११ सामाजिक नाटक भी लिखे हैं जिनमें समाज की भिन्न-भिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। श्री चतुरसेन शास्त्री के नाटकों में राजपूती संघर्ष उपस्थित किया गया है। इनकी भाषा सशक्त एवम् भावानुकूल है। इनके अतिरिक्त जगदीश चन्द्र माथुर, पृथ्वीनाथ शर्मा, रामकुमार वर्मा, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि नाटककार अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास में योग दे रहे हैं।

इस प्रकार हमारा नाट्य साहित्य उत्तरोत्तर प्रगतिशील है। एक बात जो …वश्यक है, वह यह है कि हमारे यहाँ रंगमंच और अभिनय की कमी है। रंगमंच के …न से रहित जो नाटककार नाटकों की रचना करते हैं, वे सफल नहीं हो पाते। दूसरे हमारे नाटकों से हमारी सभी प्रकार की समस्याओं का पूर्णरूप में समाधान होना चाहिये। हमारे नाटकों से हमारा सांस्कृतिक व्यक्तित्व स्पष्ट होना चाहिये। अभिनयशीलता और भाषा की सरलता पर भी ध्यान देना चाहिए तथा हास्य, विनोद तथा परिहास को प्रमुख स्थान देना चाहिये।

११. हिन्दी कविता में रहस्यवाद और उसके विभिन्न रूप

भारतीय साहित्य में रहस्यवाद जैसा कोई शब्द नहीं मिलता। अंग्रेजी के 'मिस्ट्रीइज्म' शब्द का हिन्दी में अनुवाद करके रहस्यवाद कहा जाने लगा। परन्तु रहस्यवाद मे जिस प्रकार की रचनायें आती हैं वे रचनायें प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त हैं और नवीन में भी। रहस्य का अर्थ है कि वह अदृश्य, अगम्य और अव्यक्त शक्ति जो इस चराचरात्मक जगत् को अपने नियन्त्रण मे छिपे हुए है उस अव्यक्त सत्ता को प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा, उसके साथ जीवात्मा का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित होना। साधारण जीव और ब्रह्मज्ञानी में इतना ही अन्तर है कि ज्ञानी अपनी बुद्धि, तर्क एवम् ज्ञान के द्वारा इस निश्चय पर पहुँचता है कि "जीवो ब्रह्मैव नापर" अर्थात् जीव ब्रह्म ही है कोई दूसरी वस्तु नहीं। इस प्रकार वह अद्वैतवादी की कोटि मे आ जाता है। रहस्यवादी कवि बुद्धि, तर्क एवम् ज्ञान का आश्रय न लेकर भावुकता और कल्पना के सहारे उस शक्ति मे अपनी आत्मा को विलीन कर देना चाहता है। उसे समस्त सृष्टि में, कण कण से अदृश्य सत्ता का सौंदर्य दृष्टिगोचर होता है, उससे वह अपना व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करता है। महादेवी वर्मा ने रहस्यवाद की परिभाषा देते हुए लिखा है, "इस प्राकृतिक अनेकरूपता के कारण एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना, इसका दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया।" डॉ० रामकुमार वर्मा रहस्यवाद की परिभाषा देते हुए कहते हैं—"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिससे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहता है।"

रहस्यवाद के भी दो प्रकार हैं। जब भावना के आधार पर जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन होता है, तब रहस्यवाद का जन्म होता है, इसे भावात्मक रहस्यवाद कहते हैं। इसके प्रतिकूल जब अप्राकृतिक जटिल क्रियाओं द्वारा अव्यक्त सत्ता के साक्षात्कार का विधान होता है, तब साधनात्मक रहस्यवाद का जन्म होता है।

> हिन्दी कविता में रहस्यवाद और उसके विभिन्न रूप
> १ रहस्यवाद की परिभाषा।
> २ रहस्यवाद के प्रकार।
> ३ हिन्दी कविता में रहस्यवाद की परम्परा।
> ४ रहस्यवाद में शृङ्गारिक भावना।
> ५ उपसंहार।

हिन्दी कविता में रहस्यवादी रचनायें प्राचीन काल से ही विद्यमान हैं। भक्ति काल में कबीर और जायसी की रचनाओं में रहस्यवादी संकेत पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। प्राचीनकाल में तान्त्रिकों, योगियों तथा नाथ पंथियों में भी रहस्य साधना की प्रवृत्ति थी, परन्तु उनकी साधना साम्प्रदायिक रूढ़ियों पर आधारित होती थी, इसलिए इन्हें काव्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हुआ।

कबीर का ज्ञान-प्रधान रहस्यवाद साधनात्मक भी है और भावात्मक भी। कबीर योगियों तथा अद्वैतवादियों से पूर्ण प्रभावित थे। उन्होंने साधनात्मक रहस्यवाद पर अधिक बल दिया। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, षट्चक्र, सहस्र दल कमल, ब्रह्मरंध्र आदि यौगिक शब्द या प्रतीकों द्वारा साधना के मार्ग की ओर संकेत किया

है। कबीर में स्वाभाविक रहस्यवाद वहाँ है, जहाँ परमात्मा से सीधा सम्बन्ध स्थापित करती हुई आत्मा अलौकिक आनन्द का अनुभव करती है। आनन्द अनिर्वचनीय होता है। जिस स्थिति में पहुँचकर रहस्यवादी अपने आनन्द का आभास देता है, वह सामान्य व्यक्ति के लिये रहस्य ही बनी रहती है, कबीर ने इस स्थिति के लिये कहा है—

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय।
बूँद समानी समद में, सो कत हेरो जाय॥

आनन्द की अत्यधिक तीव्रता के समय का चित्र देखिये—

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहर गम्भीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर॥

जायसी का रहस्यवाद प्रेम-प्रधान है। जायसी का रहस्यवाद हृदय को प्रभावित करता है, कबीर का बुद्धि को। जायसी के रहस्यवाद में अनुभूति की तीव्रता अधिक है। प्रेम की पीर का जैसा मर्मस्पर्शी रूप जायसी के पद्मावत में मिलता है वैसा साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। जायसी का रहस्यवाद "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" के सिद्धान्त पर आधारित था। वे जगत् के समस्त उपकरणों में उसी रहस्यमयी अव्यक्त शक्ति की ज्योति देखते थे—

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोति। रतन पदारथ, मानिक मोती।
जहँ जहँ विहँसी सुभावहु हँसी। तहँ तहँ छिटकी जोति परगसी॥

नयन जो देखा कमल भा, निर्मल नीर शरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर॥

मलिक मुहम्मद जायसी के पश्चात् प्रेममार्गी शाखा के उसमान, शेख, नबी, कासिम शाह और नूर मुहम्मद आदि कवियों में भी इसी प्रकार की रहस्य भावना दृष्टिगोचर होती है।

आधुनिक काल में भी रहस्यवाद की उस पुरातन प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं, परन्तु अन्तर इतना है कि यह रहस्यवाद कबीर और जायसी की परम्परा से न आकर अंग्रेजी और बंगला साहित्य से आया। रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजली' पर जब नोबिल पुरस्कार मिला तो हिन्दी में रहस्यवादी रचनायें लिखने की बाढ़-सी आ गई। परन्तु समय के प्रवाह और आलोचकों के प्रवाह के कारण वे शीघ्र ही साहित्य क्षेत्र में लुप्त हो गए। अब केवल गिने-चुने कवि ही रहस्यवादी कवि समझे जाते हैं, जिनमें जयशंकर प्रसाद, पंत, निराला तथा महादेवी वर्मा आते हैं। इनमें प्रसाद और निराला का रहस्यवाद दार्शनिक रहस्यवाद कहा जाता है और महादेवी का भावात्मक। प्रसाद जी ने कामायनी के आशा सर्ग में विराट् प्रकृति के मूल में किसी परम रमणीय अव्यक्त सत्ता की कल्पना की है—

हे अनन्त रमणीय! कौन तुम यह, यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो? क्या हो? इसका तो, भार विचार न सह सकता।

× × ×

सिर नीचा कर किसकी सत्ता, सब करते स्वीकार यहाँ।
सदा मौन हो प्रवचन करते, जिसका, वह अस्तित्व कहाँ?

पन्त जी प्रकृति के उपकरणों में किसी अदृश्य सत्ता के प्रबल आकर्षण का अनुभव करते हैं, जैसे उन्हें कोई आमन्त्रण दे रहा है—

न जाने नक्षत्रों से कौन, निमन्त्रण देता मुझको मौन।

पन्त जी का रहस्यवाद जिज्ञासामूलक है, कभी-कभी अनन्त की जिज्ञासा में वे लिखते हैं—

मैं चिर उत्कण्ठातुर।
जगती के अखिल चराचर, यों मौन मुग्ध किसके बल।

महाकवि निराला में अव्यक्त सत्ता से सम्बन्ध स्थापित करने तथा उसमें अद्वैत की भावनाओं से युक्त रहस्यवाद मिलता है। कबीर का निर्गुणवाद निराला जी में भी मिलता है—

पास ही रे, हीरे की खान खोजता कहाँ और नादान।
× × ×

एक स्थान पर वे स्वयं उस शक्ति से प्रश्न कर बैठते हैं—

कौन तम के पार ? रे कह।

परिमल में संगृहीत "तुम और मैं" कविता में कवि ने उस अव्यक्त शक्ति से इसी प्रकार के अनेक सम्बन्ध स्थापित किये हैं—

तुम शुद्ध सच्चिदानन्द
और मैं मन मोहिनी, तुम प्राण मैं काया।
× × ×
तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा।
तुम भव सागर दुस्तर, पार जाने की मैं अभिलाषा।।
× × ×
तुम नभ हो मैं नीलिमा,
तुम शरद काल के बाल इन्दु, मैं हूँ निशीथ मधुरिमा।
× × ×
तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य, मैं मधुर मधुर नूपुर ध्वनि।
तुम नाद वेद ओंकार सार, मैं कवि शृङ्गार शिरोमणि।।

महादेवी जी में भावात्मक रहस्यवाद की प्रधानता है। वे अव्यक्त के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए लालायित हो उठती हैं। एक स्थान पर उस अलौकिक सत्ता से मिलने की अनुभूति में आनन्द का वर्णन करती हुई कहती हैं—

चित्रित तू, मैं हूँ रेखा क्रम, मधुर राग तू, मैं स्वर सरगम।
तू असीम, मैं छाया का भ्रम, काया छाया में रहस्यमय।।
प्रेयसि प्रियतम का परिचय क्या,
तू मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?

वे अपने लघुतम जीवन को उस असीम और अरूप का सुन्दर मन्दिर मान लेती हैं। उसी में अपने प्रिय का अभिनन्दन करती हैं और नेत्र, पाद्य समर्पित करती हैं—

क्या पूजा क्या अर्चन रे।।
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं, नित प्रिय का अभिनन्दन रे।।
पद रज को धोने उमड़े आते, लोचन में जल कण रे।
अक्षत पुलकित रोम मधुर, मेरी पीड़ा का चन्दन रे।।

अपने रहस्यतम प्रियतम से मिलने के लिए अनेक बार शृंगार किया; प्रतीक्षा की, परन्तु सब व्यर्थ। सहसा वे कह उठीं, विरहानुभूति का कैसा सुन्दर चित्रण है—

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग भरा उन्माद राग
आँसू लेते वे पद पखार !
हँस उठते पल से आर्द्र नयन धुल जाता ओठों से विषाद
छा जाता जीवन में बसन्त लुट जाता चिर संचित विराग,
आँखें देतीं सर्वस्व वार !

शृंगार किया, परन्तु शृंगार देखकर भी वह रहस्यमय प्रसन्न न हुआ—

शशि के दर्पण में देख-देख मैंने सुलझाये तिमिर केश।
गूँथे चुन तारक पारिजात अवगुंठन कर किरणें अशेष।
क्यों आज रिझा पाया उसको मेरा अभिनव शृंगार नहीं।

महादेवी अपने प्रिय को चिरन्तन स्वीकार करके अपने को क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी अनुभव करती हैं—

प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।

परन्तु उस चिरन्तन प्रियतम का सान्निध्य जीवन में कब हो पाया, जब हुआ भी तो लज्जा के कारण कुछ कह नहीं सकी—

इन ललचाई पलकों पर, पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का।

प्रियतम को पत्र लिखने की भी प्रथा है; परन्तु उस अव्यक्त प्रियतम तक संदेश भी कैसे भेजें ?

कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती
दृग जल की सित मसि है अक्षय मसि प्याली झरते तारक द्वय,
पल पल के उड़ते पृष्ठों पर सुधि से लिख श्वासों के अक्षर।
मैं अपने ही बेसुधपन में, लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती॥

विरह की अनुभूतियों के चित्रण में महादेवी जी मीरा के अधिक निकट पहुँच जाती हैं। उनके काव्य में अनन्त विरह है। यह भावना 'विरह का जलजात जीवन' 'मैं नीर भरी दुख की बदली' या 'प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन' आदि पंक्तियों में स्पष्ट हुई है। निःसन्देह आज के रमणीय रहस्यवादी काव्य का महादेवी जी प्रतिनिधित्व करती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महादेवी जी के विषय में लिखा है, "छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं। अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही उनके हृदय का भाव केन्द्र है, जिससे अनेक प्रकार की भावनायें छूट-छूट कर झलक मारती हैं।"

सारांश यह है कि प्राचीन काल के कवियों ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में लिखा है और वैसे ही उन्होंने साधना भी की, परन्तु आज के रहस्यमयी कवि साधना और सच्ची अनुभूति से कोसों दूर है। उनके मन में कुछ है, वाणी मे कुछ और लेखनी

कुछ और ही लिखती है। जब तक आन्तरिक और बाह्य भावनाओं का सामंजस्य न हो तब तक ये कवितायें पाठकों को प्रभावित नहीं कर सकतीं।

निराला और महादेवी जी के अनुकरण में आज अनेक कवि कुछ कठिन शब्दों के आवरण में ऐसा ही कह जाते हैं, जिनसे उनकी अतृप्त वासना ही परिलक्षित होती है। न सभी प्रसाद और कबीर बन सकते हैं, न महादेवी और निराला। अतृप्ति की दशा कविता लिखने की प्रेरणा दे सकती है, परन्तु उनको आत्मा-परमात्मा के आवरण में आवृत करके रहस्यमय अर्थ ढूँढना कोरी भावुकता है। रहस्यमयी रचनाओं का युग अब कुछ समाप्त सा होता जा रहा है, नये वाद और नई प्रवृत्तियाँ साहित्य के क्षेत्र में आ चुकी हैं।

१२. राष्ट्रभाषा हिन्दी

भारतवर्ष की पवित्र भूमि विदेशियों से पदाक्रान्त थी। उन्हीं के रीति-रिवाज

राष्ट्रभाषा हिन्दी
१ स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व।
२ स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात्।
३ हिन्दी की विशेषतायें।
४ राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होना।
५ कुछ बाधायें।
६ उनके कारण।
७ उपसंहार।

और उन्हीं की सभ्यता को प्रधानता दी जाती थी। अंग्रेजी पढ़ने, बोलने और लिखने में भारतीय गौरव का अनुभव करते थे। राज्य के समस्त कार्यों की भाषा अंग्रेजी ही थी। न्यायालयों के निर्णय, दफ्तरों की कागजी कार्यवाही, विश्वविद्यालयों की शिक्षा, शासकीय आज्ञाएँ सभी कुछ अंग्रेजी में होता था। हिन्दी में लिखे गये प्रार्थना-पत्रों को फाड़ कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया जाता था। बेचारे भारतीय विवश होकर अच्छी नौकरी एवं शासन के मान की लालसा से अंग्रेजी पढ़ते थे। संस्कृत को तो 'मृतभाषा' की उपाधि प्रदान कर दी गई थी। एक प्रवाह था, एक धूम मची हुई थी, सारे देश में अंग्रेजी की।

परन्तु देश के भाग्य ने पलटा खाया, भारतीय साधकों की साधनायें फलवती हुईं। १५ अगस्त सन् ४७ को देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई। जब तक देश में अंग्रेज थे तब तक अंग्रेजी का स्ववश या परवश आदर होता था। परन्तु उनके जाने के पश्चात् यह नितान्त असम्भव था कि देश के सारे राजकाज अंग्रेजी में हों। अतः जब देश का संविधान बनने लगा तब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि देश की राष्ट्रभाषा कौन सी हो? क्योंकि बिना राष्ट्रभाषा के कोई भी देश स्वतन्त्र होने का दावा नहीं कर सकता। राष्ट्रभाषा समूचे राष्ट्र की आत्मा को शक्ति-सम्पन्न बनाती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी राष्ट्रभाषा के प्रचार और प्रसार का प्रयत्न करता है। रूस, जापान, अमरिका, ब्रिटेन, आदि स्वतन्त्र देशों में अपनी अपनी राष्ट्रभाषायें हैं। राष्ट्रभाषा से देश के स्वतन्त्र अस्तित्व की रक्षा होती है। संविधान निर्माण काल में कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे, जो अंग्रेजी को ही राष्ट्रभाषा बनाये रखने के पक्ष में थे। इस प्रकार के वे भारतीय थे, जो अंग्रेजी साहित्य के निपुण थे ऊँचे ऊँचे पदों पर आसीन थे और जिन्हें हिन्दी पढ़ना या लिखना बिल्कुल नहीं आता था। उन्हें भय था कि यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा हुई तो उनके पद उनसे छिन न जायें या वे इतनी सफलतापूर्वक कार्य न कर सकें, जितना ये लोग अंग्रेजी में कर सकते थे। इस प्रकार इस विचारधारा के पीछे केवल स्वार्थबुद्धि ही थी, कोई राष्ट्रीय भावना नहीं। कुछ लोग अन्य प्रान्तीय भाषाओं के भी पक्ष में थे। भारत-

वर्ष में लगभग सौ से अधिक भाषायें हैं जिनमें हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बंगाली, तमिल और तेलुगू आदि प्रमुख हैं।

भारतवर्ष में इस विषय पर अत्यधिक वाद-विवाद चलता रहा। अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा इसलिये घोषित नहीं किया जा सकता था कि छत्तीस करोड़ भारतीयों में से एक करोड़ भी ऐसे नहीं थे जो आत्मविश्वासपूर्वक अंग्रेजी बोल सकते हों, या लिख सकते हों। जिस भाषा को मुट्ठी भर आदमी ही जानते हों, उसे राष्ट्रभाषा बना देना लोकतन्त्रात्मक देश की जनता पर अत्याचार था। दूसरी बात यह भी थी कि जिन विदेशियों के शासन को हमने मूलत: उखाड़ फेंका था, उनकी भाषा को यहाँ रखने का तात्पर्य यह था कि हम किसी न किसी रूप में उनकी दासता में फंसे रहे। परिणामस्वरूप अंग्रेजी का प्रश्न समाप्त हो गया। अन्य प्रान्तीय भाषायें भी अपनी व्यापकता में हिन्दी से बहुत पीछे थी। हिन्दी के पक्ष में तर्क यह था कि सर्वप्रथम यह एक भारतीय भाषा है, दूसरी बात यह है कि जितनी संख्या हिन्दी भाषा-भाषी जनता की देश में है, उतनी अन्य किसी प्रान्तीय भाषा की नहीं। तीसरी विशेषता यह है कि हिन्दी बोलने वालों की संख्या चाहे पन्द्रह करोड़ ही हो परन्तु समझने वालों की संख्या सबसे अधिक है। देश के प्रत्येक अँचल में हिन्दी सरलता से समझी जाती है; भले ही लोग बोल न सकते हों। मुगलकाल से ही उर्दू के रूप में हिन्दी में प्रचार समस्त भारत भूमि में किसी न किसी रूप में होता रहा है। चौथी बात यह है कि हिन्दी भाषा अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में सरल है इसमें शब्दों का प्रयोग तर्कपूर्ण है। दो तीन महीनों के अल्प समय में ही सीखी जा सकती है। पाँचवी विशेषता यह है कि इसकी लिपि वैज्ञानिक है और सुबोध है, जैसी बोली जाती है वैसे ही लिखी जाती है। इसके अतिरिक्त सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक सभी प्रकार के कार्य-व्यवहारों के संचालन की पूर्ण क्षमता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण भारतीय संविधान में सभी ने यह निश्चय किया कि हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि बनाया जाये।

'हिन्दी' राष्ट्रभाषा उद्घोषित हो जाने पर भी एकदम उसका प्रयोग में ला जाना कठिन था। अतः राजकीय कर्मचारियों को यह सुविधा प्रदान की गई कि सन् १९६५ तक केन्द्रीय शासन का कार्य व्यावहारिक अंग्रेजी में ही चलता रहे और इन पन्द्रह वर्षों में हिन्दी को पूर्ण समृद्धिशाली बनाने के प्रयत्न किये जायें। इस बीच में सरकारी कर्मचारी भी हिन्दी सीख लें। उन्हें शासन की ओर से हिन्दी पढ़ाने की विशेष सुविधायें दी गईं। शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी अनिवार्य विषय बना दिया गया। शिक्षा मन्त्रालय की ओर से हिन्दी के पारिभाषिक शब्द निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ तथा इसी प्रकार की अन्य सुविधायें भी शासन की ओर से हिन्दी शिक्षा को दी गईं जिससे १९६५ में हिन्दी, अंग्रेजी का स्थान पूर्ण रूप से ग्रहण कर लें।

इस प्रकार शासन और जनता जहाँ हिन्दी को आगे बढ़ाने में प्रयत्नशील हैं, वहाँ ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं जो टाँग पकड़ कर पीछे घसीटने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों में कुछ ऐसे भी हैं जो हिन्दी को संविधान के अनुसार सरकारी भाषा मानने को तैयार हैं, परन्तु राष्ट्रभाषा नहीं। कुछ ऐसे भी है, जो उर्दू का निर्मूल पक्ष समर्थन करके राज्य कार्य में विघ्न डालते रहते हैं। धीरे-धीरे पंजाब, बंगाल और मद्रास निवासी भी प्रान्तीयता की संकीर्णता में फँसकर अपनी-अपनी भाषाओं की माँग कर रहे हैं। दक्षिण भारतीय और बंगालियों का भी कहना है कि हिन्दी हम पर जबरदस्ती लादी जा

रही है। उनका विचार है कि यदि हिन्दी को सरकारी भाषा बना दिया गया तो हम लोग सरकारी नौकरियों में पीछे रह जायेंगे तथा राजनीति में भी हिन्दी भाषियों का ही प्रभुत्व रहेगा। उल्लेखनीय यह है कि ये ही सज्जन हैं जिन्होंने पहिले हिन्दी का हृदय खोलकर समर्थन किया था। राजा जी ने एक बार ये शब्द कहे थे, "केन्द्रीय सरकार तथा कानून की भाषा और प्रान्तीय सरकारों के परस्पर तथा भारत सरकार के साथ व्यवहार की भाषा हिन्दी अवश्य स्वीकार करनी होगी।" डॉक्टर चटर्जी ने १९४६ में कहा था, "विभिन्नता रहते हुए समस्त भारत की जड़ें अखण्ड हैं। भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में इस सत्य का प्रतीक हिन्दी है। "सगच्छध्वं संवदध्वं" आधुनिक भारत के जीवन में इस मन्त्र को सार्थक करने का साधन हिन्दी है।" परन्तु अब उनका ही विचार है, "हिन्दी भाषा अभी इस योग्य नहीं जो अंग्रेजी का स्थान ग्रहण कर सके।" वास्तव में बिना राष्ट्रीय भाषा के पद पर आसीन हुए कोई भाषा इस योग्य हो ही नहीं सकती।

हिन्दी के विरोध में जितनी भी आवाजें आ रही हैं, उनके मूल में प्रमुख कारण राजनीतिक है। विरोधी नेताओं को शासन के विरोध में कहने के लिये कुछ सामग्री चाहिये, चाहे उस कथन से देश का हित हो या अहित। जनता को मिथ्या प्रलोभनों में रखकर पद लोलुपता की भावना से अपना नेतृत्व ज्यों का त्यों सुरक्षित रखने के लिये ये सभी बातें उठाई जा रही हैं। यदि शुद्ध हृदय से एकान्त में विरोधी भी विचार करते होंगे तो अन्तरात्मा यही कहती होगी कि देश का कल्याण हिन्दी के राष्ट्रभाषा मानने में ही है। देश का बहुत बड़ा भाग अंग्रेजी को या अन्य किसी भारतीय भाषा को संस्कृति के आधार पर राष्ट्रभाषा स्वीकार करने को तैयार नहीं। राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिये जो देशवासियों के लिये सरल एवं सुगम हो, जिसे न जानने वाले व्यक्ति भी थोड़े से प्रयास से सीख सकें। हिन्दी का पंजाबी गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाओं से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इन भाषाओं के बोलने वाले बिना किसी प्रयास के हिन्दी समझ लेते हैं। दक्षिण की कन्नड़, मलयालम और तेलुगू भाषाओं की वर्णमाला देवनागरी वर्णमाला ही है। इन तीनों भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का प्राधान्य है। हिन्दी संस्कृत की उत्तराधिकारिणी है। इस कारण वे भी हिन्दी सरलता से सीख सकते हैं। केवल तमिल एक ऐसी भाषा है, जो हिन्दी से नितान्त भिन्न है। इस प्रकार विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो सकती है।

कुछ लोगों का विचार है कि हिन्दी के प्रभाव से धीरे धीरे प्रादेशिक भाषायें समाप्त हो जायेंगी। कोई भी प्रदेशवासी अपनी भाषा को छोड़ना कभी पसन्द नहीं कर सकता, परन्तु उनकी यह धारणा भी भ्रान्तिमूलक है। केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को यह सुविधा प्रदान की है कि वे अपने राज्य का कार्य अपनी प्रादेशिक भाषाओं में कर सकती हैं। बंगाल में बंगला, पंजाब में पंजाबी तथा मद्रास में तमिल राज्य भाषा घोषित की जा चुकी है। इस प्रकार अन्य प्रदेशों में भी प्रान्तीय भाषाओं को राज्य-भाषा बना दिया गया है। प्रान्तीय भाषायें समृद्धिशाली हों, इसमें न केन्द्रीय सरकार को कोई आपत्ति है और न किसी अन्य व्यक्ति को। हिन्दी केवल केन्द्रीय सरकार की राज्य भाषा होगी। प्रान्तीय सरकारें अन्य प्रान्तों की सरकारों से या केन्द्रीय सरकार से पत्र-व्यवहार हिन्दी में करेंगी।

हिन्दी को समृद्धिशाली एवम् सम्पन्न बनाने के लिये हमारा यह कर्त्तव्य है कि

हम उदार दृष्टिकोण अपनायें। हिन्दी के द्वार प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों के लिए खोल दें। इसके लिए हमें व्याकरण के नियमों को सुगम बनाना होगा। तद्भव शब्दों का तत्सम शब्दों में परिवर्तन कर देने के कारण भाषा में जो कृत्रिमता आ गई है, उसे एकदम दूर करना होगा अन्यथा भाषा की जटिलता उत्तरोत्तर बढ़ती जायेगी। शासन की ओर से पारिभाषिक शब्दों का जो निर्माण हो रहा है, उनका प्रमाणीकरण अवश्य हो जाना चाहिये। बाबू गुलाबराय ने इस विषय में कहा है, "पारिभाषिक शब्दा-वली का सारे देश के लिये प्रमाणीकरण आवश्यक हो, क्योंकि जब तक हमारी शब्दावली सारे देश में न समझी जायेगी, तब तक न तो वैज्ञानिक क्षेत्रों में सहकारिता ही सम्भव हो सकेगी और न विद्यार्थी ही लाभ उठा सकेंगे।" आशा है राष्ट्रभाषा हिन्दी समस्त देश को एक सूत्र में आबद्ध करके नवराष्ट्र के निर्माण में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर सकेगी। परन्तु दुर्भाग्य है कि भारतवासियों के हृदय में हिन्दी के प्रति जो ममत्व १९४७ के पूर्व था आज वह भूला बिसरा स्वप्न जैसा लगता है।

१३. हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग
(भक्ति-काल)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार भागों में विभाजित किया है—वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल। सम्वत् १०५० से १३७५ तक का समय वीरगाथाकाल मे, १३७५ से १७०० तक का समय भक्तिकाल में, १७०० से १९०० तक का समय रीतिकाल में तथा १९०० से अब तक का समय आधुनिक काल मे आता है।

> **भक्तिकालीन काव्य**
> १. हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन।
> २. भक्तिकाल।
> ३. निर्गुणधारा—(क) ज्ञानमार्गी (ख) प्रेममार्गी।
> ४. सगुण धारा—(क) कृष्ण-भक्ति शाखा (ख) राम-भक्ति शाखा।
> ५. उपसंहार।

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। सूर, तुलसी, कबीर, जायसी ये चारों महाकवि भक्तिकाल में ही उत्पन्न हुए। इसी काल ने हिन्दी साहित्य गगन के सूर्य और चन्द्रमा को जन्म दिया। यद्यपि इस काल में प्रेममार्गी ज्ञानमार्गी और सगुण भक्तिमार्गी तीन धारायें प्रवाहित हुईं, तथापि इन तीनों धाराओं में एक ही भक्ति का अन्तःस्रोत प्रवाहित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है इसीलिए इसको भक्ति-काल कहा जाता है। प्रेम भी भक्ति का ही एक रूप है। भक्ति काव्य दो धाराओं में विभक्त हुआ, एक निर्गुण धारा दूसरी सगुण धारा। निर्गुण धारा के प्रवर्त्तकों ने निराकार भगवान की उपासना पर बल दिया है। निर्गुण धारा भी ज्ञानमार्गी तथा प्रेममार्गी धाराओं में विभक्त हो गई। ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि कबीर थे तथा प्रेममार्गी शाखा के मलिक मुहम्मद जायसी। इसी प्रकार सगुण धारा के कवियों ने साकार भगवान की उपासना पर बल दिया। सगुण धारा भी कृष्ण-भक्ति शाखा और राम-भक्ति शाखा में हो गई। कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूर थे तथा राम-भक्ति शाखा के तुलसी। भक्ति-काल के सभी कवि स्वच्छन्द प्रकृति के थे, उन्हें राज्याश्रय बिलकुल पसन्द नहीं था, उन्होंने जो कुछ लिखा 'स्वांत : सुखाय' ही लिखा। बादशाह का निमन्त्रण आने पर भी कह दिया करते थे—

सन्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पन्हैयाँ टूटीं, बिसिर गयो हरिनाम ।।

निर्गुण पन्थ की ज्ञानाश्रयी शाखा हिन्दुओं की ओर से हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने की इच्छा का फल थी। इस शाखा के प्रमुख कबीर थे। सन्त कवियों ने निर्गुणवाद में हिन्दू और मुसलमानों की एक दूसरे के निकट आने की सम्भावना देखी। मुसलमान लोग एकेश्वरवाद के मानने वाले थे, वे लोग देवी-देवताओं की पूजा में विश्वास नहीं रखते। वे बहुईश्वरवाद के विरुद्ध थे। सन्त कवियों ने निर्गुणवाद के आधार पर राम और रहीम की एकता स्थापित करके एवम् हिन्दू और मुसलमानों की रूढ़ियों का विरोध करके दोनों जातियों में मैत्री सम्बन्ध उत्पन्न कराने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी साहित्य में बाह्याडम्बरों के विरोध में लिखा गया। मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा आदि का स्पष्ट विरोध किया गया। आत्मा और परमात्मा के मिलने को प्रेम और प्रेयसी के मिलने का रूप प्रदान करके कुछ शृंगारिक रचनायें भी हुईं। इन कवियों ने जाति-पाँति के बन्धनों का घोर विरोध किया।

गर तू बामन बमनी जाया, आन बाट काहे नहिं आया।

× × ×

काँकरि पाथरि जोरि कै मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला । । ।.. " बहिरा हुआ खुदाय ।।

× × ×

जपमाला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा, साँचे राँचे राम।।

× × ×

दुलहिन गावहु मङ्गल चार,
हम घर आये हो राजा राम भरतार
तन रति करि मैं मन रति कीन्हा पाँचों तत्त बराती
रामदेव मेरे पाहुने आये मैं जोवन मदमाती

प्रेममार्गी कवियों ने मुसलमान होते हुए भी प्रेमगाथाओं का आश्रय लेकर मानव हृदय को स्पर्श करने वाली रचनायें कीं। ये लोग ज्ञानमार्गी कवियों की भाँति हिन्दू-मुसलमानों के खण्डन-मण्डन के चक्कर में नहीं पड़े और न उन्होंने किसी को बुरा-भला ही कहा। इसीलिये उनका काव्य अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय हुआ। प्रेममार्गी कवियों के काव्य, भारतीय चरित काव्यों की सम्बद्ध शैली में न होकर फारसी के मसनवियों के ढङ्ग पर थे। इनकी काव्य भाषा अवधी थी दोहा और चौपाइयों में इनकी रचना हुई थी। इनमें भौतिक प्रेम द्वारा ईश्वरीय प्रेम का प्रतिपादन किया गया है। प्रेममार्गी कवियों का प्रयास भी हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे के समीप लाने में सहायक सिद्ध हुआ। सूफी लोग गुरु को अधिक महत्ता देते थे। ये लोग ईश्वर और जीव का सम्बन्ध भय का नहीं अपितु प्रेम का मानते थे। इनका झुकाव सर्वेश्वरवाद की ओर था। ये लोग संगीत प्रेमी थे। इस शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम का वर्णन है। इन दोनों का संयोग हीरामन तोते ने कराया था। इस कथा के माध्यम से प्रेम साधना द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग प्रदर्शित किया गया है, भौतिक प्रेम के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रेम का सुन्दर समन्वय है, देखिए—

तन चितउर मन राजा कीन्हा, हिय सिंघल बुद्धि पद्मिनि चीन्हा।
गुरु सुआ जेई पन्थ दिखावा, बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धन्धा, बचा सोई न एहि चित बंधा।
राघव दूत सोई सैतानू, माया अलाउद्दीन सुलतानू॥

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की पावन लीलाओं का वर्णन किया। कृष्ण के लोकरंजक और लोकरक्षक दोनों रूप थे तथापि भक्तिकाल के कवियों की रुचि लोकरंजक रूप की ओर रही। वल्लभाचार्य की बालकृष्ण उपासना पद्धति तथा जयदेव और विद्यापति की गीति पद्धति को ही उन्होंने अपनाया। सूरदास जी कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि थे। ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे. उन्ही की प्रेरणा से इन्होंने भगवान के साकार रूप का गान किया। ये लोग पुष्टिमार्गी कहलाते थे। भगवान के पोषण या अनुग्रह से ही उनका सामीप्य-प्राप्त हो सकता है, इन लोगों का विचार था। कृष्ण-भक्ति काव्य ब्रज भाषा मे लिखा गया, जो बड़ा ही ललित और श्रुति मधुर है। उसमे माधुर्य और प्रसाद गुण प्रधान हैं। कृष्ण-काव्य रचयिताओं ने भ्रमरगीत का प्रसंग लेकर निर्गुण भक्ति की निरर्थकता एवम् सारहीनता प्रदर्शित की। सूर का भ्रमरगीत वियोग शृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण है। भक्तिकाल मे शृंगार, वात्सल्य और शान्त इन तीनों रसों में ही अधिकांश काव्य लिखा गया।

राम-भक्ति शाखा के कवियों ने राम के लोक-रक्षक रूप को जनता के सामने प्रस्तुत किया। राम-भक्ति काव्य की रचनायें ब्रज और अवधी दोनो भाषाओं मे हुई। इनमे राम के सम्पूर्ण जीवन के सभी पक्षों का चित्रण हुआ। इसके प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास जी थे। गोस्वामी जी के काव्य ने भक्ति के साथ शील, आचार, मर्यादा और लोकसंग्रह का संदेश सुनाकर मृतप्राय हिन्दू जाति में एक अपूर्व दृढ़ता उत्पन्न कर दी। उन्होंने अपनी अपूर्व प्रतिभा से वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करके हिन्दुओं में मुसलमानों के धर्म के प्रचार को रोका। गोस्वामी जी ने हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों को भाषा में अवतीर्ण करके सर्व-सुलभ बनाया, शैव तथा वैष्णवों के पारस्परिक मतभेदों को दूर करके संगठित किया। वे अपूर्व समन्वयवादी थे। वास्तव में राम-भक्ति काव्य का हिन्दू समाज पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ा।

भक्तिकाल मे निर्गुण सम्बन्धी तथा रामकृष्ण सम्बन्धी काव्य लिखे गए, परन्तु जितना विस्तार कृष्ण काव्य का है उतना राम काव्य का नहीं। उसका कारण था माधुर्य एवम् उनका लोकरंजक रूप। भक्ति काव्य के कलापक्ष एवम् भावपक्ष दोनों ही अपनी चरम सीमा पर हैं। ज्ञानमार्गी कवियों में कला-पक्ष की थोड़ी-सी कमी थी। इसका कारण था कि उनकी प्रवृत्ति समाज सुधार की ओर अधिक उन्मुख थी, भाषा के कृत्रिम सौंदर्य की ओर उन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया। गोस्वामी जी ने भी इसी बात का समर्थन किया था।

का भाषा का संस्कृत, भाव चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कमाँच॥

कला-पक्ष एवम् भाव-पक्ष की दृष्टि से एवं विस्तार और व्यापकता की दृष्टि से जो उच्च कोटि का हिन्दी-साहित्य भक्तिकाल में सृजित हो सका, वह आज तक फिर न लिखा जा सका। इन्होंने तथा इनकी शाखाओं के अन्य अनेक कवियों ने जितना सर्वांगपूर्ण समृद्ध साहित्य भक्तिकाल में सृजन किया उतना आज तक नहीं हो सका। भक्तिकाल का कला एवं भाव पक्ष का विद्वत्तापूर्ण वैविध्य अपने में अद्वितीय है।

भक्तिकाल के साहित्य को अलग निकाल कर यदि हम हिन्दी साहित्य पर दृष्टि डालें तब वहाँ कुछ बचता ही नहीं। हिन्दी साहित्य की जो श्रीवृद्धि भक्तिकाल में हुई है अन्य कालों में न हो सकी। अतः निःसन्देह हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल हिन्दी का स्वर्ण युग था, जिसमें तुलसी, सूर, कबीर और जायसी जैसे महाकवि उत्पन्न हुए।

१४. रीतिकालीन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ और विशेषतायें

हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभाजन के अनुसार सवत् १७०० से १९०० तक का समय रीतिकाल में आता है। इसके पूर्व भक्ति काव्य लिखा गया था, जिसमे शृगार और भक्ति का ऐसा सम्मिश्रण हो गया था कि एक-दूसरे से पृथक् नही हो सकते थे। भक्ति काल के कवियो का शृगार वर्णन उनकी प्रगाढ भक्ति का परिचायक था। बहुत सी वस्तुएँ साधन रूप मे अच्छी होती हैं, परन्तु जब वे ही साध्य बन जाती हैं, तब उनमे सारहीनता आ जाती है। शृगार की मदिरा ने भक्तिकाल मे रसायन का काम किया था, परन्तु बाद के समय मे वही व्यसन बन गई। राधा और कृष्ण विभिन्न नायक और नायिकाओं के रूप मे दिखलाए जाने लगे। भक्तिकाल की रचनाएँ "स्वान्तः सुखाय" के उद्देश्य से होती थी, परन्तु बाद मे कविता राजदरबार की वस्तु बन गई। अपनी विद्वत्ता, कलाकौशल से अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना ही कवियों का एकमात्र उद्देश्य रह गया था। एक विशेष रीति पर लोग चल रहे थे, रीति का अर्थ—मार्ग या शैली। कविता में विषय वैविध्य कम था, कविता अब एक बँधी हुई लकीर पर चलना रह गया था। सिंह और सपूत की भाँति लोक लीक छोड़कर चलना पसन्द नही करते थे। कवियो की समस्त शक्ति अलकार, रस, ध्वनि, नायिका भेद आदि के निरूपण मे ही केन्द्रित थी और इसी को कवियो ने कवि-कर्म पालन का प्रमुख मार्ग बना लिया था जिस पर चलने के कारण ही वह रीतिकाल कहलाया।

भक्तिकाल की कविता के प्रवाह मे अलकार आदि स्वयं बहे चले आते थे। सस्कृत भाषा मे अलकारो और काव्यागो पर पर्याप्त विवेचन हो चुका था। उसकी उत्तराधिकारिणी हिन्दी मे भी उनका विवेचन आवश्यक था। लक्ष्य ग्रन्थो के बाद लक्षण ग्रन्थ लिखे जाते हैं। हिन्दी में लक्ष्य ग्रन्थ बहुत लिखे जा चुके हैं। लक्षण ग्रन्थों की कमी थी। समय के अनुसार साहित्य की ओर प्रवृत्ति होना स्वाभाविक था। हिन्दी के कवियो ने सस्कृत के अलकार ग्रन्थो का गहन अध्ययन किया और उनके आधार पर रचनाएँ प्रस्तुत की। रीति काल के आविर्भाव के कुछ अन्य भी कारण थे। हिन्दी राज-दरबारो मे आश्रय प्राप्त कर चुकी थी। अपने आश्रयदाताओ को अपनी विद्वत्ता के आधार पर प्रसन्न करना ही कवियों का एकमात्र ध्येय रह गया था। पांडित्य-प्रदर्शन तथा आचार्यत्व प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा भी कवियो मे बढ़ती जा रही थी।

रीतिकालीन काव्य की विशेषताएँ

१ रीतिकाल का नामकरण।
२ रीतिकाल प्रारम्भ होने का कारण।
३ रीतिकाल की विशेषताएँ—
(क) रीतिप्रधान।
(ख) शृगारप्रधान।
(ग) कलाप्रधान।
(घ) सगीतप्रधान।
(ङ) वीर, भक्ति एव नीति काव्य तथा प्रकृति चित्रण।
४ उपसंहार।

रीतिकाल की प्रमुख विशेषता रीतिप्रधान रचनाएँ हैं। तत्कालीन कवियों ने भामह, दण्डी, मम्मट, विश्वनाथ आदि काव्याचार्यों के ग्रन्थों का गहन अध्ययन करके हिन्दी साहित्य को रीति ग्रन्थ प्रदान किए। इन ग्रन्थों में रस, अलंकार, ध्वनि आदि का विवेचन, लक्षण और उदाहरण शैली में किया गया है। एक दोहे में रस, अलंकार आदि का लक्षण कहकर, कवित्त या सवैये में उदाहरण प्रस्तुत कर दिया जाता था। आचार्य केशवदास, मतिराम, देव, चिन्तामणि, भूषण, जसवन्तसिंह, पद्माकर, बेनी और बिहारी आदि इसी परम्परा के प्रमुख कवि थे। इन्होंने काव्यांगों का पूर्ण विवेचन किया, परन्तु शब्द-शक्ति पर यथोचित विवेचन प्रस्तुत न कर सके, विषय वैविध्य भी कम रहा।

इस काल में शृङ्गार रस की प्रधानता थी। शृंङ्गार के आलम्बन और उद्दीपनों के बड़े सरस उदाहरण बनाये गये। ये लोग शृंङ्गार को रसराज मानते थे, उनका जीवन विलासितापूर्ण था। कवियों ने स्त्री सौंदर्य का बड़ा सूक्ष्म चित्रण किया। रीतिकालीन साहित्य का वातावरण सौरभमय था, उसमें विलासमयी मादकता थी, राजदरबारों की गुलगुली गिलमें और गलीचों के विलासमयी जीवन की स्पष्ट छाप थी। उसमें प्रभात के खिले हुए पुष्पों की स्फूर्तिदायिनी सुगन्ध तो न थी, परन्तु शीशी में बन्द इत्र का मादक सौरभ थी। उस साहित्य में सुलाने की शक्ति अधिक थी, जगाने की कम।

अकबर और शाहजहाँ के शासनकाल में ललित कलाओं की पर्याप्त उन्नति हुई। इससे जनता की अभिरुचि भी परिष्कृत हुई। रीतिकाल के कवियों में कला-प्रेम की प्रधानता थी। मनोहर रूप और दृश्यों के चित्रण मे, चमत्कारपूर्ण कल्पना की उड़ान में, अलंकारप्रियता में, उनकी कलाप्रियता के दर्शन होते हैं। बिहारी का एक-एक दोहा उत्कृष्ट काव्य-कला का उदाहरण हो सकता है। पद्माकर, देव, मतिराम, बिहारी ये उस काल के उच्च कोटि के कलाकार थे। राजदरबारो के आश्रय ने कवियों में कलाप्रियता की वृद्धि की थी। लोग दूर की कौड़ी लाने में सिद्धहस्त थे। वास्तव में काव्य-कला का विकास रीतिकाल में सबसे अधिक हुआ। इस युग की भाषा तो इतनी सुगठित और मार्मिक थी कि अन्य कालो के कवि भी इनकी समानता न कर सके। भाषा के क्षेत्र में पद्माकर अद्वितीय थे।

संगीतात्मकता भी इस युग की विशेषता थी। कवि लोग मधुर और कोमल-कांत पदावली का प्रयोग करते थे। अनुप्रास आदि शब्दालंकारों की सहायता से पद्य संगीतमय बन जाता था। राजदरबारों में श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते। मतिराम के इस पद्य में मधुरता और संगीतमयता का समन्वय देखिये—

कुन्दन को रंग फीको लगै, झलकै, तन पै अरु चारुणी गराई।
आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु बिलासनि की सरसाई॥
को बिनु मोल बिकात नहीं, मतिराम लखे मुस्कानि मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई॥

रीतिकाल में केवल शृंगारप्रधान कवितायें ही नहीं लिखी गईं, अपितु इसके समानान्तर अन्य धारायें भी अपनी उन्मत्त गति से प्रवाहित होती रहीं, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रधानता शृंगार रस की ही थी। रीतिकालीन कवियों ने शृंगार के साथ-साथ वीर काव्य भी लिखा। भूषण ने यदि छत्रपति शिवाजी के युद्धों की प्रशंसा की तो सदन ने भरतपुर के जाट राजा सूरजमल की। ये वीर रसप्रधान कवितायें एक बार तो मृत शव में भी जान डाल देने वाली थी—चाहे साहित्यिक दृष्टि से, चाहे व्यावसायिक दृष्टि से। यदि देखा जाय तो यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि रीतिकालीन कवि अपने व्यक्तिगत जीवन में भक्त भी थे। शृंगारिक कविता के साथ-

साथ इनकी भक्ति-भावना भी चलती रही। कृष्ण वन्दना के साथ दुर्गा जी, शिव, राम आदि देवी-देवताओं की भी इन्होंने स्तुति की है।

रीतिकाल के कवियों ने नीति और उपदेशपूर्ण रचनाएं भी कीं। अपने सांसारिक जीवन के अनुभवों के आधार पर उन्होंने सूक्तियां बहुत कही हैं। बिहारी का एक नीति-पूर्ण दोहा देखिये—

> बढ़त बढ़त सम्पति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाए।
> घटत-घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाए॥

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य की मानसिक स्थिति का इस दोहे से बड़ा सुन्दर चित्र खींचा गया है। कमल डंठल से ऊपर उठता जाता है, परन्तु जैसे ही धीरे-धीरे जल कम होता जाता है, वैसे ही वह नीचे नहीं उतरता अपितु जड़ सहित नष्ट हो जाता है। गिरधर कवि ने भी अपनी नीतिपूर्ण अन्योक्तियों द्वारा जनता का अच्छा हित साधन किया है। इसी प्रकार हास्य रस के भी उदाहरण मिलते हैं। रीतिकालीन काव्य में साधारण हास्य से लेकर गम्भीर व्यंगपूर्ण हास्य तक विद्यमान है। इस काल में प्रकृति वर्णन भी एक परम्परागत शैली में हुआ, इसमें नवीनता का अभाव है। चन्द्र, कमल, पुष्प आदि उपकरण जिस प्रकार इनमें पूर्व उपमान रूप में प्रस्तुत होते थे, उसी प्रकार इन कवियों ने भी उन्हें चित्रित किया। रीतिकाल में केवल सेनापति ही ऐसे कवि थे, जिन्होंने प्रकृति वर्णन में सहृदयता और मौलिकता का परिचय दिया।

लगभग दो सौ वर्षों तक रीति प्रधान रचनायें होती रहीं। शृंगार की प्रधानता होते हुए भी मानव-जीवन की भिन्न-भिन्न वृत्तियों का निरूपण किया गया। शास्त्रीय दृष्टिकोण से उन रचनाओं में भावपक्ष एवम् कलापक्ष का अपूर्व समन्वय था। हास्य और व्यंग के साथ नीति के उपदेश, शृंगार के साथ भक्ति भावना का प्रवाह, संगीत और काव्य कला के साथ रीति काव्यों की गहनता की त्रिवेणी के दर्शन हमें रीतिकाल में होते हैं। रीतिकाल काव्य के चरमोत्कर्ष एवम् सर्वांगीण विकास का युग था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

१५. वात्सल्य रस के सिद्ध कवि सूरदास और उनकी भक्ति भावना

महाकवि सूर की काव्यगत विशेषताओं का नाभादास जी ने अपने भक्तमाल ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लेख किया है—

> उक्ति ओज अनुप्रास बरन स्थिति अति भारी।
> बचत प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक धारी॥
> प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी।
> जनम करम गुन रूप राग रसना परकासी॥
> विमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन स्रवननि करै।
> सूर कवित सुन कौन कवि जो नहिं सिरचालन करै॥

इस पद में सूर की काव्य सम्बन्धी सभी विशेषतायें आ जाती हैं। इन्होंने अपने काव्य में श्रीकृष्ण के लोकरंजक रूप का वर्णन किया। ब्रज की वीथियों में श्रीकृष्ण की बालोचित क्रीड़ायें, कालिन्दी के कछारों में ग्वाल-बालों के साथ कृष्ण का मनोहर

चांचल्य, हरे-भरे सघन कुंजों में ब्रजबालाओं के साथ प्रेमलीला, श्रीकृष्ण का मथुरा गमन तथा उनके वियोग में विह्वल ब्रज-वनिताओं के मनोभावों के मार्मिक चित्रण तक ही सूर की दृष्टि उलझ कर रह गई। तुलसी की भाँति सूर ने यद्यपि कृष्ण के संपूर्ण जीवन का चित्र उपस्थित नहीं किया, फिर भी सूर ने जिस अंग का वर्णन किया, वह आज तक अद्वितीय है। सूर ने अपने काव्य में शृंगार और वात्सल्य इन दो रसों को ही प्रधानता दी। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के निरूपण मे सूर ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की। ब्रज-वनिताओं के साथ श्रीकृष्ण के प्रेम-व्यवहार को कवि स्वयं अपने हृदय में आँखों से देखकर आनन्द-विभोर होकर गा उठता है और इस प्रकार वे संयोग विरह के अनेक चित्र प्रस्तुत करने लगते हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर विरह मे गोपियों के विरह की सूक्ष्म से सूक्ष्म दशाओं का जैसा वर्णन सूर ने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसी प्रकार वात्सल्य वर्णन में तो सूर नितांत अद्वितीय हैं, आज तक कोई भी कवि इनकी समता में नहीं ठहरता। आचार्य शुक्ल जी की दृष्टि मे **"वे इस क्षेत्र का कोना-कोना झाँक आये हैं।"** सूर की प्रशंसा करते हुए श्री वियोगि-हरि ने लिखा है, **"सूर ने यदि वात्सल्य को अपनाया है, तो वात्सल्य ने सूर को अपना एकमात्र आश्रय स्थान माना है।"** इस क्षेत्र में हिन्दी साहित्य का कोई भी कवि सूर की समता नही कर सकता।

> **वात्सल्य रस के सिद्ध कवि सूरदास**
>
> १. सूरदास जी के काव्य की विशेषतायें।
> २. काव्य में बाल-वर्णन का कारण।
> ३. बाल-वर्णन के विभिन्न रूप।
> ४. उपसंहार।

सूरदास जी महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। शिष्य होने से पूर्व ये दास्य भाव के पद लिखा करते थे। वल्लभाचार्य जी ने स्वयं कहा, **"ऐसो घिघियात का को है, कछु भगवत् लीला का वर्णन कर।"** उनके ही आदेश से सूरदास ने श्रीमद्भगवत् की कथाओं को गेय पदों मे प्रस्तुत किया। वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग की स्थापना की थी और कृष्ण के प्रति सख्य भाव की भक्ति का प्रचार किया। वल्लभ सम्प्रदाय मे बालकृष्ण की उपासना को ही प्रधानता दी जाती थी। इसीलिए सूर को वात्सल्य और शृंगार इन दोनों रसों का ही वर्णन अभीष्ट था, यद्यपि कृष्ण के कंसहारी और द्वारिकावासीरूप भी है, परन्तु जिस सम्प्रदाय मे सूर दीक्षित थे, उनमे बाल-कृष्ण की महिमा थी। सूर ने वात्सल्य वर्णन बड़े विस्तार से किया। इस वर्णन में न उन्होंने कहीं सकोच किया और न झिझके। बालक और युवक कृष्ण की लीलाओं को उन्होंने बड़े ब्यौरे के साथ प्रस्तुत किया। घोर से घोर शृंगार की बात करने मे भी उन्होंने संकोच नही किया।

कृष्ण जन्म की आनन्द बधाइयों के पश्चात् बाल लीलाओं का प्रारम्भ होता है। सूर ने शैशवावस्था से लेकर कौमार्यावस्था तक के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। उन चित्रों को कई भागो में विभाजित किया जा सकता है—(१) रूप वर्णन, (२) चेष्टाओं का वर्णन, (३) क्रीड़ाओं का वर्णन, (४) अन्तर्भावों का वर्णन तथा (५) संस्कारों, उत्सवों और समारोहों का वर्णन। रूप-वर्णन मे सूर ने कृष्ण के सौंदर्य की अनेक उद्भावनायें की हैं। ब्रज-बालायें कृष्ण के बाल-सौंदर्य पर तन-मन-धन सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हैं, पर कृष्ण का सामीप्य छोड़ना उन्हें रुचिकर नहीं—

हौं बलि जाऊँ छबीले लाल की।
छिदक रही चहु दिसी जो लटुरियाँ, लटकता लटकनि भाल की।
मोतिन सहित नासिका नथुनी, कण्ठ कमल दल माल की।
सूरदास प्रभु प्रेम मगन भई, ढिग न तजहि ब्रज बाल की॥

कृष्ण पालने में सोए हैं। यशोदा पालने को हिलाकर और कभी गाकर कृष्ण को सुलाने का प्रयत्न कर रही हैं, परन्तु कृष्ण भी कम चालाक नहीं हैं, जब तक पालना हिलता रहता है और यशोदा के मधुर गान की ध्वनि उनके कानों में पड़ती रहती है तब तक मुँह बनाए आँखें बन्द किये पड़े रहते हैं, जैसे ही यशोदा मौन हो जाती हैं, कृष्ण आँख खोलकर देखने लगते हैं। सूर ने कितना स्वाभाविक चित्रण किया है—

यशोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलरावैं, मल्हावैं जोई सोई कुछ गावैं।
मेरे लाल को आउ निदरिया, काहे न आनि सुलावैं।
कबहूँ पलक हरि मूंद लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि, करि करि सैन बतावैं॥

कृष्ण चलना सीख रहे हैं। देहरी लाँघने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर लाँघ नहीं पाते, बार-बार गिर पड़ते हैं। यशोदा इस काय-कलाप को देखकर मन ही मन बड़ी प्रसन्न होती हैं। यशोदा श्रीकृष्ण को नितान्त असमय पाकर उनका हाथ पकड़कर लाँघना सिखाती हैं।

चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमिक ठुमिक धरती पर रेंगत जननि देखि दिखावै।
देहरि लौं चलि जात बहुरि, फिरि फिरि इतही को आवै।
गिरि गिरि परत बनत नहि लाँघत, सुर मुनि सोच करावै।
तब जसुमति कर टेक स्याम को, क्रम-क्रम सौं उतरावै।

बालक की अबोधता और भोलापन सूर की दृष्टि से कभी नहीं बचा। अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने का कृष्ण का प्रयास कितना स्वाभाविक है—

मनिमय कनक नन्द के आँगन, बिम्ब पकिरवे धावत।
कबहु निरखि हरि आपु छाह को, कर सों पकरन चाहत।

अपने बच्चे का बाल विनोद देखकर माँ की प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती, प्रेम के आवेग में कृष्ण का भोलापन दिखाने के लिए वह दौड़ी हुई नन्द को बुलाने जाती हैं—

बाल दसा सुख निरखि जसोदा, पुनि पुनि नन्द बुलावति।
अचरा तर लै ढाँकि सूर के प्रभु को दूध पियावति॥

सूर के बाल वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कृष्ण के साथ-साथ मातृ हृदय के सुन्दर चित्र भी खींचे हैं—

सुत मुख देखि जसोदा फूली।
हर्षित देखि दूध की दँतियाँ, प्रेम मगन तन की सुधि भूली।
बाहरि तें तब नन्द बुलाए, देखौ धौं सुन्दर सुखदाई॥

पुत्र वियोग से संतप्त यशोदा देवकी को संदेश देती है। मातृत्व की इस सुन्दर भाषा को देखिये—

सन्देसो देवकी सों कहियो ;
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करति ही रहियो।
जदपि टेव तुम जानत ही हो, तऊ मोहीं कहि आवे।
प्रातः होत मेरे लाल लड़ैते, माखन रोटी भावै॥

सृष्टि के आरम्भ से आज तक माताओं को अपने बच्चों के विषय में प्रातः शिकायत करते सुना है कि "हमारा, तो मिट्टी बहुत खाता है।" सूर ने इस शिकायत से यशोदा को भी नहीं छोड़ा, परन्तु एक विशेषता के साथ, वह यह कि कृष्ण के मुख में समस्त ब्रह्माण्ड के दर्शन करा दिये।

मोहन काहे न उगिलो माटी।
बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी।

माँ के बहुतेरा कहने पर भी बालक कहाँ मानकर देता है, ऊपर से दाँत और भींच लेता है। अगर माँ जबरदस्ती मुँह में उँगली डाल दे तो वह बिना काटे हुए बाहर नहीं निकलती। यशोदा ने भी छी, छी, थू, थू बहुतेरा कहा पर कृष्ण ने एक न मानी—

महतारी को कह्यो न मानत, कपट चतुराई ठाटी।
बदन पसारि दिखाइ आपने, नाटक की परिपाटी॥

सूर स्वभाव-चित्रण द्वारा रसोद्रेक में अद्वितीय हैं। उन्होंने अपने काव्य में पग-पग पर अन्तर्भावों का चित्रण किया है। बालक के हृदय में अपने साथियों को देखकर कभी-कभी स्पर्धा भी उत्पन्न हो जाती है। बलदाऊ की चोटी लम्बी भी है और मोटी भी, परन्तु कृष्ण की चोटी प्रयास करने पर भी छोटी है, उसका उन्हें दुःख है। आप एकदम माँ से शिकायत कर बैठते हैं—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
कितो बार मोहि दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू तो कहती बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।

क्रीड़ा वर्णन में सूरदास मानो सिद्धहस्त हैं। एक दिन साथियों में क्षोभ बढ़ा क्योंकि कृष्ण ने दाव देने से मना कर दिया था, परन्तु बाल्यावस्था में साम्यवाद की प्रधानता रहती है। वहाँ न कोई बड़ा है और न छोटा, न कोई धनी है और न मानी। सूर ने कितना स्वभावोक्ति पूर्ण चित्रण किया है—

खेलत में को काको गुसइयाँ।
हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस की कत करत रिसैयाँ।
जाति पाँति हमसे बढ़ नाहिं, नाहिन बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत याते, अधिक तुम्हारे है कछु गैयाँ।

बात आज की-सी लगती है क्योंकि छोटे बच्चे को चिढ़ाने के लिए खासकर लड़कियों को घर वाले कह देते हैं कि तुझे हमने कंजरियों से दो रोटी में खरीदा था। यही घटना कृष्ण के साथ भी सूरदास जी ने घटवा दी। जब क्रोध की सीमा न रही, तो आपने खेलने जाना भी बन्द कर दिया। माँ का हृदय इस बात पर द्रवित हो गया, वह रो उठीं, गोवर्धन की शपथ खाई कि वास्तव में कृष्ण तू मेरा पुत्र है और मैं तेरी माँ हूँ :

मैया मोहीं दाऊ बहुत खिजायो।
मोसों कहत मोल को लीन्हों, तोहि जसुमति कब जायो।

कहा कहौं एहि रिस के मारे, खेलत हौं नहीं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तात।
× × ×
सूर स्याम मुझे गोधन की सौं हौं माता तू पूत।
× × ×

सूर के कृष्ण आयु में अवश्य छोटे हैं, परन्तु तर्क और प्रत्युत्पन्न मतित्व में वे बहुत बड़े हैं। बड़ों बड़ों को चकमा दे सकते हैं। यह स्वाभाविक चित्र सूर ने गोचारण और माखन चोरी प्रसंग में प्रस्तुत किए हैं—

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो।
देखि तुही छींके पर भाजन, ऊँचे धर लटकायो।
तुहि निरखि नान्हें कर अपने, मैं कैसे धरि पायो।

कृष्ण की उद्दण्डता जब गोपियों को असह्य होने लगी, तो कृष्ण को पकड़कर यशोदा के पास ले आई और साफ-साफ कह दिया—

जब हरि आवत तेरे आगे, सकुचि तनक ह्वै जात।
कौन कौन गुन कहूँ स्याम के नेकु न काहु डरात॥

अवस्था के साथ-साथ हृदय के परिचय की भावना बढ़ी। अब तक ग्वालों तक ही परिचय सीमित था। एक दिन सहसा राधा को रास्ते में अकेली पाकर कृष्ण पूँछ बैठे, "गोरी! तुम कौन हो? हमने तुम्हें कभी नहीं देखा।" राधा ने, वह कृष्ण से यद्यपि छोटी थी, परन्तु कृष्ण को मुँहतोड़ उत्तर दिया कि शर्मदार के लिए मरना था, पर सूर के कृष्ण ने उस व्यङ्ग का ऐसा उत्तर दिया कि राधा को जन्म-जन्मान्तर के लिये निरुत्तर होना पड़ा—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी हो बेटी, देखी नहीं कबहु ब्रज खोरी।
काहे को हम ब्रज तन आवत, खेलत रहत आपनी पौरी॥
सुनत रहत स्रवननि नन्द ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलो हमारी पौरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातन भुरइ राधिका भोरी॥

इसके अतिरिक्त गोवर्धन लीला, कालिया दमन आदि प्रसंगों में भी सूर के बाल वर्णन के दर्शन होते हैं। सूर का बाल वर्णन भक्ति और अध्यात्म का समन्वय है। गोवर्धन अलौकिक कार्य करते हुए भी कृष्ण यशोदा के लिए साधारण बालक की भाँति ही बने रहते हैं, भगवान नहीं। इसका कारण यशोदा का पुत्र के प्रति अगाध प्रेम और तन्मयता थी। इसलिए यशोदा, राधा और गोपियों के कृष्ण के अगाध प्रेम सम्बन्ध पर विश्वास नहीं करती थीं, उपेक्षा भरी दृष्टि से केवल देखकर ही रह जाती हैं।

सूर की अन्तर्भेदिनी दृष्टि कृष्ण की बाल्यावस्था के एक-एक क्षण पर पड़ी है। बाल्य जीवन की कोई वृत्ति इस महाकवि की विराट प्रतिभा के स्पर्श से अछूती नहीं रही। वास्तव में सूर का बाल वर्णन एक प्रकार से बाल मनोविज्ञान का सुन्दर अध्ययन है। सूर के वात्सल्य वर्णन पर डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "यशोदा के वात्सल्य में सब कुछ है, जो माता शब्द को इतना महिमामय बनाये हुये है। यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ-हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और

हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। माता संसार का ऐसा पवित्र रहस्य है, जिसे कवि के अतिरिक्त और किसी को व्याख्या करने का अधिकार नहीं। सूरदास जहाँ पुत्रवती जननी के प्रेम-पोषक हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं, वहाँ वियोगिनी माता के करुणाविगलित हृदय को छूने में भी समर्थ हुए हैं।"

१६. महाकवि तुलसीदास

अथवा

"तुलसी असाधारण शक्तिशाली कवि, लोकनायक और महात्मा थे"

अथवा

तुलसी अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे

तुलसीदास जी के आविर्भाव के समय भारतवर्ष विदेशी शासकों से आक्रान्त था। वह समय तो विरोधी संस्कृतियों, साधनाओं, जातियों का सन्धिकाल था। देश की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति विशृंखलित-सी हो रही थी। उचित नेतृत्व के अभाव में जनता के समक्ष न कोई आदर्श था और न उद्देश्य। विदेशियों के सम्पर्क से भारतीयों में विलासप्रियता घर कर चुकी थी। निम्न वर्ग वालों में अशिक्षा और निर्धनता पर्याप्त मात्रा में थी। लोग अकर्मण्य होते जा रहे थे। साधु-संन्यासी हो जाना साधारण बात बन गई थी, जैसा गोस्वामी जी ने स्वयं लिखा है—

नारि मुई घर सम्पत्ति नासी, मूँड मुँडाय भए संन्यासी।

मूर्ख ब्रह्मज्ञानी बनने का दावा करते थे। निम्न वर्ग के व्यक्ति भी ब्राह्मणों, पण्डितों और विद्वानों से वाद-विवाद करने तथा आलोचना करने में आत्मतुष्टि का अनुभव करते थे।

महाकवि तुलसीदास

१. जन्मकालीन परिस्थितियाँ।
२. जीवन वृत्त।
३. रचनायें।
४. साहित्यिक विशेषतायें।
५. हिन्दी साहित्य में तुलसीदास का स्थान।

ब्रह्म ज्ञान बिन नारि नर,
कहहिं न दूसरि बात।
× × ×
बादहिं सूद्र द्विजन्ह संग,
हम तुमसे कछु घाट॥

विद्वानों, पण्डितों और ज्ञानियों का समाज में विशेष आदर नहीं रहा था। इसके अतिरिक्त दुराचारी सम्यक् समादृत होते थे। पण्डित वही माना जाता था जो ज्यादा बोल सकता था—"पण्डित सोई जो गाल बजावा।" स्त्री पुरुषों को इस प्रकार नचाती थीं जैसे बन्दर वाला बन्दर को नचाता है—"नारि नचाइ मर्कट की नाँई।" धार्मिक क्षेत्र में भी एक सम्प्रदायवादी दूसरे सम्प्रदायवादी से अपने मत के समर्थन में लड़ने मरने को तैयार रहते थे। देश की ऐसी ही कुछ परिस्थितियों में सम्वत् १५९९ के लगभग गोस्वामी तुलसीदास का जन्म हुआ।

इनके जन्म स्थान, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा आदि सभी विषयों के सम्बन्ध में अभी तक सभी विद्वान एक मत नहीं हैं, विषय संदिग्ध बना हुआ है, दिन पर दिन नवीन अनुसन्धान हो रहे हैं। फिर भी अधिकांश विद्वानों ने इनके पिता का नाम आत्माराम

दूबे तथा माता का नाम हुलसी स्वीकार किया है। ये राजापुर जिला बाँदा के निवासी थे, जाति के ब्राह्मण थे, घर की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। दुर्भाग्यवश बाल्यावस्था में माता पिता के वात्सल्य और पिता के संरक्षण से ये महापुरुष वंचित रहे, जैसा कि स्वयं कवितावली में उन्होंने लिखा है—

मातु पिता जग ज्याइ तज्यो, विधि हूँ न लिखी कछु भाल भलाई।

सुना जाता है कि अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेने से माता-पिता ने इनका परित्याग कर दिया था। छोटी अवस्था में ही साधु-सन्तों में रहने लगे थे। गुरु नरहरिदास के चरणों में रहकर इन्होंने विद्याध्ययन किया था। वैवाहिक जीवन के कुछ समय बाद ही पत्नी के प्रेम ने इनके जीवन को एक नई दिशा, एक नवीन चेतना प्रदान की, जिससे तुलसी इतने महान लोकनायक बनने में समर्थ हुए। इनका देहावसान संवत् १६८० में हुआ, जैसा कि इस प्रचलित दोहे से सिद्ध होता है—

संवत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

तुलसीदास जी ने अपने जीवनकाल में अगाध पांडित्य से सैंतीस ग्रंथों की रचना की परन्तु नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थावली के अनुसार तुलसी के केवल बारह ग्रन्थ ही प्रमाणिक माने जाते हैं, जिनमें रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, दोहावली, विनयपत्रिका, जानकी मंगल, रामलला नहछू, बरवै रामायण तथा हनुमान चालीसा प्रमुख हैं। कवि की दृष्टि से तुलसीदास जी का स्थान हिन्दी साहित्य में सर्वोपरि है। वे उच्च कोटि के कलाकार, प्रकाण्ड पण्डित, दर्शन और धर्म के व्याख्याता थे। उन्होंने राम की लोकपावन कथा द्वारा मानव जीवन की गुत्थियों को बड़ी कुशलता से सुलझाया तथा राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों के समस्त आदर्शों का सर्वाङ्गीण प्रतिपादन किया।

गोस्वामी तुलसीदास ने एक स्थान पर कहा है कि—

कीरति भनिति भूति भल सोई, सुरसरि सम सब कहँ हित होई।

अर्थात् यश, कविता और वैभव वही श्रेष्ठ है, जिसमें गंगा के समान सबका कल्याण हो। इस दृष्टिकोण से तुलसी का साहित्य सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए उपयोगी है। ऊँच-नीच, योग्य अयोग्य सभी उनमें से अपने काम की बातें निकाल सकते हैं। यही कारण है कि तुलसी की रामायण निर्धन की झोंपड़ी से लेकर राजप्रासाद तक समान रूप से समादृत होती है। साधारण मनुष्यों की दृष्टि में रामायण की महत्ता इसलिये है कि उसमें पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्शों की स्थापना की गई है। रामकथा में हमारी प्रत्येक परिस्थिति का समावेश है और हमारी समस्याओं का समाधान दिया हुआ है। पिता का पुत्र के प्रति, पुत्र का माता पिता के प्रति, भाई का भाई के प्रति, राजा का प्रजा के प्रति सेवक का स्वामी के प्रति, शिष्य का गुरु के प्रति, पत्नी का पति के प्रति क्या कर्त्तव्य है आदि सामाजिक कर्त्तव्यों की झलक रामचरितमानस में पाकर सामान्य जनता हर्ष विभोर हो जाती है। दूसरी ओर विद्वान्, दार्शनिक एवम् आलोचक रामायण को गहन ज्ञान का भण्डार बताते हैं। यह निश्चित है कि तुलसीदास ने कथा शृंखला मिलाने में, धार्मिक समन्वय करने में, दार्शनिक निरूपण में, जो कौशल दिखाया है उन सबको के लिए पर्याप्त समय और बुद्धि अपेक्षित है। रामचरितमानस और विनय-पत्रिका में जो गूढ़ आध्यात्मिक विचार हैं उनका निर्णय करने में विद्वान् आज तक समर्थ नहीं हो सके। साहित्यिक दृष्टि से विनय पत्रिका इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है तथापि इनकी ख्याति और लोकप्रियता का आधार रामचरितमानस है।

तुलसीदास जी का समस्त काव्य समन्वय का महाप्रयास है। भक्ति, नीति, दर्शन, धर्म कला का इनकी कृतियों में अपूर्व संगम है। तुलसी ने अपने काव्य में आदर्श और व्यवहार का समन्वय, लोक और शास्त्र का समन्वय, गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय उपस्थित किया है। तुलसीदास जी ने कभी किसी का खण्डन नहीं किया। जिन विषयों में उनकी आस्था नहीं थी, उनको भी वे आदर्श की दृष्टि से देखते थे।

गोस्वामी जी ने, अपने समय तक जितनी काव्य शैलियाँ प्रचलित हो चुकी थीं, सभी में रामकथा का वर्णन किया। जायसी की चौपाइयों में उन्होंने रामचरितमानस की रचना की, जिसमें बीच-बीच में और भी अनेक प्रकार के छन्दों के दर्शन होते हैं। चन्दवरदाई की छप्पय और कवित्त शैली में कवितावली लिखी। कबीर की दोहा-पद्धति को उन्होंने बरवै रामायण स्वीकार किया। जयदेव, विद्यापति और सूर गीत शैली में उन्होंने गीतावली और विनय-पत्रिका लिखी। ग्रामीण छन्दों में पारिवारिक शुभकार्यों पर गाये जाने के लिये रामलला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल आदि पुस्तकों की रचना की। तुलसी की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय इससे अधिक और क्या हो सकता है कि एक कवि अपनी समकालीन समस्त शैलियों में सिद्धहस्त हो।

काव्य शैलियों की भाँति विभिन्न भाषाओं पर भी गोस्वामी जी का समान अधिकार था। जहाँ उन्होंने ब्रज और अवधी भाषा में अपना पाण्डित्य प्रदर्शित किया वहाँ उन्होंने संस्कृत भाषा में भी माघ और कालिदास के जैसे सुन्दर श्लोकों की रचना की। उन्हें राजस्थानी, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी भाषाओं का भी पूर्ण ज्ञान था। अरबी और प्राकृत भाषाओं के शब्दों का भी उन्होंने अधिकारपूर्वक प्रयोग किया है। भाषा तथा छन्दों की भाँति तुलसीदास जी ने सभी रसों का विधान किया है। तुलसी के प्रत्येक पद्य में रस चमत्कार विद्यमान है। तुलसी के काव्य की प्रमुख विशेषता यह है कि यद्यपि उसमें नव-रसों का परिपाक हुआ है फिर भी उन सबके ऊपर भक्ति रस की प्रधानता है। तुलसी का शृङ्गार-वर्णन अत्यन्त संयत और शास्त्रीय मर्यादा के अनुकूल है। तुलसी की अलंकार योजना अत्यन्त सजीव एवं मनोरम है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा-तुलसी के प्रिय अलंकार हैं। तुलसी जैसे पांडित्यपूर्ण सांगरूपक हिन्दी के अन्य कवि प्रायः उपस्थित न कर सके।

तुलसी ने प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों की रचनायें की। प्रबन्ध-सौष्ठव की दृष्टि से तुलसी का स्थान साहित्य में सर्वोच्च है। रामचरितमानस उनका प्रबन्ध काव्य है। उनकी अन्य रचनाये मुक्तक-काव्यों में आती हैं। जहाँ शास्त्रीय दृष्टिकोण से रामचरितमानस हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है, वहाँ उनकी गणना विश्व के महाकाव्यों में की जाती है, क्योंकि तुलसी ने मानस में विश्व धर्म की स्थापना की है। तुलसीदास जी ने अपने काव्य में आदर्श चरित्रों की इतनी सुन्दर कल्पना की है कि ये चरित्र बाद में हिन्दू जीवन के आदर्श बन गये। रामचरितमानस में चरित्र-चित्रण इतना सफल हुआ है कि उनके चरित्र हमारे इतिहास के पात्र बन गये हैं। तुलसीदास जी ने भी सभी प्रकार के पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है, इसमे अच्छे भी हैं और बुरे भी, पापी भी हैं और धर्मात्मा भी, उच्च भी है और नीच भी। तुलसीदास जी आदर्शवादी भविष्यद्रष्टा थे, उन्होंने इन आदर्श चरित्रों के आधार पर भारतवर्ष के भावी समाज की कल्पना की है। प्रत्येक चरित्र-चित्रण में तुलसी ने मानव वृत्तियों को गम्भीरता से देखा है, इसीलिए पाठक तुलसी द्वारा प्रतिपादित अनुभूतियों को उनके राग-वैराग्य, हास्य और रुदन को अपना ही राग-वैराग्य हास्य, और रुदन समझते हैं। यही कवि की सच्ची कला और महानता है।

वेदान्त के क्षेत्र मे तुलसी ने अभूतपूर्व समन्वय उपस्थित किया। स्वयं साकार-वादी होते हुए भी निराकार की उपासना का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए, दोनो मे अभेद स्थापित किया।

भक्तिहि, ज्ञानहि, नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव सम्भव खेदा ॥

इसी प्रकार शाक्त और शैव मत का, वैष्णवोपासना में राम और कृष्ण की उपासना का, वेदान्त में निर्गुण और सगुण पक्ष का, चारो वर्णों और चारो आश्रमो का अपूर्व समन्वय उपस्थित किया।

तुलसीदास जी अपनी इन्ही सब विशेषताओं के कारण हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य हैं। हिन्दी साहित्य और हिन्दू समाज गोस्वामी का चिरऋणी है। उनके दिव्य सन्देश ने मृतप्राय हिन्दू जाति के लिये सजीवनी का कार्य किया, जनता में संगठन और सामंजस्य के भक्त, कवि और लोकनायक तीनो मिलकर एकाकार हो गये हैं। इन तीनो रूपो में उनका कोई रूप किसी रूप से कम नही। निःसन्देह तुलसी और उनका काव्य दोनो ही महान् थे। कविता के विषय में तो साहित्यिक विद्वानों की उक्ति प्रसिद्ध है—

कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।

परन्तु धार्मिक पुरुषों का विचार है—

भारी भवसागर सों उतारतो कवन पारि, जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो।

१७. "चुभ-चुभ कर भीतर चुभै, ऐसी कहै कबीर"

अथवा

जन जागरण में कबीर के योगदान का महत्त्व

अथवा

महात्मा कबीर

महात्मा कबीर के जन्म के समय भारतवर्ष की राजनीति तथा समाज और धर्म मे सर्वत्र एक अशान्ति और अव्यवस्था का साम्राज्य था। राजनीतिक दृष्टि से मुगल शासकों के आतंक से पीड़ित हिन्दू जनता राजाओं का भरोसा छोड़कर हताश हो चुकी थी और उसने अपने को ईश्वर की इच्छा पर छोड़ दिया था। धार्मिक दृष्टि से नाथ पंथियो और सिद्धो ने रहस्यात्मक एवं चमत्कारात्मक तन्त्र-मन्त्र [illegible] जनता को धर्म के मार्ग से च्युत कर दिया था। तीर्थ यात्रा, [illegible] निस्सारता बताकर वे लोग हठयोग तथा अन्य शारीरिक क्रियाओं द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति का उपदेश दे रहे थे। सामाजिक दृष्टि से हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर कलह और कटुता, द्वेष और अविश्वास बढ़ता जा रहा था। विचार संकीर्णता दोनों ओर छाई हुई थी। ऐसी स्थिति मे एक ऐसे पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता थी, जो किंकर्तव्यविमूढ़ जनता का पथ प्रदर्शन कर सके। महात्मा कबीर ऐसे ही महापुरुष थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों में सद्भावना और प्रेम उत्पन्न करने के लिये अनेक प्रयत्न किये।

महात्मा कबीर

१ तत्कालीन परिस्थितियाँ।
२ जीवन वृत्त।
३ समाज सुधार।
४ धार्मिक सिद्धान्त।
५ हिन्दी साहित्य में कबीर का स्थान।
६ उपसंहार।

महात्मा कबीर का जन्म संवत् १४५६ में हुआ था। कबीर पंथियों ने इनके जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा लिखा है—

चौदह सौ छप्पन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ भए।
जेठ सुदी बरसाइत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

किवदंती के अनुसार कबीर रामानन्द जी के आशीर्वाद के फलस्वरूप एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। लोक-लाज के कारण यह इन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे छोड़ आई थी। वहाँ से नीमा और नीरू नामक जुलाहा दम्पति इन्हें ले आये, जिनके द्वारा इनका पालन-पोषण हुआ। कबीर के बाल्यकाल का विवरण अभी तक अज्ञात ही है पर इतना अवश्य है कि उनकी शिक्षा-व्यवस्था यथावत् नहीं हुई थी। उन्होंने स्वयं लिखा है—

मसि कागद छूओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

कबीर बचपन से अपने पिता के काम में हाथ बटाने लगे थे। अवकाश के क्षणों में ही वे हिन्दू साधु सन्तों की संगति करते और उनसे ज्ञानार्जन करते। प्रारम्भ के क्षणों से ही कबीर हिन्दू वेदांत से प्रभावित थे। इसीलिये वह स्वामी रामानन्द के शिष्य हुए। कुछ लोग इन्हें सूफी फकीर शेख तकी का शिष्य मानते हैं। कबीर की स्त्री का नाम लोई था। वह एक वनखण्डी वैरागी की कन्या थी। उसके घर पर एक रोज संतों का समागम था, कबीर भी वहाँ थे। सब संतो को दूध पीने को दिया गया, सबने दूध पी लिया, कबीर ने अपना दूध रक्खा रहने दिया। पूछने पर बताया कि एक संत आ रहा है। उस के लिये रख दिया गया है। कुछ देर बाद एक संत उसी कुटी पर आ पहुँचा। सब लोग कबीर की भक्ति पर मुग्ध हो गये। लोई तो उनकी भक्ति से इतनी विह्वल हो गई कि वह उनके साथ रहने लगी। कोई लोई को कबीर की स्त्री कहते हैं, कोई शिष्या। कबीर ने निःसन्देह लोई को सम्बोधित करते हुये पद लिखे हैं—

कहत कबीर सुनहु री लोई, तुहि विनसी रहेगा सोई।

सम्भव है, लोई उनकी स्त्री ही हो, पीछे संत स्वभाव के कारण उन्होंने उसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन के विषय में लिखा है—

नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानी तन परिहरी, नारी बड़ा विकार॥

लोई से इनके दो सन्तानें थी। एक कमाल नाम का पुत्र था और दूसरी कमाली [illegible] के समय कबीर काशी से मगहर चले गये थे, उन्होंने लिखा है—

[illegible] जन्म शिवपुरी गंवाया, मरति बार मगहर उठि धाया।

लोगों का यह विश्वास है कि काशी में मृत्यु से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त हो जाता है, परन्तु कबीर इस धार्मिक अन्धविश्वास के घोर विरोधी थे इसलिये वे काशी से मगहर चले आये थे। यद्यपि लोगों ने कहा भी कि मगहर में मरने से नरक मिलेगा; आप काशी ही चले जाइये; परन्तु कबीर ने उन्हें उत्तर दिया—

जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहि कौन निहोरा।

कबीर की मृत्यु माघ सुदी एकादशी सवत् १५७५ में हुई थी, जैसा कि इस दोहे से सिद्ध होता है—

संवत् पन्द्रह सौ पचत्तर, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पौन के पौन॥

संक्रांतिकाल में पथ-प्रदर्शन करने वाले किसी भी व्यक्ति को जहाँ जनता के अंधविश्वासों और मूर्खतापूर्ण कृत्यों का खण्डन करना पडता है, वहाँ उसे समन्वय का एक बीच का मार्ग भी निकालना पडता है। यही कार्य कबीर को भी करना पड़ा है। जहाँ इन्होंने पण्डितो, मोलवियों, पीरो, सिद्धो और फकीरो को उनके पाखण्ड और ढोंग के लिए फटकारा वहाँ उन्होने एक ऐसे सामान्य धर्म की स्थापना का जिसके द्वार सबके लिये खुले थे। एक ओर उन्होने हिन्दुओ के तीर्थ, व्रत, मठ, मन्दिर, पूजा आदि की आलोचना की तो दूसरी ओर मुसलमानों के रोजा, नमाज और मस्जिद की भी खूब निन्दा की। माला फेरने वाले पण्डित पुजारियो के विषय मे उन्होने कहा—

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥

× × ×

जप माला छापा तिलक, सरै न एको काम।
मन काँचे नाचे वृथा, साँचे राँचे राम॥

कबीर निर्गुणवादी थे, साकार भक्ति मे उन्हें विश्वास न था, इसलिए स्थान-स्थान पर उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध किया—

पाहन पूजे हरि मिलें तो, मैं पूजूं पहार।
ताकी कोई न पूजई, पीस खाय ससार॥

सिर मुंडाकर सन्यासी होने वाले पाखण्डियो पर एक तीक्ष्ण व्यग्य देखिये—

केसन कहा बिगारिया, जो मूंडो सौ बार।
मन को क्यों नहीं मूडिये जा में विषय विकार॥

सिद्धो और नाथ पंथियो के तन्त्र-मन्त्र के रहस्यो का विरोध करते हुए कबीर ने लिखा है—

जन्त्र मन्त्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।
सार शब्द जाने बिना, कागा हंस न होय॥

मुसलमानों की ईश्वर पूजा, मस्जिद में अजां के माध्यम से होती है। अजां देने वाला काफी जोर से चिल्लाता है। कबीर को यह अखरता था, वे कहते थे कि तुम्हारा खुदा क्या कुछ कम सुनता है—

कांकरि पाथरि जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

मांस भक्षण का विरोध-खण्डन करते हुए लिखा है—

बकरी पाती खात है, ताकि काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात हैं, उनको कहा हवाल॥

× × ×

दिन को रोजा रखत हैं, रात हनत है गाय।
यह तो खून, वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय॥

मुसलमानों की हिंसा के साथ-साथ उन्होंने हिन्दुओं की छुआछूत की भावना को भी बुरा बताया—

जो तू बामन, बामनी जाया, आन बाट काहे नहीं आया।

× × ×

एक बून्द एकै मल मूतर एक चाम, एक गूदा ।
एक जाति तें सब उपजाना, को बामन को सूदा ।।

इस प्रकार दोनो की बुराइयों का दिग्दर्शन कराके उन्होंने कहा—

इन दोउन राह न पाई,
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई ।

इसके साथ ही उन्होने राम और रहीम को एक बताकर कहा—

अल्ला राम की गति नाहीं, तह कबीर त्यो लाई ।

अर्थात् अल्ला और राम से भी परे एक असामान्य शक्ति की ओर कबीर ध्यान लगाता है । कबीर स्वयम् निम्न वर्ग के प्रतिनिधि बनकर रहे तभी वे अखण्ड व्यक्तित्व को लेकर जीवित रह सके । आजकल के उच्च वर्ग के नेताओं की तरह उन्होंने पीड़ितों का समर्थन नही किया । यदि वे ऐसी परिस्थिति में पैदा न हुए होते तो सम्भवतः वे युगांतर उपस्थित नही कर सकते थे ।

कबीर की ईश्वर विषयक धारणा भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों का समन्वय थी । उन्होंने न तो अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद का समर्थन किया और न सूफी तथा खुदावाद का ही । कबीर ने मानवता की सामान्य भूमि पर खड़े होकर सबसे ऊपर एक नये निराले आराध्य की कल्पना की और उसी कल्पना के आधार पर ऐसे सामान्य धर्म की प्रतिष्ठा की, जो धार्मिक क्षेत्र में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन ला सका । कबीर ने अपने को कही 'राम की बहुरिया' कहा, जिसमे उन्हे कोई-कोई सखी भाव का भक्त बता बैठते हैं और भी कई स्थानों पर ऐसे ही वर्णन किये हैं—

हम घर आएं हो राजा भरतार ।

× × × ×

कही मुक्ति न मांगकर भक्ति की याचना करते है । कहीं कहते सुने जाते हैं—

दशरथ सुत तिहूं लोक बखाना । राम नाम का मरम है आना ।।

परन्तु अन्त मे कबीर यह सिद्ध कर देते हैं कि उनका राम ब्रह्म का पर्याय-वाची है—

निर्गुन राम, जपहु रे भाई ।

× × ×

ज्यों तिल मांही तेल है, ज्यों चकमक में आगि ।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सके तो जागि ।।

साहित्य के क्षेत्र में कबीर पण्डित तो थे परन्तु पुस्तकों के पण्डित नही थे । वे प्रेम का 'ढाई अक्षर' पढ़कर पण्डित हुए थे । उनकी विधिवत् शिक्षा-दीक्षा नहीं हुई थी । उन्होंने स्वयं कहा है—

मसि कागद छूयो नहिं, कलम गहि नहिं हाथ ।

कवि के लिए प्रतिभा, शिक्षा, अभ्यास ये तीनों बातें आवश्यक होती हैं । कबीर ने न तो कही शिक्षा प्राप्त की थी और न किसी गुरु के चरणों में बैठकर काव्य शास्त्र का अभ्यास ही किया था परन्तु इसका यह अर्थ नही कि वे ज्ञान से शून्य थे । भले ही उनमें परावलम्बी ज्ञान न रहा हो, परन्तु स्वावलम्बी ज्ञान की उनमें कमी नहीं थी । उन्होने सत्संग से पर्याप्त ज्ञान संचय किया था । वे बहुश्रुत थे, उनके काव्य म विभिन्न प्रतीकों तथा अलंकारों की छटा दिखाई पड़ती है । उनके रूपक और उलटबासियों के

विरोधाभास तो अद्वितीय हैं। भाषा सधुक्कड़ी होने पर भी अभिव्यक्तिपूर्ण है। कुछ विद्वानों का आक्षेप है कि छन्द की दृष्टि से उनका काव्य अत्यन्त दोषपूर्ण है और वह ठीक भी है, परन्तु कबीर का ध्येय कविता की रचना द्वारा महाकवि बनना या यश प्राप्त करना न था। कविता तो उनके लिए अपने विचारों तथा भावों को जनता तक पहुँचाने का माध्यम थी। यही कारण है कि सीधी हृदय से निकली हुई कबीर की कविता पाठक के हृदय पर चोट करती है इसीलिए यह कहा जाता है कि "चुभ-चुभ कर भीतर चुभै, ऐसी कहै कबीर"। कबीर के हृदय में सत्यता थी, आत्मा में बल था, इसलिये उनकी वाणी में ओज था, शक्ति थी। रहस्यवादी कविता के वे स्थान जहाँ उन्होंने आत्मा के विरह और व्यथा का चित्रण किया है, किसी भी कोमल हृदय के व्यक्ति को रसमग्न करने के लिये पर्याप्त हैं। कबीर ज्ञान-सम्बन्धी रचनाओं में निःसंदेह सर्वश्रेष्ठ हैं। नीति काव्यकारों में भी कबीर का स्थान रहीम से पीछे नहीं है। तुलसी और सूर की रचनाओं के बाद लोकप्रियता एवं प्रभावोत्पादकता में कबीर का ही काव्य आता है। मिश्र बन्धुओं ने अपने 'हिन्दी नवरत्न' में कबीर और तुलसी और सूर के पश्चात् तीसरा स्थान प्रदान करके न्याय ही किया है।

कबीर को कोई-कोई विद्वान् केवल समाज सुधारक और ज्ञानी मानते हैं, परन्तु कबीर में समाज सुधारक, ज्ञानी और कवि, तीनों रूप मिलकर एकाकार हो गये हैं। वे सर्वप्रथम समाज सुधारक थे, उसके पश्चात् ज्ञानी और उसके पश्चात् कवि। कबीर ने अपनी प्रखर भाषा और गोष्ठी भावाभिव्यक्ति से साहित्यिक मर्यादाओं का अतिक्रमण भले ही कर दिया हो परन्तु उन्होंने जो काव्य सृजन किया उसके द्वारा साहित्य तथा धर्म में युगान्तर अवश्य उपस्थित हुआ।

१८. युग-प्रवर्त्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनका साहित्य

अथवा

"भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।"

युग-प्रवर्त्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनका साहित्य

१ जन्मकालीन परिस्थितियाँ।
२ जीवन वृत्त।
३ रचनायें।
४ भाषा के क्षेत्र में नवयुग प्रवर्तक।
५ बहुमुखी साहित्य सेवा—
(क) काव्यकार, (ख) युग प्रवर्तक, (ग) नाटककार।
६ उपसंहार।

भारत में अंग्रेजों का आधिपत्य दृढ़ हो चुका था। शासन की भाषा अंग्रेजी स्वीकृत हो चुकी थी, पद-लालसा से लालायित भारतीय, अंग्रेजी और विदेशी सभ्यता अपनाने में गौरव समझने लगे थे। शिष्ट और सुशिक्षित भारतीय समाज हिन्दी को हेय दृष्टि से देखने लगा था। सर सैय्यद जैसे विद्वान् हिन्दी के नाम पर आँखों उछल पड़ते थे और हिन्दी को 'गँवारू बोली' कह कर सम्बोधित करने में अपने विद्वान् होने की मान्यता प्रकट करते थे। हिन्दू सभ्यता, संस्कृति और साहित्य पर चारों ओर से कुठाराघात हो रहे थे। लोगों को यह विश्वास ही नहीं होता था कि हिन्दी पढ़कर भी कोई सभ्य और शिक्षित हो सकता है। हिन्दी की दशा तो अव्यवस्थित थी ही परन्तु हिन्दीपन को भी लोग नापसन्द करने में गौरव का अनुभव करने लगे थे। ऐसे समय में हिन्दी को एक ऐसे दृढ़ आत्मविश्वासी कुशल नेतृत्व की

आवश्यकता थी, जिसमे युग परिवर्तन की क्षमता हो, जो राष्ट्रीयता की रक्षा कर सकता हो, अथवा मातृभाषा की रक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान कर सकता हो। वह समय हिन्दी के लिए संक्रान्ति काल था। राजनीति तथा समाज मे नवीन क्रान्ति हो रही थी। ऐसे वातावरण मे हिन्दी में नये युग के प्रवर्त्तक एवं हिन्दी साहित्य में स्वतन्त्रता के प्रथम उद्घोषक भारतेन्दु की भारत भूमि मे अवतारणा हुई।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंश में हुआ था। इनके पिता बाबू गोपालचन्द्र (उपनाम गिरधरदास) ब्रजभाषा के प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। भारतेन्दु जी पर घर के साहित्यिक वातावरण का प्रभाव था। उन्होने पाँच वर्ष की अवस्था मे निम्नलिखित दोहे की रचना की थी :—

लै ब्योडा ठाड़े भये, श्री अनुरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सैन को, हनन लगे भगवान॥

उन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू की शिक्षा घर पर ही प्राप्त की थी। दस वर्ष की अवस्था मे ही उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। फलस्वरूप शिक्षा का क्रम बीच में ही टूट गया। तेरह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया। तदनन्तर इन्होंने जगन्नाथपुरी की यात्रा की, जहाँ ये बंगला भाषा के सम्पर्क में आये। अनेक तीर्थ-यात्रायें करने के कारण भारतेन्दु की प्रकृति-सौंदर्य और देश के विभिन्न प्रान्तों के सामाजिक रीति-रिवाजो को देखने व समझने का अवसर मिला। वह स्वतन्त्रता प्रेमी तथा प्रगतिशील विचारो के व्यक्ति थे। उनके स्वभाव में दयालुता थी। वे दानी थे। उनकी सत्यता के प्रति अटूट श्रद्धा थी। उन पर लक्ष्मी और सरस्वती की समान रूप से कृपा थी। उन्होने सरस्वती की सेवा में लक्ष्मी को पानी की तरह बहाया, अपने जीवन काल मे भारतेन्दु ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं, सभाओं, साहित्यिक गोष्ठियों, यथा नवीन साहित्यकारों को जन्म दिया। तत्कालीन साहित्यकारो मे भारतेन्दु सर्वप्रथम थे। जीवन के अन्तिम दिनो मे भारतेन्दु आर्थिक कष्टों से दब गये थे, उन्हे क्षय रोग हो गया था। सम्वत् १९४१ मे हिन्दी साहित्य का यह प्रकाश पुंज सदैव के लिए समाप्त हो गया।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, उन्होंने साहित्य की प्रत्येक दिशा को नई गति और नई चेतना प्रदान की। नाटक, काव्य, इतिहास, निबन्ध, व्याख्यान आदि सभी विषयों पर अधिकारपूर्वक लिखा। अपने सत्रह-अठारह वर्ष के साहित्यिक जीवन में भारतेन्दु ने अनेक ग्रन्थो की रचना की। भारतवीणा, वैजयन्ती, सुमनांजलि, सतसई, शृंगार, प्रेम-प्रलाप, होली, भारतेन्दु जी के उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ है। भारतेन्दु जी का सबसे बडी देन नाटकों के क्षेत्र मे है 'चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नील देवी', 'अँधेर नगरी', 'प्रेम योगिनी', 'विषस्य विषमौषधम्', और 'वैदिकी हिंसा न भवति, ये भारतेन्दु जी के मौलिक नाटक हैं। 'विद्या सुन्दर', 'पाखण्ड विडम्बन', 'धनंजय विजय', 'कर्पूरमंजरी', 'मुद्रा राक्षस, 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'भारत जननी' आपके अनूदित नाटक हैं। सुलोचना, शीलवती आदि आपके आख्यान हैं। 'परिहास पंचक' में हास्य रस सम्बन्धी गद्य हैं। 'काश्मीर कुसुम' और 'बादशाह दर्पण' आपके इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। भारतेन्दु जी ने अपने अल्पकाल मे सौ से अधिक ग्रन्थों की रचना की।

भारतेन्दु जी का काव्य विविधतापूर्ण है, उनकी कुछ रचनायें भक्ति रस से भरी हुई हैं। कुछ रचनाओं मे रीतिकाल की सी झलक दिखलाई पड़ती है। अन्य रचनाओं मे नवीन चेतनाओ पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार हम भारतेन्दु के समस्त काव्यों को चार भागो में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) भक्ति प्रधान, (२) शृंगार प्रधान, (३) देशप्रेम प्रधान, तथा (४) सामाजिक समस्या प्रधान।

उनकी भक्ति प्रधान रचनायें राधाकृष्ण से सम्बन्धित हैं। इन रचनाओं में वे सूर, तुलसी की कोटि में आते हैं। एक उदाहरण देखिए —

बाज्यौ कर नूपुर स्रौननि के निकट सदा,
पदतल माहि मन मेरो बिहर्यो करै।
बाज्यौ करै बंसी धुनि, पूरि रोम-रोम मुख,
मन्द मुसुकानि मन मनहि हर्यो करै॥
हरीचन्द चलनि, मुरनि बतरानि चित्त,
छाई रहै छवि जुग दृगनि भर्यो करै।
प्रानहुँ ते प्यारो रहै प्यारो तू सदाई प्यारे,
पीत पट सदा हिय बीच फहर्यो करै।

शृंगार प्रधान रचनाओं में ये पद्माकर, घनानन्द और रसखान की कोटि में आते हैं। भारतेन्दु को संयोग की अपेक्षा वियोग चित्रण में अधिक सफलता मिली है। गोपिकाओं को दुःख है कि वे कृष्ण को एक बार भी प्यार से आँखें भर कर न देख पाई। इसलिए उनके अतृप्त नेत्र आज भी कृष्ण की प्रतीक्षा में खुले हुए हैं और मृत्यु के बाद ज्यों के त्यों खुले। कितना स्वाभाविक और मनोहारी वर्णन है—

इन दुखियान को न सुख सपनेहू मिल्यौ,
यों ही सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी।
प्यारे हरिचन्दजू की बीती जानि औधि जो पै,
जैहैं प्रान तऊ ये तो सग न समायँगी॥
देख्यो एक बार हूँ न नैन भरि तोहिं यातें,
जौन-जौन लोक जैहैं तहाँ पछितायँगी॥
बिन प्राण प्यारे भये दरस तिहारे हाय,
देखि लीजो आँखें ये खुली ही रह जायँगी॥

संयोग का चित्रण भी कहीं-कहीं बहुत सुन्दर है। ऐसा प्रतीत होता है मानो भारतेन्दु, गोपियों के मुख से अपनी ही बात कह रहे हैं। उदाहरण देखिए—

रोकत हैं तो अमगल होय, और प्रेम नसै जो कहैं प्रिय जाइये।
जो कहैं जाहु न, तो प्रभुता, जो कछू न कहैं तो सनेह नसाइये॥
जो हरिचन्द कहैं, तुमरे बिन, जियें न, तो यह क्यों पतियाइये।
तासों पयान समै तुमसों हम का कहैं प्यारे हमें समझाइये॥

अपनी देश-प्रेम प्रधान रचनाओं द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय जागरण का प्रथम उद्घोष किया। भारतेन्दु भारत की दुर्दशा पर भगवान से प्रार्थना करते हैं—

गयो राज, धन, तेज, रोष, बल, ज्ञान नसाई,
बुद्धि, धीरता, श्री, उछाह, सूरत बिलाई।
आलस, कायरपनो, निरुद्यमता अब छाई,
रही मूढ़ता, बैर, परस्पर, कलह, लराई।
सब विधि नासी भारत प्रजा, कहूँ न रह्यो अवलम्बन अब।
जागो जागो करुणायतन, फेरि जागिहो, नाथ कब॥

सामाजिक समस्याओं के चित्रण द्वारा भारतेन्दु ने कविता-कामिनी की रीतिकालीन विलासिता के झुरमुटों से निकालकर जन-जीवन की साधारण पृष्ठभूमि पर लाकर

खड़ा कर दिया। भारतवर्ष की भिन्नता पर दुःख प्रकट करते हुए भारतेन्दु कहते हैं—

भारत में सब भिन्न अति, ताही सों उत्पात।
विविध बेस, मतहूँ विविध, भाषा विविध लखात॥

हिन्दी के उत्थान के लिए भारतेन्दु ने अपना तन, मन, धन, सब कुछ समर्पित कर दिया था। मातृ-भाषा के विषय में उन्होंने बहुत कुछ लिखा है—

अंग्रेजी पढ़ कै जदपि, सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन॥

× × ×

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥

भारतेन्दु की कविता में ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का रूप मिलता है, परन्तु इतना अवश्य है कि इन्होंने खड़ी बोली में बहुत कम रचना की। ये भाषा की शुद्धता के पक्षपाती थे। इनकी भाषा बड़ी परिष्कृत, व्यवस्थित और प्रवाह-युक्त है। प्राकृत तथा अपभ्रंश काल मे शब्दों का, जिन्हें कवि लोग अपनी कविताओं में स्थान देते चले आ रहे थे, इन्होंने बहिष्कार किया। भारतेन्दु ने अपनी प्रतिभा से हिन्दी के कर्णकटु शब्दों को मधुर बनाया तथा विदेशी शब्दों को हिन्दी के ढांचे में ढालकर ग्रहण किया। भारतेन्दु की रचनाओं में सभी रसों का सुन्दर समायोजन है। शृंगार, शान्त, रौद्र, भयानक, वीभत्स, करुण, वात्सल्य, अद्भुत और हास्य सभी रसों का उनकी रचनाओं मे सुन्दर परिपाक है। रसों के साथ अलंकारों का सहज सौंदर्य भी देखने योग्य है। अनुप्रास, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीक, विभावना आदि अलंकार स्वाभाविक रूप से आये हैं। भारतेन्दु की छन्द योजना अत्यन्त विस्तृत है। तुलसीदास की भांति भारतेन्दु ने भी प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी शैलियों में रचनायें कीं। इन्होंने भाव और भाषा के अनुरूप पद, कवित्त, सवैया, दोहा, रोला, छप्पय, चौपाई, बरवै, हरिगीतिका, वसन्त-तिलका आदि छन्दों का सफल प्रयोग किया।

हिन्दी गद्य के क्षेत्र में भारतेन्दु जी की अमूल्य सेवायें हैं। आज हिन्दी का जो रूप हमारे सामने है वह भारतेन्दु की साहित्य साधना का ही प्रसाद है। भारतेन्दु के साहित्य क्षेत्र मे आने के समय भाषा का स्वरूप अस्थिर था, वह निष्प्राण और रूपहीन थी। एक ओर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द उसे उर्दू-प्रधान बनाना चाहते थे, दूसरी ओर राजा लक्ष्मणसिंह उसे संस्कृत-प्रधान बनाना चाहते थे। लल्लूलाल की भाषा मे ब्रजभाषापन था और सदल मिश्र की भाषा मे पूर्वीपन की मात्रा अधिक थी। भारतेन्दु ने अस्थिर भाषा को अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से स्थिर रूप प्रदान किया। उन्होंने हिन्दी को सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने विदेशी शब्दों को भी हिन्दी के ढांचे में ढालकर ग्रहण किया। भारतेन्दु की भाषा मे स्वाभाविकता थी और माधुर्य था। अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से उन्होंने अनेक साहित्य साधकों को जन्म दिया। भारतेन्दु अपने समय के हिन्दी साहित्य और भाषा के एकमात्र नेता थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी गद्य को विकासोन्मुख बनाया, उसका मार्ग प्रदर्शन किया, इसलिये वह युग भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र गद्य की भांति हिन्दी नाटकों के भी जन्मदाता हैं। वास्तव में इनसे पूर्व नाटकों का क्षेत्र बिलकुल शून्य था। जो दो-चार नाटक थे भी उनमें न तो मौलिकता थी और न शास्त्रीय नाटकीय तत्त्व। मुसलमानों के आधिपत्य के कारण भारतेन्दु से पूर्व नाटकों का समुचित विकास नहीं हो पाया था, क्योंकि मुसलमानों

की दृष्टि में किसी भी आधिभौतिक शक्ति का मंच पर लाना कुफ्र समझा जाता था। भारतेन्दु के समय में कुछ नाटक कम्पनियाँ थीं, जो अश्लील अभिनयों से जनरुचि को विकृत करने में प्रय.. ल थीं। भारतेन्दु जी नाटक रचना में बंगला से सबसे अधिक प्रभावित हुए। उ..न हिन्दी में भी नाटक लिखने का निश्चय किया। उनके अनुवादित और मौलिक नाटकों की संख्या चौदह है। प्रायः ये सभी नाटक अपने समय के लोकप्रिय नाटक थे तथा वे अपने नाटकों का निर्देशन और अभिनय स्वयं किया करते थे। भारतेन्दु जी के सभी नाटक खड़ी बोली में लिखे गये हैं। उनके मौलिक नाटकों में 'भारत दुर्दशा' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु जी के नाटकों के विषय में लिखा है कि "उन्होंने सामग्री जीवन के क्षेत्रों से ली है।" वास्तव में उनके नाटक स्वयं नाटककार के जीवन से एवम् तत्कालीन सामाजिक जीवन से अनुप्रेरित थे। 'चन्द्रावली नाटिका' भारतेन्दु जी को अपने नाटकों में सबसे अधिक प्रिय थी। इसमें चन्द्रावली और कृष्ण के एक छोटे से आख्यान द्वारा प्रेम का सच्चा आदर्श प्रदर्शित किया गया है। "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" एक सुन्दर प्रहसन है। यही इनका पहिला मौलिक नाटक कहा जाता है। भारतेन्दु जी केवल नाटकों के जन्मदातामात्र थे। नाट्य-कला की दृष्टि से हमें उनमें कुशल नाटककार के दर्शन नहीं होते, अधिकांश उत्कृष्ट नाटक तो बाद में लिखे गये।

भारतेन्दु जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भावात्मक आदि सभी विषयों पर लेखनी चलाई। उनकी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य का कोना-कोना प्रकाशित हुआ। खेद है कि ३५ वर्ष की अल्पायु में ही वे काल कवलित हो गये, परन्तु—

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः,
नास्ति येषाम् यशः काये, जरामरणजम् भयम्।

१९ राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का बहुमुखी काव्य और विरहिणी उर्मिला

वर्तमान काव्यधारा में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का जन्म संवत् १९४३ में झाँसी जिले में चिरगाँव नामक स्थान में हुआ था। उनके पिता का नाम सेठ रामचरण था। वैष्णव भक्त होने के साथ-साथ सेठ जी का कविता के प्रति भी असीम अनुराग था। वे 'कनकलता' के नाम से कविता किया करते थे। गुप्त जी का लालन-पोषण भक्ति एवम् काव्यमय वातावरण में ही हुआ। वातावरण के प्रभाव से गुप्त जी बाल्यावस्था से ही काव्य रचना करने लगे थे। गुप्त जी की शिक्षा-व्यवस्था घर पर ही हुई। अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे झाँसी आये किन्तु वहाँ उनका मन न लगा। काव्य रचना की ओर प्रारम्भ से ही उनकी प्रवृत्ति थी। एक बार अपने पिता जी की उस कापी में, जिसमें वे कविता किया करते थे, अवसर पाकर एक छप्पय लिख दिया। पिता जी ने जब कापी खोली और उस छप्पय को पढ़ा, तब वे बहुत

प्रसन्न हुए। उन्होंने मैथिलीशरण को बुलाकर महाकवि होने का आशीर्वाद दिया।

गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनायें कलकत्ते के जातीय पत्र में प्रकाशित हुआ करती थीं। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आने पर उनकी रचनायें 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। द्विवेदी जी ने समय-समय पर उनकी रचनाओं में संशोधन किया और उन्हें 'सरस्वती' मे प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहन दिया। द्विवेदी जी से प्रोत्साहन पाकर गुप्त जी की काव्य-प्रतिभा जाग उठी और शनैः शनैः उसका विकास होने लगा। आज के हिन्दी साहित्य को गुप्त जी की काव्य-प्रतिभा पर गर्व है।

गुप्त जी जीवन के प्रथम चरण से ही काव्य रचना मे प्रवृत्त रहे। राष्ट्र प्रेम, समाज प्रेम, राम, कृष्ण तथा बुद्ध सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों एवं राजपूत, सिक्ख तथा मुस्लिम संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक कथाओं को लेकर गुप्त जी ने लगभग चालीस काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। गुप्त जी ने मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त बंगला के काव्य-ग्रन्थों का अनुपम अनुवाद भी किया है। अनुवादित रचनायें 'मधुप' के नाम से हैं। उन्होंने फारसी के विश्व-विश्रुत कवि उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद भी अंग्रेजी के द्वारा हिन्दी मे किया है। रंग में भंग, जयद्रथ बध, भारत भारती, शकुन्तला, वैतालिका, पद्मावती, किसान, पंचवटी, स्वदेश संगीत, हिन्दू-शक्ति, सौरन्ध्री, वन वैभव, वक संहार, झंकार, अनघ, चन्द्रहास, तिलोत्तमा, विकट भट, मंगल घट, हिडिम्बा, अंजलि, अर्घ्य, प्रदक्षिणा और जय भारत उनके काव्य हैं। 'साकेत' पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था। 'जय भारत' उनकी नवीनतम कृति थी।

गुप्त जी ने अपनी रचनाओं मे आज के-युग की समस्त चेतनाओं, मान्यताओं और समस्याओं का प्रतिनिधित्व किया। उनके काव्य में सामाजिक जीवन के लक्ष्यों का निरूपण है, राष्ट्रीय विचारों के सौन्दर्य की झलक है। परिवर्तनशील पुकार तथा पददलित, परवश और निराश भारतवर्ष को पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त कराने के लिए जागरण का महान् उद्घोष है। उनकी रचनाओं में प्राचीन आर्य सभ्यता और संस्कृति की मधुर झंकार हैं। गुप्त जी ने अपने काव्य में वर्तमान युग की समस्त प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया है।

गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाओं में केवल इतिवृत्तात्मकता थी, न उनमें भाषा का सौन्दर्य है और न भाव का। परन्तु जैसे-जैसे गुप्त जी का कवित्व विकसित होता गया वैसे-वैसे उनकी रचनायें अधिक प्रौढ़ और परिष्कृत होती गईं। गुप्त जी की रचनाओं में 'पञ्चवटी' में प्रथम बार उनके प्रौढ़ कवित्व के दर्शन होते है। साकेत, यशोधरा तथा द्वापर में हमें गुप्त जी के काव्य का चरम सौन्दर्य दृष्टिगोचर है। इन काव्यों में भाव पक्ष के साथ-साथ कला का सहज सौन्दर्य है। बंगला से अनुवाद किए हुए ग्रन्थों मे मेघनाथ वध, विरहिणी व्रजांगना, वीरांगना और प्लासी का युद्ध बहुत सुन्दर अनुवाद हैं। एक दृष्टि से गुप्त जी का यह अनुवाद कार्य उनकी मौलिक रचनाओं की अपेक्षा हिन्दी को कहीं बड़ी देन है।

गुप्त जी गाँधीवाद से प्रभावित थे। उन्होंने अपने काव्य में यथास्थान सत्याग्रह, सत्य और अहिंसा आदि का वर्णन किया है। साकेत में राम के वन जाते समय अयोध्या की जनता से वे सत्याग्रह कराते हैं—

राजा हमने राम, तुम्हीं को है चुना,
करो न तुम यों हाय ! लोकमत अनसुना।

होने वाला है। रात को देर तक जागने के कारण लक्ष्मण सुबह देर तक सोते रहे उर्मिला पहिले उठ बैठी। उर्मिला लक्ष्मण पर व्यंग्य करती है—

> उर्मिला बोली "अजी तुम जग गए"
> स्वप्न निधि से नयन कब से लग गए।

लक्ष्मण ने तुरन्त शिष्ट उपहास करते हुए मार्मिक उत्तर दिया—

> मोहिनी ने मन्त्र पढ़ जब से छुआ,
> जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।

साकेत में उर्मिला के भाव-सौन्दर्य की हमें पाँच झाँकियाँ मिलती हैं— (१) राज्याभिषेक के दिन प्रभात में, (२) लक्ष्मण के वन जाते समय, (३) चित्रकूट में, (४) विरहावस्था में, (५) लक्ष्मण के अयोध्या लौट आने पर पुनर्मिलन के अवसर पर। राज्याभिषेक के दिन उर्मिला प्रात प्रासाद में खड़ी है—

> अरुण पट पहिने हुए आह्लाद में, कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में।
> प्रकट मूर्तिमती उषा ही तो नहीं, कान्ति की किरणें उजेला कर रहीं॥
> देखती है जब जिधर यह सुन्दरी दमकती है दामिनी-सी द्युति भरी॥

दूसरा प्रसंग अत्यन्त कारुणिक है। राम वन को जा रहे हैं, सीता को भी साथ चलने की स्वीकृति मिल चुकी है, लक्ष्मण भी साथ जा रहे हैं, परन्तु उर्मिला का क्या होगा?—

> आह, आह! कितना सकरुण मुख था।
> आर्द्रता-सरोज अरुण यह मुख था॥

तीसरा प्रसंग चित्रकूट में आता है। गुप्त जी ने सीता के बहाने से लक्ष्मण को कुटिया में पड़ी हुई उर्मिला से मिलने का अवसर दिया है। भीतर आते ही लक्ष्मण ठगे से रह जाते हैं। अभिषेक के पहले की कनक-लता उर्मिला अब केवल छायामात्र है—

> तो वीण पड़ी -कोणस्थ उर्मिला रेखा,
> यह काया है या शेष उसी की छाया।
> क्षण भर उनकी कुछ नहीं समझ में आया।

लक्ष्मण को अपने पास आने में झिझकता हुआ देखकर उर्मिला तुरन्त कह उठती है—

> मेरे उपवन के हिरण, आज वनचारी,
> मैं बाँध न सकी तुम्हें, तजो भय भारी।

चौथे प्रसंग में अब आप उर्मिला का विरह देखिये। सखी भोजन का थाल परोस कर लाती है, परन्तु उर्मिला यह कह कर हटा देती है—

> अरी व्यर्थ है व्यंजनों की बड़ाई,
> हटा थाल, तू क्यों इसे आप लाई।
>
> × × ×
>
> बनाती रसोई, सभी को खिलाती, इसी काम में आज मैं तृप्ति पाती।
> रहा किन्तु मेरे लिए एक रोना, खिलाऊँ किसे मैं अलोना-सलोना॥

शीतल-मन्द सुगन्धित वायु उर्मिला के निकट आती है पर वह उसका आनन्द कैसे ले सकती है। वह उससे पीछे लौट जाने की प्रार्थना करती है—

मिलं व्यर्थ में ही व्यतीत हो गए। उनका हृदय नीरव चीत्कार कर उठा, क्रन्दन करती हुई वह कहने लगी—

स्वामी, स्वामी, जन्म-जन्म के स्वामी मेरे।
किन्तु कहाँ वे अहोरात्र, वे सांझ सवेरे॥
खोई अपनी हाय! कहाँ वह खिलखिल खेला।
प्रिय! जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती बेला॥

लक्ष्मण केवल सामयिक सान्त्वना भर दे पाए हैं—

वह वर्षा की बाढ़ गई, उसको जाने दो।
शुचि गम्भीरता प्रिये, शरद की यह आने दो॥

ये चार चित्र लक्ष्मण और उर्मिला के मिलन के क्षणों के बड़े मार्मिक और हृदय स्पर्शी हैं।

साकेत में गुप्त जी निःसन्देह महान् हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में गुप्त जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जितना प्रबन्ध काव्य उन्होंने लिखा है, उतना हिन्दी के किसी अन्य कवि ने नहीं। प्रबन्ध काव्य में साधना की आवश्यकता होती है। गुप्त जी निःसन्देह हिन्दी के एक साधक थे।

२०. हिन्दी में महिला साहित्यकार और उनकी काव्य प्रतिभा

जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्री ने पुरुष का साथ दिया है। वह उसकी सहधर्मिणी है, धर्माङ्गिनी है। वह उससे पीछे कैसे रह सकती है। वीर क्षत्राणियों ने तो युद्ध-भूमि में भी पुरुषों का साथ नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि उन्होंने स्वयम् युद्ध संचालन किये। साहित्य के क्षेत्र में, जहाँ महाकवियों ने साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की वहाँ महिलाओं ने भी अपनी अमूल्य कृतियों से साहित्य के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ जोड़ दिया, परन्तु यह भारत माँ का दुर्भाग्य था, कि यहाँ पुरुषों की भाँति स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा का अभाव रहा अन्यथा जहाँ जितने पुरुष साहित्यकार हुए उनसे अधिक महिला-साहित्यकार होतीं।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल वीरगाथा काल कहा जाता है। यह एक प्रकार से राजनैतिक आँधी और तूफान का युग था। राजपूत राजे-महाराजे अपने-अपने अस्तित्व की रक्षा में लगे हुए थे। मुसलमानों के भयानक आक्रमण भारतवर्ष पर हो रहे थे और वे शनैःशनैः अपना अधिकार जमाते आ रहे थे। वह समय महिलाओं की कोमल भावनाओं के अनुकूल भी नहीं था अतः हिन्दी साहित्य के आदिकाल में तो कोई महिला साहित्यकार प्रकाश में नहीं आई। परन्तु उसके पश्चात् अन्य सभी कालों में महिलाओं ने साहित्य की वृद्धि में यथा-शक्ति योगदान दिया है।

हिन्दी में महिला साहित्यकार और उनकी काव्य प्रतिभा

१. प्रस्तावना।
२. भक्तिकाल।
३. आदिकाल।
४. रीतिकाल।
५. आधुनिक काल।
६. उपसंहार।

भक्तिकाल की मधुर एवम् कोमल साहित्य प्रवृत्तियाँ महिलाओं की रुचि के अनुकूल थीं। इस काल में कई उच्चकोटि की महिला कवियित्रियों के दर्शन होते हैं। इन्होंने निराकार ब्रह्म और साकार ब्रह्म श्रीकृष्ण को पति के रूप में स्वीकार करके अपने

अन्तर्तम की भावनाओं को कोमलकान्त पदावली द्वारा व्यक्त किया। भक्तिकालीन महिला काव्यकारों में सहजोबाई, दयाबाई और मीराबाई का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सहजोबाई चरणदास की शिष्या थी। उन्होंने निराकार प्रियतम के प्रति अनूठी उक्तियाँ कही हैं। प्रियतम की भक्ति-माधुरी में प्रेमोन्मत्त होकर सहजो कहने लगती—

बाबा नगर बसाओ।
ज्ञान दृष्टि सूं घट में देखो, सुरति निरति लौ लाओ॥
पाँच मारि मन बसकर अपने, तीनों ताप नसावो॥

दयाबाई भी चरणदास की शिष्या थी। उनका विषय वर्णन भी सहजोबाई की भाँति अपने निराकार प्रियतम का आह्वान और विरह निवेदन ही है। मृतप्राय हिन्दू जाति पर इन कवयित्रियों ने अपनी रसमयी काव्य धारा द्वारा यह पीयूष वर्षा की कि वह आज तक सानन्द जीवित है।

इसके पश्चात् मीरा का नाम आता है। मीरा भक्ति साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री थी। मीरा की कोमल वाणी ने भारतीय साहित्य में प्रेम और आशा से भरी हुई वह पावन सरिता प्रवाहित की जिसकी वेगवती धारा आज भी भारतीय अन्तरात्माओं में ज्यों की त्यों अबाध गति से बह रही है। मीरा ने अपने अनुभूत प्रेम और विरह वेदना को साहित्य में स्थान दिया। कितना लालित्य और माधुर्य है इनके पदों में, सभी जानते हैं। आज भारत के घर घर में इनके पदों का आदर है। स्त्री पुरुष सभी इन पदों को समान भाव से गाकर आज भी आनन्द विभोर हो उठते हैं। श्रीकृष्ण के साथ मीरा का प्रेम दाम्पत्य भाव का प्रेम था, श्रीकृष्ण उनके प्रियतम थे, जन्म जन्म के साथी थे और वह उनकी विरहिणी प्रेयसी थी। यह स्पष्ट घोषणा करते हुए मीरा को न कोई संकोच था और न कोई लोक लाज—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई,
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
सन्तन ढिग बैठि-बैठि, लोक लाज खोई,
अब तो बेलि फैलि गई, अमृतफल होई।

मीरा की-सी वेदना, टीस और कसक सम्भवतः हिन्दी की किसी अन्य कवयित्री में नहीं मिल सकती। मीरा के पद हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। एक दूसरा पद देखिए—

हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय,
दरद की मारी बन बन डोलूं बैद मिला नहि कोय।
सूली ऊपर सेज पिया की किस विधि मिलना होय,
मीरा की प्रभु पीर मिटे जब, बैद संवरिया होय।

मीरा के अनन्तर हिन्दी साहित्य में छत्र कुंवरि, विष्णु कुंवरि, राय प्रवीण तथा ब्रजदासी अनेक महिला कवयित्रियों के दर्शन होते हैं। इन सभी महिलाओं ने अपनी पुनीत मधुर भावनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्धिशाली बनाने में पूर्ण योगदान दिया। विष्णु कुंवरि का सुन्दर पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। इस पद में वे अपने प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण के विरह की व्याकुलता में विकल हैं—

निरमोही कैसो जिया तरसावे।
पहिले झलक दिखाय कै हमकूं, अब क्यों देगि न आवें॥
कब सों तड़फत तेरी सजनी, वाको दरद न जावें।
विष्णु कुंवरि उर में आ करके, ऐसी पीर मिटावें॥

अकबर के शासनकाल में 'राय प्रवीण' एक वेश्या थी। नृत्य और गीत के साथ वह सुन्दर कविता भी करती थी। वह महाकवि केशव की शिष्या थी। केशवदास जी ने 'कविप्रिया' में इसका वर्णन भी किया है: अकबर इसके रूप-लावण्य पर मुग्ध था। उसने एक दिन इनसे भरी सभा में गाने को कहा। पहले तो उसने मना किया, परन्तु बाद में विवश होकर इन्हें गाना पड़ा। इसके तत्काल निम्नलिखित दोहा बनाकर सुनाया, जिससे अकबर बहुत लज्जित हुआ—

विनती राय प्रवीण की सुनिए शाह सुजान।
जूठी पातर भखत है, बारी बायस स्वान॥

इनके बाद 'ताज' का नाम आता है। यद्यपि ये मुसलमान थीं फिर भी इन्हें श्रीकृष्ण से प्रेम हो गया था। इनकी कविता भक्ति रस से ओत-प्रोत है। ताज श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में अपना तन, मन, धन समर्पित करने को उत्सुक हैं—

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त हौं बिकानी, बदनामी भी सहूंगी मैं।
देव पूजा ठानी हौं नमाज हूं भुलानी,
तज कलमा कुरान, सारे गुनन कहूंगी मैं।
सांवला सलोना सरताज सिर कुल्लेदार,
तेरे नेह दाग में निदाग ह्वै दहूंगी मैं।
नन्द के कुमार, कुरबान तेरी सूरत पै,
हौं तो मुसलमानी, हिन्दुआनी ह्वै रहूंगी मैं।

ताज के पश्चात् शेख का नाम आता है। ये रंगरेजिन महिला थी, इन्होंने एक ब्राह्मण कवि से विवाह कर लिया था और उसका नाम आलम रक्खा था। दोनों पति-पत्नी आनन्द से कविता किया करते थे। शेख की कविता श्रृंगार रस में अद्वितीय हैं। निम्नलिखित उदाहरण पति-पत्नी के प्रश्नोत्तर रूप में। प्रथम पंक्ति में पति प्रश्न करते हैं, दूसरी पंक्ति से शेख उसका उत्तर देती हैं—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।
कटि को कंचन काटि कै, कुचन मध्य धरि दीन॥

हिन्दी के प्रसिद्ध 'कुण्डलियां' लेखक गिरधर कविराय की पत्नी का नाम 'सांई' था। अपने पति की भांति वे भी नीतिपूर्ण छन्दों में रचना किया करती थी। उदाहरण देखिए—

सांई अवसर के परे, को न सहै दुख द्वन्द्व।
जाय बिकाने डोम घर, वे राजा हरिचन्द॥

आधुनिक काल में नव-जागृति और नव-चेतना का उदय हुआ। महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ हुई, उनके हृदय में नवीन भावनाओं ने जन्म लिया। साहित्य की सभी विधाओं पर महिलाओं ने लेखनी चलाई है। आधुनिक युग की महिला कवियित्रियों में प्रथम नाम श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का आता है। इन्होंने देश-भक्ति पूर्ण रचनाएं कीं। 'झांसी की रानी' तथा 'वीरों का कैसा हो बसन्त' इनकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए—

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी॥

गुमी हुई आज़ादी की, कीमत सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की, सबने मन में ठानी थी॥
बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी॥
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

इसके अनन्तर छायावादी युग की प्रमुख कवियित्री महादेवी वर्मा का नाम आता है। महादेवी जी के गीत अपनी सहज सहनशीलता, भावविदग्धता के कारण सजीव हैं। विरह की आग में अनजान कविता उनके हृदय से वह निकलती है। देखिए उनकी करुणातुर प्रार्थना कितनी न्यारी सुलभ है—

जो तुम आ जाते एक बार!
कितनी करुणा कितने संदेश, पथ में बिछ जाते बन पराग।
गाता प्राणों का तार तार, अनुराग भरा उन्माद राग।
आँसू लेते वे पद पखार, जो तुम आ जाते एक बार॥

महादेवी जी के गीत लोकप्रिय एवम् हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनकी अपनी शैली है, अपनी प्रवृत्ति है। इस करुणा के अनन्त, असीम सागर में वे केवल नीर भरी दुख की क्षणिक बदली ही हैं—

मैं नीर भरी दुख की बदली!
विस्तृत नभ का कोना कोना, मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना, इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली॥

वे जीवन के कुछ क्षणों में विकल होकर गा उठती हैं—

अलि! कैसे उनको पाऊँ।
वे आँसू बनकर भी मेरे इस कारण ढल ढल जाते,
इन पलकों के बन्धन में मैं बाँध बाँध पछताऊँ।

आधुनिक युग में महिला साहित्यकारों ने साहित्य की सभी विधाओं पर लिखना प्रारम्भ किया। कोई भी विधा—क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या आलोचना, ऐसी नहीं है, जिस पर महिला ने लेखनी न चलाई हो। इन महिला साहित्यकारों में श्रीमती विद्यावती कोकिला, तारा पाण्डेय, सुमित्राकुमारी सिन्हा, राजेश्वरी देवी, रजनी पनिक्कर, कञ्चनलता सब्बरवाल तथा शची रानी गुर्टू आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कविता के क्षेत्र में श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा अधिक ख्याति प्राप्त करती जा रही हैं। उनकी रचना का एक उदाहरण दीजिए—

क्या तुम अकेले मन!
देखो तन, रहो साथ रहे, हैं भिन्न, किन्तु बस हाय नहें।
वे तो जड़ हैं, पर तुम चेतन, क्या तुम्हीं अकेले हो, ओ मन॥

आधुनिक युग में महिला साहित्यकारों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। आशा है कि निकट भविष्य में हिन्दी साहित्य को इनकी महान साहित्य कृतियाँ और भी अधिक समृद्धिशाली बनायेंगी।

२१. "साहित्य में आदर्श और यथार्थवाद"

अथवा

"आदर्शोन्मुख यथार्थ चित्रण करने वाला ही उत्तम काव्य है"

समाज की नवचेतना और नवजागरण के साथ साहित्यकार विचारधाराओं में भी परिवर्तन हुए, दिशायें बदली और विद्वानों ने अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रबल समर्थन किया और वादों की परम्परा चल पड़ी। किसी ने छायावाद को जन्म दिया, तो किसी ने रहस्यवाद को। किसी ने प्रगतिवाद का समर्थन किया, तो किसी ने प्रतीकवाद का। किसी ने प्रत्यक्षवाद की प्रशंसा की, तो किसी ने परोक्षवाद की। इसी प्रकार यथार्थवाद और आदर्शवाद भी साहित्यिक अखाड़े में कूद आये। कुछ दर्शक यथार्थवाद को प्रोत्साहित करने के लिए तालियाँ बजाने लगे और कुछ आदर्शवाद को। कुछ महानुभावों ने तटस्थता की नीति को अपनाया और दोनों के समन्वय में वाह-वाह करने लगे। आज का युग परीक्षण-काल है। साहित्य रूपी वृक्ष में से नित्य नवीन शाखायें फूट रही है, कुछ पल्लवित और कुसुमित हो जाती हैं, कुछ स्वयं सूखकर निष्प्राण हो जाती हैं और किन्हीं को लोग तोड़कर ले जाते है। यथार्थ और आदर्श की भी साहित्य के बाजार में बहुत कुछ धूम रही है।

साहित्य में आदर्श और यथार्थवाद

१. प्रस्तावना।
२. आदर्शवाद और यथार्थवाद की परिभाषा।
३. साहित्य का उद्देश्य।
४. आदर्शवाद द्वारा उसकी प्राप्ति।
५. प्राचीन भारतीय साहित्य पूर्णतः आदर्शवादी।
६. भारतीय साहित्य पर विदेशी प्रभाव।
७. साहित्यकारों का यथार्थवाद के प्रति आकर्षण।
८. उपसंहार।

कुछ विद्वान् इस पक्ष में है कि साहित्य आदर्शवादी होना चाहिए। उनका विचार है कि मानव-जीवन और संसार में जो श्रेष्ठ है और श्रेयस्कर है, उसी को साहित्य में स्थान मिलना चाहिए। इसी से जन-कल्याण सम्भव है। समाज की कुरीतियों के दिग्दर्शन से, उसके दुश्चरित्रों के नग्न-चित्र से, उसके गर्हित, घृणित एवम् निन्दनीय स्वरूपों को सिखाने का एक माध्यम बन जायेगा। उदाहरणस्वरूप—चलचित्रों के सभी चित्र किसी विशेष शिक्षा के आधार पर बनाए जाते हैं, परन्तु द्रष्टा उन शिक्षाओं पर ध्यान न देकर चोरी करना, जेब काटना, अश्लील प्रेम में फँसना सरलता से सीख जाते है। अतः यह आवश्यक है कि साहित्य में आदर्श की ही उपस्थिति की जाये। उधर यथार्थवादियों का विचार है कि मानव-जीवन और संसार का वास्तविक स्वरूप भी साहित्य में होना चाहिए। साहित्यकारों का कर्त्तव्य है कि जैसा देखें वैसा लिखें। मनुष्य को वास्तविक जगत् से दूर कल्पना के संसार में ले जाकर खड़े कर देने से मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। वह जिस भूमि पर रहता है, उसी के वातावरण से उसका हित और अहित सम्भव है। उसे यदि स्वर्ग का काल्पनिक चित्र दिखाया जाये, तो उससे उसकी आत्म-सन्तुष्टि नहीं हो सकती। हम जिस संसार में रहते हैं उसमें सुख भी है और दुख भी है, अच्छाई भी है, बुराई भी है। यहाँ सुगन्धित पुष्पों के साथ काँटे भी हैं और मधु के साथ

फिर भी, यथार्थवादियों का दृढ़ विश्वास है कि वास्तविकता की ओर से आँख बन्द कर लेने से कल्याण नहीं हो सकता। हमारे जीवन में सत्य का जितना महत्व है, उतना कल्पना या स्वप्नों का नहीं। आदर्शवादी अपनी कल्पना द्वारा संसार की कुरूपता को अपनी बुद्धिमत्ता से ढककर एक सुन्दर और पवित्र जगत की रचना करता है, जबकि यथार्थवादी 'साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है' के आधार पर साहित्य में समाज का नग्न, कुत्सित और वीभत्स चित्र उपस्थित करता है।

साहित्य जीवन की व्याख्या है, आलोचना है उसमें जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार किया जाता है, जीवन निर्वाह के सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं। साहित्य समाज का मार्ग प्रदर्शन करता है, उसे असत् से हटाकर सत् की ओर लगाता है। इसी लिये हमारे प्राचीन साहित्य में अन्त में पाप और दुराचार की पराजय और उस पर सत्य, न्याय, धर्म आदि सद्गुणों की विजय दिखाई गई है। "काव्य प्रकाश" में काव्य के लक्षण गिनाते समय काव्य प्रकाशकार ने "शिवेतरक्षतये" को ही प्रतिपादित किया है। अशिव की क्षति साहित्य का पवित्र कर्त्तव्य है। अशिव क्षति करना साहित्यकार का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। अशिव का अर्थ अमंगल या अकल्याण है। कहने का तात्पर्य है कि साहित्य जन-कल्याण करने वाला कहा जा सकता है। दूसरे लोगों का विचार है कि साहित्य समाज का दर्पण है। उनके अनुसार साहित्य समाज का वास्तविक और यथार्थ रूप ही हमारे सामने प्रस्तुत करेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि इस प्रकार साहित्य से लाभ क्या? जो वैद्य केवल मरीज के मर्ज को सामने रख दे क्या उस वैद्य से रोगी का कल्याण हो सकता है? कल्याण तो ऐसे वैद्य से हो सकता है जो उस मर्ज की अच्छी से अच्छी औषधि रोगी को दे और रोगी को यह अनुभव न होने दे कि वह इतने भयानक रोग से आक्रान्त है। ठीक यही बात साहित्य के विषय में है। जीवन और समाज से केवल पापमय चित्र को प्रस्तुत करने वाला साहित्य, साहित्य नहीं हो सकता। साहित्य से तो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की रक्षा होनी चाहिए। यह निश्चय है कि संसार में उत्तम और अधम सभी प्रकार के प्राणी रहते हैं, पाप और पुण्य भी रहता है। साहित्य में सभी का थोड़ा-थोड़ा प्रतिनिधित्व सम्भव है परन्तु लोक कल्याण के लिए नितान्त आवश्यक है कि पाप पर पुण्य की विजय दिखाई जाए। इससे समाज में धर्मबुद्धि उद्बुद्ध होगी और अधार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य समाज की अधिक क्षति न कर सकेंगे। साहित्य में पूर्ण सत्य की रक्षा होनी चाहिए।

साहित्य के उद्देश्य की पूर्ति इसी प्रकार के आदर्शवाद से होती है, क्योंकि कोरे आदर्शवाद का भी कोई मूल्य नहीं होता। सौन्दर्य का अस्तित्व कुरूपता पर आधारित है। यदि संसार में कुरूपता नहीं होती तो सौन्दर्य का न तो इतना महत्व होता और न आकर्षण। इसी प्रकार पुण्य का अस्तित्व पाप पर है, धर्म का अधर्म पर। साहित्य में लोकोपयोगी आदर्श, उच्च कोटि के सिद्धान्त, आत्मोन्नति के साधन तथा लोक-कल्याणकारी पीयूष धारा हो, परन्तु उसे अधार्मिक प्रवृत्तियों के द्वन्द्व द्वारा स्पष्ट किया जाये। लोकोपयोगी साहित्य स्रष्टा इन दो रूपों का अपने साहित्य में विश्लेषण करता है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह काव्य में सत्य पक्ष की ही विजय देखना चाहता है चाहे स्वयं कितना ही दुष्ट हो। असत् पक्ष के साथ उसकी सहानुभूति नहीं होती। प्राचीन भारतीय कवियों ने सच्चरित्र नायक और नायिकाओं को लेकर अनेक काव्यों और नाटकों की रचनायें कीं। इन नायक और नायिकाओं के सामने अनेक विघ्न-बाधाएँ आईं किन्तु उन्हें न गिनते हुए वे अपने पथ की ओर अग्रसर होते चले गए, अन्त में उनकी निश्चित रूप से विजय हुई। पाठक के हृदय पर इसका प्रभाव यह पड़ता है कि सत्य की असत्य पर विजय होती है।

कर सकता है। वे भी कोरे यथार्थवादी नहीं थे, वे थे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। अत दोनों के सम्मिश्रण में ही समाज का कल्याण है।

२२ जीवन में हास्यरस की उपयोगिता

रस का जीवन में क्या महत्त्व है? यह आप उनसे पूछिये जिसका जीवन नीरस हो चुका हो और जो अपने जीवन के निराशापूर्ण क्षणों को मृत्यु के चरणों में चढ़ाने को चंचल हो उठा हो। जीवन की सार्थकता सरस जीवन में है, नीरस जीवन में नहीं। नीरस मानव तो बहुत बड़ी चीज है नीरस वृक्ष का भी उद्यान में कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, इसके अतिरिक्त वह यह भारी के हाथों का शिकार बन जाए। रस की सत्ता संसार में सर्वोपरि है। विद्वानों ने इसे "रसो वै स" कहकर ब्रह्म की उपाधि से विभूषित किया है। यही रस हिन्दी साहित्य में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त और वात्सल्य नाम से दस प्रकार का माना जाता है। समय और परिस्थिति के अनुकूल सभी रस अपना-अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। संसार में घटित होने वाली घटनाएँ मानव हृदय पर अंकित होती रहती हैं, जिनको देखकर मानव की प्रकृति और उसकी भावनाओं में परिवर्तन होता रहता है। रामचरितमानस पढ़ते समय जब हम चित्रकूट पर राम और भरत का मिलन प्रसंग पढ़ते हैं,

जीवन में हास्यरस की उपयोगिता	
१	प्रस्तावना।
२	हास्यरस और उसकी आवश्यकता।
३	कुछ उदाहरण।
४	हास्य से लाभ।
५	उपसंहार।

तो हमारा हृदय भ्रातृ प्रेम से आप्लावित हो जाता है। राम और रावण के युद्ध प्रसंग को पढ़कर हमारे हृदय में वीरता की भावना जागृत हो जाती है। किसी दीन हीन, विधवा के एकमात्र पुत्र की अकाल मृत्यु सुनकर हमारा भी हृदय नारव चीत्कार करते हुए करुणा से भर जाता है। अभिमन्यु वध के समय उत्तरा का विलाप पढ़कर कौन सरस हृदय पुरुष ऐसा होगा जिसका हृदय शोक सन्तप्त न हो जाता हो। इस प्रकार विश्व के रंगमंच पर होने वाली विभिन्न घटनाओं को देखकर अद्भुत, शान्त आदि अनेक रसों से हृदय व्याप्त हो जाता है।

इन रसों में हास्य भी एक रस है, जिसका जीवन में विशेष महत्त्व है। जीवन की एक-रसता से ऊबकर मानव हृदय हँसना चाहता है। वह अपना मनोविनोद चाहता है। जब हम कार्य करते करते थक जाते हैं और काम करने को मन बिल्कुल नहीं चाहता तब हम मित्र मण्डली को तलाश करते हैं, जहाँ कुछ देर बैठकर हँस सकें, गपशप कर सकें, जिससे मानसिक थकान दूर हो और हम काम करने के लिए फिर से ताजा बन जाएँ। आप समझ गए होंगे कि हास्य ने मानव को ऐसा कौन सा विटामिन दिया जिससे कि उसने अपनी क्षीण शक्ति को फिर से प्राप्त कर लिया। दूसरे यदि आप सदैव मनहमसूरती सा मुहर्रमी सूरत बनाए बैठे रहें तो लोग आप से बातें करना भी पसन्द नहीं करेंगेऔर इसका प्रभाव भी आपके स्वास्थ्य पर अहित कर पड़ेगा। एक विद्वान् विचारक ने कहा है कि जिस प्रकार हमारे दैनिक जीवन में अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता है, उसी प्रकार हास्य की भी। मनुष्य को इसके लिए

एक निश्चित समय रखना चाहिए। हँसने से धमनियों में रक्त-संचार होता है, रक्त की गति में तीव्रता आती है। हास्य के लिए निःसन्देह मित्र-मण्डली की आवश्यकता होती है। एकाकी व्यक्ति अकेला न हँस सकता है और न मनोविनोद ही कर सकता है। ऐसी अवस्था में हास्य रस की रचनाएँ आपका मनोविनोद कर सकती हैं, आपका मन बहला सकती हैं। वास्तव में देखा जाए तो काव्य प्रेमी के लिए विभिन्न रसों की पुस्तकें ही मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत कर सकती हैं।

आधुनिक युग में हास्य रस में भी कविताएँ, एकांकी नाटक, कहानियाँ और चुटकले प्रस्तुत किये जा रहे हैं। पं० गोपालप्रसाद व्यास ने हास्यरस की कविता के क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की है। वैसे बेढब बनारसी, देवराज दिनेश, काका हाथरसी आदि कवि भी हास्यरस के खजाने को भरने में प्रयत्नशील हैं। व्यास जी का 'पत्निवाद' जनता में बड़ा प्रसिद्ध हो गया था, जिनकी प्रथम पंक्तियाँ हैं—

यदि ईश्वर पर विश्वास न हो, उससे कुछ फल की आस न हो
तो अरे नास्तिको! घर बैठो
साकार ब्रह्म को पहचानो, पत्नी को परमेश्वर मानो।

कुछ पंक्तियाँ सुनिये—

मेरे प्यारे सुकुमार गधे!
जग पड़ा दुपहरी में सुनकर मैं तेरी मधुर पुकार गधे!
मेरे प्यारे सुकुमार गधे!

× × ×

व्यास जी की ब्रजभाषा में हास्यरस की कविता का एक उदाहरण देखिए—

रहिबे कूँ घर को मकान होय लट्ठादार,
हाथ सिल बट्टा पै उछट्टा वै हिलत जाँय।
द्वार दंघी गैया होय, घर में लुगैया होय,
टेंट में रुपैया होय, हौसला खिलत जाँय।
व्यास कवि कहे चार मैयन में मान होय,
पेट हू में जान होय, दण्ड हू पिलत जाँय।
रोजनामचा में रोज-रोज मौज आती रहे,
ऐसी बने योजना कि भोजन मिलत जाँय।

× × ×

हास्य की पं० ईश्वरी प्रसाद की चौपाई-बद्ध रचनाएँ देखिए—

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। टका हीन कलपत मन मोरा।
दामिनि दमक रही घन माहीं। जिमि लीडर की मति स्थिर नाहीं॥
बरसहिं जलद भूमि नियराये। लीडर जिमि चन्दा सन पाए॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। लीडर वचन प्रजा सह जैसे॥
क्षुद्र नदी भरि उतराई। जिमि कपटी नेता मन भाई॥

× × ×

सूर का हास्य—

कोउ कुम पकरि कहो कित जैहो, माखन लेउँ मंगाय!
तेरी सौं मैं नेकु न चाख्यो, सखा . गए सब खाय॥

मानव के निराशापूर्ण अन्धकार जीवन में हास्य, प्रकाश का दीपदान लेकर

आता है। उसकी सुन्दर प्रकाशपूर्ण रश्मियों से हम जीवन के पथ में अग्रसर होते हैं। मनुष्य को पग-पग पर असह्य यातनाएं सहनी पड़ती हैं। जब वह चिन्ताओं के अथाह समुद्र में डूब जाता है और उसे चारों ओर नीरसता और निराशा ही दृष्टिगोचर होने लगता है, तब उसके मित्र, हितैषी और प्रियजन अनेक उपायों से उसे हँसाने का प्रयत्न करते हैं। हँसी आ जाने पर वह क्षण भर के लिए उन सभी चिन्ता, व्यथाओं से मुक्त हो जाता है। हास्य, मानव जीवन के लिए वरदान है। यदि मनुष्य के जीवन में हास्य का अभाव हो तो उसका जीवन दूभर हो जाये।

हँसने से मनुष्य के स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। दिन में चार या छः बार खूब खिलखिला कर हँस लेने वाला व्यक्ति कम बीमार पड़ता है। हँसने से फेफड़ों का व्यायाम होता है और मन प्रसन्न होता है। डाक्टरों का कथन है कि "मनुष्य के रक्त में दो प्रकार के कीटाणु होते हैं—एक सफेद और दूसरे लाल। श्वेत कीटाणु मनुष्य की रक्षा करते हैं और उसे निरोग तथा स्वस्थ रखते हैं और दूसरे लाल कीटाणु रोग को उत्पन्न करते हैं। मनुष्य के हँसने से उसके रक्त में श्वेत कीटाणुओं की संख्या में वृद्धि होती रहती है और ये लाल कीटाणुओं को मार डालते हैं। परन्तु जब मनुष्य अधिक चिन्तित और उदास रहता है तथा श्वेत कीटाणु मरने लगते हैं और उनकी शक्ति क्षीण होने लगती है, उस समय लाल कीटाणु श्वेत कीटाणुओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य बीमार पड़ जाता है।" अतः हास्य मानव-जीवन को सुखमय और स्वस्थ रखने के लिए परम आवश्यक है। जिन मनुष्यों के जीवन में हँसी का अभाव होता है वे सदैव रुग्ण बने रहते हैं।

हास्य सामाजिक सुधार करने में भी पर्याप्त सहयोग प्रदान करता है। जब कविता द्वारा समाज में प्रचलित कुप्रथाओं की हँसी उड़ायी जाती है तो ये कुप्रथाएँ समाज से धीरे-धीरे समाप्त होने लगती हैं। मनुष्य के स्वभाव में भी हास्य यथोचित परिवर्तन उपस्थित कर देता है। कल्पना कीजिये कि यदि कोई व्यक्ति विशेष या वर्ग विशेष अधिक कृपण है। समझाने-बुझाने पर भी कृपणता का परित्याग नहीं करता यदि कविता के माध्यम से उसकी हँसी उड़ाई जाती है तो उसके स्वभाव में थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य हो जाता है। कुछ दिनों पहले वैश्य वर्ग की कृपणता और उनकी उदर वृद्धि समाज में बड़ी प्रसिद्ध थी। परन्तु हास्य लेखकों और कवियों ने भी अपनी रचना का माध्यम बना कर मजाक बनाना शुरू किया। उदाहरण के लिए—

एक मित्र बोले, लाला तुम किस चक्की का खाते हो ?
इस छह छटाँक के राशन में भी तोंद बढ़ाये जाते हो ॥

आज देखा जाता है कि वैश्य-वर्ग में भी पर्याप्त उदारता और शारीरिक चुस्ती आ गयी है। स्वर्गीय बद्रीनाथ भट्ट ने अपने 'विवाह विज्ञापन' में विवाह के दिवानों का खूब मजाक उड़ाया था। इसी प्रकार के अन्य सामाजिक प्रहसनों द्वारा समाज का पर्याप्त पथ-प्रदर्शन हुआ। मानव-जीवन में निःसन्देह हास्य का बड़ा महत्त्व है। यह सुधार के अन्य साधनों की अपेक्षा मानव जीवन को अधिक प्रभावित करता है, परन्तु हास्य, शुद्ध हास्य ही होना चाहिए, व्यंग्यात्मक नहीं क्योंकि व्यंग्यात्मक हास्य मानव हृदय पर बड़ा गहन आघात करता है, जिसके प्रतिफल आए दिन समाज में दिखायी पड़ते हैं। बड़े-बड़े घनिष्ठ मित्रों में वैमनस्य हो जाता है, मार-पीट पर नौबत आ जाती है। अतः शुद्ध हास्य ही श्रेयस्कर है।

२३. कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है

कवि और उनके काव्य किसी दूसरे संसार से नहीं आते, कवि इसी धरातल पर अवतीर्ण होते हैं और उनके काव्य इसी समाज में बैठकर लिखे जाते हैं। वे भी धरती के मनुष्य हैं, और समाज और देश की अवस्था का उनके हृदय पर भी प्रभाव पड़ता है। अन्तर इतना ही है कि साधारण मनुष्य उन्हें मूक होकर अनुभव करता, और कवि अपनी काव्य-प्रतिभा से उन्हें समाज के आगे अभिव्यक्त कर देता है। समाज की प्रमुख प्रवृत्तियाँ सहसा ही उसके काव्य में अपना स्थान बना लेती हैं। वह अपने समय का प्रतिनिधित्व करता है। संसार के सभी साहित्यों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवियों ने अपने देश और समय की विभिन्न विचार-धाराओं को ही अपने काव्य में स्थान दिया है तथा श्रोता और समाज उनका आदर करता है। लोकरुचि और लोक-प्रवृत्ति से भिन्न राग अलापने वाला कवि समाज में आदृत नहीं होता। उसे समाज के स्वर में स्वर मिलाकर चलना पड़ता है, समाज भी उसे अपनी ओर आकर्षित किए बिना नहीं रहता, क्योंकि दोनों अन्योन्याश्रित हैं, परस्पर सापेक्ष्य हैं।

कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है।

१. प्रस्तावना।
२. कविता की परिभाषा।
३. हिन्दी साहित्य के विभिन्न काल और उनका प्रभाव—
(क) आदिकाल।
(ख) भक्तिकाल।
(ग) रीतिकाल।
(घ) आधुनिक काल।
४. उपसंहार।

कवि के मनोगत भाव जब सहसा स्वर लहरी के माध्यम से फूट पड़ते हैं, तब समाज उसे कविता की संज्ञा देता है। कवि के हृदय के उद्‌गार ही कविता है। वह अपने हृदय के भावों और विचारों को कविता से कैसे दूर रख सकता है। प्रत्येक युग की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक अवस्थायें तत्कालीन साहित्य में प्रतिबिम्बित हुआ करती हैं। युग के परिवर्तन के साथ साहित्य की गति में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। इसीलिए विद्वान् साहित्य को समाज का दर्पण, प्रतिबिम्ब, प्रतिरूप और प्रतिच्छाया स्वीकार करते हैं। कवि अपने युग की सामाजिक चेतनाओं का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करता है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास चार भागों में विभाजित किया जाता है—आदिकाल या वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल। प्रत्येक काल की अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताएँ थीं। उदाहरणों से स्पष्ट होगा कि उन कालों के विभिन्न कवियों ने अपनी युगीन विचारधाराओं का सफल प्रतिनिधित्व किया। हिन्दी साहित्य का आदि-काल एक प्रकार से लड़ाई-झगड़े का युग था। उसमें अशान्ति थी और एक प्रकार की राजनैतिक आँधी चल रही थी। मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हो गए थे। हिन्दू राजा लोग अपने अपने राज्य की रक्षा में लगे हुए थे। मुसलमानों की लूटमार जारी थी। गजनवी और गोरी के आक्रमणों ने राजपूतों को शिथिल-सा कर दिया था। राजपूत राजा लोग अपने-अपने गौरव की रक्षा में लगे हुए थे, देश के गौरव का उन्हें कम ध्यान था। उनमें वीरता थी, परन्तु वीरता का कोष पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विताओं में खाली किया जा रहा था। इन प्रतिद्वन्द्विताओं के कारण राजपूत एक सुसंबद्ध सामूहिक शक्ति

का परिचय न दे सके, मुसलमानों के पैर धीरे धीरे जमते गए। वह युद्ध का युग था। वे युद्ध कभी विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने के लिए किये जाते थे, कभी पारस्परिक वीरता प्रदर्शन के लिए होते थे और कभी-कभी स्त्रियों का सौंदर्याधिक्य भी इन युद्धों का कारण होता था। अतः तत्कालीन साहित्य में वीरता की छाप पड़ी। वीर गाथाओं के साथ-साथ तत्कालीन रचनाओं में शृंगार का पुट भी पर्याप्त मात्रा में रहता था, क्योंकि प्रायः स्त्रियाँ ही पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता और झगड़े का कारण हुआ करती थीं। इन काव्यों में युद्धों का बड़ा सुन्दर और सजीव वर्णन है। चन्द ने यदि पृथ्वीराज का वर्णन किया तो भट्ट केदार ने जयचन्द का यशोगान किया।

आँधी हमेशा नहीं रहती, आँधी के बाद शान्ति और स्थिरता आ जाती है। भारतवर्ष के राजनैतिक वातावरण में भी अपेक्षाकृत शान्ति स्थापित हुई। राजपूतों में जब तक कुछ शक्ति थी, वीरता थी, साहस था, तब तक वीरगाथाओं से थोड़ा बहुत काम चला। किन्तु बल के क्षीण हो जाने पर उत्साह प्रदान से भी कोई काम नहीं चलता "निर्वाह दीपे किं तैल दानम्।" शान्ति के समय एक दूसरे ही प्रकार के काव्य की आवश्यकता थी। भारतवर्ष में मुसलमान अपना आधिपत्य स्थापित कर चुके थे। हिन्दुओं पर भिन्न-भिन्न प्रकार से अत्याचार हो रहे थे। उन्हें जीवन भार मालूम पड़ रहा था। चारों ओर अंधकार दृष्टिगोचर हो रहा था। घोर नैराश्य के कारण जनता ने परमात्मा का आश्रय लिया। कुछ हिन्दू यह भी चाहते थे कि उनका धर्म इस रूप में आए कि मुसलमान उसका खण्डन न कर सकें। इतना ही नहीं यदि सम्भव हो सके तो विरोध को छोड़कर उनके साथ मिलें। इसके अतिरिक्त एक प्रवृत्ति और भी थी। कुछ लोग अपना स्वत्व और व्यक्तित्व अलग चाहते थे। वे लोग मुसलमानों के विरोधी तो नहीं थे परन्तु ऐक्य की वेदी पर अपने इष्टदेवों के प्रति अनन्य भावना का बलिदान करना नहीं चाहते थे। इन्हीं भिन्न भिन्न सामाजिक प्रवृत्तियों ने भक्तिकालीन तीनों धाराओं को जन्म दिया। ज्ञानाश्रयी, प्रेममार्गी तथा कृष्ण राम भक्त कवि अपने अपने ढंग से जनता की चित्तवृत्तियों का अपने काव्य में चित्र अंकित करते गये। ज्ञानाश्रयी कवियों ने हिन्दू और मुसलमानों में पारस्परिक वैमनस्य को दूर करके उन्हें मिलाने का प्रयत्न किया। प्रेममार्गी कवियों ने भी हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक भेद भाव को समाप्त करके प्रेम-सिद्धान्तों का प्रचार किया। परन्तु इन दोनों धाराओं के प्रमुख साहित्यकार जनता में हृदय का पूर्ण स्पर्श न कर सके। आगे चलकर सूर और तुलसी ने कृष्ण और राम का गुणगान सुनाकर जनता को मन्त्रमुग्ध कर दिया। जनता भक्ति रस की धारा में अपने दुखों को भूल गई।

भक्तिकाल के पश्चात् हिन्दुओं को कुछ शांति मिली। मुगल बादशाह भी अपना साम्राज्य स्थापित कर चुके थे तथा हिन्दुओं को छोटी छोटी जागीरों का स्वामी बना दिया था। सम्राट विलासिता की सरिता में गोते लगा रहे थे। जहाँगीर और शाहजहाँ की विलासिता की सीमा न थी। छोटे छोटे हिन्दू राजा भी इसी रंग में रंग गये थे। प्रजा भी सांसारिक भोग विलासों में आनंद ले रही थी। परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन कवियों ने जनता का अपने काव्य में चित्र खींचना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दी काव्य में शृंगारपूर्ण, प्रेमी मादकारिणी रचनायें होने लगीं। नायिका भेद नख शिख वर्णन और ऋतु वर्णन में ही कवियों ने अपना काव्य चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किया। तत्कालीन काव्य में राजदरबारों की गुलगुले गिलमें और गलीचा के विलासमय जीवन की छाप थी। कविता में सुलाने की सामग्री अधिक थी, जगाने और जिलाने की कम।

आधुनिक युग का आरम्भ अंग्रेजी की साम्राज्य स्थापना के साथ आरम्भ होता

। अंग्रेजों के अन्याय और शोषण के विरुद्ध जनता में प्रारम्भ से ही चेतना विद्यमान थी। भारतीयों का जीवन दुःखी था। समाज की राजनैतिक और आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी, अतः समाज में एक कोने से दूसरे कोने तक राष्ट्रीयता की लहर उमड़ने लगी। युग प्रतिनिधि होने के नाते कवियों के काव्य में भी राष्ट्रीयता गूंजने लगी। कविता राजसी दरबारों की वस्तु न रहकर किसानों और मजदूरों की वस्तु बन गई। वर्तमान युग की कविता गांधी जी की विचारधारा से बहुत प्रभावित हुई। समाज की कुरीतियों, जैसे—अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा पर भी लेखनी चली। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की कवितायें राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण हैं।

तात्पर्य यह है कि हिन्दी के ही नहीं, सभी भाषाओं के कवि अपने युग का प्रतिनिधित्व करते हैं। क्योंकि वे कवि भी प्राणी हैं और इसी भूमि पर रहते हैं, जहाँ एक ओर प्रसन्नता है और दूसरी ओर हाहाकार, जहाँ एक ओर जन्म है तो दूसरी ओर मरण। स्वाभाविक विकार और समाज की परिस्थिति से वे कैसे दूर रह सकते हैं। कवि जो कुछ समाज से ग्रहण करता है, उसे अपनी रीति से समाज को ही समर्पित कर देता है—

> दुनिया से सुहबत की सूरत में आज तक।
> जो कुछ मुझे दिया है, वो लौटा रहा हूँ मैं।

अतः कवि निःसन्देह अपने युग का प्रतिनिधि होता है। कवि-धर्म और युग-धर्म दोनों अन्योन्याश्रित हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। युगीन भावनायें अनायास ही कवि के काव्य में प्रतिबिम्बित होने लगती हैं।

२४. 'हिन्दी-साहित्य' के इतिहास पर एक दृष्टि

वर्तमान तो सदैव मानव के नेत्रों के समक्ष रहता ही है, साथ ही साथ वह भविष्य की भी प्रतीक्षा करता रहता है, परन्तु जब उसे अतीत की ओर झाँकना पड़ता है, तब उसे एक विशेष आश्रय की आवश्यकता पड़ती है। उसी आश्रय का नाम इतिहास है। किसी देश, किसी धर्म, किसी जाति या किसी भाषा के अतीत के उत्थान-पतन को यदि हम जानना चाहते हैं, तो हमें इतिहास की शरण में जाना पड़ता है। प्राचीन तथ्यों का संचित कोष इतिहास कहा जाता है, इसलिए संस्कृत में "इतिहासो-पुरावृत्तः" कह कर इतिहास की व्याख्या की गई है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर एक दृष्टि

१. प्रस्तावना।
२. वीरगाथा काव्य।
३. भक्तिकाल।
४. रीतिकाल।
५. आधुनिक काल।
६. उपसंहार।

जब हम हिन्दी साहित्य के अतीत पर दृष्टि डालते हैं, तब हमें विभिन्न भावनाओं और परम्पराओं के दर्शन होते हैं। इन्हीं के आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया है—

सम्वत् १०५० से १३७५ तक (वीरगाथा-काल)
सम्वत् १३७५ से १७०० तक (भक्ति-काल)
सम्वत् १७०० से १९०० तक (रीति-काल)

सम्वत् १९०० से अब तक (आधुनिक-काल)

आदिकाल (वीरगाथा काल)

हिन्दी साहित्य का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब भारतवर्ष पर उत्तर-पश्चिम की ओर से निरन्तर मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे। राजा और राजाश्रित कवि छोटे-छोटे राज्यों को ही राष्ट्र समझ बैठे थे। राजपूत राजाओं को अपने व्यक्तिगत गौरव की रक्षा का अधिक ध्यान था, देश का कम। राज्य एवं प्रभाव वृद्धि की भावना से ये लोग परस्पर युद्ध करते थे। कभी-कभी उनका उद्देश्य केवल शौर्य प्रदर्शन मात्र होता था या किसी सुंदरी का अपहरण। राजपूतों में शक्ति, पराक्रम एवं साहस की कमी न थी, परन्तु यह समस्त कोष पारम्परिक प्रतिद्वन्द्विताओं में समाप्त किया जा रहा था। अतः राजपूत शत्रुओं का सामना करने में एक सूत्रबद्ध सामूहिक शक्ति का परिचय न दे सके। मुहम्मद गोरी के भयानक आक्रमणों ने राजपूत राजाओं को जर्जर कर दिया। सारांश यह है कि वह युग युद्ध का युग था। उस समय के साहित्यकार चारण या भाट थे, जो अपने आश्रयदाता राजा के पराक्रम, विजय और शत्रु-कन्याहरण आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते अथवा युद्ध-भूमि में वीरों के हृदय में उत्साह की उमंगें भरकर सम्मान प्राप्त करते। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब, प्रतिरूप और प्रतिच्छाया होता है, इस नियम के अनुसार तत्कालीन साहित्य में वीरता की भावना आना अवश्यम्भावी था। इस काल में दो प्रकार के—अपभ्रंश तथा देश भाषा काव्यों का निर्माण हुआ।

जैनाचार्य हेमचन्द, सोमप्रभसूरि, जैनाचार्य मेरुतुङ्ग, विद्याधर तथा शार्ङ्गधर, आदि कवि अपभ्रंश काव्य के प्रमुख निर्माता थे। देश भाषा में वीरगाथा काव्य दो रूपों में मिलता है—प्रबन्ध काव्य के साहित्यिक रूप में तथा वीर गीतों के रूप में। ये ग्रन्थ रासो कहे जाते थे। कुछ विद्वान रासो का सम्बन्ध 'रहस्य' से मानते हैं और कुछ रास (आनन्द) से मानते हैं। देश भाषा काव्य में प्रमुख आठ पुस्तकें आती हैं—खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचन्द्रप्रकाश, जयमयंकजसचन्द्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ तथा विद्यापति पदावली। इस काल में चन्द्रबरदायी मुख्य प्रतिनिधि एवम् प्रमुख कवि थे, जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' नामक हिन्दी के प्रथम महाकाव्य का निर्माण किया। इस ग्रन्थ में ढाई हजार पृष्ठ तथा ६९ समय (सर्ग) हैं। इसमें कवित्त, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा और आर्या, सभी छन्दों का व्यवहार किया गया है। यह प्रबन्ध-काव्य उस काल का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जाता है, इसमें वीर-भावों की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति है, कल्पना की उड़ान तथा उक्तियों की चमत्कारिता का सामंजस्य है।

वीरगाथा काल की संक्षिप्त रूप से प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) इस युग के साहित्यकार साहित्य-सृजन के साथ-साथ तलवार चलाने में भी दक्ष थे।

(२) साहित्य का एकाङ्गी विकास हुआ।

(३) वीर काव्यों की प्रबन्ध तथा मुक्त दोनों रूपों में रचनाएँ हुईं।

(४) काव्यों में वीर-रस के साथ शृंगार का पुट भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

(५) कल्पना की प्रचुरता एवं अतिशयोक्ति का आधिक्य।

(६) काव्य का विषय युद्ध और प्रेम।

(७) युद्ध का सजीव वर्णन।

(८) इतिवृत्तात्मकता की अपेक्षा काव्य की मात्रा का आधिक्य।

(९) आश्रयदाताओं की भरपेट प्रशंसा।

(१०) केवल वीर काव्य था, राष्ट्रीय काव्य नहीं।

(११) साहित्यकारों में वैयक्तिक भावना की प्रधानता तथा राष्ट्रीय भावना का अभाव।

भक्तिकाल

राजपूतों में जब तक शक्ति थी, साहस था, तब तक वीर गाथाओं से काम चलता रहा, परन्तु शक्ति के समाप्त हो जाने पर उत्साह प्रदान करने से भी कोई काम नहीं चलता। भारतवर्ष के राजनैतिक वातावरण में अपेक्षाकृत कुछ शान्ति उपस्थित हुई। लोगों को दम लेने की फुरसत मिली। युद्ध से हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थक चुके थे। दोनों जातियों के हृदय में परस्पर मिलन की प्रवृत्ति जाग्रत हो रही थी। समय की विभिन्न गतियों से पूर्ण परिचित भक्ति काव्य जनता के अशान्त हृदय को सांत्वना और धैर्य देने के लिए उनकी भक्ति भावना को जगाने लगे। शनैः शनैः भक्ति का प्रवाह इतना विस्तृत हो गया कि उसके प्रवाह में केवल हिन्दू जनता ही नहीं, देश में बसने वाले सहृदय मुसलमान भी आ मिले। कुछ लोग ऐसे भी थे जो ऐक्य की बलिवेदी पर अपने आराध्य के प्रति अनन्य भावना का बलिदान नहीं करना चाहते थे। अपने धार्मिक व्यक्तित्व को पृथक् रखकर मृतप्राय. हिन्दू जाति में नव-जीवन एवं नव-स्फूर्ति संचार करना ही उनका अभीष्ट था। इस प्रकार, देश में निर्गुण और सगुन नाम के भक्ति काव्य की दो धाराएँ विक्रम की १५वीं शताब्दी से लेकर १७वीं शताब्दी के अन्त तक सामानान्तर चलती रही। निर्गुण धारा दो शाखाओं में विभक्त हुई—ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि 'सन्त कवि' कहलाये और प्रेम मार्गी शाखा के 'सूफी'। निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा के कबीर प्रधान कवि थे तथा प्रेममार्गी शाखा के मलिक मुहम्मद जायसी। इसी प्रकार सगुण धारा भी रामोपासना तथा कृष्णोपासना के भेद से दो शाखाओं में विभाजित हो गयी। राम-भक्ति शाखा के प्रधान कवि गोस्वामी तुलसीदास तथा कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास थे।

निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियों एवम् उनके काव्य की निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

(१) ये एकेश्वरवाद के मानने वाले थे।

(२) निराकार ईश्वर की उपासना करते थे।

(३) जाति-पाँति, छुआछूत में विश्वास नहीं करते थे।

(४) धार्मिक बाह्याडम्बरों का खण्डन करते थे।

(५) मूर्ति पूजा के विरोधी थे।

(६) इनका निर्गुण ब्रह्म न वेदान्तियों का निर्गुण ब्रह्म था और न मुसलमानों का।

(७) हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिये सामान्य भक्ति मार्ग का प्रदर्शन किया।

(८) इनके काव्य का प्रेम-तत्व सूफियों का है, वैष्णवों का नहीं।

(९) वैष्णवों के केवल अहिंसा और प्रपत्ति ही ग्रहण किये।

(१०) इनके सिद्धान्तों पर वज्रयानी सिद्धों तथा नाथ पंथियों का विशेष प्रभाव है।

(११) इनके अनुयायी अशिक्षित अधिक थे, शिक्षित कम।

(१२) गुरु को गोविन्द से भी अधिक महत्त्व दिया गया।

(१३) इनके काव्य की भाषा पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी तथा विभिन्न बोलियों का मिश्रण थी।

(१४) भाषा अपरिष्कृत थी।

(१५) सन्त काव्य का प्रधान रस शान्त था, वैसे अद्भुत और वीभत्स भी पाये जाते हैं।

(१६) इनके काव्य में रहस्यवाद की उद्भावना पाई जाती है।

(१७) मौलिकता का अभाव, पिष्टपेषण। सभी कवियों के द्वारा एक-सी बातें दुहराई गई हैं।

(१८) साखी, सुनना, सबद, सवैया, छप्पय आदि छन्दों का प्रचार रहा।

प्रेममार्गी शाखा—सूफी लोग सादा एवं सरल जीवन व्यतीत करते थे। सूफी शब्द का अर्थ है सफेद ऊन। ये लोग सफेद ऊन के कपड़े पहनते थे। सूफियों का सिद्धान्त है कि ईश्वर हमारा प्रियतम है, जो जगत् के कण-कण में व्याप्त है, उसके पास तक पहुँचने का साधन लौकिक प्रेम है जो साधन के रूप में आगे चलकर अलौकिक हो जाता है। ये सर्वेश्वरवाद के मानने वाले थे। इनका विश्वास था कि जीवन और जगत् भी ब्रह्म है। इन्होंने 'अलमनि' के ज्ञान को स्वीकार किया। एकेश्वरवाद के कट्टर पक्षपाती मुसलमान इनसे घृणा करते थे। प्रेममार्गी परम्परा वैसे तो उषा-अनिरुद्ध की कथा से प्रारम्भ होती है, परन्तु उसका प्रौढ़ रूप इन मुसलमान कवियों में ही दृष्टिगोचर होता है। प्रेममार्गी कवियों ने प्रेम कथानकों पर अवधी भाषा में ही अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे।

प्रेममार्गी शाखा की निम्नलिखित विशेषतायें थीं —

(१) सूफी कवि मुसलमान थे।

(२) अपने काव्यों में हिन्दू जीवन का अच्छा चित्रण किया।

(३) लोगों में प्रचलित कथाओं द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया।

(४) इन प्रेम आख्यानों में कल्पना का आधिक्य है।

(५) शुद्ध प्रेम का सामान्य मार्ग प्रदर्शन करके साम्प्रदायिक जाति भेद दूर किया।

(६) लौकिक प्रेम के द्वारा ईश्वरीय प्रेम का प्रतिपादन किया।

(७) रचनाओं में कल्पना के साथ ऐतिहासिकता का भी पुट है।

(८) प्रत्येक कथा रूपक पर आधारित है।

(९) विरह वर्णन उच्च कोटि का है।

(१०) इनका रहस्यवाद भावात्मक है।

(११) ये प्रबन्ध काव्य फारसी की मसनवी शैली पर आधारित हैं।

(१२) दोहा, चौपाई आदि विभिन्न छन्दों की ही प्रचुरता है।

(१३) इन प्रबन्ध काव्यों की भाषा अवधी है।

(१४) उत्तम साहित्यिकता का अभाव है।

(१५) शृङ्गार रस की ही प्रधानता है।

(१६) नायिका के नाम पर ही रचनाओं के नाम रक्खे गए हैं।

सगुण धारा की राम भक्ति शाखा

भगवत्प्राप्ति के लिए ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी भारतवर्ष में सदैव से

प्रवाहित होती आई है। वैसे तो तीनों की धाराएँ संसार के कल्याण के लिए हैं, परन्तु भक्ति की धारा सरल और सुगम है तथा मानव प्रकृति के अनुकूल है। देवर्षि नारद इस भक्तियोग के प्रमुख आचार्य माने गए हैं। वैष्णव भक्ति के सम्यक् प्रचार के लिए रामानुजाचार्य (सम्वत् १०७३) ने दृढ़ आधार उपस्थित किए। उत्तरी भारत में भक्ति को सक्रिय रूप देने का श्रेय स्वामी रामानन्द जी को है जो रामानुजाचार्य की १४वीं शिष्यपरम्परा में थे। रामानन्द जी की शिष्य परम्परा के द्वारा यद्यपि देश में रामभक्ति का प्रचार खूब हो रहा था, परन्तु हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का पूर्ण प्रकाश विक्रम की १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास की लेखनी के द्वारा हुआ।

रामभक्ति काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं :—

(१) उस समय तक प्रचलित सभी काव्य शैलियों में रचना हुई।
(२) रचनाओं की भाषा अवधी तथा ब्रज थी।
(३) प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे गए।
(४) सर्वाङ्गीण दल-मतान्तरों में दार्शनिक विचारधाराओं का समन्वय हुआ।
(५) नैतिक तथा सामाजिक आदर्श स्थापित किये गए।
(६) ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्व दिया गया।
(७) इन कवियों की उपासना सेवक-सेव्य भाव की थी।
(८) लोक संग्रह की भावना को प्रमुखता दी गयी।
(९) इस शाखा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास जी थे।

कृष्णाश्रयित शाखा

उत्तर भारत में कृष्णभक्ति का सबसे अधिक प्रचार श्री वल्लभाचार्य जी ने किया। इन्होंने कृष्ण के माधुर्य का प्रचार किया। ये शुद्धाद्वैतवादी थे, इनके सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म, जीव और जड़ जगत में अन्तर नहीं है। इन्होंने ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्व दिया, आत्म-चिन्तन के स्थान पर आत्म-समर्पण को श्रेष्ठ समझा। इनकी भक्ति-परम्परा में कृष्ण की उपासना सखी के रूप में की जाती थी और कृष्ण के बाल और युवक प्रेमी रूप ग्रहण किये जाते थे। वल्लभाचार्य जी ने पुष्टि मार्ग चलाया। इनके पुत्र विट्ठलनाथ जी ने पुष्टि मार्गी कवियों में से आठ कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की संज्ञा दी। इनमें से चार—सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास और कुम्भनदास, श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे, तथा चार—चतुर्भुजदास, छीत, स्वामी नन्ददास और गोविन्ददास श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। अष्टछाप के निम्न कवियों में तथा कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में सूरदास प्रमुख कवि थे।

'सूर, नन्द, कुम्भन, चतुर, छीत, कृष्ण गोविन्द।
अष्टछाप के ये कवि हैं, अरु परमानन्द ॥'

कृष्ण-भक्ति शाखा की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं :—

(१) गीतकाव्य की परमोन्नति हुई।
(२) वात्सल्य और शृङ्गार, दो रसों का ही प्राधान्य रहा।
(३) श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप की उपासना प्रमुख रही।
(४) काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही।
(५) मुक्तक काव्य ही लिखा गया।
(६) कृष्ण का लोकरंजक रूप ही आकर्षण का विषय रहा।
(७) ज्ञान मार्ग की निस्सारता और भक्ति मार्ग की महानता दिखाई गई।
(८) कूट पदों का निर्माण हुआ।

रीतिकाल

भक्तिकालीन साहित्य में भक्ति और शृङ्गार मिले हुए थे । भक्ति काल के साहित्यकारों का शृङ्गार वर्णन उनकी प्रगाढ़ भक्ति का परिचायक था । जिस शृङ्गार की सुरा ने मृतप्राय हिन्दू समाज को अनुप्राणित करने में रामबाण का काम किया था उसी सुरा और सुन्दरी का सहयोग आगे चलकर एक घातक अभिशाप सिद्ध हुआ । जिस शृङ्गार वर्णन को भक्तिकालीन साहित्यकार अपने आराध्य की आराधना का अंग मानकर किया करते थे, आगे चलकर यह एक व्यसनमात्र रह गया । भक्त कवियों में भक्ति भावना का प्राधान्य था, कवित्व चमत्कार उनके लिए गौणातिगौण वस्तु थी । बाद के कवियों में कवित्व प्रधान हो गया, भक्ति उनकी विलास एवम् वासनामयी प्रवृत्तियों की यवनिकामात्र (परदा) थी ।

कला और कविता का मूल्यांकन उस समय होता है, जब वातावरण शान्त हो, तथा, पेट की चिन्ता से कलाकार और कला प्रेमी मुक्त हों, इन दोनों ही बातों का उस युग में अभाव था । कवि को जीवनयापन के लिए राज्याश्रय स्वीकार करना पड़ा साहित्यकारों की रोटियाँ आश्रयदाताओं की हाँ में हाँ मिलाने तथा उनके पाप-कर्मों को पुण्य बताने पर आश्रित थीं । अब साहित्यकार की व्याख्या का प्रिय विषय जीवन नहीं था अपितु नारी था । राजा ही नहीं, राज्याश्रित कवि भी अपने प्रतिद्वन्द्वी से आगे बढ़ना चाहते थे । इसके लिए उन्हें संस्कृत और प्राकृत साहित्य के अध्ययन में कठोर प्रयत्न करना पड़ता और प्राचीन विषयों को नया रंग देकर श्रोताओं के समक्ष उपस्थित करना पड़ता था । एक बात और थी वह यह कि हिन्दी में लक्ष्य ग्रंथ पर्याप्त लिखे जा चुके थे, परन्तु लक्षण ग्रन्थों का साहित्य में अभाव था । साहित्यकारों की प्रवृत्ति इस ओर जाना स्वाभाविक ही थी, क्योंकि लक्ष्य ग्रन्थों के पश्चात् लक्षण ग्रन्थ आते हैं । ये हिन्दी कवि लक्षण प्रस्तुत करने में तो नहीं, परन्तु उदाहरण देने में अपने पूर्ववर्ती कवियों से आगे निकल गये । हिन्दी में नवीन सिद्धान्तों का विवेचन सम्भव न हो सका, इसका प्रथम कारण तो यह था कि कवियों में मौलिकता का अभाव था । दूसरा कारण यह था कि उस समय जो कुछ लिखा जाता था पद्य में ही लिखा जाता था क्योंकि हिन्दी गद्य का विकास नहीं हुआ था और पद्य में किसी विषय की सम्यक् मीमांसा या तर्क वितर्क करना सम्भव नहीं था ।

इस काल में कुछ ऐसे भी कवि हुए जिन्होंने लक्षण ग्रन्थ न लिखकर स्फुट ग्रन्थ लिखे । इस प्रकार के कवियों में से कुछ ने तो प्राय: काव्य [illegible] भक्ति या ज्ञान-सम्बन्धी कविताएँ लिखीं, कुछ ने शृङ्गार के स्फुट [illegible] ऐसे भी थे जो सिंह और सपूत की भाँति लकीर छोड़ [illegible] थे, उन्होंने इस घोर शृङ्गार काल में भी वीरता के गीत गाए । इन नरों ने कटाक्ष और नृत्य के स्थान पर तलवार का नृत्य दिखाया । इस प्रकार इस काल में रीतिबद्ध और रीति मुक्त दो प्रकार के कवि हुए ।

रीति काल के प्रमुख कवि आचार्य केशवदास थे तथा अन्य कवियों में चिन्तामणि, सेनो, बिहारी, मतिराम, देव, भूषण आदि प्रमुख थे ।

रीतिकालीन काव्य की निम्नलिखित विशेषतायें हैं —

(१) संस्कृत साहित्य के आधार पर रीति ग्रन्थों की रचना हुई ।

(२) प्रमुख रूप में रस, अलंकार, छन्द और नायिका भेद का ही विवेचन हुआ ।

(३) नाट्यशास्त्र तथा शब्द शक्ति का यथोचित विवेचन नहीं हुआ ।

(४) विचारों में नवीनता और मौलिकता का अभाव रहा।
(५) इस काल के प्रमुख छंद कवित्त और सवैया ही रहे।
(६) बिहारी आदि कुछ कवियों ने ही दोहे लिखे।
(७) लक्षणों की अपेक्षा उदाहरण अधिक सुन्दर लिखे।
(८) इस काल का प्रधान रस शृङ्गार रहा।
(९) शृङ्गार के साथ वीर रस की भी श्रेष्ठ रचनायें हुई।
(१०) भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया।
(११) प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक काव्यों की अधिक रचना हुई।
(१२) इस काल की भाषा ब्रज और अवधी थी।
(१३) मुसलमानी दरबारों के प्रभाव से फारसी शब्दों का भी मिश्रण हुआ
(१४) रीतिबद्ध कवियों में से कुछ ने लक्षण ग्रन्थ लिखे और कुछ ने केवल लक्ष्य ग्रन्थ।
(१५) रीति मुक्त कवियों ने भक्ति, नीति, प्रेम, वीर, शृंगार आदि विविध विषयों पर लेखनी चलाई।

आधुनिक काल

भारतीय विलासिता और विग्रह के फलस्वरूप, व्यापार की प्रवचना से आए हुए अंग्रेज जब भारतवर्ष में शासक के रूप में जम गए तब भारतीयों का ध्यान जीवन के कटु सत्य की ओर गया। दो विभिन्न संस्कृति और सभ्यताओं के संघर्ष से जन-जीवन में जागृति की भावना उठने लगी। लोगों का ध्यान अपने राजनैतिक दायित्वों पर गया और राष्ट्रीय भावों को प्रकट करने की भावना बलवती हो उठी। यद्यपि राष्ट्रीय उद्बोधन के भाव भूषण के समय में ही दृष्टिगोचर होने लगे थे, परन्तु उस अंकुरित बीज में अब पल्लवित और कुसुमित होने की इच्छा तीव्र होने लगी थी।

साहित्यिक जागरण के साथ जनता में सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जागृति भी होने लगी थी। विदेशी शासन के साथ-साथ इस देश में अपने धर्म का प्रचार भी करने लगे थे, किया मुसलमानों ने भी था। परन्तु उनमें और इनमें अन्तर केवल इतना ही था कि उनका प्रचार तलवार के जोर पर आधारित था, इनका बुद्धिवाद पर अपने-अपने धार्मिक विचारों के प्रचार, प्रसार, खण्डन-मण्डन के लिए पद्य उपयुक्त माध्यम नहीं था।

अ... काल में मुद्र... त्रों के अभाव में साहित्य की सुरक्षा के लिये पुस्तकें कण्ठस्थ की ...ी थीं। पद्य की संगीतात्मकता के कारण वह सरलता से याद हो जाता था। अंग्रेजों के साथ-साथ इस देश में मुद्रण यन्त्र भी आये। पुस्तकों का कण्ठ करना अनावश्यक समझा जाने लगा। यद्यपि गद्य की परम्परा ब्रजभाषा तथा उससे पूर्व भी थी, परन्तु उसकी वास्तविक धारा जन-सम्पर्क स्थापित करने की भावना से प्रेरित होकर शासन की सुविधा के लिए अंग्रेज अफसरों के द्वारा प्रभावित की गई। लल्लूलाल तथा सदल मिश्र ने जॉन गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से तथा मुन्शी सदासुखलाल और इंशाअल्ला खाँ ने स्वान्तःसुखाय खड़ी बोली में प्रारम्भिक गद्य लिखा।

भारतेन्दु युग—नवोत्थान काल के सबसे अधिक व्यापक एवम् प्रभावोत्पादक स्वरूप के दर्शन हमें भारतेन्दु-युग में होते हैं। इस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से गद्य साहित्य की समस्त विधाओं पर उनके समकालीन लेखकों ने तथा उन्होंने स्वयम् लेखनी चलाई। भारतेन्दु ने विवादास्पद गद्य के स्वरूप को निश्चित किया। इस युग में नाटकों की प्रधानता रही। भारतेन्दु से पूर्व भी दो-चार नाटक लिखे गये थे, परन्तु वे

नाटक कहलाने योग्य न थे। भारतेन्दु जी ने स्वयम् १४ नाटकों की रचना की, इनमे कई प्रहसन भी हैं। इसमे सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, नीलदेवी, भारत दुर्दशा, चन्द्रावली आदि प्रमुख हैं। भारतेन्दु के नाटक उनके जीवनकाल मे ही खेले गए थे। उस काल मे भारतेन्दु के अतिरिक्त बाबू तोताराम, बाबू राधाकृष्णदास, बाबू गोकलचन्द्र आदि प्रमुख नाटककार थे। भारतेन्दु काल के गद्य लेखकों में पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित बालकृष्ण भट्ट, पण्डित बद्रीनारायण चौधरी, लाला श्रीनिवास दास तथा पण्डित अम्बिकादत्त के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

द्विवेदी युग—यह युग आलोचनात्मक युग था। भारतेन्दु के समय मे लेखकों ने व्याकरण तथा वाक्य-विन्यास की ओर कम ध्यान दिया। अंग्रेजी पढ़े-लिखे जो लोग श्रद्धा तथा भक्ति के कारण हिन्दी के क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए थे, व्याकरण के नियमों से अनभिज्ञ थे। 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा को शुद्ध, सुसंस्कृत और परिमार्जित बनाने मे पूर्ण योगदान दिया। वे अशुद्ध लेखों को काट छाट कर लेखकों के दोष बताने मे चूकते न थे। उनकी प्रेरणाओं से नवीन विषयों पर ओजपूर्ण निबन्ध लिखे गए। द्विवेदी युग मे हिन्दी साहित्य ने अपनी शैशवावस्था छोड़कर युवावस्था में प्रवेश किया। भारतेन्दु युग मे भी जो बंगला साहित्य का अनुकरण हुआ था, वह द्विवेदी युग मे अधिक न रहा। लेखकों में मौलिकता आई और उन्होंने ठोस साहित्य का निर्माण किया। भाषा भी परिष्कृत और सुसंस्कृत हुई तथा शैली का भी परिमार्जन हुआ।

प्रसाद युग—यह युग कहानी तथा नाटक प्रधान था। बाबू जयशंकर प्रसाद जी ने अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, विशाख, कामना आदि उच्च कोटि के नाटक लिखे जिनमे प्रसाद जी की महान् साहित्यिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। जिस प्रकार द्विजेन्द्र लाल राय ने मुगलकालीन भारत का चित्र उपस्थित किया है उसी प्रकार प्रसाद जी ने विशेष रूप से बौद्धकालीन भारत के इतिहास को अपनाया। प्रसाद जी ने हिन्दुओं की सभ्यता तथा नैतिक श्रेष्ठता दिखाई। प्रसाद जी के नाटकों में मनोवैज्ञानिकता पर्याप्त मात्रा मे है कहीं-कहीं बड़े सुन्दर अन्तर्द्वन्द्व दिखाये गये हैं। इस युग में प्रसाद जी के अतिरिक्त पण्डित बद्रीनाथ भट्ट पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द,' पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त, तथा श्री हरिकृष्ण प्रेमी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्द युग—यह युग उपन्यासों का युग था। यद्यपि प्रसाद जी ने भी 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यास लिखे थे, परन्तु नाटककार के रूप मे प्रसाद जी अधिक सफल हुए। उपन्यास सम्राट के रूप मे प्रेमचन्द जी आते हैं। इनके प्रतिज्ञा, गबन, गोदान कर्मभूमि, रंगभूमि, सेवासदन, निर्मला प्रेमाश्रम आदि उपन्यास अधिक प्रसिद्ध हैं। चरित्रप्रधान उपन्यास लिखने मे आप सिद्धहस्त थे। इन्होंने निम्न तथा मध्य कोटि के लोगों मे मानवता के दर्शन कराये। प्रेमचन्द जी कहानी लिखने मे भी उतने ही सफल हुए जितने उपन्यास लिखने में। कुछ लोगों का यहाँ तक विचार है कि वे कहानी लिखने में उपन्यासों की अपेक्षा अधिक सफल हुए। प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानियों में समाज के उपेक्षित लोगों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। प्रेमचन्द्र के युग के अन्य कलाकारों मे पण्डित विश्वम्भरनाथ कौशिक, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, मुन्शी प्रतापनारायण श्रीवास्तव चण्डी, 'हृदयेश' तथा बेचन शर्मा उग्र आदि प्रमुख हैं।

वर्तमान युग—वर्तमान को किसी विशेष विधा का युग नहीं कहा जा सकता और न कोई ऐसा प्रकाण्ड लेखक ही है, जिसने इस काल पर अपनी स्पष्ट छाप छोड़ी हो। केवल प्रेम भरी छोटी-छोटी कवितायें तथा प्रेमी और प्रेमिकाओं से पूर्ण अश्लील कहानियाँ तथा इसी प्रकार छोटे-छोटे उपन्यास चल रहे हैं। वर्तमान के बारे में अभी कोई निश्चित सम्मति नहीं दी जा सकती श्री निराला, महादेवी, पन्त और गुप्त जी के काव्य अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं, परन्तु उसके भी पढ़ने वाले आज कितने लोग हैं?

१. समय का सदुपयोग

अथवा

"समय जात नहिं लागहिं बारा"

नष्ट हुई सम्पत्ति और खोए हुए वैभव को पुनः प्राप्त करने के लिये मनुष्य अनवरत श्रम करता है। एक दिन वह आता है, जबकि वह उसे फिर से प्राप्त करके फूला नहीं समाता। मानव खोए हुए स्वास्थ्य को भी बुद्धिमान वैद्यों की सम्मति पर चलकर, पुष्टिकारक औषधियों का सेवन करके तथा संयत जीवन व्यतीत करके एक बार फिर प्राप्त कर लेता है। भूली हुई और खोई हुई प्रतिष्ठा को मनुष्य थोड़े से श्रम से पुनः प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। युगों के भूले बिछुड़े मिल जाते हैं, परन्तु जीवन के जो क्षण एक बार चले गए वे फिर इस जीवन में कभी नहीं मिलते। कितनी अमूल्यता है इन क्षणों की, कितनी तीव्रता है इनकी गति में, जो न आते मालूम पड़ते हैं और न जाते, परन्तु चले जाते हैं। एक ओर मानव के लघु जीवन की भयानक क्षण-भंगुरता, दूसरी ओर सीमित समय की गतिशीलता एवम् अस्थिरता।

> **समय का सदुपयोग**
> १ प्रस्तावना।
> २. सफलता का रहस्य।
> ३ समय के सदुपयोग की विधि।
> ४ समय के सदुपयोग से लाभ—
> (क) व्यक्तिगत,
> (ख) समष्टिगत।
> ५ समय का शत्रु।
> ६ उपसंहार।

"स्वत्व तयायुधत्यच्च शिक्षा"

समय मनुष्य की न तो प्रतीक्षा करता है, न तो परवाह। रेलगाड़ी यात्रियों की प्रतीक्षा नहीं करती, उसमें कोई बैठे या न बैठे, वह अपने समय पर आती है और चली जाती है। जो लोग भीड़ को चीरते हुए, आलस्य को छोड़कर आगे भागते हुए, उसमें बैठ जाते हैं, वे अपने अभीष्ट स्थान पर समय पर पहुँच जाते हैं, और जो प्लेटफार्म पर अपनी असावधानता, आलस्य, भीरुता या निद्रा के कारण पड़े रह जाते हैं, वे न गाड़ी में बैठ पाते हैं और न ही अपने लक्ष्य तक ही पहुँच पाते हैं। ठीक यही बात समय रूपी रेलगाड़ी के साथ है। जीवन में सफलता भी उन्हीं पुरुष-सिंहों को प्राप्त होती है, जो अपने एक क्षण का भी अपव्यय नहीं करते, अपितु अधिक से अधिक उसका उपयोग करते हैं। यही कारण है कि संसार का महान् से महान् और कठिन से कठिन कार्य भी उनके लिए सुगम हो जाता है। अब यह आपके ऊपर है कि इन क्षणों का आप कैसे उपयोग करते हैं—निद्रा में या नेक कार्यपूर्ति में, विद्या में या विवाद में, मैत्री में या कलह में, रक्षा में या पर-पीड़न में। समय की अमूल्यता की बोधक कबीर की पंक्तियाँ कितनी महान् हैं—

"काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब॥"

जीवन की सफलता का रहस्य समय के सदुपयोग में ही निहित है। चाहे वह निर्धन हो या धनवान, किसान हो या मजदूर, राजा हो या प्रजा, विद्वान् हो या

मूर्ख, समय पर सभी का समान अधिकार है। समय की उपयोगिता साधारण से साधारण व्यक्ति को भी महान् बना देती है। आज तक जितने भी महान् पुरुष हुए उनके जीवन की सफलता का रहस्य एकमात्र समय के अमूल्य क्षणो का सदुपयोग ही रहा है। बड़े से बड़े सङ्कटों, भयानक से भयानक संघर्षों मे भी सदैव विजय वैजयन्ती उनका वरण करती है। "पाँच मिनट" के महत्व और माहात्म्य के अपरिचित आस्ट्रियन् नैपोलियन मे युद्ध में पराजित हो गए थे। नैपोलियन के एकमात्र साथी ग्रुशी के आने मे पाँच मिनट के विलम्ब ने नैपोलियन को बन्दी की उपाधि मे विभूषित कर दिया था। आलस्यरहित होकर यथासमय प्रत्येक कार्य को करना ही समय की उपयोगिता है। जो मनुष्य आज का काम कल पर टाल देते हैं उनका काम कभी पूरा नही होता। वे जीवन मे सदैव पश्चात्ताप की अग्नि में जलते रहते हैं। परन्तु जलने से कोई लाभ नही होता क्योंकि—"समय चूंकि पुनि का पछिताने" वे आगे बढने के समय में भी पीछे रहते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति अपने अवकाश के क्षणों को भी व्यर्थ नही जाने देता।

"काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥"

बुद्धिमान व्यक्ति अपने विश्राम के समय को भी व्यर्थ नही जाने देता, सद् ग्रन्थों के अवलोकन मे ही उसका समय व्यतीत होता है परन्तु मूर्ख अपना समय कु व्यसनों में, सोने में या आपस के लड़ाई-झगडों मे ही खो देते हैं। उनकी दृष्टि मे न तो समय का मूल्य होता है और न जीवन की क्षण भंगुरता का। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति समय के सदुपयोग मे आत्मिक आनन्द और शारीरिक सुख का अनुभव करता है। ऐसे व्यक्तियो का समाज आदर करता है। समय का अपव्यय करना आत्महत्या के समान है। संसार से ऊब कर जीवनमुक्त होने के लिए मानव आत्महत्या का साधन ढूंढता है। आत्महत्या उसे जीवन के संघर्षों से सदा-सदा के लिए मुक्त कर देती है। ठीक इसी प्रकार समय का दुरुपयोग मानव-जीवन को अनिश्चित समय के लिए मृतप्राय कर देता है। समय की दुरुपयोगिता मानव को कायर, पुरुषार्थहीन एवम् अनुद्योगी और अकर्मण्य बना देती है। समय की दुरुपयोगिता से केवल विचार ही दूषित नही होते, बल्कि मानव का नैतिक पतन हो जाता है।

समय के सदुपयोग के लिए मनुष्य को अपने प्रतिदिन के कार्य का समय विभाजन कर लेना चाहिए। उसे इस बात को दृष्टि मे रख लेना चाहिए कि उसे किस समय क्या काम करना है। जिस मनुष्य का कार्यक्रम सुनिश्चित नही होता उसका अधिकांश समय व्यर्थ में ही इधर-उधर बीत जाता है। जो मनुष्य अपना निश्चित कार्यक्रम बनाकर, मानसिक वृत्तियों को एकाग्र करके कार्य करता है, उसे जीवन-संग्राम मे अवश्य सफलता प्राप्त होती है। विद्यार्थियो को अपने समय का सदुपयोग करने के लिए टाइमटेबिल बना लेना चाहिए। उन्हे ध्यान रखना चाहिए कि उनका निश्चित कार्य उस निश्चित समय में पूर्ण हुआ अथवा नही। जो छात्र नियत समय मे अपने कार्य में पूर्ण मनोयोग के साथ संलग्न नही होता, वह अपने साथ घोर अन्याय करता है। उसका भविष्य अन्धकारमय रहता है। समय विभाजन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शारीरिक और मानसिक थकान अधिक न होने पावे। उसमें मनोरंजन की भी व्यवस्था करनी चाहिए। मनोरंजन से जीवन में सरसता आती है, शक्ति सञ्चय होता है।

समय का सदुपयोग करने से मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति होती है। हमें बाल्यकाल से ही समय की अमूल्यता पर ध्यान देना चाहिए। शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए समय पर सोना, समय पर उठना, समय पर भोजन करना, समय पर व्यायाम करना, समय पर पढ़ना बहुत ही आवश्यक है। मानसिक उन्नति के लिए हमें प्रारम्भ से ही सद्‌ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए तथा अपने से बड़े, अपने से अधिक बुद्धिमान लोगों के साथ जीवनोपयोगी विषयों पर चर्चा करनी चाहिए। जिस काम के लिए जो समय निश्चित हो, उस समय वह काम अवश्य कर लेना चाहिए, तभी मनुष्य जीवन में उन्नति कर पाता है। कभी किसी काम को देर से शुरू न करो क्योंकि प्रारम्भ में विलम्ब हो जाने से अन्त तक विलम्ब होता रहता है और उस कार्य में सफलता संदिग्ध रहती है। विदेशों में समय का मूल्य बहुत समझा जाता है। वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति उसका सदुपयोग करना जानता है। यदि आपने किसी व्यक्ति को आठ बजे बुलाया है तो वह आपके पास ठीक आठ बजे ही आयेगा, न एक मिनट पूर्व और न एक मिनट पश्चात्।

देश और समाज के प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं। हमें अपना कुछ समय उनकी सेवा में भी लगाना चाहिए, जिससे देश और समाज की उन्नति हो। असहायों की सहायता करने में, भूखों के पेट भरने में, दूसरों के हित सम्पादन में जो अपना कुछ समय व्यतीत करता है वह भी समय का सदुपयोग करता है तथा उसका समाज में सम्मान होता है। हमें अपने दैनिक कार्यक्रमों में राष्ट्रसेवा, जाति सेवा और समाज सेवा का अवसर भी निकालना चाहिए। स्वार्थ सिद्धि ही मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य नहीं है। इस जीवन में जितने शुभ कार्य हो सकें उतना ही यह जीवन सफल है। मानव-जीवन देश की सम्पत्ति है। अतः देशहित में जो अपना समय व्यतीत करता है, वह धन्य है। मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि वह अपने समय का सदुपयोग करता हुआ अपने समाज, अपने देश और मानव-जाति का कल्याण करे।

"आलस्य हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।"

अर्थात आलस्य मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। आलसी मनुष्य जीवन में उन्नति नहीं कर पाता है। उसके जीवन के अधिकांश क्षण सुस्ती, खाने और वाद-विवाद में ही व्यतीत हो जाते हैं। ऐसा मनुष्य न तो छात्रावस्था में विद्योपार्जन ही कर सकता है और न युवावस्था में गृहस्थी का भार ही वहन कर सकता है। आलसी मनुष्य की प्रज्ञा मन्द और संकल्प क्षीण हो जाते हैं, वे सदैव समय की शिकायत किया करते हैं। परिश्रमी के पास कभी समय का अभाव नहीं होता। आलसी मनुष्य का समय दूसरों की निन्दा करने, निरुद्देश्य घूमने, गन्दी पुस्तकें पढ़ने तथा व्यर्थ की गपशप में व्यतीत हो जाता है। ऐसे व्यक्ति न देश का कल्याण कर पाते हैं और न अपना ही। आलस्य का परित्याग करके समय का सदुपयोग करने वाले व्यक्ति ही साहित्य के स्रष्टा, राष्ट्रनायक, वैज्ञानिक और आविष्कारक हुए हैं। ठीक ही कहा गया है—

"क्षण त्यागे कुतो विद्या, कण त्यागे कुतो धनम्।
क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत ॥"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है, "समय जात नहिं लागहि बारा।" समय की गति तीव्र है। प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह समय का

उचित मूल्यांकन करते हुए उसका उपयोग करें। समय की गति रोकी नहीं जा सकती। आज के वैज्ञानिक ने प्रकृति के तत्वों पर अपना अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया है, परन्तु समय को वश में नहीं कर पाया। इसलिये यदि हम अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते हैं, अपने देश और अपनी जाति का उत्थान चाहते हैं तो हमें अपने समय का सदुपयोग करना सीखना चाहिये तभी हमारी उन्नति सम्भव है। विद्यार्थियों को तो विशेष रूप से समय का महत्व समझना ही चाहिए क्योंकि—

"गया वक्त फिर हाथ आता नहीं है।"

२. विद्यार्थी और अनुशासन

विद्यार्थी और अनुशासन

१. प्रस्तावना।
२. विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता।
३. अनुशासनहीनता के कारण।
४. अनुशासन स्थापना के उपाय।
५. उपसंहार।

प्रसाद की चिरस्थिरता और उसकी दृढ़ता जिस प्रकार आधार-शिला की दृढ़ता पर आधारित है, लघु पादपों का विशाल वृक्षत्व जिस प्रकार बाल्यावस्था के सिंचन और संरक्षण पर आश्रित होता है, उसी प्रकार युवक की सुख-शान्तिमय समृद्धिशालिता का संसार छात्रावस्था पर आधारित होता है। यह अवस्था नवीन वृक्ष की वह मृदु और कोमल शाखा है, जिसे अपनी मनचाही अवस्था में सरलता से मोड़ा जा सकता है और एक बार जिधर आप मोड़ देंगे जीवन भर उधर ही रहेगी। अवस्थाप्राप्त विशाल वृक्षों की शाखायें चाहे टूट भले ही जाएँ पर मुड़ती नहीं, क्योंकि समय, अनुभव और जीवन के सुख-दुःख उन्हें कठोर बना देते हैं। अतः मानव-जीवन की इस प्रारम्भिक अवस्था को सच्चरित्रता और सदाचारिता आदि उपायों से सुरक्षित रखना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। छात्रावस्था अबोधावस्था होती है, इसमें न बुद्धि परिष्कृत होती है और न विचार। माता-पिता तथा गुरुजनों के दबाव से, पहले वह कर्त्तव्य पालन करना सीखता है। माता-पिता तथा गुरुजनों की आज्ञाएँ ज्यों की त्यों स्वीकार करना ही अनुशासन कहा जाता है। अनुशासन का शाब्दिक अर्थ शासन के पीछे चलना है, अर्थात् गुरुजनों और अपने पथ-प्रदर्शकों के नियन्त्रण में रहकर नियमबद्ध-जीवनयापन करना तथा उनकी आज्ञाओं का पालन करना ही अनुशासन कहा जा सकता है। अनुशासन विद्यार्थी जीवन का प्राण है। अनुशासनहीन विद्यार्थी न तो देश का सभ्य नागरिक बन सकता है और न अपने व्यक्तिगत जीवन में ही सफल हो सकता है। वैसे तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन परमावश्यक है, परन्तु विद्यार्थी जीवन के लिये यह सफलता की एकमात्र कुञ्जी है।

आज विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता अपनी चरम सीमा पर है—क्या घर, क्या स्कूल, क्या बाजार, क्या मेले और क्या उत्सव, क्या गलियाँ और क्या सड़कें, आज का विद्यार्थी घर में माता-पिता की आज्ञा नहीं मानता, उनके सदुपदेशों का आदर नहीं करता, उनके बताये हुये मार्ग पर नहीं चलता। उदाहरणस्वरूप पिता जी ने कहा—बेटा! शाम को घूम कर जल्दी लौट आना, पर कुंवर साहब दस बजे का शो देखकर ही लौटेंगे।

माता पिता के मना करने पर भी आज का बालक उसी के साथ उठता-बैठता है, जिसके साथ उसकी तबियत आती है। परिणाम यह होता है कि इससे कुसंगतिजन्य दूषित संस्कार उत्पन्न हो जाते हैं। कॉलेज की चारदीवारी में विद्यार्थियों के लिये अनुशासन जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। कक्षा में पढ़ाई हो रही है, आप बाहर गेट पर, पनवाड़ी की दुकान पर खड़े-खड़े सिगरेट में दम लगा रहे हैं। जब मन में आया कक्षा में आ बैठे और जब मन में आया उठकर चले आये, अगर तबियत इतने पर भी मचली तो साइकिल उठाई और सिनेमा तक हो आये, तस्वीरों को देखकर मन तो बहल ही जाता है। अगर अध्यापक ने कुछ कहा, तो उस पर बिना उचित अनुचित का विचार किये जो मन में आया कह दिया, अगर ज्यादा बात बढ़ी तो फिर आगे के कुकृत्यों की कुमन्त्रणाएँ होने लगीं। अनुशासनहीनता का नग्न नृत्य उस समय देखिये, जब कोई सभा हो, मीटिंग हो, कवि सम्मेलन या कोई एकांकी नाटक आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम हो रहा हो। विद्यार्थियों की उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता के कारण कोई भी सामूहिक कार्यक्रम आप सफलतापूर्वक नहीं कर सकते। परीक्षा आजकल अध्यापक की जान लेने वाली बन गई है, या तो लड़के को मनचाही नम्बर कर लेने दीजिये या फिर हाथापाई को तैयार हो जाइये। सामूहिक मेलों और उत्सवों में विद्यार्थियों की चरित्रहीनता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। किसी भी महिला के साथ अभद्र एवं अशोभनीय व्यवहार करना साधारण सी बात है। पुलिस की मार से चोरियों में जब नाम खुलते हैं तो उनमें दो-चार विद्यार्थियों के नाम भी होते हैं। यही हाल डकैतियों का है। रेलों में बिना टिकट सफर करने में छात्र अपना गौरव समझते हैं। शहर के किसी कोने में जहाँ आप चाहें दंगा करवा लीजिये। लूट-मार करवा लीजिये। किसी को बीच चौराहे पर खड़ा होकर पिटवा लीजिये। कहाँ गया गुरु और शिष्य का वह पवित्र स्नेह और कहाँ गई वह सच्चरित्रता ? देश के भावी नागरिक अगर ऐसे ही रहे, तो निश्चित ही भारतवर्ष आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों अवश्य ही गड्ढे में जा गिरेगा और ऐसा गिरेगा कि युगों तक फिर न निकल सकेगा।

अनुशासनहीनता का मुख्य कारण माता पिता की ढिलाई है। माता पिता के संस्कार ही बच्चे पर पड़ते हैं। बच्चे की प्राथमिक पाठशाला घर होती है। वह पहले घर में ही शिक्षा लेता है, उसके बाद वह स्कूल और कॉलेज में जाता है, उसके संस्कार घर में से ही खराब हो जाते हैं। पहले तो प्यार के कारण माता पिता कुछ कहते नहीं वह जहाँ चाहे बैठे और जहाँ चाहे खेले, जो मन में आये वह करे पर जब हाथी के दाँत बाहर निकल आते हैं, तब उन्हें चिन्ता होती है, फिर वे अध्यापकों और कॉलेजों की आलोचना करना आरम्भ करते हैं। दूसरा कारण आज की अपनी शिक्षा-प्रणाली है। इसमें नैतिक या चारित्रिक शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया है। पहिले विद्यार्थियों को दण्ड का भय बना रहता था, क्योंकि "भय बिन होय न प्रीति", पर अब आप विद्यार्थियों के हाथ नहीं लगा सकते, क्योंकि शारीरिक दण्ड अवैध है। केवल अपनी अपमानित कर सकते हैं। इसमें विद्यार्थी बहुत तेज होता है, आप एक कहेंगे वह आपको चार सुनायेगा। शिक्षा संस्थाओं का कुप्रबन्ध भी छात्रों को अनुशासनहीन बनाता है। परिणामस्वरूप कभी वे विद्यालय के अधिकारियों की आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं और कभी अध्यापकों की अवज्ञा। अधिकांश कक्षा भवन छोटे होते हैं और छात्रों की संख्या सीमा से भी अधिक होता है। कॉलेजों में

का प्रबन्ध भी पहले से कर लेना चाहिए, जिससे वहाँ पहुँचकर आपको कोई असुविधा न हो।

देशाटन से मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं। एक स्थान पर रहते-रहते जब उसका मन ऊब जाता है तब उसके हृदय में नई-नई वस्तुओं को देखने की, नये स्थानों पर जाने की इच्छा होती है क्योंकि नित्य प्रति दिखाई पड़ने वाली वस्तुओं में इतना आकर्षण नहीं होता जितना नवीन में। वह अपना मन बहलाने के लिए निकल पड़ता है। पर्वतीय प्रदेश के शान्तिपूर्ण वातावरण मे रहने वाला मैदान के नगरो में और मैदान के नगरों का निवासी पर्वतीय उपत्यका का और अधित्यकाओं के मनोरम दर्शनों के लिए निकल पड़ता है।

देशाटन से मनुष्य शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करता है। हम जिन ऐतिहासिक और धार्मिक स्थानों को केवल पाठ्य-पुस्तक में ही पढ़ पाते हैं, उन स्थानों को जब हम प्रत्यक्ष देख लेते हैं तब हमारा ज्ञान और भी अधिक दृढ़ हो जाता है। प्लासी और पानीपत का मैदान, हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और सारनाथ के भग्नावशेष, अजन्ता और एलोरा की गुफायें, आगरे का ताजमहल, दिल्ली का लाल किला, बौद्धगया का मन्दिर आदि का साक्षात् ज्ञान हम देशाटन द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। सूर और रसखान के पदों को पढ़कर ब्रजभूमि का वह प्राकृतिक सौंदर्य हमारे हृदय में द्विगुणित हो उठता है, जब हम कृष्ण की लीला-भूमि मथुरा और वृन्दावन को अपने नेत्रों से देख लेते हैं। देशाटन से हम अन्य देशों की शासन-प्रणाली और सभ्यता से भी परिचय प्राप्त करते हैं। वहाँ की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। अतः राजनीतिक और समाज-सुधार के लिए भी देशाटन आवश्यक है। सर्वश्रेष्ठ शिक्षा वही होती है, जो हमे हमारे अनुभव से प्राप्त होती है। अतः अनुभवो के लिए देश-देशान्तर का भ्रमण अत्यन्त आवश्यक है।

हृदय की प्रसन्नता का हमारे स्वास्थ्य से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। देशाटन के समय अनेक सुन्दर दृश्यों एव मनोरम वस्तुओं को देखने से हमारा हृदय-कमल विकसित हो जाता है। चित्त की प्रफुल्लता से हमारा स्वास्थ्य भी सुन्दर रहता है। कई स्थान ऐसे होते हैं, जिनकी जलवायु स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाती है। देशाटन के समय पारिवारिक चिन्ताओं से मुक्त होते हैं, इससे भी स्वास्थ्य पर सुन्दर प्रभाव पड़ता है। प्रायः देखा जाता है कि देशाटन से लौटकर जब मनुष्य घर आते हैं, तो उनका स्वास्थ्य बहुत सुन्दर हो जाता है। परन्तु घर पर रहकर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है। अतः देशाटन से मनुष्यो के स्वास्थ्य को भी लाभ होता है।

देशाटन मनुष्य की चारित्रिक उन्नति मे पर्याप्त सहायक होता है। मनुष्य को कष्ट सहने का अभ्यास हो जाता है। देशाटन से मनुष्य मे सहिष्णुता आती है। वह धैर्यवान और शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। उसके हृदय की संकुचित विचारधारा नष्ट हो जाती है। स्नेह और भ्रातृत्व की भावना के साथ-साथ उसमे उदारता की भावना का भी उदय होता है। उसका चरित्र उज्ज्वल और उन्नत हो जाता है। उसके विचारों में दृढ़ता आ जाती है।

आत्मनिर्भर बनने के लिए देशाटन बहुत आवश्यक है। मनुष्य घर से बाहर निकलकर स्वावलम्बी हो जाता है। उसमे व्यवहार-कुशलता आ जाती है। व्यव-

हार-कुशलता के साथ साथ मनुष्य के व्यक्तित्व को मौलिकता तथा विचारों को दृढ़ता प्राप्त होती है। विद्यार्थियों को अपने लम्बे अवकाश के क्षणों में देशाटन अवश्य करना चाहिए। इससे उनमें बौद्धिक जागृति उत्पन्न होगी, मृदु भाषण का गुण आयेगा, विश्व-बन्धुत्व की भावना में वृद्धि होगी।

इस क्षण भंगुर संसार में आकर मनुष्य ने यदि संसार के भिन्न भिन्न भागों को न देखा, तो उसका अमूल्य मानव जीवन वास्तव में व्यर्थ है। परमेश्वर की सौन्दर्यमयी सृष्टि के दर्शन हमें देशाटन से ही प्राप्त हो सकते हैं। हम विभिन्न भाषा भाषियों तथा विभिन्न जातियों के मनुष्यों के सम्पर्क में आते हैं, उन्हें हमें निकट से देखने का अवसर प्राप्त होता है। देशाटन करने से हमारी बहुत सी बातों का अन्ध विश्वास समाप्त हो जाता है। बहुत से व्यक्तियों के विषय में हमारी भ्रमात्मक धारणायें समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार देशाटन हमारे हृदय में विश्व-बन्धुत्व की भावना जाग्रत करते हुए हमें सुशिक्षा प्रदान करता है। अतः यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी शक्ति और आर्थिक स्थिति के अनुसार देशाटन से ज्ञाना- करके जीवन को सफल बनायें। हमारे देश में निर्धनता के कारण जनता में देशा- की मनोवृत्ति कुछ कम है। आशा है कि निकट भविष्य में जब देश धन-धान्य से पूर्ण हो जायेगा तब जनता की मनोवृत्ति इस दिशा में भी अग्रसर होगी।

"देश भ्रमण है ज्ञान वृद्धि का उत्तम साधन।
अतः चाहिये हमें कभी करना देशाटन॥"

४. रामचरितमानस की देन

अथवा

मेरा प्रिय ग्रंथ और उसकी विशेषतायें

"भारी भव सागर से उतारतो कवन पार।
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो॥"

किसी कवि की यह उक्ति अपने में कितनी सत्य है, इसका अनुमान आज के घोर अनैतिक समय में भी रामचरितमानस के प्रचार एवं प्रसार से लगाया जा सकता है। सम्भवतः ही कोई हिन्दू घर ऐसा हो, जिसमें रामचरितमानस की एक प्रति न हो, चाहे वह छोटी हो या मोटी, नयी हो या पुरानी। बड़े से बड़े महलों से लेकर निर्धन की वैभवहीन झोपड़ी तक में इसके प्रति सम्मान, आदर और श्रद्धा है। सभी लोग चाहे वे थोड़े पढ़े लिखे हों या बहुत, चाहे वे धार्मिक दृष्टि से पढ़ते हों या शास्त्रीय दृष्टि से, चाहे वे ऐतिहासिक दृष्टि से पढ़ते हों या राजनीतिक दृष्टि से, इससे समान रूप से लाभान्वित होते हैं। निःसन्देह रामचरितमानस का गम्भीरतापूर्वक मनन करने वाला व्यक्ति एक श्रेष्ठ नागरिक बन सकता है, एक श्रेष्ठ सामाजिक बन सकता है, एक श्रेष्ठ गृहस्थी बन सकता है, एक श्रेष्ठ समाज सुधारक बन सकता है, एक श्रेष्ठ राजनीतिक नेता बन सकता है, एक परम विनम्र भगवद् भक्त बन सकता है और एक उच्च ज्ञानी बन सकता है तथा एक कुशल कर्मकाण्डी बन सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रामचरितमानस के अनुसार अपना जीवन-यापन करने वाला क्या नहीं बन सकता? रामचरितमानस केवल लौकिक उन्नति का ही साधन

मात्र नहीं है, पारलौकिक उन्नति और समृद्धि का भी साधन है। संसार-रूपी समुद्र के सन्तरण के लिए रामचरितमानस एक विशाल नौका है, जिसके अनुसार चलकर मनुष्य सरलता से ही भवसागर से पार उतर जाता है। यह वह रसायन है जिसका सेवन करने के बाद संसार के भयानक रोग भी मनुष्य पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। यह वह चिन्तामणि है, जिसके हाथ में आते ही मनुष्य के आगे प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है, अन्धकार ठहरता तक नहीं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष उस व्यक्ति से दूर खड़े रहते हैं जो रामचरितमानस को अपने जीवन का पथ-प्रदर्शक मानता है और उसकी बताई हुई रीति और नीतियों पर चलता है। रामचरितमानस का महत्व आज केवल भारतवासियों की दृष्टि में ही नहीं, अपितु विदेशी विद्वानों ने भी इसके मर्म को समझा है और अपनी भाषाओं में इसका अनुवाद किया है तथा अध्ययन करके लाभान्वित हो रहे हैं। यह एक ऐसा अमूल्य रत्न है, जिसे प्राप्त करके मनुष्य को और कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं रहती। तुलसी ने रामचरितमानस में शाश्वत धर्म और विश्व धर्म की स्थापना की है। धर्म और अधर्म की परिभाषा करते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं—

> **रामचरित मानस से शिक्षा**
> १. प्रस्तावना—रामचरितमानस का महत्व।
> २. तत्कालीन स्थिति और रचना का उद्देश्य।
> ३. रामचरितमानस से शिक्षा—
> (क) आचरण की शिक्षा।
> (ख) धार्मिक शिक्षा।
> (ग) सामाजिक शिक्षा।
> (घ) राजनीतिक शिक्षा।
> ४. पूर्ववर्ती और परवर्ती जनता का कल्याण।
> ५. उपसंहार।

"परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥"

रामचरितमानस की रचना ऐसे समय में हुई थी, जबकि हिन्दू जनता समस्त वीर्य और पराक्रम खो चुकी थी। विदेशियों के चरण भारत में जम चुके थे। हताश और हतप्रभ जनता अपना नैराश्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही थी। सामाजिक जीवन एक विषैली गैस बन गया था। यह समय दो विरोधी संस्कृतियों, साधनाओं, धर्मजातियों और जातियों का सन्धिकाल था। देश की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति विशृंखलित हो गई थी। पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष की खाइयाँ इतनी गहरी होती जा रही थीं कि उनका पटना असम्भव नहीं, तो मुश्किल अवश्य था। अपने उचित पथ-प्रदर्शक के अभाव में जनता किंकर्त्तव्यविमूढ बन गई थी। ईश्वरवाद बढ़ता जा रहा था। कुछ लोग भगवान् की वेदी पर विष्णु और शिव का बलिदान करके एकता का नारा बुलन्द कर रहे थे, जो कि जनता के अनुकूल नहीं था। इन्हीं परिस्थितियों में लोकनायक तुलसीदास भारत-भूमि पर अवतरित हुए और इन्हीं परिस्थितियों की काली छाया में रामचरितमानस का सृजन हुआ, जिसने डूबती हुई हिन्दू जनता को, नष्ट होती हुई सामाजिक मर्यादा को, विशृंखलित होती हुई वर्ण-व्यवस्था को, बढ़ती हुई मतादर्श भिन्नता को, असामयिक आन्तरिक कलह को और लुप्त होती हुई आशा को बचा लिया।

गोस्वामी जी भगवान् राम के अनन्य भक्त होते हुए भी, एक सच्चे महान् समाज सुधारक तथा लोकनायक थे। उन्होंने राम के रूपक के द्वारा जनता को आत्म-कल्याण और आत्म-रक्षा के अमोघ मन्त्र प्रदान किए। भिन्न भिन्न प्रकार के चरित्र-चित्रण से भिन्न भिन्न आचरणों की शिक्षा प्रदान की, जो कि मानव जीवन की उन्नति के लिए परम आवश्यक है। तुलसीदास जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श चरित्र द्वारा मनुष्य के उत्कृष्ट आचार का उदाहरण प्रस्तुत किया है। रामचरितमानस का प्रत्येक पात्र किसी न किसी विशेष गुण और किसी आदर्श आचरण की प्रतिष्ठा करता है। राम का बाल्यकाल, गुरु-गृह गमन, विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा, सीता-स्वयंवर, परशुराम जी को क्षमा करना, वनगमन, राक्षस-संहार, सुग्रीव और विभीषण की मैत्री, रावण-वध तथा अयोध्या के राजा के रूप में राम के आदर्श चरित्र से तुलसी पग पग पर अपने पाठकों को एक श्रेष्ठ आचरण और मर्यादित जीवन की शिक्षा देते हैं। राम का अपने कनिष्ठ भ्राताओं के साथ व्यवहार, प्राणपण से पिता की आज्ञा-पालन, माताओं की समान भाव से सेवा, एक आदर्श भ्रातृ-प्रेम, पितृ भक्ति और मातृ-सेवा आदि के उदाहरण हैं। सीता भारतीय महिलाओं के समक्ष ऐसा आदर्श उपस्थित करती हैं, जो उन्हें युगों तक प्रकाश प्रदान करता हुआ सदाचरण की शिक्षा देता रहेगा। पति-सेवा व पति-व्रत धर्म का ऐसा उज्ज्वलतम उदाहरण भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टिगोचर नहीं होता। 'भरत का त्याग' भी भारतीय संस्कृति में सभ्यता की एक प्रकाशपूर्ण ज्योति है। रामचरितमानस पढने के पश्चात् किसके मन में अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति उदात्त भावनाएँ जाग्रत नहीं होतीं या कौनसी स्त्री अपने आचरण को सीता के समान शुद्ध और पवित्र बनाना नहीं चाहती? राम का बालि-वध और सुग्रीव-मैत्री की घटनाएँ एक आदर्श मित्रता का स्वरूप उपस्थित करती हैं। प्रत्येक मित्र मानस श्रवण के पश्चात यह अनुभव करने लगता है, कि मेरी भी मित्रता राम और सुग्रीव जैसी हो। विभीषण की रक्षा से तुलसी ने यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य को प्राण-पण से अपने शरणागत की रक्षा करनी चाहिए। कृतज्ञता का हनुमान और राम जैसा प्रसङ्ग दूसरा क्या हो सकता है? साधारण से साधारण व्यक्ति भी यदि हमारे साथ भलाई करता है तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम कृतज्ञ बनें। वनवास के समय राक्षसों का संघर्ष, सीताहरण, लक्ष्मणमूर्छा आदि ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें राम का चरित्र अग्नि में तपाए हुए स्वर्ण की भाँति शुद्ध रूप में पाठक के समक्ष आ जाता है जिससे वह धीरता, वीरता, कृतज्ञता आदि गुणों को स्वयं ही अपनाने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रामायण का प्रत्येक पात्र, प्रत्येक घटना और प्रत्येक कथा किसी न किसी विशेष गुण और शुद्धाचरण की शिक्षा देती है।

रामचरितमानस भारतीय जनता का एक महान् धार्मिक ग्रन्थ है। आज तुलसी के प्रताप से ही राम भक्ति समस्त भारत में व्याप्त है। राम ब्रह्म के रूप में देखे जाते हैं। अशक्त और निर्धन व्यक्ति भी 'निर्बल के बल राम' कहकर शान्ति और सुख की श्वास लेता है। यद्यपि तुलसी से पूर्व महाकवि वाल्मीकि ने भी वाल्मीकि रामायण में राम का जीवन वृत्त प्रतिपादित किया था, परन्तु वह संस्कृत भाषा में होने के कारण केवल संस्कृतज्ञों तक ही सीमित रहा। तुलसी ने अपने महाकाव्य में ज्ञान, भक्ति और धर्म की विभिन्न धार्मिक धाराओं का समन्वय स्थापित कर आर्य-धर्म का फिर से प्रतिपादन किया है। हमारा धर्म एक दूसरे से लड़ने की

और परस्पर ईर्ष्या करने की शिक्षा नहीं देता। यह सहयोग और समन्वय सिखाता है। तुलसी ने शैव, शाक्त और वैष्णवों के पारस्परिक धार्मिक मतमतान्तरों को समाप्त कर तथा कोरे ब्रह्मज्ञानियों को अपने उक्ति-वैचित्र्य से हतप्रभ करके समाज के समक्ष एक ऐसे सरल धर्म का स्वरूप प्रस्तुत किया कि जनता स्वतः ही इस ओर आकर्षित हो उठी और तुलसी के स्वर मे स्वर मिलाकर कहने लगी कि—

"सियाराममय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।"

रामचरितमानस के धार्मिक उपदेश, दुराचारी, पापी, अत्याचारी और अधार्मिक व्यक्ति को भी सन्मार्ग पर लाकर एक श्रेष्ठ व्यक्ति बना सकते हैं। कितने पथ-भ्रष्ट व्यक्ति रामचरितमानस के प्रताप से ही महान् बन गये, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

तुलसी ने रामचरितमानस में तत्कालीन भ्रष्ट समाज का चित्र भी उपस्थित किया है और यह बताया है कि समाज कैसा होना चाहिए, सुसंगठित समाज की स्थापना और व्यवस्था कैसे हो सकती है। एक समाज-सुधारक के नाते तुलसीदास जी ने समाज की भी पुनर्व्यवस्था की। उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की वर्ण-व्यवस्था तथा ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम-व्यवस्था को सुसंगठित समाज के लिए आवश्यक बताया है। वर्णाश्रम-व्यवस्था पर आधारित समाज कभी विशृंखलित नहीं हो सकता। सामाजिक उन्नति के लिये,जो प्रयत्न किये जा रहे हैं आज से शताब्दियों पूर्व गोस्वामी जी ने भी वही प्रयत्न किये थे। अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा, लोकतन्त्रात्मक भावनायें, प्रत्येक जाति और वर्ण की मर्यादा आदि की शिक्षा के लिये ही राम ने सीता का परित्याग किया गुरु को प्रणाम न करने पर काक-भुशुण्ड का अधःपतन, छोटे भाई की स्त्री को अपनी पत्नी बनाने के फलस्वरूप बालि का वध, ऐसे सभी प्रसंग सामाजिक शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं। तुलसीदास जी ने लिखा है—

"अनुज वधु, भगिनी, सुत नारी।
सुन सठ ये कन्या सम चारी॥"

रामचरितमानस और राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। तत्कालीन समाज में दूषित राजनीति का कुचक्र चल रहा था। रामचरितमानस के पात्रों और घटनाओं के माध्यम से तुलसीदास जी ने जनता को वह मन्त्र दिया जिससे वह जीवित रहकर अत्याचारियो का दमन कर सके। किस प्रकार राजा को प्रजा की सुख-समृद्धि का ध्यान रखना चाहिये, प्रजा के हितों और अधिकारो के संरक्षण के लिए राजा को क्या-क्या करना पड़ता है और राजा के कार्य से असन्तुष्ट प्रजा राजा को अपदस्थ भी कर सकती है—इन सब बातों का पूर्ण विवेचन रामचरितमानस में यथा-स्थान प्राप्त होता है। गोस्वामी जी के अनुसार राजा का जीवन प्रजा का जीवन है, इस-लिए राजा और प्रजा के जीवन मे कोई व्यवधान रेखा नहीं होनी चाहिये, राजा का व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन एक होना चाहिए। साम, दाम, दण्ड, भेद आदि नीतियो में निपुण होते हुए राजा को आदर्श और सच्चरित्र होना चाहिए। वह अपनी प्रजा का एकमात्र पिता है। जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी रहती है वह नर्कगामी होता हैं। गोस्वामी जी ने लिखा है—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवस नरक अधिकारी ॥"

यदि राजा समदृष्टा होगा, तो प्रजा सुखी और शान्त रहेगी और यदि राजा की नीति भेदभाव की हुई तो समाज मे एक दिन वैषम्य की अग्नि भड़क उठेगी। गोस्वामी जी ने लिखा है—

"मुखिया मुख सों चाहिए, खान पान कहुँ एक ।
पाले पोसे सकल अङ्ग, तुलसी सहित विवेक ॥"

हिन्दू धर्म, हिन्दू-जाति, हिन्दू संस्कृति और सभ्यता का जितना उपकार गोस्वामी जी ने रामचरितमानस के द्वारा किया है, सम्भवत ही किसी दूसरी साहित्यिक कृति ने किया हो। उनके दिव्य सन्देश ने मृतप्राय हिन्दू जाति के लिये संजीवनी का काम किया, जिससे जनता मे सगठन व सामञ्जस्य की भावना उत्पन्न हुई। आज भी वह इसी दिव्य सन्देश से अनुप्राणित हो रही है। आज भी हमारे कर्त्तव्यों की दिशा का निर्धारण गोस्वामी जी की सूक्तियो पर आधारित रहता है। परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से हमने अपने पूर्वजो के अनुभव-सिद्ध उपदेशो को ग्रहण करना छोड दिया है और विदेशियों के चमक-दमक के सिद्धान्तों को ग्रहण करते जा रहे हैं। यही कारण है कि समाज उत्तरोत्तर अशान्ति और कलह का घर बनता जा रहा है, आपस में असहयोग और असमानता बढ़ती जा रही है, ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि की लपटें हमे झुलसाये डाल रही हैं। यदि हम अपना, अपने समाज का और अपने देश का कल्याण चाहते हैं, तो हमे अपने पूर्वजो के दर्शाये हुये मार्ग पर चलना होगा, रामचरितमानस जैसे महान् ग्रथो की शिक्षाओं को आत्मसात् करना होगा, तभी हमारी सर्वांगीण उन्नति सम्भव है। रामचरितमानस की महत्ता और कल्याणकारिता के विषय मे बेनी कवि ने लिखा है—

"बेदमत सोधि, सोधि, सोधि कै पुरान सबै, सन्त औ असन्त के भेद को बतावतो ।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव, कौन राम नाम की चर्चा चलावतो ॥
बेनी कवि कहै मानो मानो हो प्रतीति यह, पाहन हिये मे कौन प्रेम उपजावतो ।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार, जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो ॥"

५. चाँदनी रात में नौका-विहार

पूर्णिमा थी, चन्द्रदेव अपनी मुस्कराहट से विश्व को आनन्द-विभोर कर रहे थे। शीतल मन्द सुगन्धित वायु धीरे धीरे गवाक्षो से मेरे कक्ष मे प्रवेश करती और मेरे श्रांत मस्तिष्क को फिर से ताजा बना देती। सहसा तीन-चार साथियों ने कमरे मे प्रवेश किया और कहा, "हमारा तो आज पढ़ने का मूड नहीं है, पढने तुम्हे भी नहीं देंगे, आज हम लोगो ने नौका-विहार का निश्चय किया है, बोलो—तुम्हारा क्या विचार है?" मैं भी पढते पढ़ते ऊब चुका था, बोला—"जरूर चलूँगा।" धीरे-धीरे हम लोग दस साथी हो गये, दो-तीन साथी ऐसे भी लिये जो

नौका-विहार

१ भूमिका।
२ प्रस्थान।
३ प्राकृतिक दृश्य।
४ उपसंहार।

गाने-बजाने में निपुण थे। हम दशाश्वमेध घाट की ओर चल दिये। विशाल घाटों के नीचे पंक्तिबद्ध नौकाएँ एक मनोरम दृश्य प्रस्तुत कर रही थीं। काशी की नौकाएँ दो मन्जिले मकान की तरह होती हैं, बहुत बड़ी एक सुन्दर सी नौका तय की गई, चतुर नाविक ने मुस्कराकर पाँच रुपये माँगे, मामला चार रुपये में तय हुआ। नाव अच्छी थी, चाँदनी बिछी हुई थी, मसनद लगी हुई थी। बैठने से पूर्व कुछ शंकर-भक्त साथियों ने भंग की फकी लगाई और गंगाजल चढ़ाया और नौका में बैठना प्रारम्भ किया।

निपुण नाविक ने "जय गंगे" कहकर नाव को किनारे से खोल दिया। पतवार के संकेत पर, नृत्य करने वाली नर्तकी की तरह डगमगाती हुई नौका अपने चरण बढ़ाने लगी। क्षितिज की गोद से चन्द्रदेव कुछ ऊपर उठ चुके थे, अवनि अम्बर पर शुभ्र ज्योत्स्ना बिखेर रही थी। थिरक-थिरक कर नृत्य करने वाली तरंग मालाओं से पवन अठखेलियाँ कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो हम किसी स्वर्ग में पहुँच गए हों। इस किनारे पर विश्वनाथ की काशी और उस किनारे पर रामनगर। वातावरण शांत और स्निग्ध था। गायक और वादक मित्रों से आग्रह किया गया, बस फिर क्या था संगीत छिड़ा, गंगा की हिलोरों के साथ हृदय भी हिलोरें लेने लगा। यदि सिनेमा का संगीत होता तो समझ में आ जाता था और यदि कभी पक्के गाने की बारी आ जाती तो समझ में न आता, परन्तु उसकी लय और ध्वनि हमें मन्त्रमुग्ध कर देती थी। बीच-बीच में तालियाँ पिटती, वाह-वाह की आवाजें लगती और कोई-कोई मनचला साथी कभी-कभी पंक्ति विशेष की पुनरावृत्ति की प्रार्थना भी करता।

चन्द्रिकाचर्चित यामिनी की निस्तब्धता चारों ओर फैली हुई थी। दोनों किनारों के बीच श्वेतसलिला भागीरथी अपनी तीव्र गति से प्रियतम जलनिधि से मिलने के लिए मिलन गीत गाती, इठलाती, पूर्व की ओर अग्रसर हो रही थी। जहाँ तक दृष्टि जाती जल ही जल दृष्टिगोचर होता था। एक किनारे पर काशी विद्युत बल्बों से जगमगाती दिखाई पड़ रही थी, दूसरी ओर रामनगर राजसी वैभव की याद दिला रहा था, परन्तु चाँदनी के प्रकाश में विद्युत बल्ब धूमिल प्रतीत हो रहे थे। दूर दिशाओं में वृक्षों की फैली हुई मौन पंक्तियों को देखकर सहसा साधनारत साधक स्मरण हो जाता था। भागीरथी के वक्षस्थल पर हिलोरें लेती हुई छोटी-छोटी लहरें तथा उन पर पड़ता हुआ चन्द्र-प्रकाश उन्हें हीरे के हार की समता दे रहा था और हमारी नौका हंसिनी की तरह मन्थर गति से आगे बढ़ती जा रही थी। चन्द्र और तारागणों का प्रतिबिम्ब गंगा-जल में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था मानो चन्द्रमा जान्हवी के पवित्र जल में अनेक प्रकार से क्रीड़ा कर रहा हो। कभी-कभी मछलियाँ हमारी नाव के पास आकर अपना मुख दिखा जाती परन्तु हमें खाली हाथ देखकर तुरन्त डुबकी लगा लेती और हमारी रिक्तहस्तता की निन्दा करती हुई चली जातीं। सर्वत्र निस्तब्धता का साम्राज्य था, प्रकृति-सुन्दरी लहरों के नूपुर बजा रही थी। चंचल जल पर इन्दुलक्ष्मी नृत्य-निरत थी और हमारी नाव दक्षिणी किनारे की ओर चली जा रही थी।

कुछ समय के लिए संगीत बीच में बन्द कर दिया गया परन्तु साथियों के हृदय में फिर इच्छा हुई कि कार्यक्रम चलना चाहिए, गायक बन्धुओं से कुछ सुनने का निवेदन किया गया। बस फिर क्या था संगीत की स्वर-लहरियाँ आकाश में स्वरमत

हो उठने लगीं। कौनसा राग गाया जा रहा था इसका तो कुछ पता ही नहीं, परन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि मेरा मन बाँसों उछल रहा था। संगीत की मधुर ध्वनि ने सभी को मन्त्र मुग्ध कर दिया था। हम लोग ही नहीं, हमारा नाविक भी मस्ती से झूमने लगा। उसके हाथ की पतवार, जो प्रत्येक क्षण बड़ी शीघ्रता से घूमती थी, अब उसमें न उतनी तीव्रता थी और न त्वरा थी, न जाने वह अपने जीवन के अतीत की कौनसी मधुर स्मृति मे अपने को भूले जा रहा था। तभी हम लोगों ने उसकी तन्द्रा भंग करते हुये कहा, "हम लोग कुछ क्षणो के लिए उस पार उतरना चाहते हैं, बोलो रुकोगे ?" उसने मस्तक नीचे किए हुए ही कुछ देर हाथ की उङ्गली से आँखों की कोर पोछते हुए स्वीकारात्मक सिर हिला दिया। अब नौका का प्रवाह दूसरे किनारे की ओर था, जहाँ नीरवता थी, जंगल था और जंगली जानवर थे। उस शून्य तट पर हम उतर पड़े। मुझे सहसा प्रसाद की ये पंक्तियाँ स्मरण हो आईं—

"नाविक ! इस सूने तट पर, किन लहरों मे खे लाया,
इस बीहड़ बेला में क्या, अब तक था कोई आया।"

हम लोग लघुशंका इत्यादि से निवृत्त होकर प्रसन्न मुद्रा मे आकाश को देख रहे थे। सुधास्नात चन्द्रिका मन को मुग्ध किये दे रही थी। सहसा आकाश के कोने में एक काली बदली दिखाई पड़ी, हवा तेजी से चल रही थी, परन्तु अब उसमें कुछ धीमापन आ गया था। हमारे देखते ही देखते उस छोटी-सी बदली ने समस्त आकाश आच्छादित कर दिया, कालिमा की गहनता क्षण-क्षण बढ़ती जा रही थी। सभी ने विचार किया कि जल्दी ही लौटना चाहिये, कहीं ऐसा न हो कि वर्षा होने लगे। गंगा का कल-कल निनाद अब कुछ भयङ्करता धारण कर रहा था। हम लोग तुरन्त नाव पर चढ़ गए और मल्लाह से शीघ्रता करने के लिए प्रार्थना की। बड़ी कठिनाई से हमारी नाव ५० गज की दूरी तय कर पाई होगी कि एक दो बूँदें गिरीं। जिसके ऊपर गिरीं वही पहले चिल्लाया, वर्षा आ गई। सब ऊपर को देख ही रहे थे कि बूँदें पड़ने लगीं। मल्लाह बड़ी तेजी से पतवार चला रहा था। रुक-रुक कर बादल गरजते और बीच-बीच मे बिजली चमक जाती। गंगा का जल बीच-बीच मे गोलाकार होकर भयानक भँवरों की सूचना दे रहा था। केवल बिजली की गड़गड़ाहट और जंगली जानवरों के रोने की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। अब वर्षा के वेग मे भयानकता थी और जल-बिन्दुओं के आकार में स्थूलता। परन्तु किनारा अब अधिक दूर नहीं था, कुछ ही क्षणो मे नाव किनारे पर आ लगी। हम लोगो ने कूद-कूद कर भागना शुरू किया और घाट पर बने हुए सामने वाले मन्दिर में आकर शरण ली। मल्लाह अब भी हमारे साथ था, क्योंकि उसे हमसे किराया लेना था। उसे किराया देकर हमने रिक्शे लिए। वर्षा और रात का समय देख रिक्शे वालों ने हमसे दुगने पैसे माँगे। इस समय और दूसरा कोई उपाय न देखकर हमने उनके माँगे हुए पैसे स्वीकार कर लिए।

सारा जन समूह निद्रा देवी की गोद मे स्वप्निल संसार मे विचरण कर रहा था। केवल नगर के प्रहरी, कुत्ते तथा सड़कों के विद्युत बल्ब ही जाग रहे थे, मानो वे हमारी प्रतीक्षा में हों। होस्टल के बन्द द्वार पर जाकर हमने चौकीदार को आवाज लगाई। वह बेचारा वास्तव में हमारी प्रतीक्षा में बैठा था। अपने चिर-सहचर हुक्के को हाथ मे लिए उसने दरवाजा खोला और हमने अपने-अपने कमरों की शरण ली।

❂

६. सिनेमा और समाज

आज के भौतिकवादी युग मे विज्ञान की सर्वाङ्गीण उन्नति अपना एक विशेष महत्व रखती है। प्रकृति के अनेकानेक गूढतम रहस्यों का उद्घाटन आज के विज्ञान की प्रमुख विशेषता है। विज्ञान ने जितने भी नवीन आविष्कारों को जन्म दिया है, चलचित्र उनमे सर्वाधिक लोकप्रिय साधन है। यदि आपको वास्तविक साम्यवाद के दर्शन करने हैं तो आप चलचित्र के भवन में कीजिए। उसके हृदय में साम्य और अभेद है। चाहे निर्धन हो या धनवान, राजा हो या प्रजा, किसान हो या जमीदार, पिता हो या पुत्र, शत्रु हो या मित्र, सभी का समान रूप से स्वागत करने के लिए उसकी भुजाएँ फैली हुई हैं। सर्वव्यापकत्व की दृष्टि से अब वह ईश्वर की कोटि मे भी आने लगा है। छोटा नगर हो या बड़ा, आपको चलचित्र का भव्य प्रासाद वहाँ अवश्य ही दृष्टिगोचर होगा। इतनी सर्वप्रियता सम्भवतः मनोरंजन के अन्य किसी साधन को प्राप्त नहीं हुई है।

भारतीय जनता के लिए चलचित्र कोई नवीन वस्तु नहीं। भारतवर्ष म सहस्रों वर्षों से नाटक परम्परा चली आ रही है और अन्य देशों मे भी जनता के मनोरजन होते थे, मण्डलियाँ होती थीं, सारी-सारी रात नाटक खेले जाते थे। ग्रीस और रोम इन नाटकों के प्रसिद्ध रंगस्थली थे; परन्तु उनमे सर्वसाधारण का प्रवेश इतना सुलभ नहीं था जितना कि आधुनिक युग के चलचित्रों मे। उन नाटक मण्डलियो मे और भी बहुत सी न्यूनताएँ थीं—सर्वप्रथम प्रेक्षागार सीमित होते थे, रंगमंच की असुविधा के कारण नाटक वास्तविकता के अधिक निकट नही आ पाते थे, अभिनेता भी इतने कुशल कलाकार नहीं होते थे, जो अपनी कला से प्रेक्षकों का हृदय स्पर्श कर सकें। शनैः-शनैः नाटकों मे छाया-चित्रों का प्रवेश हुआ। परन्तु इन छाया-चित्रों की आकृति धुंधली होती थी। इनमें वह आकर्षण और सजीवता नहीं होती थी। कालान्तर मे छायाचित्र भी विलुप्त हो गए और उनका नवीन रूप आधुनिक चित्रपट के रूप में आरम्भ हुआ।

> **सिनेमा और समाज**
>
> १. भूमिका।
> २. आविष्कार।
> ३. देश भर में प्रचार।
> ४. उसका प्रभाव।
> ५. शैक्षणिक महत्व।
> (लाभ)
> ६. वर्तमान अवस्था।
> (हानि)
> ७. चित्रकारों का कर्त्तव्य।
> ८. उपसहार।

चलचित्रो का आविष्कार अमेरिका निवासी मिस्टर एडीसन ने सन् १८९० में किया था। अनेक स्थिर चित्रों को एक निश्चित गति से तीव्र प्रकाश द्वारा श्वेत पट पर प्रक्षिप्त कर इसकी सृष्टि की जाती थी। भारतवर्ष मे सर्वप्रथम सन् १९१३ मे हरिश्चन्द्र नामक फिल्म बनी थी, परन्तु ये चलचित्र मूक और अवाक् (न बोलने वाले) थे, किन्तु उनमे गतिशीलता मनुष्य के समान होती थी। सन् १९२८ में सवाक् (बोलने वाले) चलचित्र का श्रीगणेश हुआ और इस परम्परा की सबसे पहली फिल्म "आलमआरा" थी, जो सन् १९३१ में बम्बई की इम्पीरियल फिल्म कम्पनी ने बनाई थी। सहसा जनता का ध्यान इस ओर

अधिक आकृष्ट हुआ। सवाक् चलचित्रों ने प्रारम्भ में अच्छे गायकों व वादकों को अपनी ओर आकृष्ट किया। परिणामस्वरूप सुप्रसिद्ध गायक और वादक चलचित्रों में कार्य करने लगे और चलचित्रों की प्रतिष्ठा बढ़ी, जिससे यह व्यवसाय और भी अधिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। पारिश्रमिक के आधिक्य के कारण प्रतिभा सम्पन्न संचालकों तथा कुशल कलाकारों का सहयोग मिलने लगा। कई प्रसिद्ध कम्पनियाँ खुलीं, जिनमें इम्पीरियल, न्यू थ्येटर, रणजीत और प्रभात कम्पनियों ने जनता को अत्यधिक मुग्ध किया। निर्देशक श्री शान्ताराम तथा अभिनेता चन्द्रमोहन ने अपनी कुशल कलाओं से चलचित्र प्रेमियों को बहुत प्रभावित किया।

देश में जिस तीव्रगति से चलचित्रों का प्रचार हुआ, इससे उनकी सर्वप्रियता स्पष्ट है। इस व्यवसाय मे अमेरिका का प्रथम स्थान है, तो भारतवर्ष का द्वितीय। प्रेक्षकों की संख्या-वृद्धि के साथ साथ सिनेमा गृहों का निर्माण-कार्य भी उत्तरोत्तर वृद्धिशील है। इसका मुख्य कारण है भारतवर्ष में मनोविनोद के साधनों का अभाव तथा शिक्षा की न्यूनता के कारण रुचि-वैभिन्नय की कमी। परन्तु इतना अवश्य है कि कम व्यय और कम श्रम से मानव अपने जीवन के संघर्षमय क्षणों में से कुछ क्षण प्रेक्षक गृह में बैठकर बिता देता है और आत्मानुभूति में हँस और रो भी देता है।

इन चलचित्रों की उपयोगिता जहाँ मनोरंजन के लिए है वहाँ दूसरी ओर ज्ञान-संवर्धन के लिए भी इनका महत्व कम नहीं है। जिन देशों की सामाजिक प्रथाओं और भौगोलिक परिस्थितियों को हमने केवल पुस्तकों में ही पढ़ा है और अध्यापकों से सुना है, उन्हें हम प्रत्यक्ष रूप से चलचित्रों में देखकर ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। महत्वपूर्ण घटनाओं की फिल्में तैयार की जाती हैं, जैसे—नेहरू जी की रूस तथा अमेरिका यात्रा तथा गांधी जी की प्रार्थना सभाओं के दृश्य, इन चलचित्रों द्वारा वे मनुष्य भी जो उन घटनास्थलों पर उपस्थित नहीं थे आनन्द ले सकते हैं। गांधी जी की फिल्म को देखकर आज से सौ वर्ष पश्चात् भी लोग गांधी जी के साक्षात् दर्शन कर सकेंगे।

दिन भर का थका माँदा मजदूर भी शाम को अपना जी बहलाना चाहता है। उस समय एक-दो रुपया खर्च करके वह तीन घण्टे तक सुखद मनोरंजन प्राप्त करता है। सिनेमा के आविष्कार से पूर्व निर्धनों और गरीबों को ऐसा मनोरंजन अप्राप्य न सही पर दुष्प्राप्य अवश्य था। परन्तु आज के युग में यह सभी वर्गों के लिए मनोरंजन का सुलभ साधन है।

सुना जाता है कि ब्रह्मा चतुर्मुख थे अर्थात् उनके चार मुख थे और प्रत्येक मुख से उन्होंने एक-एक वेद की रचना की, इस प्रकार वेद भी चार हो गये। ब्रह्मा की भाँति चलचित्र भी चतुर्मुख हैं और वे हैं—काव्य, चित्र, संगीत और अभिनय। इन्हीं के समन्वय से वे सृष्टि का निरूपण करने में समर्थ होते हैं। प्रेक्षक बड़ी सुगमता से इन जीवनोपयोगी ललित कलाओं को सिनेमा के माध्यम से आत्मसात् कर सकता है और कला के प्रति उसकी अभिरुचि जाग्रत हो सकती है। परन्तु इन सब बातों के लिए बुद्धिमान और विवेकी दर्शकों की आवश्यकता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी चलचित्रों की उपयोगिता बढ़ती जा रही है। प्रौढ़ और

अल्पवयस्क छात्रों की शिक्षा के लिए चलचित्रों का माध्यम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिन विषयों को बच्चे पुस्तकों या अध्यापकों की वाणी से ग्रहण नहीं कर पाते उन विषयों को चलचित्र में देखकर आसानी से हृदयङ्गम कर लेते हैं। इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों में मौलिक शिक्षा कोमलमति बालकों के लिए बड़ी जटिल होती है, परन्तु फिल्मों द्वारा उनके हृदय पर उनके विषयों का प्रत्यक्ष तथा चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है। प्रौढ पुरुषों पर खेती के नए साधनों, नवीन उद्योगों तथा स्वास्थ्य रक्षा के सम्बन्ध में चलचित्रों द्वारा चिरस्थायी प्रभाव डाला जा सकता है। विदेशों में इस पद्धति पर विशेष बल दिया जाता है।

सामूहिक सुधार की दृष्टि से भी इन चलचित्रों का विशेष महत्व है। समाज की अनेक कुरीतियों तथा निन्द्य कृत्यों की आलोचना ही नहीं अपितु कटु आलोचना द्वारा उन्हें कम करने में चलचित्रों ने पर्याप्त योगदान दिया है। कई फिल्में ऐसी बनीं जिनमें दहेज प्रथा का नग्न नृत्य प्रस्तुत किया गया, दहेज प्रथा की कहानियाँ तथा उसके दुष्परिणामों को देखकर प्रेक्षक, प्रेक्षक-गृहों में ही आँसू बहाने लगते थे। अछूतोद्धार की भावना को लेकर भी कई फिल्में तैयार हुईं। इस प्रकार बाल-विवाह, बेमेल विवाह आदि समाज की कुरीतियों के बहिष्कार में चलचित्रों ने पर्याप्त सहायता प्रदान की है। शिक्षा और उपदेश की दृष्टि से धार्मिक फिल्मों का अपना एक अलग स्थान है।

जहाँ एक वस्तु में गुण हैं, वहाँ अवगुण भी हैं, जहाँ पुण्य हैं वहाँ पाप भी हैं। जो वस्तु वरदान है, वह अभिशाप भी है। यही बात हमारे चलचित्रों की है। जहाँ इनसे समाज को इतने लाभ हैं वहाँ इनसे अधिक हानियाँ भी हैं, परन्तु आजकल कुछ ऐसा वातावरण चल रहा है कि इन चलचित्रों से हानि की ही अधिक सम्भावना की जा रही है क्योंकि अधिकांश फिल्म ऐसी बनाई जाती हैं, जिनमें जनता का सस्ता मनोरंजन होता है। कामोत्तेजक दृश्यों के बिना तो सम्भवतः कोई चित्र बनता ही नहीं, नग्न शरीर, वे ही आकर्षक हाव-भाव, कटाक्षपूर्ण नृत्य की मुद्राएँ और वे ही रोमांचकारी चुम्बन। इन कुवासनापूर्ण चित्रों को देखकर हमारे कोमल-बुद्धि नवयुवक पथभ्रष्ट कैसे न होंगे। सिनेमा के संगीत ने जनता के हृदय पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। उनमें सभी गाने बुरे हों ऐसी भी बात नहीं है। किसी-किसी पद्य-पंक्ति में साहित्य कूट-कूट कर भरा होता है और कहीं तो अद्वैत और अभेद के दर्शन होते हैं। परन्तु सड़कों पर गाने वाले, तांगे और रिक्शा वाले, गलियों में गाने वाले छोटे-छोटे बच्चे उन्हीं पंक्तियों को पकड़ते हैं, जिनसे कुवासना की गन्ध आती है। माता-पिता की आँखों से बचकर प्रेम का बिरवा लगाने वाले युवक और युवतियाँ, बिना सोचे-समझे वैसा ही करने लगते हैं जैसा उन्होंने सिनेमा में देखा था। आए दिन हम लोग ऐसी दुःखद घटनाओं के समाचार अखबारों में पढ़ते हैं। चलचित्रों द्वारा भारतीय नवयुवकों का इस प्रकार का संस्खलन बड़ी लज्जा की बात है। इस देश का और देश की भोली जनता का दुर्भाग्य है।

इसके अतिरिक्त मनुष्य इस व्यसन में फँसकर परिश्रम से कमाए हुए धन का अपव्यय भी करता है। बहुत से लोगों की रोजाना या सप्ताह में तीन-चार दिन सिनेमा जाने की आदत पड़ जाती है, इससे पैसे का दुरुपयोग होता है। समय की

दृष्टि से भी यह एक समय-विनाशक दुर्व्यसन है। जितना समय हम सिनेमा देखने में खर्च करते हैं, यदि इतना समय हम पढ़ने-लिखने में बिताएँ तो विद्या के क्षेत्र में बहुत उन्नति कर सकते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी चलचित्र या पर्दे से आने वाला तीव्र प्रकाश नेत्रों को हानि पहुँचाता है। सिनेमा-प्रेमियों की नेत्र ज्योति बहुत जल्दी क्षीण हो जाती है। उनका स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है। इस प्रकार सिनेमा का धन, समय, स्वास्थ्य, तीनों पर ही बुरा प्रभाव पड़ता है।

भारतवर्ष को स्वतन्त्र हुए इकतालीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। देश के सुधार और उन्नति के लिए शासन की ओर से बहुत से ठोस कदम उठाए गए, परन्तु फिर भी चरित्र-हीनता अपनी चरम सीमा तक बढ़ती जा रही है। इसका बहुत कुछ दायित्व आधुनिक चलचित्रों पर ही है। जब तक फिल्म निर्माताओं पर कठोर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाएगा तब तक वे सुधरने के नहीं, क्योंकि उनका व्यवसाय और उनकी सर्वप्रियता इन्हीं कुवासनापूर्ण चित्रों पर आधारित है। बीच में एक दो बार गम्भीर चलचित्र भी जनता के सामने आए, परन्तु अश्लील फिल्मों को देखते-देखते जनरुचि इतनी भ्रष्ट हो गई है कि उन चित्रों को किसी ने पसन्द तक नहीं किया। देश के नैतिक एवम् चारित्रिक उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि फिल्म संसार पर कठोर नियन्त्रण लगाए जाएँ। कुछ दिनों से एक नया तमाशा और शुरू हो गया है कि फिल्म वाले अपने अलग अलग अखबार भी निकालने लगे हैं जिनमें वे ही सर्वांग सुन्दरियों के भद्दे एवं अर्द्धनग्न चित्र और वैसी ही प्रेम गाथाएँ भी होती हैं। आज का नवयुवक पाठक 'सरस्वती' और 'साहित्य सन्देश' पढ़ना पसन्द नहीं करता, परन्तु फिल्म इण्डिया और फिल्मिस्तान अवश्य खरीद लेता है और जब तक आँखों में आकर नींद समा नहीं जाती तब तक उन्हें चाटता रहता है। कौन जाने भारतवर्ष के भाग्य में क्या लिखा है और चारों ओर जहाँ दूषित शक्तियाँ भारतवर्ष को पतन के गर्त में गिराने के लिए तैयार खड़ी हैं वहाँ यह चलचित्र जगत् भी कम नहीं।

फिल्म निर्माताओं को देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझना चाहिये। देश के नव-निर्माण में अगर ये लोग अपना पूर्ण सहयोग दें तो सोने में सुगन्ध का काम हो सकता है। फिल्म-निर्माताओं के सत्य प्रयासों से देश में नव-चेतना, नव जागृति एवम् चरित्र निर्माण, आदि बहुत कुछ सुधार भी सम्भव हो सकता है। ●

७. मनोरंजन के आधुनिक साधन

उदर जीवन-यापन के लिए मनुष्य को संसार में क्या क्या नहीं करना पड़ता। इसी ध्येय की पूर्ति के लिए मिलों में काम करने वाले, कालेज में पढ़ाने वाले अध्यापक, सुबह से शाम तक बोलने वाले वकील, नगर के प्रमुख चौराहों और गलियों के अड्डों पर चाट बेचने वाले चौदह वर्षीय बालक, धने पर जम कर बैठने वाला लाला अपना खून और पसीना एक करते हैं। दिवस के अवसान और संध्या आगमन के क्षणों में सुबह से शाम तक थका हुआ मानव शारीरिक विश्राम के साथ साथ मानसिक विश्राम भी चाहता है जिससे उसका थका मांदा मन फिर

तरह बहल जाये और वह फिर प्रफुल्लित हो उठे। मनोरंजन को पृष्ठ-भूमि में यही प्रवृत्ति काम करती है। यदि मनुष्य की रुचि के अनुकूल उसे मनोविनोद प्राप्त हो जाता है, तो वह दूसरे दिन फिर नए उत्साह और उल्लास से कार्य करने की क्षमता एकत्रित कर लेता है। इससे उसके स्वास्थ्य पर भी बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। बिना मनोरंजन के जीवन भार मालूम पड़ने लगता है। मनुष्य नित्य एक से कामों से ऊबने लगता है और जीवन के प्रति उसका घृणात्मक दृष्टिकोण हो जाता है। कोल्हू के बैल की तरह रोज सुबह से शाम तक एक ही काम में जुतना और शाम को थक कर पड़े रहना, ऐसा जीवन, जीवन नहीं, मनुष्य के लिए बोझ का एक गट्ठर बन जाता है। आखिर आकर्षणहीन भार को मनुष्य कब तक उठाये। इससे उसकी कार्य-क्षमता भी कम हो जाती है।

प्राचीन समय में मानव का जीवन और उसके यापन के साधन सरल थे। अतः उसे मनोरंजन की भी इतनी आवश्यकता नहीं थी, परन्तु आज के अस्त-व्यस्त एवम् संघर्षमय जीवन में उसे मनोविनोद के साधनों की परम आवश्यकता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य के मनोरंजन के साधनों में भी परिवर्तन होते आये हैं। विज्ञान के आविष्कार ने इन साधनों में आमूलचूल परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। रेडियो और सिनेमा इसके अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। मनोरंजन के साधनों को हम अलग-अलग कई भागों में बाँट सकते हैं। कुछ मनोरंजन के साधन ऐसे होते हैं, जिनका हम घर बैठे-बैठे ही आनन्द ले सकते हैं और कुछ ऐसे होते हैं, जिनके लिए घर से बाहर निकल पड़ते हैं और इनके अतिरिक्त कुछ साधन ऐसे होते हैं, जिनके लिए मित्र-मंडली तलाश करनी पड़ती है।

मनोरंजन के आधुनिक साधन

१. प्रस्तावना।
२. मनोरंजन के कुछ साधन—
  (क) मैदान के खेल,
  (ख) कमरे के अन्दर के खेल,
  (ग) भ्रमण,
  (घ) भारतवर्ष में मनोरंजन के साधनों की कमी।
३. सरकार का कर्त्तव्य।
४. उपसंहार।

क्रिकेट, हॉकी, फुटबाल, बास्केटबाल, बैडमिण्टन, टैनिस और कबड्डी आदि मैदान के खेलों से खिलाड़ी एवं दर्शकों का अच्छा मनोरंजन होता है। छात्रों के लिये ये खेल अत्यन्त लाभकारी हैं। इनसे मनोरंजन के साथ-साथ शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है। बड़े-बड़े नगरों में जब ये खेल होते हैं, तो लाखों दर्शनार्थी एकत्रित होकर अपना मनोरंजन करते हैं।

कैरम, चौपड़, शतरंज आदि खेलों से आप घर बैठे-बैठे ही अपना मनोरंजन कर सकते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें घर से बाहर निकलना अच्छा ही नहीं लगता, ऐसे व्यक्ति इन्हीं खेलों से अपना मन बहलाया करते हैं। परन्तु इनमें कुछ खेल तो दुर्व्यसनों की कोटि में भी आते हैं, जैसे ताश खेलना। जब इसकी आदत अधिक हो जाती है, तो मनुष्य जुआ खेलने की ओर प्रवृत्त होता है और चौपड़ शतरंज खेलने में तो मनुष्य खाना-पीना, सोना सब कुछ भूल जाता है। अपने मनोनुकूल साहित्य का अध्ययन भी घर के मनोरंजन में ही आता है। रेडियो के मनो-

सुखकारी विभिन्न कार्यक्रम और टेलीविजन के मनोहारी दृश्य आज के युग के क्रमशः सस्ते और मँहगे मनोरंजन के साधन हैं, जो घर बैठे-बैठे ही मनुष्य को आनन्द प्रदान करते रहते हैं।

कुछ व्यक्तियों का अपनी रुचि के अनुकूल कार्य करने में ही मनोरंजन होता है। बहुत से बड़े बड़े बाबुओं को देखा गया है कि शाम को दफ्तर से लौटने के बाद, कुछ खा-पीकर छोटी सी खुरपी ली और अपनी कोठी के छोटे से बाग की क्यारियों में जा बैठे। नित्य ही उनके घंटों इसी काम में व्यतीत हो जाते हैं। कुछ लोगों को यह शौक हो जाता है कि कैमरा कन्धे पर लटकाया और चल दिये जंगल की ओर, जहाँ का दृश्य मन को अच्छा लगा वहीं का फोटो ले लिया। उनका मनोविनोद इसी में है। कुछ लोगों को, अधिकांश छात्र वर्ग को, तरह-तरह के और विभिन्न देशों के पुराने स्टाम्प एकत्रित करने की आदत पड़ जाती है। उन्हें पुराने लिफाफे और पड़ी हुई रद्दी को ढूंढने में ही आनन्द आता है। कुछ व्यक्ति विभिन्न प्रकार के चित्र एवम् सिक्के संकलित करते हैं। उनका मन इसी कार्य में लगता है और वे इसमें ही आनन्द का अनुभव करते हैं।

भ्रमण करना भी मनोरंजन के साधनों में एक सुन्दर साधन है। अनेक मनुष्य नाव एवम् साथ परिभ्रमण के लिए जाते हैं और प्रकृति का उन्मुक्त परिहास देखकर उनका हृदय प्रसन्न हो जाता है। छोटे-छोटे पिकनिक और बड़ी-बड़ी यात्राएँ इसी उद्देश्य के परिणाम हैं। प्रकृति मनुष्य की सहचरी है। उसे प्रसन्न देखकर मनुष्य भी एक बार आत्मविभोर हो उठता है और क्षणभंगुर जगत् के सुख-दुखमय क्षणों को कुछ समय के लिये भूल जाता है। निर्झरों का फेनिल प्रपात, कल-कल करती नदियों का प्रवाह, बौराई हुई वनराशि, समीर को सुरभित करते पुष्प और मुस्कराती हुई कलियों को देखकर कौन होगा जो प्रसन्न न हो उठे।

इनके अतिरिक्त, कलाप्रिय मनुष्य के लिए कलात्मक मनोरंजन के साधन होते हैं। सिनेमा और नाटक इसी प्रकार के कलात्मक मनोरंजन के साधन हैं। आज के भौतिकवादी युग में सिनेमा जगत से असंख्य व्यक्तियों का मनोरंजन होता है। सुखकारी संगीत, मनोहारी नृत्य और कर्ण सुखकारी वाद्य मनोविनोद के साधनों में सर्वोपरि हैं। यदि चित्रकारी चित्रकार के हृदय की वीणा के तारों को झंकृत करने में समर्थ है, तो शिल्पकारी भी शिल्पकार को अमूल्य आनन्द देने में पीछे नहीं है।

आज का युग उपन्यास एवम् कहानियों का युग है। आज के शिक्षित वर्ग के मनोरंजन के ये मुख्य साधन हैं। नित्य नये नये उपन्यासों का प्रकाशन और उनका हाथों-हाथ बिक जाना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज के उपन्यासों और कहानियों से जनता का मनोविनोद तो होता ही है परन्तु पाठक इनसे पथभ्रष्ट भी खूब होते हैं। शिक्षा तो गूलर का फूल हो गई है। धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य आज भी रामायण का पाठ कर लेते हैं। मित्र मण्डली में बैठकर गप्पें लगाना, मेले-तमाशों में जाना, पर्वतारोहण करना, शिकार खेलना, इसी प्रकार के भिन्न भिन्न मनोरंजन के साधन हैं। मनोरंजन का मनोरंजन नशे में होता है चाहे वह भांग का हो या गाँजे का। वास्तव में बात तो यह ही है कि—

थी। जूता पन्द्रह-सोलह दिन पहले ही पहना था, बनियान थी और कुर्ते की जेब में एक चमड़े का बटुआ था, जिसमें पन्द्रह रुपये थे, सात मेरे और आठ दूसरे के। अलीगढ़ से मोटर द्वारा मथुरा पहुँचा। दिन अच्छा था, कुछ बादल हो रहे थे, इसलिये सूर्य की किरणें तेज मालूम नहीं हो रही थीं। एक अड्डे पर उतर कर दूसरे अड्डे के मार्ग को रिक्शे द्वारा तय किया और गोवर्धन जाने वाली मोटर में बैठ गया। बहुत भीड़ थी, मोटर भी रोजाना से बीस गुना ज्यादा जा रही थी परन्तु जहाँ और दिन तीस पैसे सवारी थी, वहाँ आज एक रुपया सवारी थी। मोटर भरते ही चल दी और उसने थोड़ी देर में गोवर्धन पहुँचा दिया। चारों ओर असंख्य आदमियों की भीड़ थी। जिधर दृष्टि जाती उधर मनुष्य ही मनुष्य दिखाई पड़ रहे थे, तिल रखने को न धर्मशाला में स्थान था और न सड़क के इधर-उधर। जंगल तक में आदमी ठहरे हुए थे, मुझे ठहरना तो था नहीं फिर भी भीड़ में इधर-उधर घूमा। छह बज चुके थे, सूर्यास्त के बाद परिक्रमा आरम्भ करने का निश्चय किया था। गोवर्धन पर्वत के बीच में एक विशाल कुण्ड है, जिसे वहाँ के लोग 'मानसी गङ्गा' के नाम से पुकारते हैं। परिक्रमा से पहले और बाद में श्रद्धालु भक्त बड़ी भक्ति से इस कुण्ड में स्नान करते हैं और उसके बाद परिक्रमा आरम्भ करते हैं। मैंने भी मानसी गङ्गा में स्नान किया और परिक्रमा के लिये पग बढ़ाए।

निश्चित स्थान, जहाँ से परिक्रमा प्रारम्भ होती है, वहाँ पहुँचा। परिक्रमा के लिए जंगल का चौड़ा मार्ग है। उस पर असंख्य यात्री एक साथ चलते हैं। रात्रि का समय था, अनन्त साधु-सन्यासियों से यात्रा पथ संकुलित था। बीच-बीच में पानी भरा हुआ था; गड्ढे थे और कीचड़ हो रही थी, शायद कुओं पर बनी हुई अस्थिर प्याऊओं का वह जल था। मेरे हृदय में भी यही इच्छा हुई कि कपड़े खराब करने से क्या लाभ और मुझे यहाँ जानता ही कौन है ? एक तो साधु-सन्यासी बहुत थे और रात में वैसे भी लोगों ने कपड़े उतार रखे थे, क्योंकि पैदल १५ किमी चलना आसान नहीं था। मैंने भी कपड़े उतार लिए, यहाँ तक कि बनियान और धोती भी उतार कर थैले में रख ली। नीचे केवल कौपीन बाँधे हुए था। धोती-कुर्त्ता, बनियान, जूते तथा रुपये का बटुआ अर्थात् सारा सामान जो कुछ मेरे पास था वह थैले में रख दिया और प्रसन्न मुद्रा में अपने को कृत्रिम साधुओं की श्रेणी में कल्पना करता हुआ जल्दी-जल्दी परिक्रमा लगाने लगा। गृहस्थ यात्री रुक-रुक कर परिक्रमा देते हैं, एक-दो मील चलने के बाद विश्राम कर लेते हैं और कुछ खा-पीकर आगे बढ़ते हैं। इस प्रकार उनकी परिक्रमा में दो दिन लग जाना स्वाभाविक है। परन्तु बिना कहीं रुके, अव्यवहित रूप से चलते-चलते मैंने अपनी परिक्रमा साढ़े चार बजे समाप्त कर दी।

शरीर थक चुका था। पैरों के तलवे बीच से फटे जा रहे थे, उषा के आगमन में अभी कुछ विलम्ब था। दुकानों के चबूतरों पर, सड़कों के किनारे और रेतीले खेतों में जहाँ जिसको जगह मिल गई थी, वहीं सो रहा था। मैंने भी सोचा कुछ समय के लिये यदि कमर सीधी कर ली जाय तो अच्छा हो। जगह ढूंढी, मानसी गंगा की सीढ़ियों के ऊपर बाजार की सड़क थी और उस सड़क से मिला हुआ ही ऊपर की ओर एक रास्ता था। दो-चार सीढ़ी चढ़ने के बाद काफी बड़ा चौक दिखाई दिया, जहाँ एक बड़ा मन्दिर था। चौक में धरती पर ही हजारों आदमी सो रहे थे, मुझे भी एक कोने में जगह मिल गई। बिना कुछ बिछाये, कौपीन लगाये ही

मैं धरती पर लेट गया, इस विचार से कि अभी थोड़ी देर में उठकर स्नान करके पहली मोटर से चल दूंगा। वह थैला, जिसमें मेरा सब सामान था, अपने सिर के नीचे तकिए की जगह पर बड़े आराम से लगा लिया। लेटा ही था कि आँख लग गई। कितनी देर सोया हूँगा इसका तो कुछ पता नहीं, परन्तु हाँ, इतना अवश्य मालूम हुआ कि पूरी तरह से प्रभात नहीं हुआ था, आँखें खुलीं। सोया था तब सिर कुछ ऊपर उठा था, क्योंकि थैले का तकिया था, परन्तु जब उठा तो सिर धरती पर रखा हुआ था और थैला गायब था। बस, सन्न रह गया, इधर-उधर निगाह भी दौड़ाई पर कुछ पता नहीं था। सैकड़ों आदमी आ जा रहे थे, पूछा भी जाए तो किससे? कल्पना कीजिए कि मेरी उस समय क्या स्थिति हुई होगी, न शरीर पर कपड़ा था और न किराए और न खाने के लिए पैसे। केवल एक कौपीन वस्त्र ही गात में बाकी था। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आ रहा था। सामने वाले मन्दिर में पुजारी के पास गया और वह सारा हाल सुनकर चुप रह गया, वह गरीब करता भी क्या? मैंने उससे शौच जाने के लिए एक लोटा माँगा, पर लोटा उसने नहीं दिया, एक फूटी सी लुटिया दी, जिसमें कई छेद हो रहे थे, अन्तिम समय तक बड़ी मुश्किल से उसमें थोड़ा-सा पानी बच पाया। लौटकर उसकी लुटिया उसे दी और फिर अपनी बातें दुहराने लगा, इस उद्देश्य से कि शायद वह कोई तरकीब बताए। पर वह तो चुप रहा। इतने में उस मन्दिर में जो सागर के लोग ठहरे हुए थे उनमें से एक ने मुझे बुलाया और इस घटना पर खेद प्रकट किया और बोला एक तरकीब तो हम बताते हैं अगर मानो तो। अन्धे को क्या चाहिए, दो आँखें। मैंने कहा, "जरूर बताइए, आपकी बड़ी कृपा होगी।" वे महाशय बोले 'इसकी काफी मोट है हम तुम्हें भी दिए देते हैं। आगे आगे तुम चलो और पीछे पीछे हम दो-तीन आदमी चलते हैं, कोई बात होगी तो हम देख लेंगे।" कितना सुन्दर सत्परामर्श था। सुन तो लिया पर खून का घूंट पीकर रह गया। उनसे हाथ जोड़कर वहाँ से लौट आया। परन्तु अब जाऊँ कहाँ और कैसे जाऊँ, इसी चिन्ता में मैं भी मानसी गङ्गा की सीढ़ियों पर आ गया। सोच रहा था कि यदि कोई पढ़ा लिखा समझदार व्यक्ति मिले तो उससे दो चार रुपए उधार लिये जायें, अपना पता लिखा दिया जाय और अलीगढ़ पहुँचकर उसके रुपए भेज दिए जायें। एक सज्जन स्नान के लिये कपड़े उतार चुके थे। आकृति से बड़े सभ्य, स्वस्थ शरीर वाले मालूम होते थे। सोचा शायद कुछ पढ़े लिखे भी हों, ऐसा विचार करके मैं उनके निकट तक गया। मैंने कहा, "मुझे आपसे कुछ कहना है।" मेरी बात बिना सुने ही उन्होंने अपने पण्डा जी को आवाज दी और कहा, 'पण्डा जी, इस जंजीर को और रख लीजिए, सुन्दर भान मग है।' यह कहते हुए उन्होंने वास्तव में अपने गले में से सोने की जंजीर उतार कर पण्डा जी को दे दी। उस पर मुझे इतनी ग्लानि और घृणा आई कि आँखों में आँसू टपक पड़े, वहाँ से हट गया और घुड़चार एक स्थान पर जा बैठा, इस आशा से कि कभी तो भगवान् को दया आएगी ही।

भीख पर भीख एक बार न आता और दूसरा चारा अभी कोई उत्पन्न करना कोई नहीं था। धूप न तो बढ़ाए, मानसी गङ्गा पर स्नानार्थियों की भीड़ उमड़ने लगी। इतने में मेरे मुहल्ले में रहने वाले एक लाला अपनी माँ को साथ लिए दिखाई पड़े, पर मैं न बोला। उन्होंने दूर ही से पापाजी की ओर वहाँ इस तरह मौन

होकर बैठने का कारण पूछा। मैंने अपने साथ बीती हुई सारी दुर्घटना उन्हें सुनाई। वे बेचारे मुझे तुरन्त अपने साथ धर्मशाला ले गये, जहाँ वे ठहरे थे। उन्होंने अपने कपड़े दिये और पाँच रुपये दिये। उनसे शरीर ढककर किसी तरह अलीगढ़ तक आया। घर आकर उनके पाँच रुपये लौटाये और धुलवाकर कपड़े भी भेजे। फिर तब से आज तक मैं गोवर्धन नहीं गया।

९. आदर्श विद्यार्थी

आदर्श विद्यार्थी

१. प्रस्तावना (विद्यार्थी जीवन का महत्त्व)।
२. आदर्श विद्यार्थी के गुण—
   (क) नम्रता और अनुशासन,
   (ख) श्रद्धा और जिज्ञासा,
   (ग) संयम और नियम,
   (घ) श्रम और स्वास्थ्य,
   (ङ) समय का सदुपयोग,
   (च) शिक्षा के साथ क्रीड़ा।
३. आधुनिक युग का विद्यार्थी।
४. उपसंहार।

विद्यार्थी अवस्था भावी जीवन की आधार-शिला है। यदि नींव दृढ़ है तो उस पर प्रासाद भी चिरस्थायी बन सकेगा अन्यथा भयानक आँधियों के थपेड़े, तूफान और अनवरत वर्षा उसे थोड़े ही दिनों में धराशायी कर देंगे। इस प्रकार, यदि बच्चे का छात्र जीवन परिश्रम, अनुशासन, संयम एवं नियम में व्यतीत हुआ है, यदि छात्रावस्था में उसने मन लगाकर विद्याध्ययन किया है, यदि उसने गुरुओं की सेवा की है, यदि वह अपने माता-पिता तथा गुरुजनों के साथ विनम्र रहा है, तो निश्चय ही उसका भावी जीवन सुखद एवं सुन्दर होगा। जिस वृक्ष का बाल्यावस्था में सम्यक् सिंचन होता है वह भविष्य में पल्लवित और पुष्पित होता हुआ एक न एक दिन संसार को सौरभमय अवश्य बना देता है। आज का विद्यार्थी कल का नागरिक होगा। सभ्य नागरिक के लिये जिन गुणों की आवश्यकता है उन गुणों की प्राथमिक पाठशाला विद्यार्थी जीवन ही है। संसार में गुणों से ही मनुष्य का आदर-सत्कार एवं प्रतिष्ठा होती है क्योंकि "गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते" अर्थात् गुणों से ही मनुष्य हर जगह ऊँचा पद प्राप्त करता है। विद्या ही वह कोष है, जिसमें अमूल्य गुण रूपी रत्न विद्यमान हैं। इसे प्राप्त करने के लिये हमें साधना करनी होगी और साधना के लिये समय आवश्यक है। विद्यार्थी जीवन उसी सुन्दर साधनावस्था का समय है, जिसमें बालक अपने जीवनोपयोगी अनन्त गुणों का संचय करता है, ज्ञानार्जन करता है और अपने मन एवं मस्तिष्क का परिष्कार करता है। पशु और मनुष्य की विभाजन रेखा यदि कोई है तो यही विद्यार्थी जीवन, अन्यथा पशुओं को वे सभी अवस्थायें प्राप्त हैं, जो मनुष्य को, क्या बचपन और क्या गृहस्थ? अतः मानव-जीवन में विद्यार्थी-जीवन का विशेष महत्व है।

विद्यार्थी को विनम्र होना चाहिए। गुरुजनों से ज्ञान प्राप्त करने के लिए विनम्रता परम आवश्यक है। यदि विद्यार्थी उद्दण्ड है, उपद्रवी है, उच्छृङ्खल है, या

कटुभाषी है तो वह कभी भी अपने अध्यापकों का कृपापात्र नहीं हो सकता। मेरी समझ में यह नहीं आता कि विद्यार्थी कटुभाषी या उच्छृङ्खल हो कैसे जाता है? क्योंकि विद्या तो उसे यह सिखाती नहीं। कहा गया है कि "विद्या ददाति विनयम्" अर्थात् विद्या विनय देती है। विद्या के पास देने को यदि कुछ है तो वह विनय है, जो विद्यार्थी का ही नहीं समस्त मानव जीवन का आभूषण है। गुरुजनों से विद्या प्राप्त करने के लिए केवल एक ही उपाय है कि आप नम्र रहिए। विद्वानों ने कहा भी है कि—

'तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'

अर्थात् गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के केवल तीन उपाय हैं—नम्रता, जिज्ञासा और सेवा। इनमें नम्रता का स्थान प्रथम है। अतः एक आदर्श विद्यार्थी को विनम्र होना चाहिए। नम्रता के साथ-साथ उसे अनुशासनप्रिय भी होना चाहिए। जो विद्यार्थी अनुशासनहीन होते हैं वे अपने देश, अपनी जाति, अपने माता-पिता, अपने कुटुम्ब और अपने कॉलिज के लिए अप्रतिष्ठाकारक होते हैं। अनुशासनहीन छात्र का न तो मानसिक विकास होता है और न बौद्धिक ही। वह उन गुणों से सदैव-सदैव के लिए वंचित हो जाता है, जो मनुष्य को प्रतिष्ठा के पद पर आसीन करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन का विशेष महत्व है। अनुशासित छात्र ही आदर्श विद्यार्थी की श्रेणी में आ सकता है। आज के युग का छात्र अनुशासनहीनता दिखाने में अपना गौरव समझता है, इसलिए देश में सभ्य नागरिकों का अभाव-सा होता चला जा रहा है, क्योंकि आज का विद्यार्थी ही कल का नागरिक बनता है।

बिना श्रद्धा के न आप कुछ पा सकते हैं और न कुछ दे ही सकते हैं। श्रद्धा से पाषाण तक फल देने लगता है, फिर कोमल हृदय गुरुजनों की तो बात ही क्या, क्योंकि 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'। ज्ञान तो श्रद्धावान् को ही प्राप्त होता है। यदि आप में अपने गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं तो आप उनसे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। अच्छे विद्यार्थी में श्रद्धा के साथ साथ जिज्ञासा भी होनी चाहिए। यदि आपके अध्यापक एक बात बता रहे हैं तो उसकी समाप्ति पर उसी विषय पर आप चार बात पूछिए, इससे आपका ज्ञानवर्द्धन होगा, [illegible] जानने की इच्छा, अर्थात् आदर्श विद्यार्थी में नवीन वस्तु और नये विषय [illegible] जिज्ञासा होनी चाहिए तभी वह कुछ प्राप्त कर सकता है। क्योंकि [illegible] है, गुरु भी [illegible]। हाँ, आपकी नहीं [illegible] अवसर दें। जिन विद्यार्थियों में जिज्ञासा भी [illegible] से दूर बने बैठे रहते हैं और [illegible]।

विद्यार्थी [illegible]। [illegible] का उचित रीति से पालन करने वाले विद्यार्थी [illegible] नहीं होते। विद्यार्थी को अपनी इन्द्रियाँ और [illegible] रखना चाहिए। [illegible] सोना, समय पर [illegible], [illegible], नियमित रूप से [illegible], [illegible] बुरे लोगों की संगति में बैठना, दूषित [illegible] से दूर रहना ये आदर्श विद्यार्थी के आवश्यक गुण हैं। जो विद्यार्थी अपने जीवन में [illegible] नहीं रखते वे [illegible] रहते [illegible]

उनका मुँह पीला पड़ा रहता है, पढ़ने में तबियत नहीं लगती, सदैव भीड़ या दुर्व्यसन घेरे रहते हैं, उनका मन चंचल होता है। इसलिए विद्यार्थी जीवन की कुञ्जी संयम और नियम है।

विद्यार्थी को स्वाध्यायी और परिश्रमशील होना चाहिए। बिना परिश्रम किये विद्या आ नहीं सकती। सुखार्थी और विद्यार्थी में बहुत अन्तर है, विद्यार्थी को परिश्रम करना पड़ता है, कष्ट सहने पड़ते हैं और सुखार्थी इस प्रकार के उत्तम श्रम से विमुख रहता है। नीतिविशारदों की सूक्ति है कि—

"सुखार्थी वा त्यजेत विद्याम्, विद्यार्थी वा त्यजेत सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्॥"

अर्थात् न विद्यार्थी को सुख है न सुखार्थी को विद्या। विद्यार्थी को सदैव परिश्रम करना चाहिए। कक्षा में पढ़ाये गये विषयों को ध्यानपूर्वक सुनकर उन्हें समझने और मनन करने का प्रयत्न करना चाहिए। कक्षा में ही नहीं, घर जाकर भी परिश्रम से उस विषय को याद करना चाहिए। कक्षा की पुस्तकों के अतिरिक्त उसे अन्य साहित्यिक पुस्तकों का भी स्वाध्याय करना चाहिए जिससे साहित्य के विभिन्न अंगों का ज्ञानवर्द्धन होता रहे। स्वाध्याय के प्रति मनुष्य को कभी भी प्रमाद या आलस्य नहीं करना चाहिए।

मनुष्य की थोड़ी सी आयु, उसमें भी बहुत थोड़ा विद्यार्थी जीवन और उसमें भी अनन्त विघ्न, फिर क्या यह विद्यार्थियों के लिए उचित है कि वे अपने अमूल्य क्षणों का अपव्यय और दुरुपयोग करें। अच्छे विद्यार्थी कभी भी अपना समय व्यर्थ की बातों में नहीं बिताते। उनके जीवन का ध्येय अध्ययन होता है, न कि समय का अपव्यय।

'क्षणत्यागे कुतो विद्या, कणत्यागे कुतो धनम्।'

एक-एक पैसा जोड़े बिना कोई धनवान नहीं हो सकता। धन के निरन्तर संग्रह करने वाले को ही धनवान कहते हैं। अगर मनुष्य एक-एक कण खोता जाय तो धनवान नहीं बन सकता। इसी प्रकार यदि विद्यार्थी एक-एक क्षण नष्ट करता रहे तो वह विद्याध्ययन नहीं कर सकता।

पढ़ते-पढ़ते थक जाने पर मस्तिष्क को आराम देने के लिए थोड़ा खेल लेना भी आवश्यक है। इससे शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है और विद्यार्थी का मनोरंजन भी हो जाता है। हर समय पुस्तकों में लगा रहना भी कभी-कभी हानिकारक सिद्ध हो जाता है। अधिक परिश्रम करने से विद्यार्थी ऐसे समय में बीमार पड़ जाते हैं जब उनकी परीक्षायें सिर पर होती हैं। इसलिये पहले से ही खूब पढ़िये और थोड़ा खेल भी लीजिए। इससे विद्यार्थी का स्वास्थ्य ठीक रहता है। संस्कृत साहित्य में अच्छे विद्यार्थी के पाँच लक्षण बताये हैं—

"काकचेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्च लक्षणम्॥"

अर्थात् कौए की चेष्टा वाला, बगुले के से ध्यान वाला, कुत्ते की सी निद्रा वाला, थोड़ा खाने वाला और घर से मोह न रखने वाला, इन लक्षणों से युक्त विद्यार्थी ही समुचित विद्याध्ययन कर सकता है।

आज विद्यार्थियों में एक वर्ग ऐसा है जो निश्चिन्त प
न उसे अध्यापक समझा पा रहे हैं और न अभिभावक ही। उ
नियन्त्रण है, न जनता का। सवत्र स्वतन्त्र होकर पतन के।
एक धक्के की प्रतीक्षा कर रहा है।

न उसे माता पिता की लज्जा है और न गुरुजनों की, न समाज का भय है और न साथियों का, न मान की चिन्ता है न मर्यादा की, न शासन का भय है और न न्याय का, न किताब का ध्यान है और न कुन्जियों का। 'सादा जीवन उच्च विचार' वाला सिद्धान्त उससे कोसों दूर खड़ा कांप रहा है। आत्म-संयम तो न जाने उससे कहां बिछुड़ गया। आज का विद्यार्थी क्या कर सकता है यह तो पूछने का प्रश्न ही नहीं रहा। इस समय तो प्रश्न है कि यह विद्यार्थी क्या नहीं कर सकता। संसार के जघन्य और घृणित से घृणित कुकृत्य करने में आज वह अग्रसर है। सिगरेट के दम, शराब के घंट और सिनेमा के स्वरों ने उसे मुग्ध कर लिया है। विद्याध्ययन के स्थान पर वह तेल, पाउडर और सूट बूट का विधिवत् अध्ययन करता है। विनम्रता, अनुशासन और आज्ञा पालन से उसे स्वाभाविक घृणा होती जा रही है। कितनी लज्जा आती है, जबकि लोगों को यह कहते हुये सुना जाता है कि अमुक स्ट्राइक में इतने लड़के उस कॉलिज के थे, या अमुक विद्यार्थी ने अमुक अध्यापक को मार डाला।

यदि आज का विद्यार्थी भारतवर्ष का सुयोग्य नागरिक बनना चाहता है, यदि उसे अपनी आत्मोन्नति की इच्छा है, यदि वह अपने और अपने माता पिता के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य का पूर्ण रूप से निर्वाह करना चाहता है, तो उसे वे गुण अपनाने होंगे, जिनमें उसका उत्थान निहित है। उसे अपना चरित्र सुधारना होगा, उसे अपने गुरु के प्रति वे ही पुरातन सम्बन्ध स्थापित करने होंगे जो आज से दो सौ वर्ष पहले थे। तभी भारतवर्ष का विद्यार्थी आदर्श विद्यार्थी कहलाने का अधिकारी हो सकता है। ●

१०. ऐतिहासिक स्थान की यात्रा (ताजमहल)

अभी पूरी छुट्टियाँ समाप्त नहीं हुई थीं, लगभग चौदह दिन बाकी थे। वर्षा प्रारम्भ हो चुकी थी, कई दिनों से बादल आसमान पर घिरे हुए थे, कभी कोई छोटी बदली बरस जाती और कभी तीव्र वायु के झोंके उन बादलों को उड़ा ले जाते परन्तु आज सुबह से ही रिम झिम शुरू हो गई थी, मन चाह रहा था कि कहीं घूम आऊँ पर प्रश्न यह था कि जाया कहाँ जाए, क्योंकि छुट्टियाँ भी समाप्त [illegible] रहीं थीं। फिर कौन जाता है, और कौन जाने देता है, पढ़ने लिखने से ही अवकाश नहीं मिलता। यदि कभी जाने का विचार भी किया जाये तो इन्टरनेंल मार्क्ट (ग्राफिकेशन) बाने का भय लगा रहता है, इसलिए कहीं जाने पर भी

समझ नहीं आता। दोपहरी होने वाली थी, लगभग ग्यारह बजे होंगे, नीचे से एक साथ आवाजें आईं। मैं एकदम से नीचे आया। मालूम हुआ कि एक आवाज तो खाने के लिए माँ ने दी थी और दूसरी दरवाजे पर खड़े पोस्टमैन ने। माँ ने कहा "खाना खाओ।" बाहर आकर पोस्टमैन से चिट्ठी ली। पढ़ा तो मालूम हुआ कि मेरे एक पुराने साथी का पत्र है, जो हाई स्कूल पास करने के बाद आगरे में रोडवेज के दफ्तर में क्लर्क हो गया। यद्यपि वह पढ़ने में कमजोर था, परन्तु मेरा घनिष्ठ मित्र था। पत्र में लिखा था कि, 'मेरा विवाह तारीख १ जुलाई को है, बारात आगरे से आगरे में ही जायेगी, चाहे तुम एक दिन को आओ, पर आना अवश्य।' बस, माँ से आज्ञा लेने के बाद मैं विवाह में जाने की तैयारियाँ करने में लग गया।

ऐतिहासिक स्मारक—ताजमहल

१. प्रस्तावना।
२. आगरे के लिए प्रस्थान।
३. ताजमहल का दृश्य।
४. रचना काल।
५. आधुनिक चमत्कारों में ताज का स्थान।
६. उपसंहार।

छुट्टियाँ थी ही, घर पर भी कोई विशेष काम नहीं था, इसलिए निश्चित तिथि से एक दिन पूर्व ही आगरे को रवाना हो गया और मित्र को तार दे दिया कि मैं आ रहा हूँ। तार इसलिये दिया था कि मैंने उसका घर नहीं देखा था। टूण्डला से जब गाड़ी आगे बढ़ने लगी तो आगरा देखने की इच्छा तीव्र होने लगी। आगरे का इतना आकर्षण नहीं था, जितना कि ताजमहल देखकर अपने नेत्रों को तृप्त करने का। अभी आगरा पाँच-सात मील दूर ही था कि ताजमहल की सुधा-स्नात, दुग्ध-धवल, गगनचुम्बी मीनारें दिखाई पड़ने लगीं। डिब्बे के सारे यात्री 'ताज-ताज' कहकर खिड़कियों से सिर निकाल कर झाँकने लगे।

स्टेशन पर मित्र मिला, मुझे देखकर वह गद्‌गद्‌ हो गया। सामान लेकर हम लोग घर पहुँचे। दूसरे दिन पूर्णमासी थी। दो-तीन रिश्तेदारों को साथ लेकर मैं सन्ध्या के समय प्रेम की अमर समाधि ताज को देखने के लिए गया। मार्ग में शाहजहाँ और मुमताज के विषय में अनेक भावनायें उठने लगीं। कठोर काल के सम्मुख सुकोमल मानव हृदय की विवशता पर विचार कर हृदय हताश हो उठा। अब तो ताज की लाल पत्थर की ऊँची-ऊँची चहारदीवारी भी दिखाई पड़ने लगी थी। सहसा हम उस विशाल द्वार पर जाकर रुके जो ताजमहल का प्रवेश द्वार है। द्वार में घुसते ही सुन्दर-सुन्दर फव्वारे और मनोहर उद्यान दिखाई पड़ने लगे। हरे-भरे वृक्षों का कलात्मक शृङ्गार देखकर हम लोग मुग्ध हो गये। इस स्वर्गीय उद्यान के सामने ही एक वर्ग चौड़े चबूतरे पर ताजमहल का भव्य प्रासाद स्थित है, जो युगों से अपने अमर प्रेम की कहानी कहता हुआ आज भी नहीं थकता। मुगल साम्राज्य के बाहर यौवन के उस अमर स्मारक ताज के चारों ओर चार गगन-चुम्बी मीनारें हैं, मानों वे आज भी अनिमेष दृष्टि से आकाश की ओर देखती हुई अपने मालिक-मालकिन के पुनः आगमन की प्रतीक्षा में हों। ताज के पश्चिमी प्रान्त में कल-कल-निनादिनी, नीलसलिला यमुना अपनी मस्त गति से प्रवाहित होती है। पूर्णमासी का चाँद आकाश में मुस्करा रहा था। चाँदनी में ताज की शोभा कई गुना अधिक

हो जाती है। यहाँ के निर्मल जल में ताज का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। कुछ क्षणों के लिए हम लोग वहीं चबूतरे पर बैठ गये और मन्त्रमुग्ध होकर उस अनुपम-सौन्दर्य को देखने लगे। कितनी शान्ति और सुख था उस मूक सौन्दर्य में। मुगलकालीन वैभव की चर्चा करता हुआ वह ताज महल ही अपने दर्शनार्थी यात्रियों का मन अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। ताज के आन्तरिक भाग का दृश्य देखकर मनुष्य एक क्षण के लिए संसार की क्षणभंगुरता के विषय में सोचने लगता है। काल न बड़ों को छोड़ता है और न छोटों को। सबसे नीचे वाले भाग में प्रेमी और प्रेयसी पास-पास लेटे हुए हैं। उनके ऊपर यद्यपि कब्र का आवरण पड़ा हुआ है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है मानो उनमें से शहंशाह शाहजहाँ और उनकी चिर प्रियतमा मुमताज अभी उठकर विहार करने वाले हैं। अमर मानव प्रेम की उस समाधि पर अरबी भाषा में कुछ लिखा हुआ है। श्वेत संगमरमर पर नाना प्रकार की पच्चीकारियाँ हो रही हैं, बेल बूटे बने हुए हैं। इस कब्र के कक्ष में ऊपर भी एक ऐसा ही कक्ष है, जो सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सुना जाता है कि इनके चारों ओर पहले सुनहरी जालियाँ लगी हुई थीं, परन्तु औरङ्गजेब ने धन के लोभ में आकर उन्हें निकलवा लिया और उनके चारों ओर सङ्गमरमर की जालियाँ लगा दी। मीनारों की ऊँचाई कितनी है, इसके विषय में तो कुछ कहा नहीं जा सकता, परन्तु हाँ, इतना अवश्य है कि उन पर चढ़कर नीचे को देखने से आदमी चिड़िया जैसा दिखाई पड़ता है। सुना जाता है कि जीवन से निराश, संघर्षों से थके हुए व्यक्ति इन पर चढ़ जाते हैं और नीचे कूदकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लेते हैं, इसलिए अब इनके द्वार कभी-अभी ही खोले जाते हैं, प्रायः बन्द ही रहते हैं।

शाहजहाँ ने अपने राज्यकाल में मुमताज बेगम की स्मृति के रूप में इसका निर्माण कराया था। ताज शाहजहाँ की भावभरी भावनाओं का साकार रूप है। राजकीय कोष का सारा धन इसके ऊपर न्योछावर कर दिया गया। विश्व के समस्त अच्छे से कुशल कलाकार इसके निर्माण के लिए बुलाये गये थे। तीस हजार मजदूरों द्वारा वर्षों अनवरत परिश्रम का फल ताज आज दर्शकों के नेत्रों को सुख ही नहीं करता अपितु कठोर से कठोर हृदय के मुख से सराहना के रूप में दो शब्द भी सुन लेता है। इतिहास के पृष्ठ बताते हैं कि इसमें तीन लाख रुपये व्यय हुए थे।

ताजमहल विश्व के आठ आश्चर्यों में से एक होते हुए भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। संसार में और भी बहुत से स्मारक हैं परन्तु ताज अद्वितीय है। देश विदेश के अनेक व्यक्ति यहाँ आते हैं और इस अनुपम स्मारक की भूरि-भूरि प्रशंसा करके लौटते हैं। १९६० में अमेरिका के तत्कालीन प्रेजीडेन्ट आइजनहावर और उनके कुछ दिनों बाद रूस के प्रेसीडेन्ट वोरोशीलोव दिल्ली आये थे, परन्तु वे अपने-अपने देशों में अपने साथ ताज दर्शन की इच्छा लाये थे, फिर वे कम दिल्ली में रहते। उन्होंने ताजमहल देखा और भूरि भूरि सराहना की। इसी भाँति प्रतिवर्ष असंख्य विदेशी इसके दर्शन करके सुख एवं शान्ति का अनुभव करते हैं। विशेष रूप से शरद् पूर्णिमा पर असंख्य जनसमुदाय एकत्रित होता है, कुछ लोग सारी सारी रात यहाँ मनोविनोद करते हैं और कुछ गाथा गाते गए चले जाते हैं।

'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः'

श्रेष्ठ सौन्दर्य वही है जो क्षण-क्षण नवीन सा प्रतीत हो। आज कई सौ वर्ष हो गये, ताज अपने अनन्त सौन्दर्य से आज भी युवा प्रतीत हो रहा है, न उस पर जरा का प्रभाव है और न आँधी-तूफान का। सूर्य की उत्तप्त किरणें, न उसके श्वेत शरीर को श्यामल कर सकी और न उसकी त्वचा में झुर्रियाँ ही डाल सकी। विश्व को पावन प्रेम का अमर सन्देश देता हुआ, स्नेह की अमरता को अपने हृदय की गहराइयों मे छिपाये हुए, मानव जीवन की क्षण-भंगुरता पर मानो अट्टहास कर रहा हो। चन्द्रदेव जब निशा की कोमल पलकों को खोलकर अपनी चाँदनी से धोने लगते है तब ताज की मधुर मुस्कान संसार और समाज के प्रहारो से दुखी और बिछुड़े हुए प्रेमियों को धैर्य और सन्तोष का पाठ पढाती है।

'समय की शिला पर मधुर लेख कितने, किसी ने बनाए किसी ने मिटाए।'

११. फुटबाल मैच

छात्रो के लिए जितना अध्ययन आवश्यक है, उतना ही खेलना भी। इससे शारीरिक शक्ति की ही वृद्धि नहीं होती, अपितु छात्रो की मानसिक शक्ति का भी विकास होता है। उनमे संकल्प की दृढता, संगठन की क्षमता और अनुशासन-प्रियता बढती है। खेलों के प्रचार और खेलो के प्रति छात्रो की अभिरुचि जागृत करने के लिये मैचो की योजना की जाती है। प्रतिवर्ष इण्टर स्कूल टूर्नामेंट और इन्टर कॉलिज टूर्नामेंट किए जाते है, जिसमे फुटबाल, क्रिकेट, आदि के मैच होते हैं। विद्यार्थी इनमे अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार भाग लेते हैं। विजेता टीम को पारितोषिक के रूप मे ट्रॉफी दी जाती है। अन्य अच्छे खिलाड़ियो को भी पुरस्कार मिलता है।

मैंने जो मैच देखा था वह इण्टर कॉलिज टूर्नामेंट का अन्तिम मैच था। वह सितम्बर के अन्तिम सप्ताह मे हुआ। यह मैच गवर्नमेंट इण्टर कॉलिज, बुलन्दशहर तथा अग्रवाल इन्टर कॉलिज, सिकन्दराबाद के बीच मे हुआ था। यह मैच रविवार की शाम के चार बजे रक्खा गया था। शनिवार को ही प्रधानाचार्य जी ने कॉलिज मे यह सूचना प्रसारित कर दी थी कि प्रत्येक छात्र को मैच देखने आना है। मेरा घर कॉलिज के निकट ही था, अतः मुझे वहाँ पहुँचने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। जो छात्र दूर रहते थे उन्हे भी प्रधानाचार्य जी की आज्ञा से विवश होकर आना पड़ता। ३ बजे हमारे कॉलिज के खिलाड़ियो की टीम कॉलेज के छात्रावास में एकत्रित हुई। क्रीड़ाध्यक्ष जी ने १०-१५ मिनट तक खिलाड़ियों को मैच के विषय मे कुछ आवश्यक

फुटबाल मैच

१. प्रस्तावना।
२. मैच की तैयारी।
३. खेल का आरम्भ।
४. पुरस्कार वितरण।
५. उपसंहार।

निर्देश दिए। खिलाड़ियों ने अपने-अपने कपड़े उतारने शुरू कर दिये और कॉलिज के खेल की पोशाक पहननी आरम्भ कर दी। धीरे धीरे सभी खिलाड़ी एक से परि-वेश में सुसज्जित हो गए, कोई अपनी जाँघों पर हाथ फेर रहा था, कोई अपनी भुजाओं पर। सभी खिलाड़ियों ने खेल के जूते पहन रखे थे, जो बिना जूते ही खेलना चाह रहे थे, परन्तु क्रीडाध्यक्ष की इच्छा थी कि वे भी जूते पहन कर ही खेलें। अन्त में उन्होंने क्रीडाध्यक्ष की आज्ञा मान ली। अब सभी खिलाड़ी खेलने को पूर्णरूप से तैयार थे।

सभी खिलाड़ी मैदान की ओर चल दिए, अभी साढे तीन ही बजे थे। हमारी टीम से पहले ही सिकन्दराबाद की टीम आ चुकी थी। मैदान के चारों ओर दर्शकगण जमा होते जा रहे थे। गणमान्य व्यक्तियों के लिए एक ओर कुर्सियाँ बिछी हुई थीं। दो मेजों पर पुरस्कार सजा कर रक्खे हुए थे। ठीक पौने चार बजे रैफरी ने सीटी बजाई, दोनों टीमों के कैप्टिन 'टॉस' करने के लिए रैफरी के पास आ गए। 'टॉस' में सिकन्दराबाद की टीम जीत गई। इस पर उसके साथ आए हुए कुछ विद्यार्थियों ने तालियाँ बजाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। इसके पश्चात् दोनों टीमों के कैप्टिनों ने अपने-अपने खिलाड़ियों को यथास्थान खड़ा किया। ठीक चार बजे रैफरी की सीटी ने खेल प्रारम्भ करा दिया। उस समय का दृश्य बड़ा ही मनमोहक था। खेल के मैदान के चारों ओर कोनों पर रङ्ग-बिरङ्गी झण्डियाँ लगी हुई थीं। गोल के दोनों स्थलों पर पत्तों और बल्लियों का चौड़ा द्वार-सा बना दिया गया था। मैदान के चारों ओर लाइनों के पीछे विद्यार्थियों की और फुटबाल के खेल में अभिरुचि रखने वाले नागरिकों की भीड़ लगी हुई थी। आज के पुरस्कार वितरण के लिये सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस की धर्म-पत्नी को आमन्त्रित किया गया था। वे दोनों पति पत्नी आये थे और अन्य गणमान्य दर्शकों के बीच सोफे पर बैठे हुये खेल का आनन्द ले रहे थे। कॉलिज के गेट पर कई मोटर कारें खड़ी थी। खेल पूरे उत्साह और जोश के साथ हो रहा था। दोनों ही टीमें समान प्रतीत हो रही थीं। तीस मिनट तक किसी का भी, किसी पर गोल नहीं हुआ। गेंद कभी इस ओर, तो कभी विपक्ष की ओर चली जाती थी। एक बार गेंद विपक्षियों के गोल में घुसते-घुसते रह गई। चारों ओर से 'वैल प्लेड' की आवाजें आने लगीं। कुछ लोग विपक्षियों को हतोत्साहित करने के लिये व्यर्थ की हूटिंग कर रहे थे। सिकन्दराबाद वालों का गोलकीपर बड़ा ही फुर्तीला और चुस्त था। उसने कई बार गेंद को बड़ी चतुराई से लपक कर गोल की रक्षा की थी। इस पर उसके समर्थक विद्यार्थियों ने बड़ी शिष्टता से करतल ध्वनि की। खेल पहले से भी अधिक उत्साह तथा जोश के साथ खेला जा रहा था। विपक्ष टीम ने हमारी टीम को दबाना प्रारम्भ कर दिया और मौका पाकर उन्होंने गेंद को इस प्रकार फेंका कि वह गोलकीपर के बीच से निकल कर गोल में पहुँच गई। बस फिर क्या था? रैफरी ने सीटी बजा दी। सिकन्दराबाद के विद्यार्थियों तथा कुछ दर्शकों ने भी तालियाँ बजाईं। विद्यार्थियों में से किसी ने अपना हैट उछाला और किसी ने रुमाल। एक सज्जन के हाथ में छाता था, उन्होंने छाता ही उछाल दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारी टीम पर गोल हो गया। हम लोग कुछ उदास हो गए किन्तु हतोत्साहित नहीं हुये, क्योंकि मैच का अभी आधा समय भी समाप्त नहीं हुआ था। हम लोगों ने खिलाड़ियों का नाम लेकर प्रोत्साहित करना शुरू किया।

अब हमारी टीम जी तोड़कर खेल रही थी। लोग कह रहे थे कि खेल में अब जान पड़ी है। कुछ क्षणों के पश्चात् खेल का आधा समय समाप्त हो गया, रैफरी की सीटी सुनकर खेल समाप्त कर दिया गया। खिलाड़ी विश्राम के लिये चल दिये। सिकन्दराबाद के विद्यार्थी गोल करने वाले खिलाड़ी से लिपट गये। उसे गोदी में भरकर उठा लिया। हमने भी अपने खिलाड़ियों को खूब प्रोत्साहित किया। दोनों ओर के खिलाड़ियों को मोसमी और सन्तरे दिये गये।

दस मिनट के पश्चात् फिर सीटी बजी। सभी खिलाड़ी अपने-अपने स्थान पर जाकर खड़े हो गये। खेल फिर से आरम्भ हुआ। हमारी टीम के खिलाड़ी अपनी पूरी शक्ति लगाकर खेल रहे थे, थोड़ी देर तक गेंद कभी इधर आ जाती और कभी उधर चली जाती। इतने में ही हमारे एक खिलाड़ी ने गेंद में एक ऐसा पैर मारा कि वह विपक्षी टीम के ठीक गोल के सामने जाकर गिरी और जैसे ही वह उछली वैसे ही दूसरे खिलाड़ी ने ऐसा हैड दिया कि गेंद गोल में थी। चारों ओर तालियों की गड़गड़ाहट आने लगी। हमारी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। विपक्षी टीम कुछ सुस्त हो गई। अब दोनों पक्षों में बराबर जोश बढ़ने लगा। विपक्षी टीम के खिलाड़ी हमारे खिलाड़ियों के टाँगें मारने लगे। रैफरी बार-बार सीटी बजाकर इस बात का उन्हें दण्ड देता। मैच समाप्त होने में अभी पाँच मिनट थे। इतने में देखते ही देखते हमारी टीम ने उन पर एक गोल कर दिया। उधर के खिलाड़ियों की अब हिम्मत टूट चुकी थी, वे कुछ न कर पा रहे थे। रैफरी ने लम्बी सीटी बजाई। खेल समाप्त हुआ। खिलाड़ियों को लैमन पिलाई गई और फल खिलाये गये। दोनों आपस में मिले। एक खिलाड़ी ने दूसरे खिलाड़ी से हाथ मिलाया। अधिकांश दर्शक जा चुके थे, परन्तु विद्यार्थी अब वहाँ इकट्ठे होते जा रहे थे, जहाँ पर पारितोषिक वितरण होने वाला था।

पुरस्कार वितरण से पूर्व एस० पी० महोदय की धर्मपत्नी ने खेलों के महत्व और उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला। फिर इस टूर्नामेंट के अधिकारियों को धन्यवाद देते हुए उन्होंने हमारे कैप्टिन को ट्राफी प्रदान की। सभी छात्रों ने हर्ष से करतल ध्वनि की। लगभग ६ बजे हम लोग अपने-अपने घर लौटे। दूसरे दिन हमने प्रधानाचार्य जी से मैच जीतने के उपलक्ष्य में एक दिन की छुट्टी प्राप्त की।

मैच खेलने से अनेक लाभ हैं। छात्र में एकाग्रता, सहनशीलता, सहयोग, साहस आदि गुण स्वयं ही आ जाते हैं। उसे नियन्त्रण में रहने का अभ्यास हो जाता है। उसमें अपूर्व संगठन शक्ति आ जाती है, वह अनुशासनप्रिय बन जाता है। इन सब बातों के साथ-साथ मनुष्य का लाभकारी मनोरंजन भी होता जाता है, तथा स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। अतः छात्रों को अध्ययन के साथ-साथ खेलना चाहिये परन्तु सीमित रूप में।

१२. स्वदेश-प्रेम अथवा देश-भक्ति

अथवा

"वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं"

"देशप्रेम वह पुण्य क्षेत्र है, अमल असीम त्याग से विलसित।
जिसकी दिव्य रश्मियाँ पाकर, मनुष्यता होती है विकसित॥"

स्वदेश प्रेम अथवा देश-भक्ति अथवा "वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं"

देश-भक्ति पवित्रसलिला भागीरथी के समान है, जिसमें स्नान करने से शरीर ही नहीं अपितु मनुष्य का मन और अन्तरात्मा भी पवित्र हो जाती है। स्वदेश की रक्षा और उसकी उन्नति के लिये अपना तन, मन, धन देश-चरणों में समर्पित कर देना ही देश-भक्ति है, देशप्रेम है। जन्मभूमि के प्रति निष्ठा रखना मनुष्य का नैसर्गिक गुण है। जिसकी धूलि में लेट लेट कर हम बड़े हुए, जिसने हमें रहने के लिये अपने अतुल अंक में आवास दिया, उसकी सेवा से विमुख होना कृतघ्नता है।

> 'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
> वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं॥"

वास्तव में माता और मातृभूमि के मोह से मनुष्य मृत्यु तक मुक्त नहीं होता। इन दोनों के इतने उपकार होते हैं कि मानव उनसे आजीवन उऋण नहीं हो पाता। मातृभूमि की मान रक्षा के लिये अपने को बलिदान करने में जो परम आनन्द प्राप्त होता है, देशहित के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करने में जो सुख और शान्ति मिलती है, उसका मूल्य कोई सच्चा देशभक्त ही जान सकता है। देश की समृद्धि में ही देश भक्त अपनी उन्नति समझता है। देशसेवा और परोपकार ही उसका धर्म होता है। देशवासियों के सुख दुःख में ही उसका सुख और दुःख निहित होता है। उसकी अंतरात्मा स्वार्थरहित होती है।

स्वदेश-प्रेम
१ प्रस्तावना।
२ स्वदेश-प्रेम की स्वाभाविकता।
३ स्वदेश प्रेम द्वारा देश की उन्नति।
४ स्वदेश के प्रति हमारा कर्तव्य।
५ कुछ आदर्श देश भक्त।
६ उपसंहार।

स्वदेश-प्रेम मानव-मात्र का एक स्वाभाविक गुण है। मनुष्य तो विचारवान और ज्ञानवान् प्राणी है। छोटे-छोटे अज्ञानपूर्ण पशु-पक्षी भी अपने जन्म स्थान से अनन्त स्नेह करते हैं। पक्षी दिन भर न जाने कहाँ-कहाँ उड़ते फिरते हैं, परन्तु सन्ध्या होते ही वे दूर-दूर दिशाओं से पंख फड़फड़ाते हुए अपने नीड़ों को लौट आते हैं। नगर से दूर निकल जाने वाली गाय शाम होते ही खूंटे को याद करके रम्भाने लगती है। खूंटे पर आकर ही उसे पूर्ण शान्ति और संतोष प्राप्त होता है। इसी प्रकार मनुष्य चाहे किसी कार्य विशेष से विदेश में रहता हो, परन्तु उसके हृदय से जन्मभूमि की मधुर स्मृति कभी भी समाप्त नहीं होती। स्वदेश दर्शन की लालसा उसे सदैव बाध्य करती रहती है अपने घर लौट आने के लिये। वह जन्मभूमि को संकटापन्न नहीं देख सकता। यही कारण था कि नेताजी सुभाष की "आजाद हिन्द सेना" में वही भारतीय सैनिक थे जो बर्मा, जापान आदि देशों में किसी कारण विशेष से जा बसे थे। उन्होंने परतन्त्र मातृ-भूमि को स्वतन्त्र कराने की शपथ ली, यह देश-भक्ति का ही प्रताप था।

देश की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये स्वदेश प्रेम परम आवश्यक है। जिस देश के निवासी अपने देश के कल्याण में अपना कल्याण, अपने देश के अभ्युदय में अपना अभ्युदय, अपने देश के कष्टों में अपना कष्ट और अपने देश की समृद्धि में अपनी सुख-समृद्धि समझते हैं वह देश उत्तरोत्तर उन्नतिशील होता है अन्य देशों के

सामने गौरव से अपना मस्तक ऊंचा कर सकता है। देश की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिये देशवासियों का देश-भक्त होना नितान्त आवश्यक है। जिन देशों के बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ और युवक अपने राष्ट्र की बलिवेदी पर अपने स्वार्थों को चढ़ाकर उस पर तन, मन, धन न्योछावर कर देते हैं, वे देश संसार मे महान् शक्तिशाली राष्ट्र समझे जाते हैं। जापान, जर्मनी, इङ्गलैंड, रूस आदि के इतिहास में अनेक देश-भक्तों की कहानियाँ भरी पड़ी हैं। भारतवर्ष मे इस समय निःस्वार्थ देश-भक्तों की बहुत कमी है, अपने-अपने स्वार्थ मे सभी संलग्न हैं, देश के हित के लिये कोई थोड़ा सा भी त्याग सहन नही कर सकता। यही कारण है कि भारतवर्ष अब तक प्रशंसनीय उन्नति नहीं कर पाया है।

आज भारतवर्ष स्वतन्त्र है। देश-भक्तों के लिये बहुत बड़ा कार्य-क्षेत्र पड़ा है। हमें किसान, मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधारनी चाहिये। अङ्गहीन, असहाय व्यक्तियों के लिये भोजन, वस्त्र की व्यवस्था करनी चाहिये। वर्तमान शिक्षा प्रणाली मे अनेक सुधार अभी बाकी हैं। पंचवर्षीय योजनाओं मे हमें पूर्ण सहयोग देना चाहिये, जिससे देश सब प्रकार की भौतिक उन्नति कर सके। स्वदेश रक्षा के लिये हमें पूर्णरूप से कटिबद्ध होना चाहिये, जिससे कोई भी शत्रु हमारे देश पर कुदृष्टि न डाल सके। देश के उत्थान के लिये ऐसे देश-भक्तों की आवश्यकता है, जो अपना तन, मन, धन सब कुछ देश के चरणों पर चढाने को उद्यत हो, स्वार्थी या अवसरवादी देश-भक्तों की आवश्यकता नही। हमें प्रान्तीयता की संकीर्ण विचारधारा से दूर रहना चाहिये। सबके सामने राष्ट्रीय एकता ही सर्वोपरि हो। हमे भारतवर्ष के उत्थान के लिये पूर्ण प्रयत्नशील होना चाहिये क्योंकि—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

विश्व का इतिहास ऐसे असंख्य उज्ज्वल उदाहरणों से भरा पड़ा है, जिनमें लोगों ने अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर कर दिये। भारतवर्ष में देश-भक्तों की परम्परा बड़ी उज्ज्वल रही है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मे सिकन्दर के आक्रमण को रोकने के लिये छोटे-छोटे राजाओं ने जिस वीरता का परिचय दिया, वह भारत के इतिहास मे अद्वितीय है, उस देशभक्ति का परिणाम यह हुआ कि सिकन्दर व्यास नदी से आगे न बढ़ सका। चन्द्रगुप्त मौर्य ने विदेशी आक्रान्ताओं को इतनी बुरी तरह खदेड़ा कि शताब्दियों तक वे भारतवर्ष की ओर मुँह भी न कर सके। चन्द्रगुप्त के पश्चात् पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, शालिवाहन, विक्रमादित्य आदि राजाओं ने देश को विदेशी आक्रमणकारियों से मुक्त कराने के लिये वीर युद्ध किये और सफलता भी प्राप्त की। मुगल शासनकाल मे महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, छत्रसाल और गुरु गोविन्दसिंह, आदि देशभक्त वीर अत्याचारी शासन के विरुद्ध लड़ते रहे। अंग्रेजों के शासनकाल मे १८५७ मे भारत के लाखों वीरों ने अपने देश को स्वतन्त्र कराने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दी और उसके पश्चात् स्वाधीनता संग्राम १९४७ तक निरन्तर चलता रहा। इस संग्राम मे लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, प० मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, आदि देशप्रेमी आत्माओं ने मातृभूमि के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू की कौनसी ऐसी

प्रिय वस्तु थी, जिसका त्याग उन्होंने देश-सेवा के लिये न किया हो। वह कौनसा सुख था, जिसे उन्होंने देशहित के लिये न छोड़ा हो, ऐसा कौनसा कष्ट था जिसे देश कल्याण के लिये न सहा हो। निःसन्देह अटूट देश-प्रेम के ही कारण पं० नेहरू ने आनन्द भवन का राजसी जीवन छोड़ दिया। १९६२ के भारत-चीन युद्ध, ६५ और ७१ के भारत-पाकिस्तान युद्ध में भी सहसा उभार पर आया हुआ भारतीयों का देश प्रेम अद्वितीय था।

हमारा कर्त्तव्य है कि सच्चे देश भक्तों का मार्गानुसरण करके सच्चे देश-भक्त बनें। अपने देश के लिये हमें अपने स्वार्थों को त्याग देना चाहिये। व्यक्तिगत लाभ-हानि की ओर ध्यान न देते हुए देशहित के लिये अपनी पूर्ण शक्ति लगा देनी चाहिए। सच्चे देश-भक्तों की जनता पूजा करती है। यदि हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की बात छोड़ दें और पवित्र हृदय से देश-सेवा के कार्य में लग जायें तो निःसन्देह हमारा भारतवर्ष संसार के उच्चतम राष्ट्रों में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकता है। ऐसे देश-भक्तों के प्रति एक फूल के मार्मिक उद्‌गार देखिये—

"मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जायें वीर अनेक॥"

१३. सैनिक शिक्षा

वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति की एक मौलिक निधि थी, जिसके आधार पर भारतीय समाज सदैव सुव्यवस्थित और सुश्रृंखलित रहा है। गीता में कहा गया है कि—"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः" अर्थात् गुण और कर्मों के आधार पर मैंने चार वर्णों का निर्माण किया है। यह निःसंदेह सत्य भी है क्योंकि प्रत्येक मस्तिष्क प्रत्येक कार्य के लिये उपयुक्त हो भी नहीं सकता। प्रत्येक मनुष्य में रुचि और विचार की भिन्नता नैसर्गिक है। न सभी साहित्यकार हो सकते हैं और न सभी सैनिक, न सभी व्यापारी हो सकते हैं और न सभी वकील। भारतीय प्राचीन सामाजिक व्यवस्था भी कुछ इसी प्रकार की थी। सैनिक शिक्षा केवल राजकुमारों और क्षत्रियों तक ही सीमित थी। यही समझा जाता था कि देश की सुरक्षा का भार केवल उन्हीं के कन्धों पर आधारित है। सैनिक प्रशिक्षण के लिये सभी छोटे छोटे राज्यों में विधिवत् सैनिक आश्रम और आचार्य सुनिश्चित थे, प्रशिक्षण की अवधि भी निश्चित होती थी। उस अवधि पश्चात् एक सैनिक, पूर्ण योद्धा समझा जाता था। महाभारत काल में भी गुरु द्रोणाचार्य सैनिक शिक्षा के अध्यक्ष थे, जिन्होंने एकलव्य और कर्ण को क्षत्रियेतर होने के कारण प्रशिक्षण प्रदान करने से मना कर दिया था। इस प्रकार यह कहना

> **सैनिक शिक्षा**
> १ प्रस्तावना—प्राचीन भारत में सैनिक शिक्षा का स्वरूप।
> २ वर्तमान युग में सैनिक शिक्षा की आवश्यकता।
> (क) राष्ट्र।
> (ख) व्यक्ति।
> ३ सैनिक शिक्षा के लिये प्रयास
> ४ उपसंहार।

चाहिये कि उस काल मे राजकुमारों तथा क्षत्रिय वर्ण के लिये सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। उस समय की शिक्षा केवल एकांगी ही नहीं थी अपितु गुरुकुल के आचार्य, अध्येता (विद्यार्थी) की सर्वांगीण उन्नति के लिये प्रयत्नशील होते थे। मौर्यकाल में नालन्दा तथा तक्षशिला ऐसे ही विश्वविद्यालय थे, जिनमे आम विषयों के अध्ययन के साथ-साथ सैनिक शिक्षा के अध्ययन का भी अच्छा प्रबन्ध था।

भारतवर्ष अपनी आध्यात्मिकता के लिये प्रारम्भ से ही प्रसिद्ध है। वैराग्य-पूर्ण जीवन, त्याग, तपस्या, बलिदान और सन्तोष, आदि ही में यहाँ के निवासियों ने परम शान्ति और सुख का अनुभव किया। उनकी दृष्टि मे भौतिकवाद एक हास्यास्पद और हेय विषय था। उनके सिद्धान्त थे—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है, संसार मिथ्या है। 'त्वदीयं वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये', अर्थात् हे ईश्वर ! यह सब कुछ तुम्हारा ही है, इसलिए यह सब तुम्हारे ही अर्पण है। उनकी दृष्टि मे शारीरिक शक्ति, आत्मिक शक्ति के समक्ष नगण्य थी। शरीर नाशवान् है, फिर नाशवान् वस्तु के लिये सुख और शान्ति का प्रश्न ही क्या ? 'अहिंसा परमो धर्मः यतोधर्मस्ततो जयः', आदि पुनीत वाक्यो को मनन करने वाले भारतीय मनीषियों को हिंसा की आवश्यकता नहीं थी। तमोगुण उनसे दूर था, वे सतोगुणी थे। सैनिक शिक्षा तथा हिंसा-वृत्ति दोनो अन्योन्याश्रित हैं। अतः जन-साधारण को सैनिक शिक्षा प्राप्त नहीं होती थी। वह केवल शासको और शास-कीय वर्ग तक ही सीमित थी। वे युद्ध कला मे पारंगत होते थे, उन्हें अपने देश की आन-मान पर गर्व था। वे अपने देश की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग कर देते थे। परन्तु इस धर्मपरायण देश की जनता अधिकांश धर्म-भीरु थी। दया, अहिंसा, क्षमा ये ही उसके प्रधान गुण थे। सैनिक शिक्षा की थोड़ी बहुत बची प्रवृत्ति भी शनैः शनैः धर्म के आचरण मे समाप्त हो गई। परिणाम यह हुआ कि भारत का यह पवित्र धरा-धाम विदेशियो से पदाक्रान्त हो गया। उनके पास धन था, अनन्त सैनिक शक्ति थी और पारस्परिक दृढ़ संगठन था। हमारी दृढ़ सैनिक शक्ति के अभाव मे हमारा देश परतन्त्रता की शृंखला मे जकड़ गया और कई शताब्दियो तक इसी अवस्था में बना रहा।

धर्म-युग समाप्त हुआ। आज का युग परमाणु युग है। चारों ओर हाहा-कार और युद्ध की विभीषिकाएं ही कर्णगोचर हो रही हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को बलात् अपने आधिपत्य मे करना चाहता है। बड़े-बड़े कूटनीतिज्ञ अहर्निश इसी बात के चिंतन मे रहते हैं कि किस प्रकार अन्य राष्ट्रो को नीचा दिखाया जाए। हिरोशिमा और नागासाकी के रोमांचकारी विध्वंसात्मक दृश्यों ने विश्व की शिराओं में एक बार फिर प्रकम्पन की लहर उत्पन्न कर दी है। प्रत्येक राष्ट्र अपने-अपने स्वदेश की रक्षा के लिये प्रयत्नशील है। अनन्त साधनाओं, तपस्याओं तथा बलिदानों के पश्चात् हमारे देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और आज हम स्वतन्त्र हैं। अहिंसा, अस्तेय, दया, क्षमा आदि गुण आज भी भारत के आभूषण हैं, परन्तु फिर भी विश्व का जटिल एवं संघर्षमय वातावरण सम्भवतः उसे शान्त न रहने दे और यदि हम समय के विपरीत शान्त रहे तो सम्भव है कि हमारी स्वतन्त्रता को हर समय खतरा बना रहे और हम सदैव-सदैव के लिये इतिहास के पृष्ठों से समाप्त हो जाएं। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' का सिद्धान्त सभी युगों में, सभी कालों में सत्य रहा है और रहेगा।

शक्तिशाली सदैव अशक्तों को अपना ग्रास बनाते हैं और बनायेंगे। उनसे रक्षा के लिये प्रत्येक राष्ट्र को अपनी सैन्य-शक्ति सुदृढ़ करनी होगी। सैन्य-शक्ति सुदृढ़ तभी हो सकती है, जबकि राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक सैनिक शिक्षा प्राप्त कर चुका हो और आवश्यकता पड़ने पर देश की आन्तरिक तथा बाह्य सुरक्षा के लिये सदैव कटिबद्ध रहे। अत आज भारतवर्ष को अनिवार्य सैनिक शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। यद्यपि यह कार्य शासन के लिये व्यय-साध्य अवश्य है, फिर भी इसमें भारत का कल्याण निहित है।

"जिस देश में घर-घर सैनिक हों, जिसके देशज बलिदानी हों।
वह देश स्वर्ग है, जिसे देख, अरि के मस्तक झुक जाते हों॥"
—आर० एन० गौड़

राष्ट्रहित की दृष्टि से भारतवर्ष में सैनिक शिक्षा को अनिवार्यता आवश्यक है। यदि हम चाहते हैं कि सबल राष्ट्रों के शक्तिशाली पर्थों से, युद्धप्रिय कूटनीतिज्ञों की चालों से हम अपने देश की तथा न्याय की रक्षा कर सकें तब यह आवश्यक है कि कॉलिज और विश्वविद्यालय के अतिरिक्त नगरों और ग्रामों में भी सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र खोल दिये जाएँ, जिससे कि भारतीय नवयुवक समय आने पर राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रसन्नतापूर्वक स्थायी सेना को पूर्णरूप से सहायता प्रदान कर सकें और यदि आवश्यकता पड़े तो सहर्ष प्राणोत्सर्ग कर सकें।

व्यक्ति की दृष्टि से भी सैनिक शिक्षा की योजना एक महत्वपूर्ण योजना है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है। यदि देश के नागरिकों का स्वास्थ्य अच्छा होगा, तो वे देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व का भलि-भाँति निर्वाह कर सकते हैं। सैनिक शिक्षा से उनका शरीर पुष्ट एवं सशक्त होगा और उन्हें अपने में जीवन का अनुभव होगा। निबल और अशक्त को आलस्य घेर लेता है। आलस्य मनुष्य का सबसे महान् शत्रु है।

अधिकांश भारतीयों में अनुशासनहीनता पाई जाती है। न वे समय पर कहीं जा सकते हैं, न खा सकते हैं, न सो सकते हैं, न कायदे से सड़क पर चलन का सलीका आता है और न ढंग से बात करने का तरीका, और न अपनी इच्छा के विरुद्ध वे किसी की आज्ञा मान सकते हैं। क्या विद्यार्थी, क्या युवा, क्या वृद्ध सभी में यह अनुशासनहीनता दृष्टिगोचर होती है। सैनिक अनुशासन विश्व में प्रसिद्ध है। वे अपने कमाण्डर की आज्ञा पर खाई में कूद सकते हैं, आग में गिर सकते हैं। उन्हें तो केवल आज्ञा चाहिए। उनके जीवन में एक नियमितता होती है। जीवन के दैनिक कार्यक्रमों में भी एक अनुशासन होता है। सैनिक शिक्षा से यह लाभ होगा कि हमारी व्यक्तिगत रूप से अनुशासन-हीनता समाप्त हो जाएगी। हम बड़ों का आदर करने और सहर्ष उनकी आज्ञा पालन करने के अभ्यस्त हो जायेंगे। जब हमारे नैतिक, सांस्कृतिक स्तर का उत्थान होगा तभी हम अपने देश को भी सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से उन्नति के शिखर पर आसीन कर सकेंगे। सैनिक वातावरण से नागरिकों में विपत्तियों को प्रसन्नता तथा धैर्य से सहन करने की क्षमता उत्पन्न होगी। उनमें साहस तथा स्वावलम्बन का संचार होगा। अत व्यक्तिगत हित की दृष्टि से भी हमारे नागरिकों को सैनिक शिक्षा की आवश्यकता है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने इस दिशा में विशेष ध्यान

दिया है। स्कूल, कॉलेजो तथा विश्वविद्यालयों मे विद्यार्थियों को सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता है, परन्तु वैकल्पिक रूप से। सैनिक प्रशिक्षण की यह विकल्पता शासन की ओर से समाप्त कर देनी चाहिये। छोटी-छोटी कक्षाओं के लिए जूनियर एन० सी० सी०, इण्टर तथा स्नातकीय परीक्षाओं के लिए सीनियर एन० सी० सी० कोर्स सुनिश्चित कर दिये गये हैं। परन्तु यह विषय अनिवार्य न होने के कारण सभी छात्र लाभान्वित नही हो सकते। भारत सरकार ने हृदयनाथ कुंजरू की अध्यक्षता में बनी हुई 'राष्ट्रीय सैनिक छात्र कमेटी' के सभी सुझावों को स्वीकार कर लिया तथा ३,००,००० व्यक्तियों को सीनियर कोर्स के लिए फौजी, सामुद्रिक तथा वैमानिक प्रशिक्षण देने के लिये योजना बनाई। जूनियर कोर्स के सैनिक छात्रों का कोटा लगभग १,३५,१४३ निश्चित हुआ है। और भी इसी प्रकार के भारतीय सरकार की ओर से पी० आर० डी०, होम गार्ड आदि अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। परन्तु छात्रों तक ही यदि यह सैनिक शिक्षा सीमित रही तो यह देश के कल्याण के लिए अपर्याप्त होगी। सम्पूर्ण राष्ट्र को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए यह आवश्यक होगा कि देश के प्रत्येक नगर और ग्राम मे सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र हों। देश का प्रत्येक वयस्क पुरुष एक बलिष्ठ सैनिक हो, उसमें अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए त्याग और बलिदान की भावना हो। हमे आशा है कि निकट भविष्य मे शासन की ओर से इस दिशा मे और भी प्रयास किया जाएगा।

भारत की सैन्य शक्ति एवम् सैनिक शिक्षा का ही परिणाम है कि उसने अपने पड़ोसी हमलावर देश पाकिस्तान के ३ दिसम्बर १९७१ से १६ दिसम्बर १९७१ तक १४ दिनों के ही युद्ध मे दांत खट्टे कर दिए और पाकिस्तान को पराजय का मुँह देखना पडा जैसा कि सन् ४७ और ६५ के पिछले दो युद्धो में भी वह देख चुका था। सन् ६२ मे भारतीय सैनिकों ने चीन से अपनी रक्षा की थी। विदेशी आक्रमणों के समय सैनिक ही देश के मान और गौरव के रक्षक होते हैं। निष्कर्ष यह है कि राष्ट्र की आन्तरिक और बाह्य आक्रमणो से रक्षा के लिए, सबल राष्ट्रों के शोषण के ग्रास न बनने के लिये तथा अपनी व्यक्तिगत, शारीरिक, मानसिक एवम् नैतिक उन्नति के लिए सैनिक शिक्षा परमावश्यक है। यह शिक्षा उद्योगी, अध्यवसायी, कठिन परिश्रमी तथा स्वावलम्बी बनने मे भी हमारा मार्ग प्रशस्त करेगी। परन्तु स्मरण रहे कि यह सैनिक शिक्षा आत्मरक्षा और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए ही हो न कि यह अशक्त राष्ट्रों के स्वातन्त्र्य अपहरण के लिये, अन्यथा हम अपने आदर्श से गिर जायेंगे, क्योंकि 'शक्तिः परेषां परिपीडनाय' का सिद्धान्त मानुषिक नहीं, पाशविक है।

१४. "सदाचार का महत्त्व" अथवा "सच्चरित्रता" अथवा "चरित्र की महत्ता"

"लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी, धर्म रक्षक, वीर व्रतधारी बनें॥"

एक समय था जब प्रातःकाल होते ही विद्यार्थी अपने-अपने सरस्वती मन्दिरों मे उपर्युक्त ईश वन्दना की पंक्तियों के गान के पश्चात् अपना-अपना अध्ययन आरम्भ करते थे। हम सदाचारी होंगे, तभी हम ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं, धर्म रक्षक बन सकते हैं और वीरों का व्रत धारण करने में समर्थ हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि जीवन के समस्त गुणों, ऐश्वर्यों, समृद्धियो और वैभवों की आधारशिला सदाचार है, सच्चरित्रता है। यदि हम सच्चरित्र हैं, तो संसार की समस्त विभूतियाँ, बल, बुद्धि, वैभव हमारे चरणो में लेटने लगती हैं और यदि हमारा जीवन दुश्चरित्रता और दुराचारों का घर है, तो हम समाज मे निंदा और तिरस्कार के पात्र बन जाते हैं। अपने बल, बुद्धि और वैभव को हम अपने ही हाथो से खो बैठते हैं। चरित्रहीन व्यक्ति स्वयं अपने को, अपने परिवार को और अपने समाज को, जिसका कि वह सदस्य है, गड्ढे मे गिरा देता है। दुश्चरित्र मनुष्य अपने समाज के लिये अभिशाप सिद्ध होता है, जबकि सच्चरित्र वरदान। दुश्चरित्र अपने कुकर्मों और कुकृत्यों से नारकीय जीवन की सृष्टि करता है, जबकि सच्चरित्र के लिए स्वर्ग के द्वार सदैव खुले रहते हैं। दुश्चरित्र का जीवन अन्धकारपूर्ण होता है, जबकि सच्चरित्र ज्ञान के प्रकाश के उज्ज्वल वातावरण मे विचरण करता है। वैदिक मन्त्रों में हमारे ऋषियो ने इसलिए भगवान से प्रार्थना की है कि—

> **सदाचार का महत्व अथवा सच्चरित्रता अथवा चरित्र की महत्ता**
>
> १ प्रस्तावना (महत्व)।
> २ सच्चरित्र बनने का उपाय।
> ३ सच्चरित्रता से लाभ।
> ४ आदर्श उदाहरण।
> ५ उपसंहार।

"असतो मा सद्‌गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमय।"

अर्थात् हे ईश्वर, मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अन्धकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो। असत्य और अन्धकार—इनका सम्बन्ध मनुष्य की चरित्रहीनता अर्थात् असत्य मार्ग से ही है। सच्चरित्र अपने शुभ कर्मों से इसी भूमि पर स्वर्ग का निर्माण करता है, परन्तु चरित्रहीन, दुष्टात्मा व्यक्ति अपने कुकृत्यो से इस पवित्र धराधाम को नरक बना देता है। मैथिलीशरण गुप्त तो सदाचार को ही स्वर्ग और दुराचार को नरक मानते हैं। देखिए—

'खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है,
भलों के लिये तो यही स्वर्ग है।
सुनो स्वर्ग क्या है? सदाचार है। मनुष्यत्व की मुक्ति का द्वार है॥
नहीं स्वर्ग कोई धरावर्ग है,
जहाँ स्वर्ग का भाव है, स्वर्ग है।
सदाचार ही गौरवागार है, मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।"

सच्चरित्र बनने के लिए मनुष्य को सुशिक्षा, सत्संगति और स्वानुभव की आवश्यकता होती है। यम तो अशिक्षित व्यक्ति भी संगति और अनुभवों के आधार पर अच्छे चरित्र के देखे गए हैं, परन्तु बुद्धि का परिष्कार और विकास बिना शिक्षा

के नहीं होता। मनुष्य को अच्छे और बुरे की पहचान ज्ञान और शिक्षा के द्वारा ही होती है। शिक्षा से मनुष्य की बुद्धि के कपाट खुल जाते हैं। अतः सच्चरित्र बनने के लिए अच्छी शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। अच्छी शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य को सत्संगति भी प्राप्त होनी चाहिए। देखा गया है कि शिक्षित व्यक्ति भी बड़े-बड़े कुमार्गगामी और दुराचारी होते हैं। इसका केवल यह एक कारण है कि उन्हें अच्छी संगति प्राप्त नहीं हो सकी। बुरी संगति के प्रभाव ने उनकी शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव को भी समाप्त कर दिया। क्योंकि कहा गया है कि—

"संसर्गजाः दोषगुणाः भवन्ति।"

अर्थात् दोष और गुण संसर्ग से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य जैसे व्यक्तियों में बैठेगा-उठेगा, उनकी विचारधारा, व्यसनों, वासनाओं और अच्छे-बुरे कर्मों का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ेगा। अतः सच्चरित्र बनने के लिए शिक्षा से भी अधिक आवश्यकता अच्छी संगति की है। सत्संगति नीच से नीच मनुष्य को उत्तम बना देती है। गोस्वामी जी लिखते हैं—

"शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।"

पारस पत्थर का स्पर्श करते ही लोहा भी सोना बन जाता है, इसी प्रकार दुष्ट मनुष्य भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं। "कीटोऽपि सुमनः संगात् आरोहति सतां शिरः" अर्थात् साधारण कीड़ा भी फूलों की संगति से बड़े-बड़े देवताओं और महापुरुषों के मस्तक पर चढ़ जाता है। सत्संगति मानव का क्या-क्या हित-साधन नहीं करती—

"सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्।"

स्वानुभव भी मनुष्य को सच्चरित्र बनने में बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। जब बच्चे की उंगली एक बार आग से जल जाती है, तब वह दुबारा आग पर उंगली नहीं रखता। चोर जब चोरी करते हुए पकड़ लिया जाता है तो पुलिस की रोमांचकारी एवं भयानक मार पड़ती है, तब बच्चे और चोरी करना भी छोड़ देते हैं। झूठ बोलने या कोई दुष्कर्म करने पर जब विद्यार्थी पर अध्यापक या माता-पिता के बेंत पड़ जाते हैं, तब वह भविष्य में सहसा वैसा नहीं करता। उसे अनुभव हुआ कि ऐसा करने से मुझे यह फल मिला, क्योंकि वह बुरी बात है, इसलिये मैं इसे भविष्य में नहीं करूंगा। इस प्रकार, व्यक्तिगत अनुभव भी मनुष्य को सच्चरित्रता की ओर ले जाते हैं। चौथी बात जो मानव को सच्चरित्र बनाती है, वह है अपनी आत्मा की पुकार। जीवन में सदाचारिता लाने के लिए हमें अपने पूर्वजों के आदर्श चरित्रों को पढ़ना चाहिए, उन पर विचार करना चाहिए और पद-चिह्नों पर चलने का प्रयत्न करना चाहिए। सच्चरित्र बनने के लिए जितेन्द्रियता भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि हमारी इन्द्रियाँ हमारे वश में हैं, तो कोई भी अनुचित और अशोभनीय कर्म हम कर ही नहीं सकते। यह बात पूर्णतया सही है।

सच्चरित्रता से मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं, क्योंकि सच्चरित्रता किसी विशेष गुण का बोधक शब्द नहीं है। अनेक गुण, जैसे—सत्य भाषण, उदारता, विशिष्टता, विनम्रता, सुशीलता, सहानुभूतिपरता, आदि जिस व्यक्ति में होते हैं; वह व्यक्ति सच्चरित्र कहलाता है। उस व्यक्ति की समाज प्रतिष्ठा करता है, उसे

आदर और सम्मान का स्थान दिया जाता है, इस लोक में कीर्ति का पात्र बनता हुआ अंत में स्वर्ग को प्राप्त करता है। सच्चरित्रता से मनुष्य अपनी आत्मा का सत्कार कर लेता है। उसके पवित्र विचार, उसकी महान् भावनायें, उसके दृढ़ संकल्प, सदैव दिव्य लोकांतर में विचरण करते हैं। सच्चरित्रता से मनुष्य सुख और संतोष प्राप्त करता है, शांतिमय जीवन व्यतीत करता है। लोग उसके आदर्श चरित्र पर चलकर अपना जीवन सफल बनाते हैं। वह अपने आदर्श चरित्र से समाज का कालुष्य दूर कर देता है। सच्चरित्रता से मनुष्य में शूरता, वीरता, धीरता और निर्भयता और अन्य गुण स्वतः ही आ जाते हैं। उसके अदम्य साहस के सामने कोई भी शत्रु ठहर नहीं सकता। सच्चरित्रता से मनुष्य को सुन्दर स्वास्थ्य और परिष्कृत बुद्धि प्राप्त होती है, जिसके द्वारा वह कठिन से कठिन कार्यों को सरलता से पूर्ण कर लेता है। सदाचार और सच्चरित्रता के अभाव में मनुष्य दर-दर की ठोकर खाता है और पशुओं के समान जीवन व्यतीत करता है। अंग्रेजी की एक कहावत का भाव है कि 'अगर मनुष्य का धन नष्ट हो गया तो उसका कुछ भी नष्ट नहीं हुआ और यदि उसका चरित्र नष्ट हो गया, तो उसका सब कुछ नष्ट हो गया।' सुदाचरण से मनुष्य को धन भी प्राप्त होता है, अच्छी सन्तान भी प्राप्त होती है और वह दीर्घजीवी होता है। एक श्लोक में कहा गया है—

"आचाराल्लभते ह्यायु आचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराल्लभते ख्याति, आचाराल्लभते धनम् ॥"

आदर्श महापुरुष राम की सच्चरित्रता आज किससे छिपी है। भारत के लाखों नर-नारी आज भी उनके पवित्र चरित्र से अपने जीवन को उज्ज्वल बनाते हैं। भरत के चरित्र की महानतायें आज भी भारत के त्याग, बलिदान एवं भ्रातृ-प्रेम का प्रतीक बनी हुई हैं। शिवाजी और महाराणा प्रताप की चारित्रिक विशेषताओं पर आज भी हिन्दू जाति गर्व का अनुभव करती है। लोकमान्य तिलक और मदनमोहन मालवीय आज भी भारतीय जनता के कण्ठहार बने हुए हैं। महात्मा गाँधी भी अपने चरित्र के कारण ही एक साधारण व्यक्तित्व से उठकर आज के युग के महापुरुष माने जाते हैं। सुभाषचन्द्र बोस की रोमांचकारी कहानी को कौन नहीं जानता, जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए भारत माता की दासता की शृंखलाओं को छिन्न-भिन्न करने का बीड़ा उठाया, विदेशों में रहकर भारत-माता की सेवा के लिए आजाद हिन्द फौज का निर्माण किया और घोषणा की कि 'भारतीयो ! तुम मुझे अपना खून दो, मैं तुम्हें तुम्हारी खोई हुई स्वतन्त्रता दूँगा।' भारतवर्ष का इतिहास ऐसे ही अनेक चरित्रवान महापुरुषों से भरा पड़ा है, जिन्होंने अपने चरित्र से अपना तथा अपने देश का उत्थान किया। राजस्थान की क्षत्राणियाँ अपने पवित्र चरित्र की रक्षा के लिये ही 'जौहर' का व्रत पालन किया करती थीं। चित्तौड़ का कण कण आज अपने कीर्तिगान से मुखरित हो रहा है।

चरित्रवान् बनना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। चरित्र से मनुष्य समाज में प्रतिष्ठा पाता है। अपनी आत्मा का कल्याण करता हुआ देश और समाज का भी कल्याण करता है। सच्चरित्रता सुख और समृद्धि का स्थान है। सच्चरित्रता के

अभाव मे आज देश के समक्ष अनेक भयानक समस्यायें हैं। सबसे बड़ी एवं महत्व-पूर्ण समस्या है, अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना। जो देशवासी चरित्र भ्रष्ट हैं, वे निःसन्देह ,देश की रक्षा या देश का अभ्युत्थान नही कर सकते। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

"चरित्र-बल हमारी प्रधान समस्या है। हमारे महान् नेता महात्मा गांधी ने कूटनीतिक चातुर्य को बड़ा नहीं समझा, बुद्धि विकास को बड़ा नहीं माना, चरित्र-बल को ही महत्व दिया है। आज हमें सबसे अधिक इसी बात को सोचना है। यह चरित्र-बल भी केवल एक ही व्यक्ति का नहीं, समूचे देश का होना चाहिये।"

अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम सभी देशवासी सच्चरित्र बनें, विशेष रूप से विद्यार्थियों को तो सच्चरित्र होना ही चाहिए, क्योंकि देश के भावी कर्णधार वे ही हैं, उन्हें ही देश का भार अपने कन्धों पर रखना है, अतः प्राणपण से अपने चरित्र को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि—

"वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥"

अर्थात् चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन तो आता है और चला जाता है, धन से क्षीण हुआ मनुष्य क्षीण नहीं हुआ, परन्तु जिस मनुष्य का चरित्र नष्ट हो जाता है, वह तो नष्ट है ही।

१५. "जीवन में परिश्रम का महत्त्व"

अथवा

"श्रम की महत्ता"

"भूरे बालों की-सी कतरन, छिपा नहीं जिसका छोटापन।
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय, विचरण करती, श्रम में तन्मय।
वह जीवन की चिनगी अक्षय, दिन भर में वह मीलों चलती।
अथक कार्य से कभी न डरती॥" —पन्त

पन्त जी ने चींटी का उदाहरण देकर मानव को लज्जावनत होने के लिये बाध्य कर दिया। चींटी का लघुतम जीवन परिश्रम से भरा हुआ जीवन है। वह बड़े से बड़े पर्वतों को सरलता से लांघ जाती है। शायद ही किसी ने चींटी को सोते हुए या आराम से बैठे हुए देखा हो। वह अनवरत श्रम करती है, इसलिए उसे अपना छोटापन अखरता नहीं। वह जीवन की समस्याओं को अपने श्रम से बड़ी सरलता से सुलझा लेती है। तब क्या मनुष्य संसार की कठिन-से-कठिन समस्याओं को, विभीषिकाओं को अपने श्रम से सरल नहीं बना सकता। यदि वह चाहे तो पर्वतों को काटकर सड़क निकाल सकता है, उन्मादिनी नदियों को बाँध कर पुल बना सकता है, कंटकाकीर्ण मार्गों को सुगम बना सकता है। ऐसा कौन सा कार्य

है जो परिश्रम-साध्य न हो। नेपोलियन की डायरी में असम्भव जैसा कोई शब्द नहीं था। कर्मवीर, दृढ़-प्रतिज्ञ, महापुरुषों के लिये संसार का कोई भी प्राप्तव्य कठिन नहीं होता।

परिश्रमी व्यक्ति अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहता है, प्राकृतिक कारण भी विघ्न बनकर उसके मार्ग में खड़े नहीं हो सकते। सफलता उसी मनुष्य का वरण करती है, जिसने उसकी प्राप्ति के लिये श्रम किया हो। प्रथम श्रेणी उन्हीं विद्यार्थियों को अपने गले लगाती है, जो उसकी प्राप्ति के लिये पूरे वर्ष परिश्रम करते रहे हैं। साधारण से साधारण व्यक्ति भी अपने परिश्रम से एक महान् उद्योगपति बन जाता है। सामने रखे हुए थाल में से रोटी का ग्रास भी बिना श्रम के मुँह में नहीं जाता और जाने के बाद भी बिना मुख-चर्वण का व्यायाम किये पेट में नहीं जा सकता। भर्तृहरि जी ने लिखा है कि—

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरुपौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः॥"

उद्योगी पुरुष को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है, 'ईश्वर देगा' ऐसा कायर आदमी कहा करते हैं। दैव को छोड़कर मनुष्य को यथाशक्ति पुरुषार्थ करना चाहिये। यदि प्रयत्न करने पर भी कार्य सिद्ध न हो तो यह विचार करना चाहिये कि इसमें हमारी क्या कमी रह गई?

जीवन की सफलता के लिये परिश्रम की नितान्त आवश्यकता है। आलसी, अनुद्योगी और अकर्मण्य व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं होता। शूकर, कूकर के समान जैसे वह आता है वैसे ही चला जाता है। मनुष्य वही है, उसी मनुष्य का जीवन सार्थक है जिसने अपना, अपनी जाति का, अपने देश का, अपने परिश्रम से उत्थान और अभ्युदय किया हो—

"स जातः येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।"

गति का ही दूसरा नाम जीवन है। जिस मनुष्य के जीवन में गति नहीं है, वह आगे नहीं बढ़ सकता, जहाँ पैदा हुआ है किसी दिन उसी स्थान पर सूख कर पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। वह उस तालाब के समान है, जिसमें पानी न कहीं से आता है और न निकलता ही है। वर्षा हुई तो थोड़ा भर गया और उसमें सड़ता रहा। पथिक भी उसकी दुर्गन्ध से दूर भागते हैं, कोई पास आना भी पसन्द नहीं करता। मानव जीवन संघर्षों के लिये है, संघर्षों के पश्चात् उसे सफलता मिलती है। संघर्षों में घोर श्रम करना पड़ता है। जो व्यक्ति संघर्षों से, श्रम से डर गया, वह मानव नहीं पशु है, पशु भी नहीं वह जड़ वृक्ष है, जहाँ पैदा हुआ है वहीं उसे मुरझा जाना है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने का उपदेश देते हुए कहा—

"माम् अनुस्मर युध्य च"

अर्थात् मेरा स्मरण करो और संसार में संघर्ष करो, युद्ध करो, सफलता अवश्य मिलेगी। गजराज, मृगेन्द्र यदि अपनी माँद में पड़े-पड़े सोता रहे, तो सम्भवतः कोई भी वन्य पशु उसके भोजन के लिये वहाँ उपस्थित न हो। उसे अपने जीवन के लिये दहाड़ना पड़ता है, उछल-कूद करनी पड़ती है, तब कहीं वन के राजा का पेट भर पाता है। यदि वह अकर्मण्य होकर अपने ही स्थान में पड़ा रहे तो शायद वह भूखा मर जाये। कहा भी है—

उन्नति भी होती है। श्रीकृष्ण को क्या आवश्यकता थी मूक पशुओं को लाठी लेकर हाँकने की तथा उन्हें वन-वन लेकर घूमने की। कबीर कपड़ा बुनते थे, रैदास जूते गाँठते थे, खलीफा उमर अपने रङ्गमहलों में बैठे-बैठे चटाई ही बुना करते थे, उमर खैयाम बड़ी खुशी-खुशी तम्बू सींते फिरा करते थे, टॉलस्टाय जूते गाँठते थे, जोन ऑफ आर्क को भेड़ें चराने में ही आनन्द आता था। रैमजे मैकडॉनल्ड केवल एक निर्धन श्रमिक था, परन्तु अपने अथक परिश्रम के बल पर ही एक दिन इंगलैंड का प्रधानमन्त्री बना। छत्रपति शिवाजी ने थोड़े से सैनिको की सहायता से ही समस्त हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म की यवन आततायियों के हाथ से रक्षा की, महामना मालवीय जी एक साधारण परिवार के बालक थे, परन्तु अपने अदम्य साहस और अथक परिश्रम के बल पर ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी अभूतपूर्व संस्था का निर्माण कर सके। ठीक ही कहा है—"श्रमेण बिना न किमपि साध्यं।"

"श्रम ही सों सब मिलत है, बिनु श्रम मिलै न काहि"

यदि हम चाहते हैं कि अपने देश की, अपनी जाति की, और अपनी उन्नति करें तो यह आवश्यक है कि हमें परिश्रमी बनना होगा। आज भारतवर्ष में परिश्रम प्रायः समाप्त होता जा रहा है। सभी लोग पकी-पकाई खाने को तैयार हैं, पकाना कोई नहीं चाहता। यदि हम इसी स्थिति मे रहे, तो जो कुछ हमारे पास अब तक रह गया है, वह भी एक दिन खो बैठेंगे। अंग्रेजों ने हमे दास तो बनाया ही, साथ-साथ फैशनपरस्ती मर हमे अकर्मण्य भी बना दिया। अंग्रेजी साम्राज्य ने भारतवर्ष मे शासन ही नहीं किया बल्कि हमारे हाथ और पैर भी काट लिये। हमारे हाथ-पैरो का स्थान मशीनों ने ले लिया, हम पंगु बन गये। हमारी कलाकारी छिन गई। परिणामस्वरूप देश मे बेरोजगारी फैली और धीरे-धीरे हम अपना काम करना भी भूल गये। हमारा कल्याण तभी हो सकता है, जब हम अपना काम, अपना व्यवसाय, अपना उद्योग, अपनी कृषि आदि सभी कार्य आलस्य को छोड़कर स्वयं अपने हाथों से करेंगे। परिश्रम जीवन है, आलस्य मरण है।

"आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः"

१६. मधुर भाषण

अथवा

'कागा काको धन हरै, कोयल काकू देत'

"कागा काको धन हरै, कोयल काकू देत।
तुलसी मीठे वचन से, जग अपनो करि लेत॥"

क्या बेचारा कौआ किसी का कुछ लेता है? यदि नही, तो फिर लोग उसे आराम से अपने घरों की छतों पर, मुंडेरो पर, क्यों नही बैठने देते? घृणा यहाँ तक बढ गई है कि उसके दर्शन को भी अपशकुन समझा जाने लगा है। किसी शुभ

काम से जाने के पूर्व लोग दिखा लिया करते हैं कि बाहर कौआ तो नहीं बैठा है। इसके विपरीत कोयल समाज को क्या देती है? समाज उसकी वाणी को शुभ और दर्शनों को प्रिय क्यों समझता है? सोने के पिंजड़ों में बन्द होकर कोयल राज-दरबार की शोभा बढ़ा सकती है तो क्या कौए को पिंजड़ों में बन्द होकर किसी झोंपड़ी में चार-चाँद लगाने का अधिकार नहीं? यह व्यवहार-विभेद प्राणी के गुण-अवगुणों पर आधारित है। यदि आप में गुण हैं तो आप पराये को भी अपना बना सकते हैं। मधुर भाषण से मनुष्य, पशु पक्षी भी प्रिय बन सकते हैं। यह वह रसायन है जिससे लोहा भी सोना बन जाता है, यह वह औषधि है, जिससे मानव के समस्त हृदय के विकार दूर हो जाते हैं, यह वह वशीकरण मन्त्र है, जिससे आप दूसरों के हृदय में बैठ जाते हैं, यह वह बाण है, जिससे मनुष्य के हृदय में घाव नहीं होता, अपितु स्नेह की मधुर व्यथा उत्पन्न हो जाती है। यह वह अमृत है, जिससे मृत प्राणों में भी जीवन का संचार हो उठता है। जीवन और जगत को सुखी और शान्त बनाने के लिये मधुर भाषण से अधिक लाभदायक वस्तु और क्या हो सकती है। श्रोता और वक्ता दोनों को आनन्द विभोर कर देने वाला यह मधुर भाषण समाज की पारस्परिक मान मर्यादा, प्रेम प्रतिष्ठा और श्रद्धा विश्वास का आधार-स्तम्भ है। इसके अभाव में समाज कलह, ईर्ष्या द्वेष और वैमनस्य का घर बन जाता है। जिस समाज में पारस्परिक सौहार्द और सहानुभूति नहीं, वह समाज नहीं, प्रेतों का घर है, साक्षात नरक है। इसीलिये शास्त्र आज्ञा करते हैं कि—

"मधुर भाषण"
१ प्रस्तावना (महत्व)।
२ मधुर भाषण से लाभ।
३ कटु भाषण से हानि।
४ आदर्श उदाहरण।
५ उपसंहार।

'प्रियं ब्रूयात्'

मधुर भाषण से मनुष्य का समाज में आदर होता है। मधुरभाषी के मुख से निकले हुए एक एक शब्द पर सुनने वालों का जी लुभाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो इसके मुख से फूल झड़ रहे हों। सम्पर्क में आने वाले असम्बन्धित व्यक्ति भी अपने बन जाते हैं और उनका आदर करने लगते हैं। तुलसीदास ने लिखा है—

"वशीकरण एक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर।
तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर॥"

मीठे वचन बोलने से केवल श्रोता को ही आनन्द नहीं आता, बल्कि वक्ता की भी आत्मा आनन्द का अनुभव करती है। कहने और सुनने वाले दोनों को शान्ति लाभ होता है। परन्तु वक्ता को एक विशेष लाभ यह होता है कि उसके मन की अहंकारी, दम्भ और गौरवपूर्ण भावनाएँ स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं। अहंकारी व्यक्ति कभी मधुर भाषी नहीं हो सकता, दूसरे के हृदय को दुःखी करने में वह अपना जी बहलाव समझता है। कहा गया है कि—

'ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपो शीतल होय॥'

मधुर भाषण से मनुष्य में नम्रता, शिष्टता, सहृदयता आदि उदात्त गुणों का उदय होता है, जिनसे जीवन प्रकाशपूर्ण और शान्त बन जाता है, क्रोध उसके पास नहीं आता है, क्रोध मानव जाति का सबसे बड़ा शत्रु है, क्रोध से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है, उसे उचित-अनुचित का विचार नहीं रहता। मृदु-भाषी कभी क्रोध

कर पाता है और न भौतिक समृद्धि ही प्राप्त कर पाता है। वह समाज में निन्दा और अपयश का पात्र बन जाता है। बिना गुणों के न मनुष्य की विद्या शोभा पाती है और न उसकी सुन्दरता, न उसका ऐश्वर्य और न वैभव। वह तो गन्धहीन टेसू के पुष्प की तरह समाज मे निरादृत होता है। संस्कृत के विद्वानों ने कहा है—

"गुणो भूषयते रूपं, गुणो भूषयते कुलम्।
गुणो भूषयते विद्यां, गुणो भूषयते धनम्॥"

आदर्श गुणों से ही मनुष्य के रूप की शोभा होती है, गुणों से ही कुल की शोभा होती है, गुणों से ही विद्या सुशोभित होती है और गुणों से ही मानव के धन की शोभा होती है। जीवन के लिये जहाँ शिष्टता, शीलता, नम्रता, उदारता आदि गुण आवश्यक बताये गये हैं उनमे सत्यता का सर्वप्रथम स्थान है। अन्य गुणों से केवल मनुष्य को लौकिक मान मर्यादा ही प्राप्त होती है, परन्तु सत्य भाषण करने वाला ही सत्य स्वरूप परमात्मा को जान सकता है। सत्य भाषण मानव-जीवन के सभी आदर्श गुणों में शिरोमणि है। सत्य भाषण सबसे बड़ी तपस्या है—

"सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, ताके हिरदे आप॥"

सत्य बोलने से मनुष्य को अनेक लाभ होते हैं। ऐसी कौन-सी सफलता है, ऐसी कौन-सी सिद्धि है, जो इस सत्य साधन से प्राप्त न होती हो। संसार संघर्ष की भूमि है, यहाँ मनुष्य को उन्नति के लिये, अपने स्थायित्व के लिये पग-पग पर संघर्ष करना पड़ता है। परन्तु जीत उसकी होती है, जो सत्य के पथ पर होता है, सत्य भाषण करता है। झूठ बोलने वाले की कभी विजय नही होती, यदि थोड़ी देर के लिये हो भी जाये, तो यह चिरस्थायी नही होती। इसलिये संसार में उन्नति, उत्कर्ष और उत्थान प्राप्त करने के लिये सत्यवादी होना परम आवश्यक है। कहा भी गया है—

"सत्यमेव जयते, नानृतम्।"

अथवा

"सत्येन रक्ष्यते धर्मः"

सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नही और सत्य से ही धर्म की रक्षा की जा सकती है। अतः यदि हम जीवन-पथ मे आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपने माता-पिता से, मित्रों से, गुरुजनों से, सम्बन्धियो से, सहपाठियों से, कहने का तात्पर्य यह है कि हम जिसके भी सम्पर्क मे आते हैं, उससे कभी झूठ न बोलें; "सत्यं वदेत् धर्मं चरेत्" का सिद्धान्त हमारे सामने होना चाहिये। सच्चरित्र व्यक्ति ही समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जिस मनुष्य के चरित्र का पतन हो जाता है, वह जीवित भी मृत के समान गिना जाता है। इसलिए कहा गया है कि—

"अक्षीणो वित्तत क्षीण। वृत्ततस्तु हतो हतः।"

अर्थात् जिसका धन नष्ट हो गया उसका कुछ भी नष्ट नही हुआ परन्तु जिसका चरित्र नष्ट हो गया, उसका सब कुछ नष्ट हो गया। अत. अपने चरित्र की रक्षा के लिये सत्य भाषण परम आवश्यक है। सत्य भाषण से मनुष्य की आत्मा को सुख और शान्ति प्राप्त होती है, फिर उसे इस बात का भय नही होता कि यदि अमुक बात खुल गई तो क्या होगा, उसे मानसिक शान्ति रहती है। इनके विपरीत जो बात-बात में झूठ बोलते हैं उन्हे पग-पग पर मुंह की खानी पड़ती है। समाज मे

निन्दा होती है, जीवन भर अपयश के पात्र बने रहते हैं और अपनी ही आत्मग्लानि उन्हें खाये जाती है। सत्य बोलने वाले को न कोई भय है और न कोई चिन्ता। क्योंकि वह जानता है कि—

"साँच को आँच कहीं नहीं होती।"

सत्यवादी की समाज मे प्रतिष्ठा होती है। जनता उसका हृदय से अभिनन्दन करती है। उसकी मृत्यु का सौरभ चारों ओर फैलता है। मृत्यु के बाद भी सत्यवादी अपने यश रूपी शरीर से जीवित रहता है।

असत्यवादी कभी जीवन में उन्नति नही कर सकता, उसे सदैव अवनति का मुँह देखना पडता है, पग पग पर ठोकरें खानी पडती हैं। झूठ बोलना सबसे बडा पाप है, झूठ बोलने वाला अपने कुकृत्यो से इस लोक और परलोक दोनो को नष्ट कर देता है। असत्यवादी का चरित्र भ्रष्ट हो जाता है। झूठ बोलना ही एक ऐसा भयकार अवगुण है, जो मनुष्यो के अन्य असाधारण गुणों को भी अपनी काली छाया में ढक लेता है। इससे मनुष्य के चरित्र का पतन होता है, क्योंकि उसके हृदय में सदैव अशाति बनी रहती है और जो अशान्त होता है उसको सुख कहाँ ?

"अशान्तस्य कुतः सुखम् ?"

अनेक चिन्ताएँ उसे घेरे रहती हैं, इस प्रकार असत्यवादी का जीवन एक भार बन जाता है। समाज मे सर्वत्र उसकी निन्दा होती है। कोई उसकी बात का विश्वास नहीं करता। लोग उसे "झूठा" कहकर सम्बोधित करते हैं, स्थान स्थान पर उसे अपमान सहना पडता है। ससार से विश्वास उठ जाने का मतलब यह है कि उसका जीवित रहते हुए ही मृत्यु हो जाना। आपने वह उदाहरण पढ़ा होगा कि एक लडका नित्य "भेडिया आया, भेडिया आया" कहकर गाँव वालों को डरा देता था। बेचारे गाँव वाले उस लडके की रक्षा करने के लिये डण्डा ले-लेकर जगल की ओर दौडते, परन्तु वहाँ पहुँचकर कुछ भी न मिलता। गाँव वालों ने समझ लिया कि यह लडका झूठ बोलकर हमे बुलाता है। अत उन्होंने दूसरे दिन से जाना बन्द कर दिया। एक दिन सचमुच ही भेडिया आ गया, लडका चिल्लाता रहा, परन्तु कोई गाँव वाला उसे बचाने न पहुँचा, भेडिया उसे खा गया। इस प्रकार झूठ बोलने से मनुष्य का विश्वास सदैव के लिये समाप्त हो जाता है। असत्यवादी का समाज मे कोई सम्मान नही होता, वह सर्वत्र तिरस्कृत होता है।

सत्यवादी आदर्श महापुरुषो से भारतवर्ष का इतिहास भरा पडा है, महाराजा हरिश्चन्द्र सत्यवादियो मे अग्रगण्य हैं, जिन्होंने सत्य की रक्षा के लिये अनन्त यातनाएँ सही, स्वय को बेचा, अपनी पत्नी पुत्र को बेचा, परन्तु अपने सत्य से विचलित न हुए। आज भी इस दोहे को पढ़कर हम अपने पूर्वजो पर गर्व का अनुभव करते हैं—

"चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ व्रत हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार॥"

सत्य की रक्षा के लिये ही महाराजा दशरथ ने अपने प्राणो से भी प्रिय पुत्र राम को वन जाने का आदेश दिया था, भले ही इस दुख मे उन्हें अपने प्राणो से हाथ धोने पड़े, अपनी इस गर्वोक्ति की रक्षा की—

"रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जायें पर वचन न जाई॥"

हमारा पुनीत कर्तव्य है कि हम अपने जीवन में सत्य को ग्रहण करें, सत्य भाषण करें, और सत्य पथ पर चलें। सत्य भाषण से हमें जीवन की सभी समृद्धियाँ सुलभ हो सकती हैं। हम इस समाज का कल्याण करने वाले बन सकते हैं। शेक्सपीयर ने लिखा है कि "While you live, tell the truth and shame the devil" अर्थात् जब तक जीवित रहो, सत्य बोलो और शैतान को लज्जित करो। सत्य भाषण से मनुष्य सन्मार्ग पर रहता है, वह पथ-भ्रष्ट और चरित्र-भ्रष्ट नहीं होता, उसके जीवन में अशान्ति और असन्तोष नहीं होता। ●

१८. व्यायाम और स्वास्थ्य

"धर्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यं मूलमुत्तमम्"

महर्षि चरक ने लिखा है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों का मूल आधार स्वास्थ्य ही है। यह बात अपने में नितान्त सत्य है। मानव जीवन की सफलता धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करने में ही निहित है, परन्तु सबकी आधारशिला मनुष्य का स्वास्थ्य है, उसका निरोग जीवन है। रुग्ण और अस्वस्थ मनुष्य न धर्मचिन्तन कर सकता है, न अर्थोपार्जन कर सकता है, न काम प्राप्ति कर सकता है, और न मानव-जीवन के सबसे बड़े स्वार्थ मोक्ष की ही उपलब्धि कर सकता है क्योंकि इन सबका मूल आधार शरीर है, इसलिये कहा गया है कि—

"शरीरमाद्यम् खलु धर्मसाधनम्।"

अस्वस्थ व्यक्ति न अपना कल्याण कर सकता है, न अपने परिवार का; न अपने समाज की उन्नति कर सकता है और न देश की। जिस देश के व्यक्ति अस्वस्थ और अशक्त होते हैं, वह देश न आर्थिक उन्नति कर सकता है और न सामाजिक। देश का निर्माण, देश की उन्नति, बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं से रक्षा, देश का समृद्धिशाली होना वहाँ के नागरिकों पर आधारित होता है। सभ्य और अच्छा नागरिक वही हो सकता है जो तन, मन, धन से देशभक्त हो और मानसिक और आत्मिक स्थिति में उन्नत हो। इन दोनों ही क्रमों में शरीर का स्थान प्रथम है। बिना शारीरिक उन्नति के मनुष्य न देश की रक्षा कर सकता है और न अपनी मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। अस्वस्थ विद्यार्थी कभी श्रेष्ठ विद्यार्थी नहीं हो सकता, अस्वस्थ अध्यापक कभी आदर्श अध्यापक नहीं हो सकता, अस्वस्थ व्यापारी का व्यापार कभी समुन्नत नहीं हो सकता, अस्वस्थ वकील भी अच्छी बहस नहीं कर सकता, अस्वस्थ नौकर कभी यथोचित स्वामी-सेवा नहीं कर सकता, अस्वस्थ स्त्री कभी आदर्श गृहिणी नहीं हो सकती, अस्वस्थ सन्यासी कभी समाज का कल्याण नहीं कर सकता, अस्वस्थ नेता कभी देश की बागडोर मजबूती से अपने हाथ में नहीं पकड़ सकता। अतः स्वास्थ्य प्रत्येक दृष्टि से, प्रत्येक सामाजिक प्राणी के लिये, महत्वपूर्ण वस्तु है। अंग्रेजी में कहावत है—"Health is Wealth" अर्थात् स्वास्थ्य ही धन है।

स्वास्थ्य का महत्व

१. प्रस्तावना।
२. स्वास्थ्य रक्षा के साधन और व्यायाम।
३. व्यायाम के भेद।
४. व्यायाम से लाभ।
५ व्यायाम की उचित विधि।
६. उपसंहार।

स्वास्थ्य रक्षा के लिये विद्वानों

ने, वैद्यों ने और शारीरिक विज्ञान-वेत्ताओं ने अनेक साधन बताये हैं, जैसे—सन्तुलित भोजन, पौष्टिक पदार्थों का सेवन, शुद्ध जलवायु का सेवन, परिश्रमण, संयम-नियम पूर्ण जीवन, स्वच्छता, विवेकशीलता, पवित्र आचरण, व्यायाम, निश्चिन्तता इत्यादि। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये साधन स्वास्थ्य को समुन्नत करने के लिए रामबाण की तरह अमोघ हैं परन्तु इन सब का 'गुरु' व्यायाम है। व्यायाम के अभाव में स्वास्थ्यवर्धक पौष्टिक पदार्थ विष का काम करते हैं। व्यायाम के अभाव में केवल पवित्र आचरण या विवेकशीलता भी अपना कोई प्रभाव नहीं दिखा सकती, क्योंकि जब आपके शरीर में शक्ति नहीं है, तब आप विवेकशील हो ही नहीं सकते। ज्ञान, बुद्धि, विवेक, परिमार्जित मस्तिष्क, ये सब स्वास्थ्य की ही देन होती हैं। क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ विचार रहा करते हैं, जैसा किसी विद्वान् अंग्रेज ने कहा है—"A sound mind in a sound body"। स्वास्थ्यहीन व्यक्ति अविवेकी, विचारशून्य, मूर्ख, आलसी, अकर्मण्य, हठी, क्रोधी, झगड़ालू आदि सभी दुर्गुणों का भण्डार होता है। स्वास्थ्य का मूल मन्त्र व्यायाम है—

"व्यायामात्पुष्ट गात्राणि"

अपने अध्ययन कक्ष में बैठा हुआ तथा शास्त्रीय गहन विचारों में उलझा हुआ प्रोफेसर, मैं आपसे पूछता हूँ कि वह क्या कर रहा है। आप कहेंगे कि वह पढ़ाने के लिये पढ़ रहा है या भाषण देने के लिये पढ़ रहा है या अपने ज्ञान-वर्धन के लिये पढ़ रहा है। परन्तु आप समझ लीजिये कि वह व्यायाम भी कर रहा है। व्यायाम केवल दण्ड-बैठक करना ही नहीं होता, पुस्तक पढ़ना भी व्यायाम होता है। इस व्यायाम को बौद्धिक व्यायाम कहते हैं। इससे मस्तिष्क के पुर्जों में शक्ति आती है और वे पुष्ट हो जाते हैं। इस व्यायाम से मनुष्य महान् विचारक और ज्ञानवान बन जाता है। दूसरा व्यायाम, शारीरिक व्यायाम होता है, जिससे शरीर के अंग, प्रत्यङ्ग पुष्ट होते हैं, शरीर बलवान् बन जाता है और मनुष्य तेजस्वी दिखाई पड़ने लगता है। शारीरिक व्यायाम में वे सभी क्रियायें आ जाती हैं, जिनसे शरीर के अंग पुष्ट होते हैं। कोई प्रातःकाल खुली हवा में दौड़ लगाना पसन्द करता है, तो कोई बन्द कमरे में तेल मालिश करके दण्ड और बैठक करना। कोई जीन कसे हुए घोड़े पर सवार होकर सपाटे भरना पसन्द करता है, तो कोई नदी के शीतल जल में हाथ-पैर उछाल कर और श्वास रोक कर तैरना। कोई अखाड़े में कुश्ती लड़ना पसन्द करता है, तो कोई मुग्दर घुमाकर घर आ जाता है। कोई ऊँची कूद कूदता है, तो कोई लम्बी कूद। कोई लाठी चलाने का अभ्यास करता है, तो कोई तीर चलाकर निशाना मारने का। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार की सभी क्रियायें, जिनमें शरीर के अंग पुष्ट होते हों, व्यायाम के अन्तर्गत आ जाती हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के खेल भी एक प्रकार का व्यायाम ही हैं। उनसे भी खिलाड़ी का शरीर पुष्ट होता है और छाती चौड़ी होती है, कबड्डी, रस्साकशी, मलखम्ब आदि भारतीय खेल हों या भारतीय यौगिक क्रियायें हों या फुटबाल, वालीबॉल, हॉकी, टैनिस, बैडमिन्टन, क्रिकेट आदि पाश्चात्य खेल हों। स्त्रियों के लिये सबसे श्रेष्ठ व्यायाम चक्की चलाना है, जिससे आजकल की स्त्रियाँ कोसों दूर भागती हैं और ऐसी बातों को दकियानूसी ख्याल बताती हैं। यही कारण है कि आजकल की स्त्रियों का स्वास्थ्य खराब होता है और पीली पड़ी रहती हैं।

व्यायाम से मनुष्य को असंख्य लाभ हैं। सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह कभी भी वृद्ध नहीं होता और दीर्घजीवी होता है। जो व्यक्ति नियमित रूप से

व्यायाम करता है उसे बुढ़ापा जल्दी नहीं घेरता, अन्तिम समय तक शरीर में शक्ति बनी रहती है। आजकल तो २०-२२ साल के बाद ही शरीर और मुंह की खाल पर झुर्रियां पड़ने लगती हैं और मनुष्य वृद्धावस्था में प्रवेश करने लगता है। व्यायाम करने से हमारे उदर की पाचन-क्रिया ठीक रहती है। भोजन पचने के बाद ही वह रक्त, मज्जा माँस आदि मे परिवर्तित होता है। शरीर का रक्तसंचार हमारे जीवन के लिये परम आवश्यक है। व्यायाम से शरीर मे रक्तसंचार नियमित रहता है। इससे शरीर और मस्तिष्क की वृद्धि होती है। व्यायाम से मनुष्य का शरीर सुगठित और शक्ति सम्पन्न होता है। मनुष्य में आत्म-विश्वास और वीरता, आत्मनिर्भरता और वीरता आदि गुणो का आविर्भाव होता है।

"वीरभोग्या वसुन्धरा"

वसुन्धरा सदा वीर व्यक्तियो द्वारा भोगी जाती है, यह एक प्राचीन सिद्धांत है। जिसमे शक्ति होती है, समाज उसका दास बना रहता है, उसका अनुगमन करता है। यह शक्ति व्यायाम द्वारा ही मनुष्य प्राप्त करता है। हमारे प्राचीन भारतवर्ष मे राजपूतों को विद्याध्ययन के लिये गुरुकुल में भेजा जाता था, जहाँ वे महर्षियों द्वारा शास्त्रीय ज्ञान और आचार-विचार की शिक्षा प्राप्त करते थे, राज नीति और समाज-नीति का अध्ययन करते थे, परन्तु इसके पश्चात् उन्हें मल्ल-विद्या का भी अध्ययन कराया जाता था। व्यायाम की विधिवत् शिक्षा दी जाती थी। तभी वे शत्रुओं को मुंह तोड़ उत्तर देने में समर्थ होते थे। उस समय भारतवर्ष एक शक्ति-सम्पन्न और वीरों का देश समझा जाता था। अन्य देशो के नर-नारी यहाँ के वीर पुरुषों का कीर्तिगान करके अपने बच्चों को भी वैसा ही बनने के लिये प्रेरित करते थे। यह 'वीरों का देश' अपनी शक्ति पर गर्व करता था और उस शक्ति का मूल स्रोत था दैनिक व्यायाम।

व्यायाम का उचित समय प्रातःकाल और सायंकाल है। प्रायः शौच इत्यादि से निवृत्त होकर, बिना कुछ खाये, शरीर पर थोड़ी तेल मालिश करके व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शरीर के सभी अंग प्रत्यङ्गों का व्यायाम हो, शरीर के कुछ ही अगो पर जोर पड़ने से वे पुष्ट हो जाते हैं, परन्तु अन्य अंग कमजोर ही बने रहते है। इस तरह शरीर बेडौल हो जाता है। व्यायाम करते समय जब श्वास फूलने लगे तो व्यायाम करना बन्द कर देना चाहिये, अन्यथा शरीर की नसें टेढी हो जाती हैं और शरीर बुरा लगने लगता है, जैसा कि अधिकांश पहलवानों को देखा जाता है, किसी की टाँगें टेढ़ी तो किसी के कान। व्यायाम करते समय मुंह से श्वास कभी नही लेना चाहिये, सदैव नासिका से लेना चाहिये। व्यायाम के लिये उचित स्थान वह है, जहाँ शुद्ध वायु और प्रकाश हो और स्थान खुला हुआ हो, क्योंकि फेफड़ो में शुद्ध वायु आने से उनमे शक्ति आती है, एक नवीन स्फूर्ति आती है और उनकी अशुद्ध वायु बाहर निकलती है। व्यायाम के तुरन्त पश्चात् कभी नहीं नहाना चाहिये, अन्यथा गठिया होने का भय होता है। व्यायाम के पश्चात् फिर थोड़ा तेल-मालिश करनी चाहिये, जिससे शरीर की थकान दूर हो जाए। फिर प्रसन्नतापूर्वक शुद्ध वायु मे कुछ समय तक विश्राम और विचरण करना चाहिये। जब शरीर का पसीना सूख जाये और शरीर की थकान दूर हो जाए, तब स्नान करना चाहिये। इसके पश्चात् दूध आदि कुछ पौष्टिक पदार्थों का सेवन परम आवश्यक है। बिना पौष्टिक पदार्थों के व्यायाम से भी अधिक लाभ नही होता। व्यायाम का अभ्यास धीरे-धीरे बढाना चाहिये।

यदि प्रथम दिन ही आपने सौ दण्ड और सौ बैठकें कर लीं तो आप दूसरे दिन खाट से उठ भी नहीं सकते, लाभ के स्थान पर हानि होने की ही सम्भावना अधिक है।

आज देश की वीरता का उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है। सन्तान निस्तेज उत्पन्न होती है और जीवन भर निस्तेज ही बनी रहती है। इसका मुख्य कारण बच्चों के माता पिता की शारीरिक शक्ति की न्यूनता है। आज न इसमें अपने पूर्वजों का सा पराक्रम है, न शौर्य, न धीरता है और न वीरता। इसका कारण है कि हम पंगु और अकर्मण्य हो गये, शरीर से परिश्रम लेने का काम हमने छोड़ दिया। आज के युग में घी, दूध तो प्राय समाप्त हो ही गया। इतने पर भी शरीर सुचारु रूप से चलता रहे तथा जीवन यात्रा में कोई भयानक विघ्न उपस्थित न हो, इसलिये थोड़ा-सा व्यायाम कर लेना परम आवश्यक है। जीवन की सफलता स्वास्थ्य पर आधारित है और स्वास्थ्य व्यायाम पर। स्वस्थ व्यक्ति कभी पराश्रित या दुखी नहीं रह सकता, वह जो काम चाहे कर सकता है। अत हमारा कर्तव्य है कि हम इस स्वास्थ्य रूपी धन को व्यर्थ ही नष्ट न करें, जिसमें हमें जीवन भर पश्चात्ताप की अग्नि में न जलना पड़े। प्राण रूपी पक्षी को शरीर रूपी पिंजड़े में सुरक्षित रखने के लिये स्वास्थ्य रूपी मजबूत सीकचों की आवश्यकता है। जीवन में प्रसन्नता के लिये स्वास्थ्य और स्वास्थ्य के लिये व्यायाम नितान्त आवश्यक है। ●

१६. आदर्श मित्र

"एकाकी बादल रो देते, एकाकी रवि जलते रहते।"

वास्तव मे जीवन मे अकेलापन विधाता का एक अभिशाप है। इस अभिशाप से विवश होकर मनुष्य कभी-कभी आत्महत्या करने को भी उतारू हो जाता है। सामाजिक प्राणी के नाते वह समाज मे रहना चाहता है, भावनाओं का आदान-प्रदान करना चाहता है, अपने सुख दुख का साथी बनाना चाहता है। परिवार मे सभी सम्बन्धी होने पर भी उसे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जिससे दिल खोलकर वह सब बातें कर सके। परिवार के सदस्यों की भी कुछ सीमायें होती हैं। कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो केवल पिताजी से कही जा सकती हैं, कुछ ऐसी होती है जिन्हे केवल माता जी से ही कह सकते हैं, कुछ बातें भाई-बहनों से भी बताई जाती हैं, कुछ बातो मे पत्नी से परामर्श लिया जाता है, और कुछ बातों मे घर के अन्य वयोवृद्ध सदस्यों से। परन्तु वे सभी बातें चाहे अच्छी हों या बुरी, गुण की हों या अवगुण की, हित की हों या अहित की, कल्याण की हों या विनाश की, उत्थान की हों या पतन की, उपकार की हों या अपकार की, यदि किसी से जो खोलकर कही जा सकती हैं तो केवल मित्र से। मित्र के अभाव मे मनुष्य कुछ खोया-खोया

> **आदर्श मित्र**
> १ प्रस्तावना—आवश्यकता।
> २ मित्र के कर्तव्य—
> (क) सन्मार्ग पर चलना,
> (ख) विपत्ति मे सहायता,
> (ग) गुणों को प्रकट करना,
> (घ) सदैव सहयोग और सहानुभूति रखना,
> (ङ) नि स्वार्थ हितचिन्तन,
> ३ आज के मित्र।
> ४ उपसंहार—मित्र कैसा होना चाहिये।

का अनुभव करता है, किससे अपने सुख-दुःख की कहे, किसके सामने वह अपने हृदय की गठरी को खोले ? अपने मनोविनोद और हास परिहास के समय को वह किसके साथ बिताए, विपत्ति के समय वह किसकी सहायता ले ? सत्परामर्श ले और सहानुभूति प्राप्त करे ? अपनी रक्षा का भार वह किसे सौंपे ? क्योंकि मित्र की रक्षा, उन्नति, उत्थान सभी कुछ एक सन्मित्र पर आधारित होते हैं—

"कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणि।
अविचार्य प्रियं कुर्यात्, तन्मित्रं मित्रमुच्यते ॥"

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य के दोनों हाथ शरीर की अनवरत रक्षा करते हैं, उन्हें कहने की आवश्यकता नहीं होती और न कभी शरीर ही कहता है कि जब मैं पृथ्वी पर गिरूँ तब तुम आगे आ जाना और बचा लेना; परन्तु वे एक सच्चे मित्र की भाँति सदैव शरीर की रक्षा में संलग्न रहते हैं। इसी प्रकार आप पलकों को भी देखिए, नेत्रों में एक भी धूलि का कण चला जाए, पलकें तुरन्त बन्द हो जाती हैं। हर विपत्ति से अपने नेत्रों को बचाती हैं। इसी प्रकार एक सच्चा मित्र भी बिना कुछ कहे-सुने मित्र का सदैव हित-चिन्तन किया करता है।

मित्र के अनेक कर्त्तव्य होते हैं जिनमें से केवल कुछ प्रमुख कर्त्तव्यों पर नीचे विचार किया जायेगा। एक सच्चा मित्र सदैव अपने साथी को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। वह कभी नहीं देख सकता कि उसकी आँखों के सामने ही उसके मित्र का घर बर्बाद होता रहे, उसका साथी पतन के पथ पर अग्रसर होता रहे, कुवासनायें और दुर्व्यसन उसे अपना शिकार बनाते रहें, कुरीतियाँ उसका शोषण करती रहें, कुविचार उसे कुमार्गगामी बनाते रहें। वह उसे समझा-बुझाकर, लाड़ से, प्यार से और फिर, प्यार से और मार से किसी न किसी तरह उसे उस मार्ग को छोड़ने के लिये विवश कर देगा। तुलसीदास ने मित्र की जहाँ और पहचान बताई हैं वहाँ एक यह भी है—

"कुपंथ निवारि सुपन्थ चलावा।
गुण प्रगटहिं अवगुणहिं दुरावा ॥"

तात्पर्य यह है कि यदि हम झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, धोखा देते हैं या हममें इसी प्रकार की और बुरी आदतें हैं, तो एक श्रेष्ठ मित्र का कर्त्तव्य है कि वह हमें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे, हमें अपने दोषों के प्रति जागरूक कर दे, तथा उनको दूर करने का निरन्तर प्रयत्न करता रहे।

जब मनुष्य के ऊपर विपत्ति के काले बादल घनीभूत अन्धकार के समान छा जाते हैं और चारों दिशाओं में निराशा के अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता, तब केवल सच्चा मित्र ही एक आशा की किरण के रूप में सामने आता है। तन से, मन से, धन से वह मित्र की सहायता करता है और विपत्ति के गहरे गर्त में डूबते हुए अपने मित्र को निकाल कर बाहर ले आता है। रहीम ने लिखा है—

"रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराई।
मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाई ॥"

मित्रता होनी चाहिये मीन और नीर जैसी। सरोवर में जब तक जल रहा; मछलियाँ भी क्रीड़ा तथा मनोविनोद करती रहीं। परन्तु जैसे-जैसे तालाब के पानी पर विपत्ति आनी आरम्भ हुई; मछलियाँ उदास रहने लगीं, जल का अन्त तक

छोड़ दिया उसके साथ संघर्ष में रत रहीं, परन्तु जब मित्र न रहा, तो स्वयं भी अपने प्राण त्याग दिये, परन्तु अपने साथी जल का अन्त तक विपत्ति में भी साथ न छोड़ा। मित्रता दूध और जल की-सी नहीं होनी चाहिये कि जब दूध पर विपत्ति आई और वह जलने लगा तो पानी अपना एक ओर को किनारा कर गया, अर्थात् भाप बनकर भाग गया, बेचारा अकेला दूध अन्तिम क्षण तक जलता रहा। स्वार्थी मित्र सदैव विश्वासघात करता है, उसकी मित्रता सदैव पुष्प और भ्रमर जैसी होती है। भंवरा जिस तरह रस रहते हुये फूल का साथी बना रहता है और इसके अभाव में उसकी बात भी नहीं पूछता। इसी प्रकार स्वार्थी मित्र भी विपत्ति के क्षणों में मित्र का सहायक सिद्ध नहीं होता। इसलिये तुलसीदास जी ने अच्छे मित्र की कसौटी विपत्ति ही बताई है—

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत्ति काल परखिए चारी॥
जे न मित्र दुख होंहि दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी॥"

इसीलिये संस्कृत में कहा गया है कि "आपद्गतं च न जहाति ददाति काले" अर्थात् विपत्ति के समय सच्चा मित्र साथ नहीं छोड़ता, अपितु सहायता के रूप में कुछ देता ही है। जिस प्रकार स्वर्ण की परीक्षा सर्वप्रथम कसौटी पर घिसने से होती है, उसी प्रकार मित्र की विपत्ति के समय त्याग से होती है। इतिहास साक्षी है कि ऐसे मित्र हुये हैं, जिन्होंने अपने मित्र की रक्षा में अपने प्राणों की भी आहुति दे दी।

मित्र का कर्त्तव्य है कि वह अपने मित्र के गुणों को प्रकाशित करे जिससे कि मित्र का समाज में मान और प्रतिष्ठा बढ़े। सच्चा मित्र अपने मित्र के मान को अपना ही मान समझता है, उसकी प्रतिष्ठा और ख्याति को अपनी प्रतिष्ठा और ख्याति समझता है। इसीलिये वह अपने मित्र के गुणों को नगाड़े की चोट पर गान करता है और अवगुणों को छुपाने का प्रयत्न करता है। साथ-साथ उन अवगुणों को दूर करने का भी प्रयास करता है। उसकी "छिद्रान्वेषण-प्रकृति" नहीं होती, अर्थात् वह अपने मित्र की कमियों को ढूंढकर प्रकाश में लाने का दुस्साहस नहीं करता। वह जानता है कि इससे मेरे मित्र का समाज में अपमान और अपयश होगा। तुलसीदास जी कहते हैं—

"गुण प्रकटहिं, अवगुणहिं दुरावा"
अथवा
"गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।"

जीवन का कोई भी क्षेत्र हो, कोई भी कार्य या व्यापार हो, किसी भी प्रकार की सम या विषम परिस्थिति हो, मित्र को अपने मित्र के साथ सहानुभूति रखनी चाहिए और उसके साथ सहयोग भी बनाये रखना चाहिये। भले ही मित्र न कुछ दे और न ले, परन्तु सहानुभूति एक ऐसी वस्तु है, जिससे मनुष्य बड़ी से बड़ी कठिन परिस्थितियों को भी हँसते हँसते झेल लेता है, विपत्तियों में भी मुस्करा देता है। सहानुभूति और संवेदना के अभाव में मनुष्य का जीवन एक नैराश्यपूर्ण नारकीय जीवन बन जाता है, और जीवन भार मालूम पड़ने लगता है। गुप्त जी ने लिखा है—

"सहानुभूति चाहिए महा विभूति है यही॥"

निःस्वार्थ हित-चिन्तन करना कोई साधारण बात नहीं है। पत्नी पति का,

माता पुत्र का, पिता पुत्र का हित-चिन्तन करते हैं परन्तु उस हित-चिन्तन में स्वार्थ की कोई न कोई कोर हृदय के किसी न किसी कोने में छिपी पड़ी रहती है। प्रत्येक सम्बन्धी प्रत्येक परिवार का सदस्य आपका हित-चिन्तन अवश्य करेगा, परन्तु बदले में अवश्य कुछ चाहेगा, लेकिन सच्चा मित्र जो कुछ करेगा उसका बदला नहीं चाहेगा। वह तो यही कहेगा—मैंने ऐसा किया, क्यों किया ? क्योंकि मेरा कर्त्तव्य था।

आज के मित्रों को मित्र कहने की अपेक्षा यदि शत्रु कहा जाये तो अधिक उचित होगा। साधारणतः आज का मित्र स्वार्थी है, वह आपके सामने मीठा बना रहकर आपका जितना भी अहित चिन्तन कर सकता है, करता है। जब तक उसकी स्वार्थ सिद्धि, उसकी वासनाओं की शान्ति, उसकी तृष्णा की पूर्ति, आपके द्वारा होती है, तब तक वह आपके साथ आपका सहयोगी है, आपसे सहानुभूति रखता है, आपका प्रशंसक है और जहां उसकी स्वार्थपूर्ति हुई या उस पूर्ति में कोई विघ्न दिखाई पड़ा, वह आपके पास भी नहीं आ सकता। ऐसे मित्रों को यदि "चापलूस शत्रु" की संज्ञा दी जाय, तो कहीं अच्छा होगा। ऐसे भी प्रमाण हैं कि आज तक यदि किसी वीर की मृत्यु हुई या वह बन्धन में फँसा, तो वह मित्र के ही द्वारा। बड़े-बड़े क्रान्तिकारी विदेशियों की पकड़ में आये, परन्तु केवल अपने मित्रों की कृपा के फलस्वरूप ही। उर्दू का एक शेर है, जो इसी प्रसंग पर प्रकाश डालता है—

"खाके भी तीर देखा कमीगाह की तरफ।
अपने ही दोस्तों से मुलाकात हो गई॥"

कमीगाह उस स्थान को कहते हैं जहाँ से छुपकर तीर चलाया जाता है। पीछे से किसी ने तीर चलाया, पीठ में आकर लगा भी, दर्द हुआ, पीछे मुड़कर कमीगाह की तरफ जब देखा, तो वहाँ कोई अपना ही दोस्त बैठा हुआ यह तीरन्दाजी करते दिखाई पड़ा। आज के मित्रों का चित्रण इस उर्दू के शेर से अधिक और क्या हो हो सकता है। कृष्ण और सुदामा की मित्रता का उदाहरण आज के युग में देखना एक काल्पनिक चित्र मात्र है। आज तो ऐसे मित्र हैं कि मुख पर कहेंगे कि आप अच्छे आदमी हैं, आप जैसे मित्र को पाकर मैं सौभाग्यशाली हूँ और जहाँ पीठ मुड़ी और कोई दूसरा मिला, तो कहने लगे, देखो—एक नम्बर बदमाश है, पचासों बदमाशियाँ तो इसकी मेरी डायरी में नोट हो रही हैं, आने दो कभी मौका, ऐसे हाथ लगाऊँगा कि याद रखे। इसलिये संस्कृत में एक विद्वान् ने लिखा है—

"परोक्षे कार्यहन्तारं, सम्मुखे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं, विषकुम्भं पयोमुखम्॥"

अर्थात् जो सामने मीठा बोलता है और पीछे काम बिगाड़ता है, ऐसे मित्र को छोड़ देना चाहिये। वह मित्र इस प्रकार है, जैसे विष से भरा हुआ घड़ा हो और उस घड़े के मुख पर दूध लगा दिया गया हो। गोस्वामी जी के शब्दों में—

"विषरस भरा कनक घट जैसे।"

मित्र को सहानुभूतिपूर्ण, संवेदनशील और सहनशील होना चाहिये। यदि दो मित्रों में सहनशीलता नहीं है, तो मित्रता अधिक समय तक नहीं चल सकती। इसलिये चिरस्थायी मैत्री के लिये सहनशीलता परम आवश्यक है। श्रेष्ठ मित्र के क्या लक्षण हैं इसको भर्तृहरि ने एक श्लोक में लिख दिया है—

"पापान्निवारयति, योजयते हिताय;
गुह्यानि गूहति, गुणान् प्रगटीकरोति।

आपद्गतं च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदम् प्रवदन्ति सन्तः ॥"

अर्थात् जो बुरे मार्ग पर चलने से रोकता है, हितकारी कामों में लगाता है, गुप्त बातों को छिपाता है तथा गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति के समय साथ नहीं छोड़ता तथा समय पड़ने पर कुछ देता है, विद्वान् इन्हीं गुणों को श्रेष्ठ मित्र के लक्षण बताते हैं। हमारी दृष्टि मे इस श्लोक मे भर्तृहरि जी ने मित्र के कर्त्तव्यो के विषय मे सब कुछ कह दिया है।

मित्र को, यदि वह मैत्री सम्बन्धो में स्थायित्व चाहता है, ध्यान रखना चाहिये कि वह मित्र से कभी वाणी का विवाद न करे, पैसे का सम्बन्ध भी अधिक न करे तथा मित्र की पत्नी से कभी परोक्ष मे सम्भाषण न करे, अन्यथा मैत्री सम्बन्ध चिरस्थायी नहीं रह सकते, जैसा कि इस श्लोक मे कहा गया है—

"यदीच्छेत् विपुलां प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत।
वाग्विवादोऽर्थ सम्बन्ध एकान्ते दारभाषणम् ॥"

इस सन्दर्भ मे महाकवि बिहारी की उक्ति भी प्रशसनीय है—

"जो चाहो चटक न घटै मैलो होय न मित्त।
रज राजसु न छुवाइए, नेह चीकने चित्त ॥"

२०. प्रातःकाल का भ्रमण

जीवन को सुखमय बनाने के लिये मन की प्रसन्नता परम आवश्यक है। मन उसी मनुष्य का प्रसन्न रहता है, जिसका स्वास्थ्य सुन्दर हो। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये जितना पौष्टिक पदार्थ आवश्यक है उतना ही शारीरिक श्रम भी। श्रम मे मनुष्य की शक्ति और स्वास्थ्य दोनो ही बढते हैं। शारीरिक श्रम की बहुत-सी क्रियायें हैं। कोई व्यायाम करता है तो कोई प्राणायाम, कोई दौड लगाता है तो कोई मुग्दर घुमाता है तो कोई यौगिक क्रियाओ मे शीर्षासन ही करता है। जिसकी जिधर रुचि होती है, उसको उसी मे अधिक आनन्द आता है। प्रातःकालीन भ्रमण भी शरीर को स्वस्थ और निरोग रखने के शारीरिक श्रमो में से एक है। प्रातःकाल के भ्रमण से मनुष्यो को विभिन्न ऋतुओं की सुगन्धित वायु प्राप्त होती है, जिससे मनुष्य मे एक नव-स्फूर्ति और नवजीवन का सचार होता है। ऊषा की लालिमा मानव हृदय को रोम रजित कर देती है। प्रातःकाल का भ्रमण मनुष्य को बड़ा ही आनन्द देता है।

प्रभात का सुहावना सुन्दर समय है। प्रभात को अपने तक पहुँचाने वाले दोनो साथी अन्धकार और चन्द्रिका अपने अपने घर जा चुके हैं। वह अपने घर मे द्वार पर पहुँचा ही था कि जल्दी से हँसती हुई ऊषा स्वागत करने के लिये द्वार पर दौड आई। अपने घोसलो को छोडकर पक्षी भी बाहर आ गये और कलरव करने लगे। मकरन्द भरी वायु मन्द-मन्द चल रही है। सहसा प्राची के क्षितिज पर भगवान भुवन भास्कर मुस्कराते हुये दृष्टिगोचर होने लगे। रात भर के कारावास से दुःखी प्रभात की घड़ियाँ गिनते हुये भ्रमर कमल की पखुडियों में से निकलकर, फिर उनके ऊपर गुनगुनाने लगे। उद्यान और वाटिकाओ मे पराग भरे पुष्प खिलखिलाकर हँस रहे हैं, वृक्षों की हरियाली नेत्रों को बराबर अपनी ओर आकृष्ट कर रही है, हवा कभी वृक्षों म अठखेलियाँ करती और कभी लाज भरी कलिकाओ का घूँघट

उठाकर हठात् उनका मुख झांक जाती है। कभी-कभी शिथिल पर्यंक में कभी को तोड़ी हुई कलिकाओं का सिर पकड़-पकड़कर हिलाती है। चिड़ियाँ फुदक-फुदक कर कभी इस शाखा से उस शाखा पर जाती और बच्चों को देखकर फिर लौट जाती हैं। हरी-हरी घास पर पड़ी हुई ओस की बूँदें मोती जैसी मालूम पड़ रही हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की लेखनी भी प्रभात वर्णन में मौन नहीं रहती।

प्रातःकाल का भ्रमण

१. प्रस्तावना।
२. प्राकृतिक सौन्दर्य।
३. भ्रमण के लाभ।
४. उपसंहार।

इसी समय पौ फटी पूर्व में, पलटा प्रकृति पटी का रंग।
किरण कण्टकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अंग॥
कुछ-कुछ अरुण सुनहरी कुछ-कुछ प्राची की अब भूषा थी।
पंचवटी की कुटी खोलकर, खड़ी स्वयं क्या ऊषा थी॥

प्रातःकाल के भ्रमण से मानव को विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है। प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखकर वह फूला नहीं समाता। उसका हृदय-कमल विकसित हो जाता है। प्रातःकाल परिभ्रमण करने से हमारी शारीरिक शक्ति के साथ-साथ मानसिक शक्ति का भी विकास होता है। हमारे मन के विकार दूर हो जाते हैं। प्रातःकाल मन प्रसन्न होने से मनुष्य का संध्या तक का समय बड़ी प्रसन्नता से व्यतीत होता है। सुबह की ठण्डी वायु सेवन करने से मनुष्य के मुख पर तेज आता है। उसकी पाचन शक्ति बढ़ जाती है। वृद्धावस्था में परिभ्रमण करना तो संजीवनी औषधि और अमृत का काम करता है। प्रातःकाल घूमने वाला व्यक्ति चिरंजीवी होता है और उसके शरीर में स्फूर्ति का संचार होता है। प्रातःकाल वायु जब-जब हमारी नासिका और श्वासोच्छ्वास की क्रियाओं से शरीर में प्रवेश करती है, तो हमारा रक्त शुद्ध होता है, फेफड़ों को बल मिलता है, हमारा शरीर निरोग रहता है, वह अजीर्णता का शिकार नहीं बन पाता। मानव का बौद्धिक बल भी बढ़ता है। उसकी प्रज्ञा तीव्र और संकल्प दृढ़ होते हैं। वह उद्योगी और अध्यवसायी बन जाता है। उसमें अच्छे भावों की वृद्धि होती है, नंगे पैर हरी-हरी घास पर घूमने से मनुष्य के मस्तिष्क सम्बन्धी विकार दूर हो जाते हैं। मस्तिष्क की दुर्बलता सबलता में परिवर्तित हो जाती है। आज का युग बैठने का युग है, सभी वर्गों के व्यक्ति सुबह से शाम तक बैठे रहते हैं अर्थात् मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य करते हैं। इसलिये उनमें से अधिकांश आज दुर्बल हैं, मुँह पीले पड़े हुये हैं। उदाहरण के लिये, व्यापारी वर्ग को लीजिये। लाला जी सूर्य की रश्मियों के थोड़े आगे-पीछे दुकान पर आकर बैठ जाते हैं। खाना भी दुकान पर ही आ जाता है और रात के नौ बजे, तक गद्दे पर बैठे रहते हैं। परिणाम यह होता है कि उनकी आन्तरिक शक्ति क्षीण हो जाती है और तोंद बढ़ने लगती है, जो कि दुर्बलता का चिन्ह है। इसी प्रकार अध्यापक, विद्यार्थी, दफ्तरों के क्लर्क, डाक्टर, वैद्य सभी आज इसके शिकार हैं। अतः आधुनिक युग में प्रातः और सन्ध्या का परिभ्रमण कितना लाभकारी है यह तो आप स्वयं निर्णय कर सकते हैं।

"सूर्योदये चास्तमिते शयानम्। विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥"

सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोने वाले व्यक्ति को चाहे वह विष्णु ही क्यों न हो लक्ष्मी छोड़ देती है, ऐसा कहा गया है। परन्तु आज के युग का सुसभ्य, सुसंस्कृत और सुशिक्षित कहलाने वाला व्यक्ति प्रातः ८ बजे सोकर उठता है, जब

कि धूप आधे आकाश पर चढ जाती है, शौच जाने से पूर्व चाय पीता है और तब कहीं दैनिक कृत्यों का नम्बर आता है। परिणाम यह होता है कि दिन भर उसका शरीर आलस्य का घर बना रहता है, काय मे मन नहीं लगता, मस्तिष्क में चिड़चिड़ापन छाया रहता है, किसी बात का तुरन्त निर्णय नहीं कर पाता। इसके विपरीत, जो मनुष्य ब्राह्म मुहूर्त में उठकर अपने दैनिक कृत्यो से निवृत्त होकर बाग-बगीचों व नदी के किनारे पर परिभ्रमण के लिये निकल जाते हैं, वे रात्रि पर्यन्त अपना दिन खुशी के साथ बिताते हैं। इसीलिये कहा गया है—

"ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत् धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।"

हमें प्रात काल नियमित रूप से भ्रमण करना चाहिये, जिससे हमारा मन, बुद्धि और शरीर शान्त, प्रसन्न और दृढ़ रह सकें। प्रात परिभ्रमण करने से मनुष्य को नव-स्फूर्ति प्राप्त होता है। पक्षियों के हृदयग्राही कलरव से कर्णेन्द्रिय, सौरभमय समीर से नासिका और प्राकृतिक नैसर्गिक रमणीयता से सौन्दर्यग्राही नेत्र खिल उठते हैं। अत स्वस्थ, निरोग, प्रसन्नचित्त एवं दीर्घजीवी बनने के लिये प्रात परिभ्रमण एक उत्तम साधन है।

२१. हमारे कॉलिज में एक महापुरुष का शुभागमन

कुछ घटनाएँ मानव-जीवन में अपनी अमिट छाप छोड़ जाती हैं। सम्भवत मैं उस दिन को कभी न भूल सकूँगा, जिस दिन भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री नेहरू हमारे कालिज मे आये थे। उत्तर प्रदेश के प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ताओं का राजघाट नरौरा मे एक सम्मेलन हो जा रहा था। नरौरा प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से गङ्गा किनारे एक सुरम्य स्थान है। पण्डित नेहरू तथा श्रीमति इन्दिरा गाँधी उसी मे भाग लेने के लिये दिल्ली से आ रहे थे। हमारे प्रधानाचार्य जी ने नगर के प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ताओं से प्रार्थना की कि पण्डित जी को कुछ क्षणों के लिये कॉलिज मे भी यदि ले आया जाये, तो बड़ी कृपा होगी। कई बार प्रार्थना करने पर नगर के नेताओं ने बात मान ली और कॉलिज के लिये पाँच मिनट का समय कार्यक्रम में लिखा दिया गया।

केवल दो दिन का समय रह गया था। बहुत सुन्दर ढङ्ग से स्वागत करने का निश्चय किया गया। कॉलिज के हॉल की दुमिया से पुताई आरम्भ हो गई। दरवाजों और खिड़कियों पर वार्निश होने लगी। पुताई के पश्चात् जमीन पर फर्श बिछा दिये गये और उन पर जो अभी नया फर्नीचर आया था, लगा दिया गया। आगे अतिथियों एवम् महिलाओं के बैठने की व्यवस्था की गई। उनके लिये हत्थे वाली कुर्सियाँ थी और उनके पीछे कॉलिज के छात्रों के लिये स्टूल थे। सामने मच बनाया गया था, काफी ऊँचे दो तख्त थे, जो मिलाकर बिछाये गय थे। उनके चारों ओर बाँस लगाकर ऊपर छत बनाई गई थी। बाँसों के ऊपर लाल कपड़ा तथा गोटा लगाया गया। मण्डप की छत सुनहरी झालरों से बनाई गई थी। उसमे तरह-तरह के फूलों के गुच्छे लटकाये गये थे, मच पर बहुत सुन्दर मुगल काल की कालीनें बिछाई गई थीं और सलमा सितारों के कामदार तकिये थे। मच के पीछे की दीवार पर भारतवर्ष का एक बड़ा नक्शा लगाया गया, अन्य दीवारों पर राष्ट्रीय नेताओं

के चित्र सजाये गये और बीच-बीच में तिरंगे झण्डे लगा दिये गये थे। कॉलिज के मुख्य द्वार पर एक हरी पत्तियों का बहुत बड़ा द्वार बनाया गया, जिस पर स्वागतम् और शुभागमन के बोर्ड लगा दिये गये। दिल्ली से फूल-मालाओं का प्रबन्ध किया गया था। ढाई सौ फूल-मालायें मँगाई गई थी जिनमे से डेढ़ सौ तो मंच की सजावट में खर्च हो गईं थी और भिन्न-भिन्न पुष्पों की सौ मालायें पण्डित जी को पहिनाने और कुछ उनके ऊपर पुष्प वर्षा करने के लिये रख ली गई थीं।

अब वे क्षण कुछ ही दूर थे, जबकि हमारे मान्य अतिथि हमारे मध्य में आने वाले थे। दर्शकों की भीड़ कॉलिज मे उमड़ी चली आ रही थी। चारों ओर सशस्त्र पुलिस लगी हुई थी। सिपाही और दीवानों की तो बात ही क्या, वहाँ थानेदार और डी० एस० पी० घण्टों से ड्यूटी दे रहे थे। सी० आई० डी० चारों ओर घूम रही थी। खद्दर की टोपियाँ और खद्दर के कुर्त्ते ही अधिक दिखाई पड़ रहे थे। गणमान्य नागरिक और आमन्त्रित नेता तथा कॉलेज के छात्र पहले से ही हॉल में बैठा दिये गये थे।

हमारे कॉलिज में
एक महापुरुष का शुभागमन

१ प्रस्तावना।
२. स्वागत की तैयारियाँ।
३. शुभागमन।
४. अभिनन्दन।
५. अतिथि महोदय का भाषण।
६. उपसंहार (प्रस्थान)।

द्वार पर केवल स्वागत करने वाले अधिकारी थे। सभी लोगों की दृष्टि उसी मार्ग पर लगी हुई थी, जिधर से पण्डित नेहरू की कार आने वाली थी। सभी लोग बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में ही लाल झण्डे वाली मोटर साइकिल दनदनाती हुई आई, जिस पर आगे पाइलेट चलता है। चारो ओर शोर मच गया "नेहरू जी आने वाले हैं, नेहरू जी आने वाले है।" दो-तीन मिनट के बाद ही चौदह-पन्द्रह कार एक साथ कॉलिज के द्वार पर आकर रुकी। एक में डी० एम० थे, दूसरी में एम० पी० कुछ कारों मे उत्तर प्रदेश के कुछ मन्त्री थे, और कुछ में पण्डित जी के निजी व्यक्ति। बीच की कार में से मुस्कराते हुये "पण्डित नेहरू" बाहर आये। उनके पीछे उनकी इकलौती पुत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी थी। "पण्डित नेहरू की जय" के गगन-भेदी नारों से आकाश गूँजने लगा। उनके स्वागत मे धाँय-धाँय ग्यारह बन्दूकें छोड़ी गईं। प्रधानाचार्य तथा अन्य गणमान्य लोगों ने पण्डित जी को पुष्पहार पहनाये। कमरों के ऊपर से छात्रों ने पुष्प वर्षा की। एन० सी० सी० और पी० ई० सी० के छात्र सैनिकों का निरीक्षण करते हुये पण्डित जी सीधे मंच की ओर पहुँचे। पण्डित जी बहुत तीव्र गति से चल रहे थे। उनके शरीर में स्फूर्ति थी, मुख-मण्डल तेजोमय था। अंग-रक्षक पीछे खड़े रह गये और पण्डित जी भीड़ को चीरते हुये तेजी से मंच पर पहुँचे। मुस्कराते हुये उन्होंने सबको नमस्कार किया। प्रधानाचार्य जी ने एक सूक्ष्म भाषण मे नेहरू जी का अभिनन्दन किया, फिर कॉलेज के विद्यार्थी-परिषद् के मन्त्री ने अभिवादन पत्र पढकर सुनाया और पण्डित जी को सादर भेंट किया।

अभिनन्दन-पत्र भेंट किये जाने के पश्चात् नेहरू जी भाषण देने के लिये खड़े हुए तो तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल गूँज उठा। फिर एकदम पूर्ण शान्ति हो गई। चारों ओर हॉल के भीतर तथा बाहर माइक का प्रबन्ध था। सर्वप्रथम उन्होंने हमारे द्वारा किये गये स्वागत का धन्यवाद दिया। अपने सारगर्भित भाषण मे पहले तो छात्रों के कर्त्तव्य और अनुशासन पर प्रकाश डाला। स्वतन्त्रता संग्राम में छात्रों द्वारा किये गये कार्यों की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि आज का विद्यार्थी कल का

भावी नागरिक है। हम लोग सदैव शासन को नहीं चलाते रहेंगे। विद्यार्थी के लिये सच्चरित्रता बहुत आवश्यक है। इस तरह नेहरू जी ने हम लोगों के समक्ष लगभग दस मिनट तक भाषण दिया। भाषण समाप्त होते ही हॉल में एक बार तालियों का सामूहिक स्वर गूंज उठा। मंच से पण्डित नेहरू जी ने सबको फिर नमस्कार किया और तेजी से चल दिये। मैंने देखा कि नेहरू जी को न पुलिस चाहिये और न स्वयं-सेवक। उनको सामने देखकर भीड स्वयं हटती चली जाती थी। भीड में कितनी ही गडबडी हो वे स्वयं ही झगडा दूर करते चले जाते थे। उन्हें न कोई भय था और न संकोच। भीड को पार करते हुये नेहरू जी सीधे अपनी कार तक पहुँचे। एक बार उन्होंने फिर पीछे मुडकर देखा, जनता हाथ बाँधे खडी थी। उन्होंने भी हाथ जोडकर सबको नमस्कार किया और गाडी मे बैठ गये। सर-सर करती हुई सभी कारें एक के पीछे एक चलने लगीं, देखते देखते नेहरू जी की कार हमारी दृष्टि से ओझल हो गई। दर्शनार्थियों की भीड अपने-अपने घर जाने लगी।

पण्डित नेहरू के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का मेरे हृदय पर बडा गम्भीर प्रभाव पडा। पण्डित जी का चन्द्रिका-स्नात गौर वर्ण, उनके उन्नत ललाट, दूर दिशा मे अनागत को झाँकती हुई आँखें और गम्भीर मुद्रा, मुझे सदैव स्मरण रहेगी। मैंने यह अनुभव किया कि पण्डित नेहरू की वाणी मे कोई जादू था। जनता मन्त्रमुग्ध होकर उनके एक-एक वाक्य को वेदवाक्य के समान सुनती थी, उस पर विचार करती थी। उनके ओजस्वी एवम् सारगर्भित भाषण की एक-एक पंक्ति विद्वानों और कूटनीतिज्ञों के मनन की एक वस्तु हो जाती थी। उनका तपोमय जीवन भारतवर्ष के प्रत्येक नागरिक के लिये एक आदर्श प्रस्तुत कर रहा है। उनका शान्ति और अहिंसा का सन्देश विश्व के कोने-कोने मे गूज रहा है। यह हमारे कॉलेज का सौभाग्य था कि उन जैसे महापुरुष ने हमारे यहाँ पधारने की कृपा की। उनके मुख से निकले हुये महत्वपूर्ण शब्दों का आज तक मेरे हृदय पर प्रभाव है। ●

२२. क्रिकेट का खेल

क्रिकेट का खेल अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का खेल है। पहले केवल अंग्रेजी स्कूल और कॉलिज के छात्र ही इसमे अभिरुचि लेते थे, परन्तु इस समय तो छात्रों के अतिरिक्त युवा और प्रौढ नागरिक भी इसमें रुचि लेने लगे हैं। समाचार पत्रों में भी इसके विषय में नित्य नये नये समाचार प्रकाशित होते हैं। यद्यपि यह खेल नितान्त विदेशी है, फिर भी भारतीयों ने इसमें अपनी बुद्धि और बाहुबल के सहारे पर्याप्त उन्नति की है। भारतीय क्रिकेट टीम ने भी विदेशों मे जाकर अनेक स्थानों पर बड़े-बड़े आश्चर्यजनक प्रदर्शन किये हैं।

ब्रिटिश संग्रहालय में लगे हुये चित्रों से यह प्रतीत होता है कि इस खेल को पहले बालक खेलते थे। सन् १४७८ मे फ्रांसीसी खेलों में इसकी सर्वप्रथम चर्चा मिलती है। डॉ० जॉनसन ने इस खेल का वर्णन करते हुये एक स्थान पर लिखा है कि खेलने वाले गेंद मे छडी मारकर खेलते थे। जैसे-जैसे मानव की बुद्धि का परिष्कार और शिक्षा का विकास होता गया वैसे-वैसे क्रिकेट के खेल मे भी सुधार हुये। कहा जाता है कि इस खेल का नियमानुकूल प्रदर्शन सबसे पहले १८५० ई० में गिलफोर्ड नामक स्कूल में हुआ था, तब से धीरे धीरे यह खेल बढ़ता गया। आज यह अपनी

चाहें झुका सकते हैं, वे बेचारी उधर ही चलने और फैलने लगती हैं। परन्तु यदि आप चाहें कि किसी पुराने या बड़े वृक्ष की किसी शाखा को अपने मन के अनुकूल मोड़ लें तो यह सर्वथा असम्भव होगा। वह शाखा अपने स्थान से टूट भले ही जाए परन्तु झुक या मुड़ नहीं सकती। इसी प्रकार मनुष्य को बाल्यकाल में जिधर आप मोड़ना चाहते हैं, मोड़ सकते हैं। मनुष्य के निर्माण का यही काल है। अच्छी या बुरी आदतें जैसी भी इस काल में मनुष्य में आ जाती हैं वे जीवन भर उसके साथ रहती हैं। बुड्ढे तोते को आप नहीं पढ़ा सकते। तोते का बच्चा सरलता से राधा कृष्ण कहने लगता है। इसी दृष्टिकोण को लेकर समाज सेवा की पवित्र भावनाओं को बाल्यकाल में ही जन्म देने के लिये बालचर संस्था का अपना विशेष महत्व है। इसका प्रशिक्षण केन्द्र आज का प्रत्येक विद्यालय है। नदी में डूबते हुए कितने व्यक्तियों को आज तक बालचरों ने बचाया, अग्नि की भयानक ज्वालाओं में भस्म होते हुए कितने घरों की रक्षा की, कराहते हुए टूटी टांग वाले कितने व्यक्तियों को अस्पताल पहुँचाया, कितने लोगों की उन्होंने प्राथमिक चिकित्सा की, आज यह तथ्य सर्वविदित है। आज कौन है जो बालचर संस्था के महत्व को नहीं पहचानता, जबकि देश के ऊपर आपत्तियों के काले बादल छाये हुए हैं। आन्तरिक और बाह्य युद्ध की चिन्गारियाँ चारों ओर चमक रही है। ऐसी स्थिति के समय में बालचर संस्था के सदस्य ही देश के अवैतनिक सच्चे सिपाही सिद्ध होंगे।

बालचर संस्था का जन्म एक अंग्रेज महाशय के हाथों से हुआ था जिनका नाम था 'सर रॉबर्ट बैडन पॉवल'। सन् १९०० में जिस समय अफ्रीका में बोअर-युद्ध हो रहा था, तब उन्होंने इस प्रकार की बालचर सेना का निर्माण किया था। इस सेना से अंग्रेजों को युद्ध में बड़ी सहायता मिली। उन्होंने बालचरों को स्वयं सैनिक प्रशिक्षण दिया था। अपने इस सफल अनुभव के आधार पर उन्होंने यह निश्चय किया कि यह संस्था युद्ध के अतिरिक्त शान्ति काल में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसी दृढ़ निश्चय के आधार पर उन्होंने संस्था का देश और विदेशों में प्रचार किया। भारतवर्ष में इस संस्था की स्थापना श्रीमती एनी बेसेन्ट ने महासमर काल में की थी। तब से अब तक यह संस्था उत्तरोत्तर बढ़ती गई। आज भारतवर्ष के प्रत्येक छोटे और बड़े विद्यालयों में इस संस्था की शाखायें हैं। इसी शाखा के माध्यम से छात्रों में स्वावलम्बन, सहानुभूति, समाज सेवा और श्रमदान की पुनीत भावनाएँ जागृत की जाती हैं। कहा जाता है कि सर रॉबर्ट बैडन पॉवल को यह प्रेरणा हरिद्वार में किसी महात्मा के द्वारा प्राप्त हुई थी, जबकि ये भारत के सेनापति थे।

बालचर संस्था का आधुनिक स्वरूप एक सुसंगठित सूक्ष्म सैनिक प्रयास है। आठ वर्ष की अवस्था वाला या इससे अधिक अवस्था का प्रत्येक बालक इस संस्था का सदस्य बनकर आने को गौरवशाली समझता है। स्काउट कहलाने में उसे एक विशेष स्वाभिमान का अनुभव होता है। बालचरों को विधिवत् उनके कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया जाता है। उन्हें देश और समाज की सेवा करने की प्रतिज्ञा लेनी होती है। एक पैट्रोल में आठ बालचर होते हैं। उनका नायक पैट्रोल लीडर कहा जाता है, जो उन सब में तेज होता है और उनका पथ-प्रदर्शन करता है। चार पैट्रोल से अधिक पैट्रोल का एक ट्रूप बनाया जाता है, जिसका नायक ट्रूप लीडर कहा जाता है। प्रत्येक ट्रूप का अधिकारी एक स्काउट मास्टर होता है, जो आगे ट्रूप के प्रत्येक स्काउट का शिक्षा, वेशभूषा, कर्त्तव्य-पालन, अनुशासन आदि

की देखभाल रखता है तथा उन्हें प्रशिक्षण भी देता है। जिले के समस्त ट्रूप डिस्ट्रिक्ट स्काउट कमिश्नर के अधीन होते हैं। डिस्ट्रिक्ट स्काउट कमिश्नर किसी ऐसे प्रतिभाशाली योग्य पुरुष को बनाया जाता है, जो जिले की समस्त ट्रूपों का संचालन कर सके। प्रांत की समस्त बालचर संस्थाएँ प्रांतीय स्काउट कमिश्नर के अधीन होती हैं, जो समय समय पर उनके द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करती हैं।

सेना के समान स्काउटों की वेशभूषा भी एक समान होती है उसमें अमीरी और गरीबी का कोई प्रश्न नहीं होता। सब समान वस्त्र पहिनते हैं साथ-साथ भोजन करते हैं, तथा पारस्परिक सहयोग से समस्याओं को सुलझाते हैं। इस प्रकार विद्यार्थी में समानता और सहयोग की भावना का प्रारम्भ से ही उदय हो जाता है। प्रत्येक बालचर खाकी मोजे, खाकी नेकर, खाकी कमीज और खाकी टोपी या खाकी साफा पहिनता है। खाकी टोपी के विषय में तो अब कुछ नियम शिथिल सा हो गया, परन्तु शेष वेशभूषा अब भी ज्यों की त्यों है। सबके समान जूते होते हैं सभी स्काफ धारण करते हैं। प्रत्येक स्काउट की वेशभूषा में सीटी, झण्डी और लाठी की भी अनिवार्यता है। ये तीनों वस्तुएँ अपना-अपना विशेष महत्व रखती हैं और समय पड़ने पर बालचर की सहायक सिद्ध होती हैं।

मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहायक सिद्ध होने के लिये बालचरों को अनेक प्रकार की शिक्षा दी जाती है। उन शिक्षाओं से वे आपत्तिग्रस्त मनुष्यों की सेवा करते हैं। बालचरों की प्रमुख शिक्षाएँ ये हैं—भोजन बनाना, तैरना, नदी पर पुल बनाना, घायल के पट्टी बाँधना, प्रारम्भिक चिकित्सा करना, घायल को अस्पताल पहुँचाना, गाँठ लगाना, मार्ग ढूढ़ना, सिगनल देना, सामयिक घर बनाना, सामयिक सड़क बनाना आदि। बालचर को इन विषयों की कई परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनी पड़ती हैं। वह एक डायरी रखता है, जिसमें वह अपने दैनिक कार्यक्रम का उल्लेख करता है, स्वास्थ्य रक्षा के लिये उसे सभी तरह के खेल खिलाये जाते हैं। ऊपर लिखी हुई सभी शिक्षाएँ समाज सेवा में भी सम्बन्धित हैं और सैनिक शिक्षा से भी। सैनिक के लिए ये सभी बातें जानना अत्यन्त आवश्यक है।

बालचर का प्रथम कर्तव्य है कि वह दीन-दुखियों की सेवा करे और उनसे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करे। उसका प्रत्येक कार्य समाज हित की दृष्टि से होना चाहिये। दूसरों की सहायता के लिये उसे सदैव कटिबद्ध रहना चाहिये, चाहे दिन हो या रात वह कभी भी बुलाया जा सकता है। बालचर का प्रमुख कर्तव्य है कि वह अपने प्राणों को सङ्कट में डालकर दूसरों के प्राणों की रक्षा करे। सर्वसाधारण का हित ध्यान में रखते तथा अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करे। उसे सत्यवादी, सहानुभूतिपूर्ण, सवेदनशील, दयावान्, कर्तव्य पालक, आज्ञा पालक, दयालु एवं सहनशील होना चाहिये। उसे साहसी एवं ईश्वर निष्ठ होना चाहिये। ईश्वर में विश्वास और श्रद्धा रखते हुए भयङ्कर से भयङ्कर स्थिति में भी साहस नहीं खोना चाहिये और अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। उसे आपस में बंधुत्व की भावना रखते हुए परस्परावलम्बन एवं सहयोग से कार्य करना चाहिये। बालचर को व्यक्ति हित और समाज हित दोनों का ही ध्यान रखना चाहिये।

बालचर संस्था समाज के लिये अत्यन्त उपयोगी है। बड़े-बड़े मेलों में, रामलीला [illegible] के पर्वों पर और बड़ी-बड़ी सभाओं में बालचर अनुशासन स्थापित [illegible] ते हैं, प्रबन्ध करते हैं जनता की सुविधा और सुरक्षा का ध्यान रखते हैं। [illegible]

बड़े मेलों में चोरी, आग लगना, झगड़ा होना, आदि की घटनायें साधारण होती हैं। स्काउट अपने प्रबन्ध से कोई अव्यवस्था नहीं होने देते। छोटे-छोटे बच्चे मेलों की भीड़ में जो अपने माता-पिता से बिछुड़ जाते हैं और इधर-उधर रोते-चिल्लाते घूमा करते हैं, उन्हें उनके माता-पिता तक ढूंढकर पहुँचाना बालचरों का ही प्रशंसनीय साहस है। गंगा के पर्वों पर जो बच्चे या बड़े स्नान करते-करते गंगा के प्रवाह में डूबने लगते हैं, बालचर अपने प्राणों को हथेली पर रखकर उनके प्राणों की रक्षा के लिए गङ्गा में एकदम कूद जाता है और उन्हें बचाने का प्राणपण से प्रयत्न करता है। इतना ही नहीं, बीमारी की परिचर्या उन्हें इससे भी ऊपर उठा देती है। जिसका कोई नहीं होता, कराहते-कराहते दिन और रात बिता देते हैं, एक घूंट पानी के लिए भी जो तरसते रहते हैं, बालचर उनकी सेवा करता है, प्राथमिक उपचार करता है, इसके पश्चात् उन्हें अस्पताल पहुँचाता है। बालचर अपने सत्प्रयासों से कलह की अग्नि और वास्तविक अग्नि, दोनों को ही शान्त कर देता है। जहाँ आपस में दंगे और लड़ाई-झगड़े हो जाते हैं, ये स्वयं सेवक वहाँ नम्रता-पूर्वक शान्ति स्थापित करते हैं और जहाँ वास्तविक आग लग जाती है वहाँ तो अपने प्राणों को हथेली पर रखकर आग में कूद पड़ते हैं और जान माल की रक्षा करते हैं।

इस संस्था से समाज को अनेक लाभ हैं। यह संस्था निःस्वार्थ भाव मानवता की सेवा करती है। जनता में स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरता की भा नाओं को जाग्रत करती है। इस संस्था का सबसे बड़ा लाभ यह है कि छोटे-छो बालकों में सेवा-धर्म का उदय होता है, वे सबके कल्याण में अपना कल्याण समझ लगते हैं, समाज का हित उनका अपना हित होता है। इस प्रकार उनका चरि एक आदर्श चरित्र बन जाता है। वे देश के कर्मण्य और मनस्वी नागरिक ब जाते हैं। देश की सुख-समृद्धि, ऐश्वर्य और वैभव, ऐसे ही नागरिकों पर आधारि होता है।

आज देश को और समाज को ऐसी ही निःस्वार्थी सेवी संस्थाओं की आव श्यकता है। बालचर संस्था का उद्देश्य और लक्ष्य वास्तव में प्रशंसनीय है। बच्चे भी इसमें बड़े उत्साह से भाग लेते हैं। खाकी वर्दी पहिन कर वे एक विशेष गौर का अनुभव करते हैं। परन्तु दुःख का विषय है कि आज देश में जितना संरक्षण इस संस्था को प्राप्त होना चाहिये था, उतना नहीं प्राप्त हो रहा। इसलिए स्कूलों और कॉलिजों में भी इस दिशा में उदासीनता आती जा रही है। शिक्षा प्रेमियों और देश के समाज सुधारकों का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे इस समाज-सेवी संस्था को विशेष रूप से पल्लवित और पुष्पित करने के लिए विशेष सहयोग दें।

२४. ग्रीष्मावकाश के क्षण

जीवन की एकरसता जीवन को नीरस बना देती है, न उसमें आनन्द होता है और न आकर्षण। नित्य प्रति एक से व्यवहार से, एक से कार्यक्रमों से वह ऊब जाता है, मन उचटने लगता है। जीवन आकर्षणहीन होकर लोहे की मशीन की तरह चलता रहता है, उसके रक्ततन्तु शिथिल पड़ जाते हैं। जीवन और जगत के प्रति मानसिक उल्लास व उत्साह समाप्त-सा हो जाता है। उसे सुन्दरता में भी कुरूपता दृष्टिगोचर होने लगती है। दैनिक कार्यों के अतिरिक्त उसकी कार्यक्षमता

असाध्य-सी हो जाती है। इसलिए मानव जीवन में समय-समय पर विश्राम और विनोद के लिए कुछ अवकाश के क्षण आवश्यक हो जाते हैं, दैनिक जीवन के वातावरण में परिवर्तन की आवश्यकता होती है क्योंकि संसार में परिवर्तन का दूसरा नाम जीवन है।

संसार में ऐसा कोई व्यवसाय नहीं जिसमें कुछ न कुछ अवकाश न हो, किसी व्यवसाय में अधिक छुट्टियाँ होती हैं और किसी में कम, परन्तु होती अवश्य हैं। रेलवे तथा पोस्ट ऑफिस, आदि में कुछ कम अवकाश होते हैं परन्तु स्कूल कॉलिजों में अन्य विभागों की अपेक्षा कुछ अधिक अवकाश होते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही मानसिक श्रम अधिक करते हैं। शारीरिक श्रम की अपेक्षा मानसिक श्रम मनुष्य को अधिक थका देता है। शारीरिक श्रम से केवल शरीर ही थकता है, परन्तु मानसिक श्रम से शरीर और मस्तिष्क दोनों ही। इसलिए विद्यार्थी तथा अध्यापक को विशेष विश्राम की आवश्यकता होती है। विद्यार्थी बड़ी उत्सुकता से छुट्टियों की प्रतीक्षा करते हैं। चपरासी के हाथ में आकर बुक देखते ही क्लास के छात्र अध्यापक से पूछ उठते हैं, "क्या मास्टर साहब कल की छुट्टी है ?" इस प्रकार पूछते हुए उनके मुख पर प्रसन्नता नाच उठती है।

ग्रीष्मावकाश के क्षण

१ प्रस्तावना।
२ अवकाश।
३ अवकाश का दुरुपयोग।
४ ग्रीष्मावकाश का सदुपयोग।
५ उपसंहार।

ग्रीष्म की भयंकरता तथा विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की दृष्टि से स्कूल मई और जून में कॉलिज बन्द हो जाते हैं। इसका कारण यह भी है कि विद्यार्थी पूरे वर्ष पढ़ने में परिश्रम करता है। मार्च और अप्रैल के महीनों में वह अपने परिश्रम की परीक्षा देता है, इसके पश्चात् उसे पूर्ण विश्राम के लिये कुछ समय चाहिये। इन्हीं सब कारणों से हमारे छोटे और बड़े स्कूल ४० दिन के लिये बन्द हो जाते हैं। हमें इन लम्बी छुट्टियों को व्यर्थ में नहीं बिता देना चाहिये। कुछ छात्र इन लम्बी छुट्टियों का समुचित उपयोग नहीं करते, वे केवल खेल कूद में सारा समय बिता देते हैं। बहुत थोड़े छात्र ऐसे होते हैं, जो अपना सारा समय सन्तुलित और सामान्य रूप से विभक्त करके उसका सदुपयोग करते हैं। कुछ दिन भर सोते ही सोते बिता देते हैं, कुछ दिन भर गप्पों में, कुछ आपस के झगड़ों में और कुछ दुर्व्यसनों में फँसकर अपने अवकाश के अमूल्य क्षणों को नष्ट कर देते हैं। अन्त में माता पिता कहने लगते हैं कि हे भगवान इनकी छुट्टियाँ कब खत्म होंगी।

अवकाश के क्षणों में विश्राम और विनोद आवश्यक है, परन्तु मनोविनोद भी ऐसे होने चाहियें जिनसे हमारा कुछ लाभ हो। पढ़े लिखे व्यक्तियों का मनोरंजन करने वाली वस्तुओं में पुस्तक का स्थान सर्वप्रथम है। पुस्तकों जैसा साथी संसार में कोई नहीं हो सकता, चाहे धूप हो या वर्षा, ग्रीष्म हो या शीत वे हर समय आपको सहयोग दे सकती हैं, आपका मनोविनोद कर सकती हैं। वह साथी एक ऐसा साथी है, जो मस्तिष्क के साथ साथ हृदय को भी खाना खिलाता है। यह साथी हमें अतीत की मधुर स्मृतियों की याद दिलाता हुआ, वर्तमान के दर्शन कराता हुआ भविष्य की ओर अग्रसर करता है। यह साथी आपको अनेक आनन्द दे सकता है, इससे आपकी न कभी लड़ाई हो सकती है न झगड़ा। यदि आप चाहें तो घर बैठे

ही बैठे देशान्तर के भ्रमण का आनन्द ले सकते हैं। यही आपको ज्ञान की शिक्षा दे सकता है, दुःख में धैर्य और संयम भी सिखा देता है। शिक्षाप्रद उपन्यास और कविताओं के अध्ययन से मन ही मन मानव के व्यक्तित्व का विकास भी होता है। परन्तु साथी का चुनना अपनी योग्यता और विचारों के अनुसार होना चाहिये। इतना ध्यान रखना चाहिये कि वह साहित्य सत्साहित्य हो, ऐसा न हो कि वह आपको पतन की ओर अग्रसर करने में सहायक सिद्ध हो जाये। पुस्तकों के अतिरिक्त इन लम्बी-लम्बी छुट्टियों में विद्यार्थियों के लिए बहुत से हितकर कार्य हैं जैसे बागवानी। यह हमारे स्थायी मनोरंजन का साधन है। फोटोग्राफी भी मनोरंजन और समय-यापन का अच्छा साधन है। प्रकृति के रमणीय दृश्यों का चित्र लेकर आप अपना मनोरंजन कर सकते हैं, अपने मित्रों, सम्बन्धियों, मुहल्ले वालों का चित्र लेकर तथा उन्हें वे चित्र उपहारस्वरूप भेंट करके आप उनके स्नेह-भाजन बन सकते हैं। यदि हम अपने अवकाश के क्षणों को समाज सेवा मे व्यतीत करें तो हमारी भी उन्नति होगी और देश एवं जाति का उत्थान भी। अशिक्षित को शिक्षा दें, शिक्षा का महत्व बतावें, स्वयं भी अपने गाँव, अपने मुहल्ले, अपने घर की सफाई में अपना समय व्यतीत करें। अपने-अपने गाँव तथा मुहल्ले में पुस्तकालय, वाचनालय, व्यायामशालायें तथा नाट्य परिषदों की स्थापना करके अपने ग्रीष्मावकाश को सफलतापूर्वक व्यतीत कर सकते हैं। कवि गोष्ठी तथा सांस्कृतिक सभायें भी समय के सदुपयोग के लिए उपयुक्त हैं। अधिक परिश्रम करने के कारण विद्यार्थियों का स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है, उन्हें ग्रीष्मावकाश में अपने स्वास्थ्य के सुधार के लिये भी आवश्यक प्रयत्न करने चाहियें।

ग्रीष्मावकाश के सदुपयोग के और भी साधन हैं, परन्तु वे धनसाध्य हैं। इन छुट्टियों में विद्यार्थियों को नये-नये ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थानों का भ्रमण करना चाहिये। देशाटन से मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा भी प्राप्त होती है। इससे विद्यार्थी नवीन भाषा, नये रीति-रिवाज, नई वेश-भूषा से परिचित होते हैं। इनसे हमारे मानसिक क्षितिज का विकास होता है। गगन-चुम्बी पर्वत-मालायें, सघन वन, हरी-भरी घाटियाँ हमारे जीवन को सरसता प्रदान करती है। प्रकृति के सम्पर्क में आने से हमारा मन प्रसन्न हो जाता है और खिन्नता दूर हो जाती है। तीर्थस्थानों में भ्रमण करने से हमारे हृदय मे धार्मिक भावनायें जाग्रत हो जाती हैं। घर से बाहर निकलने से हमें स्वावलम्बी बनने का अभ्यास होता है। व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि होती है। हममें शीलता तथा कष्ट सहन करने की क्षमता आती है।

इन सबके साथ-साथ हमे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि पिछले वर्ष हमारे कौन-से विषय कमजोर थे, जिनमें हमें दूसरों का मुँह देखना पड़ता था। उन विषयों की कमजोरी को अपने बुद्धिमान मित्रों के सहयोग से या अध्यापकों से मिलकर दूर कर लेना चाहिये, या आगामी वर्ष में पढाई जाने वाली पुस्तकों का थोड़ा पूर्व ज्ञान कर लेना चाहिये, इससे विद्यार्थी को आगे के अध्ययन में सरलता हो जाती है। अध्यापकों ने जो काम छुट्टी मे करने को दिया हो उसे पूरा करना चाहिये। एक विद्वान की उक्ति है कि—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणाम् निद्रया कलहेन वा ॥

बुद्धिमान विद्यार्थियो के अवकाश के क्षण भी पुस्तकानन्द मे ही व्यतीत होते

हैं। ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक स्वावलम्बी और दूसरा परावलम्बी। परावलम्बी ज्ञान हम गुरुजनों से एवं अच्छी पुस्तकें पढने से प्राप्त होता है। हम लोग अपने-अपने विद्यालय मे उसे प्राप्त करते हैं। परन्तु स्वावलम्बी ज्ञान हमें स्वयं अपने द्वारा ही प्राप्त होता है और उसके अर्जन के लिए उचित समय विद्यार्थी के अवकाश के क्षण हैं, चाहे वह ग्रीष्मावकाश हो और चाहे वह दशहरावकाश हो। उसमे वह स्वावलम्बी ज्ञान को अधिक मात्रा मे प्राप्त करके अपने लम्बे अवकाश को सफल बना सकता है।

ससार में सबसे अधिक मूल्यावान वस्तु समय है, प्रत्येक व्यक्ति को समय का महत्व समझना चाहिये, "समय चूकि पुनि का पछताने" जब समय बीत जाता है तब मनुष्य केवल पछताता ही रहता है और फिर उसे कोई लाभ भी नही होता। जो समय का जितना आदर करेगा, समय भी उसका उतना ही आदर करेगा। विशेष रूप से छात्रो को अपना अवकाश कुत्सित्पूर्ण बातो मे व्यतीत न करके ऐसे सत्कार्यों मे व्यतीत करना चाहिये, जिससे उनमे नैतिक एवं शैक्षणिक भावनाओ का संचार हो और वे स मार्गगामी बन सकें।

२५. हिन्दी की स्थिति

आज भारतवर्ष को स्वतंत्र हुए ४१ वर्ष हो चुके हैं, परन्तु यदि हमसे पूछा जाये कि आपने हिन्दी के उत्थान के लिये क्या किया, तो सिवाय इसके कि हम मौन होकर रह जायें, या दो चार आयोगो के नाम गिना दें, कुछ तथ्यपूर्ण उत्तर नहीं दे सकते। यह प्रश्न हम अपने से करते तो उत्तर मिलता कि हिंदी जहाँ थी, वहीं है और दक्षिणी राज्यों मे तो उससे भी बुरी स्थिति मे। राजर्षि टण्डन, सरदार पटेल, महात्मा गाँधी आदि नेताओ के जीवनकाल मे, या स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व हिंदी को

हिन्दी की स्थिति
१ प्रस्तावना।
२ अंग्रेजी की यथावत स्थिति के लिए नवीन विधेयक।
३ विधेयक का विश्लेषण।
४ आज की स्थिति।
५ उपसहार।

अपनी भाषा समझकर हम लोग आदर करते थे या यों कहिये कि केवल अंग्रेजो को दिखाने के लिए हमारे अन्दर वह जोश था। यद्यपि भारतीय संविधान मे हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया था, फिर भी आज तक उसे समुचित स्थान प्राप्त नहीं हुआ। यह निश्चय किया गया था कि चूंकि हिन्दी अभी इतनी समर्थ नही है इसलिए हिन्दी [illegible] मार्च सन् १९६५ तक सरकारी काम काज की भाषा अंग्रेजी ही रहेगी।

सन् ६५ आने से बहुत पहले ही अंग्रेजी के प्रबल समर्थकों की आँखें खुली। भय हुआ कि कही हिंदी न आ जाये। इसके लिए उखाड़-पछाड़ शुरू हो गई। सन् ६२ मे ही लोक सभा मे एक विधेयक लाने का प्रयत्न किया गया कि अब भी हिंदी इस योग्य नही हुई है कि राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन हो सके। अतः ६५ के बाद भी अंग्रेजी की अवधि बढ़ा दी जाय। नवम्बर मे ही इस प्रकार का विधेयक लोकसभा में आने वाला था, जिसे तत्कालीन गृह मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री प्रस्तुत कर रहे थे, परन्तु २० अक्टूबर सन् ६२ को चीनी आक्रमण के कारण

आपात्कालीन स्थिति घोषित हो जाने की वजह से यह विधेयक उस समय टल गया। पुनः सन् ६३ में इस विधेयक को लोक-सभा में प्रस्तुत किया गया। विधेयक की धारा इस प्रकार है—(१) इस कानून का नाम राजभाषा कानून होगा, (२) हिन्दी का अर्थ देवनागरी में लिखित है, (३) सन् १९६५ के बाद हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रक्खा जा सकता है, (४) दस वर्ष बाद तीन संसद सदस्यों की एक समिति हिन्दी की पुनः जाँच करेगी, (५) सन् ६५ के बाद केन्द्रीय कानूनों या राष्ट्रपति द्वारा जारी किया गया अध्यादेश या संविधान के अन्तर्गत जारी किए नियम आदि के हिन्दी अनुवाद प्रामाणिक माने जायेंगे, (६) सन् १९६५ के बाद किसी विधान सभा द्वारा स्वीकृत कानून के हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किये जा सकते हैं, (७) सन् ६५ के बाद किसी राज्य के राज्यपाल राष्ट्रपति से अनुमति लेकर अंग्रेजी के साथ हिन्दी व राज्य की और किसी भाषा को राज्य-भाषा का स्थान दे सकते हैं, तथा (८) केन्द्रीय सरकार राज्य भाषा सम्बन्धी कानून के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए नियम बना सकती है।

स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने उक्त विधेयक का बड़ा समर्थन किया और कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक में उन्होंने अपनी निम्नलिखित राय जाहिर की—"इस समय देश में एकता रखना अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दुस्तान को बिगाड़ कर हिन्दी की तरक्की नहीं हो सकती। हमें दक्षिण के लोगों में यह विचार पैदा नहीं होने देना चाहिये कि उत्तर वाले उन पर हिन्दी थोप रहे हैं। 'हिन्दी तथा अहिन्दी' भाषियों को दो भागों में बाँट देने से देश का भारी अहित होगा। हिन्दी को रजामन्दी से आगे ले जाना है, अगर हिन्दी वाले जबरदस्ती करेंगे तो दूसरे लोग ऐंठ जायेंगे। इससे ऐसी खाई पैदा हो जायेगी जो हिन्दी के लिए ही नहीं वरन् पूरे देश के लिए घातक सिद्ध होगी। हिन्दी को और ताकत मिलेगी, यदि हिन्दी के साथ अंग्रेजी को सहायक भाषा रहने दिया जाए, क्योंकि अंग्रेजी के जरिये नये-नये विचार आते रहेंगे।"

इस विधेयक को लोक सभा में प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन गृह-मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने कहा था कि "आप मुझ पर विश्वास रक्खें, मेरे द्वारा हिन्दी का अहित कभी नहीं हो सकेगा, परन्तु मुझे अपना कर्तव्य और उत्तरदायित्व भी पूरा करना है।" परन्तु दूसरी बात उन्होंने भी स्वयं स्वीकार करते हुए कहा कि—"जब तक हिन्दी विकसित नहीं हो जाती और जब तक लोग उसे अच्छी तरह से सीख नहीं लेते, तब तक अंग्रेजी को बनाये रखना ही पड़ेगा। आज अंग्रेजी सभी राज्यों की साझी भाषा है और राज्यों तथा केन्द्रों के बीच पत्र-व्यवहार भी उसी में होता है। यदि अगले पाँच वर्षों में अंग्रेजी का त्याग कर दिया गया, तो भारत अपने आप अलग-अलग भागों में बँटकर बिखर जायेगा।" शास्त्री जी के वक्तव्य से भी ध्वनित होता है कि हिन्दी अभी अविकसित है। हिन्दी के मूर्धन्य कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इस विधेयक के विषय में कहा था—' अंग्रेजी को आगे जो इतनी आयु दी जा रही है वह सावधि होगी या निरावधि ? हिन्दी-भाषी प्रान्तों का मत है कि अंग्रेजी के प्रयोग को निरवधि नहीं छोड़ना चाहिये।" दिनकर ने यह सोचा था कि एक अवधि ही निश्चित हो जाये तो अच्छा है।

भारतीय लोक सभा के अन्य सदस्यों की भाँति श्री अनन्त गोपाल शेवड़े भी इस विधेयक को प्रस्तुत करने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने कहा था कि—"देश के

सारे नेताओं को, जो शासन के भीतर तथा बाहर हैं, और जो राजनीतिक, सांस्कृतिक या साहित्यिक क्षेत्रों में काम करने वाले हैं ऐसा वातावरण निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिये, जिससे इस विषय पर शांति से न्याययुक्त और तर्कयुक्त बुद्धि से केवल राष्ट्रीय हित मे विचार हो सके, उसमे क्रोध, अविश्वास और राजनीतिक पैंतरेबाजी के लिये स्थान न हो। राज-भाषा के प्रश्न पर विचार करते हुये हमें राष्ट्र-हित को ही सर्वोपरि रखना चाहिये, राजनीतिक दलगत स्वार्थों से तो हिन्दी या राष्ट्र का अहित ही सम्भव है।"

हिन्दी को ही यदि राष्ट्र-भाषा बना दिया गया तो और भाषाएँ अशक्त या अप्रतिभ हो जायेंगी या हिन्दी मे ही श्रेष्ठ और सत्साहित्य है—इसका मतलब यह कभी नहीं समझना चाहिये और यह भी नहीं सोचना चाहिये कि हिन्दी उन पर थोपी जा रही है क्योंकि दक्षिणात्य समझते हैं कि हम भी भारत माता की सन्तान हैं, हिन्दी हैं, संस्कृत की उत्तराधिकारिणी हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र-भाषा है। दक्षिणात्यो मे जितना देववाणी संस्कृत का अध्ययन है, उसका शतांश भी उत्तर वालों में नहीं। अधिकांश दक्षिणवासी हिन्दी का समर्थन करते देखे गये हैं। श्री एलक पुलिगे का कथन है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, बम्बई, आगरा आदि की हिन्दी परीक्षाएँ दक्षिण मे खूब चलती हैं। लगभग १५ वर्ष से राज्य स्कूलों और कॉलिजो में हिन्दी अध्यापन की व्यवस्था है। दक्षिण मे हिन्दी का समर्थन करने वालों का एक कट्टर समुदाय भी है, जो हिन्दी के लिये सब कुछ त्याग करता है। दक्षिण में अधिकाधिक मात्रा में हिन्दी फिल्में दिखाई जाती हैं।

१५ सदस्यों ने विधेयक के विरोध में मत दिया। प्रसिद्ध कांग्रेसी एवं प्रसिद्ध साहित्यकार सेठ गोविन्ददास ने कांग्रेसी होते हुये भी विधेयक का लोक सभा मे घोर विरोध किया। उन्होने स्पष्ट कहा कि, "भले ही मुझे कांग्रेस छोड़नी पड़े पर मैं आँखों देखा विष नहीं खा सकता।" परिणाम वही हुआ जो होना था। विधेयक बहुमत से पास हुआ। इसके पश्चात् राज्य सभा में भी थोड़े बहुत नेताओं के विरोध के पश्चात् यह विधेयक पास हो गया। अब अंग्रेजी आगे भी बारह वर्षों तक राष्ट्र-भाषा के रूप में बनी रहेगी, इसे संयोजक भाषा कहा जायेगा। १० वर्ष बाद हिन्दी की स्थिति पर फिर विचार होगा।

हिन्दी को संविधान ने राष्ट्र-भाषा स्वीकार किया, इसके पीछे भी भौगोलिक और ऐतिहासिक कारणों का बल निहित था।

१९६७ के आम चुनावों के पश्चात् बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि प्रमुख हिन्दी भाषी प्रान्तों की सरकारों ने हिन्दी में ही कार्य करने का दृढ़ संकल्प लिया था, उधर छात्रों में मातृ-भाषा के प्रति अपूर्व श्रद्धा उमड़ती हुई दिखाई पड़ती थी, हिन्दी-भाषी प्रान्तों मे अंग्रेजी में लिखी हुई कोई भी वस्तु दिखाई न पड़े इसलिये छात्रों ने अंग्रेजी के साइन बोर्डों की जगह हिन्दी के साइन बोर्ड लगाइये, अभियान चलाया। बिहार और उत्तर प्रदेश की मातृ-भाषा-भक्त सरकारों ने उच्चतर परीक्षाओं में अंग्रेजी को एकदम वैकल्पिक विषय घोषित कर दिया। हिन्दी-टाइप-राइटरों के निर्माण के लिये कम्पनियों को आदेश दे दिये गये। विधान-सभा की निरिवल कार्यवाहियाँ हिन्दी मे की जाने लगीं। सरकारी कार्यालयों को आदेश दे दिये गये कि अपना सारा काम हिन्दी में करें। सहसा एक बार ऐसा प्रतीत होने लगा कि शायद हिन्दी के दुर्दिन बीत चुके हों।

सन् ६५ के बाद भी अंग्रेजी को संयोजक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले विधेयक के पास हो जाने पर भी बहुत से लोग शासन की भाषा-नीति से प्रसन्न नहीं थे। परिणामस्वरूप राजभाषा विधेयक संशोधक बिल राज्यसभा तथा लोक सभा में प्रस्तुत किया गया। विरोधी दलों के विरोध के बावजूद संशोधन पास हो गया।

उधर हिन्दी भाषी मन्त्रिमण्डल अपने-अपने राज्यों में केन्द्रीय सरकार के इस निर्णय के विरुद्ध थे और अपने राज्यों में अंग्रेजी को प्रोत्साहित करने के पक्ष में नहीं थे। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री ने सन् ६८ प्रारम्भ होते ही अंग्रेजी को परीक्षाओं से निकाल बाहर फेंकने के लिये वैकल्पिक विषय घोषित कर एक पुनीत कर्त्तव्य का पालन किया। बिहार और राजस्थान में भी सरकारों ने इसी प्रकार के पवित्र निर्णय लिये। राजस्थान में तो यह सुविधा तक दी गई कि टेलीफोन पर हिन्दी अंग्रेजी के हिन्दी पर्यायवाची शब्द बता ये जाने लगे।

प्रसन्नता का विषय है कि उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब और हरियाणा में भी कुछ सीमा तक हिन्दी का अच्छा विकास हुआ तथा अन्य प्रदेश भी इस ओर प्रयत्नशील हुये। १९६७ के आम चुनावों के बाद नये शिक्षामन्त्री श्री त्रिगुणसेन ने इस ओर विशेष रुचि ली। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का रुख भी हिन्दी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। भू० पू० राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसेन ने भी शपथ के बाद प्रथम भाषण हिन्दी में देकर हिन्दी को गौरवान्वित किया और भारत-वासियों के हृदय में आशा की एक किरण जाग्रत की। बिहार के मन्त्रिमण्डल ने हिन्दी को सरकारी भाषा घोषित कर बड़ा पुनीत कार्य किया। १९७१ में उत्तर प्रदेश में जब श्री त्रिपाठी के मन्त्रिमण्डल ने स्थायी सरकार के रूप में कार्यभार ग्रहण कर लिया तो हिन्दी के सौभाग्य ने एक बार फिर शान्ति की श्वांस ली। मुख्यमन्त्री श्री त्रिपाठी ने सरकारी कार्यालयों को स्पष्ट आदेश दिये कि सरकारी काम हिन्दी में न करना अनुशासनहीनता समझा जायेगा। माननीय मुख्यमन्त्री के इस सत्प्रयास से अंग्रेजी भक्त अफसरों ने कुछ हिन्दी में पढ़ना-लिखना सीखा। हिन्दी के आज तीन स्वरूप हैं। पहला स्वरूप भारतीयों की मातृभाषा का, दूसरा स्वरूप राज-भाषा का, और तीसरा स्वरूप भारत से बाहर बस जाने वाले प्रवासी भारतीयों का। हिन्दी का तीसरा स्वरूप सर्वाधिक व्यापक उसका विश्व भाषा वाला रूप है। मारीशस, फिजी, गियाना, सूरीनाम, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड और जापान को मिलाकर तीस ऐसे देश हैं जहाँ कई लाख की संख्या में भारतवासी बसे हुये हैं और आपसी व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। हिन्दी आज विश्व की प्रमुख भाषाओं की पंक्ति में जा पहुँची है : उसके बोलने वालों की संख्या के अनुसार संसार में तीसरा स्थान हिन्दी का है। पिछले दो वर्षों में सम्पन्न हुये दो विश्व हिन्दी सम्मेलनों के कारण हिन्दी के इस तीसरे स्वरूप की चर्चा अधिक जोरों पर है। ये सम्मेलन जन-वरी १९७५ में भारत के नागपुर शहर में और अगस्त १९७६ में मारीशस में सम्पन्न हुये। निश्चित ही इन सम्मेलनों के सत्प्रयासों का प्रभाव विश्व के बौद्धिक जन मानस पर बिना पड़े न रहेगा और हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करेगी। १९७७ से प्रतिष्ठित भारत सरकार के विदेश मन्त्री के संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य विदेशों की यात्राओं में हिन्दी के प्रयोग से सम्भवतः विश्व में हिन्दी को आगे बढ़ने में कुछ बल मिलता, परन्तु हिन्दी की स्थिति यथावत् रही। भारत

की समृद्धि की जहाँ अनन्त उपलब्धियाँ रहीं वहाँ हिन्दी की समृद्धि बहुत मन्द रही। आज राजीव गाँधी का युग है आशा है हिन्दी की स्थिति भी सुधरेगी। ●

२६. निरक्षरता—एक अभिशाप

"सब ते भले विमूढ़, जिन्हें न व्यापै जगत् गति"

मूर्खों के लिए गोस्वामी जी का यह व्यंग इसलिए सार्थक है कि जहाँ समझदार और बुद्धिमान व्यक्ति के लिए संसार में पग-पग पर ठोकरें हैं, चिन्तायें हैं, उलझनें हैं वहाँ मूर्ख आराम से निश्चिंत होकर अपनी जिन्दगी काट जाता है, न उसे अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विषय में सोचना पड़ता है, न उसे घर की इज्जत सताती है और न बाहर की चिन्ता, उसे समाज से न कोई मतलब रहता है और न देश से कोई सम्बन्ध। कोल्हू के बैल की तरह जिस रास्ते पर आप उसे डाल दीजिये उसी को अपने जीवन का लक्ष्य समझकर वह चलता चला जायेगा। अब प्रश्न यह है कि पशुता से मनुष्यता को विभक्त करने वाली ऐसी कौनसी विशेषतायें हैं? क्योंकि वे सभी गुण जो मनुष्यों में होते हैं पशुओं में भी पाये जाते हैं। देखिये, जहाँ मनुष्य अपने स्वार्थ में प्रवीण होता है वहाँ पशु और पक्षी भी अपने हानि लाभ को खूब जानते हैं। आप अपने परिवार से प्रेम करते हैं, तो गाय भैंस भी अपने बछड़े को खूब दुलार करती हैं। डण्डे से आप भी डरते हैं और वे भी। गाने बजाने से आप भी प्रसन्न हो जाते हैं उधर सर्प और मृग भी बीन और वीणा पर अपनी जान दे देते हैं। यदि आप कलाकार और गुणी हैं, तो सरकस का कुत्ता और हाथी भी बड़ी-बड़ी करामातें दिखा देता है। यदि आप परिवार-वृद्धि में दक्ष हैं, तो कुत्ते और बिल्ली आप से इस विषय में कहीं ज्यादा निपुण हैं। यदि आप कहें कि हम ईश्वर की पूजा करते हैं, तो हमने सर्पों को भी सत्यनारायण की कथा सुनते देखा है। यदि नृत्य वादन में आप अपने को निपुण मानते हैं, तो रीछ भी नाच ही लेता है और यदि आप सौन्दर्योपासक हैं, तो बन्दर भी ससुराल जाने से पूर्व सिर पर टोपी रखकर शीशे में अपने व्यक्तित्व का निरीक्षण कर ही लेता है। यदि आप कहें कि हम वीर योद्धा हैं और मल्ल-युद्ध में चतुर हैं तो क्या आपने कभी साँडों को बाजार में लड़ते नहीं देखा? रास्ते बन्द हो जाते हैं और उन दोनों का उस समय तक युद्ध होता है, जब तक कि जय और पराजय का प्रश्न सुलझ नहीं जाता। यदि आप देश-प्रेम और जाति-प्रेम का दावा करते हैं, तो चींटियों, बन्दरों और कौओं से ज्यादा जाति प्रेम आपके अन्दर कभी हो नहीं सकता। चीनी या गुड़ के एक कण को खाने के लिए चींटी जब तक अपनी समस्त अड़ोसिन-पड़ोसिनों को नहीं बुला लायेगी, खायेगी नहीं। यदि एक बन्दर बिजली के तार पर लटक जायेगा या एक बन्दर का बच्चा कहीं फँस जायेगा तो सारे बन्दर इकट्ठे होकर छुड़ाने का यत्न करेंगे, जब कि मनुष्यों में यह गुण दिखाई ही देना बन्द होना जा रहा है। अतः यदि इन समानधर्मी प्राणियों में कोई अन्तर है तो वह केवल शिक्षा और शिक्षा पर आधारित ज्ञान का है। अतः आप समझ गए होंगे कि पशु से मनुष्य बनने के लिये शिक्षा कितनी अनिवार्य है। अतः यदि आप निरक्षर हैं, तो पशु ही हैं।

निरक्षरता—एक अभिशाप

१ प्रस्तावना।
२ निरक्षरता के कारण।
३ निरक्षरता से हानि।
४ निरक्षरता दूर करने के उपाय।
५ उपसंहार।

हमारे यहाँ समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने गुण और कर्मों के अनुकूल शिक्षा प्राप्त करता था। समाज और शासन की ओर से शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। तभी तो भारत अन्य देशों का गुरु माना जाता था। परन्तु पिछले एक सहस्र वर्षों की अनवरत दासता ने निःसन्देह हमें शिक्षाहीन बना दिया क्योंकि प्रारम्भिक दो-तीन शताब्दियों तक तो हम अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये लड़ते-मरते रहे, किसको ध्यान था पढ़ने लिखने का। उसके बाद सांस्कृतिक और धार्मिक चक्करों में कुछ शताब्दियाँ बिताईं। फिर जो आराम मिला तो अपने को भूल गये। उसके बाद दो शताब्दियों तक अंग्रेज छाये रहे, जिनका मूलमन्त्र था कि यदि हम भारत पर शासन करना चाहते हैं, तो वहाँ की भाषा तथा साहित्य को समाप्त करना होगा और जितने अधिक से अधिक बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति होंगे, उतना ही हमारा शासन मजबूत और चिरंजीवी होगा। इसलिये अंग्रेज ने भारत में चपरासी, चौकीदार, अर्दली और क्लर्क ही पैदा किये। मुश्किल से एक-एक शहर में एक-एक स्कूल होता था, उसमें भी धनीमानियों के बच्चे पढ़ने जाते थे। धीरे-धीरे अंग्रेजी शासन के 50 वर्षों के इस जहरीले इन्जेक्शन का यह असर हुआ कि भारत में अंगूठा टेक पैदा होने लगे और अन्त में उनकी संख्या ९०% तक पहुँच गई।

इससे हमारी सबसे बड़ी हानि और अंग्रेजों के लिये बड़ा लाभ यह हुआ कि हमने अंग्रेजों के आगे सिर नहीं उठाया, क्योंकि समुचित शिक्षा के अभाव में न हमारे पास स्वतन्त्र चेतना-शक्ति थी और न परिमार्जित संस्कार। अंग्रेज जानता था कि वे पढ़-लिखकर सिर उठाएंगे इसलिये शिक्षा समाप्त की गई थी। शिक्षा के अभाव में न मनुष्य में उद्बोधन शक्ति रहती है, न जागृति। न वह देश और राष्ट्र के कल्याण के लिये सोच सकता है और न अपने सामाजिक एवं जातीय विकास के लिये। न वह अपने देश के प्राचीन साहित्य को पढ़कर ज्ञानार्जन ही कर सकता है और न पूर्वजों के त्याग और बलिदानों से ही प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। अशिक्षित व्यक्ति न अपने घर का वातावरण शिष्ट एवं मित्र बना सकता है और न अपने बच्चों का ही भविष्य निर्माण अच्छी प्रकार से कर सकता है। इस प्रकार निरक्षरता के कारण न तो देश के भावी नागरिक ही अच्छे बन पाते हैं और न मनुष्य आत्म-कल्याण और राष्ट्र-कल्याण की ओर ही उन्मुख हो सकता है, न धर्म-चिन्तन ही कर पाता है और न अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेचन। ही कहने का तात्पर्य यह है कि देश की निरक्षरता के कारण देशवासियों को सभी प्रकार के घोर कष्टों का सामना करना पड़ा—चाहे वे राजनैतिक हों, सामाजिक हों, आर्थिक हों, धार्मिक हों या वैयक्तिक हों। अशिक्षा के कारण न हम अपना व्यापार बढ़ा सके और न औद्योगिक विकास ही कर सके। मैंने वह दृश्य भी देखा है, कि जब एक हिन्दी में लिखी चिट्ठी कहीं से आ जाती थी तो लोग उसे पढ़वाने के लिये पढ़े-लिखे की तलाश में निकला करते थे और अंग्रेजी का तार आ गया तो फिर आसानी से पढ़ने वाला भी नहीं मिलता था। लोग अपना नाम तक न लिख सकते थे और न पढ़ सकते थे। अंगूठे की निशानी लगाकर बेचारे काम चलाते थे। इसलिये जमींदार और साहूकार जैसा चाहते थे वैसा लिख लेते थे—चाहे एक हजार के दस हजार कर लें या एक बीघे के दस बीघे।

धीरे-धीरे समय बदला, देश में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के प्रति जागृति की भावना पनपने लगी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति की आवश्यकता के साथ-साथ जनता ने शिक्षा के महत्त्व को भी समझा। शिक्षित नागरिक स्वतन्त्रता-प्राप्ति में अधिक सहायक सिद्ध हो सकते थे। देश की निरक्षरता को दूर करने के लिये साक्षरता आन्दोलन प्रारम्भ

किया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप १९३७ ई० में जब प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों की स्थापना हुई तो देश के असंख्य जनपद नर-नारियों को साक्षर बनाने के प्रयत्न प्रारम्भ हुये। गाँव-गाँव में प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र तथा रात्रि पाठशालायें खोली गईं, पुस्तकालय तथा वाचनालय स्थापित किये गये। 'अशिक्षा का नाश हो, अंगूठा लगाना पाप है,' आदि नारे गाँव-गाँव में गूँजने लगे। साक्षरता-सप्ताह मनाये जाने लगे तथा प्रत्येक व्यक्ति को शपथ दिलायी जाती कि वह कम से कम एक व्यक्ति को अवश्य साक्षर बनाये। गाँव वालों को यह समझाया गया कि पुलिस, पटवारी, जमींदार, साहूकार और व्यापारी उन्हें इसलिये लूटते हैं क्योंकि वे पढ़े-लिखे नहीं हैं। वृद्ध पुरुषों और महिलाओं ने भी इसमें सक्रिय भाग लिया। १९३९ में ये प्रान्तीय सरकारें समाप्त हो गईं, फिर भी साक्षरता प्रसार-आन्दोलन १९४७ तक अपने खोखले रूप में चलता ही रहा, क्योंकि जो लोग साक्षरता के प्रसार में लगे हुये थे वे भी केवल नाम लिखना या अक्षर ज्ञान ही कराते थे। सन् १९४७ के पश्चात् इन आन्दोलनों को और अधिक व्यापक रूप दिया गया। गाँवों में अशिक्षित को शिक्षित करने के साथ-साथ उनके मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा ज्ञान की वृद्धि के उपाय भी किये गये। उनके पारिवारिक तथा आर्थिक जीवन को भी उन्नत बनाया गया।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश में से अज्ञान के अन्धकार को दूर करने के लिये विशेष प्रयत्न किये गये। पहिले जिले में एक दो स्कूल हुआ करते थे और डिग्री कॉलिज तो दो-दो चार-चार जिलों को छोड़कर होते थे। बेचारे गरीब की क्या मजाल थी कि वह अपने बच्चों को पढ़ा ले। और अब आपको हर तहसील और हर बड़े गाँव में इण्टरमीडिएट कॉलिज मिलेगा, शहरों में इनकी संख्या इतनी है कि कुछ कहते नहीं बनता। फिर भी आप देखिये कि जौलाई में हर कॉलिज में विद्यार्थियों के दाखिले की भीड़ लगी रहती है। लड़कों की शिक्षा के साथ-साथ लड़कियों की शिक्षा पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाने लगा है।

खेद है कि छः पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी भारत की तीन चौथाई से भी कहीं अधिक जनसंख्या आज भी अशिक्षित है। आज भी करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं जिनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर। अशिक्षित जनता में प्रजातन्त्र का सफलतापूर्वक निर्वाह कठिन हो जाता है, अपने अधिकार और कर्त्तव्य के ज्ञान से वे शून्य होते हैं। अशिक्षा के कारण न वे अपना अच्छा प्रतिनिधि ही चुन सकते हैं और न वे मत का महत्व ही समझते हैं।

उत्तर प्रदेश में, जो कि अन्य राज्यों से, जैसे—मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, आदि से अधिक शिक्षित समझा जाता है, सन १९८१ की जनगणना के अनुसार देहरादून जिला सबसे अधिक शिक्षित है। कानपुर का दूसरा तथा लखनऊ का तीसरा स्थान आता है। सबसे कम शिक्षित लोग बदायूं जिले में हैं। यहाँ केवल ९.६ प्रतिशत लोग पढ़े लिखे हैं। रायबरेली, सीतापुर, बाराबंकी, गोंडा, सुल्तानपुर, बहराइच, प्रतापगढ़, उन्नाव, रामपुर और शाहजहाँपुर में तो १५ प्रतिशत से भी कम लोग शिक्षित हैं। ये आँकड़े कितने लज्जाजनक हैं।

बड़े खेद की बात है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के ४१ वर्षों के बाद भी बेचारी अज्ञानान्धकार के कुएँ में उसी तरह गोते लगा रहे हैं, जैसे पहिले। यह एक अभिशाप है, देश के मस्तक पर कलंक है। इसके दो कारण हैं—एक तो शिक्षा इतनी महँगी हो गयी है कि सर्वसाधारण उसको वहन करते-करते थक जाता है। दूसरे—हम लोगों का ध्यान भी शिक्षा की ओर कम है। और बातों में जैसे—मुकद

बोलना, मक्कारी, बदमाशी और इसी प्रकार के कार्यों में हम अधिक प्रवीणता प्राप्त करते जा रहे हैं, अपेक्षाकृत शिक्षा के। यदि हम अपने देश का कल्याण चाहते हैं, तो प्रत्येक देशवासी का शिक्षित होना परम आवश्यक है। १९७७ से प्रतिष्ठित भारत सरकार ने शिक्षा पर, विशेष रूप से प्रौढ़ शिक्षा पर अधिक बल दिया है। १९७८ में प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी ठोस योजनाओं के क्रियान्वयन के लिये समस्त भारत में प्रौढ़ शिक्षा विभागों की स्थापना की गई तथा सांध्यकालीन प्रौढ़ पाठशालायें कार्यरत हैं। इस योजना से निश्चित ही भारत में निरक्षरता में कुछ न कुछ कमी अवश्य आई होगी। इस योजना के अन्तर्गत १९९५ तक सरकार का निरक्षरता उन्मूलन का संकल्प है। आशा है सरकार का यह स्वप्न निःसन्देह सफल होगा बशर्ते कि इस योजना के कार्यकर्ता मन से और ईमानदारी से कार्य करें। ●

२७. श्रमदान

मानव के अन्तःकरण की शुद्धि करने के लिये शास्त्रों में अनेक मार्ग बताये गये हैं। अन्तःकरण की शुद्धि से मानव हृदय में परोपकार, औदार्य, दया आदि उज्ज्वल भावनाओं का उदय स्वतः होना है। ये भावनायें ही मनुष्य को देवत्व और भ्रातृत्व की ओर ले जाती हैं। मनुष्य स्वार्थ की संकुचित सीमा को लाँघ परमार्थ की ओर अग्रसर होता है। अन्तःकरण की विशुद्धता के लिये जहाँ अनेक सात्विक मार्ग हैं, वहाँ श्रमदान भी एक श्रेष्ठ मार्ग है। इससे हमारा शारीरिक और मानसिक विकास होता है। हमारे हृदय में विश्व-बन्धुत्व की भावना की वृद्धि होती है। हमें ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

श्रमदान भारतवर्ष की अन्य प्राचीन परम्पराओं में से एक है। प्राचीन भारत मे इसका अपना एक अलग ही महत्व था। जनता सच्चे हृदय से एक दूसरे के कामों में हाथ बँटाती थी, परस्पर सहानुभूति, सहयोग और संवेदना थी। श्रमदान का अर्थ है स्वार्थ-रहित होकर जन-कल्याण के कार्यों में अपनी अर्जित शक्तियों द्वारा पूर्णरूप से सहयोग देना। श्रमदान में राष्ट्र-हित की भावनाओं के साथ-साथ सामाजिक और अखिल विश्व की कल्याणकारी भावनाओं का समन्वय भी रहता है। श्रमदान से किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति के सुधार के साथ-साथ राष्ट्र को पूर्ण शक्तिशाली बनाने में अमूल्य सहायता प्राप्त होती है।

श्रमदान
१. प्रस्तावना।
२. श्रमदान का अर्थ।
३. श्रमदान का उद्देश्य एवं श्रीगणेश।
४. श्रमदान से लाभ।
५. श्रमदान के कार्य में रुकावटें।
६. उपसंहार।

इस आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य जनता मे निःस्वार्थ भाव से रचनात्मक कार्यों के प्रति रुचि उत्पन्न करना तथा परस्पर सहयोग की भावना की वृद्धि करना है। अब तक भारत के ग्रामो की दशा बड़ी ही दयनीय थी। इसलिये भारत सरकार ने अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना मे ग्राम-सुधार योजना को विशेष महत्व दिया था। आधुनिक काल मे श्रमदान का निकटतम सम्बन्ध ग्राम-सुधार योजनाओं से ही है। ग्राम-सुधार योजनाओं को सफलता प्रदान करना ही श्रमदान का प्रमुख लक्ष्य है। ग्राम सुधार योजना में गाँवो की उन्नति के लिये जितने आवश्यक उपाय हो सकते हैं, जैसे—सिंचाई के लिये नालियाँ बनाना, कुयें खोदना, प्रकाश का प्रबन्ध करना, स्वच्छता का

प्रबन्ध, वृक्षारोपण करना, आदि किये जा रहे हैं। इन्हीं बहुमुखी योजनाओं से भारत की आर्थिक दशा में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है और हो रहा है। भविष्य में इन्हीं योजनाओं की सफलता एवं असफलता पर भारत की उन्नति और अवनति आधारित है। इसी देश-हित को दृष्टि में रखते हुये भारत में श्रमदान का श्रीगणेश २३ जनवरी, १९५३ को हुआ। इस तिथि से समस्त भारतवर्ष में श्रमदान सप्ताह मनाया जाने लगा। भू-दान यज्ञ की भाँति श्रमदान-आन्दोलन भी आचार्य विनोबा भावे के मस्तिष्क की उपज है।

विगत अनेक वर्षों से श्रमदान का पुण्य कार्य भारतवर्ष में चल रहा है। इसके द्वारा नेक सार्वजनिक कार्यों में अभूतपूर्व सफलता मिली। हमारी सरकार भी इस दिशा में विशेष रुचि ले रही है। श्रमदान सप्ताह आरम्भ होते ही इसमें सभी सरकारी अधिकारी, अध्यापक, विद्यार्थी, किसान, मजदूर प्रसन्नता से भाग लेते हैं। विद्यार्थियों ने इस दिशा से सराहनीय कार्य किया। छोटे-छोटे भवनों के निर्माण के साथ-साथ अनेक बाग-बगीचों, कॉलिज चहारदीवारी और सड़कों के निर्माण में छात्रों ने बड़ी कुशलता का परिचय दिया। ग्राम सुधार योजना से सम्बन्धित अनेक विभाग, जैसे—ग्राम पंचायतें, कृषि विभाग, जन-कल्याण विभाग, प्रान्तीय रक्षक दल, आदि ने इस आन्दोलन में विशेष सहयोग देकर बहुत से कार्य सम्पन्न कराये। सार्वजनिक संस्थाओं ने भी इस दिशा में विशेष सहयोग दिया। सड़कों और नालियों के बनाने में भारत सेवक समाज ने पर्याप्त सहायता दी।

देश की समृद्धि का प्रत्येक कार्य तभी सफल हो सकता है, जब शासक और शासित में पारस्परिक सहयोग हो। हमारे देश में राष्ट्रीय योजनाओं को कार्यान्वित करने में शासन को शासितों अर्थात् जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं होता। जनता समझती है कि यह कार्य केवल सरकार का ही है तथा उनका हक तो इसके उपभोग के लिये ही है। इसका मूल कारण यह है कि भारतीय जनता इस प्रकार की योजनाओं का अपनी अशिक्षा और अज्ञानता के कारण वास्तविक मूल्यांकन करने में असमर्थ है। दूसरा कारण यह है कि देश की निर्धनता, अन्न-वस्त्र की चिन्ता किसी को इतना अवसर ही नहीं देती कि वह इस प्रकार राष्ट्रीय हित के कार्यों में पूर्ण सहयोग दे सके। सुबह का अपने घर से निकला हुआ मजदूर, अध्यापक, वकील दिन भर घोर परिश्रम करने के बाद थकामांदा जब सन्ध्या के बाद घर लौटता है, तब उसके पास न श्रमदान की शक्ति रहती है और न देश हित के अन्य कार्य के लिए-समय। उस समय तो उसे केवल भोजन करके विश्राम की चिन्ता पड़ती है, जिससे दूसरे दिन कार्य करने के लिये वह यथा सम्भव शक्ति अर्जित कर सके। तीसरे, यह योजना भी स्वयं में इतनी आकर्षक नहीं है कि वह सर्वसाधारण को अपनी ओर आकर्षित कर सके। जो भी लोग श्रमदान करते हैं वे मन से नहीं करते, केवल दिखावे के लिये और खाना-पूरी करने के लिये ही करते हैं। फोटो खिचवाने के लिये बड़े बड़े अधिकारी भी फावड़ा और डलिया हाथ में पकड़ लेते हैं परन्तु जैसे ही शूट हुआ, तुरन्त साबुन से हाथ धोकर फिर पैंट की जेब में हाथ डाल लेते हैं।

भारतीय शिक्षित जनता भी श्रमदान के वास्तविक महत्व की ओर अधिक ध्यान नहीं देती, वह इसे केवल एक मनोरंजन का साधन-मात्र समझती है। जो लोग गाँवों में श्रमदान के लिये नियुक्त किये जाते हैं, वे विशेष रुचि से कार्य नहीं करते हैं। इसलिये गाँव के निवासी भी उनके कार्यों में पूर्ण सहयोग नहीं देते। मुझे अब तक याद है कि एक गाँव में कुछ अध्यापक और विद्यार्थी श्रमदान का कार्य करने गये थे, सारे गाँव में घूमने पर भी कुदाली और फावड़े न मिल सके, जब कि ग्राम-प्रधान को

पहले से सूचना थी कि अमुक दिन इस गाँव में श्रमदान का कार्य होगा। आश्चर्य यह है कि ग्राम-प्रधान महोदय भी गाँव में नहीं थे, किसी रिश्तेदारी में गये हुये थे। गाँव के छोटे-छोटे किसानों के पास कहाँ इतना समय है और कहाँ इतने फालतू यन्त्र कि वे अपने चार काम छोड़ें और अपने यन्त्र हमें दें। परन्तु कुछ स्थान ऐसे भी हैं, जहाँ श्रमदान कार्य बड़ी ईमानदारी और गम्भीरता से हुआ।

देश की आर्थिक अवस्था सुधार कर जनता को सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिये यह आवश्यक है कि श्रमदान के महत्वपूर्ण आन्दोलन को हम पुनः जीवित करें तथा उसमें हम तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दें। इससे केवल यही लाभ न होगा कि हम अपनी योजनाओं को सफल बना सकेंगे, अपितु हमारे हृदय में परोपकार, त्याग, उदारता और दया आदि उज्ज्वल भावनाओं का उदय होगा। हमारा नैतिक स्तर उन्नत होगा और हम स्वार्थ की पाशविक भावनाओं से ऊपर उठकर मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होंगे और हममें भ्रातृत्व की भावना जाग्रत होगी।

२८. सह-शिक्षा

सह-शिक्षा का अर्थ है बालक और बालिकाओं का एक साथ एक विद्यालय में अध्ययन करना। समाज में स्त्री-पुरुष सब साथ-साथ रहते हैं, इसलिये बालक और बालिकाओं की सह-शिक्षा के सम्बन्ध में भी प्रश्न उठाना नहीं चाहिये; परन्तु फिर भी कुछ भारतीय विद्वान् इसके पक्ष में हैं और कुछ विपक्ष में। विदेशी सभ्यता ने उपहार में जहाँ भारतीयों को अन्य वस्तुयें दीं, वहाँ सह-शिक्षा भी दी। यूरोप में सह-शिक्षा का जन्म स्विट्जरलैण्ड में हुआ, फिर शनैः शनैः इंगलैंड, अमेरिका तथा फ्रांस में भी सह-शिक्षा बढ़ने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष में भी सह-शिक्षा ने पदार्पण किया। भारतवर्ष में तब तो स्त्री शिक्षा का ही विरोध किया जाता था। भारतीयों के सामने यह दूसरी समस्या आई। कुछ लोगों ने इसका स्वागत किया, परन्तु अधिकांश जनता ने इस नवीन पद्धति को दोषयुक्त बताया, क्योंकि भारतीय इस बात पर विश्वास करते थे, कि स्त्री और शूद्र न पढ़ें। जो लोग स्त्री का पढ़ना ही हानिकारक समझते थे, वे भला सह-शिक्षा का कैसे स्वागत कर सकते थे। मुगलकाल में तो स्त्रियों का घर से बाहर निकलना भी आपत्तिजनक था, इसलिये परदे की प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ था। अब धीरे-धीरे स्त्रियों की शिक्षा तो आरम्भ हो गई, परन्तु अब प्रश्न यह आया कि लड़कियों की शिक्षा के लिये अलग संस्थायें हों या उनको लड़कों के विद्यालय में ही पढ़ने दिया जाये। पिछली दो शताब्दियों में इस समस्या पर जोरदार विवाद चलता रहा है, फिर भी यह योजना देश में किसी न किसी रूप में चल रही है।

सह-शिक्षा
१. प्रस्तावना।
२. सहशिक्षा का समर्थन।
३. सह-शिक्षा का विरोध।
४. उपसंहार।

समर्थकों का कथन है कि प्राचीन भारत में भी सह-शिक्षा थी। ऋषियों के गुरुकुलों में मुनिकुमार और मुनिकन्यायें साथ-साथ पढ़ते थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा पुरुषों के समान ही होती थी। वाल्मीकि के आश्रम में आत्रेयी और महर्षि कण्व के आश्रम में शकुन्तला अन्य कुमारों के साथ विद्याध्ययन करती थीं। वेद मन्त्रों की रचना करने वाली स्त्रियों के नाम भी वेदों में मिलते हैं। उपनिषदों में गार्गी का वर्णन आता है, जिसने अपनी विद्वता से महर्षि याज्ञवल्क्य को भी निरुत्तर कर दिया

था। अपने पति की पराजय से दुःखी होकर मण्डन मिश्र की पत्नी ने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। स्त्री-शिक्षा और सह-शिक्षा के कारण देश में स्वस्थ वातावरण था एवं लोगों के आचरण शुद्ध थे।

सह-शिक्षा के समर्थन में दूसरा अकाट्य तर्क यह दिया जाता है कि यदि स्त्रियों की शिक्षा के लिये अलग-अलग कॉलिजों की स्थापना की जावे तो उनमें लड़कियों की संख्या पर्याप्त नहीं हो सकती और इतनी योग्य और विदुषी अध्यापिकाओं का मिलना भी असम्भव है, क्योंकि अभी तक हमारे देश में स्त्री शिक्षकों की बहुत कमी है। कुछ विषय तो ऐसे हैं, जिनके पढ़ाने के लिए अध्यापिकायें बहुत कम मिलती हैं, जैसे— गणित, साइंस, इन्जीनियरिंग इत्यादि। फिर भी यदि उन संस्थाओं में पुरुष पढ़ायें, तो वह प्रयोजन पूरा नहीं होता जिस उद्देश्य से वे शिक्षा संस्थायें पृथक् खोली गई हैं। इस प्रकार महिलाओं के लिये पृथक् संस्था खोलने से देश के धन का अपव्यय होगा। भारतवर्ष एक निर्धन देश है। फिर भी नागरिकों को शिक्षित करना शासन का कर्त्तव्य है। शिक्षा योजना की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि लड़के-लड़कियों का अध्ययन एक साथ हो।

तीसरा तर्क यह है कि लड़के-लड़कियों के एक साथ रहने से उनके स्वाभाविक गुणों का विकास होता है। उनमें सभ्यता, शिष्टता और शुद्ध आचरण का उदय होता है एवं परस्पर सहृदयता और सहानुभूति के भाव उत्पन्न होते हैं। वे एक दूसरे से खूब परिचित हो जाते हैं। लड़के लड़कियों की उपस्थिति में उचित व्यवहार करना सीख जाते हैं। लड़कियाँ भी लड़कों की उपस्थिति में सौम्य और शान्त रहना सीख जाती हैं तथा उनमें व्यवहार-कुशलता, वीरता और साहस आदि भाव आ जाते हैं। सह-शिक्षा वाले विद्यालयों के छात्र-छात्रायें अधिक परिष्कृत रुचि के हो जाते हैं। परस्पर प्रति एक दूसरे से मिलने के कारण पारस्परिक आकर्षण समाप्त हो जाता है। यदि कोई वस्तु छिपाकर रक्खी जाती है, तो उसके प्रति देखने वालों का आकर्षण बढ़ता ही पड़ता है और जिस वस्तु के सम्पर्क में हम नित्य आते हैं, उसमें न कोई नवीनता होती है और न कोई आकर्षण। इस प्रकार सह-शिक्षा से छात्र-छात्राओं में नैतिक उत्थान ही होगा। जिन स्कूलों व कॉलिजों में सह शिक्षा नहीं होती, वे छात्र और छात्रायें बड़े संकोची और झेंपू किस्म के होते हैं। लड़कियाँ लड़कों से कतराती हैं। इस प्रकार दोनों का समुचित व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाता।

भारतीय संविधान में नारी को पुरुषों के समान ही अधिकार दिये गये हैं, वैसे भी आज का युग समानता का युग है, परन्तु यह अधिकार तभी सफल हो सकता है, जब छात्र और छात्रायें शिक्षा काल में साथ उठें-बैठें, साथ पढ़ें, अर्थात् एक-दूसरे के सम्पर्क में आयें तभी भावी जीवन में स्त्रियाँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर देश-हित कर सकती हैं। दूसरे, साथ-साथ पढ़ने से लड़के और लड़कियाँ एक दूसरे के स्वभाव से परिचित हो जाते हैं। कभी-कभी वे अपना जीवन साथी भी स्वयं ढूँढने में सफल हो जाते हैं। इस प्रकार, समाज की दहेज आदि बहुत-सी कुरीतियाँ स्वयं नष्ट हो जाती हैं। ऐसी गुणवती स्वयंवरा कन्यायें माता पिता पर भार नहीं बनतीं। तीसरी बात यह है कि पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण छात्र तथा छात्रायें एक दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। छात्र को सदैव यह ध्यान बना रहता है कि कहीं लड़की मुझसे ज्यादा नम्बर न ले जाये, इस कारण वह और भी अधिक परिश्रम करता है, इसी प्रकार लड़कियाँ भी अधिक परिश्रम करती हैं। अपने से अधिक सुन्दर सिद्ध करने के लिये दोनों ओर से अनेक सौंदर्य प्रसाधन काम में लाये जाते हैं,

जिससे स्वच्छता की भावना बढ़ती है। यह सह-शिक्षा के समर्थकों का चौथा तर्क है। इसी प्रकार के और भी अनेक लाभ बताये जाते हैं।

सह-शिक्षा के विरोध में विचार प्रकट करने वालों का सबसे पुष्ट तर्क यह है कि लड़के और लड़कियों का भावी जीवन नितान्त भिन्न है, इसीलिए उनकी शिक्षा की व्यवस्था भिन्न होनी चाहिये। लड़कियों के लिये गृह-विज्ञान, शिशु-पालन तथा स्वास्थ्य-शास्त्र, इत्यादि विषयों को पढ़ना आवश्यक है जबकि लड़कों के लिए इन विषयों की कोई आवश्यकता नहीं है। इतिहास, भूगोल, गणित आदि की शिक्षा लड़कियों के लिये जीवनोपयोगी शिक्षा नहीं है। आधुनिक शिक्षा लड़कियों के लिए अधूरी शिक्षा है इससे उनको कोई लाभ नहीं। इस प्रकार सह-शिक्षा का कोई प्रयोजन ही नहीं। वास्तव मे, स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। उनकी शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिये जो उनके पूरक बनने में सहायक हो सके। सह-शिक्षा में दोनों को एक-सी शिक्षा मिलने से दोनों में एक से गुण ही विकसित होंगे। इस प्रकार वे एक दूसरे के पूरक न बनकर एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी बन जायेंगे।

विरोधियों का कथन है कि सह-शिक्षा पतन में पूर्ण सहायक है। जब लड़के हर समय सुन्दर-सुन्दर लड़कियों को देखेंगे तब दर्शन के पश्चात् स्पर्श की इच्छा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। स्पर्श के अनन्तर हृदय मे आलिंगनादि वासनाजन्य भावनाओं का अवश्य ही आविर्भाव होगा। प्रारम्भ में भाई और बहिन के कृत्रिम सम्बन्ध एक प्रेमी और प्रेमिका के रूप में परिवर्तित होते देखे गये है। आज भी जहाँ सह-शिक्षा चल रही है वहाँ प्रेम-विवाह और स्वेच्छाचारिता की घटनायें नित्य सुनने को मिलती हैं। ललनाओं के लावण्य ने अनेक सिद्ध तपस्वियों के आसन हिला दिये है। आग और फूंस का बैर सृष्टि के आरम्भ से चल रहा है। स्त्रियाँ साक्षात् अग्नि शिखा हैं। स्पर्श करने वाला जलेगा न तो और क्या होगा? विश्वामित्र जैसे ऋषि मेनका को देखकर जब अपने ऊपर नियन्त्रण न रख सके तब आज का नवयुवक कैसे यह सब कुछ सहन कर सकता है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि—

"दीप-शिखा सम युवति जन, मन जिहि होत पतंग"

प्राचीन काल में बालक-बालिकाओं के साथ अध्ययन करने का कहीं भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। प्राचीन ऋषियों ने तो यहाँ तक लिखा है कि ब्रह्मचर्यावस्था मे ब्रह्मचारी को स्त्री के दर्शन भी नहीं करने चाहिये। तब यह कैसे सत्य मान लिया जाये कि प्राचीन गुरुकुलों मे सह-शिक्षा की व्यवस्था थी। कबीर ने नारी को विष की खान माना है। वे कहते हैं—

"नारी की छाँई परत, अन्धा होत भुजंग।
कह कबीर तिन हाल क्या, जो नित नारी के संग॥"

मनुस्मृति में मनु ने स्पष्ट लिखा है कि विवाह से पूर्व किशोर आयु के बालक और बालिकाओं को एक दूसरे से दूर रखना चाहिये और उनकी शिक्षा-दीक्षा भी पृथक् होनी चाहिये। उनका कथन है कि कुमारावस्था की शक्तियों का प्रयोग कठोरता के साथ विद्योपार्जन के लिए ही किया जाना चाहिये, यह मानव जीवन मे साधना का समय है। सह-शिक्षा से यह अमूल्य काल प्रेम-लीलाओं मे व्यतीत हो जायेगा। नवयुवकों के चरित्र दूषित हो जायेंगे और वे अपने उद्देश्य से विचलित होकर पथभ्रष्ट हो जायेंगे।

जहाँ सह-शिक्षा से राष्ट्र के धन की बचत है, वहाँ चारित्रिक पतन से कई गुनी अधिक हानि है। किसी विद्वान् की उक्ति है—

"धनीशो वित्तत क्षीण वृत्ततस्तु हतोहत"

अर्थात्, धन की हानि कोई विशेष महत्व नहीं रखती, परन्तु चरित्र की हानि मनुष्य को समूल नष्ट कर देती है। दूसरे भारतवर्ष गर्म देश है, यहाँ कन्याएँ युवावस्था शीघ्र प्राप्त कर लेती हैं। ठण्डे देशों में २४, २५ वर्ष तक तो साधारण बचपन ही रहता है, परन्तु यहाँ इतनी अवस्था तक युवावस्था आकर लौटने की भी प्रतीक्षा करने लगती है। दूसरी बात यह है कि कुछ स्थल शृंगार रस के ऐसे आ जाते हैं कि अध्यापक भी उन्हें स्पष्ट रूप से नहीं पढ़ा सकते। कक्षा में भी लड़के और लड़कियों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध रहते हैं। सीट्स भी अलग-अलग रखी जाती हैं। दोनों एक दूसरे से सम्भाषण तक नहीं कर सकते। फलस्वरूप दोनों ओर आकर्षण बढ़ता है।

इस प्रकार, पक्ष और विपक्ष के तर्कों पर विचार करने के पश्चात् भारतीय विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि ग्यारह वर्ष तक की छात्रायें छात्रों के साथ अध्ययन कर सकती हैं, क्योंकि तब तक उनमें किशोरावस्था की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न नहीं होती हैं। ग्यारह वर्ष के पश्चात् सत्रह वर्ष तक छात्र-छात्राओं की शिक्षा पृथक्-पृथक् शिक्षा संस्थाओं में होनी चाहिए, क्योंकि इस अवस्था में ही भावनाओं का आवेग अधिक होता है, ज्ञान की मात्रा कम। अठारह वर्ष से छात्र-छात्राओं की शिक्षा पुनः एक साथ हो सकती है, क्योंकि इस अवस्था तक दोनों में ही अपना हित-अहित विचारने की क्षमता आ जाती है। सह शिक्षा और पृथक् शिक्षा के बीच का यह मार्ग आधुनिक विद्वान को मान्य है। इसी मध्य मार्ग का अनुसरण करने से सम्भव है कि हानि कम हो और लाभ अधिक। ❍

२६. आधुनिक शिक्षा–प्रणाली

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली
1. प्रस्तावना।
2. प्राचीन शिक्षा प्रणाली।
3. आधुनिक शिक्षा का श्रीगणेश।
4. आधुनिक शिक्षा के दोष।
5. स्वतन्त्र भारत में कुछ सुधार।
6. उपसंहार।

मनुष्य सुख और शान्ति के लिए जन्म से ही प्रयास करता आया है। अपनी उन्नति के लिए सृष्टि के प्रारम्भ से ही वह प्रयत्नशील है। उसे पूर्ण मानसिक शान्ति शिक्षा द्वारा प्राप्त हुई। शिक्षा के अमोघ प्रभाव से वह चमत्कृत हो उठा। उसकी सामाजिक तथा नैतिक उन्नति हुई, वह आगे बढ़ने लगा। अब उसे स्पष्ट अनुभव होने लगा कि बिना शिक्षा के मानव जीवन पशु के तुल्य है। वास्तव में बिना शिक्षा के मनुष्य को न अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है और न उसकी आन्तरिक और बाह्य शक्तियों का विकास ही होता है। अतः मानव वृत्तियों के विकास तथा आत्मिक शान्ति के लिए शिक्षा परमावश्यक है। शिक्षा से मनुष्य की बुद्धि परिष्कृत और परिमार्जित होती है। उसे सत् और असत् का विवेक होता है। भारतीय शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराना था, जिससे वह अज्ञानान्धकार से निकल कर ज्ञान के प्रकाश में विचरण करता था।

प्राचीन काल में यह शिक्षा नगर के कोलाहल और कलरव से दूर सघन वनों में स्थित महर्षियों के गुरुकुलों और आश्रमों में दी जाती थी। छात्र पूरे पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ तथा गुरु के चरणों की सेवा करता हुआ विधिवत

विद्याध्ययन करता था। इन पवित्र आश्रमों में विद्यार्थी की सर्वाङ्गीण उन्नति पर ध्यान दिया जाता था। उसे अपनी बहुमुखी प्रतिभा के विकास का अवसर मिलता था। विज्ञान, चिकित्सा, नीति, युद्ध कला, वेद तथा शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन करके विद्यार्थी पूर्णरूप से विद्वान् होकर तथा योग्य नागरिक बनकर अपने घर लौटता था। उस समय भारतवर्ष समस्त विश्व को ज्ञान वितरण करता था, विश्व का यह सबसे बड़ा शिक्षा-केन्द्र था। राष्ट्रभाषा देववाणी संस्कृत थी। देश-देशान्तरों से बहुत से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे। तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालय उस समय देश के शिक्षा-केन्द्रों में प्रमुख थे। शनैः शनैः भारत मुसलमानों से पदाक्रान्त हो गया। देश की प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था प्रायः लुप्त सी होती गई। देश की राष्ट्र-भाषा का स्थान उर्दू तथा फारसी ने ग्रहण कर लिया।

प्रत्येक देश के भावी नागरिक विद्यार्थी ही होते हैं। देश की आशा देश के नवयुवकों पर होती है। नवयुवकों की जैसी शिक्षा व्यवस्था होगी, देश का भविष्य भी वैसा ही होगा। प्रत्येक देश का उत्थान उसकी शिक्षा और विद्यार्थियों पर आधारित होता है। देश की उन्नति-अवनति उसकी शिक्षा-प्रणाली पर निर्भर करती है। यदि किसी देश को युगों के लिए दास बनाना हो, तो उस देश का प्राचीन साहित्य और इतिहास नष्ट कर दीजिये और उसकी शिक्षा-प्रणाली को अपने अनुकूल कर दीजिये। अंग्रेजों ने भी अपने शासन को चिरस्थायी बनाने के लिए यही किया। उन्होंने भारतवर्ष की प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था को बिल्कुल समाप्त करके अपनी रीति से शिक्षा देने की व्यवस्था की। सन् १८२८ में लार्ड विलियम बैंटिक ने भारतवर्ष में अनेक सुधार किये, तो शिक्षा का भार लॉर्ड मैकॉले ने अपने ऊपर लिया। उन्हीं दिनों अंग्रेजी को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा घोषित किया गया था। लॉर्ड मैकॉले ने शिक्षा के उद्देश्यों की घोषणा करते हुए कहा था—"मेरा उद्देश्य इस शिक्षा से केवल यही है कि भारत में अधिक से अधिक क्लर्क पैदा हों और भारत बहुत दिनों तक हमारा गुलाम बना रहे।" लॉर्ड मैकॉले के स्वप्नों के आधार पर निर्मित ब्रिटिश शासनकालीन शिक्षा ने केवल क्लर्क और बाबू ही उत्पन्न किये और उनके मस्तिष्कों को इतना संकुचित बना दिया कि वे शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी ही समझने लगे। उस समय की शिक्षा केवल परीक्षामात्र उत्तीर्ण करने तक ही सीमित थी। जीवन की समस्याओं को सुलझाने तथा जीवन को सफल बनाने की क्षमता उस शिक्षा में न थी। व्यावहारिक दृष्टि से हमें कोई लाभ न हुआ।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को मनुष्य बनाना, उसमें आत्मनिर्भरता की भावना भरना, चरित्र-निर्माण करना तथा मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति कराना है। परन्तु वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से इस प्रकार का कोई लाभ नहीं होता है, उसे केवल उदर-पूर्ति का साधन-मात्र कह सकते हैं। श्रद्धा और भावना जैसी कोई वस्तु उसके निकट नहीं होती। आज उसकी दृष्टि में न अपने गुरुजनों का आदर है और न माता-पिता का सम्मान। विद्यार्थी समाज में एक भयानक अराजकता छाई हुई है। यह सब हमारे नैतिक पतन के कारण है। इसीलिए प्रत्येक राज्य में नैतिक शिक्षा विषय का अनेक स्तरों पर पाठ्यक्रम में समावेश किया गया है तथा इसका अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय के रूप में किया जा रहा है।

देश के स्वतन्त्र हो जाने पर हमें ऐसी शिक्षा-पद्धति की आवश्यकता है, जो देश के लिए अच्छे नागरिक, कुशल कार्यकर्त्ता एवं भावी सेनानी उत्पन्न कर सके, जो प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक शक्तियों के विकास में पूर्ण योग दे

सके । इस दिशा में भारतीय सरकार विशेष प्रयत्नशील है । केन्द्रीय शिक्षा की "वयस्क शिक्षा कमेटी" ने एक विशाल योजना बनाई जो तीन वर्ष के अन्दर पचास प्रतिशत शिक्षा का प्रचार कर देना चाहती थी । एक अन्य समिति ने भारत में सेकेण्डरी शिक्षा की योजना का निर्माण किया था । तीसरी समिति ने विश्वविद्यालय के माध्यम की समस्या को सुलझाया । १९४८ में बी० जी० खेर की अध्यक्षता में बेसिक शिक्षा समिति का निर्माण हुआ, जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारत में बेसिक शिक्षा का व्यापक प्रचार करना था । इस योजना के व्यय का भार ७०% प्रत्येक राज्य सरकार को वहन करना था और ३०% संघीय सरकार को । १९४८-४९ में देहली राज्य में पंचवर्षीय बेसिक योजना का कार्य प्रारम्भ हुआ । इस योजना के अन्तर्गत १५० नये प्रारम्भिक विद्यालय खुले । प्रत्येक मील की सीमा में एक प्राइमरी स्कूल बनाने की योजना इसके द्वारा पूरी की गई । सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में नौ व्यक्तियों का एक विश्वविद्यालय कमीशन निर्मित हुआ था, जिसने वर्तमान विश्वविद्यालय शिक्षा पद्धति में सुधार किया । मनोविज्ञान एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों के विकास में योग देने के लिये एक अन्य समिति बनाई गई थी । शारीरिक शिक्षा के पूर्ण विकास के लिये एक संघीय प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना हुई । सन् १९६० ई० में केन्द्रीय सरकार की ओर से संचालित "नेशनल फिजीकल टेस्ट" की समस्त भारत में प्रतियोगितायें हुई थीं । राष्ट्रीय बृहत् पुस्तकालय की स्थापना के लिए भी समिति का निर्माण हुआ । औद्योगिक शिक्षा को भारतीय सरकार पूर्ण रूप से प्रश्रय दे रही है । नवीन-नवीन औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र प्रत्येक नगर में खोले जा रहे हैं । यह औद्योगिक शिक्षा स्त्री और पुरुषों को भिन्न-भिन्न संस्थाओं में दी जाती है । परिगणित एवं पिछड़ी हुई जातियों की शिक्षा-दीक्षा के लिये भारत सरकार अनेक छात्रवृत्तियाँ दे रही है । उन्हें सब प्रकार से प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे वे भी अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकें । पुरातत्व विभाग की भी स्थापना की गई है, जो इसके द्वारा अपनी भारत की प्राचीन वस्तुओं की खोज एवं संरक्षण में व्यस्त है । प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता की गौरवपूर्ण खोज की जा रही है । अखिल भारतीय शिक्षा समिति की सिफारिश से ६ वर्ष से ११ वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया है ।

उत्तर प्रदेश सरकार ने बालकों के लिये कक्षा ७ तक निःशुल्क शिक्षा कर दी है । १९६५ से समस्त उत्तर प्रदेश में कन्याओं के लिये निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया है । प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था की जा रही है । केन्द्रीय सरकार की आर्थिक सहायता से उत्तर प्रदेश सरकार ने १९६० में ४८ नार्मल स्कूल खोले जिनमें अध्यापकों को समुचित प्रशिक्षण दिया जा रहा है । प्रौढ़ों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया है, उनके लिये पुस्तकालय तथा वाचनालय स्थापित किये गये हैं । रेडियो, फिल्म प्रदर्शन एवम् अन्य उपायों से सुदूर ग्रामों में शिक्षा का प्रचार हो रहा है । शिक्षा के विकास को तेज करने और उसकी गतिविधियों में सफल परिवर्तन लाने के लिये सन् १९७३ में उत्तर प्रदेश में शिक्षा निदेशालय को तीन भागों में बाँटकर तीन शिक्षा निदेशक बना दिये हैं । एक उच्च शिक्षा के लिये, दूसरे माध्यमिक शिक्षा के लिये और तीसरे बेसिक शिक्षा के लिये । विज्ञान की प्रगति देखने के लिये विज्ञान प्रगति अधिकारी और प्रारम्भिक शिक्षा की देख-रेख के लिये बेसिक शिक्षाधिकारी नियुक्त किये गये हैं ।

सारांश यह है कि मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिये ऐसी शिक्षा की आव-

श्यकता है, जिससे मनुष्य का हृदय और बुद्धि दोनों समान रूप से विकसित होकर मानव की कल्याणमयी वृत्तियों का विकास कर सकें। इन्हीं कल्याणमयी वृत्तियों के विकास की ओर संकेत करते हुये ५ सितम्बर १९७१ को अध्यापक दिवस के उपलक्ष में प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने सन्देश में कहा था कि अध्यापकों को विद्यार्थियों के लिये ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे वे हिंसा और साम्प्रदायिकता की भावना से दूर रहें।

आज का प्रबुद्ध छात्र वर्ग इस घिसी-पिटी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन के लिये स्वयं जाग उठा है, वह चाहता है कि उसे बेरोजगारी का शिकार न बनना पड़े। वह चाहता है कि उसकी शिक्षा व्यावहारिक और रचनात्मक हो। शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति लाने के लिये उसे नई रचनात्मक शिक्षा देने के लिये स्वर्गीय श्री जयप्रकाश नारायण ने छात्र समुदाय को एक स्नेह सूत्र में संगठित होने का आव्हान करते हुए १७ फरवरी १९७९ को पटना (बिहार) में छात्रों के एक विशाल समारोह में छात्र मशाल ज्योति प्रज्ज्वलित की जो सारे देश में घूमती हुई ६ मार्च १९७९ को राजघाट नई दिल्ली में महात्मा गांधी की समाधि पर पहुँची। राष्ट्रपिता की समाधि पर फूल चढ़ाकर शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये निरन्तर प्रयास करने का संकल्प लिया। बाद में लाखों छात्र "बरबाद किया जिसने भारत को उस शिक्षा को खत्म करो" "छात्र उठे हैं फिर ललकार शिक्षा बदले यह सरकार" आदि नारे लगाते हुए दस लाख छात्रों के हस्ताक्षरों से युक्त एक याचिका संसद के दोनों सदनों को दी गई जिसमें शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन की माँग की गई थी।

छात्रों द्वारा प्रारम्भ किये गये उस अभियान की सफलता की कामना करते हुए लोकनायक ने अपने सन्देश में कहा कि "देश का राजनैतिक चेहरा तो बदल गया है परन्तु छात्र समस्या वैसी ही है। उनके मन में असन्तोष की जो चिनगारियाँ विद्यमान हैं वे अब प्रगट हो रही हैं। यदि इस असन्तोष को रचनात्मक दिशा न दी गई तो अराजकता पैदा होगी और देश का भविष्य अस्थिर हो जायेगा। इसी सन्दर्भ में शैक्षिक क्रान्ति की ज्योति जलाकर छात्र-मानस को स्वस्थ दिशा में मोड़ने का प्रयास किया गया है। शैक्षिक क्रान्ति सम्पूर्ण क्रान्ति का एक अंग है।"

भारत के प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी १९८६–८७ के सत्र से भारत में नई शिक्षा नीति लागू करने के लिये प्रयत्नशील ही नहीं अपितु दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। १९८५-८६ का पूरा सत्र इस नई शिक्षा-नीति के सन्दर्भ में विद्वानों के विचार-मन्थन में बीता है। जनपद स्तर से लेकर प्रान्तीय एवं अखिल भारतीय स्तर तक नई शिक्षा-नीति पर गोष्ठियाँ आयोजित की गई हैं। निष्कर्ष निकले हैं। भारत सरकार को प्रत्येक प्रदेश ने अपनी-अपनी संस्तुतियाँ भेजी हैं। आशा है परिणाम अच्छे ही होंगे।

३०. स्वावलम्बन अथवा आत्मनिर्भरता

अथवा

"स्वावलम्बन की एक झलक पर न्योछावर कुबेर का कोष"

"पारतन्त्र्यं महद्दुःखम् स्वातन्त्र्यं परमं सुखम् ।"

मानव जीवन में परतन्त्रता सबसे बड़ा दुःख है और स्वतन्त्रता सबसे बड़ा सुख है। स्वावलम्बी मनुष्य कभी परतन्त्र नहीं होता, वह सदैव स्वतन्त्र रहता है। दासता की शृंखलाओं से मुक्त आत्मनिर्भर मनुष्य कभी दूसरों का मुँह देखने वाला नहीं बनता। वह कठिन से कठिन कार्य को स्वयं करने की क्षमता रखता है। परमुखापेक्षी व्यक्ति न स्वयं उन्नति कर सकता है और न अपने देश और समाज का कल्याण कर सकता है। स्वावलम्बन वह दैवी गुण है, जिससे मनुष्य और पशु में भेद मालूम पड़ता है। पशु का जीवन, उसका रहन-सहन, उसका भोजन सभी कुछ उसके स्वामी पर आधारित रहता है, परन्तु मनुष्य जीवन स्वावलम्बनपूर्ण जीवन है, वह पराश्रित नहीं रहता। अपने सुखमय जीवनयापन के लिये वह स्वयं सामग्री जुटाता है, सम्यक् प्रयास करता है। बात-बात में वह दूसरों का सहारा नहीं ढूंढता, वह दूसरों का अनुगमन नहीं करता, अपितु दूसरे ही उसके आदर्शों पर चलकर अपना जीवन सफल बनाते हैं। जिस देश के नागरिक स्वावलम्बी होते हैं, उस देश में कभी भुखमरी, बेरोजगारी और निर्धनता नहीं होती, वह उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है। कौन जानता था कि जापान में इतना भयानक नरसंहार और आर्थिक क्षति होने के बाद भी वह कुछ ही वर्षों में फिर हरा-भरा हो जायेगा और फलने-फूलने लगेगा। परन्तु वहाँ की स्वावलम्बी जनता ने यह सिद्ध कर दिया कि सफलता और समृद्धि परिश्रमी और स्वावलम्बी व्यक्ति के चरण चूमा करती है। एक जापानी तत्व ज्ञानी का कथन है कि "हमारी दस करोड़ उँगलियाँ सारे काम करती हैं, इन ही उँगलियों के बल से सम्भव है, हम जगत को जीत लें।" स्वावलम्बन के अमूल्य महत्व को स्वीकार करते हुये उसके समक्ष कुबेर के कोष को भी विद्वान तुच्छ बना देते हैं—

> **स्वावलम्बन**
>
> १ प्रस्तावना—स्वावलम्बन का महत्व।
> २ स्वावलम्बन से लाभ—
> (क) उन्नति, (ख) सुख और शांति, (ग) यश, (घ) आत्म-शुद्धि।
> ३ स्वावलम्बन से देश और समाज का कल्याण।
> ४ कुछ आदर्श उदाहरण।
> ५ उपसंहार।

"स्वावलम्बन की एक झलक पर न्योछावर कुबेर का कोष।"

स्वावलम्बन से मनुष्य की उन्नति होती है और जीवन की सफलतायें उस वीर का ही वरण करती हैं, जो स्वयं पृथ्वी खोदकर, पानी निकालकर, अपनी तृष्णा शांत करने की क्षमता रखता है। कायर, भीरु, निरुद्योगी, अनुत्साही, अकर्मण्य और आलसी

व्यक्ति स्वयं अपने हाथ पैर न हिलाकर दैव और ईश्वर को, भाग्य और विधाता को जीवन भर दोष दिया करते हैं और रोना-झींकना ही उनका स्वभाव बन जाता है। पग-पग पर उन्हें भयानक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, असफलताएँ और अभाव उनके जीवन को जर्जर बना देते हैं। इस प्रकार उनका जीवन भार बन जाता है। उस भार को वहन करने की क्षमता उन अकर्मण्य और अनुद्योगी व्यक्तियों के अशक्त कन्धों में नहीं होती। तुलसीदास जी ने लिखा है कि—

"दैव दैव आलसी पुकारा।"

जो व्यक्ति आलसी होते हैं, जिनमें स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता नहीं होती वे ही 'दैव-दैव' की रट लगाकर अपने दुश्चरित्रपूर्ण दोषों को छिपाया करते हैं और फिर—

"ते दरन दुख पावहिं, सिर धुनि-धुनि पछिताहिं।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाहिं॥"

ऐसे ही व्यक्ति समय को, कर्मों को और ईश्वर को झूठा दोष दिया करते हैं। वे भूल जाते हैं कि ईश्वर उन्हीं का सहायक बनता है, जो अपनी सहायता स्वयं कर लिया करते हैं। अंग्रेजी की कहावत है "God helps those who help themselves." स्वावलम्बन से मनुष्य के हृदय में मानसिक स्वतन्त्रता और आत्मनिर्भरता की भावनाओं का उदय होता है, जिसके द्वारा वह उन्नति के पथ पर उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। ऐसा कौन-सा कार्य है, जिसे स्वावलम्बी प्राप्त न कर सकता हो, ऐसा कौन-सा लक्ष्य है, जिसे स्वावलम्बी प्राप्त न कर सकता हो, ऐसा कौन-सा मनोरथ है जो स्वावलम्बी के मन में ही रह जाता हो, अर्थात् कोई नहीं।

स्वावलम्बन से मनुष्य को सुख प्राप्त होता है। एक विद्वान् ने लिखा है कि "सच्चा आनन्द तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जावे तो फिर स्वर्ग की प्राप्ति की भी इच्छा नहीं।" अपने हाथों से किये हुये श्रम से मनुष्य को जब सफलता के दर्शन होते हैं, तो वह फूला नहीं समाता, हृदय का कण-कण मुस्कराने लगता है, उसका उस समय का आनन्द अवर्णनीय होता है। खून और पसीना एक करने के बाद जब मजदूर शाम को सूखी रोटियों को खाने लगता है, उनमें भी उसे अनेक स्वादिष्ट पदार्थों का आनन्द आने लगता है, क्योंकि वे रोटियाँ उसे कठोर परिश्रम के फल से प्राप्त हो रही हैं। स्वावलम्बी को सफलता मिले या असफलता, परन्तु उसे इतना तो आत्म-सन्तोष रहता है कि उसने जी तोड़कर परिश्रम किया, उसने किसी का मुँह नहीं ताका, वह किसी के सामने गिड़गिड़ाया नहीं, उसने किसी के सामने हाथ नहीं फैलाये, बस इतना भर सन्तोष उसे हर्ष के पारावार में डुबा देता है, क्योंकि सन्तोष ही मानव जीवन की अमूल्य निधि है—

"सन्तोष एवं पुरुषस्य परं निधानम्"

× × ×

"गजधन, गोधन, बाजिधन, और रतन धन खान,
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।"

जहाँ सन्तोष होता है वहाँ पूर्ण शान्ति होती है। अशांत व्यक्ति को कभी स्वप्न में भी सुख नहीं होता। वह सदा वैषम्य और नैराश्य की अग्नि में जला करता है; जहाँ स्वावलम्बन है वहाँ सन्तोष है, जहाँ सन्तोष है वहाँ शांति है, और जहाँ शांति है वहाँ सुख है क्योंकि—

"अशान्तस्य कुतः सुखम् ?"

अर्थात् अशांत को सुख कहाँ ? यदि मानव वास्तविक अर्थ में सुख और शांति

प्राप्त करना चाहता है, तो उसे स्वावलम्बन का आश्रय लेना होगा। निस्सन्देह अपने हाथ से पकाई हुई रोटियों में पूड़ियों की अपेक्षा अधिक आनन्द आता है, चाहे वे रूखी सूखी ही क्यों न हों।

स्वावलम्बन से मनुष्य को उज्ज्वल यश प्राप्त होता है। जिसने जीवन के कांटों को न गिनते हुए अपने कठोर परिश्रम द्वारा अपने क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है, समाज उसकी प्रशंसा करता है, उसका आदर करता है। जिस निर्धन व्यक्ति ने अपने बाल्यकाल से भूखे और नंगे रहकर धन एकत्रित किया है और अपने रहने के लिये एक सुन्दर मकान बनवाया हो, पड़ोसी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। अपने अनवरत परिश्रम से विद्या प्राप्त करके विद्वान् बनने वाले किसी निर्धन परिवार के बालक की भी प्रशंसा होती है। दस रुपये से अपना व्यापार प्रारम्भ करके उसे लाखों रुपयों तक ले जाने वाले व्यापारी भी भूरि-भूरि प्रशंसा के पात्र हुआ करते हैं। शिवाजी, प्रताप, तुलसी और कालिदास की यश-चन्द्रिका आज भी भारत के अन्धकारपूर्ण युग को शुभ्र व शुभ्र प्रकाश प्रदान करती हुई स्वावलम्बन का महत्त्व-गान कर रही है। स्वावलम्बन से मनुष्य मृत्यु के पश्चात् भी अपने यश रूपी शरीर से जीवित रहकर अपने देश की सन्तानों का पथ-प्रदर्शन करता है। इस दृष्टि से स्वावलम्बी न केवल एक स्वार्थसाधक है, अपितु समाज का एक पथ-प्रदर्शक भी है।

आत्म-सत्कार के लिए स्वावलम्बन परम आवश्यक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जो युवा पुरुष सब बातों में दूसरों का सहारा चाहते हैं, जो सदा एक न एक नया अगुआ ढूँढा करते हैं और उनके अनुयायी बना करते हैं, वे आत्म-सत्कार के मार्ग में उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें स्वयं विचार करना, अपनी सम्मति आप स्थिर करना, दूसरों की उचित बातों का मूल्य समझते हुए भी उनका अन्धभक्त न होना सीखना चाहिये।" स्वावलम्बन से मनुष्य की आत्मा पवित्र होती है, उसका मन दिव्य लोकान्तर में विचरण करता है। परिश्रमी व्यक्ति के पास दूषित और कलुषित भावनायें नहीं आने पातीं। स्वावलम्बन से आत्म-दमन, अध्यवसाय, धीरता, सन्तोष आदि गुणों का आविर्भाव होता है, जिससे मनुष्य की आत्मा का अज्ञान-आवरण दूर हो जाता है, जिससे मनुष्य शुद्ध बुद्ध होकर अपना और अपने देश का कल्याण कर सकता है।

स्वावलम्बी व्यक्ति अपना ही स्वार्थ साधन नहीं करता, वह अपने देश और अपने समाज का कल्याण भी करता है। अपने कठोर परिश्रम के द्वारा ही वह नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों को जन्म देता है। अपनी कठोर साधनाओं के परिणामस्वरूप राजनीति में नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है और नया मार्ग उपस्थित कर देता है। अपनी अनवरत तपस्या के परिणामस्वरूप ही एक विद्वान्, नवीन साहित्य का सृजन करता है जो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की कसौटी पर खरा उतरता हुआ जनता और देश का कल्याण करता है। अपने श्रम से ही एक साधारण व्यक्ति एक महान् व्यक्ति बन जाता है। क्या आप समझते हैं कि इनके मस्तिष्क के ये नवीन उद्भावनायें और कृतियाँ केवल उनके लिए होती हैं? नहीं, वे देश और समाज के उत्थान, अभ्युदय और समृद्धि के लिये होती हैं। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों, साहित्यिकों, व्यापारियों और ... के ... स्वावलम्बन ने ही उन्हें जन्म दिया और उसी ने उन्हें ...
के लिए अपने जीवन के ...
देश और समाज का कल्याण

स्वावलम्बन से मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है इसका साक्षी इतिहास है। इसी भावना के फलस्वरूप शिवाजी ने थोड़े से वीर मरहठे सिपाहियों को लेकर औरंगजेब की बड़ी भारी सेना पर छापा मारकर उसे तितर-बितर कर दिया था। इसी भावना के फलस्वरूप एकलव्य बिना किसी गुरु या संगी साथी के जंगल में निशाने पर तीर चलाता रहा और अन्त मे एक बड़ा धनुर्धारी हुआ। इसी भावना के फलस्वरूप वीर पुरुष यह गर्जना किया करते हैं कि "मैं राह ढूंढूंगा या राह निकालूंगा" इसी भावना के आधार पर कोलम्बस अमेरिका के समान एक महान् द्वीप खोजने में समर्थ हुआ था। स्वावलम्बन के कारण ही कालिदास जैसा बज्र मूर्ख, जोकि जिस शाखा पर बैठा था उसी को काट रहा था, आज महाकवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध है। स्वावलम्बन और मानसिक स्वतन्त्रता के आधार पर ही गोस्वामी तुलसीदास को इतनी कीर्ति और लोकप्रियता प्राप्त हुई, उनका दीर्घ जीवन इतना महत्वमय और शान्तिमय रहा है। इसके विपरीत गोस्वामी जी के ही समकालीन आचार्य केशवदास को इतना मान नही मिल सका, न ख्याति क्योकि वे जीवन भर विलासी राजाओं के हाथ की कठपुतली बने रहे। नैपोलियन एक साधारण स्थिति का व्यक्ति था, परन्तु स्वावलम्बन ने उसे एक महान् विजयी बना दिया। रैमजे मैक्डानल्ड एक साधारण मजदूर से इंग्लैंड का प्रधानमन्त्री हुआ, यह सब स्वावलम्बन और अथक परिश्रम का ही फल है।

आज हम अपनी सहायता स्वयं नहीं कर पा रहे, दूसरो के सामने हाथ फैलाना पड़ रहा है, इसलिये देश पर संकट के मेघ छाये हुए हैं। स्वावलम्बन के अभाव के कारण ही देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ी, सामाजिक स्थिति पर कुठाराघात हुआ, राजनीतिक स्थिति पर वज्रपात हुआ। यदि आज हमने हाथ पैर हिलाने प्रारम्भ न किये, तो जो कुछ मिला है वह भी जाता रहेगा और देश का ऐसा पतन होगा कि शताब्दियों तक उद्धार नहीं हो सकेगा। आज आवश्यकता है कि देशवासी स्वावलम्बी बनें, कठोर परिश्रम करें, जिससे देश की आर्थिक स्थिति मे सुधार हो, बात-बात में दूसरों के मुंह की ओर देखना अच्छा नहीं होता। स्वावलम्बन से ही देश और समाज का उत्थान सम्भव है अन्यथा नही।

३१. ब्रह्मचर्य

विद्वानों को कहते सुना गया है कि मृत्यु तिथि, समय, वार सब विधाता के यहाँ पूर्व निश्चित होता है। उसमें न रत्ती भर समय घट सकता है और न तिल भर बढ़ सकता है। एक वैज्ञानिक अंग्रेज ने भी प्राण वायु को अपने वश में करने के लिये एक मरणासन्न व्यक्ति को शीशे के एक छोटे से बक्से मे बन्द कर दिया था और चारों ओर वैज्ञानिक यन्त्र लगा दिये गये थे, ताकि जैसे ही इसकी मृत्यु होगी प्राण वायु को पकड़ लिया जाएगा तथा उसकी प्राण वायु को फिर इसी मनुष्य के शरीर में डालकर जीवित कर दिया जाएगा, परन्तु जब मृत्यु आई तब समस्त वैज्ञानिक यन्त्र एक तरफ रखे रह गए, शीशा एकदम चटका और प्राण उड़ गये। दूसरी ओर हमने यह भी सुना है कि हमारे प्रतापी पूर्वजों को इच्छा-मृत्यु प्राप्त थी, अर्थात् वे जब तक चाहे जीवित रहें या मर जायें। यह भी सुना जाता है और बड़े-बड़े ग्रन्थों में पढ़ा भी है कि देवताओं ने मृत्यु को भी जीत लिया था। ऋषियों और मुनियों की आयु हजार-हजार वर्ष की होती थी। आज भी हिमालय की कन्दराओं में ऐसे महात्मा छिपे हुए पड़े हैं जिनकी आयु दो सौ और चार सौ वर्ष की है। फिर भी क्या कारण है कि एक मनुष्य अल्पायु

और दूसरा मनुष्य दीर्घायु होता है। हमारे पूर्वजों को इच्छा-मृत्यु क्यों प्राप्त हुई? वही शक्ति हमें क्यों नहीं प्राप्त हुई? यह प्रश्न साधारण रूप से हमारे मन और मस्तिष्क को कभी-कभी विचार सागर में निमग्न कर देता है। विचार आते हैं, तब उस समुद्र में से हमारे हाथ में एक ही रत्न आ पाता है। वह रत्न है ब्रह्मचर्य, जो सबसे बड़ा तप और सबसे बड़ा यश है। यही संजीवनी बूटी है, जिसे खाकर हमारे देवता अमर कहलाने लगे, जिसे पाकर हमारे पूर्वज अद्वितीय प्रतापी, सम्पन्न और वीराग्रणी कहे जाते थे। वे इसी के प्रताप से दीर्घजीवी होते थे और इसी के अभाव में हम अल्पायु और शक्तिहीन होते हैं। आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले भीष्म पितामह ने मृत्यु के क्षण निकट आ जाने पर भी यह कह दिया था कि हम अभी प्राण-त्याग नहीं करना चाहते, क्योंकि अभी सूर्य दक्षिणायन है, जब सूर्य उत्तरायण होंगे तब हम अपने प्राणों को छोड़ेंगे। यही वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। किसी विद्वान ने लिखा है—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।"

ब्रह्मचर्य भावी जीवन की आधारशिला है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है, संयम, नियम एवं सदाचारपूर्वक शान्त-बुद्धि से वीर्य को धारण करना और उसकी रक्षा करना। इसकी पूर्ण रक्षा और परिपक्वता के लिये ही ब्रह्मचर्याश्रम बनाया गया था। ऋषियों ने मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों में विभाजित किया था। इन चारों आश्रमों में ब्रह्मचर्य आश्रम का स्थान प्रथम है क्योंकि आगे के तीनों आश्रम इसी की पुष्टता और परिपक्वता पर आधारित हैं। जिस व्यक्ति की २५ वर्ष तक की अवस्था पूर्ण संयम और सदाचारपूर्वक व्यतीत होती है और वह अपने वीर्य की पूर्ण रूप से रक्षा करता है, उसका भावी जीवन अत्यन्त सुखपूर्वक व्यतीत होता है, वह जीवन भर शक्तिशाली और प्रतापी बना रहता है। बीमारी, उदासी, अधीरता, हीनता आदि दोष कभी उसके पास नहीं आते, वह बुद्धिमान और बलवान होता है, जिस प्रकार एक भवन की दृढ़ता, मजबूती, परिपक्वता, चिरस्थायित्व उसकी नींव पर आधारित होती है, यदि नींव कमजोर है या खोखली है, तो उस पर बनाया हुआ मकान एक न एक दिन शीघ्र ही पृथ्वी पर गिर पड़ेगा, उसमें आँधी और तूफान के थपेड़ों को सहन करने की शक्ति कहाँ? उसी प्रकार जीवन रूपी भवन की आधारशिला अर्थात् नींव ब्रह्मचर्य है। वैसे ब्रह्मचर्य केवल ब्रह्मचर्याश्रम के लिये ही हो, ऐसी भी बात नहीं है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना सभी आश्रमवासियों के लिये आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य

१ प्रस्तावना—ब्रह्मचर्य का महत्व।
२ भावी जीवन की आधारशिला।
३ ब्रह्मचर्य से लाभ—
  (क) मानसिक उल्लास।
  (ख) बुद्धि की तीव्रता।
  (ग) शारीरिक पुष्टता।
  (घ) सौन्दर्य वृद्धि।
  (ङ) मानसिक एवं आत्मिक विकास।
  (च) सहनशीलता।
  (छ) वीरता एवं धीरता।
  (ज) आत्मनिर्भरता।
४ आदर्श ब्रह्मचारियों के उदाहरण।
५ उपसंहार।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से मनुष्य को अगणित लाभ हैं। ब्रह्मचर्य के अभाव में तो जीवन ही नहीं रह जाता, वह केवल एक खोखला अस्थि-पंजर मात्र होता है। ब्रह्मचर्य में सदैव मानसिक उल्लास बना रहता है। वह प्रत्येक कार्य बड़े उत्साह और चाव से करता है। असफलता में भी उसके मुख की

मुस्कराहट बनी रहती है, विपत्तियों में भी कभी अधीर नहीं होता, जीवन के प्रत्येक संघर्ष के लिये वह उत्सुक रहता है। निराशा के क्षणों में भी उसे आशा की किरण दिखाई पड़ती है। मानसिक उल्लास के अभाव में जीवन मृत्यु में बदल जाता है, जिसमें उल्लास नहीं, वह संसार का कोई भी काम नहीं कर सकता। मनुष्य का मानसिक उल्लास ब्रह्मचर्य पर आधारित रहता है। जो लोग दुराचारी हैं, वह जीवन भर दुःखी, उदास, चिड़चिड़े, रुग्ण और पराश्रित बने रहते हैं। वे किसी काम में अगुआ नहीं बन सकते। उनमें न शारीरिक शक्ति होती है न मानसिक, फिर उल्लास कहाँ से आवे।

ब्रह्मचारी की बुद्धि सदैव तीव्र होती है। वह कठिन से कठिन समस्या का तुरन्त समाधान कर लेता है। उसमें आत्मनिर्णय की क्षमता होती है। उसे अपने पर विश्वास होता है, वह दूसरों का मुँह नहीं ताकता। अपनी बुद्धि के बल पर वह नये-नये आविष्कार करता है। अपनी बुद्धि के सहारे से वह कंटकाकीर्ण मार्गों को भी सरल बना लेता है। जो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, वे कक्षा में सदैव प्रथम आते हैं, सरस्वती उनसे स्नेह करती है। उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार के पारितोषिक प्राप्त होते हैं, छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं, और सदैव श्रेष्ठ छात्रों में उनकी गणना होती है। उनका मुखमण्डल सदैव सूर्य की भाँति चमकता रहता है। एक बार बताई हुई बात उनकी तुरन्त समझ में आ जाती है, जबकि दूसरे विद्यार्थी बार-बार बताने पर भी नहीं समझ पाते। पढ़ने के साथ-साथ वह खेलने में भी अग्रणी होता है। इसके विपरीत जो प्रारम्भ से ही कुसंगति में पड़ जाते हैं, वे पढ़ने-लिखने में कभी आगे नहीं आ पाते। उनका मुख पीला पड़ा रहता है, आँखें गड्ढे में धँसी रहती हैं; अध्यापक के पढ़ाने के समय वे कक्षा में सोया करते हैं, आगे की पंक्ति में बैठने से उन्हें भय लगता है, वे सदैव पीछे बैठते हैं, वे हमेशा बीमार और अस्वस्थ बने रहते हैं, पढ़ने-लिखने, खेलने-कूदने, किसी काम में भी उनका मन नहीं लगता।

ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर पुष्ट होता है। स्वास्थ्य मानव जीवन की सफलता की कुञ्जी है। स्वस्थ मनुष्य के लिए संसार में कोई भी वस्तु असम्भव नहीं होती। शरीर का पुष्ट होना जीवन का सबसे बड़ा सुख है। जहाँ जीवन के छः मुख्य सुख गिनाये गये हैं, वहाँ स्वास्थ्य का स्थान प्रथम है—

"आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः" आदि

संसार के समस्त धर्म, कर्म, और शरीर की पुष्टता स्वास्थ्य पर आधारित हैं। यदि आपका शरीर हृष्ट-पुष्ट है, तो आप जीवन के संघर्षों में भी सफल हो सकते हैं और परलोक भी सुधार सकते हैं। यदि शरीर पुष्ट नहीं है, तो आपका अपना जीवन भी भार मालूम पड़ने लगेगा और आप मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगेंगे। इसीलिए कहा गया है कि—'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' अर्थात् धर्म के साधनों में शरीर का नम्बर पहला है। शारीरिक पुष्टता ब्रह्मचर्य पर आधारित है। आप जितनी अपने वीर्य की रक्षा करेंगे उतना ही आपका शरीर पुष्ट और निरोग होगा। शारीरिक शक्ति के साथ-साथ ब्रह्मचारी को शान्ति भी प्राप्त होती है और कान्ति भी। स्वस्थ और पुष्ट शरीर का व्यक्ति कभी चिड़चिड़ा या क्रोधी नहीं होगा, उसके जीवन में सदैव शान्ति रहेगी और मुख पर कान्ति।

आज सौन्दर्य की वृद्धि के लिए मनुष्य न जाने कितने प्रसाधन उपयोग में लाता है : क्या पुरुष और क्या स्त्री, अपने-अपने सूखे कपोलों पर क्रीम और स्नो रगड़ते-रगड़ते हाथों में छाले डाल लेते हैं, भले ही आँखों के गड्ढों में कीचड़ भर रही

हो। होठों की प्राकृतिक लालिमा को तो दुराचार छीन ले गया, अब मान या लिप-स्टिकों से होंठ लाल करने पड़ते हैं। परन्तु मनुष्य भूल जाता है कि सौन्दर्य का वास्तविक प्रसाधन तो हर समय उसके पास ही है, इसके लिए उसे बाजार जाने की आवश्यकता नहीं है। सौन्दर्य स्वास्थ्य से मिलता है और स्वास्थ्य ब्रह्मचर्य से। आपने देखा होगा कि कितना ही बदशक्ल या भोंडा व्यक्ति क्यों न हो यदि वह स्वस्थ है तो सुन्दर प्रतीत होने लगता है। जब तक स्वास्थ्य है सौन्दर्य भी तभी तक बना रहता है। जिस बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा होता है, वह सुन्दर लगता है। हम पूछते हैं, बुढ़ापे में सौन्दर्य कहाँ चला जाता है। उत्तर है स्वास्थ्य के साथ। चूँकि वृद्धावस्था में स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है इसीलिए सुन्दरता भी नहीं रहती। ध्यान रखिये कि जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, उन पर जवानी में ही मक्खियाँ भिनकने लगती हैं। हाथ, पैर, आँख, नाक साथ नहीं देते। शरीर भिन्न-भिन्न प्रकार की बीमारियों का घर बन जाता है और अन्त में चिता की शरण में जाना पड़ता है।

ब्रह्मचर्य से मनुष्य की मानसिक शक्ति का विकास होता है। उसकी बुद्धि में प्रखरता और शुद्धता आती है। ब्रह्मचर्य से विचार एवं मनन करने की शक्ति आती है, मस्तिष्क जल्दी ही थकान अनुभव नहीं करता। मनुष्य की स्मरण-शक्ति में वृद्धि होती है, निर्भीकता और साहस आदि गुणों में वृद्धि होती है। मानसिक विकास के साथ-साथ मनुष्य का आत्मिक उत्थान भी होता है। मनुष्य अपनी शुद्ध बुद्धि से ऐसे कार्य करता है, जिनसे उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है। आत्म-सत्कार के कार्य में सज्जन व्यक्ति अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। आध्यात्मिक विकास के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना परमावश्यक है। दुराचारी और कुकर्मी की तो इस ओर आने की प्रवृत्ति ही नहीं होती। विद्वानों ने ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ तप कहा है —

"न तपस्तपमित्याहुः ब्रह्मचर्यं तपोत्तमः।"

ब्रह्मचारी का स्वभाव शान्त होता है। प्रायः देखा जाता है कि जो शारीरिक दृष्टि से अशक्त होते हैं, उन्हें गुस्सा जल्दी आ जाता है। वे दूसरों की बात भी सहन नहीं कर पाते। घर और बाहर हर जगह लड़ाई-झगड़े किया करते हैं। जो व्यक्ति शक्ति-सम्पन्न होता है, वह क्षमाशील होता है, वह बड़े से बड़े विरोध को भी हँसकर टाल देता है उसमें सहनशीलता अधिक होती है। आपने देखा होगा कि चूल्हे पर हल्का बर्तन जल्दी गर्म हो जाता है और भारी पतीली देर से गर्म होती है। यही हाल बलवान् का है। बल आता है, ब्रह्मचर्य से।

ब्रह्मचारी वीर भी होता है और धीर भी। युद्ध क्षेत्र में शत्रु के सामने लड़ने वाला वीर कोई ब्रह्मचारी होगा, दुराचारी या कुमार्गगामी की क्या शक्ति, जो युद्ध-क्षेत्र में चला भी जाये। निःसन्देह शत्रुओं के दांत खट्टे करने वाले वीर धीरों की पूर्ण रूप से रक्षा करते हैं। अखाड़े में दूसरे पहलवान को पछाड़ने की इच्छा से उतरने वाला पहलवान जानता है कि ब्रह्मचर्य की कीमत क्या है ? ब्रह्मचारी में वीरता के साथ धैर्य भी होता है। वह संकट के समय कभी शत्रु को पीठ दिखाकर नहीं भागता। वह विपत्ति में कभी हताश नहीं होता। वह निराशा के वातावरण में भी आशावान रहता है।

ब्रह्मचर्य से मनुष्य में आत्मनिर्भरता आती है। वह स्वावलम्बी बन जाता है। वह अपने बाहुबल और बुद्धिबल से ही अपना मार्ग ढूँढ निकालता है। दूसरों का मुँह ताकने या उनके बताये हुए इशारे पर चलने में वह अपना अपमान समझता है।

बड़े-बड़े भयानक विघ्न भी उसके मार्ग में रोड़ा उपस्थित नहीं कर सकते। वह कभी दूसरों के समक्ष हाथ नहीं फैलाता। आलस्य, अकर्मण्यता, निरुद्योगिता उसके पास नहीं आती, वह पुरुषसिंह अपने श्रमपूर्ण उद्योग से अपना जीविकोपार्जन करता है। वास्तव में शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति ही आत्म-निर्भर हो सकता है। शक्ति-सम्पन्नता के लिए ब्रह्मचर्य पालन अत्यन्त आवश्यक है।

भीष्म पितामह को कौन नहीं जानता, जिन्होंने अपने पिता की इच्छा-पूर्ति के लिये आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था। इसी व्रत के प्रभाव से उन्हें इच्छा-मृत्यु प्राप्त हुई थी, इसी व्रत के प्रभाव से वे महाभारत के समय अजेय सिद्ध हुए थे। बड़े से बड़ा योद्धा जब उनके सामने सफल नहीं हुआ, तब श्रीकृष्ण स्वयम् उनकी मृत्यु का उपाय पूछने के लिए गये थे। पवन-पुत्र हनुमान में ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही इतनी शक्ति थी कि समय पड़ने पर द्रोणाचल पर्वत को उखाड़ चले आये थे और सीता की खोज करने के लिये समुद्र को भी लाँघ गए थे। ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही छत्रपति शिवाजी ने थोड़े से मरहठे सिपाहियों के सहयोग से औरंगजेब के छक्के छुड़ा दिये थे। यह सब ब्रह्मचर्य की अदम्य शक्ति थी।

आज हमारे देश को शक्तिशाली बनने की आवश्यकता है। देश की रक्षा के लिये शक्तिशाली नवयुवक चाहिएँ, शक्तिशाली किसान और मजदूर चाहिएँ, शक्तिशाली सैनिक चाहिएँ। अब देखिए देश के नवयुवकों की ओर—शक्ति और स्वास्थ्य उनके पास आने से पहले ही जाने कहाँ समाप्त हो गये। चलते समय कमर में झटका लगने से डर बना रहता है। पेट और पीठ दोनों एक दूसरे से मिलने के लिये उतावले हो रहे हैं। कमर का कुब्ब पीठ पर चढ़े बैठ रहा है। आँखें अब दुनिया को देखना नहीं चाहतीं इसीलिये गड्ढे मे धंसी चली जा रही हैं। कहीं किसी का इस पर थप्पड़ न पड़ जाये इस डर से गाल ऊपर रहना ही नहीं चाहते, वे भी बेचारे भीतर धंसे चले जा रहे हैं। हाथ और पैरों की जान को न जाने कौन ले गया। एक फर्लांग चलने पर चक्कर और माथे पर पसीने आ जाते हैं। यह सब क्या है—ब्रह्मचर्य का अभाव। आज के शक्तिहीन नवयुवक की सन्तान इससे भी अधिक शक्तिहीन होगी, नपुंसक होगी। फिर देश कहाँ जाएगा, आप ही निर्णय करें। यदि हम वास्तव में अपनी और अपने देश की उन्नति करना चाहते हैं, तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा करें।

३२. वृक्षारोपण

भारतवर्ष प्राकृतिक सुरम्यता, रमणीयता और वासन्ती वैभव के लिए विश्व में प्रसिद्ध रहा है। विदेशी यात्री, पर्यटक और आक्रान्ता यहाँ की मनोहारी प्राकृतिक सुषमा को देखकर इतने विमुग्ध हो जाते थे कि वे अपने देश को भूलकर इसी स्वर्गीय भारत-भूमि को अपना देश समझने लगते थे। भारत के प्राचीन इतिहास के पृष्ठों में ऐसी घटनायें आज भी सन्निहित हैं। हिमालय की सघन वन राशि की हरीतिमा, ब्रज की सुखद छाया वाली सघन कुंजें, विन्ध्याचल के वैभवपूर्ण विपिन, सहसा दर्शक के हृदय और नेत्रों को अपने यौवन की ओर आकर्षित कर लेते थे।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में वृक्षों में देवत्व का आरोपण किया गया था। उनकी पूजा की जाती थी और उनके साथ मनुष्यों की भाँति आत्मीयता बरती जाती थी। उनके सुख-दुख का ध्यान रक्खा जाता था। वर्षा में असनर्षण के अभाव से,

शिशिर में तुषारपात और ग्रीष्म में सूर्यातप से उन्हें उसी प्रकार बचाया जाता था जिस प्रकार माता-पिता अपने बच्चे को बचाते हैं। देवता की भाँति पीपल के वृक्ष की पूजा-अर्चना होती, स्त्रियाँ व्रत रखकर उसकी परिक्रमा करतीं और जलार्पण करती थीं। केले के वृक्ष का पूजन भी शास्त्रों में उल्लिखित है। तुलसी के पौधे की पूजा उतना ही महत्व रखती थी जितना कि भगवदाराधन। बेल के वृक्ष के पत्तों की इतनी महिमा थी कि वे भगवान शिव के मस्तक पर चढ़ाये जाते थे। "सर्वरोगहरो निम्ब" कहकर नीम के वृक्ष को प्रणाम किया जाता था। संध्या के उपरान्त किसी वृक्ष के पत्ते तोड़ना निषेध था और यह कहकर मना कर दिया जाता था कि अब सो रहे हैं। हरे वृक्ष को काटना पाप समझा जाता था। लोग कहा करते थे कि जो हरे वृक्ष को काटता है उसकी सन्तान मर जाती है, सूखे वृक्ष घरेलू उपयोग के लिए भले ही काट लिये जाते हों। कदम्ब वृक्ष को भगवान् कृष्ण का प्रिय समझकर जनता उसे श्रद्धा से प्रणाम करती थी। अशोक का वृक्ष शुभ और मंगलदायक समझा जाता था तभी तो माता सीता ने "तव अशोक मम करहु अशोका" कहकर अशोक वृक्ष से प्रार्थना की थी। यह था भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति में हमारी वन सम्पदा का महत्व। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के मध्य तक वृक्ष काटने वाले मनुष्य को अपराधी समझा जाता था और वह दण्डनीय होता था।

वृक्षारोपण

१ प्रस्तावना।
२ प्राचीन परम्परा में वृक्षों का महत्व।
३ नवीन युग में वृक्ष विनाश।
४ वृक्ष विनाश से हानि।
५ वृक्षारोपण की योजना का प्रारम्भ।
६ वृक्षों से लाभ।
७ उपसंहार।

औद्योगीकरण का नवीन वैज्ञानिक युग आया, ये सारी परम्परायें 'पुराण-पंथी' समझी जाने लगीं। जनसंख्या की वृद्धि से जनता के लिए आवास योग्य भूमि और कृषि योग्य भूमि की खोज शुरू हुई। वृक्षों और वनों को काटा गया। वहाँ आवास बस्तियाँ बसीं, कृषि योग्य भूमि को कृषि के लिए दिया गया। सघन वन कुंजों का स्थान प्रासादों और फैक्ट्रियों ने ले लिया। वृक्ष निर्दयता के साथ काट डाले गए। उनसे जो भूमि प्राप्त हुई वह नवीन, नवीन उद्योगों की स्थापना में काम आई। फिर भी यदि बची, तो उसमें जनता के लिये आवास गृह बना दिए गए या फिर कृषि के लिये दे दी गई। जिन वृक्षों की शीतल और सुखद छाया में थका राही विश्राम कर लेता था वहाँ अब फैक्ट्रियाँ हैं, उद्योग संस्थान हैं और आवास गृह हैं।

परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष की जलवायु में नीरसता एवं शुष्कता आ गई। प्राकृतिक सुरम्यता एवं रमणीयता का अभाव मानव हृदय को खटकने लगा। समय पर वर्षा होने में कमी आ गई। भूमिक्षरण प्रारम्भ हो गया। वृक्षों से ऑक्सीजन मिलने में कमी आ गई। वातावरण की अशुद्धि का मानव के स्वास्थ्य पर दूषित प्रभाव पड़ने लगा। ईंधन के भाव तेज हो गये और भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी आ गई। भारत सरकार ने अन्वेषणों के आधार पर तथ्य का अनुभव करते हुए १९५० से 'वन महोत्सव' की योजना का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। नए वृक्ष लगाए जाने लगे। वृक्षारोपण की एक क्रमबद्ध योजना प्रारम्भ हुई। परन्तु आवश्यक सिंचाई और देख रेख के अभाव में वे लगते भी गए और सूखते भी गए और उखड़ते भी गये।

वृक्षों से मानव को अनेक लाभ हैं। वैज्ञानिक परीक्षणों ने सिद्ध कर दिया है कि सूर्य के प्रकाश में वृक्ष अत्यधिक मात्रा में ऑक्सीजन का निर्माण करते हैं जिससे

वातावरण की शुद्धि होती है, मानव का स्वास्थ्य सुन्दर होता है, फेफड़ों में शुद्ध वायु जाने से वे विकार-ग्रस्त नहीं हो पाते। वृक्षों से तापमान का नियन्त्रण होता है, देश में चलने वाली गर्म और ठण्डी हवाओं से वृक्ष ही मनुष्य की रक्षा करते हैं। वृक्षों से हमें भयानक से भयानक रोगों को दूर करने वाली अमूल्य औषधियाँ प्राप्त होती हैं। वृक्ष हमें ऋतु के अनुकूल स्वास्थ्यप्रद फल प्रदान करते हैं जिनसे हमें आवश्यक विटामिन प्राप्त होते हैं। वृक्षों से हमें श्रेष्ठ खाद भी मिलता है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। वृक्षों से जो पत्ते, फल एवं डंठल समय-समय पर टूटकर पृथ्वी पर गिरते रहते हैं वे मिट्टी में सड़ जाने के बाद सुन्दर खाद के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं।

वृक्षों से सबसे बड़ा लाभ यह है कि वे वर्षा कराने में सहायक सिद्ध होते हैं। मानसूनी हवाओं को रोककर वर्षा करना वृक्षों का ही काम है। वृक्षों के अभाव में वर्षा का अभाव हो जाना स्वाभाविक है, वर्षा के अभाव में अधिक अन्नोत्पादन सम्भव नहीं। वृक्ष देश को मरुस्थल होने से बचाते हैं। जिस भूमि पर वृक्ष होते हैं वहाँ भयंकर घनघोर वर्षा में भूमिक्षरण (कटाव) नहीं हो पाता क्योंकि वर्षा का पानी वेग से पृथ्वी पर नहीं आ पाता, उस वेग को वृक्ष स्वयं ही अपने ऊपर वहन कर लेते हैं। वृक्ष युक्त भूमि वर्षा के जल को अपने ही अन्दर रोककर उसे सोख लेती है। घरेलू कार्यों के लिए ईंधन, गृह-निर्माण के लिये लकड़ी और घर को सजाने के लिए फर्नीचर की लकड़ी भी हमें वृक्षों से ही प्राप्त होती है। ग्रीष्मकाल में वृक्ष ही हमें सुखद छाया प्रदान कर सुख और शान्ति पहुँचाते हैं। अनेक वृक्षों की पत्तियाँ पशुओं के चारे (भोजन) के काम में लाई जाती हैं। ऊँट तो नीम की पत्तियों को बड़े स्नेह से खाता है। काष्ठ-शिल्प के लिए तथा कागज बनाने के लिए वृक्षों से ही हमें कच्चा माल प्राप्त होता है। आँवला, चमेली आदि के तेल भी हमें वृक्षों की सहायता से ही मिलते हैं। शीतलता और सुगन्धि विकीर्ण करने वाला गुलाब जल भी हमें गुलाब के फूलों से मिलता है।

इतना ही नहीं वृक्षों से हमें नैतिक शिक्षा भी मिलती है। मनुष्य के निराशाओं से भरे जीवन में आशा और धैर्य की शिक्षा विद्वानों ने वृक्षों से सीखना बताया है। मनुष्य जब यह देखता है कि कटा हुआ वृक्ष भी कुछ दिनों बाद फिर हरा-भरा हो सकता है तो उसकी समस्त निराशायें शान्त होकर धैर्य और साहस भरी आशायें हरी-भरी हो उठती हैं—

छिन्नोऽपिरोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न ते लोके॥

जब इस श्लोक के भाव को चिन्तित व्यक्ति सुन लेता है तो उसके मुख पर मलीनता के स्थान पर मुस्कराहट नर्तन करने लगती है। नैतिक शिक्षा के साथ ही साथ वृक्षों से हमें पर-कल्याण और परोपकार की शिक्षा मिलती है। जिस प्रकार वृक्ष अपने पैदा किए हुये फलों को स्वयं नहीं खाते इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों की विभूति भी दूसरों के कल्याण के ही लिए होती है।

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

अथवा

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखें, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारनै, साधुन धरा शरीर॥

अत यह सिद्ध सत्य है कि वृक्ष हमारे देश की नैतिक, सामाजिक और आर्थिक समृद्धि के मूल स्रोत हैं।

१९५० में वन महोत्सव योजना का जो कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था, सबल प्रेरणा के अभाव में वह बीच में कुछ शिथिल पड़ गया था। अब देश भर में वृक्षारोपण का कार्यक्रम विशाल एवं व्यापक रूप से चलाया जा रहा है। नगरों की नगरपालिकाओं को वृक्षारोपण की निश्चित संख्या दे दी गई है, विद्यालयों में भी यह कार्यक्रम साकार रूप ग्रहण कर रहा है। ८ नवम्बर, १९७६ को उत्तर प्रदेश विधान सभा ने ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्ष संरक्षण विधेयक पारित किया जिसके अन्तर्गत हरे और फलदार वृक्षों की मनमानी कटाई पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। १२ नवम्बर, १९७६ को केन्द्र सरकार ने सभी राज्य सरकारों को निर्देश भेजा था कि केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी राज्य में जंगलों की सफाई नहीं करने दी जाएगी। यह बात निजी भूमि पर लगे जंगलों पर भी लागू होगी। जंगलों की कटाई के लिए केन्द्रीय कृषि एवं सिंचाई मन्त्रालय के वन विभाग के महानिरीक्षक से पूर्व अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य होगा। इतने पर भी जब हिमालय के सघन वृक्षों की कटाई बन्द नहीं हुई तो गढ़वाल की जागरूक जनता ने 'चिपको आन्दोलन' छेड़ दिया। वहाँ के नेता लोग 'भूख हड़ताल' पर बैठ गये और प्रतिज्ञा की कि हम मर भले ही जायें पर पेड़ न काटने देंगे। किसी तरह १९७९ के प्रारम्भ में सरकार के ठोस अनुशासन के बाद यह आन्दोलन समाप्त हुआ है। इन समाधानों के फलस्वरूप वह दिन दूर नहीं जब कि भारत की वृक्ष-और वन-सम्पदा अपने पूर्ण वैभव के साथ पुनः सौरभ बिकीर्ण कर उठेगी। सूखे और बाढ़ जैसी भयानक आपदाओं को रोकने के लिए भारत सरकार कठोरता से वन संरक्षण कर रही और वृक्षारोपण करा रही है। इसके लिए केन्द्रीय और प्रदेशीय मन्त्रालयों में पृथक्-पृथक् मन्त्री नियुक्त एवं अलग-अलग विभाग खोले गये हैं। ⊛

३३. एन० सी० सी० का उद्‌भव, विकास और भविष्य

भूखा या सूखा रहकर आसन पर तपस्यासीन रहना और मनोनुकूलता के विपरीत आचरण पर शाप देने का युग अब नहीं रहा। न वह तपस्या रही और न वे शाप। आज तो यदि आप आयुर्वेदाचार्य हैं तो आपको लठैताचार्य या बन्दूकाचार्य होना भी आवश्यक है, वरन् आपके औषधालय से कोई भी शीशियाँ उठाकर भाग सकता है या रुपयों का गल्ला। तात्पर्य यह है कि हमारे व्यक्तिगत जीवन या राष्ट्रीय जीवन के लिए जितना बौद्धिक बल आवश्यक है उतना ही शारीरिक बल भी, जितना शील आवश्यक है उतनी ही शक्ति भी।

व्यक्तिगत आवश्यकताओं से ऊपर राष्ट्रीय आवश्यकतायें होती हैं। राष्ट्र के नागरिक यदि शरीर से दुर्बल हैं या राष्ट्र के पास सबल सैनिक नहीं हैं, तो कोई भी दूसरा राष्ट्र आकर उसे कभी भी दबा सकता है और अपनी मनमानी करा सकता है। शत्रु को मुँह तोड़ उत्तर देने के लिये यह आवश्यक है कि राष्ट्र के पास पर्याप्त शक्ति-सम्पन्न सेना हो। दूसरे, देश के नवयुवकों को स्वस्थ और परिश्रमवान बनाने के लिये भी व्यायाम आदि शारीरिक प्रशिक्षण आवश्यक है। आवश्यकता पड़ने पर वे ही नवयुवक देश की सेना में भर्ती होकर देश की शत्रुओं से रक्षा करने में समर्थ होते हैं। इसलिए

राष्ट्रों में प्रत्येक नवयुवक के लिए अनिवार्य सैनिक शिक्षा की व्यवस्था है। इंगलैंड में प्रत्येक नवयुवक को एक निश्चित अवधि के लिये सेना में कार्य करना पड़ता है। रूस और अमरीका में भी ऐसी परम्परायें हैं। १९६२ में चीनी आक्रमण से शिक्षा लेकर भारत ने भी सैनिक शिक्षा को अनिवार्य घोषित कर दिया है। इससे पूर्व यह एक ऐच्छिक विषय माना गया था।

एन० सी० सी० का उद्भव, विकास और भविष्य

१. प्रस्तावना।
२. उद्भव।
३. विकास।
४. भविष्य।
५. उपसंहार।

सैनिक शिक्षा की राष्ट्रीय आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार ने १९५६ में पं० हृदयनाथ कुंजरु की अध्यक्षता में नेशनल कैडिट कोर के विषय में विचार करने के लिए एक समिति गठित की थी। इसी समिति की संस्तुति के आधार पर ८ अप्रैल १९५७ को संसद में एन० सी० सी० अधिनियम पारित कर दिया गया। इस अधिनियम का मूल उद्देश्य था—"देश के युवकों के चरित्र का विकास करना, उनमें सहयोग और सैनिक भावना को जाग्रत करना, सेना के प्रति उनमें रुचि जगाना तथा आवश्यकता पड़ने पर सेना में प्रवेश के लिये अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देना।"

१९५८ से १९६२ तक देश में एन० सी० सी० ने पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की तथा उत्तरोत्तर प्रगति होती गई। शिक्षा संस्थाओं द्वारा एन० सी० सी० यूनिट खोलने की माँग को बढ़ता हुआ देखकर तथा उसकी पूर्ति कर पाना कठिन समझकर सरकार ने १३ से १६ वर्ष तक के बालक-बालिकाओं के लिए एन० सी० सी० की स्थापना की। एन० सी० सी० का अर्थ था Auxiliary Cadet Corps अर्थात् सहायक कैडिट दल। इस संगठन की स्थापना का मूल रूप "राष्ट्रीय युवक आन्दोलन" ही था। इसके उद्देश्य है—देश के युवकों और युवतियों में शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास कर उनके चरित्र का निर्माण करना तथा अनुशासित नागरिक बनाना, देश-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम की भावना का संचार करना, आत्मविश्वास जगाना और समाज सेवा के लिये प्रशिक्षित करना आदि।

१९६० से एन० सी० सी० राइफल्स के नाम से इस संगठन को नया स्वरूप दिया गया। इस नवीन योजना के फलस्वरूप १९६० और १९६१ में इसका पर्याप्त विकास हुआ। लगभग ४ लाख युवक-युवतियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस नवीन संगठन का उद्देश्य था—सेना के राइफल रेजीमेंट के ढंग पर देश के युवकों को प्रशिक्षित करना। इसमें अध्यापकों पर अधिक उत्तरदायित्व था, उन्हीं को ट्रेनिंग देनी पड़ती थी, प्रशासन का सारा भार उन्हीं पर होता था। अतः केन्द्रीय सरकार ने १९५९-६० में आफीसर ट्रेनिंग यूनिट की स्थापना की। १९५७ में काम्पटी में एन० सी० सी० के अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिये एक प्रशिक्षण विद्यालय पहले ही स्थापित हो चुका था। १९६२ में पुरन्दर में एन० सी० सी० अधिकारियों को विशेष प्रशिक्षण देने के लिये एक एन० सी० सी० एकेडमी की स्थापना की गई। १९६४ में महिला एन० सी० सी० अधिकारियों के लिये ग्वालियर में एन० सी० सी० कॉलेज की स्थापना की गई।

१९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। फलस्वरूप १९६२ तक, जो एन० सी० सी० केवल एक ऐच्छिक विषय थी, १९६३ से अनिवार्य कर दी गई और उसके विकास के लिये बहुमुखी प्रयास किया गया। १९६४ में एन० सी० सी० को

समाप्त कर दिया गया तथा एन० सी० सी० को निम्न दो डिवीजनों में विभक्त कर दिया गया—

१—जूनियर डिवीजन।
२—सीनियर डिवीजन।

जूनियर डिवीजन में १३ से १८ वर्ष तक के छात्र-छात्रायें तथा सीनियर डिवीजन में १८ वर्ष से अधिक आयु के कॉलिज एवं विश्वविद्यालय के छात्र छात्राओं के लिये प्रशिक्षण अनिवार्य घोषित कर दिया गया। सेना की भाँति एन० सी० सी० को भी तीन विंगों में विभक्त कर दिया गया—

१—सैनिक विंग।
२—नौ सैनिक विंग।
३—नभ सैनिक विंग।

इनके द्वारा छात्रों को सेना की विभिन्न कार्य-प्रणालियों की शिक्षा दी जाने लगी। १९६४ से अब तक लाखों युवक युवतियाँ इस संगठन के द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। २० लाख से अधिक छात्र इस समय भी सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। एन० सी० सी० के संघ की स्थापना की गई है, जिसका उद्देश्य एन० सी० सी० के क्रियाकलापों एवं गतिविधियों का प्रचार एवं प्रसार करना, सम्बन्धित साहित्य प्रकाशित करना तथा विदेशों में इस प्रकार के संगठनों से सम्पर्क स्थापित करना है।

१९६५ तथा दिसम्बर १९७१ के पाकिस्तानी आक्रमणों के समय एन० सी० सी० के हजारों प्रशिक्षित युवकों ने सेना में प्रवेश किया और उन्हें एमर्जेन्सी कमीशन मिला। निश्चय ही एन० सी० सी० का देश की सुरक्षा में महत्वपूर्ण और महान् योगदान है। यह देश की सेकिण्ड डिफेन्स लाइन है। सरकार ने यह निश्चय किया है कि आवश्यकता पड़ने पर १७ वर्ष से अधिक आयु के कैडिटों और अधिकारियों को नागरिक सुरक्षा के लिये प्रयोग किया जा सकता है तथा देश सेवा की दृष्टि से उन्हें कोई आपत्ति भी नहीं होनी चाहिये।

देश की सुरक्षा एवं सेवा के लिये एन० सी० सी० का महत्वपूर्ण स्थान है। नवयुवक और नवयुवतियों में सत्यता, ईमानदारी कर्तव्यपरायणता, जागरूकता तथा अनुशासनप्रियता, आदि गुणों का बीजारोपण इस संगठन के माध्यम से सहज रूप में हो जाता है। वे परिश्रमपूर्वक अपना कर्त्तव्य पालन करना जान जाते हैं। एक-दूसरे से मिलकर काम करने की भावना का उनमें उदय होता है, वे देश की सुरक्षा के प्रति जागरूक हो जाते हैं। शत्रु का मुकाबला करने तथा उस पर विजय प्राप्त करने का आत्म विश्वास उनमें स्वयं जाग्रत हो जाता है। भीरुता और कायरता उनमें दूर भाग जाती है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश में ३० लाख युवक-युवतियाँ एन० सी० सी० का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके थे, जिनमें १५ लाख सीनियर डिवीजन और १५ लाख जूनियर डिवीजन के थे। इस समय यह संख्या २० लाख से ऊपर है। भारतवर्ष में एन० सी० सी० का भविष्य निःसन्देह उज्ज्वल है।

देश को सुरक्षा प्रदान करने में एन० सी० सी० निश्चित ही एक अमोघ अस्त्र के समान सफल एवं सहायक सिद्ध होगी। प्रत्येक विद्यार्थी को इसमें काय-[illegible] मन से और रुचि से भाग लेना चाहिये तभी वे देश को भावी सकटों से बचाने में [illegible]। हो सकेंगे।

३४. पुस्तकालय की उपयोगिता

शारीरिक स्वास्थ्य के लिये जिस प्रकार मनुष्य को संयमित और सन्तुलित भोजन आवश्यक है उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिए ज्ञानार्जन परमावश्यक है। जिस इन्द्रिय का जो कार्य है, यदि उससे न लिया जाये तो उसकी क्रियाशीलता प्रायः समाप्त सी हो जाती है। यह देखा गया है कि संन्यासी निरन्तर बारह वर्षों के मौन के पश्चात् जब बोलना प्रारम्भ करते हैं, तो उन्हें प्रारम्भ में कुछ कठिनाई का अनुभव होता है। इतनी स्पष्टता और शीघ्रता से वे नहीं बोल पाते, जितना पहले बोलते थे। इसी प्रकार मस्तिष्क को क्रियाशील और गतिशील रखने के लिए शुद्ध ज्ञान एवं नवीन विचारों की आवश्यकता होती है। यह ज्ञान और शुद्ध विचार हमें अज्ञानान्धकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाशपूर्ण लोक में ले जाते हैं। ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की विधिवत् उपासना के लिए दो आराधना मन्दिर हैं—एक विद्यालय और दूसरा पुस्तकालय। विद्यालय में हम गुरुजनों की पवित्र वाणी से तथा पाठ्य पुस्तकों के सहारे से शिक्षा ग्रहण करते हैं, परन्तु फिर भी विद्यालय में हमारी ज्ञान-वृद्धि एक निश्चित सीमा तक ही होती है। दूसरे प्रकार के ज्ञान के लिए सरस्वती के दूसरे आराधना मन्दिर में बैठकर मौन उपासना करनी पड़ती है। वह साधनास्थल पुस्तकालय है, जहाँ विद्यार्थी विस्तृत व्यापक ज्ञान प्राप्त करता है, जहाँ सरस्वती के अनन्त वरद् पुत्रों की कृतियों का संग्रह होता है, जहाँ उसे सभी प्रकार के ग्रन्थ सरलता और सुगमता से उपलब्ध हो जाते हैं जिनके अध्ययन से मानव अपने जीवन के अशान्त, संघर्षमय क्षणों में शान्ति प्राप्त करता है।

पुस्तकालय की उपयोगिता

१. प्रस्तावना।
२. पुस्तकालय के प्रकार।
३. विदेशों में पुस्तकालय।
४. पुस्तकालय से लाभ।
  (क) ज्ञान वृद्धि।
  (ख) ज्ञान प्रसार।
  (ग) सत्संग के साधन।
  (घ) श्रेष्ठ मनोरंजन।
  (ङ) समाज का कल्याण।
५. उपसंहार।

पुस्तकालय कई प्रकार के होते हैं और कई प्रकार के हो सकते हैं। प्रथम प्रकार के पुस्तकालय वे हैं, जो हमारे स्कूलों, कॉलिजों और विश्वविद्यालय में होते हैं। सामूहिक जन-कल्याण की दृष्टि से इन पुस्तकालयों का कार्य-क्षेत्र सीमित होता है। क्षेत्र के छात्र तथा अध्यापक ही इस पुस्तकालय से लाभान्वित होते हैं, परन्तु फिर भी इन पुस्तकालयों का अपना विशेष महत्व होता है। छात्रों की शिक्षा के प्रसार और उनकी ज्ञान वृद्धि में इन पुस्तकालयों से पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। वे छात्र जो किसी न किसी प्रकार भोजन तो प्राप्त कर लेते हैं परन्तु उनकी निर्धनता विवश कर देती है उन्हें पुस्तकें आदि न खरीदने के लिए, यह पुस्तकालय उनकी शिक्षा को अग्रसर करने में अमूल्य सेवा प्रदान करता है।

दूसरे प्रकार के पुस्तकालय व्यक्तिगत पुस्तकालय होते हैं। विद्या-प्रेमी धनवान लोग हजारों रुपया व्यय करके प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य एकत्रित करते हैं और अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त करते हैं। इन पुस्तकालयों से वह और उनके निकटतम व्यक्ति लाभ उठाते हैं। प्रत्येक ज्ञान-पिपासु एवं परिष्कृत रुचि वाला व्यक्ति अपनी-अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार व्यक्तिगत पुस्तकालय रख सकता है।

तीसरे प्रकार के पुस्तकालय राजकीय पुस्तकालय होते हैं। इनकी व्यवस्था सर्व

सरकार करती है। ये पुस्तकालय बड़े भव्य भवनों में होते हैं। इनकी आर्थिक दशा बहुत सुन्दर होती है, परन्तु जन-साधारण को इन पुस्तकालयों से कोई विशेष लाभ नहीं होता, ये उनकी सीमित पहुँच के बाहर होते हैं।

चौथे प्रकार के पुस्तकालय सार्वजनिक पुस्तकालय होते हैं। इन पुस्तकालयों से सभी लाभ उठाते हैं चाहे वे बड़े हों या छोटे। व्यक्ति अपनी इच्छानुसार पुस्तकालय से पुस्तक निकलवाकर पढ़ सकता है। किसी पाठक पर किसी बात का प्रतिबन्ध नहीं होता। यदि पाठक पुस्तक घर ले जाना चाहता हो तो उसे एक निश्चित शुल्क देकर उस पुस्तकालय का सदस्य बनना पड़ेगा, तब एक निश्चित अवधि के लिए चाहे वह सात दिन के लिए हो या पन्द्रह दिन के लिए वह उस पुस्तक को घर ले जा सकता है। सार्वजनिक पुस्तकालयों में वाचनालय का भी प्रबन्ध होता है। यदि ये सार्वजनिक वाचनालय न हों तो साधारण-जनता पुस्तकालयों से अधिक लाभान्वित नहीं हो सकती। क्योंकि बहुत-से व्यक्तियों को अखबार पढ़ने की सनक होती है, ऐसे व्यक्ति इसी बहाने से पुस्तकालय तक पहुँच जाते हैं।

पाँचवें प्रकार के पुस्तकालय चल-पुस्तकालय होते हैं। विदेशों में ऐसे पुस्तकालय अधिक संख्या में होते हैं। इन पुस्तकालयों का स्थान गाड़ी में होता है। स्थान-स्थान पर जाकर ये पुस्तकालय जनता को नवीन साहित्य का रसास्वादन कराते हैं। इस प्रकार देश का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रीय साहित्य की विभिन्न गतिविधियों से परिचित होता रहता है।

पुस्तकालयों की दृष्टि से इंगलैंड, अमेरिका और रूस सबसे आगे हैं। इंगलैंड के ब्रिटिश म्यूजियम में पुस्तकों की संख्या पचास लाख है। पुस्तकों के अतिरिक्त, वहाँ ११,००० देशी तथा विदेशी पत्र-पत्रिकायें आती हैं। अमेरिका में वाशिंगटन कांग्रेस पुस्तकालय विश्व का सबसे बड़ा पुस्तकालय माना जाता है। इस पुस्तकालय में चार करोड़ से भी अधिक पुस्तकें हैं। यहाँ १४०० समाचार-पत्र तथा २६,००० पत्रिकायें आती हैं। इस पुस्तकालय में ढाई हजार के लगभग कर्मचारी काम करते हैं। रूस का सबसे बड़ा पुस्तकालय लेनिन पुस्तकालय' मास्को में है। इसमें १६० भाषाओं की पुस्तकें हैं। इनमें मुद्रित पुस्तकों की संख्या लगभग डेढ़ करोड़ है तथा दो करोड़ पाँच लाख पृष्ठों की पाण्डुलिपियाँ हैं। इस पुस्तकालय में नित्य तीन हजार से चार हजार तक व्यक्ति पढ़ने आते हैं। पुस्तकालय की अलमारियाँ ११७ मील का स्थान घेरे हुए हैं। इस पुस्तकालय में १८०० वेतन भोगी कर्मचारी हैं। रूस का दूसरा विशाल पुस्तकालय "सालितीकफदोड्रिन" सार्वजनिक पुस्तकालय है। भारतवर्ष में कलकत्ते के राष्ट्रीय पुस्तकालय में दस लाख पुस्तकें हैं। भारत का दूसरा महत्वपूर्ण पुस्तकालय बड़ौदा का केन्द्रीय पुस्तकालय है, इसमें एक लाख ३१ हजार पुस्तकें हैं।

पुस्तकालयों से अनेक लाभ हैं। ज्ञान की वृद्धि में पुस्तकालय से जो सहायता मिलती है वह किसी अन्य साधन द्वारा नहीं। वास्तव में शिक्षक तो विद्यार्थियों का केवल पथ प्रदर्शन ही करते हैं और पुस्तकालय उन्हें ज्ञान तक पहुँचाता है। किसी विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस विषय पर एक-दो पुस्तक पढ़ने से कोई विशेष लाभ नहीं होता, जब तक कि उसी विषय की अधिक से अधिक पुस्तकों का अनुशीलन न किया जाये। यह कार्य पुस्तकालय में ही अच्छी प्रकार सम्पन्न होता है। वहाँ एक विषय पर अनेकों पुस्तकें पढ़ने को मिलती हैं। ज्ञान-वृद्धि के अतिरिक्त पुस्तकालयों से ज्ञान का प्रसार भी सरलता से होता है। पुस्तकालय के सम्पर्क में रहने से मनुष्य कुवासनाओं और प्रलोभनों से बच जाता है। श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन और

मनन द्वारा पाठक इस लोक के साथ-साथ परलोक को भी सुधार लेते हैं।

पुस्तकालय मनुष्य को सत्संग की सुविधा प्रदान करता है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते कभी मनुष्य मन ही मन प्रसन्न हो उठता है और कभी खिलखिलाकर हँस पड़ता है। श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन से हमें मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। उस समय संसार की समस्त चिन्ताओं से पाठक मुक्त हो जाता है। कबीर की वैराग्यपूर्ण वाणी पढ़ते समय पाठक के हृदय में अवश्य ही संसार की असारता नृत्य करने लगेगी। इसी प्रकार, जब वह गोस्वामी तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि महाकवियों के काव्यानन्द में निमग्न होगा, तब निःसन्देह ही उसे परमानन्द प्राप्त हो सकेगा। अतः पुस्तकालय हमारे लिये नित्य जीवन साथियों की योजना करता है, जिसके साथ आप बैठकर बातों का आनन्द ले सकते हैं, चाहे वह शेक्सपीयर हो या कालीदास, न्यूटन हो या प्लेटो, अरस्तु हो या शंकराचार्य।

आधुनिक युग में यद्यपि मनोरंजन के अनेक साधन हैं, शाम को सिनेमाघरों पर ऐसी भीड़ लगी रहती है जैसे किसी समय मन्दिरों पर लगी रहती थी। कोई खेल में ही मस्त है, कोई किसी दुर्व्यसन में ही आनन्द ले रहा है, कोई रेडियो पर ही कान लगाए बैठा रहता है, परन्तु ये सब मनोरंजन के साधन पुस्तकालय के सामने नगण्य हैं, क्योंकि पुस्तकालय से मनोरंजन के साथ-साथ पाठक का आत्मपरिष्कार एवं ज्ञान वृद्धि होती है। पुस्तकालय में बैठकर बिना पैसा व्यय किये ही हम समाचार-पत्रों से देश-विदेश के समाचार प्राप्त कर लेते हैं। पुस्तकालयों में भिन्न-भिन्न रसों की पुस्तकों के अध्ययन से हम समय का सदुपयोग भी कर लेते हैं। अपने रिक्त समय को पुस्तकालय में व्यतीत करना समय की सबसे बड़ी उपयोगिता है।

व्यक्तिगत हित के अतिरिक्त, पुस्तकालयों से समाज का भी हित होता है। भिन्न-भिन्न देशों की नवीन एवं प्राचीन पुस्तकों के अध्ययन से विभिन्न देशों की सामाजिक परम्पराओं, मान्यताओं और व्यवस्थाओं का परिचय प्राप्त होता है, जिससे हम अपनी सामाजिक कुरीतियों को सुधारने के लिये प्रयत्नशील होते हैं। जनता अपने अधिकारों से परिचित हो जाती है। समाज के विभिन्न अंगों में समानता का व्यवहार होने लगता है। जनता जनार्दन में देश-प्रेम की भावनायें उमड़ने लगती हैं।

पुस्तकालय वास्तव में ज्ञान का अमित भण्डार है। देश की शिक्षित जनता के लिये उन्नति का सर्वोत्तम साधन पुस्तकालय है। भारतवर्ष में भी अच्छे पुस्तकालयों की संख्या पर्याप्त नहीं है। भारत सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है।

वास्तव में, पुस्तकें मनुष्य की सच्ची मित्र, सद्गुरु और जीवन पथ की संरक्षिका हैं।

देश की अशिक्षित जनता को सुशिक्षित बनाने के लिये सार्वजनिक पुस्तकालय की बड़ी आवश्यकता है। भारत सरकार ने ग्राम पंचायतों की देख-रेख में गाँव-गाँव में ऐसे पुस्तकालयों की व्यवस्था की है। गाँव की निर्धन जनता अपने ज्ञान प्रसार के लिए पुस्तकें नहीं खरीद सकती। उस अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए शासन का यह पदन्यास प्रशंसनीय है। जिन लोगों पर लक्ष्मी की अटूट कृपा है, उन्हें इस प्रकार के पुस्तकालय जनहित के लिए खुलवाने चाहियें। पुस्तकालय का महत्व देवालयों से अधिक है क्योंकि पुस्तकालय ही हमें देवालय में जाने योग्य बनाते हैं।

३५ विद्यालय का वार्षिकोत्सव

विद्यार्थी जीवन में विद्यार्थी के लिये जितना महत्व विद्यालय के उत्सवों का होता है उतना घर के उत्सवों का नहीं। क्योंकि विद्यालय उनके लिए घर से भी बढ़कर होता है। घर आते हैं केवल भोजन करने और सोने, इस प्रकार उनके विद्यार्थी जीवन के अधिकांश क्षण कॉलेज की चारदीवारी में ही व्यतीत होते हैं। कॉलेज के उत्सव को वे अपना उत्सव समझते हैं और घर के उत्सवों को माता-पिता का। प्रत्येक विद्यालय में प्रतिवर्ष तुलसी जयन्ती, सूर जयन्ती, स्वतन्त्रता दिवस, आदि अनेक उत्सव मनाये जाते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि में जितना महत्व विद्यालय के वार्षिकोत्सव का होता है, उतना अन्य किसी का नहीं, क्योंकि उस दिन उन्हें मिलता है—उनकी योग्यता, उनकी कार्यकुशलता और उनकी अनुशासनप्रियता का फल पुरस्कार। उस दिन वे फूले नहीं समाते।

विद्यालय का वार्षिकोत्सव

१ प्रस्तावना।
२ समय।
३ तैयारियाँ।
४ उत्सव स्थल की सजावट।
५ कार्यक्रम का प्रारम्भ।
६ पारितोषिक वितरण।
७ सभापति का भाषण।
८ फोटो ग्रुप।
९ उपसंहार।

यह उत्सव प्रतिवर्ष फरवरी के अन्त में या मार्च के आरम्भ में मनाया जाता है, क्योंकि यह समय अध्यापक और विद्यार्थी लोगों के लिये फुरसत का होता है। विद्यार्थियों की वर्ष भर की पढ़ाई अब समाप्त हो जाती है, अध्यापक भी पढ़ाने से कुछ थोड़ा-सा मुक्त हो जाता है। बोर्ड की परीक्षा के विद्यार्थी इन्हीं दिनों में अपने-अपने कॉलेजों में अन्तिम विदाई लेते हैं। उत्सव के समय की उपयुक्तता का दूसरा आकर्षण प्रकृति की मनोरमता भी होती है। यह समय वसन्त ऋतु का होता है, चारों ओर प्रकृति देवी अपने गले में पीले फूलों का हार पहिने हरी-भरी दिखाई पड़ती है। न अधिक जाड़ा होता है और न अधिक गर्मी। कोट से हम स्वेटर पर आ जाते हैं।

मेरे विद्यालय में भी यह उत्सव २८ फरवरी को मनाया गया, क्योंकि पहली मार्च से बोर्ड के परीक्षार्थियों को प्रिपरेशन लीव होने वाली थी और १७ मार्च से बोर्ड की परीक्षा प्रारम्भ हो रही थी। कई दिनों से हम लोग अपने कक्षाध्यापक महोदय की आज्ञानुसार काम में व्यस्त थे तैयारियाँ जोरों पर थीं। कुछ विद्यार्थियों को निमन्त्रण पत्र छपवाने का काम दिया गया था और कुछ को बाँटने का। कुछ नाटक की तैयारी में व्यस्त थे। कई दिन से बराबर पूर्वाभ्यास हो रहा था। संगीत [illegible] शाम को छः बजे घर आते, क्योंकि नाटक का सारा [illegible] भार उन्हीं [illegible]। क्राफ्ट के अध्यापक अपने प्रिय छात्रों से अपनी कक्षा में बैठे-बैठे झण्डियाँ बनवा रहे थे, काफी बन चुकी थीं, परन्तु प्रधानाचार्य ने कहा था कि अभी और बनाइये। कॉलेज हॉल की, जिसमें उत्सव मनाया जाने वाला था, पुताई हो रही थी, मैं भी उसी कमेटी में था। कुछ अध्यापक प्रचलित वर्ष की वार्षिक रिपोर्ट तैयार करने में व्यस्त थे।

आज २८ फरवरी थी, उत्सव का समय शाम को चार बजे था। परन्तु सुबह से ही सब अपने-अपने कार्यों में व्यस्त थे। कॉलेज में चारों ओर झण्डियाँ लगाई जा रही थीं। कॉलेज के मुख्य द्वार पर बल्लियों का एक विशाल द्वार बनाया गया था और उस पर हरी-हरी पत्तियाँ सजाई गई थीं। द्वार पर 'स्वागतम्' का बोर्ड लगवाया गया था। हॉल तरह-तरह के चित्रों और झण्डियों से विशेष रूप से सजाया गया था।

नीचे फर्श पर सुन्दर दरियाँ बिछाई गई थीं, उनके ऊपर कुर्सियाँ थीं, विद्यार्थियों के लिए जमीन पर बैठने का प्रबन्ध था। आमन्त्रित अतिथियों, अध्यापकों तथा अभिभावकों के लिए कुर्सियों का प्रबन्ध था। सभापति एवं प्रधानाचार्य के बैठने के लिए एक ऊँचा मंच बनाया गया था। सभापति के बाईं ओर एक विशाल मेज पर विद्यार्थियों को दिये जाने वाले पुरस्कार सजा कर रखे हुए थे। हॉल के चार कोनों में अगरबत्तियाँ जलाकर लगाई थी, जिससे चन्दन की मनमोहक सुगन्धी चारों ओर फैल रही थी। हॉल का द्वार तोरण और बन्दनवारों से सजाया गया था। यद्यपि उत्सव का समय ४ बजे था, फिर भी विद्यार्थी बहुत पहले से ही आने शुरू हो गये थे। आज विद्यार्थियों में एक नई चेतना और नया उल्लास था। सभी साफ-सुथरे कपड़े पहिने हुए आ रहे थे। कोई-कोई टाई में भी था। कॉलिज के मुख्य द्वार के पास लाइन में एन. सी. सी. की प्लाटून खड़ी थी। हाथों में बन्दूकें थीं। मस्ती में झुकी हुई सिर पर लाल टोपी थी। हवलदार उन्हें 'प्रजेण्ट आर्म' का अभ्यास करा रहे थे, क्योंकि इन्हें आज सभापति को सलामी देनी थी। आज के उत्सव के सभापति जिलाधीश महोदय थे। कॉलिज के उप-प्रधानाचार्य उन्हें लेने जा चुके थे। कुछ विद्यार्थियों के हाथों में फूलों की मालायें थीं, जो कि मुख्य अतिथि के आने पर अध्यापकों के तथा स्वागतकारिणी के सदस्यों के देने के लिये थीं। हमारे प्रधानाचार्य के हाथों में एक गोटे का हार था। द्वार के दोनों ओर दो बन्दूक वाले खड़े थे। इतने में एक नीले रंग की कार तेजी से आती दिखाई दी। सभी सतर्क हो गये। गाड़ी रुकी, मुस्कराते हुए जिलाधीश कार से उतरे और प्रधानाचार्य महोदय से हाथ मिलाया। प्रधानाचार्य जी ने जिलाधीश को गोटे का हार पहनाया; इतने में धड़-धड़ बन्दूकों से गोलियाँ दागी गईं और जो बच्चे फूल-मालायें लिये खड़े थे, उन्होंने भी फूल मालायें पहनाईं। आगे जिलाधीश थे और प्रधानाचार्य थे और उनके पीछे कुछ अध्यापक थे।

सभापति महोदय ने सर्वप्रथम एन. सी. सी. की परेड का निरीक्षण किया और सलामी ली। उसके पश्चात् कॉलिज हॉल की ओर चले। कॉलिज हॉल में प्रवेश करते ही मुख्य अतिथि के सम्मान में सभी छात्र खड़े हो गये और जब उन्होंने आसन ग्रहण कर लिया तब सब बैठे। कार्यक्रम आरम्भ होने से पूर्व 'वन्दे मातरम्' तथा सरस्वती वन्दना की गई। फिर प्रधानाचार्य जी ने सभापति के स्वागत में छोटा-सा भाषण दिया और चालू वर्ष की वार्षिक कार्यवाही का विवरण पढ़कर सुनाया। इसके पश्चात् एकांकी नाटक, जिसका इतने दिनों से पूर्वाभ्यास हो रहा था, हुआ। रंगमंच पर अभिनेता [illegible] दिखाने लगे। सभापति महोदय छात्रों के अभिनय को देखकर [illegible] और कभी-कभी तालियाँ भी बजाते थे।

इसके अनन्तर प्रधानाचार्य जी ने जिलाधीश महोदय की धर्मपत्नी से प्रार्थना की कि वे अपने कर-कमलों से विद्यार्थियों को पुरस्कार प्रदान करने की कृपा करें। हमारे लिये वे क्षण बड़ी प्रसन्नता और उल्लास के थे। जैसे ही कोई विद्यार्थी पुरस्कार लेता, हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठता था। पारितोषिक कई प्रकार के थे, सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी का, सर्वश्रेष्ठ [illegible] का, सर्वश्रेष्ठ अध्यापक का, कॉलिज में सर्वाधिक उपस्थित रहने वाले का तथा पिछले वर्ष सम्मान उत्तीर्ण होने वाले छात्रों के लिये। इसी तरह के और भी कई प्रकार के पुरस्कार थे। मुझे सर्वश्रेष्ठ छात्रपालक के रूप में छः मोटी-मोटी पुस्तकें, एक तौलिया तथा एक पदक, प्रथम पुरस्कार में मिला था। खिलाड़ियों को खेलने का सामान दिया जा रहा था, पढ़ने वालों को किताबें।

पारितोषिक वितरण के पश्चात् सभापति महोदय ने अपना सारगर्भित भाषण

प्रस्तुत किया। उन्होंने विद्यार्थियों को अनुशासन में रहने तथा चरित्रवान् बनने का उपदेश दिया। अन्त में, हमारे प्रधानाचार्य ने उत्सव की समाप्ति की घोषणा करते हुए सभी उपस्थित महानुभावों को धन्यवाद दिया। इसके पश्चात् विद्यार्थियों को घर जाने की आज्ञा दे दी गई। कुछ प्रमुख छात्रों को फोटो ग्रुप में भाग लेने के लिये रोक लिया गया। मुख्य अतिथि को साथ लेकर प्रधानाचार्य उस ओर चले, जिस ओर फोटो लेने के लिये सैट किया कैमरा रखा था। बीच में मुख्य अतिथि, उनके पास प्रधानाचार्य तथा अन्य अध्यापक भी बैठ गये, विद्यार्थी कुर्सियों के पीछे खड़े कर दिये गये। एक क्षण में फोटो ग्रुप हो गया। भीड़ छँट जाने के बाद मुख्य अतिथि के सम्मान में कुछ थोड़े से जलपान का आयोजन हुआ और अन्त में सबने अपने-अपने घरों की राह ली।

घर विद्यालय की ओर विद्यालय भावी जीवन की आधार-शिला है। शिक्षा का श्रीगणेश घर से होता है। माता-पिता शुरू से कुछ न कुछ सिखाने लगते हैं जैसे—चलना, खाना-पीना, तथा उचित और अनुचित वस्तुओं का ज्ञान इत्यादि। घर की शिक्षा के पश्चात् बालक विद्यालय से वांछित शिक्षा ग्रहण करता है, जिससे उसका भावी-जीवन सुखी और सम्पन्न हो सके। विद्यालय के सामूहिक उत्सवों के द्वारा छात्रों में सहयोग, सहानुभूति और एकता की भावनाओं का उदय होता है, संगठन-शक्ति जाग्रत होती है और अपने विचारों को दूसरों के सामने प्रकट करने की क्षमता आती है। अतः प्रत्येक विद्यार्थी को अपने विद्यालय के उत्सवों में भाग लेना चाहिए, जिससे भावी जीवन में वह एक सभ्य और सुशिक्षित नागरिक बन सके।

३६ राष्ट्रीय पर्व—स्वतन्त्रता दिवस

स्वतन्त्रता मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। अधम से अधम व्यक्ति और छोटे से छोटा बालक भी अपने ऊपर किसी का नियन्त्रण प्रसन्नता से स्वीकार नहीं करता। अंग्रेज भारत में आये और भारतीयों को परतन्त्रता के पाश में जकड़ लिया। गुलामी की जंजीरों में बँधे हुए भारतीय उसी दिन से उस जाल को काटने के लिये अनवरत प्रयास करते रहे। इस पुनीत संग्राम का श्रीगणेश झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के कर-कमलों से सन् १८५७ में हुआ। तब से लेकर सन् १९४७ तक अनन्त माताओं की गोद से लाल, अनन्त पत्नियों के सौभाग्य सिन्दूर और अनन्त बहनों के भाई स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर चढ़कर अमरगति को प्राप्त हुए। परिवार के परिवार इस पवित्र यज्ञ की अग्नि में भस्मसात् हो गये। क्रान्तिकारियों के घरों में दिन दहाड़े आग लगाई गई। उनके परिवार के व्यक्तियों को भूखा मारा गया, उनकी माँ-बहिनों की लज्जा लूटी गई। अंग्रेज अपनी प्रभुता की रक्षा के लिए, जो कुछ कर सकते थे, उन्होंने सब कुछ किया। पर भारतीय वीरों ने भी पैर पीछे नहीं हटाये, हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर झूले, वायसराय की कौंसिल में बम फेंका।

> **राष्ट्रीय पर्व—स्वतन्त्रता दिवस**
> १ प्रस्तावना—(अ) अतीत पर एक दृष्टि, (ब) अनन्त बलिदान।
> २ मनाने की रीति।
> ३ उपसंहार।

धीरे धीरे अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हिली, कई बार धोखे दिये, परन्तु भारतवासी अपने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति के निश्चित ध्येय से विचलित न हुए। सत्य और अहिंसा के शस्त्र के सामने अंग्रेजों की कठोर यातना प्रकम्पित हो उठी। ९० वर्ष की साधना फलवती हुई और अंग्रेजों ने यहाँ से जाने का निश्चय कर लिया। १५ अगस्त,

१९४७ की अर्धरात्रि को शताब्दियों की खोई स्वतन्त्रता भारत को पुनः प्राप्त हो गई। सारे देश मे स्वतन्त्रता की लहर दौड़ गई। भक्त जनता ने मन्दिरों में भगवान की प्रार्थना की, घर-घर में दीप जलाये गये, विद्यालयों मे मिष्ठान वितरण हुआ और रात्रि को सहस्रों दीपों की ज्योति जगमगा उठी।

प्रतिवर्ष प्रत्येक नगर में यह राष्ट्रीय पर्व बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। विद्यालय के छात्र अपने इस ऐतिहासिक उत्सव को बड़े उल्लास और उत्साह के साथ मनाते हैं। हमारे कॉलिज में भी अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष भी यह उत्सव दुगुने उत्साह के साथ मनाया गया। उषा की लालिमा के उदय के साथ ही विद्यार्थी अपने-अपने घरों से निकल पड़े और कॉलेज के प्रांगण में एकत्रित हुए। अध्यापकों ने अपनी-अपनी कक्षाओं की उपस्थिति ली, जिससे यह मालूम हो गया कि कौन-कौन नहीं आया है। बाद में भी विद्यार्थी धीरे-धीरे आते-जाते थे और अपनी-अपनी कक्षाओं की पंक्ति में खड़े हो जाते थे। विद्यार्थियों को ६ बजे का समय दिया गया था। अभी ६ बजने में दस मिनट शेष थे। समस्त कक्षाओं की उपस्थिति पूर्ण हो चुकी थी, जिन विद्यार्थियों को नारे लगाने के लिये एक दिन पहले चुन लिया गया था, वे गगन-भेदी ध्वनि में कॉलेज में ही खड़े होकर नारे लगा रहे थे। जैसे ही ६ बजे वैसे ही प्रधानाचार्य ने प्रभात फेरी में चलने के लिये विद्यार्थियों को संकेत दिया और हम तीन-तीन की पंक्ति बनाकर सड़क पर चलने लगे। आगे वाले विद्यार्थी के हाथ में तिरंगा झण्डा था, उनके पीछे कॉलेज के विद्यार्थी तीन-तीन की पंक्तियों में चल रहे थे। नारे लगाने वाले विद्यार्थी नेता बड़े जोरों से नारे लगा रहे थे। बीच मे एक मधुर सामूहिक गीत गाया जा रहा था, जिसे सभी छात्र बड़ी प्रसन्नता से दुहराते थे। इस प्रकार हम नगर के प्रमुख चौराहों पर होते हुए जिलाधीश की कोठी के सामने से निकले। रास्ते में कई मन्दिर मिले, जिनमें घण्टे बज रहे थे, शंख ध्वनि हो रही थी। यह प्रार्थना इसलिए हो रही थी कि हमारी स्वतन्त्रता चिर-स्थायी रहे, इस आशय की एक सरकारी सूचना भी जनता में प्रसारित हुई थी। नगर में परिक्रमा लगाते हुए हम लोग अपने कॉलिज पहुँचे, वहाँ नौकर झण्डियाँ लगा रहे थे। कॉलेज के मुख्य भवन पर तिरंगा झण्डा लगाया जा रहा था। झण्डा फहराने का समय ८ बजे का था, क्योंकि सभी सरकारी भवनों पर ८ बजे ध्वजारोहण का समय निश्चित किया गया था। अभी ८ बजने में आधा घण्टा था, इसलिए हमें आधे घण्टे की छुट्टी मिल गई। जिन लड़कों के घर पास में थे वे अपने-अपने घरों को जल्दी लौट आने की इच्छा से जल्दी-जल्दी जाने लगे। बाजार में स्थान-स्थान पर तोरण द्वार बने हुए थे, जिन पर स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख सेनानियों के नाम अंकित थे—किसी पर गांधी द्वार तो किसी पर नेहरू द्वार।

ठीक ८ बजे प्रधानाचार्य ने ध्वजारोहण किया, हम सभी छात्रों ने झण्डे को सलामी दी। राज्य के शिक्षा-मन्त्री तथा शिक्षा-संचालक के सन्देश पढ़कर सुनाये गये। कुछ विद्यार्थियों ने अपने मधुर कण्ठ से राष्ट्रीय कविताओं का पाठ किया और अन्त में प्रधानाचार्य का एक सारगर्भित भाषण हुआ। १० बजे से विद्यार्थियों के खेल शुरू हुए। लम्बी कूद, ऊँची कूद, १०० मीटर से लेकर ८०० मीटर तक की दौड़, बाधा दौड़, गोला फेंकना, तश्तरी फेंकना, रस्से पर चढ़ना इत्यादि नाना प्रकार के खेलों मे विद्यार्थी अपनी-अपनी रुचि से भाग लेने लगे। इस बार एक और सुन्दर व्यवस्था कर दी गई थी कि विद्यार्थियों को तुरन्त पारितोषिक मिल रहा था। प्रथम आने वाले छात्र को एक बड़ा थाल, द्वितीय आने वाले को एक कलई का गिलास और तृतीय आने वाले को एक कटोरी मिल रही थी। थाल के प्रलोभन से मैंने भी दौड़ मे भाग लिया। जूनियर

सीनियर्स के ग्रुप बने हुए थे। मुझे सीनियर्स में रखा गया क्योंकि मेरी आयु १६ साल से अधिक थी और साढ़े चार फीट से कद भी ज्यादा था। दौड़ा, बहुत कोशिश की परन्तु वहाँ तो घोड़े को भी मात कर देने वाले विद्यार्थी मौजूद थे, परिणाम यह हुआ कि प्रथम स्थान तो दूर रहा द्वितीय और तृतीय भी नहीं आया। पदक पाने की आशा मन की मन में ही रह गई।

इसके पश्चात् मिष्ठान वितरण हुआ। प्रत्येक विद्यार्थी को थैले में रखे हुए चार-चार लड्डू मिले। इस कार्य के सम्पन्न होने में लगभग एक घण्टा लग गया। कुछ छात्र लड्डू खा रहे थे और कुछ खाकर पानी पी रहे थे और कुछ ने घर जाने के लिए बस्तों में मिठाई के थैले रख लिए थे, जिन पर दूसरे विद्यार्थी घात लगाये हुए थे, चारों ओर स्वतन्त्रता दिवस की प्रसन्नता में विद्यार्थी फूले नहीं समा रहे थे। जो खेलते-खेलते थक गये थे, वे कुर्सियों पर बैठकर सुस्ता रहे थे।

तीन बजे से जुलूस निकलने वाला था। सभी नागरिकों और कॉलिज के छात्रों को पहले जिलाधीश की कोठी पर एकत्रित होने की आज्ञा थी, वहीं से जुलूस प्रारम्भ होगा, ऐसी व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक स्कूल को एक झाँकी तैयार करने का आदेश था। हमारे कॉलिज की भी एक झाँकी ठेले पर सजाई जा रही थी। पौने तीन बजे ही समस्त विद्यार्थी और अध्यापक जुलूस में भाग लेने के लिए चल दिये। यद्यपि मेरा जाने का मन नहीं था क्योंकि सुबह से अब तक मैं थक चुका था, परन्तु क्या करूँ, यदि किसी और स्कूल में होता तो भाग भी जाता, परन्तु यह था गवर्नमेंट कॉलिज जहाँ कठोर अनुशासन रखा जाता है, आज्ञापालन प्रत्येक विद्यार्थी का परम कर्त्तव्य समझा जाता है, अतः विवश होकर जाना पड़ा।

जिलाधीश की कोठी पर अपार जन-समूह उमड़ रहा था। कई हाथी थे, ऊँट और बैल ठेलों पर झाँकियाँ सजाई गई थीं, एन० सी० सी० और प्रान्तीय रक्षा दल के सैनिकों की कई टुकड़ियाँ थीं, बाजे बज रहे थे। जुलूस चलने लगा, नगर के लोग अपनी-अपनी दुकानों से उठकर जुलूस में शामिल होने लगे। लगभग एक मील लम्बा जुलूस था। नगर के प्रमुख मार्गों में कहीं-कहीं ऊपर से फूल बरसाये जाते और कहीं गुलाब जल छिड़का जाता। बाजारों की परिक्रमा लगाते हुए जुलूस का अवसान स्टेडियम ग्राउण्ड पर हुआ, यहाँ पहले से ही लोगों के बैठने तथा मंच इत्यादि का प्रबन्ध हो चुका था। जनता वहाँ बैठने लगी और सभा की कार्यवाही शुरू हुई। नगर के प्रमुख नेताओं के भाषण हुए, कवितायें पढ़ी गईं और स्वतन्त्रता के महत्व को समझाया गया। हमारे कॉलिज के सभी छात्र धीरे-धीरे खिसकने लगे क्योंकि रात्रि को ८ बजे कॉलिज में स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष में एक एकांकी नाटक होने वाला था।

हम लोग घर पहुँचे, खाना खाया, फिर कॉलिज की ओर चल दिये। रंगमंच तैयार था। चारों ओर बिजली के बल्बों से हॉल जगमगा रहा था। एक ओर महिलायें कुर्सियों पर बैठी हुई थीं, दूसरी ओर निमन्त्रित अतिथि। पृथ्वी पर बिछे हुए फर्शों पर छात्रों के बैठने का प्रबन्ध था। 'चौराहा' नामक एकांकी नाटक अभिनीत हुआ। दर्शक मन्त्र-मुग्ध होकर देख रहे थे, बीच-बीच में किसी अभिनेता का अभिनय अधिक पसन्द आ जाने पर तालियों की भी गड़गड़ाहट होती थी। अन्त में प्रधानाचार्य ने सभी आगन्तुकों को धन्यवाद देकर कार्यक्रम समाप्त किया।

यह हमारा सौभाग्य है कि वर्षों की साधना के पश्चात् हमने स्वर्णिम अवसर प्राप्त किया है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस राष्ट्रीय पर्व को उल्लास और उत्साह

के साथ सदैव मनाएँ और देश की समृद्धि और देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये सदैव प्रयत्नशील रहें।

३७. प्रमुख राष्ट्रीय पर्व—गणतन्त्र-दिवस

देश के गणमान्य राजनीतिक नेताओं, मनीषियों तथा देशभक्तों ने मिलकर अखिल भारतीय कांग्रेस के सन् १९२९ के लाहौर वाले अधिवेशन में २६ जनवरी को सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास किया था कि "पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना ही हमारा ध्येय है।" पवित्र सलिला रावी के पुनीत तीर पर समस्त देशभक्तों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक हम पूर्ण स्वराज्य प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक न शान्ति से बैठेंगे और न शत्रु को बैठने देंगे। तभी से निरन्तर यह दिन स्वराज्य दिवस के नाम से देश के कोने-कोने में मनाया जा रहा था। इस दिन सभाएँ होती थीं, जुलूस निकाले जाते थे, राष्ट्रीय ध्वजवन्दन होता था, देशभक्तिपूर्ण वीरों के भाषण होते थे और वही पुरातन प्रतिज्ञा फिर से दोहराई जाती थी। इस दिन शताब्दियों की दासता की शृंखला से दुःखी भारतीय एक स्वर से बलिदान की प्रतिज्ञा करते तथा उत्साह से उनके वक्ष फूल उठते थे। यह वही दिन है, जिस दिन देशभक्तों की धर-पकड़ होती, डन्डे पड़ते और वे जेलों में भर दिये जाते थे, केवल इसीलिये कि वे अपने देश की स्वतन्त्रता चाहते थे। परन्तु गौरांग शासकों को यह सब कुछ सह्य नहीं था, वे इस पवित्र दिवस को मनाने पर प्रतिबन्ध लगाते, जुलूस व सभाओं को अवैध घोषित करते, प्रतिबन्ध तोड़ने पर स्वतन्त्रता के दीवानों को अनन्त यातनायें सहनी पड़ती थीं। परन्तु भारतीय अपने कर्त्तव्य-पथ पर अडिग रहे, भयानक से भयानक प्रभंजन उन्हें अपने पथ से विचलित न कर सके। उसी अविचल देशभक्ति का परिणाम है कि हम आज स्वतन्त्र हैं, हमारी भाषा, हमारी संस्कृति, हमारा धर्म और सभ्यता देश के उन्मुक्त स्वतन्त्र वातावरण में श्वास ले रही है। जिस स्वतन्त्रता रूपी वृक्ष का बीजारोपण आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व लोकमान्य तिलक और गोखले आदि महापुरुषों ने किया था, आज वही वृक्ष अपने अनुपम सौरभ से दिग्दिगन्तों को सुरभित करते हुए पल्लवित-पुष्पित होता हुआ फलभारावनत हो रहा है।

> **प्रमुख राष्ट्रीय पर्व—गणतन्त्र-दिवस**
> १. २६ जनवरी का इतिहास।
> २. भारत का गणतन्त्र राज्य घोषित होना।
> ३. भारत का संविधान।
> ४. राष्ट्र का पावन पर्व।
> ५. २६ जनवरी का महत्त्व।
> ६. उपसंहार।

सन् १९५० में जब भारतीय संविधान बनकर तैयार हो गया, तब यह विचार किया गया कि किस तिथि से इसे भारतवर्ष में लागू किया जाये। अनेक विचार-विमर्श के पश्चात् २६ जनवरी ही इसके लिये अधिक उपयुक्त तिथि समझी गई। अतः २६ जनवरी, १९५० को भारतवर्ष सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न गणतन्त्र घोषित कर दिया गया। देश का शासन पूर्ण रूप से देशवासियों के हाथ में आया। प्रत्येक नागरिक अपने देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व को अनुभव करने लगा। देश के अभ्युत्थान और उसकी मान-मर्यादा की रक्षा को प्रत्येक व्यक्ति अपनी मान-मर्यादा और अभ्युत्थान समझने लगा। देश के इतिहास में वास्तव में यह दिन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज ही तो विदेशी मेघ-मालाओं को विदीर्ण करता हुआ भारत का सूर्य अपने पूर्ण शौर्य के साथ देदीप्यमान हुआ था।

भारतीय संविधान में २२ भाग, ७ अनुसूचियाँ तथा ३९५ अनुच्छेद हैं। संविधान में यह स्पष्ट है कि भारत समस्त राज्यों का एक संघ होगा, जिसके अन्तर्गत चार प्रकार के राज्य होंगे। इनमे प्रथम प्रकार के वे राज्य हैं, जो अब तक ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत प्रान्तों के नाम से प्रसिद्ध थे, जैसे बम्बई, उत्तर प्रदेश, मद्रास, बिहार आदि। दूसरे प्रकार के वे राज्य है, जो देशी राज्यो के विलीनीकरण से बने हैं, जैसे हैदराबाद, मैसूर आदि। तीसरे प्रकार के वे राज्य हैं, जो परिस्थिति विशेष से बने है जैसे दिल्ली, हिमाचल प्रदेश आदि। चौथे प्रकार के राज्य अण्डमान और निकोबार द्वीप हैं। भारतीय संविधान मे सभी भारतीय नागरिकों के अधिकार और स्वत्व की रक्षा का वचन दिया गया है। लोकतन्त्रात्मक परम्पराओं के निर्वाह की पूर्ण रूप से व्यवस्था की गई है और इस प्रकार भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता की अडिग शिला पर दृढ़ता से आधारित है।

२६ जनवरी अपने राष्ट्र का एक पुनीत पर्व है। अनन्त बलिदानों की पावन स्मृति लेकर यह दिन हमारे समक्ष उपस्थित होता है। कितने वीर भारतीयो ने देश की बलि वेदी पर अपने प्राणों को हँसते-हँसते चढ़ा दिया। कितनी माताओं ने अपनी गोदी की शोभा, कितनी पत्नियों ने अपनी माँग का सिन्दूर और कितनी बहिनों ने अपना रक्षाबन्धन का त्योहार हँसते हँसते स्वतन्त्रता संग्राम की भेंट कर दिया, यह सहज में ही हमें इस पवित्र पर्व पर स्मरण हो जाता है। आज के दिन हम उन अमर शहीदों को अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करते हैं। गणतन्त्र दिवस समस्त देश में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। देश की राजधानी दिल्ली में इस दिन की शोभा अनुपम होती है। देश के भिन्न-भिन्न अचलों से इस दिन शोभा देखने के लिये लोग उमड पड़ते हैं। हर वर्ष विश्व का कोई न कोई महान् व्यक्ति इस अनुपम दृश्य को देखने के लिए दिल्ली पधारता है। २६ जनवरी को इण्डिया गेट के मैदान मे जल, स्थल और वायु सेना की टुकड़ियाँ राष्ट्रपति को सलामी देती हैं। ३१ तोपें दागी जाती हैं। सैनिक वाद्य बजते हैं और राष्ट्रपति अपने भाषण में राष्ट्र को कल्याणकारी सन्देश देते हैं। भिन्न भिन्न राज्यों की मनोहारी झाँकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। रात्रि को समस्त राजधानी विद्युत दीपो के प्रकाश से एक बार फिर जगमगा उठती है। देश के अन्य समस्त अचलो में भी इस प्रकार इस पावन समारोह का आयोजन किया जाता है। खेल तमाशे, सजावट, सभाएँ, भाषण, रोशनी, कवि-सम्मेलन, वाद विवाद प्रतियोगिता आदि अनेक प्रकार के आयोजन सर्वत्र सम्पन्न होते हैं। जनता तथा सरकार दोनों ही मंगल पर्व को मनाते हैं सम्पूर्ण देश में प्रसन्नता और आनन्द की लहर दौड जाती है।

वास्तव मे २६ जनवरी एक महिमामयी तिथि है। इसके पीछे भारतीय आत्माओं के त्याग, तपस्या और बलिदान की अमर कहानी निहित है, जो सदैव भावी सन्तति को एक अमर सन्देश देकर प्रेरणा का अक्षुण्ण स्रोत बहाती रहेगी। भारतीय इतिहास में यह दिन स्वर्ण अक्षरों मे उल्लिखित होगा। प्रत्येक भारतीय का यह परम कर्त्तव्य है कि वह इस पर्व को अधिकाधिक उल्लास और आह्लाद के साथ मनाये और अनन्त प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राप्त स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये कटिबद्ध हो। परन्तु स्वतन्त्रता की अक्षुण्णता के लिये यह आवश्यक होगा कि हम पारस्परिक भेदभाव को छोड़कर सहयोग और ऐक्य में विश्वास करें, नानाप्रकार से निश्चल शान्त प्रकाशपूर्ण मार्ग पर अग्रसर हों, तभी हम इस महिमामयी तिथि की मान-मर्यादा की रक्षा कर सकेंगे।

३८. भारतीय शौर्य पर्व—विजयदशमी

भारतवर्ष की संस्कृति में त्योहार माला में मोतियों की भाँति पिरोए हुए हैं। उन्हें उससे पृथक् नहीं किया जा सकता। प्रत्येक उत्सव अपना-अपना धार्मिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक महत्व रखता है। आश्चर्य की बात है त्योहार भी जाति के आधार पर बँट गये हैं और विजयदशमी क्षत्रियों के हिस्से में आई, परन्तु हिन्दू संस्कृति में ऐसा कोई उत्सव नहीं जिसे समस्त जातियाँ समान रूप से न मनाती हों। अन्य त्योहारों की भाँति विजयदशमी हिन्दुओं का परम पवित्र पर्व है। देवासुर संग्राम में देवताओं की विजय का शंखनाद करती हुई, विजयदशमी वर्षा ऋतु के अन्त में प्रतिवर्ष हमारे यहाँ आती है। भारतीय जनता अनुराग और उल्लास भरे हृदय से इसका स्वागत करती है। युग-युग से यह त्योहार हिन्दू जनता मे नवीन आशा, नया उत्साह और नव जागृति का संचार करता हुआ पुण्य एवं धर्म की विजय उद्घोषणा करता है। विजयदशमी राम के अलौकिक पुरुषार्थ की स्मृति के रूप मे आती है।

भारतीय शौर्य पर्व—
विजयदशमी

१. प्रस्तावना।
२. उत्सव का समय।
३. प्राकृतिक सौन्दर्य।
४. धार्मिक महत्व।
५. अन्य प्रदेशों में।
६. उपसंहार।

यह त्योहार आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि के दिन भारतवर्ष के समस्त अंचलों में समान रूप से मनाया जाता है। कहीं दुर्गाजी की पूजा होती है, तो कहीं राम की। वर्षा ऋतु के अन्त में और शरद् के आरम्भ में यह उत्सव अपना विशेष आकर्षण रखता है। क्षत्रिय इस पर्व पर शस्त्रों की पूजा करते हैं। कहीं-कहीं घोड़ों की भी पूजा होती है। प्राचीन काल में राजपूत इसी शुभ अवसर पर अपने शत्रुओं पर आक्रमण करने का निश्चय करते थे। आज भी, सभी वर्णों के लोग इस राष्ट्रीय पर्व को बड़ी रुचि से मनाते हैं। आज भी, गाँवों में इसी दिन बड़े-बड़े दंगल होते हैं, जिनमें मल्लविद्या एवं शस्त्रों का प्रदर्शन होता है।

शरद् ऋतु में जब यह उत्सव मनाया जाता है, प्रकृति की शोभा अनुपम होती है। निरभ्र आकाश अत्यन्त स्वच्छ एवं निर्मल होता है। पृथ्वी पर हरी-हरी घास मखमल के समान बिछी रहती है। वर्षा ऋतु में उन्मत्त वेग से उफनकर चलती हुई सरिता अब धीर-मन्थर गति से कलकल करती हुई बहने लगती है। नदियों का नीर निर्मल हो जाता है। गोस्वामी जी के शब्दों में—

'सरिता सर निर्मल जल सोहा।
सन्त हृदय जस गत मद-मोहा॥'

सरोवर सुन्दर सरोजों से अपने हृदय को भर लेते हैं और उन पर भ्रमरों का मधुर गुञ्जन हठात् अपनी ओर दृष्टि आकर्षित कर लेता है। प्रकृति के इसी हाव-विलास के बीच विजयदशमी का पदार्पण होता है और हम प्रसन्नता से फूले नहीं समाते। हमारे स्कूल और कॉलेज बन्द हो जाते हैं। नगरों और गाँवों में रामलीला होने लगती है, जनता उसका आनन्द लेती है।

विजयदशमी के साथ अनेक धार्मिक कथायें सम्बन्धित हैं। रामानुज सम्प्रदाय के अनुसार, इस पवित्र तिथि को राम ने रावण का संहार किया था। इसी कारण से भारतवर्ष के नगर-नगर तथा गाँव-गाँव में दशहरे के एक सप्ताह पूर्व से रामलीला का आयोजन किया जाता है। तुलसीकृत रामायण के आधार पर इन लीलाओं में रामचन्द्र

जी के जीवन से सम्बन्धित समस्त घटनायें दिखाई जाती हैं। विजयदशमी के दिन रावण और कुम्भकर्ण के शरीर का पुतला बनाकर जलाया जाता है। इस प्रकार, हम लोग विजयदशमी के पुण्य पर्व को रामचन्द्र जी की स्मृति के रूप में तथा दानवी शक्ति की पराजय के रूप मे मनाते हैं।

शाक्तों (शक्ति की पूजा करने वालों) के अनुसार इस उत्सव से एक और पौराणिक कथा सम्बन्धित है। जब महिषासुर नामक राक्षस के अत्याचारों से जनता में कोहराम मच गया, देवता भी कम्पित हो उठे, तो उन्होंने मिलकर महाशक्ति की उपासना की। भक्तों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर महाशक्ति श्री दुर्गा जी प्रकट हुईं। उन्होंने अपने अनन्त पराक्रम से महिषासुर तथा शुम्भ और निशुम्भ, आदि भयङ्कर राक्षसो का वध करके भयग्रस्त जनता की रक्षा की। तभी दैवी-शक्ति की विजय-स्मृति के रूप में हम इस त्योहार को मनाते हैं। आश्विन शुक्ल पक्ष प्रतिपदा तिथि में दशहरा प्रारम्भ होता है। उसी दिन से दुर्गा पाठ होने लगते हैं। दुर्गा जी के भक्त इस उत्सव को नवरात्र भी कहते हैं। नवरात्र में प्रतिपदा से लेकर नवमी तक दुर्गा जी की पूजा होती है और दुर्गा सप्तशती का पाठ होता है। बहुत से भक्त नौ दिन तक व्रत रखते हैं। केवल १ लौंग या जोडा खाकर ही अपना फलाहार करते हैं। नवें दिन यज्ञ होता है। रात्रि में जागरण होता है और घर घर मे देवी जी के गीत गाये जाते हैं।

इस उत्सव पर किन्हीं किन्हीं स्थानों मे शमी वृक्ष की पूजा भी होती है। इस पूजा से सम्बन्धित एक पौराणिक कथा है। महाराजा दिलीप के पुत्र रघु ने एक बार विश्वजित यज्ञ किया। उस यज्ञ में उन्होंने समस्त धन विद्वानों, ब्राह्मणो, आचार्यों तथा अतिथियों को दान में दे दिया। तभी महर्षि वरतन्तु के आश्रम में विद्याध्ययन समाप्त करके उनका कौत्स नाम का शिष्य रघु के पास आया और गुरुदक्षिणा में देने के लिये चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें माँगीं। रघु के पास उस समय कुछ नहीं था, बड़ी चिन्ता में पड़ गये। फिर विचार किया कि धनाधिपति कुबेर पर आक्रमण करना चाहिये, वहीं से इतना द्रव्य प्राप्त हो सकता है। आक्रमण के भय से भयभीत कुबेर ने रात्रि में ही आकाश से एक शमी वृक्ष के ऊपर असख्य स्वर्ण मुद्राओ की वर्षा की, रघु ने भी प्रसन्न होकर समस्त स्वर्ण मुद्रायें गुरुदक्षिणा के लिये कौत्स को दे दीं। इसी घटना की स्मृति में विजयदशमी के दिन शमी वृक्ष की विधिवत् पूजा होती है।

उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यभारत, राजस्थान आदि प्रदेशों की तरह बंगाल में भी विजयदशमी का विशेष महत्व है। वे इसे दुर्गापूजा के नाम से सम्बोधित करते हैं। उनका विश्वास है कि राम जब युद्ध में रावण को परास्त करने मे अपनी असमर्थता का अनुभव करने लगे तब उन्होंने महामाया दुर्गा जी की पूजा की। महामाया के चरणों में चढ़ाने के लिये हनुमान को एक सौ एक नीलकमल लेने के लिये भेजा। उन्हें सौ कमल तो मिल गये, परन्तु एक नहीं मिल पाया। हनुमान थक कर लौट आये और अपना वृत्तान्त राम को सुनाया। उन्होंने कहा, "यदि एक नीलकमल न मिला तो क्या चिन्ता, मुझे भी तो सारा संसार नीलकमल के समान नेत्रों वाला कहता है, मैं ही उन सौ कमलों मे अपना एक नेत्र मिलाकर एक सौ एक करके भगवती महामाया के चरणों में चढ़ा दूँगा।" इतना कहकर नेत्र निकालने ही वाले थे कि महामाया ने राम को साक्षात् दर्शन दिये और कहा, "पुत्र मैं तेरी भक्ति से प्रसन्न हूँ और मैं तुझे वरदान देती हूँ कि रावण के साथ युद्ध में तेरी विजय होगी और आज ही होगी।" फल यह हुआ कि राम की विजय हुई। इसी की स्मृति में आज भी वहाँ दुर्गा जी की पूजा होती है।

यह त्योहार हमारी और हमारे देश की सांस्कृतिक एकता का आधार है और अनेकता में एकता, विषमता में समता तथा पाप पर पुण्य की विजय का सन्देश देता

हुआ प्राणी-प्राणी में नवचेतना जाग्रत करता है। यह उत्सव हमें शिक्षा देता है कि अन्याय, अत्याचार और दुराचार को सहन करना भी एक महान् पाप है, उनके आमूलोच्छेदन के लिये समाज में संगठन और एकता आवश्यक है, जिसके उदाहरण श्री राम हैं। पाप के विनाश के लिये कटिबद्ध रहना चाहिये। वीर भावनाओं से ओत-प्रोत विजयदशमी हमें राष्ट्रीय एकता और दृढ़ता की प्रेरणा देती है, आततायियों को समाप्त करने का संकेत करती है, हमारे हृदय की वीर भावनाएँ आज के दिन पुनः अनुप्राणित हो उठती हैं।

अब हम स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक हैं। हमें अपनी पुरातन दूषित परम्परायें समाप्त कर देनी चाहियें। देवी माँ तो श्रद्धा और अनन्य भक्ति से प्रसन्न होती है, विजयदशमी हमे पवित्र सन्देश देती है कि जीवन में राम के चरित्रों और आदर्शों का अनुकरण करो न कि रावण का, तभी जीवन सुखी और शान्त रह सकता है। हमे इन राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक महान् पर्वों को अधिकाधिक प्रसन्नता और उल्लास से मनाना चाहियें। पारस्परिक ईर्ष्या को भूल कर एक दूसरे को गले से लगाना चाहिये, समाज में सहानुभूति और संवेदना का प्रचार करना चाहिये। हमारा कर्तव्य है कि अपने इन शुभ पर्वों से शिक्षा ग्रहण करें और उत्सवों का आयोजन करके गौरव की वृद्धि करें।

?६. समाचार-पत्र और उनकी उपयोगिता

मनुष्य के हृदय मे कौतूहल और जिज्ञासा दो ऐसी वृत्तियाँ हैं, जिनसे प्रेरित होकर वह संसार की नित्य नवीन घटने वाली घटनाओं से परिचित होना चाहता है। वह जानना चाहता है कि आज अपने देश में ही नही, अपितु विश्व के कोने-कोने में क्या हो रहा है। व्यापारी व्यापार के विषय में नये-नये भावों को, समाजशास्त्री समाज की नई व्यवस्थाओं को, साहित्यिक आज के युग की नई रचनाओं और रचनाकारों को तथा सभी प्रकार के मनुष्य राजनीति में होने वाले रोजाना के उत्थान-पतन को जानना चाहते है। आज के युग में विश्व के रंगमंच पर नित्य नवीन घटनायें घट रही हैं। आज ऐसा कोई भी देश नही जहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक नीति में उलट-फेर न हो रहा हो। इसको जानने का सबसे मुख्य साधन समाचार-पत्र ही है। समाचार-पत्र ही एक ऐसा साधन है जिससे लोकतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली पल्लवित और पुष्पित होती हुई संसार को सौरभमय बना सकती है। समाचार-पत्र, शासक और शासित में माध्यम का अर्थात् दुभाषिए का काम करते हैं। इनकी वाणी जनता जनार्दन की वाणी है। वह जनता के हाथों का महान् शस्त्र है। विभिन्न राष्ट्रों तथा जातियों के उत्थान एवं पतन मे समाचार-पत्रों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। एक समय था जबकि एक देश के निवासी दूसरे देशों के समाचार जानने के लिये वर्षों भटकते थे। अपने देश के लिये ही एक अंचल की घटना दूसरे अंचल तक मुश्किल से महीनो मे कर्ण परम्परा के माध्यम से पहुँच पाती थी परन्तु आज मानव के सामने समय अथवा दूरी की कोई ऐसी दीवार नहीं जो बाधा के रूप में उपस्थित हो सके। समाचार-पत्रों ने आज विश्व के अन्तर को समाप्त कर दिया है। सात समुद्र पार की कल रात की दुर्घटना को आज प्रातःकाल ही समाचार-पत्रों में पढ़ लेते हैं और उसके लिए संवेदना प्रकट करने लगते हैं। समाचार-पत्र वास्तव में विश्वात्मैक्य की भावना को सफल बनाने का एक अमूल्य साधन हैं।

आज से लगभग तीन शताब्दी पहले लोगों को समाचार-पत्रों के विषय में कोई ज्ञान नहीं था। केवल कर्ण परम्परा या सन्देशवाहक के माध्यम से ही समाचार एक दूसरे तक पहुँचते थे। समाचार-पत्रों का प्राथमिक उद्गम स्थान इटली है। इसका जन्म इटली के वेनिस नगर में १३वीं शताब्दी में हुआ और इसका प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। जनता ने इसकी उपयोगिता का अनुभव किया। १७वीं शताब्दी में इङ्गलैंड में भी इसका प्रचार हुआ और दिन पर दिन समाचार पत्रों की संख्या बढ़ने लगी। अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों ने भारतवर्ष में पदार्पण किया। जब उन्होंने देखा कि देश में कोई ऐसा साधन नहीं जिससे कि हम अपनी बात जनता तक पहुँचा सकें तथा जनता की बात अपने तक ला सकें तब उन्होंने भारतवर्ष में भी समाचार-पत्रों का श्रीगणेश किया। ईसाई पादरियों ने भारतवर्ष की भोली-भाली जनता के हृदय तक अपने धर्म की विशेषताओं को पहुँचाने के लिये 'समाचार-दर्पण' नामक पत्र निकाला था। उससे प्रभावित होकर तथा उन्हें मुँह तोड़ उत्तर देने के लिये ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने 'कौमुदी' नामक पत्र निकाला। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 'प्रभात' नामक समाचार-पत्र का सफल सम्पादन किया। इसके बाद तो देश में समाचार-पत्रों की सर्वप्रियता बढ़ने लगी और देश के विभिन्न अंचलों से भिन्न भिन्न भाषाओं में समाचार-पत्र निकलने लगे। उन्नीसवीं शताब्दी में समाचार-पत्रों में विषय भी बढ़े, क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक और क्या साहित्यिक।

> **समाचार-पत्र और उनकी उपयोगिता**
>
> १ भूमिका।
> २ इतिहास।
> ३ मुद्रण कला का विकास।
> ४ समाचार-पत्रों से लाभ।
> ५ हानियाँ।
> ६ उपसंहार।

मुद्रण कला के विकास की कहानी ही भारत के समाचार-पत्रों के विकास की कहानी है। भारतवर्ष में जैसे जैसे मशीनों का युग बढ़ता गया उसी गति से समाचार-पत्र भी बढ़ते गये। आज यह व्यवसाय अपने पूर्ण यौवन पर है। बड़े और छोटे सभी प्रकार के समाचार-पत्र देश में प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसा कोई नगर नहीं जिसमें दस-पाँच समाचार-पत्र प्रकाशित न होते हों। समाचार-पत्र के व्यवसाय में बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होती है और धन की भी, इसीलिये यह व्यवसाय मुख्य रूप से पैसे वालों के हाथ की कठपुतली बना हुआ है। सर्वप्रथम छापने के लिये मशीन, मशीनमैन, कम्पोजिटर, सम्पादक तथा संवाददाता, इतने व्यक्ति एक साथ समाचार-पत्र में सहायक होते हैं। समाचार-पत्र की सफलता उसके संवादों और संवादों की सफलता संवाददाताओं पर निर्भर होती है। बड़े-बड़े समाचार-पत्रों के संवाददाता सारे संसार में होते हैं। राष्ट्रपति भवन से लेकर पनवाड़ी की दुकान तक आप इन्हें छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी जगह पा सकते हैं। ये लोग आधुनिक युग के नारद हैं, किसी भी स्थान पर इनका प्रवेश कानूनी दृष्टि से वर्जित नहीं। टेलीफोन, तार तथा पत्रों आदि की सहायता से ये लोग विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक के समाचार अपने पत्रों को भेजते हैं। समाचार-पत्र का सम्पादकीय विभाग उनमें उचित संशोधन करके कम्पोजिटरों के पास भेजता है। इसके बाद मशीनमैन उन्हें छापते हैं और फिर दूर-दूर तक के नगरों में रेल, हवाई जहाज, मोटर, बस आदि की सहायता से उन्हें शीघ्रातिशीघ्र भेजने का प्रयत्न किया जाता है।

देशवासियों की व्यापारिक उन्नति में समाचार-पत्र एक बहुत बड़ा सहायक साधन है। अपनी व्यावसायिक उन्नति के लिये हम किसी भी पत्र में अपना विज्ञापन

प्रकाशित करा सकते हैं। अपनी तथा अपने यहाँ की बनी हुई वस्तुओं की विशेषता दूर-दूर तक की जनता के सामने रख सकते हैं। इस प्रकार हमारी ग्राहक संख्या बढ़ जाती है और घर बैठे ही बाहर से माल मँगवाने के आर्डर आते रहते हैं। बड़ी-बड़ी विदेशी फर्में इसी माध्यम से घर बैठे लाखों रुपए कमाती है।

पढ़े-लिखे, परन्तु बेरोजगार, समाचार-पत्रो मे अपनी रोटियाँ ढूंढते है। राजकीय तथा गैर-सरकारी नौकरियों के विज्ञापन के लिए आजकल एक पूरा पृष्ठ समाचार-पत्र मे आता है। अविवाहित बन्धु समाचार-पत्रों में ही अपनी गृहिणियों की खोज करते हैं और वे पिता जो अपनी कन्या के लिए वर ढूंढते-ढूंढते थक जाते हैं, समाचार-पत्रों का आश्रय लेते हैं। माँ से रूठकर पुत्र, पत्नी मे लड़कर पति और कुसंगति से प्रेम करके छोटा बच्चा जब घर से निकल जाता है तब उसको बुलाने और खोज करने के माध्यम का श्रेय समाचार-पत्रों को ही है। आज के युग में चलचित्रों की इतनी सफलता का श्रेय समाचार-पत्रों को ही है। तस्वीर बनकर तैयार नहीं हुई, परन्तु वर्षों पहले से धड़ाधड़ चित्ताकर्षक विज्ञापन निकलने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि मनचले लोग चित्र आने की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। जून के अन्तिम सप्ताह में जबकि समाचार-पत्रों में विभिन्न परीक्षाओं के परीक्षा-परिणाम प्रकाशित होते है, तो उस समय लाखों विद्यार्थी अखबार वालों की दुकान के चक्कर काटते देखे जाते है, अतः समाचार-पत्र छात्रों के भाग्य-निर्णायक भी हैं।

आज के युग में पिछड़ी हुई जातियों के उत्थान मे समाचार-पत्रो ने बहुत बड़ी सहायता की है। किसी शोषित जाति पर प्रशासकों द्वारा किए गए अत्याचारों की करुणापूर्ण कहानी के सन्देश को सारे संसार में फैलाकर अन्य देश या जाति वालो की संवेदना या सहानुभूति प्राप्त करने मे समाचार-पत्र सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुए है। भारतवर्ष की राष्ट्रीय चेतना को सजग बनाने मे समाचार-पत्रों ने आशातीत योगदान दिया है और उसी का फल है कि आज हम स्वतन्त्र हैं और हमारे देश का मस्तक गर्वोन्नत है।

संसार की सभी वस्तुएँ सुन्दर हैं और कुरूप भी। जहाँ किसी वस्तु से हमें लाभ है वहाँ हमे उससे हानि की भी आशंका हो सकती है। समाचार-पत्र जहाँ हमारी सर्वाङ्गीण सहायता करते हैं वहाँ अनेक बार उनसे जनहित और राष्ट्रहित दोनों को बड़े घातक परिणाम भी भोगने पड़ जाते हैं। कभी-कभी स्वार्थी और युयुत्सु प्रकृति के प्राणी अपनी दूषित और विषैली विचारधाराओं को समाचार-पत्रो में प्रकाशित करके दूसरी जाति या देश के साथ घृणा की भावना उत्पन्न कर देते है। इससे राष्ट्र में अराजकता फैल जाती है, साम्प्रदायिक उपद्रव होने लगते हैं और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को शत्रु की दृष्टि से देखने लगता है। पिछले विश्वयुद्ध में इसी प्रकार के कुत्सित और घृणापूर्ण विचार फैलाये गये थे। चारित्रिक दृष्टि से समाचार-पत्र कभी-कभी देश को पतन के गर्त मे धकेल देते हैं। अश्लील विज्ञापनों तथा नग्न चित्रों द्वारा लोगों के विचार ही दूषित नही होते अपितु उनका आत्मिक और मानसिक पतन भी होता है। संवाददाताओं की निरंकुशता भी जनता को अखरने लगती है। झूठ को सच और सच को झूठ बनाने में ये लोग सिद्धहस्त होते हैं। अच्छे को बुरा कह देने का मतलब यह है कि ये लोग अपनी आत्मा और अपने देश के साथ अन्याय कर रहे हैं।

आज स्वतन्त्रता का युग है। जनता को अपने शासकों की आलोचना करने तथा उनके कार्य से असन्तुष्ट होने पर उन्हें पदच्युत करने का अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने विचारों में स्वतन्त्र है और उन्हें प्रकट करने का जन्मजात

अधिकार है। अपने विचारों को जनता के कानों तक पहुँचाने के दो ही माध्यम हैं—भाषण और समाचार-पत्र। भाषण का अधिकार-क्षेत्र कुछ सीमित है और समाचार-पत्रों का विस्तृत। भारतवर्ष के स्वतन्त्रता संग्राम में समाचार-पत्रों ने अद्वितीय योगदान दिया था। अतः आज युग की पुकार है कि शासन को इन्हें अधिकाधिक स्वतन्त्रता देनी चाहिए, परन्तु साथ साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कहीं समाचार-पत्र निरंकुश शासक की भाँति बिल्कुल मनचाही तो नहीं करने लगे हैं। ●

४०. अहिंसा और विश्वशान्ति

पिछले दो महायुद्धों में भयानक नरसंहार को देखकर आज के विश्व का मानव युद्ध की विभीषिकाओं से सन्त्रस्त होकर अपनी रक्षा के लिए शरण ढूँढ रहा है। बड़े-बड़े राष्ट्रों के कर्णधार युद्ध न करने के लिए योजनाएँ बना रहे हैं और उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास कर रहे हैं, परन्तु बीच-बीच में कुछ ऐसी चिनगारियाँ फूट निकलती हैं, जिससे युद्ध की सम्भावना फिर से वृद्धि पा जाती है और युद्ध-विराम योजनाएँ असफल दृष्टिगोचर होने लगती हैं। आज विश्व उसी स्थिति में है, जिस स्थिति में महाराजा अशोक कलिंग विजय के उपरान्त थे। अशोक ने मगध साम्राज्य की पूर्णता के लिए कलिंग पर आक्रमण किया था। कलिंगवासी लड़े भी परन्तु विजय प्राप्त न कर सके। कलिंग पर विजय प्राप्त तो हो गई, परन्तु अशोक का हृदय चीत्कार कर उठा, उसके ऊपर खिन्नता छा गई। कलिंग-विजय में कितना भीषण नरसंहार हुआ, कितने घर वीरान हुए, कितनी सधवा माँ बहिनों ने अपनी माँग का सिन्दूर सदैव-सदैव के लिए पोंछ डाला, बालक अनाथ हुए। देश की हरी भरी भूमि श्मशान जैसी भयानक दिखाई पड़ती थी। सम्राट अशोक की आँखों के आगे हिंसा की नग्नता नाचने लगी। उस दिन से अशोक हिंसा के स्थान पर अहिंसा का उपासक बन गया। उसने प्रतिज्ञा की कि वह कभी शस्त्र धारण नहीं करेगा, संसार को हिंसा के बजाय प्रेम, करुणा और अहिंसा से जीतेगा। इस घटना के पश्चात् अशोक ने जो विजय प्राप्त की वह आज भी भारतीय इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों से अंकित है। हिटलर और नैपोलियन जैसे वीर भी इतनी महान् विजय प्राप्त न कर सके, जितनी अशोक ने की। चीन, जापान, जावा, बाली, स्याम और सिंहल आदि देशों में आज भी बौद्ध धर्म छाया हुआ है। यह अशोक के प्रेम अभियान का ही परिणाम है।

अहिंसा और विश्वशान्ति

१ प्रस्तावना।
२ अहिंसा का उदय।
३ अहिंसा से लाभ।
४ अहिंसा और विश्वशान्ति।
५ निष्कर्ष।

भगवान् बुद्ध का सबसे बड़ा धर्म अहिंसा ही था। प्रेम और करुणा ही उनके सबसे बड़े मन्त्र थे। मन वाणी और कर्म से किसी भी प्राणी को कोई कष्ट न देना ही अहिंसा का मूल रूप है। अशोक ने जीवमात्र को सुख पहुँचाने के लिए जितने भी उपाय सम्भव हो सकते थे, किए। अहिंसा और शान्ति का सन्देश दूर-दूर देशों में प्रसारित करने के लिए उसने सुशील और सच्चरित्र विद्वानों को भेजा। अपने राजकुमार महेन्द्र और राजकुमारी संघमित्रा को भिक्षु और भिक्षुणी बनाकर बौद्ध धर्म की शिक्षा के प्रचार के लिए सिंहल द्वीप भेजा था। आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने भगवान् बुद्ध के सत्य, प्रेम और अहिंसा का प्रचार किया, जिससे विश्व में शान्ति और सद्भाव स्थापित हो सके।

ही होता है। महात्मा बुद्ध ने पचशील के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उनके सिद्धान्त थे—

१—पाणतिपाता वेरमणी सिक्खापदसमादियामि
२—मुसावादा वेरमणी सिक्खापद समादियामि
३—अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापद समादियामि
४—कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि
५—सुरामेरयमज्ज पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापद समादियामि

इनमें से पहले शील का अर्थ है कि मैं अहिंसा की शिक्षा ग्रहण करता हूँ। इसी प्रकार महात्मा बुद्ध और पण्डित नेहरू दोनो के पचशील की यही पुकार थी कि ससार में अहिंसा होनी चाहिए, तभी विश्व शान्ति सम्भव है। महात्मा बुद्ध का पचशील शक्ति को लक्ष्य बनाता था और दूसरा विभिन्न राष्ट्रों को लक्ष्य करके उद्भावित है।

यदि हम पिछले युद्धों की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो हमें नि सन्देह यह विदित हो जायेगा कि युद्ध के मूलभूत कारण क्या हैं। विचार-विमर्श के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि पूँजीवाद, वर्ण-भेद, जाति-भेद, साम्राज्यवाद आदि विचारधारायें ही युद्ध की अग्नि को भड़काती हैं। मानव की स्वार्थलोलुपता और शोषक की प्रवृत्ति उसे युद्ध के लिए प्रोत्साहित करती है।

धरातल से युद्ध की विभीषिका को सदा-सदा के लिए समाप्त करने के लिए गाँधी जी ने विश्व को अहिंसा रूपी अस्त्र प्रदान किया। गाँधी जी कहा करते थे कि "प्रेम और अहिंसा द्वारा विश्व के कठोर से कठोर हृदय को भी कोमल बनाया जा सकता है।" उन्होंने इन सिद्धान्तो का परीक्षण भी किया और वे नितान्त सफल सिद्ध हुए। हिंसा से हिंसा बढती है, घृणा घृणा को जन्म देती है और प्रेम से प्रेम की अभिवृद्धि होती है इसलिए प्रत्येक राष्ट्र पारस्परिक द्वेष भाव के स्थान पर प्रेम की भावना जाग्रत करे। विश्वबन्धुत्व और अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना में वृद्धि किए बिना शान्ति स्थापित नही हो सकती। सयुक्त राष्ट्र सघ ने कोरिया और मिस्र युद्ध को रोककर विश्व शान्ति को भग होने से बचाया। ईराक मे क्रान्ति द्वारा प्रजातन्त्र की स्थापना की गई। साम्राज्यवादी राष्ट्र ब्रिटेन और अमेरिका ने इसका विरोध किया और अपनी सेनायें लेबनान और जोर्डन में भेज दीं। विश्व-शान्ति तृतीय विश्व युद्ध के रूप में भंग होने वाली थी, परन्तु प० नेहरू और रूस के तत्कालीन प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव ने सयुक्त राष्ट्र सघ की सहायता से अहिंसा के द्वारा युद्ध रोकने का पूर्ण प्रयास किया और उन्हें अपने प्रयासो से पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई। पचशील और अहिंसा के सिद्धान्तो पर ही लगभग दो दशकों के अन्तराल के बाद भारत सरकार के विदेश मन्त्री ने १२ फरवरी, १९७९ से २० फरवरी, १९७९ तक चीन यात्रा करके पारस्परिक सीमा विवादों को स्नेह और सौहार्द्रपूर्ण वातावरण मे सुलझाने के प्रयत्नों का सूत्रपात किया।

१७ फरवरी, ७९ को सहसा चीन ने वियतनाम पर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण २ मार्च ७९ तक रहा। इस बीच भारत ने अहिंसा के आधार पर विश्वशान्ति स्थापित करने के लिये सयुक्त राष्ट्र सघ की सुरक्षा परिषद मे २५ फरवरी, ७९ को शान्तिपूर्वक आपसी मतभेदों को दूर करने का प्रस्ताव रक्खा। इस प्रकार अहिंसा से विश्व शान्ति के मार्ग को प्रशस्त किया। इससे पूर्व कम्पूचिया पर वियतनाम द्वारा आक्रमक कार्यवाही के समय भी अहिंसा और पारस्परिक सौहार्द्र का मार्ग ही खोजा गया था।

अत यह निश्चित है कि बिना प्रेम और अहिंसा के विश्व में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। शान्ति के अभाव में मानव जाति का विकास सम्भव नहीं, विनाश

एक समय था जबकि देश की प्रत्येक प्रगति, चाहे वह धार्मिक हो या आर्थिक, चाहे वह सामाजिक हो या वैदेशिक, सभी राजनीति के अन्तर्गत आती थी। परन्तु आज के युग में राजनीति शब्द का अर्थ इतना संकुचित हो गया है कि अब इसका अर्थ केवल वर्तमान सरकार का विरोध करना ही समझा जाता है।

भारतवर्ष एक गणतन्त्र देश है। जनता के चुने हुए प्रतिनिधि देश की नीति का संचालन करते हैं। आज प्रत्येक व्यक्ति शासन में अपना प्रतिनिधित्व चाहता है। अपने स्वार्थ में दूसरों को बहकाने का प्रयत्न करता है। यह गन्दी दलबन्दी ही आज की राजनीति है, जिससे दूर रहने के लिये विद्यार्थियों से कहा जाता है। विद्यार्थियों के पास उत्साह है, उमङ्ग है, परन्तु साथ-साथ अनुभवहीनता के कारण जब शासन उनके विरुद्ध कार्यवाही करता है, तब उस समय उन पथभ्रष्ट करने वाले नेताओं के दर्शन भी नहीं होते। जनता कहती है कि स्वतन्त्रता संग्राम में विद्यार्थियों को भाग लेने के लिये प्रेरणा देने वाले आज उन्हें राजनीति से दूर रहने के लिये क्यों कहते हैं? निःसन्देह विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने का अधिकार है, पर देश की रक्षा के लिये, उनके सम्मान एवं संवर्धन के लिये, न कि शासन के कार्य में विघ्न डालने और देश में अशान्ति फैलाने के लिये।

विद्यार्थी का परम कर्त्तव्य विद्याध्ययन ही है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। उन्हें अपनी पूरी शक्ति ज्ञानार्जन में ही लगानी चाहिये। अब भारतवर्ष स्वतन्त्र है। अपने देश की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये एवं पूर्ण समृद्धि के लिये हमें अभी बहुत प्रयत्न करने हैं। देश को योग्य इन्जीनियरों, विद्वान डाक्टरों, साहित्य मर्मज्ञ विद्वानों, वैज्ञानिकों और व्यापारियों की आवश्यकता है, इनकी पूर्ति विद्यार्थी ही करेंगे। विद्यार्थियों की देशभक्ति देश की रचनात्मक सेवा करने में है न कि विरोध प्रदर्शन में। हमारा देश अज्ञानान्धकार के गहन गर्त में शताब्दियों से विलीन है। विद्यार्थी देश में ज्ञान-रश्मियों के प्रसार में पूर्ण सहयोग दे सकते हैं।

विद्यार्थी राष्ट्र की अमूल्य निधि हैं। देश की समस्त आशाएँ इन्हीं पर निर्भर हैं। उन्हें अपने समय, अपनी शक्ति, अपनी कार्यक्षमता और अपने बौद्धिक बल का देश की दुर्गन्धिपूर्ण राजनीति में अपव्यय नहीं करना चाहिये। देश-सेवा ही उनकी राजनीति है। उनका विधिवत् पूर्ण परिश्रम से अध्ययन करना ही देश की प्रगति करना है।

४२. भारतीय जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव

जब दो विभिन्न जातियाँ परस्पर मिलती हैं, तब एक नवीन एवं विचित्र परिस्थिति उत्पन्न होती है। आम लोग न एक दूसरे के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझ पाते हैं और न भाषा को। न वेशभूषा में समानता होती है और न रीति-रिवाजों में। न खान-पान एक सा होता है और न आचार-विचार। परन्तु जब एक दूसरे को परस्पर सम्पर्क में रहने का अवसर मिलता है तब शनैः शनैः एक दूसरे की संस्कृति और सभ्यता से परिचय प्राप्त होने लगता है, एक जाति का दूसरी जाति पर प्रभाव पड़ने लगता है, यह प्रभाव जीवन के सभी क्षेत्रों में—क्या भाषा, क्या विचार, क्या वेशभूषा सब पर समान रूप से पड़ता है। दोनों जातियों में से किस पर किसका प्रभाव अधिक पड़ा इसका उत्तर केवल विजेता और विजित की तात्कालिक स्थिति ही बतलाती है। विजेता जाति की संस्कृति और सभ्यता अधिक प्रभावपूर्ण होने के कारण विजित जाति पर अपना प्रभाव डाल देती है और स्वयं विजित की कुछ

विशेषताओं को आंशिक रूप से ग्रहण करती है। फल यह होता है कि विजित जातियाँ विजेता जाति के रंग में पूर्ण रूप से रंग जाती हैं, क्योंकि बिना उसकी "हाँ में हाँ" मिलाए उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा का कोई मार्ग ही दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रकार हमारे पुरातन संस्कारों पर एक अपरिचित संस्कृति और सभ्यता अपना अधिकार जमा लेती है।

भारतीय जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव

१ प्रस्तावना।
२ भारतीय जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव।
३ उसके दुष्परिणाम।
४ उपसंहार।

भारतवर्ष के पवित्र धरा धाम पर अंग्रेजों का आधिपत्य हुआ और शनैः-शनैः प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर उनका प्रभाव पड़ने लगा। भारतीय संस्कृति की पृष्ठ-भूमि में त्याग और तपस्या, दया और दान, सन्तोष और शान्ति का महत्वपूर्ण स्थान था। विदेशी संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति के इन आधारभूत तत्वों का स्थान भोगवाद और भौतिकवाद ने ले लिया। जनता ने शासन के सम्पर्क में आने के लिये उसकी संस्कृति और सभ्यता को अपनाना आरम्भ किया। देशी होते हुए भी विदेशी राग अलापना आरम्भ किया। दासता की भावनायें उत्तरोत्तर दृढ़ होती गईं। देववाणी संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा प्राय: समाप्त सी होती गई। जनता अधिक से अधिक संख्या में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने में प्रयत्नशील हुई। ऐसा होना भी स्वाभाविक ही था क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय नवयुवकों को ही नौकरी मिलती थी। नौकरी का प्रलोभन जनता के लिये पर्याप्त था। भारतीय जनता को युगों तक अपने पाश में आबद्ध रखने के लिये विदेशी शासकों को यह आवश्यक था कि वे यहाँ अपनी भाषा, अपने विचार और अपनी सभ्यता का प्रचार और प्रसार करें और भारतीय साहित्य को, यहाँ के पूर्वजों की गौरव-गाथाओं को, सदैव के लिये समाप्त कर दें, तभी उनका साम्राज्य भारत में चिरस्थायी हो सकता था। उन्होंने ऐसा ही किया। हमारे हृदय में दासता की भावना उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। खान पान, रहन सहन, आचार विचार अर्थात् जीवन के सभी क्षेत्रों में हमने विदेशियों को अपना आदर्श मानना आरम्भ कर दिया। हम राजनैतिक रूप में परतन्त्र तो थे ही, परन्तु हमने स्वयम् जानबूझकर अपने को सामाजिक परतन्त्रता की बेड़ियों में भी जकड़ लिया। परिणाम यह हुआ कि भारतीयों की धमनियों में अंग्रेजियत का खून दौड़ने लगा। 'English man made in India' अर्थात् 'भारत में निर्मित अंग्रेज' बन गये। पर यह नहीं सोचा कि—

"दाजर होय न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय"

प्रत्येक राष्ट्र का रहन सहन उस राष्ट्र के प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल होता है। अंग्रेजों का देश शीत प्रधान देश है। वे लोग अपने शरीर के लिये सदैव कसे हुए चुस्त कपड़े पहनते हैं। कोट, पैंट, टाई, हैट आदि सभी उपकरण शीत-रक्षा के लिये आवश्यक हैं। भारत गर्म देश है, यहाँ न इतने गर्म कपड़ों की आवश्यकता है और न कसी हुई पोशाक की। इसीलिए यहाँ की वेशभूषा ढीली ढाली थी। लोग आराम से कुर्ता धोती पहिनते थे। मुसलमानों के आगमन ने पजामे का आविष्कार किया था। अब मुस्लिम [illegible] में हमने चूड़ीदार [illegible] शेरवानी पहनी। "आराम [illegible]" कहना सीखा, स्त्रियों ने [illegible] स्त्रियों को घर की चहारदीवारी में बन्द कर दिया, ऐसा था [illegible]।

परन्तु जब देश में अंग्रेजों का शासन हुआ तब यहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बड़ी तेजी से उनके रंग में रंगने लगे और अंग्रेजी वेशभूषा और उनकी सभ्यता पर ऐसे पड़े जैसे कि महीनों का भूखा व्यक्ति रोटी पर पड़ता है। इस प्रकार हम भारतीयों ने "बैगो गया पूर्वी रंक" वाली कहावत सिद्ध कर दी।

आज का भारतीय पाश्चात्य प्रभाव से पूर्णतया प्रभावित है। वह भौतिकवाद के पाश में नख से शिख तक आबद्ध है, उनके जीवन का चरम लक्ष्य केवल सुखोपयोग ही है; परन्तु फिर भी हम देखते हैं कि आज का मानव अशान्त है, दुखी है और अपने वर्तमान से असन्तुष्ट है। यद्यपि जीवन को सुखमय बनाने के लिए आज उसे सभी वैज्ञानिक साधन उपलब्ध है, फिर भी उसकी अन्तरात्मा किसी अज्ञात शान्ति के लिये बेचैन है। समाज में विषमतायें उत्तरोत्तर घनी होती जा रही हैं, भोग-लिप्साओं की वृद्धि के साथ उनकी पूर्ति के प्रयत्न करता है, श्रम की चक्की में वह पिसा जा रहा है। इन समस्त आन्तरिक और बाह्य अशान्तियों का यदि कोई कारण है, तो यह कि पाश्चात्य आदर्शों का प्रभाव भारतीय जीवन पर सीमा से अधिक अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुका है। इसलिये भारतीय जनता विपन्न है। 'खाओ-पिओ और मौज उड़ाओ" (Eat, drink and be merry) के भोगवादी सिद्धान्त ने आज विनाश के गर्त में डाल दिया है। आज का भारतीय अपने पूर्वजों की विचारधारा का मनन करना अपमान समझता है। यह निश्चित है कि उसका यह मिथ्या स्वाभिमान उसे एक न एक दिन ले डूबेगा। कहाँ गये गोस्वामी तुलसीदास जी के ये वाक्य—

'एहि तन कर फल विषय न भाई, सब छल छाँड़ि भजिय रघुराई"

एक दिन वह था जब भारत को विश्वगुरु की उपाधि से सम्बोधित किया जाता था, देश-विदेश के विद्वान् यहाँ अध्यात्मवाद की शिक्षा लेने आते थे। आज का भारतीय तब तक उच्च कोटि के विद्वानों की श्रेणी में नहीं आता, जब तक कि उसके पास कोई विदेशी डिग्री या डिप्लोमा न हो। कितना अन्तर आ गया है भारत के गौरव में। और न वह त्याग है और न तपस्या, न दया है न दान, न सहानुभूति है न सहयोग, संवेदन का तो कहीं नाम ही नहीं। भारत की धर्म-प्राण जनता आज नास्तिकता की ओर बढ़ती जा रही है। न उसे परमात्मा के प्रति आस्था है और न अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने पाश्चात्य सभ्यता पर व्यङ्ग करते हुए लिखा है—

"पाश्चात्य आदर्शों ने जितना हमें ज्ञान दिया है उतना ही व्यस्त रहना भी सिखा दिया है। शान्ति नाम की कोई चीज हम सुनते भर है, कभी अनुभव करने का अवसर नहीं पाते और न उसकी कुछ आवश्यकता है। हलचल से भरे हुए नगरों में लोभन और मन-बहलाव के जो लाखों साधन हैं, वे चौबीसों घण्टे मनुष्यों को एकांत से अलग उस भीड़ में गर्क रखते हैं जिस भीड़ की खास खूबी यह है कि उनमें सोचने और चिन्तन करने का अनुभव नहीं होता। मन के भीतर जो आत्मा नाम का देवता है दिन भर का हिसाब-किताब देने के लिये हमने उसके सम्पर्क में जाना छोड़ दिया है। हमारे पुरखे पाप करते हुए डरते थे, क्योंकि पाप को वे समझते थे, किन्तु हम पाप-पुण्य को नहीं मानते। हमने उस युग के नीतिशास्त्र को त्रुटिपूर्ण और अव्याव-हारिक समझकर एक पृथक् नीतिशास्त्र का निर्माण किया है, जिसमें बुद्धि का प्राधान्य है। आत्मा नाम की कोई ऐसी वस्तु नहीं है, ऐसा हमारा विश्वास हो गया है। इसलिये हमने उसका पूर्णतया बहिष्कार भी कर दिया है। परिणामस्वरूप लन्दन के चौक पर के घड़ियाल की आवाजें रेडियो पर सुन लेते हैं, लेकिन अपने पड़ोसी की आह और कराह हमें सुनाई नहीं पड़ती। आज अधिक से अधिक व्यक्तियों में

मुलाकात करते हैं, लेकिन सम्पर्क जितना भी अधिक बढ़ा है, घनिष्ठता उतनी ही कम हो गई है। हमारे मानसिक महल में कई बरामदे हैं, सारी जिन्दगी हम लोगों से उन्हीं बरामदों में मिलते हैं, परन्तु बरामदे के पीछे जो आत्मा का कक्ष है, उसमें हम किसी को भी नहीं ला पाते। एक खास तरह की वाक्पटुता, एक खास तरह की व्यवहार-कुशलता, एक खास तरह की चतुरता और नकली नैसर्गिकता के सूत से बुनी हुई एक विशेष प्रकार की बनावट हमारी आज की विशेषताएँ हैं, जिन्हें हम निःसंकोच पाश्चात्य सभ्यता द्वारा प्रदत्त वरदान कह सकते हैं। हम यान्त्रिक युग के सुशिष्ट नागरिक हैं। हमारे पूर्वज करघे से कपड़ा बुनते थे। उनके कपड़ा बुनने के साधन कितने फूहड़, भद्दे और श्रमसाध्य थे, फिर भी उनका कपड़ा उनकी आत्मा के भावों से उनके अपने व्यक्तित्व से ओत-प्रोत था। उनका वह कपड़ा उनका अपना था, उस पर अपनत्व की छाप थी। लेकिन आजकल के कारखानों का कौन ऐसा मजदूर है, जो यह कह सकता है कि मशीन के आखिरी मुँह से जो कपड़ा निकल रहा है उसका एक मीटर भी ऐसा है जिसे वह अपना निर्माण कह सके। आज के श्रमिक के लिये जीवन का अर्थ है एक निरर्थक यान्त्रिक क्रिया की बुद्धिहीन अनवरत आवृत्ति। हमारे पूर्वज निरक्षर होकर भी शिक्षित एवं सुसंस्कृत थे, किन्तु हम पढ़ लिखकर भी घोर अशिक्षित हैं। पाश्चात्य दुष्प्रभाव के कारण ही आज के भारतीय युवक हिप्पी बनने की दौड़ लगा रहे हैं। वेशभूषा ऐसी हो गई है कि लड़के और लड़की में दूर से अन्तर ही दिखाई नहीं पड़ता।"

अतः यह आवश्यक है कि यदि हम भारतवर्ष की प्राचीन गौरव-गरिमा को नष्ट नहीं होने देना चाहते तो हमें अपनी वही प्राचीन सभ्यता और संस्कृति अपनानी होगी क्योंकि अपनी संस्कृति के सौन्दर्य और सौरभ में ही राष्ट्रीय जाति के जीवन का सौन्दर्य और यश अन्तर्निहित रहता है। जाति और देश का कल्याण तभी सम्भव है, जब हम अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करें और उस पर चलें अन्यथा नहीं। अपने पिता को ही पिता कहा जाता है, दूसरे के से नहीं। इसीलिये गीता में कहा है कि—

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"



४३. राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता
१ प्रस्तावना (राष्ट्रीयता का उदय)।
२ राष्ट्रीयता की भावना से लाभ।
३ अधिकता से हानि।
४ अन्तर्राष्ट्रीयता का महत्व एवं लाभ।
५ निष्कर्ष।

अपने प्रिय देश पर जब कोई विदेशी आक्रमण करता है, तब देश में आबाल वृद्ध नर-नारी एक स्वर में गर्जना कर उठते हैं कि यह देश हमारा है, हम तुम्हें एक चरण भी आगे नहीं बढ़ने देंगे और इस भीषण गर्जना के साथ हाथों में ध्वज लिये हुए सभी देशवासी शत्रु का मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं अथवा जब देश पराधीनता के पाश में आबद्ध होता है, तब उसे स्वतन्त्र करने के लिये देशवासियों के अविस्मरणीय बलिदान होते हैं। इन दोनों परिस्थितियों में कोई एक विशेष भावना देशवासियों में बिजली दौड़ा देती है। इस भावना को राष्ट्रीयता कहते हैं। राष्ट्रीयता का अर्थ है "देश-प्रेम की उत्कृष्ट भावना"। यह भावना राजनैतिक आन्दोलन का भी रूप धारण कर लेती है, परन्तु जबकि देश

आपदग्रस्त हो। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व भारतवर्ष में भी राष्ट्रीयता की भावना को प्रचण्ड रूप से जाग्रत किया गया था। देशवासियों को देश के स्वर्णिम अतीत की स्मृति दिलाई जाती थी। पुरातन सभ्यता की श्रेष्ठतम परम्पराओं और अपने पूर्वजों के वीरतापूर्ण युद्धों को याद दिलाकर देशवासियों के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना को विकसित किया गया था, जिसके फलस्वरूप असंख्य भारतीयों ने वर्षों तक जेलों की असह्य यातनायें सहीं, लाठी और गोलियों के शिकार हुए, फाँसी का हँसते-हँसते आलिंगन किया, परन्तु अपने अटल ध्येय से विचलित न हुए। अन्त में विदेशियों को विवश होकर यहाँ से पलायन करना पड़ा। जब किसी देश में राष्ट्रीय भावना की इतनी तीव्रगति हो तब देश की शक्ति को दासता के पाश में बाँधे नहीं रह सकते। भारतवर्ष की ही नहीं, चीन तथा इण्डोनेशिया, आदि विश्व के अनेक राष्ट्रों की इसी प्रकार की गौरवपूर्ण कहानी है। आज से लगभग दो शताब्दी पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी इसी प्रकार यूरोपियन जातियों से मुक्ति प्राप्त की थी। यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में अधिक हुआ,, जिसके परिणामस्वरूप बिस्मार्क ने जर्मनी में, मेजिनी व मुसोलिनी ने इटली में एक सुसंगठित राज्य की स्थापना की। इटली ने तो अपना साम्राज्य बढ़ाने के लिए अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने अधिकार में ले लिया। राष्ट्रीयता की उत्कृष्ट भावना को जाग्रत करने में देश के कवियों, उपन्यासकारों, सङ्गीतज्ञों तथा राजनीतिक वक्ताओं का विशेष हाथ रहता है। उदाहरण के लिए, इटली में मेजिनी तथा जर्मनी में हीगल तथा नीत्शे का राष्ट्रीय भावना को दृढ़ करने में बहुत बड़ा सहयोग था। हमारे देश के अनेक वीरों ने राष्ट्रीयता की भावना के कारण ऐसे-ऐसे स्तुत्य कार्य किये हैं, जो राष्ट्रीयता की भावना बिना जाग्रत हुए नितान्त असम्भव थे। सरदार भगतसिंह, सुभाषचन्द्र बोस और चन्द्रशेखर आजाद, आदि वीर ऐसे ही महापुरुषों में से हैं। सुभाषचन्द्र बोस की 'आजाद हिन्द फौज' और उनका देश से आजाद-रूप से निकल जाना इसी भावना के ज्वलन्त उदाहरण हैं। जिन दिनों जर्मन वायुसेना इङ्गलैंड पर धुआँधार बम बरसा रही थी, उस द्वितीय युद्ध के भयंकर समय में अंग्रेजों की राष्ट्रीयता की भावना ही उन्हें बचा पाई थी। घोर कष्ट सहते हुए भी अंग्रेज यही कहते रहे थे कि हम आत्म-समर्पण कभी नहीं करेंगे। इङ्गलैंड का बच्चा-बच्चा अपने देश की आन-बान की रक्षा के लिए सहर्ष अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिये उत्सुक था।

भारतवर्ष में भी मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी तथा रामधारीसिंह "दिनकर" आदि ऐसे ही राष्ट्रीय कवि हुए हैं, जिन्होंने भारत माँ की दासता की बेड़ियाँ काटने में अपनी कविता-रूपी तलवार से पूर्ण सहयोग दिया है। राष्ट्रीयता की भावना के उदय होते ही मनुष्य का स्वाभिमान जाग उठता है, आत्म-हीनता के भाव नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार वह अपने देश के लिये मृत्यु का भी सहर्ष आलिंगन करने के लिए उद्यत हो जाता है।

'राष्ट्रीयता की भावना से केवल राष्ट्र का ही कल्याण नहीं होता, अपितु राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण व्यक्ति भी अनेक प्रकार से लाभान्वित होते हैं। मनुष्य अपने संकुचित 'स्व' की सीमाओं को छोड़कर आगे बढ़ता है। उसके हृदय में "आत्मवत् सर्वभूतेषु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसे पवित्र आदर्शों का उदय होता है। इस प्रकार वह नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर होता हुआ एक कर्त्तव्य-शील विवेकी पुरुष बन जाता है। वह अपने हितों की अपेक्षा देश के हितों को महान् समझता है। इस प्रकार उसके हृदय में त्याग का सुन्दर सरोज विकसित होकर

दिग्दिगन्तों को सौरभान्वित कर देता है। देश भक्ति की पवित्र सलिला उसके हृदय की मलीनताओं को नष्ट कर देती है। उनके विचारों मे दृढ़ संकल्प और हृदय में स्वाभिमान निवास करने लगता है।

प्रत्येक वस्तु अपनी उचित सीमा में लाभकारी सिद्ध होती है। जब कोई वस्तु अपने औचित्य की सीमाओं का उल्लघन कर देती है तो वही घातक ?शार्य के रूप में सामने आ जाती है। राष्ट्रीयता की भावना के विषय मे भी यही बात है। जब लोगो में यह भावना सीमा से अधिक बढ जाती है, तो वे लोग विश्व के अन्य देशा व ?ातियों को तुच्छ समझकर उन्हें अपने अधीन करने के लिए अधीर हो उठते हैं। यह राष्ट्रीयता का भयानक रूप होता है। जर्मन के ?चारको, लेखको और वहाँ के नेताओ ने जर्मन जनता में यह भावना ठूस-ठूस कर भर दी थी कि जर्मन जाति ही विश्व की श्रेष्ठतम जाति है और उसी में शुद्ध आर्यत्व विद्यमान है और हिटलर इसी विचारधारा का प्रबल समर्थक था। इसी राष्ट्रीयता के आवेश मे उसने पोलेण्ड पर आक्रमण किया। इस आवेश में इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया। जब राष्ट्रीयता बढ़ते बढते अपने इस भयकर रूप मे आ जाती है, तो वह विश्व के लिये एक भयानक समस्या बन जाती है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। विश्व के सुदूर स्थान भी आज एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गये हैं। सात समुद्र पार बैठे व्यक्ति से आप आसानी से बातें कर सकते हैं, देख सकते हैं और कुछ घण्टों में ही आप वहाँ पहुँच भी सकते हैं। परिणाम-स्वरूप विश्व के सभी राष्ट्र एक दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क मे आ रहे है तथा व्यापारिक और सांस्कृतिक आदान प्रदान हो रहे हैं। व्यापारिक, राजनीतिक और धार्मिक दृष्टि-कोणों से विश्व के अनेक राष्ट्र परस्पर अन्योयाश्रित हैं। आज एक देश की किसी विशेष वस्तु के अधिक उत्पादन का प्रभाव तुरन्त ही दूसरे देशो पर पडने लगता है। आज वह समय नही रहा कि कोई देश चुपचाप अलग कोने में पड़ा रहकर अपना निर्वाह कर सके। ऐसी स्थिति में, यदि सब राष्ट्र अपनी-अपनी राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार करने लगें और अपने को अन्य राष्ट्रो की अपेक्षा महान् समझने लगें, तो विभिन्न देशो के परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध असम्भव हो जायेंगे। अत आज के युग में राष्ट्रीयता का युग समाप्त हो चुका है, अत विश्व के सभी राष्ट्रो के पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को सुदृढ बनाने के लिये आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का अधिक प्रचार और प्रसार किया जाये। सभी राष्ट्र आपस मे सहनशीलतापूर्वक जीवन व्यतीत करें तथा सह-अस्तित्व के सिद्धान्तो का पालन करें तभी विश्व के समस्त राष्ट्रो में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के ही विकास के लिये प्रथम युद्ध से जर्जर और शिथिल तथा भावी आशंकाओ से भयभीत ससार मे 'लीग आफ नेशन्स' की स्थापना की गई थी। उस समय विश्व के सभी राष्ट्रो ने यह निश्चय किया था कि अब से सभी राष्ट्र अपने पारस्परिक झगडो को शान्तिपूर्ण प्रयत्नो से हल किया करेंगे। परन्तु दुःख का विषय है कि कुछ स्वार्थी और युद्ध की इच्छा रखने वाले राष्ट्रों ने उसकी सफलता में अनेक बाधायें उपस्थित की और अन्त मे उसे समाप्त ही होना पड़ा। अबीसीनिया और मचूरिया, इटली और जापान इस दुष्प्रवृत्ति के ही परिणाम थे। उस समय अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना राष्ट्रो के समक्ष एक नई वस्तु थी। अत उस समय इस भावना का इतना मान नहीं था, परन्तु आज युग बदल गया है। अब तक विश्व के सभी राष्ट्र विश्व के परिवार की भाँति नहीं रहेंगे, एक दूसरे के सुख-

दुःख में हाथ नहीं बँटायेंगे; सहिष्णुता और सह-अस्तित्व को स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक विश्व में सुख और शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। आज विश्व राष्ट्रीयता से अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर तेजी से बढ़ रहा है। एक देश यदि दूसरे देश पर आक्रमण कर बैठता है तो तुरन्त एक परिवार की भाँति संयुक्त राष्ट्र संघ और सुरक्षा परिषद् में विश्व के देश विचार-विनिमय और पारस्परिक सौहार्द्र से शान्ति स्थापित कर देते हैं। जब १७ फरवरी, १९७९ को चीन ने वियतनाम पर आक्रमण किया तो तुरन्त सभी देशों ने मिलकर शान्ति स्थापना के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। फलस्वरूप १०-१५ दिन की लड़ाई के बाद पुनः शान्ति स्थापित हो गई।

अतः यह ध्रुव सत्य है कि यदि आज का मानव सुखी और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता है, तो उसे राष्ट्रीयता की संकुचित सीमाओं का परित्याग करके अन्तर्राष्ट्रीयता की भावनाओं को विकसित करना पड़ेगा। परमाणु शक्ति के आविष्कार से राष्ट्रीयता का युग समाप्त-सा हो गया है। अतः जहाँ आज के नागरिक में राष्ट्रीयता की भावना की आवश्यकता है वहाँ अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना भी परमावश्यक है, तभी समस्त विश्व एक परिवार की भाँति रह सकता है। ●

४४. देश की प्रगति में विद्यार्थियों का योग

आज के भारतीय बुद्धिजीवी समाज में, विद्वानों की गोष्ठियों में, प्रवक्ताओं के प्रांगणों में, वकीलों के क्लबों में, मनीषी महिलाओं की वाक् प्रतियोगिता में, राजनीति से संन्यास लिये हुए प्राचीन कूटनीतिज्ञों के कहकहे में, उच्च स्तर पर आयोजित सेमिनार्स में, कटु अनुभवों से क्षत-विक्षत वक्ष वाले प्रधानाचार्यों के प्रवचनों में, आज यह ज्वलन्त प्रश्न बना हुआ है कि देश की प्रगति में विद्यार्थियों का योगदान किस माध्यम से हो, किस रूप में हो, किस विधि से हो और हो भी या न हो। 'न हो' वाली बात कुछ उचित प्रतीत नहीं होती, क्योंकि जिस मातृ-भूमि की गोद में सभी ने जन्म धारण किया है, जिसके धूलिकणों में हमने जीवन प्राप्त किया है, जो हमारे अनन्त अपराधों को क्षमा करते हुए हमें अमृत के समान जल और अन्न प्रदान करती है, जिसने हम पर इतने उपकार किये हैं कि हम अच्छी तरह उनका ब्यौरा भी स्मरण नहीं कर पाते, उस देश की सेवा, उसकी प्रगति में हाथ बँटाने का अधिकार कुछ वर्ग विशेष, कुछ अवस्था विशेष, कुछ जाति विशेष और कुछ आश्रम विशेष के व्यक्तियों को ही उपलब्ध हो, यह बात गले के नीचे आसानी से उतरती नहीं। और फिर, भारत जैसे धर्म निरपेक्ष देश में, जबकि प्रत्येक बाबाल तथा वृद्ध को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता उपलब्ध है, तब विद्यार्थी ही अपने धर्म से वंचित क्यों रहें, चाहे वह देश धर्म हो या भागवद्धर्म हो। धर्म, धर्म ही है। अतः उसके अनुपालन में न किसी पर कोई रोक-टोक है और न कोई पाबन्दी ही है। इसलिए भी देश की प्रगति में योगदान करने का मार्ग खुला और प्रशस्त है।

> **देश की प्रगति में विद्यार्थियों का योग**
> १. प्रस्तावना।
> २. वर्तमान वातावरण।
> ३. योगदान के माध्यम।
> ४. उपसंहार।

अब प्रश्न यह है कि जब आज के विद्यार्थी विभिन्न गतिविधियों में आगे बढ़ते हैं, तब उनकी तपे एवं सधे अनुभवी विद्वानों द्वारा प्रतिकूल आलोचनाएँ क्यों होती हैं? आज का भारतीय विचारक एवं चिन्तक, भारतीय विद्यार्थियों की गतिविधियों पर क्षुब्ध क्यों है? इसके दो प्रमुख कारण हैं—प्रथम तो यह कि देश सेवा

के नाम पर अतृप्त एव असफल राजनीतिज्ञों द्वारा छात्रो एव छात्र नेताओ का गलत पथ प्रदर्शन। राजनीति जब राजनैतिक अखाडे को छोडकर सरस्वती के मन्दिरों मे प्रवेश कर जाती है तब उसका विद्यार्थियो पर सुप्रभाव न पडकर कुप्रभाव पड़ता है। जहां उसका ध्यान गुरु वाणी के श्रवण और उसके मनन, चिन्तन में लगा हुआ था, वहां इन विचारधाराओं मे उलझा दिया जाता है। फिर उसे अनवरत ऐसी प्रेरणायें दी जाती हैं, जिनसे वह स्वय तो पथ-भ्रष्ट हो जाता है और देश को भी प्रगति के नाम पर अधोगति की ओर धकेलता है। इस प्रकार विद्यार्थी अपने कर्तव्य को भूलकर अधिकारो की प्राप्ति के लिये जूझने लगता है। फिर प्रगति के नाम पर वह सत्याग्रह, आन्दोलन, हड़ताल, प्रदर्शन, आदि मे लग जाता है। इधर विद्यार्थी पथ भ्रष्ट हुआ और उधर चतुर राजनीतिज्ञो का उल्लू सीधा हुआ, उनकी स्वार्थ सिद्धि हुई—दूषित, विपाक्त वातावरण जिस सस्था या जिस व्यक्ति की ओर फैलाना चाहते हैं, फैल जाता है। अब आप चाहे इसे देश की प्रगति कहें या देश सेवा कहें

दूसरा कारण है—नियन्त्रण का अभाव। नियन्त्रण दो प्रकार का होता है—एक पर-नियन्त्रण, दूसरा, आत्म-नियन्त्रण। पर नियन्त्रण मे माता पिता, गुरुजन व ज्येष्ठ व्यक्तियो की आज्ञाओ, सम्मतियो को ध्यानपूर्वक सुनना तथा उनका पालन करना आता है। आत्म-नियन्त्रण म स्वयं पर स्वय का अकुश होना आता है। आत्म नियन्त्रण जैसी वस्तु का अपरिपक्वता और विवेकशून्य की अवस्था मे उत्पन्न होने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नही होता। किशोरावस्था तथा युवावस्था ये दोनों ही अवस्थाएँ ऐसी हैं जिनमें आत्म विवेक बहुत दूर रहता है। आत्म-विवेक के अभाव में आत्म-नियन्त्रण सर्वथा असम्भव है। अब रह जाता है पर-नियन्त्रण। भारत की स्वतन्त्रता के साथ-साथ समाज के प्रत्यक पहलू ने स्वतन्त्र शब्द को पकड कर ऐसा रटा कि अर्थ का अनर्थ हो गया। अनुशासन, आज्ञापालन, नियन्त्रण-कर्तव्य आदि शब्दों को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में और प्रत्येक अग में भुला दिया गया, उनके स्थान पर केवल स्वतन्त्र शब्द याद रह गया। आप समाज के किसी अग पर दृष्टि डालकर देखें आपको पूर्ण स्वतन्त्रता ही मिलेगी। विद्यार्थी भी समाज के ही अग हैं अत यह प्रभाव उन पर भी बिना पडे न रहा और ऐसा पडा कि अब पचास वर्षो तक सुधरने का नहीं। आप बताइये कि देश की प्रगति के लिये सच्चे योगदान के लिये कौन बतलायेगा और वे किसकी मानेंगे, क्योंकि स्वतन्त्र देश के ये स्वतन्त्र विद्यार्थी हैं। प्रोफेसर या प्राध्यापक की आज्ञा मानना वे अपनी बुद्धि और वाक्चातुर्य की मानहानि समझते हैं। माता-पिताओं के पास देश के विषय मे सोचने का स्वय समय नहीं है, अपनी सन्तान को कौन बताये और यदि कुछ कह भी दें तो उसे सुनता कौन है?

स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने भारत पाकिस्तान युद्ध के समय सन् १९६५ में कहा था कि "यह नहीं समझना चाहिए कि जो सैनिक युद्ध मोर्चों पर शत्रु से लड रहे हैं, केवल वे ही मातृभूमि की सेवा और रक्षा में लगे हुए हैं। देश का प्रत्येक निवासी, जो जिस स्थान पर है और जिस स्थिति में है, वह वहीं रहकर देश-सेवा और देश की रक्षा में लगा हुआ है। किसान अपने खेतो और खलियानों में रहकर, व्यापारी अपने व्यापार मे रहकर, साहित्यकार अपने साहित्य सृजन से, डॉक्टर और वैद्य अपने चिकित्सालयों में रहकर, विद्यार्थी अपना विद्याध्ययन करके, लुहार अपनी धौंकनी पर बैठा हुआ देश की रक्षा में और शत्रु से मोर्चा लेने में उतना ही दत्तचित्ततापूर्वक सलग्न है जितना कि ये सैनिक जो वास्तव में शत्रु से मुठभेड कर रहे हैं। यदि सभी देशवासी अपने-अपने कर्तव्य का निष्ठा से पालन करते रहें, तो शत्रु हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" कितनी सारगर्भित और महत्वपूर्ण थे

थीं। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि देश के सभी निवासी सैनिक बन जायें या सभी वर्दी पहिनकर शत्रु से लड़ने के लिए मोर्चों पर पहुँचें। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति का जो काम है यदि वह निष्ठापूर्वक एकाग्रता से उसके सम्पादन में तल्लीन है तो वह निश्चय ही राष्ट्र की उन्नति में और उसकी प्रगति में पूर्ण योगदान कर रहा है और यदि वह इसके विपरीत आचरण करता है अर्थात् जो काम उसका नहीं है यदि वह उस काम को करता है या कार्य सम्पादन में निष्ठा, एकाग्रता, ईमानदारी और सभ्यता का अभाव है, तो वह राष्ट्र का बाधक है। वह राष्ट्र-प्रगति में सहायक न होकर बाधक सिद्ध होता है। चाहे वह स्वार्थ-लिप्सा में अंधे बने रहने के कारण या गलत पथ-प्रदर्शन के कारण तत्काल इसका अनुभव न करे, परन्तु इस कर्त्तव्यहीनता से राष्ट्र के लिए बड़े दूरगामी घातक दुष्परिणाम निकलते हैं। तात्पर्य यह है कि आप अपना काम कीजिये, जो दूसरों का काम है, उसे दूसरों के लिये ही छोड़ दीजिये, जो बात आपके सोचने और विचारने की है, उसे ही आप सोचिये। जहाँ आपने अपना काम छोड़कर दूसरों के कार्यक्षेत्र में, विचार और चिन्तन क्षेत्र में, निर्णय और परिणाम क्षेत्र में दखल दिया वहीं आप स्वयं तो मार्ग-भ्रष्ट हुए ही देश को भी ढकेल कर कुएँ में डाल देने में आप सहायक हुए।

देश की प्रगति में विद्यार्थियों के योगदान पर जब गम्भीरता से विचार किया जाता है, तब उनका सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान एकनिष्ठ भाव से और एकाग्र मन से विद्याध्ययन करना ही ठहरता है क्योंकि विद्या-प्राप्ति के लिए एक अवस्था और एक समय निश्चित है। यदि इस अवस्था में एकनिष्ठता का अभाव रहा, तो भावी जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति सर्वथा असम्भव है। भावी जीवन की आधारशिला यदि दुर्बल हुई तो उस पर जो भवन निर्माण होगा वह चिरस्थायी नहीं रह सकेगा। वह केवल लड़खड़ाते हुए अपनी जिन्दगी काटेगा। अब आप सोचिये कि यदि आप विद्यार्थी जीवन में तन-मन लगाकर एक शिष्ट सुशिक्षित नागरिक बनने के लिए प्रयत्नशील हैं, या एक सफल व्यवसायी बनना या विद्वान् प्रवक्ता बनना या कुशल वकील बनना या अच्छा डॉक्टर बनना या निपुण शिल्पकार बनना या कर्मठ कलाकार बनना चाहते हैं और उस लक्ष्य की पूर्ति के लिये आप अनवरत तल्लीनता से अध्ययन या शिक्षा प्राप्ति में जुटे हुए हैं, तो यह भी आप देश-सेवा ही कर रहे हैं, देश की प्रगति में यह आपका महत्त्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि व्यष्टि से ही समष्टि का निर्माण होता है। समाज बहुत-सी इकाइयों का समूह है। देश के आप अविभाज्य अंग हैं। आपका प्रत्येक निष्ठापूर्ण किया हुआ कार्य देश को, देश के चरित्र को, देश के मान को और देश के गौरव को ऊँचा उठाता है और आपके गलत कार्य से देश का पतन होता है और वह कलंकित होता है। आपके किये हुए प्रत्येक कार्य की प्रतिच्छाया देश के चरित्र में साफ दिखाई पड़ने लगती है। आपकी प्रगति ही देश की प्रगति है। आपका स्वाध्याय, आपका मनन, आपका चिन्तन, आपका शिष्ट और निष्ठ बनने का प्रयत्न देश की प्रगति में सबसे बड़ा योगदान है। आप अच्छे होंगे तो देश अच्छा कहलायेगा, आप अनुशासित और शिष्ट होंगे तो देश अनुशासित कहलायेगा। तात्पर्य यह है कि शांत चित्त से और अनन्य निष्ठा से शिक्षा ग्रहण करना ही विद्यार्थियों का देश की प्रगति में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है, क्योंकि देश के वे ही भावी कर्णधार हैं और देश को महान् बनाने के कार्य में लगे हुए हैं।

शिक्षण और स्वाध्याय से रिक्त समय में अशिक्षितों को शिक्षित बनाने का कार्य अपने हाथ में ले सकते है। सार्वजनिक सभाओं, गोष्ठियों और व्याख्यान मालाओं का आयोजन करके देश के चारित्रिक उत्कर्ष में आप अमूल्य योगदान दे सकते हैं।

अकालग्रस्त क्षेत्रों के लिये आप टोलियों मे निकलकर धन एकत्र करके भूखे और क्षुधा-पीड़ितों के प्राण पखेरू उड़ने से रोक सकते हैं। बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों के लिए धन एकत्रीकरण के अतिरिक्त आप स्वय-सेवक के रूप में वहाँ पहुँचकर डूबते हुए व्यक्तियों की प्राणरक्षा कर सकते हैं। आप स्वय सेवी सस्थाओं का निर्माण कर सकते हैं जो दैवी विपत्ति के समय जनता की सेवा के लिये अहर्निश कटिबद्ध रहे, इधर सूचना मिली और उधर दल दौड़कर पहुँचा। इस प्रकार पुनीत कार्यों से आप जन-कल्याण भी करेंगे और जनता को पथ-प्रदर्शन भी मिलेगा। ग्रीष्मावकाश की दीर्घावधि मे विद्यार्थी गाँवों में जाकर श्रम-दान द्वारा सड़क-निर्माण, पुल-निर्माण, ग्रामीण-स्वच्छता आदि में सहयोग दे सकते हैं। कृषि की उन्नति के नवीन एवम् वैज्ञानिक साधनों से किसानों को सुपरिचित कराना, स्वच्छता, कृषि उन्नति, परिवार नियोजन, अल्प-व्ययता आदि विचारों से सम्बन्धित चलचित्र प्रदर्शन का आयोजन करके देश की प्रगति मे योगदान कर सकते हैं।

इन्जीनियरिंग तथा मेडीकल के छात्र अपने विश्राम के दिनो मे गाँवो मे जाकर ग्राम-सेवा का काय कर सकते हैं। इतिहास और राजनीति के छात्र देश की प्राचीन सस्कृति और सभ्यता को तथा लोकतन्त्र का महत्व, मतदान की पुण्यता, नागरिक के अधिकार और कर्तव्य आदि विषयो को जनता को समझाकर देश कल्याण कर सकते हैं। उपरिलिखित सक्षिप्त योगदान के माध्यमो के अतिरिक्त आधुनिक वतमान परिस्थितियो में यदि देश की प्रगति मे भारतीय विद्यार्थियो का कुछ योगदान महत्त्वपूर्ण है, तो वह यह है कि वे राष्ट्र की सम्पत्ति का विनाश न करें, यह "आज के" भारतीय छात्र का देश की प्रगति मे सबसे बडा योगदान होगा।—क्योंकि आए दिन अखबारो में पढ़ा जा रहा है, आँखो से देखा जा रहा है और कानो से सुना जा रहा है कि अमुक स्थान के छात्रों ने बसो में आग लगा दी, अमुक स्थान पर विश्वविद्यालय का कार्यालय ही जला दिया गया अमुक स्थान पर पुलिस की जीपगाडी पर मिट्टी का तेल छिडक दिया गया, अमुक सिनेमा-गृह के शीशे तोड दिये गये अमुक रेलगाडी के इतने डिब्बे जला दिये, इत्यादि, इत्यादि। यह भी सम्भव है कि ये काम शायद कोई अराजक तत्व करते हों पर पडता छात्रों के ही ऊपर है, क्योंकि उन स्थानो पर होती छात्रों की ही भीड़ है। अत यदि भारतीय छात्र देश की ही सम्पत्ति को क्षति पहुँचाना बन्द कर दें, तो यह निश्चय ही उनका देश की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान होगा।

तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी अवस्था वह अवस्था होती है, जिसमे मनुष्य अटूट शक्ति-सम्पन्न होता है। उसम काय सम्पादन की अभूतपूर्व क्षमता होती है। मन और मस्तिष्क तेज होते हैं। उस शक्ति और कार्यक्षमता को यदि सही दिशा मिलती रहे तो उसके मन तथा शरीर के घोडे भी सही दिशा में दौड़ेंगे और अवश्य लाभप्रद सिद्ध होंगे, परतु खेद है कि उन्हें उचित पथ प्रदर्शन प्राप्त नही होता। हाँ कुछ ऐसे भी उच्छृङ्खल तत्व होते हैं, जिन पर पथ प्रदर्शन का न कोई प्रभाव होता है और न वे पथ-प्रदर्शन चाहते ही हैं। उचित यही है कि भारतीय छात्र अपनी पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य से देश को आगे बढायें, परन्तु सात्विक और शान्त बुद्धि से।

४५. भारतीय सास्कृतिक पर्व—दीपावली

संघर्षमय ससार की कटु स्मृतियों को क्षण भर को भुला देने के लिये मानव इतस्तत मृगमरीचिका में भटकता है। सुख और शान्ति की पिपासा को शात करने के

लिए उसने नये-नये आयोजन किये। जीवन के कण्टकाकीर्ण मार्गों को सुगम और सरल बनाने के लिये उसने नये आविष्कार किये। जीवन के उत्पीड़न, शोक, चिन्ता और दुःख को भुलाकर मानव मुस्करा सके और एक साथ बैठकर हँस सके और गा सके, इन्हीं भव्य प्रवृत्तियों ने मिल-कर हमारे त्यौहारों को जन्म दिया, उनमें से दीपावली भी एक है। यह शरद्काल का प्रधान त्यौहार है। इसके अतिरिक्त इन त्यौहारों के अपने-अपने ऐतिहासिक और सामाजिक महत्त्व भी हैं। वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से दीपावली वैश्यों का, रक्षाबन्धन ब्राह्मणों का, दशहरा क्षत्रियों का और होली शूद्रों का प्रधान पर्व माना जाता है।

दीपावली के पर्व के साथ हमारी अनेक ऐतिहासिक तथा धार्मिक परम्पराएँ जुड़ी हुई हैं। रामचन्द्रजी चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात् अत्याचारी एवं दुराचारी रावण का वध करके सहोदर लक्ष्मण तथा पुनीत प्रिया मैथिली के साथ जब अयोध्या लौटे तो साकेतवासियों की प्रसन्नता की सीमा न रही। गद्गद हृदय से उन्होंने राम का स्वागत किया तथा उस दिन उन्होंने खूब खुशियाँ मनायीं। घर-घर में पूड़ी और पकवान बने, रात्रि को अयोध्या में दीपावली की गई। तभी से राम के अयोध्या में लौटने एवं रामराज्य के प्रारम्भ होने की तथा पाप के ऊपर पुण्य की विजय की पुनीत स्मृति में यह उत्सव भारत में प्रति वर्ष मनाया जाने लगा। श्रीकृष्ण द्वारा नरकासुर के वध के दूसरे दिन दीपावली मनाई जाती है। नरकासुर भी एक लोक प्रपीडक, नृशंस राक्षस था। उसके वध से भी जनता में अपार प्रसन्नता फैली। इसी दिन श्रीकृष्ण ने इन्द्र के कोप से डूबते हुए व्रजवासियों की गोवर्धन पर्वत को धारण करके रक्षा की थी। राजा बलि की दानशीलता देखकर देवलोक कम्पित हो उठा और देवताओं ने राजा बलि की परीक्षा के लिए भगवान् विष्णु से प्रार्थना की। राजा बलि की परीक्षा लेने के लिये भगवान् गए और तीन पग वसुधा की याचना की और तीन पग में ही तीनों लोक नाप लिए। वामनावतार विष्णु ने बलि के भूदान से प्रसन्न होकर यह वरदान दिया कि भूलोकवासी उसकी स्मृति में दीपावली का पवित्र उत्सव मनाया करेंगे। असुरों का वध करने के पश्चात् भी जब महामाया दुर्गा का क्रोध शान्त न हुआ और वह संसार का संहार करने के लिए उद्यत हो गई तब समस्त संसार में हाहाकार मच गया। संसार की रक्षा के लिए शंकर स्वयं उसके चरणों में जाकर लेट गए। क्रोधोन्मत्त महामाया इनके वक्षस्थल पर सवार हो गई। शिव के तपोमय शरीर के स्पर्शमात्र से ही महाकाली का क्रोध शान्त हो गया और संसार संहार से बच गया जनश्रुति है कि इसी प्रसन्नता में दीपावली का उत्सव मनाया जाता है।

> **भारतीय सांस्कृतिक पर्व—दीपावली**
>
> १. भूमिका।
> २. ऐतिहासिक, धार्मिक तथा प्राकृतिक महत्व।
> ३. उत्सव मनाने की प्रणाली।
> ४. मकानों की स्वच्छता।
> ५. रोशनी।
> ६. एक सांस्कृतिक त्यौहार।
> ७. दोष।
> ८. उपसंहार।

दीपावली के इन धार्मिक महत्वों के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक महापुरुषों की जन्म-मरण की तिथियाँ भी इस पर्व से सम्बन्धित हैं। स्वामी शंकराचार्य का निर्जीव शरीर जब चिता पर रख दिया गया तब सहसा उनके शरीर में इसी दिन पुनः प्राण संचार हुआ। रोती हुई आँखें फिर से हँसने लगीं, घर-घर खुशियाँ मनाई जाने लगीं। जैन मतावलम्बी भी दीपावली को २४वें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी का निर्वाण दिवस मानकर मनाते हैं। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का निर्वाण भी आज के ही

दिन हुआ था तथा स्वामी रामतीर्थ की जन्म एवं निधन तिथि भी दीपावली है। अतः भारतीय आज के ही दिन महापुरुषों को अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हैं।

इन धार्मिक तथा ऐतिहासिक कारणों के अतिरिक्त इसका एक प्रमुख सामाजिक कारण भी है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, इसलिए होली और दीपावली जैसे बड़े त्योहार तभी मनाये जाते थे, जबकि खेतों में फैला हुआ किसानों का धन घर आ जाता था। जब रबी की फसल तैयार हो जाती तब होली मनाई जाती थी और जब खरीफ की फसल तैयार हो जाती तब दीपावली का उत्सव मनाया जाता था। खेतो में फसल कटकर जब घर आ जाती तब किसान फूला नहीं समाता और अपने हृदय के आह्लाद को अगणित दीप जलाकर प्रकट करता, सूखी रोटियों के स्थान पर उस दिन वह पूड़ी खाता तथा अपने इष्टदेव की पूजा करता है। गृह-लक्ष्मियाँ थाल भरे दीपों को अपने यहाँ जलातीं और अपने पड़ोस में भी जलाती हैं।

दीपावली के उत्सव का दूसरा कारण हमारे स्वास्थ्य के नियमों से सम्बन्धित है। वर्षा ऋतु मे हमारे घर सील जाते हैं, चारों ओर गन्दगी फैल जाती है। स्वास्थ्य के भयंकर शत्रु मक्खी और मच्छर पैदा हो जाते हैं, वर्षा की समाप्ति पर हम अपने घरों को साफ करते हैं, पुताई करवाते हैं और तरह-तरह से सजाते हैं। रात्रि को इतनी अधिक संख्या मे दीपक जलाने का मुख्य कारण यह भी है कि छोटे-छोटे उड़ने वाले कीटाणु दीपक की शिखा पर आकर्षित होकर अपने प्राणों को दे दें, जिससे इनके द्वारा होने वाले रोग कुछ समय के लिए टल जायें।

दीपावली के दिन व्यापारी लक्ष्मी की पूजा करते हैं। उनका विश्वास है कि आज हमारे यहाँ लक्ष्मी जी आयेंगी। पुराने बहीखाते बदल दिये जाते हैं और नये प्रारम्भ किय जाते हैं। दीपावली से ही व्यापारी वर्ग का नया वर्ष प्रारम्भ होता है। इसका यही कारण है कि वर्षा के दिनों मे व्यापारियों का व्यापार कुछ ठण्डा पड़ जाता है और जैसे ही वर्षा ऋतु समाप्त होती है व्यापार बढ़ने लगता है, तभी व्यापारी यह आशा करते हैं कि हमारे यहाँ लक्ष्मी आयेगी।

दीपावली आने से कई दिन पूर्व से ही लोग अपने-अपने घरों व दुकानों को साफ करना और सजाना शुरू कर देते हैं। लिपाई और पुताई के बाद साधारण घर भी अपनी युवावस्था मे आकर मुस्कराने लगते हैं। दरवाजो, खिड़कियों रोशनदानों पर तरह-तरह के रंग रोगन किये जाते हैं। नये बर्तन खरीदने को आज के दिन गृह-लक्ष्मियाँ मचल उठती हैं। नये कपड़े सीते सीते दर्जियों को फुरसत नहीं कि किसी से एक मिनट बात भी कर लें।

आज के दिन सुबह से ही बाजारों में एक विचित्र शोभा होती है। हलवाई अपने मिठाई के थालों को सजाकर बाहर नुमाइश-सी लगा देते हैं। तस्वीरों की दुकानों पर बच्चों की भीड़ हटाये नहीं हटती, खील और खांड के खिलौने वालों के यहाँ भीड़ लगी रहती है। मिट्टी के खिलौने वालों की दुकानें अपनी एक अनोखी शोभा दिखलाती हैं। कहीं गूजरी और गुड्डे बिक रहे तो कहीं लक्ष्मी और गणेश।

दीपावली का वास्तविक आनन्द संध्या के घनीभूत अन्धकार मे, जबकि चारों ओर अनन्त दीपों की पंक्तियाँ अपने प्रकाश मे जगमगा उठती हैं, आता है। आज के विज्ञान ने यद्यपि प्रकाश के अनेक अद्भुत साधन समाज को प्रदान किए हैं परन्तु सरसों के तेल भरे दीपों के परिशुद्ध प्रकाश मे जो कान्ति और सौन्दर्य है वह चन्द्राही बल्बों में कहाँ ? रात्रि को अपने अपने घरों में रोशनी करने के बाद लोग अपने अपने बच्चों को लेकर बाजारों की रोशनी देखने जाते हैं। बाजारों में मिठाई और खिलौनों

की दुकानों पर खरीदारों की भीड़ लगी रहती है। रंग-बिरंगे बिजली के बल्बों से बाजार जगमगा उठता है। पहले तो आज के दिन लोग नफीरी और नगाड़े बजाया करते थे, बड़े-बड़े धनी व्यापारी पंडितों से गोपाल सहस्र नाम का पाठ कराते थे और स्वयं भी रात्रि जागरण करते थे, परन्तु आजकल इन सबका स्थान माइक, ग्रामोफोन और रेडियो ने ले लिया है। बाजारों में इतना कोलाहल होता है कि कुछ सुनाई नहीं पड़ता। मुहल्लों में, गलियों में बच्चे आतिशबाजी छोड़ते हैं, फुलझड़ियों की चमक और पटाखों के शोर से एक अनोखा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

बाजार की शोभा देखकर, घर लौटकर, लोग अपने-अपने घरों में लक्ष्मी पूजा करते हैं, पाक-पकवान खाते हैं और इसके पश्चात् अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिये कि यह वर्ष हमारा कैसा रहेगा, जुआ खेलने में लग जाते हैं। प्रत्येक वस्तु के अच्छे और बुरे दो रूप होते हैं, जहाँ दीपावली आनन्द का उत्सव है, वहाँ विनाश का दिन भी है। आतिशबाजी आनन्द और उल्लास में छोड़ी जाती है, परन्तु कभी-कभी देखा गया कि इन छोटी फुलझड़ियों की चिनगारियाँ बड़े-बड़े भवनों को भस्मीभूत कर देती हैं, कितनी ही माताओं के लाल सदा के लिये सो जाते हैं। जुआ खेलने की भी बुरी लत है। दीवाली के बहाने से नगरों में महीनों तक जुआ होता रहता है और अपने-अपने परिश्रम से कमाए हुए धन को लोग जुए में गँवाते हैं और जब यह आदत अपना विशाल रूप धारण कर लेती है, तब घर का सत्यानाश हुए बिना नहीं रहता। जुआरी को तो जुआ खेलने को पैसे चाहिएँ, चाहे स्त्री के गहने बिकें या घर गिरवी रक्खा जाए।

जब आज का सभ्य व्यक्ति दीवाली के दिन जुआ खेलना अपना धर्म समझता है तब फिर बताइये चोर पीछे कैसे रह जायेंगे? वे भी अपने भाग्य परीक्षण के लिये कार्तिकी अमावस्या की अन्धकारमयी रजनी में घात लगाने निकलते हैं। उनका भी विश्वास है कि अगर आज के दिन अच्छा माल हाथ लगा तो पूरे वर्ष उन्हें सफलता मिलती रहेगी। इधर जनता का विश्वास है कि यदि आज के दिन रात भर घर के दरवाजे खुले रहे तभी लक्ष्मी आयेगी और बन्द कर दिये तो शायद लक्ष्मी लौट न जाए। फिर क्या है चोरों को मौका मिलता है, लक्ष्मी आती तो नहीं, बल्कि निकल जाती है। बस इसलिए यह आवश्यक है कि अपनी और अपने देश की समृद्धि के लिये हम पुरातन अन्ध-विश्वासों को छोड़ दें और दीपावली के राष्ट्रीय पर्व को कुत्सित और घृणापूर्ण न बनायें।

आइये, हम दीपावली के पुनीत अवसर पर अपने समस्त हेय कार्यों का परित्याग कर दीपावली से प्रेरणा लेकर अपने शुभ कर्मों से संसार को आलोकित करें। ●

४६. बाढ़—एक प्राकृतिक प्रकोप

प्रकृति के साथ मनुष्य ने सृष्टि के प्रारम्भिक क्षणों से संघर्ष किया और आज भी कर रहा है। इसी संघर्ष में कहीं उसे सफलता मिली है और कहीं उसे विफलता का मुख देखना पड़ा है। आधुनिक युग की सुसंस्कृत सभ्यता और वैज्ञानिक आविष्कार मानव की प्रकृति पर विजय घोषणा करते सुनाई पड़ रहे हैं। "आवश्यकता आविष्कारों की जननी होती है।" इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य को प्रकृति से जहाँ-जहाँ भय दिखाई दिया, जहाँ-जहाँ उसे अपने पतन के लक्षण दिखाई दिए, वहाँ-वहाँ उसने अपनी बुद्धि का सहारा लिया और अपनी रक्षा के लिए नए-नए आविष्कार करके प्रकृति

का भी मुँहतोड़ उत्तर दिया। बड़े-बड़े पुल, गगनचुम्बी प्रासाद, वायुयान, गरम-ठण्डे कपड़े आदि वस्तुओं का निर्माण अनादि काल से मनुष्य के साथ चल रहे प्रकृति के संघर्ष की कहानी सुना रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य ने अधिकांश क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की है। परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जहाँ वह मौन होकर प्रकृति की चोटों को चुप सह लेता है। बाढ़ भी एक ऐसा ही प्राकृतिक प्रकोप है, जिसको मनुष्य की बुद्धि भी विवशतापूर्ण आँखों से देखने लगती है। इस प्रकोप में मानव अपना सब कुछ स्वाहा कर बैठता है, चाहे वह धन हो या जन, अन्न हो या वस्त्र, पशु हो या फसल, पत्नी हो या पुत्र, माता हो या पिता। फन उठाए फूँकार कर दौड़ते हुए सर्पों की भाँति अनन्त जल प्रवाह की उत्ताल तरंगें अपने में सब कुछ समा लेती हैं।

नदियों के सूखे हुये पेट भी उभार लेना चाहते हैं। लेकिन जब तक सौन्दर्य सीमा में रहता है, वह सौन्दर्य कहा जाता है, सीमा का अतिक्रमण होते ही सौन्दर्य कुरूपता में बदल जाता है। वह हास्यास्पद हो जाता है, उसमें आकर्षण शक्ति नहीं होती। कुमारी नदियाँ भी वर्षा ऋतु में गर्भ धारण करने को मचल उठती हैं, परन्तु वह मचलाहट जब अपनी सीमा का अतिक्रमण कर बैठती है तब वह भयानक कुरूपता में बदल जाती है। लोग आकृति देखकर काँप उठते हैं, बच्चे और स्त्रियाँ चीत्कार कर उठते हैं। वर्षा ऋतु में पहाड़ों पर अधिक वर्षा होने तथा बर्फ पिघलने के कारण नदियाँ मस्त होकर इतरा और इठला कर चलने लगती हैं। इधर मैदान की वर्षा का पानी लेकर सहायक नदियाँ उनमें मिलती हैं। तभी बड़ी-बड़ी नदियाँ दानवी स्वरूप में समाज का सब कुछ अपहरण करने के लिए फन फैलाकर दौड़ने लगती हैं। नदियों के इसी विनाशकारी स्वरूप को लोग बाढ़ कह देते हैं।

बाढ़ दिन में भी आती है और रात में भी, परन्तु रात की बाढ़ दिन की अपेक्षा लाखों गुनी अधिक भयानक होती है। दिन में बाढ़ आ जाने पर लोगों को कुछ समय पूर्व मालूम भी पड़ जाता है। वे अपने धन-जन को लेकर किसी सुरक्षित स्थान में शरण ले लेते हैं और अपने जीवन को बचा लेते हैं, परन्तु रात की बाढ़ सोते हुये व्यक्तियों को, पशुओं को, घरों आदि को एक साथ समेट कर ले जाती है। जो जाग भी जाते हैं, वे भी अपना ज्यादा कुछ नहीं बचा पाते। उस समय भागकर, ऊँचे स्थानों पर पहुँचकर, अपने प्राण बचाने की इतनी शीघ्रता होती है कि पति पत्नियों को, माता बच्चों को, बहिन छोटे भाइयों को, पिता पुत्र को भी नहीं बचा पाता। स्त्री और बच्चे चीत्कार करने लगते हैं। पुरुष अपनी प्राण-रक्षा के लिए एक दूसरे को जोरों से पुकारने लगते हैं। पशु अपने रस्से तोड़कर भागने लगते हैं। घर बार की किसी को कोई चिन्ता नहीं होती अपने प्राणों की रक्षा का प्रश्न सर्वोपरि होता है। प्रयास करने पर भी बेचारे अपने को नहीं बचा पाते। इस प्रकार अनन्त जलराशि के भयानक थपेड़ों में अपने को डाल देते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों, बिहार, बंगाल और असम में बाढ़ के भयानक आक्रमण प्रतिवर्ष होते ही रहते हैं। उत्तर प्रदेश के उत्तर भाग में यमुना पूर्व में गंगा, गंडक, सरयू, कोसी और ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ आए दिन अपा-

बाढ़—एक प्राकृतिक प्रकोप
१ प्रस्तावना।
२ बाढ़ और कब।
३ बाढ़ के समय और उसके बाद की दशा।
४ आँखों देखा वर्णन।
५ बाढ़-पीड़ितों की सहायता।
६ बाढ़ रोकने के उपाय।
७ उपसंहार।

नर-संहार करती रहती है। ब्रह्मपुत्र की बाढ़ यातायात के साधन और डाक-व्यवस्था तक को भंग कर देती है।

बाढ़ के समय की दशा अत्यन्त रोमांचकारी होती है। चारों ओर हृदय विदीर्ण करने वाली 'बचाओ-बचाओ' की ध्वनियां सुनाई देती हैं। बच्चे और स्त्रियां चीख मार-मार कर रोने लगते हैं। अपने हाथों की कमाई अपने सामने लुट जाती है और मनुष्य नहीं बचा पाता। लाखों मन अन्न की फसल नष्ट हो जाती है, घर गिर पड़ते हैं, पशु बह जाते हैं, परिवार नष्ट हो जाते हैं। बाढ़ के समय अपार धन-जन तो लुटता ही है, परन्तु बाढ़ के उतर जाने पर अनेक भयानक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। बाढ़ के बाद कुओं में बाढ़ का पानी भर जाने से व गड्ढों में पानी और घास सड़ जाने से अनेक भयंकर बीमारियां फैलती हैं। लोगों के पास जीवन-निर्वाह की कोई वस्तु नहीं रह जाती, बड़े-बड़े रईस फकीर बन जाते हैं। खेती के लिए न पशु होते हैं और न बीज। बाढ़ के बाद भूमि इस योग्य नहीं रहती कि उसमें अगली फसल पैदा की जा सके। भूमि के ऊपर नदियों का रेत बिछ जाने से भूमि की उत्पादन-क्षमता बिलकुल नष्ट हो जाती है। अपने खाने तथा पशुओं के चारे की कठिन समस्या मनुष्यों के सामने आ जाती है।

वह दिन कितना भयानक था जब मैंने मौसी जी के गांव में यह सुना कि यमुना का पानी खतरे के निशान से बहुत ऊपर चढ़ गया है और गांव से कुछ ही दूर है। लोगों के पैरों के नीचे की जमीन खिसकने लगी। पूरे गांव में हाहाकार मच गया, लोग-बाग अपना सामान लेकर भागने लगे, बूढ़े, स्त्रियां और बच्चे भगवान को पुकार-पुकार कर याद कर रहे थे, पैसे वालों ने तुरन्त सवारियों का इन्तजाम किया परन्तु गरीब बेचारा कहां जाये। कुछ लोगों ने पड़ोसी गांवों में शरण ली और कुछ शहर भाग गये। इतने में सरकारी सिपाही आया और उस गांव को तुरन्त खाली करने की घोषणा की। अधिकांश लोग सामान छोड़कर भाग उठे। गांव के पास एक बहुत ऊंचा टीला था; शायद किसी जमाने में वह छोटा-मोटा पहाड़ रहा हो। मेरे मौसा जी का सारा परिवार और मैं उस टीले की सबसे ऊंची चोटी पर जा बैठे थे। सारा सामान घर में ही छोड़ दिया था, केवल रुपयों और बर्तनों की एक बोरी तथा कुछ अन्य आवश्यक सामान खाटों पर रखकर टीले पर ले गये थे। लोग सुना रहे थे कि यह टीला हमारे लिये भगवान है। इसने हमारी कई बार जानें बचाई हैं। इसीलिये हम इसे 'भगवान टीला' कहते हैं। देखते-ही-देखते फुंकारती हुई यमुना ने गांव घेर लिया। सब लोग भगवान से अपने प्राणों की भीख मांग रहे थे। चारों ओर जल था, यमुना तेज वेग से दौड़ रही थी। उछलती-कूदती हुई लहरें फुंकारते हुए क्रुद्ध सर्पों जैसी मालूम पड़ रही थीं। पानी के प्रवाह में कभी पेड़ बहते हुए दीखते तो कभी गाय भैंसें। किनारे के मकान जल के निरन्तर थपेड़ों से धड़ाधड़ टूट-टूट कर गिर रहे थे। गिरने की आवाजें वातावरण को और अधिक भयानक बना रही थीं। कुछ परिवार अपने पक्के घरों के घमण्ड में छतों पर बैठे थे। उस भयानक प्रवाह की टक्करों ने पहले तो उन मकानों की नींवों को खोखला किया, दीवारें कांपीं और मकान गिर गये। पूरे परिवार को जल-मग्न देखकर टीले पर बैठे हुए समस्त परिवार फूट-फूट कर रो उठे। पानी का वेग इतना तेज था कि एक क्षण के बाद पता भी न लगा कि कौन गिरा और कहां गया? बरसों पुराना एक वट वृक्ष था, कुछ स्त्रियां और बच्चे उस पर अपनी रक्षा के लिए चढ़ गये थे, परन्तु वेग ने उसकी भी जड़ें उखाड़ दीं, धड़ाम से पेड़ गिरा और बहने लगा। उस पर बैठे हुए लोगों में से कुछ बह गये, जिन्होंने

मजबूती से मोटी शाखाओं को पकड़ रक्खा था, वे अब भी उसे पकड़े हुए, उसी पेड़ के सहारे प्रवाह में बहते हुये चले जा रहे थे। उसमें एक स्त्री थी, जिसका एक बच्चा भी था। मजबूती से पकड़ने के लिये जैसे ही उसने दूसरा हाथ बदला, बच्चा उससे छूट गया और जैसे ही वह उसे पकड़ने के लिये झुकी, उसे भी यमुना ने अपनी गोद में ले लिया। शायद यमुना ने सोचा हो कि "जब तेरा बच्चा और पति ही न रहे तो तू ही इस संसार में अकेले रहकर क्या करेगी? इसलिये आ और मेरी गोद में सो जा।" यमुना की यह नर-संहार लीला, चौबीस घण्टे तक चलती रही। इसके पश्चात् धीरे-धीरे पानी कम हुआ और हम टीले से नीचे उतरे।

बाढ़ों की दृष्टि से हमारे देश का भाग्य बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है। प्रतिवर्ष लाखों मनुष्य बेघर-बार हो जाते हैं। सन् ७५ की पटना की भयंकर बाढ़ और जौलाई ७८ की उत्तर प्रदेश, बिहार एवं अन्य प्रदेशों में आई हुई बाढ़ें इस विनाश के प्रत्यक्ष रूप हैं। देश के कोने-कोने से चन्दा इकट्ठा करके उनकी सहायता की जाती है। उन्हें वस्त्र और भोजन पहुँचाये जाते हैं। ऐसे अवसरों पर राजनीतिक दल तथा समाज सेवी संस्थायें पीड़ितों की तन-मन धन से सेवा करती हैं, नगरों में अनेक स्थानों पर बाढ़-पीड़ितों के आवास की व्यवस्था की जाती है। जनता उनकी सहायता के लिये उमड़ पड़ती है। कोई रोटी दे रहा है तो कोई कपड़ा दे रहा है, कोई बीमार को दवा देने में ही अपना श्रेय समझ रहा है। स्कूल और कॉलिजों के विद्यार्थी उस समय बड़े सहायक सिद्ध होते हैं तथा बाढ़-पीड़ितों की सहायता कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। बाढ़-पीड़ितों को सरकार भी सहायता पहुँचाती है। बाढ़ के कारण जहाँ यातायात व्यवस्था बन्द हो जाती है वहाँ हवाई जहाज से भोजन, वस्त्र तथा दवाइयाँ गिराई जाती हैं। सैनिकों को बाढ़ पीड़ितों की सेवा के लिये नियुक्त किया जाता है। बाढ़ के समय लोगों को घर से निकालने तथा सुरक्षित शिविरों में भेजने के लिये इन्जन से चलने वाली तेज नावें भी भेजी जाती हैं। बाढ़-पीड़ित किसानों का लगान सरकार माफ कर देती है। सरकार द्वारा उन्हें कर्जा भी मिलता है तथा सस्ते अनाज की दुकानें भी खुलवा दी जाती हैं। बीमारों को औषधियाँ भी मुफ्त ही दी जाती हैं। इस प्रकार बाढ़-पीड़ितों को जीवन निर्वाह की सभी आवश्यक वस्तुएँ सरकार द्वारा दी जाती हैं। जनता यदि चाहे तो वह नदियों के दोनों ओर अपने अथक परिश्रम से ऊँचे बाँध बना सकती है, जिससे नदी की धार उससे आगे न बढ़ सके। नदियों को गहरा कर देने से भी बाढ़ का भय कम हो जाता है। नदी के किनारे गाँवों में ऊँचे टीले बना लेने चाहियें जिससे विपत्ति के समय रक्षा हो सके। उन टीलों का ऊँचा रास्ता बनाकर गाँव से मिला देना चाहिये। ऐसे गाँवों में जहाँ बाढ़ें आती रहती हैं वहाँ जनता को कुछ ऐसी तेज सवारियों का भी इन्तजाम रखना चाहिये जो बाढ़ के खतरे की सूचना मिलते ही उन्हें तुरन्त सुरक्षित स्थान पर पहुँचा सकें। ऐसे गाँवों में सेवा दलों का प्रबन्ध होना चाहिए जो विपत्ति के समय स्त्री और बच्चों की रक्षा कर सकें। आशा है कि भविष्य में मनुष्य इन विनाशकारी जल-लहरों पर भी अपना नियन्त्रण कर सकेगा।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश की सरकार का ध्यान इस संहारकारी प्राकृतिक प्रकोप की ओर गया है। बाढ़ों को रोकने के लिये करोड़ों रुपए की योजनायें प्रारम्भ कर दी गई हैं। बाँध बनाये जा रहे हैं, परन्तु धन के अभाव में यह कार्य शीघ्र पूरा नहीं हो रहा है। सरकार के साथ-साथ जनता का भी कर्त्तव्य है कि वह सरकार को इस कार्य में पूर्ण सहयोग दे श्रमदान करे, क्योंकि इसमें अपनी और अपने समाज की सुरक्षा है।

४७. किसी मेले का आँखों देखा दृश्य

"भारत की संस्कृति में सुन्दर, यदि मेलों का मेल न होता।
तो निश्चय ही भारपूर्ण मानव जीवन भी खेल न होता॥"

—आर० एन० गौड़

अथक परिश्रम करने के बाद व्यक्ति व्यक्तिगत रूप और समाज सामूहिक रूप से विश्राम और मनोरंजन चाहता है। इस बहाने से वह जीवन के कटु अनुभवों को कुछ क्षणों के लिये भूलने का प्रयास करता है। अपने पुराने मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों से मिलकर वह कुछ समय के लिये जीवन के अभिशापों को भुला देता है। वह अपने पूर्वजों के आदर्श संघर्ष और सफलता से प्रेरणा प्राप्त करता है, उनके बताये हुए मार्गों पर चलकर अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयास करता है। कभी वह भूली हुई धार्मिक भावनाओं को फिर से जागृत करने के लिये सामूहिक प्रयास एवं विचारों का आदान-प्रदान करता है। भारतीय मेलों का इन्हीं दृष्टिकोणों से विशेष महत्व है। प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति मे मेलों का ऐतिहासिक, धार्मिक और सामाजिक महत्व होता है।

किसी मेले का आँखों देखा दृश्य

१. प्रस्तावना—महत्व।
२. जाने की तैयारियाँ।
३. मार्ग का दृश्य।
४. मेले का दृश्य।
५. विशेष दुर्घटना।
६. उपसंहार।

भारतवर्ष मेलो का देश है। यहाँ आये दिन किसी न किसी जाति और किसी न किसी धर्म का मेला लगना ही रहता है। मानव ने सभ्यता के संघर्ष मे जब-जब सफलता प्राप्त की तब-तब उसने उसकी प्रसन्नता मे कोई विशेष मेला प्रारम्भ कर दिया। प्राचीन काल मे मेलों के ही बहाने से यातायात की सुविधा के अभाव मे एक दूसरे से मिल लेते थे, विचारों का आदान-प्रदान करते थे, एक दूसरे से धार्मिक प्रेरणा प्राप्त करते थे तथा अपने विश्राम के रिक्त समय को मनोरंजन मे व्यतीत करते थे। मेलो के बहाने से वे जीवन की आवश्यक वस्तुयें भी आसानी से खरीद लेते थे। दूर नगरों में जाकर कौन अपने चार छः दिन नष्ट करे, इसी भावना से प्रत्येक ग्राम के आस-पास चार छः महीनों में कोई न कोई मेला लगा करता था। आज भी ग्रामीणो के जीवन मे इन मेलों का विशेष महत्व है।

परीक्षाफल सुनाने के पश्चात् कॉलेजों के कपाट पौने दो महीने के लिए बन्द हो चुके थे। मेरी सफलता पर माता-पिता को अभूतपूर्व प्रसन्नता हुई थी, तभी माता जी ने कह दिया था कि अबकी बार इसे दशहरे पर गंगा स्नान कराके लाऊँगी। यह सुनते ही मेरे हृदय मे एक अपार हर्ष का समुद्र उमड़ पड़ा। उसी दिन मे नित्य नवीन कल्पनायें मेरे मन मे उठती, कभी मेले का दृश्य सामने आ जाता तो कभी गंगा मे स्नान करने वाली असंख्य भीड़ का, नये-नये खेल, सिनेमा आदि की कल्पना करता, तो कभी सुन्दर-सुन्दर चाट खाने की, कभी-कभी गंगा की लहरों मे तैरने की कल्पना से मन फूला न समाता। नित्य सोचता कि वह दिन कौन-सा होगा जब हम गंगा दशहरा का मेला देखने के लिए घर से बाहर निकलेंगे। उत्कण्ठा से भरे दिन मैंने बड़ी कठिनाई से व्यतीत किये। जब ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के केवल चार दिन ही शेष थे, माता जी ने पिता जी से कह ही तो दिया कि अब चार दिन रह गये हैं, एक दिन पहले जाने पर भी धर्मशालायें पहले से इतनी भर जाती हैं कि उनमे पैर रखने तक की जगह नहीं मिलती। इसलिए कम से कम तीन दिन पहले चला जाये तो अधिक अच्छा हो।

पिता जी ने भी स्वीकृति दे दी। फिर क्या था, माता जी ने ब० में घी डाला और रास्ते के लिए पूड़ियाँ उतारने लगीं। कुछ बेसन प्रोग्राम बना, नमकीन मठरियाँ भी नाश्ते के लिये बनाई गई। पिता मेले के मौके पर मगा पर भी शुद्ध सामान नहीं मिलता और यदि मिलत दुगुने और तिगुने भावों पर, इसलिए शुद्ध घी और आटा यहीं से लेकर चल। माता जी ने कहा कि इससे अच्छा और क्या हो सकता है। धोबी के यहाँ कपड़े गये हुए दस दिन हो चुके थे पर वह अभी तक धोकर नहीं लाया था मैंने साइकिल उठाई और धोबी के यहाँ से कपड़े लाया। खुशी-खुशी में इतनी जल्दी गया था कि मेरी साइकिल कई जगह टकराते-टकराते बची। बिस्तर तैयार किये गये। अब मुझे केवल यह प्रतीक्षा थी कि कब रिक्शा आये और हमें बैठाकर स्टेशन ले चले।

अलीगढ़ के निवासी प्राय गगा स्नान के लिए राजघाट जाया करते थे। बड़ा ही सुरम्य स्थान है, धर्मशालाएं भी बहुत-सी हैं और गगा भी अपने पूर्ण प्रवाह में काफी मैदान घेरती हुई बहती है। अलीगढ़ से बरेली जाने वाली रेलगाड़ी राजघाट के यात्रियों को बीच में उतार देती है। रेल रात मे जाती थी इसलिए निश्चय यही हुआ कि मोटर से ही चला जाये। मोटर के अड्डे पर पहुँचने पर देखा कि हजारों ग्रामीण यात्रियों की भीड़ लगी हुई थी। कोई सुबह से आया बैठा था, तो कोई रात मे ही आ गया था, परन्तु बेचारों को मोटर मे जगह नहीं मिल पाई थी। मोटरें हर पन्द्रह मिनट के बाद छूट रही थीं। हम लोगो ने भी अपना सामान एक तरफ रख लिया। सहसा पिता जी को एक परिचित व्यक्ति मिले और पूछा कि यहाँ कैसे ? पिता जी ने यात्रा का उद्देश्य बताया। उन सज्जन की भी एक मोटर अलीगढ़ से राजघाट चलती थी। उन्होंने तुरन्त टिकट लाकर दे दिये और हम लोग गाड़ी में जा बैठे। मोटर के भरने मे देर न लगी, ड्राइवर ने होंर्न दिया और मोटर चल दी। मैं पहले भी अनेकों बार मोटर में बैठा था, परन्तु आज मोटर की चाल कुछ अनोखी थी। बहुत धीरे चल रही थी, मिनट-मिनट पर ड्राइवर होंर्न बजा रहा था। पिताजी के पूछने पर मालूम हुआ कि दुर्घटना से बचने के लिए धीरे-धीरे चला रहा है। मार्ग मे प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने के लिए मैंने खिड़की से अपना सिर बाहर निकाल रक्खा था। सड़क का दृश्य बड़ा ही मनोहर था। सड़क के दोनों ओर बहुत से यात्री पैदल चल रहे थे। जाने वालों में स्त्रियों की संख्या अधिक थी। वे दस-दस और आठ-आठ की टोलियों में भजन गाती हुई जा रही थी। किसी का बच्चा कन्धे पर बैठा था, तो किसी का बगल मे, ज्यादा संख्या बिना बच्चों वाली महिलाओं की थी। वे बेचारी जल्दी पहुँचने के विचार से अपने अपने घरों मे बहुत जल्द चल दी थीं। बहुत से लोग साइकिलों पर थे, जिन्होंने कैरियरों पर अपने-अपने बिस्तर और कपड़े बाँध रक्खे थे। जब तक सड़क अच्छी थी, मोटर आराम से चलती रही, परन्तु जैसे ही कुछ गड्ढेदार सड़क आई हम लोग उछलने लगे, हमारे सिर बार-बार मोटर की छत से जाकर टकराने। मोटर मे बैठे हुए बच्चों और औरतों को इस कूदने में बड़ी हँसी आ रही थी, सारी गाड़ी का वातावरण मनोविनोदपूर्ण था।

आज गगा दशहरा था। प्रात काल चार बजे से ही गङ्गा मे दूर तक के तट भीड़ से भरे हुए दिखाई पड़ रहे थे। किनारों पर पण्डों के तख्त बिछे हुए थे, जिन पर यात्री अपना सामान रखते स्नान करते और फिर पण्डे से तिलक लगवाकर उसे दक्षिणा दे रहे थे। नहा-धोकर लोग मेले की ओर जा रहे थे। चारों ओर बाजार भरा हुआ दिखाई पड़ रहा था। मनचले नौजवान धक्केबाजी में ही आनन्द ले रहे थे, बेचारे शरीफ लोग भीड़ से बचकर निकलने की कोशिश कर रहे थे। धोमचे वालों

तरह-तरह की आवाज, खेल तमाशे वालों के गाने, रिकार्डों तथा चरखे वालों की चूं-चूं ने सारा वातावरण कोलाहलपूर्ण बना रक्खा था। एक तरफ पूड़ी-कचौरी वालों की दुकानें थीं। कहीं पूड़ियाँ सिक रही थीं, तो कहीं गरम-गरम जलेबियाँ बहार दे रहीं थी। कोई बरफी खा रहा था, कोई लड्डू, कोई कलाकन्द का भोग लगा रहा था, तो कोई कचौरी पर आलू का साक डलवा रहा था। हलवाइयों की दुकानों के भीतर चटाइयों पर बैठने का स्थान भी न मिल पा रहा था। एक ओर बिसातियों की दुकानें थीं, जिन पर गाँव की स्त्रियों की बेहद भीड़ थी। कोई कंघा ले रही थी तो कोई चुटिया। नई फैशन की लड़कियाँ रिबन खरीद रही थीं। कोई शीशे में अपना मुँह देखकर उसका मोल कर रही थी। किसी को माथे की बिन्दी पसन्द आई थी, तो किसी को नाखूनों की पालिश। बच्चे अपनी माताओं से सीटी, गेंद और पैसे रखने का बटुवा लेने के लिये मचल रहे थे। कोई खुशबूदार साबुन को नाक से लगाकर अपने पति से खरीदने का आग्रह कर रही थी। कुछ कपड़े वालों की भी दुकानें बाहर से आई थीं। जो लोग अपने साथ पैसा लाये थे वे लोग कपड़े की दुकानों पर जमे हुए थे। किसी ने अपनी पत्नी को साड़ी दिलवाई थी तो किसी ने ब्लाउज का कपड़ा, कोई-कोई बेचारी केवल देखकर ही अपना मन मारकर आगे बढ़ जाती थी। कोई अपने कुर्ते का कपड़ा देख रहा था, तो कोई कमीज का, कोई-कोई तो रुपये का अंगोछा ही खरीदकर कन्धे पर डाल लेता था। बच्चों और स्त्रियों का सबसे ज्यादा भीड़ मैंने चाट और खोमचे वालों के यहाँ देखी। कोई दही-बड़े खा रहा था, तो कोई सोंठ की पकौड़ियाँ। कोई आलू की टिकिया खा रहा था, तो कोई पानी के बताशे। कुछ किताबों की भी दुकानें थी, जिन पर ग्रामीण साहित्य, यानि रसिया और ढोलों की छोटी-छोटी किताबें गाँव वाले खूब खरीद रहे थे। किताबें खरीदकर वहीं उनमें से गाना शुरू कर देते थे। कुछ घूमने वाले, बाँसुरी और फुकना बेच रहे थे। कहीं काठ की मालाएँ बिक रही थीं, कुछ दुकानें ऐसी थीं, जिन पर केवल गङ्गा जी का प्रसाद बिक रहा था। जो भी गङ्गा स्नान करके आता वह सफेद चिरौंजियों का प्रसाद जरूर खरीदता। बच्चे अपनी माताओं से चरख में झूलने के लिये मचल रहे थे और वे मना कर रही थी। कहीं भजनोपदेश हो रहे थे तो कहीं धार्मिक सभाएँ।

सहसा मेले में एक हाहाकार सा मचा, सब लोग गङ्गा की ओर भागने लगे। मैं भीड़ के साथ हो लिया। जाकर देखा कि एक स्त्री गङ्गा के किनारे पछाड़ खा-खाकर रो रही है, उसका पति और दो छोटे-छोटे पुत्र गङ्गा जी में डूब गये थे। पहले दोनों भाई डूबे थे। उनको निकालने के लिये उनका पिता बिना किसी विचार के गङ्गा की भंवरों में घुस गया था, फिर वह भी नहीं लौटा। गोता-खोरों ने गोते लगाये, नाव पर चढ़कर जाल डाले गये परन्तु सब व्यर्थ रहा। आधा घण्टा पहले की सधवा अब विधवा बन चुकी थी और कुछ समय पूर्व की माता अब पुत्र-हीन हो चुकी थी। केवल वह ही नहीं रो रही थी बल्कि जो भी उसे देख रहा था वह भी रो रहा था। यह दृश्य देखकर मेरी मानसिक खिन्नता का ठिकाना न रहा। मेले का सारा आनन्द न जाने एकदम कहाँ चला गया और गङ्गा की क्रूर लहरों पर तथा बच्चों के माता-पिता की असावधानी पर क्रोध आने लगा। बेचारे मल्लाहों ने भरपूर प्रयास किया पर उनका प्रयास सफल सिद्ध न हो सका। बड़े दुखी मन से हम लोग अपनी धर्मशाला को लौट आये। इस प्रकार चार-पाँच दिन मेले का आनन्द लिया। छठे दिन हम लोग घर आ चुके थे।

सुनो स्वर्ग क्या है ? सदाचार है, मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।
नहीं स्वर्ग कोई धरा वर्ग है, जहाँ स्वर्ग का भाव है, स्वर्ग है॥
सुखी नारकी जीव भी हो गए, वहाँ धमराज स्वयम् जो हो गए।
सदाचार ही गौरवागार है, मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

प्रजा के प्रति राजा का कैसा व्यवहार होना चाहिये तथा राजा के क्या-क्या कर्तव्य हैं, इस बात को गुप्त जी साकेत में स्वय राम के मुख से स्पष्ट कराते हैं—

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।
निज रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को,
सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को।
× × × ×
मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख शान्ति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया,
विश्वासी का विश्वास जगाने आया।

गुप्त जी ने अपने 'अनघ' काव्य में ग्राम सुधार की आवश्यकता स्पष्ट रूप से प्रकट की है। उसमें मघ को एक ग्राम सुधार के रूप में चित्रित किया है—

मरम्मत सभी कुओं घाटों की, सफाई कभी हाटों-बाटों की,
आप अपने हाथों करता है।

कहीं-कहीं गुप्त जी ने प्रकृति के भी सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। उनकी प्रकृति सदा शांत और नूतन है। गुप्त जी ने प्रकृति को आलम्बन मानकर उसका वर्णन किया है। पंचवटी की ये पंक्तियां कितनी सुन्दर हैं—

चारु चन्द्र की चञ्चल किरणें, खेल रही थीं जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई थी, अवनि और अम्बर तल में,

फैलाए यह एक पक्ष लीला किए, छाती पर दम किए अंग ढीला किए।
देखो ग्रीवा भग्न रंग किस ढंग से, देख रहा है हमें विहग उमंग से॥

गुप्त जी की कविता की भाषा सरल और सुबोध है। उसे साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है। गुप्त जी की कविता में कोमलता और माधुर्य का अभाव है। कहीं-कहीं तो कथा गद्य-सा जान पड़ता है। इनकी कविता की सफलता का रहस्य भाषा तथा भावों की सुबोधता है न कि उनका काव्य-सौन्दर्य। एक आलोचक का विचार है, कि गांधी जी जो कुछ भी अपने भाषणों में कह देते थे, प्रेमचन्द जी उसे अपने उपन्यासों में और मैथिलीशरण उसे अपनी कविता में ज्यों का त्यों कुछ उलट-फेर करके उतार दिया करते थे।

गुप्त जी ने प्रबन्ध, मुक्त, खण्ड काव्य, गीत आदि सभी काव्य प्रवृत्तियों पर लिखा परन्तु अधिक सफलता उन्हें प्रबन्ध काव्य के लिखने में मिली। द्विवेदी जी के 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' लेख से प्रभावित होकर गुप्त जी ने साकेत लिखा। साकेत के नवें सर्ग में गुप्त का काव्य सौन्दर्य, उर्मिला की भावात्मक अनुभूतियाँ, उसका स्वाभाविक विरह अत्यन्त उच्च कोटि का है। उनमें वास्तव में हमें गुप्त जी के महाकवित्व के दर्शन होते हैं। उर्मिला ही साकेत की आत्मा है, स्वामिनी है और अधिक कहा जाए तो उर्मिला ही साकेत का सर्वस्व है। कुछ प्रसंग उद्धृत कर रहा हूँ। कल राज्याभिषेक

जाओ यदि जा सको रौंद हमको यहाँ,
यों कह पथ में लेट गए बहुजन वहाँ।

अछूतोद्धार की ओर संकेत करते हुए गुप्त जी ने पंचवटी में लिखा है—

गुह, निषाद, शबरी तक का मन रखते हैं प्रभु कानन में,
क्या ही सरल वचन होते हैं, इनके भोले आनन में।
इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी,
इनमें भी मन और भाव हैं, किन्तु नहीं वैसी वाणी।

गुप्त जी की 'भारत-भारती' में देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। अंग्रेजी शासन के विरोध में होने के कारण यह पुस्तक कुछ समय तक जब्त भी रही थी। इसमें उन्होंने अतीत गौरव की भव्य झाँकी प्रस्तुत की है। भारतवर्ष की तत्कालीन दुर्दशा पर दुःख प्रकट करते हुए आपने लिखा है—

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्यायें सभी॥

अहिंसा का महत्त्व स्वीकार करते हुए गुप्त जी ने यशोधरा में राहुल के मुख से कितने सुन्दर शब्दों में आदर्श उपस्थित कराया है—

कोई निरपराध को मारे, तो क्यों अन्य उसे न उबारे।
रक्षक पर भक्षक को वारे, न्याय दया का दानी॥

गांधी जी ने चर्खा कातकर शरीर ढकने का संदेश, स्वदेशी वस्त्र पहनने का सिद्धान्त भारतीय निर्धन जनता को दिया, जिससे कि थोड़े व्यय में उनका खर्च चल जाये और साथ ही साथ भारत की बेकारी की समस्या भी हल हो जाये, लोगों में स्वावलम्बन की भावना बढ़े। गुप्त जी ने यही बात सीता के मुख से कोल, किरात और भील स्त्रियों के प्रति कहलवा दी—

तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ हम कातें बुनें गान की लय में।

भारतवर्ष में स्त्री जाति चिरकाल से उपेक्षित रही है। गुप्त जी उनकी इस दशा पर दुःखी हो उठते हैं—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

परन्तु आज का कवि अबलाओं को अबला मानने को तैयार नहीं—

आँचल में था दूध किन्तु अब आँखों में पानी न रहा था।
उर में था देशानुराग और आज न अबला नाम रहा था॥

स्वर्ग और नरक के विषय में जनता में बड़ी-बड़ी धारणायें हैं। कोई कहता है स्वर्ग ऊपर नरक नीचे है। कोई कहता है स्वर्ग में भगवान रहते हैं—इसलिए उसे वैकुण्ठ भी कहते हैं। कुछ धारणायें हैं कि पुण्य करने से मृत्यु के समय देवता उस पुण्यात्मा को लेने आते हैं और सीधा उसे स्वर्ग को ले जाते हैं, और नारकीय व्यक्ति को यमराज के दूत। इस प्रकार की देश में न जाने कितनी दन्तकथायें प्रचलित हैं। अब आप मैथिलीशरण जी का स्वर्ग और नरक सुन लीजिए—

भला सो जहाँ भी, वहीं स्वर्ग है, स्वयम्-भूत थोड़े कहीं स्वर्ग है।
खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है, भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है॥

भारतीय मेलों में भारत की प्राचीन आत्मा आज भी दिखाई पड़ती है। ये मेले हमारी सभ्यता, संस्कृति और धार्मिक भावनाओं के प्रेरणा-स्रोत हैं और अतीत के इतिहास को आज भी हमारे नेत्रों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। परस्पर मिलाने और एक दूसरे को समीप लाने में ये मेले बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

४८. भूदान यज्ञ

अंग्रेज भारत से विदा हुए। भारतवर्ष को स्वाधीनता मिली। युग-युग की दासता की शृंखलाएँ सदैव के लिये छिन्न-भिन्न हो गईं। जनता-जनार्दन अपनी प्रिय स्वतन्त्रता को प्राप्त करके मुस्करा उठी। परन्तु आज के सामाजिक तथा आर्थिक वैषम्य से वह अभूतपूर्व प्रसन्नता स्वयम् ही समाप्त-सी होती जा रही है। कृषि-प्रधान भारत के ६०% कृषक भूमि की उपज के सुख से वंचित रहते थे। भूमिधर कम थे और भूमिहीन अधिक संख्या में थे। इसी भूमि अधिकार सम्बन्धी वैषम्य को भारत से दूर करने के लिये सन्त विनोबा भावे ने भूदान यज्ञ को जन्म दिया। हृदय परिवर्तन द्वारा समाज में नव जागृति का सन्देश देता हुआ जन-जन के हृदय में बन्धुत्व की भावना भरता हुआ यह पवित्र यज्ञ विश्व के समक्ष एक नवीन आर्थिक क्रान्ति उपस्थित कर रहा है। विश्व के महान् अर्थशास्त्री तथा राजनीतिक नेता इस अभिनव प्रयोग को मौन और आश्चर्यचकित होकर देख रहे हैं। भारतवर्ष के धनीमानी, गरीब, अमीर, राजे, महाराजे सभी इस पुण्य कार्य में यथा शक्ति सहयोग प्रदान कर रहे हैं और इसकी सफलता या विफलता पर आज समस्त विश्व की आँखें लगी हुई हैं।

> **भूदान यज्ञ**
> १ प्रस्तावना।
> २ सन्त विनोबा की सफलता।
> ३ भूदान का महत्त्व।
> ४ उपसंहार।

हैदराबाद के तैलंगाना प्रदेश में सन् १९५० और ५१ में कम्युनिस्टों ने भूमिहीन गरीब किसानों को भड़का दिया। गरीब किसान उनकी बातों में आ गये और वे देश में रक्त-रंजित क्रान्ति करने के लिये सन्नद्ध हो उठे। धनिकों की हत्याएँ हुईं, लूट-खसोट हुई इस भयानक हत्याकाण्ड से देश काँप उठा। कम्युनिस्ट भूमिहीन किसानों का संगठन करके साम्यवाद की स्थापना करना चाहते थे। विनोबा भावे वहाँ शांति स्थापना के लिये गये। विद्रोहियों ने शान्ति स्थापना के लिये विनोबा जी से भूमि माँगी। उस समय वहाँ किसानों को उपज का २०वाँ भाग मिलता था। किसान खेती और अपने रहने के लिये भूमि चाहते थे। विवश होकर विनोबा जी ने वर्ग वैषम्य को समाप्त करने की इच्छा से १८ अप्रैल, सन् १९५१ को पहली बार समाज के आगे हाथ फैलाया। वे इस भिक्षा के लिये सर्वप्रथम रामचन्द्र रेड्डी नामक व्यक्ति के पास गये। उसने बड़ी प्रसन्नता से सौ एकड़ भूमि सन्त विनोबा को भिक्षा के रूप में प्रदान की। यह समस्त विश्व में अपने ढङ्ग का अपूर्व दान था। भिक्षुओं और सन्यासियों को अन्न, वस्त्र माँगता देखा और सुना गया था। राजा भोज के समय ग्रामदान तथा गजदान हुआ करता था, जो आज से हजारों वर्ष पहले की बात है, परन्तु इस युग में पृथ्वी दान में दी जा सकती है, ऐसा न किसी ने सोचा था और न विश्वास था। छोटों से लेकर बड़ों तक ने इस पवित्र यज्ञ को बड़े उत्साह से अपनाया। विनोबा जी अपने मधुर भाषण से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देते हैं। प्रायः उन्हें यह कहते सुना गया है—"भूमि माता है, हम सब उसी के पुत्र हैं। माता पर हमें

पुत्रों का एक समान अधिकार होता है। जैसे—जल, वायु, धूप पर सभी पुत्रों का एक समान अधिकार है, उसी भाँति पृथ्वी माता पर भी सबका अधिकार है जो उसकी सेवा करे सो मेवा खाये।"

विनोबा जी के सत्य और अकाट्य तर्क जनता के हृदय पर रामबाण का काम करते हैं। वे कहते है—"यदि किसी भूमिधर के पाँच पुत्र हैं, तो वह मुझको अपना छठा पुत्र मान ले और जिस प्रकार वह अपने पाँचों पुत्रों को जमीन बाँटता है, उसी प्रकार मुझे भी उनके साथ ही छठा हिस्सा दे दे। इस प्रकार पाँच करोड़ एकड़ भूमि दान के रूप में प्राप्त हो जाये, तो वह भारत के करोड़ों भूमिहीन कृषकों की जीविका का साधन बन जायेगी तथा साथ ही साथ उनकी कृषि उत्पादन शक्ति में भी सहायक सिद्ध होगी।" तैलंगाना मे विनोबा जी को बारह हजार एकड़ भूमि दान में प्राप्त हो गई। २ अक्टूबर, १९५१ को सागर विश्वविद्यालय में उन्होंने पाँच हजार एकड़ भूमि की याचना की। बिहार में तो लगभग २५ लाख एकड़ भूमि उन्हें दान के रूप मे उपलब्ध हो चुकी है। हृदय परिवर्तन के आधार पर सामाजिक ढाँचे में इतना महत्वपूर्ण परिवर्तन इतिहास मे एक अनोखी वस्तु है। आचार्य विनोबा पूँजी के मूल्य पर आधारित सारी अर्थव्यवस्था को बदलना चाहते हैं। जिनके पास भूमि नही है; अर्थात् शहर में रहने वालो से धन माँगते थे, जिनके पास न धन है और न भूमि है उनसे बुद्धिदान की याचना करते थे। जिनके पास धन, भूमि और बुद्धि में से कुछ भी नहीं है उनसे शारीरिक श्रम की याचना करते थे। विनोबा जी का कहना था कि तीनों को मिलाकर ही भूदान की सार्थकता सिद्ध होती है, भूदान से गरीब किसानों को जमीन मिलेगी, धन दान से वह हल बैल खरीद सकते हैं, श्रमदान से असहाय कृषक की सहायता की जा सकती है।

भारतवर्ष की आध्यात्मिक संस्कृति में त्याग और बलिदान तथा दया और दान का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भूदान-आन्दोलन सर्वथा उसके अनुकूल है। सत्य और शान्ति के आधार पर ही भारतवर्ष ने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता प्राप्ति की थी, सत्य और शान्ति के आधार पर ही वह अपना आर्थिक वैषम्य दूर करना चाहता है। भूदान आन्दोलन इस दिशा में उसका सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम पदन्यास है। देने वाले और लेने वाले दोनों ही प्रेम, मैत्री, सहयोग और सहानुभूति की पवित्र भावनाओं से भर जाते हैं। मनुष्य में मानवता के शुभ संस्कारो का उदय होता है। परोपकार के नाम पर भूमिदान का यह महान यज्ञ इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। विश्व के किसी भाग में इतने विशाल स्तर पर भूमि का बँटवारा स्वेच्छा से नही हुआ—जहाँ कहीं भी हुआ रक्तपात और भीषण जन-क्रान्ति से। भारतीय किसान एक-एक गज भूमि के लिए आपस में लड़ मरते थे, नृशंस हत्याएँ होती थीं। मुकदमेबाजी में अनन्त धन खर्च किया जाता था। परन्तु विनोबा जी के प्रभाव से युग बदला, वातावरण बदला। आज प्रसन्नतापूर्वक भारतीय स्वयम् ही अपने भूमिहीन बन्धुओं को भूमि दे रहे हैं। विनोबा जी का कथन था, "भूदान यज्ञ से प्राप्त हुई भूमि का वितरण मुझे स्वयम् करना है, सम्भव है कहीं-कहीं मुझे ग्राम-पंचायतों की सहायता लेनी पड़े और कहीं-कहीं उनके ही ऊपर छोड़ देना पड़े। परन्तु इसकी देखभाल मुझे ही करनी होगी। ग्राम-पंचायतों को अपना काम ईमानदारी और निष्पक्षता से करना चाहिये।" वास्तव में वितरण का पुनीत कार्य ग्राम पंचायतो की सहायता से सरलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है।

निःसन्देह भूदान आन्दोलन कांग्रेस आदर्शों की सफलतापूर्वक पूर्ति कर रहा है। देश के विभिन्न राजनीतिक सङ्गठनों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे भी इस यज्ञ की सफलता

के लिये प्रयत्नशील हो। भूदान आन्दोलन भारत के भविष्य के नव-समाज का प्रभात-गीत है, इसकी सफलता और पूर्णता में असख्य भारतीयो का मङ्गल निहित है। प्रत्येक भारतीय का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वह अपनी शक्ति के अनुसार इस यज्ञ मे आहुति देकर परलोक तथा इस लोक में आदरणीय स्थान प्राप्त करे। तभी आर्थिक वैषम्य की अग्नि शान्त हो सकती है अन्यथा यह ज्वालामुखी एक दिन फूट निकलेगा और उससे भारतवर्ष का कण-कण भस्मसात् हो जायेगा। एक लेखक ने भूदान के महत्व के विषय में लिखा है—"भूदान यज्ञ विश्व का अभूतपूर्व शान्ति और समानता का यज्ञ है। युग-युगान्तर और कल्प-कल्पान्तर की अनन्त तपस्या तथा साधना का अमृत है। यह यज्ञ विश्व की विषमता का आहुति यज्ञ है। यह राजनीति की धर्मनीति है। यह क्रान्ति, सृष्टि की अभिनव देन है। यह विश्व गरिमा का हिमालय शिखर है।"

४६. निर्वाचन स्थल का आँखों देखा दृश्य

प्रजातन्त्र शासन प्रणाली में जनता को अनेक प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्रदान किये जाते हैं, उनमें निर्वाचन का अधिकार भी एक प्रमुख अधिकार है। प्रजातन्त्र शासन मे सरकार की सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित रहती है। प्रत्येक वयस्क को मताधिकार होता है। वह अपनी भावना और विचारो के अनुरूप अपना मत देकर अपने प्रतिनिधि को चुनता है। वे प्रतिनिधि ससद मे और विधान सभाओ में जनता के विचारो का प्रतिनिधित्व करते हैं। मताधिकार और निर्वाचन से ही लोकतन्त्र शासन-प्रणाली का अस्तित्व है। इससे जनता अपनी मनोनुकूल सरकार बना सकती है तथा उसके कार्य से असन्तुष्ट होने पर उसे हटा भी सकती है।

आम चुनाव होने वाले थे। तारीख निश्चित हो चुकी थी। प्रत्येक पार्टी अपने-अपने उम्मीदवार की विजय के लिए निरन्तर प्रयत्नशील थी। झूठे-सच्चे प्रलोभन दिखाकर जनता को फासा जा रहा था। कोई कहता था कि मैं ऊसर जाकर किसानो के कर हटवा दूगा, कोई कहता था कि मैं बिक्री कर कम कराऊँगा, कोई कहता था कि मैं भारतवर्ष की गरीबी को दूर कर गरीबो और अमीरो दोनों को एक आसन पर बैठाने का प्रयत्न करूगा, कोई कहता था कि मैं भारत को इसका पुराना स्वर्णिम काल, इसका पुराना वैभव, इसकी पुरातन शक्ति और सगठन पुन: प्राप्त कराने का प्रयत्न करूँगा। कोई-कोई अपने पुराने त्याग और बलिदान की कहानी सुनाकर पुराने तपे हुये नेताओं के नाम पर ही वोट मांगता। अजीब दृश्य था। जनता को नित्य नई-नई तस्वीरें दिखाई जाती थीं। जनता हैरान थी कि किसकी बात मानी जाये और किसकी न मानी जाये। जो बहुत पुराने आदमी थे, वे गाँधी बाबा का गुण गाते थे। जो नये थे और जिन्होंने केवल शहर देखा भर था, ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे, वे केवल पचायती पुस्तकालयों मे कभी-कभी अखबार की मोटी सुर्खियो पर नजर डाल लिया करते थे, वे बिना पढ़े लिखो पर तर्क वितर्क से अपना रोब गाँठते थे, और अपने पक्ष मे वोट डालने की जब तक हाँ न करा लेते तब तक उन बेचारे निरक्षरों का पिंड न छोड़ते। गाँव बड़ा था और शहर के पास ही था इसलिये कुछ पढ़े लिखे और सजीदा आदमी भी गाँव मे थे। वे भी शाम के समय चौपालों पर बैठकर अपने सैद्धान्तिक प्रवचन करते। शहर में जब कोई नेता जिस पार्टी का आता, वह हमारे गाँव में अवश्य आता। सबके झन्डों, लाल झण्डों और तिरंगे झन्डों की चारों ओर धूम मच रही थी। अपनी-अपनी दुकानों और मकानों पर लोगों ने झण्डे लगा रक्खे थे, जो उनकी अभिरुचि के प्रतीक थे। मक्खियों ने उन पर बैठ-बैठकर सारा रंग अवश्य मट्टा कर दिया था पर

उन्हें देखकर मतदाता से यह पूछने की आवश्यकता न होती थी कि तुम किसे वोट दोगे ? पुरुषों की भांति महिलाओं में भी एक नई जागृति दिखाई पड़ रही थी। भिन्न-भिन्न पार्टियों की स्वयं-सेविकाएँ घरों मे जातीं और अपने पक्ष में वोट डालने के लिये गृह-स्वामिनियों से प्रार्थना करतीं। तरह तरह के झण्डे लेकर बच्चों की टोलियाँ गलियों में नारे लगाती हुई घूमती थीं। कोई हाथी वाले को वोट डालने को कहता, कोई घोड़े वाले को, कोई बैलों को, तो कोई बरगद को, कोई फूल को तो कोई साइकिल को, कोई दीपक को तो कोई सूरज को।

प्रचार कार्यों से जनता ऊब चुकी थी। माइक की आवाज से उनके कान बहरे हो चुके थे। दूध और दही की नदियों के स्वप्न देखते-देखते लोग थक चुके थे। सब चाहते थे कि निर्वाचन का दिन जल्दी से आ जाये। पार्टियों मे भी तोड़-फोड़ अपनी सीमा पार करती जा रही थी। कल जिसके जीतने की आशा थी, आज उसे अपनी पराजय के लक्षण दिखाई पड़ने लगे और जो कल रात तक अपने को हारा हुआ समझे बैठा था, राजनीति ने ऐसा पलटा खाया कि आज उसे सोलह आने जीतने की आशा होने लगी। चौपालों पर, खलिहानो में, दुकानों पर, घरों के चबूतरों पर, मोटरों के अड्डे पर, यहाँ तक कि पनघटों पर भी वोट की ही चर्चा हो रही थी। जहाँ भी चार आदमी इकट्ठे खड़े हो जाते वहाँ यही चर्चा होती कि वह जीता और वह जीता ! सहसा वह दिन भी आ गया जिस दिन प्रत्येक नागरिक अपने देश के भाग्य-विधाता को चुनने के लिये उत्सुक था। चुनाव से एक दिन पहले ही पुलिस का एक छोटा दस्ता गाँव में आ चुका था। चुनाव स्थल की रक्षा तथा जनता में व्यवस्था और अनुशासन का भार पुलिस पर था, क्योंकि पिछले चुनाव में हमारे ही गाँव में निर्वाचन-स्थल पर खूब लाठी चली थी, लोगों के सिर फटे थे। सारे गाँव में डोंडी पिटवा दी गई कि कल कोई भी माइक का प्रयोग नहीं कर सकता तथा झण्डे इत्यादि लेकर जुलूस नहीं निकाल सकता। हमारे गाँव का मालवीय इण्टर कॉलिज ही निर्वाचन-स्थल था। एक दिन पहले ही शाम को चुनाव अधिकारी भी गाँव में आ गये थे। उनमें शहर के गवर्नमेंट कॉलिज के प्रिंसिपल प्रिजाइडिंग ऑफीसर थे, उनके साथ चार-पाँच पोलिंग ऑफीसर थे, जो भिन्न-भिन्न विभागों के सरकारी कर्मचारी थे। उनके पास कुछ सामान भी था, कुछ लोहे के डिब्बे थे जिनमे हम अपना वोट डालते हैं, जिन्हे बैलटबॉक्स कहा जाता है। प्रिजाइडिंग ऑफीसर ने निर्वाचन-स्थल का निरीक्षण किया, जहाँ पहले से ही बूथ बने हुए थे। सुबह होते ही गाँव मे नई चहल-पहल नजर आने लगी। दूसरे गाँव के दूकानदारों ने भी रातों-रात अपनी दुकानें लगाकर और सजाकर तैयार करली थी। चारों ओर सफाई और स्वच्छता नजर आती थी। आज गाँव वालों ने अपने खेतों और खलिहानों के काम बन्द कर दिये थे। वे सुबह ही नहा-धोकर अपनी-अपनी मूंछों को ऐंठते हुये अपनी-अपनी पार्टी मे जा मिले थे। स्त्रियाँ भी घरों मे वोट डालने की उत्सुकता में, जल्दी-जल्दी काम-धाम कर रही थी। तरह-तरह के खोमचे वालों की आवाजों से गाँव मे एक गूंज फैल रही थी। शहर के पास होने के कारण, दस-बीस रिक्शे वाले भी गाँव मे नजर आ रहे थे। धुले और प्रेस किए कोट-पैन्टों मे, कुछ नई शक्लें आज गाँव मे नजर आ रही थीं, ये थे निर्वाचन मे विशेष रुचि रखने वाले शहर के कुछ राजनैतिक ठेकेदार। निर्वाचन-स्थल से सौ गज की दूरी पर यानि कॉलिज के गेट के

निर्वाचन-स्थल का आँखों देखा दृश्य

१. प्रस्तावना।
(निर्वाचन का महत्व)
२. निर्वाचन की तैयारी।
३. निर्वाचन के दिन गाँव का दृश्य।
४. चुनाव के समय का दृश्य।
५. उपसंहार।

बाहर सभी पार्टियों ने अपने-अपने शामियाने लगा रखे थे, चाँदनियाँ बिछी थीं, कुछ लोग कुर्सियों पर बैठे थे और कुछ चाँदनियों पर। जो लोग चाँदनी पर थे उनके आगे लम्बी-लम्बी लिस्टें खुली थीं, जिनमें मतदाताओं के नाम थे।

प्रातः आठ बजे से मतदान प्रारम्भ होने वाला था। अभी थोड़ा-सा समय बाकी था, गाँव के चारों ओर की सड़कें भरी चली आ रही थीं। लोगों में उत्साह था, उमंगें थीं अपने प्रतिनिधि को जिताने की। आस-पास के आठ-दस गाँवों के वोट इसी मतदान केन्द्र पर पड़ने थे, इसलिये देखते ही देखते गाँव में एक विशाल जन-समूह इकट्ठा हो गया। तरह-तरह की पोशाकें और तरह-तरह की मुखाकृतियाँ। कोई सिर पर पगड़ी बाँधे था तो कोई साफा, कोई टोपी पहने था तो किसी ने सर पर कपड़ा ही रख रक्खा था। नई रोशनी के नवयुवकों के सिरों में सीमा से अधिक तेल चमक रहा था। किसी की माँग टेढ़ी थी, तो किसी की सीधी। कुछ ऐसे भी थे जिन्हें देखकर यह मालूम पड़ता था, ये साबुन से नहाकर आये हैं। कोई साइकिल पर चला आ रहा था, कोई अपने घोड़े पर, किसी ने अपना बैल ताँगा ही काम में लिया था। जिनके पास घोड़े या साइकिलें नहीं थीं, वे पैदल ही मस्ती भरे गीत गाते हुये चले आ रहे थे। शहर में तो जिस व्यक्ति को आप अपना मत देने जा रहे हैं, वह आपकी सवारी का भी इन्तजाम करता है, परन्तु पक्की सड़कें न होने के कारण गाँव में यह सुविधा नहीं होती।

समय से पहले ही प्रिजाइडिंग ऑफीसर ने सभी पार्टियों के पोलिंग एजेन्टों को बुलाकर बैलटबॉक्सों को खोलकर दिखाया, जिससे किसी को यह सन्देह न रहे कि इसमें पहले से वोट भरे हुये हैं या हमारे नाम का कागज इस पर नहीं लगा हुआ है। फिर उन डिब्बों को बन्द करके लाख से सील कर दिया गया। घड़ी ने आठ बजाये, मतदान प्रारम्भ हो गया। मतदाताओं की पंक्ति लग गई। पोलिंग स्टेशन बड़ा होने के कारण चार बूथ पुरुषों के लिये थे और एक बूथ स्त्रियों के लिए। प्रत्येक बूथ पर काम करने के लिये अलग-अलग पोलिंग ऑफीसर थे। मतदाता अपनी-अपनी पार्टी से अपनी पर्ची लिखाकर लाता था, कुछ, जो किसी पार्टी से सम्बन्धित नहीं थे, वे सीधे भी चले जाते थे। पहिले एक अधिकारी मतदाता के सीधे हाथ की उंगली में न मिटने वाली स्याही का एक चिन्ह लगाते थे, जिससे यह मालूम पड़ जाये कि किस व्यक्ति ने अब तक मतदान नहीं किया है। इसके बाद दूसरा अधिकारी मतदाता को उसका नम्बर देता था, तीसरा अधिकारी उसे बैलट पेपर दे देता था, जिसमें सभी उम्मीदवारों के नाम तथा उनके चिन्ह छपे रहते हैं। मतदाता जिसे अपना मत देना चाहता था, वह उसी के चिन्ह के आगे × ऐसा निशान लगा देता था। यह सभी उसे पोलिंग बूथ में जाकर एकान्त में करना पड़ता था। इसलिये इसे गुप्त मतदान कहा जाता है और अब तो १९७१ के महानिर्वाचनों से मतदाता की प्रक्रिया में अधिक गोपनीयता बनाये रखने के लिये महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। पुरुषों और स्त्रियों के लिये वोट देने की अलग-अलग व्यवस्था की गई थी। पुरुषों के लिये पुरुष पोलिंग ऑफीसर और स्त्रियों के लिये महिला पोलिंग ऑफीसर थे। स्त्रियों के लिए पोलिंग एजेन्ट भी महिलायें ही थीं। यदि कोई अन्धा, रुग्ण या अशक्त व्यक्ति मतदान करने आता तो प्रिजाइडिंग ऑफीसर उसकी सहायता करते थे। कोई-कोई ऐसा व्यक्ति अपने साथ सहायक भी लाता था। वह जिस चिन्ह को बताता था उस पर वे निशान लगा देते थे और मत-पत्र को मतदान पेटी में डाल देते थे। इस प्रकार दोपहर तक खूब भीड़-भाड़ रही। ४१ वर्षों में भारत की जनता चतुर हो चुकी थी।

लोग बाहर वायदा कुछ करके आते थे, परन्तु भीतर जाकर अपनी इच्छानुसार किसी को भी मत देते थे।

कुछ मतदाताओं पर पोलिंग एजेन्टों ने उनके सही व्यक्ति होने पर सन्देह प्रकट किया और झगड़ा बढ़ने लगा। प्रिजाइडिंग ऑफीसर ने उनका चेलेंजिंग वोट डलवा दिया तथा चेलेंज करने वाले पोलिंग एजेन्टों से चेलेंज की फीस ली। ऐसे वोटों का निर्णय गणना के समय चुनाव अधिकारी किया करते हैं। कुछ धांधलेबाजी में और भीड़-भड़क्के में उन आदमियों के वोट डाले गये जो बहुत पहले ही मर चुके थे या गाँव छोड़कर गाँव से बाहर चले गये थे, उन्हें किसी ने चैक नहीं किया। बीच-बीच मे कभी-कभी शहर की ओर से दौडती हुई मोटर कार आती और निर्वाचन-स्थल का निरीक्षण करते, प्रिजाइडिंग ऑफीसर से बातें करते और फिर लौट जाते। बाद में पूछने पर कभी पता चलता कि ए. डी. एम. प्लानिंग थे, दौरे पर आए थे, कभी मालूम पड़ता कि वे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे।

दोपहर के बाद भीड़ जब कुछ कम हुई तो मैं भी मतदान करने गया। स्याही लगी, मत-पत्र मिला। बूथ पर जाने के लिये रास्ता बता दिया गया। भीतर जाकर देखा कि कई डिब्बे रक्खे हुये हैं, सभी पर कुछ लेबिल चिपके हुये हैं। पास ही निशान लगाने के लिये पैन्सिल रक्खी हुई है। मैंने भी अपना निशान लगाया और मत-पत्र मतदान पेटी में डाल दिया, परन्तु देखा कि बहुत से मत-पत्र डिब्बों के बाहर ज्यों के त्यों पड़े हुये हैं, कुछ मत-पत्र फूंस की बनाई दीवार मे लग रहे हैं। कुछ मत-पत्र मतदान पेटी के नीचे दबे पडे थे। यह देखकर मुझे आश्चर्य भी हुआ और दुःख भी। पास में स्त्रियों का बूथ था। मैने कौतूहलवश उसमें झाँककर देखा। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। स्त्रियाँ उस मत-पत्र को मोड़कर डिब्बे के ऊपर चढा रही थीं, चढाने के बाद उस डिब्बे के हाथ जोड़तीं, फिर सिर झुकाती और तब बाहर आती। एक स्त्री की धीमी गुनगुनाहट भी मेरे कानों तक आई। वह कह रही थी, "हे बैलों की जोड़ी मैया ! जा दिन तू मेरे घर आइके बँधेगी वा दिन घी गुड़ से पूजूंगी।" दूसरी ने कहा, "हे दीपक महाराज ! मेरे आदमी कू मेरे वस में कर देउ तो मैं तुम्हें महादेव के मन्दिर मे जराऊँगी।" यह सब दृश्य कुछ क्षणो में ही देखता हुआ मै बाहर आ गया।

पाँच बजने में कुछ समय शेष रह गया था, अधिकाश भीड़ जा चुकी थी। सभी पार्टियो के प्रतिनिधि वोटों का अनुमान लगाने में व्यस्त थे कि इस पोलिंग पर किस पार्टी को कितने मत मिले। सहसा पाँच का घण्टा बजा, मतदान बन्द करने की घोषणा कर दी गई, परन्तु पोलिंग स्टेशन मे जितने आदमी पहुँच चुके थे, उन्हे मतदान करने का अधिकार था, उन्हे मत-पत्र दिया गया। प्रिजाइडिंग ऑफीसर ने एक बार फिर सभी पार्टियो के एजेन्टों को बुलाया और बैलट बॉक्स दिखाकर उन्हे दोबारा सील करवा दिया। एक सरकारी ट्रक आया, जिसमे वे डिब्बे रख दिये गये। सभी अधिकारी उसमें बैठ गये। ट्रक धूल उड़ाता हुआ नगर की ओर चल दिया। अब गाँव की छोटी-छोटी दुकानो और खोमचे वालो का मेला भी समाप्त हो चुका था, परन्तु अभी हार-जीत की चर्चा समाप्त नही हुई थी। ●

५०. एक भयानक अग्निकाण्ड

मानव अपने जीवन मे अनेक दुर्घटनाओं को देखता है, सुनता है, क्योंकि संसार मे आये दिन कोई न कोई दुःख की घटना होती ही रहती है। कभी हम आँखों से देख

लेते हैं और कभी समाचार पत्रों मे पढ लेते हैं। परन्तु एक बार मैंने ऐसा रोमांचकारी दृश्य देखा था, जो इतना विनाशकारी एवं विध्वंसात्मक था कि आज भी उसकी स्मृति मुझे कम्पित कर देती है। सम्भवतः वह घटना मेरे लिये ही नही अपितु समस्त नगरवासियों के लिये अविस्मरणीय है।

स्वतन्त्रता मिलने से पहले की बात है। देश साम्प्रदायिकता की भयानक ज्वाला में जल रहा था। मनुष्य मनुष्य को खा जाने के लिये भूखे शेर की तरह घात लगाये बैठे रहते थे। मानवता समाप्त हो चुकी थी, उसका स्थान बर्बर दानवता ने ग्रहण कर लिया था। भारत की दो सन्तानें एक दूसरे को अपना शत्रु समझती थी। नेत्रो पर स्वार्थ और हिंसा का चश्मा चढ़ा हुआ था। जिसने जितने ज्यादा खून कर दिए हों वह उतना ही अधिक धमज्ञ समझा जाता था। ऐसा कोई नगर नही था, जहाँ छुरा भोंकने की, बम फटने की, तथा आग लगाने की दुर्घटनायें न होती हों। लोग बल्लमों से गोदकर डाल दिये जाते थे, नदियो मे बहा दिये जाते थे, पता भी नहीं चलता था कि कौन कहाँ का रहने वाला है। दिन दहाड़े सामूहिक उपद्रव होते। एक मुहल्ले के रहने वाले दूसरे मुहल्ले पर बर्छी और बल्लम लेकर चढ़ जाते, गले ही उन पर छतो से ईंटें बरसाई जाती। एक अजीब अराजकता देश के एक कोने से दूसरे कोने तक छाई हुई थी। जिसे देखिये उसी के हृदय मे हिंसा की भावना, जहाँ सुनिए वहीं झगडे की बात, यह देखकर और सुनकर पुरानी बातो पर विश्वास नही होता था कि कभी हम प्यार से भी रह चुके हैं।

एक भयानक अग्निकाण्ड
१ प्रस्तावना।
२ कारण।
३ समय व स्थान।
४ सूचना।
५ शान्ति का प्रयास।
६ आतंक।
७ बाद का दृश्य।
८ उपसंहार।

अलीगढ़ दो विभिन्न संस्कृतियो का नगर है जहाँ दोनो ही संस्कृतियो के अनुयायी अपनी-अपनी पहिचान अलग रखते हुए साथ साथ फल फूल रहे हैं।

कलियानगंज के नाम से अलीगढ मे एक अनाज की मण्डी है। चारो ओर गोल बाजार की तरह दुकानें है। दुकानें भी वैसी ही जैसी आढतियो की होती हैं। भीतर गोदाम, बाहर लालाजी की तिजोरी, उसके बाद छप्पर और उसके बाद लम्बा चौडा फड, जिस पर अनाज पडा रहता है और बैलगाडियाँ खडी रहती हैं। कुछ तो एक मंजिली दुकानें हैं और कुछ दुमंजिली। दुकानो के ऊपर वाले हिस्से मे किसी किसी मे गृहस्थी किरायेदार रहते हैं और किसी मे मकान मालिक स्वयं। अलीगढ़ के अधिकांश मुहल्ले अहिंदू जनता से घिरे हैं, अतः शहर में कहीं भी कोई झगडा हो जाये तो लाला लोग दुकानें बन्द करके अपने अपने घरो की रक्षा के लिये भागते हैं और इस तरह से वे रास्ते मे पिट-पिटा दिये जाते हैं। कलियानगंज के बीच मे दो लाइनो मे गुड बेचने वाले बैठते हैं। एक दिन किसी साधारण सी बात पर लाला जी की किसी विश्वविद्यालय के छात्र से गर्मा गर्मी हो गई। वे चार पाँच थे और बाजार वाले बहुत से, कहाँ तक रुकते। पहले गाली गलौच हुई। फिर धौल-धप्पा हुआ। बाजार बन्द होने लगा, खटाखट ताले लगने लगे, लोगो मे भी भगदड पड गई। सारे शहर में हल्ला हो गया कि यूनिवर्सिटी के लडको से झगडा हो गया है। कलियानगंज के लोग दुकानो में ताले लगाकर अपने बाल-बच्चो और महिलाओ की सुरक्षा के लिये घर भाग गये। गंज मे अब केवल बाहर के गाँवो के किसान ही शेष थे, जो अपना माल बेचने आये थे। उन्ही की बैलगाडियाँ वहाँ थीं। कुछ गाडियो मे माल भरा

हुआ था और कुछ खाली खड़ी थीं, और माल भीतर दुकानों में था। कुछ वृद्ध, जो दुकानों पर सोते थे, दुकानों पर ही खाते थे, वे भी अब अपने फड़ों पर खाट बिछाये बैठे थे। दुमंजिले पर रहने वाली गृहस्थी अब भी वहीं थीं। आधे घन्टे बाद पचास-साठ लड़कों का एक झुण्ड कलियानगंज में घुसा। उस गंज के दो दरवाजे हैं, जिस दरवाजे से वे घुसे उसे बन्द कर आये। जिससे झगड़ा हुआ था, पहले तो उन्होंने उसकी तलाश की, उसके न मिलने पर उन्होंने प्रत्येक दुकान के छप्पर व किवाड़ों पर फासफोरस छिड़कना शुरू कर दिया। उन सारे लड़कों ने कुछ ही मिनटों में दो-ढाई सौ दुकानों पर फास्फोरस छिड़क दिया और आप दूसरे दरवाजे से भाग निकले। सारे कलियानगंज में आग भड़क उठी। दो-सौ गोलाकार दुकानें जब एक साथ जल उठी होंगी तब आप कल्पना कीजिए क्या दृश्य रहा होगा। पूरे का पूरा बाजार अनाथ नगर की भाँति जलने लगा। दियासलाई वगैरा से यदि आग लगाई जाती तो लकड़ियों व छप्परों में धीरे-धीरे प्रवेश करती। वह तो फासफोरस था, जहाँ-जहाँ छिड़का गया वहीं-वहीं आग भड़क उठी। जो जहाँ था वहीं घिर गया और जलकर भस्म हो गया, आग धूँ-धूँ करके सब कुछ स्वाहा करती जा रही थी। उसकी भयानक लाल लपटें मनुष्यों और पशुओं की चर्बी और खून के कारण हरी-पीली दिखाई पड़ रही थी। जो शुरू में भाग सके वे तो भाग गये और जिन्होंने एक क्षण की देर की वे घिर गये और फिर निकल न सके। गाड़ियों में बन्धे हुए बैल और भैंसे जैसे-जैसे आग की लपटें नजदीक आती जातीं कूदते और जोर-जोर से आवाजें करते। कुछ तो आग से झुलस कर रस्सा तोड़ भाग निकले और जिनसे गले का रस्सा नहीं टूटा वे वहीं गिर गये। जो लोग अपनी-अपनी अटारियों में सो रहे थे वे तब जागे जबकि आग की लपटें उनके पास पहुँच गई थीं। जब नीचे आग जल रही हो तो ऊपर वाला कहाँ जाये?

गर्मी की दुपहरी थी, सारे शहर में शोर मच गया कि कलियानगंज में आग लग गई। घर-घर और मुहल्ले-मुहल्ले में चर्चा होने लगी। लोगों के झुण्ड के झुण्ड भागे जा रहे थे। किसी की उस गंज में रिश्तेदार की दुकान थी और किसी की स्वयं की, किसी के परिचय की, तो किसी के मित्र की। पड़ोसी के द्वारा जैसे ही यह सूचना मिली मैं भी झुण्ड के साथ हो लिया, क्योंकि उस समय अकेले-दुकेले जाना खतरे से खाली नहीं था। अभी दो-तीन दिन ही हुए थे, हमारे मुहल्ले के सर्राफ लाला मथुरा प्रसाद को बल्लम से गोदे हुए। मैंने जाकर देखा तो दमकलें आग बुझा रही थीं। मोटे-मोटे पाइपों से धड़ाधड़ पानी बरसाया जा रहा था, फिर भी आग काबू में नहीं आ रही थी। जहाँ आग बुझ चुकी थी वहाँ से भुना हुआ और जला हुआ अनाज बाहर निकाला जा रहा था। मकानों की छतें जलते-जलते गिर चुकी थीं। चारों ओर एक भीषण हाहाकार मचा हुआ था। कहीं पुत्र पिता को रो रहा था, तो कहीं माँ बेटे को। पचासों बैलगाड़ियाँ जली हुई थीं। जली हुई लाश खींच-खींच कर बाहर निकाली जा रही थीं। धीरे-धीरे दमकलों ने आग पर नियन्त्रण पा लिया। कहीं किसान रो रहा था, तो कहीं मजदूर।

जनता में एक भयानक आतंक फैला हुआ था। हजारों की भीड़ कलियानगंज के विनाश को खड़ी-खड़ी देख रही थी। कुछ व्यक्तियों की आँखों में आँसू थे और कुछ की आँखों में प्रतिक्रिया के लाल डोरे। लोग खड़े धन और जन की क्षति का अनुमान लगा रहे थे, कोई ढाई लाख का बताता, तो कोई चार लाख का। पर यह सब अन्दाज धन की राशि के थे, जन-क्षति तो और भी भयानक थी, चारों ओर पानी ही पानी फैल रहा था। दुकानों का अधिकांश सामान जल कर राख हो गया था और अवशेष

इधर-उधर बिखरा हुआ पड़ा था। चार घण्टे पहले का सुहावना बाजार श्मशान मालूम पड़ रहा था। पीछे की दीवारें धुएँ से काली पड़ गई थीं। लोग आँसू भरी आँखों से इस विनाशकारी दृश्य को देखते और भगवान का नाम लेकर ठण्डी और लम्बी निश्वास खींचते। यह शहर के इतिहास में सबसे भयानक अग्नि-काण्ड था। इस हृदय विदारक दृश्य को देखकर मैं खड़ा-खड़ा सोच रहा था कि वास्तव में आग की लपटें सब कुछ स्वाहा कर देती हैं।

५१. भारत के प्रमुख उद्योग

भारत कृषि प्रधान देश है—ऐसा विदेशियों ने विख्यात कर दिया परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं थी। यहाँ प्रत्येक विषय के कुशल कलाकार भी थे, जो अपने कला-कौशल से विश्व को चमत्कृत कर देते थे। अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीय उद्योग शनैः शनैः समाप्त हो गये और दो सौ वर्षों में तो बिल्कुल ही समाप्त हो गये। इसमें अंग्रेजों का स्वार्थ छिपा हुआ था वे इङ्गलैंड का बना हुआ माल भारतवर्ष में मनमानी कीमत पर बेचते थे, जिससे उनके देश का उद्योग बढ़ता था।

महात्मा गाँधी ने अपने जीवन-काल में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के लिये आन्दोलन किये तथा स्वदेशी वस्तुओं को उपयोग में लाने के लिये जनता को प्रेरित किया। परिणाम यह हुआ कि विदेशी वस्तुओं की बिक्री भारतवर्ष में कम हो गई। भारतवर्ष की बेकारी की समस्या को दूर करने के लिये गाँधी जी ने लघु कुटीर उद्योग धन्धों पर बड़ा बल दिया। अंग्रेजों ने जब देखा कि हमारे माल की खपत भारत में कम होती जा रही है, तो उन्होंने बड़ी बड़ी मशीनें भारत को बेचनी शुरू कर दीं। इस प्रकार कपड़े और चीनी की बड़ी-बड़ी मिलें खोली गईं और अब वे दूसरे रूप में भारत का पैसा इङ्गलैंड भेजने लगे। शनैः-शनैः स्वतन्त्रता संग्राम तीव्रतर होता गया। भारतीयों की आत्मिक शक्ति के सामने अंग्रेजी शासन झुका, भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई। स्वाधीनता के पश्चात् देश ने औद्योगिक क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति की है। यह तथ्य अब किसी से छिपा हुआ नहीं है। प्रतिदिन नई-नई महान् उद्योगशालायें खोली जा रही हैं। देश के जन-जीवन को सुखी एवम् सम्पन्न बनाने के लिये भारत सरकार निरन्तर प्रयत्नशील है। नित्य नवीन योजनाओं को जन्म दिया जा रहा है और उन्हें कार्यरूप में परिणत करने का सरकार भरसक प्रयत्न कर रही है। इस समय भारत के प्रमुख उद्योग—सूती वस्त्र, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, लोहा तथा इस्पात उद्योग आदि हैं।

> **भारत के प्रमुख उद्योग**
> १ प्रस्तावना।
> २. अंग्रेजी युग में उद्योगहीनता।
> ३ आधुनिक भारत के प्रमुख उद्योग —
> (क) सूती वस्त्र और जूट उद्योग।
> (ख) चीनी, लोहा तथा इस्पात उद्योग।
> (ग) सीमेंट और पेट्रोल।
> (घ) कागज और मशीनों का निर्माण।
> (ङ) हवाई जहाज तथा रेल।
> ४ अन्य उद्योग।
> ५ उपसंहार।

भारतवर्ष सूती वस्त्रों के उद्योग के लिये प्रसिद्ध है। भारत में पहली सूती वस्त्र की मिल बम्बई में सन् १८५१ में खोली गई थी। धीरे-धीरे इस उद्योग में तेजी के साथ वृद्धि होती गई। आजकल लगभग १००० मिलों में प्रति वर्ष ६५० करोड़ मीटर कपड़ा तैयार किया जाता है।

भारत की आर्थिक व्यवस्था में जूट उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। देश के लगभग चार लाख नागरिक इस उद्योग में लगे हुए हैं। जूट उद्योग से भारतवर्ष को विदेशी मुद्रा सबसे अधिक मात्रा में प्राप्त होती है। इस समय देश में ११५ जूट मिलें है, जिनमे लगभग १३ करोड़ टन से भी अधिक जूट का सामान तैयार होता है।

चीनी उद्योग भारत के सबसे बडे उद्योगों में से एक है। अंग्रेज शासन में भारत में विदेशों से चीनी आती थी। परन्तु इस समय हम चीनी उद्योग मे स्वावलम्बी ही नही अपितु विदेशो को भी चीनी देते हैं। चीनी निर्यात से देश को आर्थिक लाभ होता है। इस उद्योग से भारतवर्ष की बेरोजगारी और बेकारी की समस्या का काफी समाधान हो चुका है। देश के असंख्य अशिक्षित और शिक्षित पुरुष इस उद्योग से अपना जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। आज के किसान की आर्थिक दशा इसी उद्योग के सहारे सुधरती जा रही है और वह गेहूं की अपेक्षा गन्ना पैदा करने में अपना अधिक कल्याण समझता है। परन्तु १९७७ और १९७८ में गन्ने का मूल्य सीमा से अधिक नीचे आ गया था। १९७९ में कुछ स्थिति सुधरी है। सन् १९८०-८१ में देश मे चीनी का रिकार्ड उत्पादन हुआ था।

देश की समृद्धि के लिए लोहा और इस्पात बहुत ही आवश्यक है। भारतवर्ष में, सर्वप्रथम सन् १९०७ में टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स की स्थापना हुई थी, इसके बाद उत्तरोत्तर यह उद्योग बढ़ता गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में लोहे और इस्पात के तीन बडे-बड़े कारखाने खोले गये। इससे पूर्व भी हीरापुर, कुलती और भद्रावती के तीन कारखाने इस्पात का उत्पादन कर रहे थे। सन् १९७९-८० मे ७४ लाख टन इस्पात का उत्पादन हुआ था। भारत से इस्पात एक बड़ी मात्रा मे निर्यात किया जाता है, जिससे देश को काफी विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

सीमेंट के क्षेत्र में भारत अब आत्मनिर्भर हो गया है। इस समय देश में सीमेंट के बड़े-बड़े कारखाने है जिनमे लगभग ८० हजार व्यक्ति काम करते हैं। प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजना से सीमेंट के उत्पादन मे आशातीत वृद्धि हुई थी, किन्तु जनता आज भी सीमेंट की कमी का अनुभव कर रही है, क्योंकि इन दिनों देश में भवन-निर्माण भी पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। सन् १९५७ मे ५३ लाख टन; १९५८ में ६० लाख टन; १९५९ मे ६५ लाख टन सीमेंट तैयार हुआ। इन आंकड़ो से यह प्रतीत होता है कि सीमेंट उद्योग भारतवर्ष मे उत्तरोत्तर विकासशील है।

तीसरी योजना के अन्त मे १९६५-६६ में सीमेंट का उत्पादन १०८.२० लाख मीटरी टन था। १९६७ के अन्त तक उद्योग की प्रतिष्ठापित क्षमता बढ़कर १३४ लाख मीटरी टन हो गई।

चौथी योजना मे १९७३-७४ मे सीमेंट के उत्पादन का लक्ष्य १८० लाख मीटरी टन निर्धारित किया गया था। १९७९ तक यह उत्पादन १२० लाख टन तक पहुँच चुका है। सन् १९८२ से भारत सरकार ने सीमेंट की बिक्री पर नियन्त्रण समाप्त कर दिया है।

कोयला आज के जीवन मे नितान्त आवश्यक है यह कहने की बात नहीं है। छोटे से छोटे काम से लेकर बडे से बडे काम में इसकी उपयोगिता है। गृहस्थी के साधारण कामो के अतिरिक्त देश के महान् कार्य, जैसे—बडे-बड़े कारखाने रेल-गाडियाँ, पानी के जहाज सभी मे कोयले की अत्यन्त आवश्यकता है। भाग्य से हमारे देश मे कोयले का अनुमानित भण्डार लगभग १०,११० करोड टन है। आज तक भारत-

वर्ष में प्रतिवर्ष ३ करोड़ ८० लाख टन कोयला निकाला जाता था, परन्तु अब इस ओर विशेष प्रयास किये गये हैं, जिनसे कोयला निकालने के काम मे पर्याप्त वृद्धि हुई है।

ब्रिटिश काल मे कागज हमारे यहाँ विदेशों से आता था। इस प्रकार हम परमुखापेक्षी और पराश्रित थे। शनै शनै भारत मे पुस्तकों के काम में आने वाला कागज बनने लगा। बढ़ते-बढ़ते आज भारत इस अवस्था में है कि उसे पुस्तकों के लिये विदेशों से कागज बिल्कुल नही मगाना पड़ता। परन्तु, अखबारी कागज की भारत में अब भी कमी है। मध्य प्रदेश के 'नेपा' स्थान मे पहली मिल सन् १९५५ में स्थापित हुई थी। अब उसमे पूर्णरूप से काम होने लगा है और अखबारी कागज का ६००० टन प्रतिवर्ष उत्पादन होता है। १९७९ तक देश मे अनेकों स्थानों पर कागज मिलों की स्थापना हो चुकी है और इस दिशा मे भी देश पर्याप्त स्वावलम्बी होता जा रहा है। सन् १९७८-७९ में भारत ने १० लाख टन कागज का उत्पादन किया था।

मशीनों के निर्माण मे भी भारत अब अन्य देशों से अधिक पीछे नहीं है। स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व सभी मशीनें विदेशों से ही आती थीं, क्या साइकिलें, क्या सिलाई की मशीनें और क्या डीजल इञ्जिन। विदेशों से साइकिलों का आयात अब समाप्त ही नही हुआ बल्कि भारत विदेशो को साइकल तथा सिलाई की मशीनें निर्यात भी कर रहा है। वर्तमान मे डीजल इञ्जिन तथा मोटरो का निर्माण भी भारत में ही हो रहा है। परन्तु कुछ आवश्यक पुर्जे आज भी विदेशो से मँगाये जाते हैं। आशा है निकट भविष्य में भारत उनमे भी स्वावलम्बी हो जायेगा।

वायुयानों के निर्माण के लिये बगलोर मे हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स नामक एक विशाल कारखाना है, जिसमे अब तक कई प्रकार के हवाई जहाज बनाये जा चुके हैं। इस समय इस विशाल कारखाने में पुराने ढङ्ग के और नये प्रकार के वायुयान बनाये जा रहे हैं। यह कारखाना दिन प्रतिदिन उन्नति करता जा रहा है। एक कारखाना बङ्गलोर में और भी खोला गया है, जिसमे वायुयान बनाये जा रहे हैं। वायुयान बनाने का एक कारखाना भारत सरकार के रक्षा मन्त्रालय ने कानपुर मे खोल रखा है। रूस की सहायता से नासिक और हैदराबाद मे मिग विमानों का निर्माण किया जाता है।

रेल इञ्जिन बनाने का सबसे बड़ा कारखाना चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स है, जो समस्त एशिया मे सबसे विशाल कारखाना है। भारत सरकार ने इसकी स्थापना १९५९ में की थी। आज इसमे इञ्जिन बड़ी सख्या में प्रतिवर्ष तैयार हो रहे हैं। इसी प्रकार पैराम्बूर मे रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना खोला गया है, जिसने कुछ ही वर्षों मे देश की समृद्धि मे आशातीत सहयोग प्रदान किया है।

देश में जलयान बनाने के कारखाने विशाखापत्तनम, कोचीन, पश्चिमी बगाल (गार्डन रीच), बम्बई (मझगाँव) में स्थापित हैं।

कोयले की भाँति मिट्टी का तेल भी आज के युग की विशेष आवश्यकता है। अब तक देश पैट्रोल के लिये विदेशों पर निर्भर रहता था, परन्तु अब मिट्टी का तेल देश मे बहुतायत से पाया जा रहा है और उसको शुद्ध करने के लिये, एक ट्राम्बे मे, दूसरा विशाखापतनम मे तथा तीसरा मथुरा मे, तीन कारखाने खोले जा चुके हैं। तेल का पर्याप्त अन्वेषण किया जा रहा है। काठियावाड़ मे काफी मात्रा में तेल पाया गया है परन्तु इस दिशा में देश अभी आत्मनिर्भर नहीं हो पाया। आशा है निकट भविष्य मे भारत सरकार इस दिशा मे निश्चित ही पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेगी। उत्तर प्रदेश, बिहार और पजाब में तेल की खोज की जा रही है। बड़ी बड़ी मशीनों को बनाने के

फिर उस सोने को देश रक्षा के लिये पंडित जी के चरणों में चढ़ा दिया जाता। सभी जातियाँ, सभी सम्प्रदाय, सभी वर्ग अपनी-अपनी विचार भिन्नताओं को भुलाकर एकाकार हो उठे थे। सबके सामने अपना देश था, अपना राष्ट्र था और था अपने प्राणप्रिय नेता नेहरू के संकेत पर सर्वस्व समर्पण। देश की इस अभूतपूर्व भावात्मक एकता के लिए, जन-जागृति के लिए चीनी आक्रमण एक वरदान के रूप में देश के सामने आया। इसी वरदान की पुनरावृत्ति सन् ४७, सितम्बर ६५ और दिसम्बर ७१ में तब हुई जब पाकिस्तान ने भारत पर सहसा आक्रमण कर दिया। तात्पर्य यह है कि युद्ध से जन-जागरण एवं भावात्मक एकता का लाभ भी है। युद्ध से देश की जनसंख्या कम होती है। इस दृष्टि से युद्ध उन देशों के लिए वरदान है जहाँ उत्पादन कम है और खाने वाले अधिक हैं। युद्ध के समय बेकारी दूर हो जाती है, सभी को कुछ न कुछ काम मिल ही जाता है, युद्ध-जन्य कठिनाइयों में मनुष्य में आत्मबल का उदय होता है। देश की मान-रक्षा के लिए सब कुछ त्याग देने की उदात्त भावनायें नागरिकों में सहसा पैदा हो उठती हैं, जो कि देश के भविष्य के लिए एक शुभ-लक्षण होता है। युद्ध के बहाने से देश शक्ति का अर्जन करता है। यदि धार्मिक दृष्टि से देखा जाये तो पापियों, अधर्मियों एवं भ्रष्टाचारियों के विनाश के लिए युद्ध एक वरदान बन जाता है।

"जब-जब होहि धरम की हानि। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी॥
तब-तब धरि मैं मनुज सरीरा...॥"

ऊपर दिये दो चित्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध मानव के लिए क्या अभिशाप है या वरदान भी। अच्छी से अच्छी वस्तु जहाँ लाभदायक होती है, वहाँ वह हानिप्रद भी होती है। सृष्टि में कोई पदार्थ ऐसा नहीं जिसमें गुण ही हों और अवगुण एक भी न हो। कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो केवल कल्याणकारी ही हो। सृष्टि का निर्माण भी गुण-अवगुण तथा सुख-दुखों की भित्ति पर हुआ है। युद्ध भी इसी प्रकार कुछ दृष्टियों से भले ही वरदान हो पर इस पर दो मत नहीं हो सकते, कि युद्ध मानव कल्याण के लिए कम एवं मानव विनाश के लिए अधिक है। यदि युद्ध वरदान है, तो फिर विश्व के महापुरुष विश्वशान्ति के लिये क्यों प्रयत्नशील हैं? गाँधी और कैनेडी को गोली क्यों मारी गई? महाराजा अशोक को युद्ध से घृणा क्यों हुई? जापान के नागासाकी और हिरोशिमा के ध्वंसावशेष आज क्या सन्देश दे रहे हैं? उत्तरी वियतनाम के निरीह बच्चों और अबलाओं पर की गई बम-वर्षा वरदान का कौन-सा रूप है? इजराइल द्वारा ध्वस्त जॉर्डन, इराक, सीरिया और मिस्र आज क्या कह रहे हैं? १७ फरवरी ७९ को चीन द्वारा वियतनाम पर किया गया बर्बर आक्रमण क्या संकेत दे रहा है? उत्तर केवल एक है—युद्ध मानव कल्याण के लिए नहीं अपितु विनाश के लिये है।

युद्ध रुक सकते हैं, यदि विश्व भारत द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चले। निःशस्त्रीकरण आज के युग में विश्वशान्ति के लिए अनिवार्य है। पर कहते सब हैं, करता कोई नहीं। तात्पर्य यह निकला कि युद्ध निःसन्देह मानव-मात्र के लिये अभिशाप है। विष, अमृत कैसे हो सकता है? ●

५३. धर्म और विज्ञान

आज के युग में धर्म का प्रभाव उत्तरोत्तर क्षीण होता जा रहा है। लोगों में नास्तिकता घर करती जा रही है, इसका एकमात्र कारण है विज्ञान की उन्नति। विज्ञान का प्रभाव आज विश्वव्यापी है। आज से दो शताब्दी पूर्व यह दशा नहीं थी।

धर्मप्राण जनता विज्ञान और वैज्ञानिकों को घृणा की दृष्टि से देखती थी, उसका विचार था वैज्ञानिक अनुसंधान धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षा के प्रतिकूल है तथा विज्ञान से नास्तिकता बढ़ती है। आज भी कुछ ऐसी विचारधारा जनता में दृष्टिगोचर होती है।

धर्म और विज्ञान

१. प्रस्तावना।
२ धर्म और विज्ञान के क्षेत्रों में भिन्नता।
३ धर्म की उन्नति और अवनति।
४ विज्ञान की उन्नति और अवनति।
५ धर्म और विज्ञान का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध।
६ उपसंहार।

धर्म और विज्ञान दोनों ने ही मानव जाति के उत्थान में पूर्ण सहयोग दिया है, प्रथम ने आन्तरिक और दूसरे ने बाह्य, धर्म ने मानव की मानसिक एवं आत्मिक उन्नति की ओर तथा विज्ञान ने भौतिक उन्नति की ओर। धर्म ने मानव हृदय का परिष्कार किया और विज्ञान ने बुद्धि का, मनुष्य को भौतिक सुख-शान्ति की जितनी आवश्यकता है उससे भी अधिक मानसिक सुख शान्ति की। मनुष्य कितना ही धनवान् हो, कितना ही ऐश्वर्य-सम्पन्न और समृद्धिवान् हो परन्तु वह भी मानसिक शान्ति के लिये भटकता देखा गया है। इसी प्रकार यदि मनुष्य उस समाज में सामान्य स्थान प्राप्त करके जीवनयापन करता है, तो उसे सांसारिक सुख-शान्ति भी आवश्यक है। अतः संसार में धर्म और विज्ञान दोनों ही मानव कल्याण के लिये आवश्यक तत्व हैं और सभी कालों में रहेंगे। यह दूसरी बात है कि किसी काल विशेष में धर्म की प्रधानता हो और किसी में विज्ञान की।

धर्म, मानव हृदय की एक उच्च और उदात्त, पुनीत और पवित्र भावना है। धार्मिक भावना से मनुष्य में सात्विक प्रवृत्तियों का उदय होता है। परोपकार, समाज-सेवा, सहयोग, सहानुभूति की भावनायें जागृत होती हैं। धर्म के लिये मनुष्य को शुभ कर्म करने चाहियें और अशुभ कर्मों का परित्याग कर देना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक प्रवृत्तियाँ मनुष्य के पुण्य कर्मों में प्रायः प्रत्यूह उपस्थित करती हैं। धार्मिक मनुष्य भौतिक सुखों की अवहेलना करता है, कष्ट सहता है, परन्तु अपने धर्म के मार्ग से विचलित नहीं होता। हिन्दू धर्म के अनुसार मनुष्य की आत्मा अमर है और शरीर नाशवान है। मृत्यु के पश्चात् भी मनुष्य अपने सूक्ष्म शरीर से अपने किये हुये शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगता है। धार्मिक लोग स्वर्ग, नरक और परलोक में आस्था रखते हैं। इसलिये उनका विचार यह है कि इस अल्प जीवन में सुख भोगने की अपेक्षा अपने परलोक को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये और इसके लिये पुण्यार्जन परमावश्यक है।

इन धार्मिक शिक्षाओं से असंख्य भारतीयों का जीवन सुपथ की ओर बढ़ा, उन्होंने मनुष्यत्व से देवत्व प्राप्त किया। कितने ही उच्च कोटि के महापुरुषों ने अपना जीवन धर्म और परहित के लिये उत्सर्ग कर दिया, पथ-भ्रष्टों को प्रकाश दिया, उनके प्रभाव से कितने ही नीच और दुष्ट व्यक्तियों का जीवन सुधर गया। ऐसे महापुरुषों के लिए जनता के हृदय में श्रद्धा उमड़ पड़ी। उनके संकेत पर अनेकों देवालयों की स्थापना हुई। उन महापुरुषों की सेवा-शुश्रुषा के लिये उनके भक्त आर्थिक सहायता प्रदान करते, उनकी पूजा और अर्चना करते थे। उनके सदुपदेशों से जनता कल्याण-लाभ करती थी, धर्म का प्रभाव संसार के कोने कोने में छा गया। छोटे तथा बड़े सभी नगरों में धार्मिक मठों और मन्दिरों की स्थापना की गई।

उत्थान के पश्चात् पतन अवश्यम्भावी होता है। शनैः शनैः धर्म के वास्तविक सिद्धान्तों में विकार उत्पन्न होने लगे। धर्मोपदेशकों, साधुओं, महात्माओं और पंडितों में विश्वासम्बर की भावना भर गई। त्याग, सेवा, पथ-प्रदर्शन की भावनायें समाप्त हो गयीं। जनता उनके भुलावे में आकर पथ-भ्रष्ट होने लगी। धीरे-धीरे ईश्वर पूजा, भूत पूजा में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार जो धर्म समाज को उन्नति की ओर ले जा रहा था, वह अन्ध-विश्वास और अन्ध-श्रद्धा में बदलकर पतन का कारण बन गया। पंडित, पुरोहित तथा धर्मगुरु धन लेकर यजमान का स्थान स्वर्ग में सुनिश्चित कराने लगे।

अन्ध-विश्वास के अन्धकार से निकलकर मानव ने बुद्धि और तर्क की शरण ली। विज्ञान धीरे-धीरे बढ़ने लगा। लोगों में आँखों देखी बात या धर्म की कसौटी पर कसी हुई बात पर विश्वास करने की प्रवृत्ति जागृत हुई। विज्ञान की भी मूल-प्रवृत्ति यही है, धर्मग्रन्थों में लिखी हुई या उपदेशकों द्वारा कही हुई बात को वह सत्य नहीं मानता, जब तक कि तर्क द्वारा या नेत्रों के प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा तर्क सिद्ध न हो जाये। परिणामस्वरूप धर्म और विज्ञान दो विरोधी धारायें बन गईं। धर्म की आड़ लेकर जो अपने स्वार्थ साधन में संलग्न थे, उनके हितों को विज्ञान से धक्का पहुँचा, वे वैज्ञानिकों के मार्ग में विघ्न उपस्थित करने लगे, "उघरे अन्त न होई निबाहू", जब धर्म के बाह्य आडम्बरों की पोल खुल गई तो जनता सत्य के अन्वेषण में प्राणपण से लग गई। जो सुख और समृद्धि धार्मिकों की स्वर्गीय कल्पना में थे, उन्हें वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों से इस संसार में प्रस्तुत कर दिखाया। धर्म ईश्वर की पूजा करता था, विज्ञान ने प्रकृति की उपासना की। विज्ञान ने (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) पाँचों तत्वों को अपने वश में किया। उसने अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न सेवायें लीं, इस प्रकार मानव के जीवन और जगत को सुखी और समृद्ध बना दिया। वैज्ञानिकों ने अपने अनेक आश्चर्यजनक परीक्षणों से जनता में तर्क बुद्धि उत्पन्न करके उनके अन्धविश्वासों को समाप्त कर दिया। आज के वैज्ञानिक मानव ने क्या नहीं कर दिखाया—

यह मनुज,
जिसका गगन में जा रहा है यान
काँपते जिसके करों को देखकर परमाणु।
खोल कर अपना हृदय गिरि, सिन्धु, भू, आकाश,
हैं सुना जिसको चुके निज गुह्यतम इतिहास।
खुल गये परदे, रहा अब क्या यहाँ अज्ञेय
किन्तु नर को चाहिये नित विघ्न कुछ दुर्जेय।

धर्म का स्वरूप विकृत होकर जिस प्रकार बाह्याडम्बरों में परिवर्तित हो गया था, उसी प्रकार विज्ञान भी अपनी विकृति की ओर है। प्रत्येक वस्तु का उत्कर्ष के पश्चात् अपकर्ष अवश्यम्भावी होता है। विज्ञान ने जब तक मानव की मंगल कामना की तब तक वह उत्तरोत्तर उन्नतिशील रहा। जो विज्ञान मानव कल्याण के लिये था, आज उसी से मानवता संत्रस्त है। परमाणु आयुधों के विध्वंसकारी परीक्षणों ने आज समस्त विश्व को भयभीत कर दिया है। धर्म के विकृत स्वरूप ने जनता को मूर्खता की ओर अग्रसर किया था, विज्ञान का दुरुपयोग जनता को प्रलय की ओर अग्रसर कर रहा है।

मानव की सर्वांगीण उन्नति और वैभव के लिये यह आवश्यक है कि धर्म और विज्ञान में सामंजस्य और समन्वय स्थापित हो। एकांगी ज्ञान और एकांगी समृद्धि न ज्ञान है और न समृद्धि। जिस प्रकार अकेला विज्ञान संसार को शान्ति प्रदान नहीं कर सकता, उसी प्रकार अकेला धर्म भी संसार को समृद्ध नहीं बना सकता। अतः धर्म पर

विज्ञान का और विज्ञान पर धर्म का अंकुश नितांत आवश्यक है। लोक मंगल के लिए धर्म और विज्ञान का अन्योन्याश्रित होना परमावश्यक है। आज के वैज्ञानिक मानव के विषय में महाकवि दिनकर की भावनायें देखिये—

व्योम से पाताल तक सब कुछ उसे है ज्ञेय
पर, न यह परिचय मनुज का, यह न एक श्रेय।
श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत,
श्रेय, मानव की असीमित मानवों से प्रीत।

एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान
तोड़ दे जो बस, वही ज्ञानी, वही विद्वान् ॥

सारांश यह है कि धर्म और विज्ञान परस्पर एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं, अपितु एक दूसरे के पूरक हैं। बिना धर्म के विज्ञान का काम नहीं चल सकता और बिना विज्ञान के धर्म का काम नहीं चल सकता। हृदय और मस्तिष्क का समन्वय ही संसार में सुख, समृद्धि और शान्ति स्थापित कर सकता है, धर्म और विज्ञान आपस में मित्र हैं, शत्रु नहीं। मित्र, मित्र की सहायता करता है तभी विजय होती है और यदि मित्र शत्रु से जा मिले या पृथक् हो जाए, तो एक मित्र की विजय भी पराजय में परिवर्तित हो जाती है। आज के विश्व को शान्ति भी चाहिये और समृद्धि भी।

५४. कविता और विज्ञान

अथवा

"सावधान, मनुष्य ! यह विज्ञान है तलवार"

"सावधान, मनुष्य ! यह विज्ञान है तलवार"

एकांगी उन्नति, पूर्ण उन्नति नहीं कही जाती। मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति के लिये हृदय और बुद्धि की समानता चाहिये। कोरी भावुकता या ज्ञान की कोरी नीरसता मानव-जाति का कल्याण नहीं कर सकती। मानव-जाति के समुचित विकास के लिए हृदय और बुद्धि का समन्वय चाहिये। हृदय अर्थात् कविता, बुद्धि अर्थात् विज्ञान। जिस प्रकार गृहस्थ जीवन के स्त्री और पुरुष दो पहिये कहे जाते हैं, उसी प्रकार मानव-जीवन की उन्नति के दो पहिये हैं, कविता और विज्ञान। दोनों में से किसी एक से अकेले नाव नहीं चल सकती, कविता "सत्यं शिवं सुन्दरम्" की समष्टि है। समाज के सहृदय तथा भावुक व्यक्तियों की आनन्दमयी एवं लोकहितकारिणी भावनाओं की संचित निधि ही कविता है तथा समाज के तार्किक एवं बुद्धिप्रधान अन्वेषकों द्वारा खोजे हुए चमत्कारिक सत्यों का अक्षुण्ण भण्डार ही विज्ञान है। मानव-समाज का हृदय-पक्ष कविता है, बुद्धि पक्ष विज्ञान।

कविता और विज्ञान
१. प्रस्तावना—कविता और विज्ञान।
२. कविता और विज्ञान का सम्बन्ध।
३. विज्ञान की उन्नति।
४. वैज्ञानिक विडम्बनायें।
५. सावधान।
६. उपसंहार।

कविता तथा विज्ञान अन्योन्याश्रित हैं। जिस प्रकार बिना आत्मा के शरीर का और बिना शरीर के आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं होता, उसी प्रकार कविता और

विज्ञान भी परस्परावलम्बित हैं। दोनो एक दूसरे की पूरक शक्तियाँ हैं। कविता का विकास मानव समाज की भावनाओं का प्रसार एवं परिष्कार करता है और विज्ञान मानव-जाति को भौतिक उन्नति की ओर अग्रसर करता है। कविता मानव-जाति की भौतिक उन्नति में सहायक नहीं होती और विज्ञान मनुष्य की आध्यात्मिक एवं मानसिक उन्नति में सहायक नहीं होता। भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास के समन्वय से ही मनुष्य-जाति का कल्याण हो सकता है। केवल एक पर आश्रित रहने से मनुष्य पक्ष का ही हो जाएगा। मनुष्य का समुचित विकास हृदय और बुद्धि के सहयोग से ही हो सकता है। कुछ विद्वान् कविता और विज्ञान को नितान्त ही भिन्न बताते हैं। परन्तु हाँ, इतना अवश्य है कि कविता और विज्ञान का क्षेत्र कुछ भिन्न अवश्य है, क्योंकि कविता मनुष्य की रागात्मक वृत्तियो का परिणाम है और विज्ञान ज्ञानात्मक वृत्तियों का। कविता का सम्बन्ध आदर्श से है और विज्ञान का सम्बन्ध यथार्थ से। साहित्य के क्षेत्र में केवल आदर्शवाद या केवल यथार्थवाद हास्यास्पद बन जाते हैं और उनसे जीवन और जगत् का कोई कल्याण नही होता है। इसलिये आदर्श और यथार्थ का सामंजस्य ही विद्वान् को सम्मत होता है। साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवादी होना चाहिए। इसी प्रकार, कविता और विज्ञान के सामंजस्य से ही लोकहित सम्भव हो सकता है। कविता की प्रकृति संश्लेपणात्मक होती है जबकि विज्ञान की विश्लेषणात्मक। कविता का लक्ष्य मानव के संकुचित 'स्व हो' को विस्तृत करके परमानन्द प्राप्त कराना है, जबकि विज्ञान मानव के भौतिक सुख को अपना लक्ष्य स्वीकार करता है।

आज के युग मे विज्ञान उन्नति की चरम सीमा पर है। आज का वैज्ञानिक ईश्वर के अस्तित्व को मानव-मन की दुर्बलता स्वीकार करता है। आज वह प्राचीन भारतीय संस्कृति का परिहास उड़ाने मे गौरव का अनुभव कर रहा है, आज वह प्रकृति से भयभीत नही होता, उसे अपनी अनुचरी और सहचरी समझता है। प्रकृति के पाँचों तत्वों—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पर आज उसका पूर्ण अधिकार है। चन्द्रमा और मंगल, आदि ग्रहों पर आज वह नया संसार बसाने को आतुर हो रहा है, चाहे उसके बदले मे उसे इस संसार का बलिदान करना पड़े। संसार के महान् देश आज विनाशकारी अस्त्रो के निर्माण में गौरव-गरिमा का अनुभव कर रहे हैं। विज्ञान ने मानव-जाति के लिये अनन्त सुख सुविधायें प्रदान की हैं। कोई भी अवैज्ञानिक विद्वान द्वारा आविष्कृत साधनों की उपेक्षा नही कर सकता। राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी कवि दिनकर ने लिखा है—

आज की दुनिया विचित्र, नवीन;
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन।
हैं बंधे नर के करो में वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढ़ता उतरता है पवन का ताप,
है नहीं बाकी कहीं व्यवधान,
लाँघ सकता नर, सरित-गिरि-सिन्धु एक समान॥

एक ओर विज्ञान ने जहाँ हमें जीवनयापन के लिये अत्यन्त सुख-सुविधाएँ प्रदान की हैं, वहाँ दूसरी ओर मानवता भयग्रस्त हो रही है। विज्ञान ने मनुष्य से मनुष्यता छीन ली और उसे दानव बना दिया। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का वह भारतीय पुरातन आदर्श आज प्रायः लुप्त-सा दृष्टिगोचर हो रहा है। संसार अपने-अपने स्वार्थों मे व्यस्त है, प्रत्येक राष्ट्र अपना ही चिन्तन करता है; न उसकी पड़ोसी देशों के साथ कोई सहानुभूति है और न संवेदना। विश्व के महान् देश आज अपनी-अपनी वैज्ञानिक

उपलब्धियों के आधार पर एक दूसरे के विनाश के लिए कटिबद्ध हैं। विश्व के मानव मात्र को सावधान करते हुए 'दिनकर' लिखते हैं—

सावधान मनुष्य ! यदि विज्ञान है तलवार
तो इसे दे फेंक तजकर मोह स्मृति के पार।
हो चुका है सिद्ध है तू शिशु अभी अज्ञान,
फूल काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार॥

विज्ञान के भय से अभय होने के लिये यह आवश्यक है कि मानव के भौतिक उत्थान के साथ-साथ आध्यात्मिक एवं मानव विकास के सभी यथासम्भव प्रयत्न किए जायें। मानव का आध्यात्मिक विकास कविता द्वारा ही सम्भव है। कविता मानव के दूषित संस्कारों को, हृदय के कलुषित भावों को और स्वार्थपूर्ण विचारधाराओं को समाप्त करके उसके हृदय में उदात्त और सात्विक भावों का सृजन और परिवर्द्धन करेगी, परन्तु आवश्यकता है दोनों के समन्वय की। अकेला विज्ञान, जैसे आज समस्त मानवता को सन्त्रस्त किए बैठा है, वैसे ही कविता की कोरी भावुकता से भी संसार में कार्य नहीं चल सकता। आज संघर्षमय संसार में सभी बातों की आवश्यकता है। अकेला योगी या अकेला भोगी संसार का कल्याण नहीं कर सकता। आज के विश्व में दोनों का संतुलन अपेक्षित है। यदि आज हम भौतिक उन्नति की उपेक्षा करते हैं, तो निश्चित ही हम संसार में जीवित नहीं रह सकते। संसार के देश हमें खा जायेंगे। भौतिक उन्नति की उपेक्षा का परिणाम भारतवर्ष ने पराधीनता के रूप में कोई शताब्दियों तक भोगा है। परन्तु इसके साथ-साथ हमें अपनी आध्यात्मिक उन्नति की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अन्यथा हम हास्यास्पद बनकर ही रह जायेंगे।

सारांश यह है कि कविता और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। एकांगी प्रगति मानव-कल्याण करने में सर्वथा असमर्थ रहेगी। अकेली कविता अपूर्ण है और अकेला विज्ञान भी अपूर्ण है। हृदय-पक्ष और बुद्धि-पक्ष, दोनों के समन्वय से ही मानव बुद्धि का परिष्कार सम्भव है। इसके सन्तुलित शिलान्यास पर ही मानव कल्याण का भव्य प्रासाद बन सकता है, अन्यथा नहीं। आज के वैज्ञानिक के पास कवि जैसे उदार एवं कोमल हृदय हो, तो निश्चित ही विज्ञान मानव जाति का शत्रु न बनकर मित्र बन जाएगा। अतः विश्व कल्याण के लिए नितान्त आवश्यक है कि विज्ञान और कविता में सामंजस्य स्थापित हो तथा दोनों एक दूसरे के सहचर हों।

५५. भारतीय संविधान

भारतीय संविधान
१ प्रस्तावना।
२ भारतीय संविधान का महत्व।
३ भारतीय संविधान की विशेषतायें।
४ संशोधन की विधि।
५ उपसंहार।

पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालीस से पूर्व साम्राज्यवाद की जटिल शृंखलाओं से भारतवर्ष आबद्ध था। अंग्रेजों की शोषण नीति एक शताब्दी तक भारत पर अपना अधिकार जमाए रही। जनता आरम्भ से ही क्षुब्ध थी। भारत की तपोभूमि पर जब से विदेशियों ने पदार्पण किया तभी से विद्रोह प्रारम्भ हो गए थे। उनका स्वरूप उत्तरोत्तर उग्र होता गया। भारतीयों ने अपना तन-मन-धन सब कुछ अमूल्य

स्वतन्त्रता के यज्ञ में सहर्ष समर्पित कर दिया, उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रतिज्ञा ली। अब तक भारतीयों का जीवन ब्रिटिश पार्लियामेंट के द्वारा विनिर्मित संविधान के संकेतों पर चल रहा था, परन्तु उनके हृदय में अपना देश, अपना राज्य, अपनी सुख सुविधा के लिये अपने संविधान की अदम्य उत्कण्ठा प्रबल रूप से जागृत थी। भारतीय वीरों के त्याग और बलिदान सफल हुए। १५ अगस्त सन् ४७ को भारतीय भाग्याकाश स्वतन्त्रता के सूर्य से देदीप्यमान हो उठा। भारतीय स्वतन्त्रता के उन्मुक्त वातावरण में उनका हृदय-पारावार आनन्द की उत्ताल तरंगों से आन्दोलित हो उठा। स्वतन्त्र भारत का अपना संविधान बनना प्रारम्भ हुआ। जनता के प्रतिनिधियों की विधान परिषद् ने जनता को नये अधिकार और नये कर्त्तव्य प्रदान किए, जनता में अपार प्रसन्नता छा गई। समस्त देश में बड़ी धूम-धाम से गणतन्त्र दिवस समारोह मनाया गया क्योंकि आज उसे अपना संविधान मिला था।

विधान परिषद् की प्रथम बैठक १५ फरवरी सन् १९४६ में हुई। इस सभा में जनप्रतिनिधियों के समक्ष विधान की रूप-रेखा प्रस्तुत की गई, उस पर गम्भीरता से विचार हुआ। भारतीय मनीषियों के एक वर्ष के अथक एवम् अनवरत परिश्रम ने संविधान को साकार रूप दे दिया। २६ जनवरी १९५० से यह सर्वप्रिय संविधान भारत में लागू किया गया, इसे अन्तिम रूप देने में तीन वर्ष का समय लगा। भारतीय संविधान विश्व के संविधानों में अपना एक विशेष महत्व रखता है, उसकी समानता संसार के किसी भी संविधान से नहीं की जा सकती। कुछ विषयों में वह इङ्गलैण्ड के संविधान की समानता करता है और कुछ विषयों में अमेरिका और स्विट्जरलैण्ड की। इसमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, आदि सभी भारतीय परम्पराओं की रक्षा की गई है। विशेष रूप से अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रक्खा गया है।

भारतीय संविधान २२ भागों में विभक्त है। इसमें ३९५ धाराएँ हैं और ९ परिशिष्ट हैं। यह विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान है। विधान की विशालता और विस्तार का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अपने कार्यकाल में विधान-परिषद् को लगभग ढाई हजार संशोधनों पर विचार करना पड़ा। भारतीय संविधान की आधार-शिला में उदारता, समानता और भ्रातृत्व जैसे आदर्श एवं अनुपम गुण हैं। यह संविधान जाति तथा धर्म, आदि के भेद-भाव को दृष्टि में न रखकर समस्त भारतीय नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है। संविधान की दृष्टि में न कोई बड़ा है और न कोई छोटा, न कोई धनवान है और न कोई धनहीन, न कोई उच्च कुल का है और न कोई निम्न कुल का। धार्मिक दृष्टि से संविधान अपने समस्त नागरिकों को पूर्ण स्वतन्त्रता देता है, प्रत्येक नागरिक अपनी इच्छानुसार धर्म स्वीकार कर सकता है और पूर्ण स्वच्छन्दता से धर्मानुकूल आचरण कर सकता है। भारतीय संविधान धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। शिक्षा ग्रहण करने के सम्बन्ध में किसी के ऊपर कोई दबाव नहीं, मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार भाषाओं का अध्ययन करके ज्ञान-वर्द्धन कर सकता है। अपनी अभिरुचि के अनुसार व्यवसाय चुन सकता है। अपनी सम्पत्ति के चाहे वह चल हो या अचल सभी समान रूप से अधिकारी हैं। देश का सम्पूर्ण प्रभुत्व देशवासियों के हाथों में सुरक्षित है, वे अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करते हैं। संविधान २१ वर्ष की आयु वाले सभी स्त्री-पुरुषों को मतदान का अधिकार देता है, इस प्रकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से देश का शासन सूत्र जनता के हाथों में ही है। नई केन्द्रीय सरकार ने संविधान में संशोधन करके मतदान की आयु २१ वर्ष से घटाकर १८ वर्ष कर दी है। संविधान की दृष्टि में न कोई छूत है और न अछूत। किसी भी व्यक्ति विशेष को अछूत नाम से पुकारने वाला व्यक्ति वैधानिक रूप से दण्ड का

भागी होता है। इसी प्रकार साम्प्रदायिकता को भी संविधान अवैध घोषित करता है। सभी नागरिकों को अपने जीवन की सुरक्षा और सुख सुविधा का पूर्ण अधिकार है। लेख आदि के द्वारा तथा भाषण एवं व्याख्यानों द्वारा अपने मत प्रकाशन का पूर्ण एवं समान अधिकार है। परन्तु सरकारी कर्मचारी को नहीं। सरकार प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका के सुलभ साधन प्रस्तुत करेगी तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य की दृष्टि से अल्प-वयस्कों को मिलों में तथा कारखानों में भर्ती नहीं किया जाएगा। "संविधान में भारतीय राज्य-व्यवस्था को तीन अंगों में विभक्त किया है—न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका।" सरकार की न्यायपालिका शक्ति सर्वत्र स्वतन्त्र है, उसके ऊपर न कार्यपालिका का अधिकार है और न व्यवस्थापिका का। वह संविधान के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करती है। संविधान की व्याख्या और उसकी रक्षा का भार न्यायपालिका पर ही है। राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं करेगी। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का पद पंचवर्षीय होगा। ३५ वर्ष से कम आयु वाला राष्ट्रपति नहीं हो सकता। राष्ट्रपति को शासन सुविधा के लिये मन्त्रिमण्डल होगा। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति स्वयं राष्ट्रपति करेंगे तथा मन्त्रिमण्डल के अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री की इच्छा से ही राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी।

संविधान द्वारा भारत में संघात्मक सरकार की स्थापना की गई है। अन्य संघात्मक शासन वाले देशों से भारतीय संविधान बिल्कुल भिन्न है। इसका निर्माण स्वतन्त्र राज्यों के बीच किसी समझौते के अनुसार नहीं हुआ, इस संविधान ने भारत की केन्द्रीय सरकार को राज्य की सरकारों की अपेक्षा अधिक शक्ति दे रखी है। इस संघ की किसी इकाई को संघ शासन से बाहर निकालने का अधिकार नहीं है। भारतीय संविधान ने केन्द्र सरकार को ६७ विषय दिये हैं और राज्य की सरकारों को ६६ विषय दिये गये हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक होते हुए भी देश में शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था करता है। इस प्रकार यह संविधान देश की अविच्छिन्न एकता स्थापित करने में पर्याप्त सहायक है।

भारतीय संविधान के अनुसार भारतवर्ष में संसद पद्धति वाली सरकार स्थापित हुई है। भारत का राष्ट्रपति आत्मशक्तिसम्पन्न राष्ट्रपति होता है पर केवल नाममात्र के लिये। वास्तविक शक्ति मन्त्रि-परिषद् में निहित है। मन्त्रि परिषद् जो चाहे वह कर सकती है। ये मन्त्री जनता द्वारा निर्वाचित, संसद के प्रति अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी होते हैं। इस दृष्टि से भारतीय संविधान इङ्गलैण्ड के संविधान से बहुत कुछ समानता रखता है। मन्त्रियों को संसद का सदस्य होना आवश्यक है। वे अपने पद पर तभी तक कार्य कर सकते हैं, जब तक उन्हें संसद का विश्वास प्राप्त होता रहे।

भारतीय संविधान लिखित है। लिखित संविधान में सामयिक परिवर्तन कठिन हो जाते हैं, परन्तु भारतीय संविधान में संशोधन की विधि सरल रखी गई है। संविधान में संशोधन तभी सम्भव हो सकता है जब भारतीय संसद तथा आधे से अधिक राज्यों के विधान मण्डलों की स्वीकृति उस पर प्राप्त हो जाए। संशोधन के लिये प्रत्येक सदन की सदस्य संख्या के आधे और उपस्थित सदस्यों की संख्या के दो-तिहाई मत पक्ष में होने चाहिएँ। इस प्रकार, भारतीय संविधान में संशोधन की न तो कठोरतम विधि अपनाई गई है और न उसे अधिक सरल ही बनाया गया है।

संविधान के अनुसार, प्रत्येक राज्य की एक परिषद् होगी जिसमें दो विधायक

सभायें होंगी, एक राज्य-परिषद् तथा दूसरी लोकसभा। राज्य-परिषद के सदस्यों की संख्या २५० तथा लोकसभा के सदस्यों की संख्या ५०० से अधिक नहीं होगी। राज्य-परिषद् कभी भंग नहीं होगी, परन्तु उसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष के पश्चात् पृथक् कर दिये जायेंगे। उपराष्ट्रपति राज्य-परिषद का अध्यक्ष होगा। समस्त राष्ट्र भिन्न राज्यों में विभक्त होगा। प्रत्येक राज्य के लिये गवर्नर तथा उसकी सहायता के लिये एक मन्त्रिमण्डल होगा। व्यवस्थापिक मण्डल में दो सभायें होंगी, एक विधान-परिषद्, दूसरी विधान सभा। राज्यो के न्याय के लिये उच्च न्यायालय रहेंगे।

अतः हमारा संविधान व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्रदान करता है और यह एक आदर्श संविधान है, जिसके द्वारा हर नागरिक अपने आप को भारत का नागरिक होने में गौरवान्वित होता है।

५६. संयुक्त राष्ट्र संघ

आज का युग युद्ध का युग है। बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रो को निगल जाने के लिये आतुर बैठे है। विश्व के चारो ओर अशांति का आतंक छाया हुआ है। आज का सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन सङ्घर्षो का केन्द्र बना हुआ है। युद्ध से अनन्य धन-जन शक्ति का विनाश होता है यह सभी जानते और मानते भी है; परन्तु मानव स्वार्थलिप्सा उसे सब कुछ भुलाकर पथ-भ्रष्ट कर देती है। विश्ववन्धुत्व की पवित्र भावना तथा मानवता का पुनीत सम्बन्ध आज समाप्त हो गया है। विगत दोनों महायुद्धों का लोक-संहारकारी ताण्ड व नृत्य संसार ने देखा, मानवता चीत्कार कर उठी। इन युद्धो मे जितना धन अपव्यय किया गया, यदि वही विश्व की जनता के कल्याण के लिये व्यय किया जाता तो आज विश्व कई गुना अधिक सुखी और सम्पन्न होता। विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ विनाश की भयंकरता भी उत्तरोत्तर बढ़ती गई और कगार पर खड़ा हुआ एक धक्के की प्रतीक्षा कर रहा है, परन्तु लोगों की आँख प्रथम महायुद्ध ने खोल दी थी और कुछ आँखे द्वितीय ने। इस दूसरे महायुद्ध की विषैली गैसों, बमो और तोपो द्वारा भीषण नरसंहार को देखकर संसार के देश भयभीत हो उठे। आज तो मानव का मस्तिष्क उससे भी भयानक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कर रहा है। इस भयानक गतिविधि को रोकने के लिए संसार के विचारको ने एक ऐसी संस्था बनाने का निश्चय किया, जिसमे विश्व की समस्त अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ और पारस्परिक विवादो का समाधान, शान्तिपूर्ण वार्तालाप और आपसी समझौतो द्वारा किया जा सके।

संयुक्त-राष्ट्र संघ

१. प्रस्तावना।
२. संघ का इतिहास।
३. संघ के उद्देश्य।
४. संघ के कार्य।
५. गुटबन्दी का शिकार।
६. उपसंहार।

इसी धारा के फलस्वरूप द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् २६ जून १९४५ को सयुक्त-राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई। संसार के ५१ से अधिक देशों ने इस संघ की सदस्यता स्वीकार की। उन्होने यह स्वीकार किया कि हम अपने आपसी झगड़ों का युद्ध के द्वारा निर्णय न करके संयुक्त-राष्ट्र-संघ में शान्तिपूर्ण वार्तालाप द्वारा सुलझाने को तैयार हैं और हम युद्ध का घोर विरोध करते हैं। युद्ध से समस्त विश्व को संयुक्त-राष्ट्र-संघ के रूप में मानो कोई शरण मिल गई हो। विश्व के देशों की सम्मिलित पंचायत का नाम संयुक्त-राष्ट्र-संघ रख दिया गया।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् भी, इसी प्रकार की शान्ति-प्रिय संस्था का उदय हुआ, जो अपना अन्तर्राष्ट्रीय महत्व रखती थी, जिसका नाम लीग ऑफ नेशन्स अर्थात् राष्ट्र-संघ रक्खा गया था। इस राष्ट्र-संघ के प्राय सभी वही उद्देश्य थे, जो इस संयुक्त-राष्ट्र संघ के हैं, परन्तु विश्वशांति और विश्वात्मैक्य के प्रयास में यह प्रथम पदन्यास था। लीग ऑफ नेशन्स एक दुर्बल संस्था थी। राष्ट्र उसके निर्णयों को स्वीकार भी नहीं करते थे। यही कारण था कि इसके रहते हुए भी जापान ने मंचूरिया पर तथा इटली ने अबिसीनिया पर आक्रमण किया। इसके विरुद्ध राष्ट्र संघ केवल प्रस्ताव पास करके ही रह गया, कोई ठोस कदम न उठा सका। द्वितीय विश्व-युद्ध मे परमाणु बमों द्वारा भीषण नरसंहार हुआ, जिससे यह स्पष्ट था कि यदि तृतीय महायुद्ध हुआ तो मानव जाति सदा सदा के लिये समाप्त हो जायेगी।

द्वितीय महायुद्ध अभी समाप्त भी न हो पाया था कि मित्रराष्ट्रों ने एटलांटिक घोषणा-पत्र तैयार किया, जिसमें मनुष्य को धर्म और विचारों की स्वतन्त्रता, निर्भयता और प्रत्येक प्रकार के अभाव से मुक्ति प्राप्त कराने की घोषणा की गई। अमेरिका के सेनफ्रांसिस्को नगर मे एक विशाल सम्मेलन हुआ, जिसमें विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने भाग लिया। एक मत होकर युद्ध की निन्दा की गई, मनुष्यों की समानता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया। यह निश्चय किया गया कि देश चाहे छोटे हों या बड़े अपने घरेलू मामलों में पूर्णतया स्वतन्त्र हैं, किसी भी दूसरे राष्ट्र को उनके आंतरिक विषयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। संयुक्त-राष्ट्र-संघ के इस प्रथम अधिवेशन मे यह भी स्वीकार किया गया कि प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली ही सर्वश्रेष्ठ शासन-प्रणाली है। द्वितीय विश्व युद्ध के जन्मदाता इटली तथा जर्मनी थे। दोनों देशों मे अधिनायक-तन्त्रीय शासन प्रणाली थी, अगर इन देशों में प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली होती तो सम्भवतः द्वितीय विश्व युद्ध न हुआ होता। अधिनायकतन्त्रीय देशों का ध्यान अपनी राज्य सीमाओं के बढ़ाने, दूसरे देशों पर अधिकार करने तथा अपनी गौरव वृद्धि की ओर ही अधिक रहता है।

संयुक्त-राष्ट्र-संघ इस समय एक सुसंगठित और शक्तिशाली संस्था है। विश्व के प्रायः सभी बड़े और छोटे राष्ट्र इसके सदस्य हैं। सदस्य देशों की संख्या इस समय १०० से अधिक है। संघ का उद्देश्य विश्व के सभी राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना, सहिष्णुता और संवेदना की भावना की वृद्धि करना है। वह अपने उद्देश्यों में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त कर चुका है। संयुक्त-राष्ट्र-संघ का कार्यक्षेत्र सर्वतोमुखी है और अधिक विस्तृत है। कोई भी राष्ट्र हो उसकी सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, कृषि सम्बन्धी, पुनर्निर्माण, आदि कोई भी लोकोपकारी कार्य हो, उसमें यह संघ पूरी दिलचस्पी से काम लेता है। इसके कई अंग हैं। इसकी सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रभुत्वसम्पन्न सभा जनरल एसेम्बली है। किसी भी विषय में जनरल एसेम्बली का निर्णय अन्तिम समझा जाता है। वैसे इसका अधिवेशन वर्ष मे एक बार होता है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर कभी भी बुलाया जा सकता है। संयुक्त-राष्ट्र-संघ की सुरक्षा-परिषद् एक महत्वपूर्ण शाखा है। जनरल एसेम्बली के पश्चात् सुरक्षा-परिषद् को ही सबसे अधिक अधिकार प्राप्त हैं। इसका काम संसार मे शान्ति बनाए रखना है। यदि कहीं भी आक्रमण होता है, तो सुरक्षा-परिषद् सामूहिक सुरक्षा के आधार पर उस आक्रमण का प्रतिरोध करती है। इसमें ११ सदस्य होते हैं। इसका अध्यक्ष क्रम से उन्हीं ग्यारहों में चुना जाता है। काश्मीर, कोरिया और मिस्र के आक्रमणों को रोकने के लिये सुरक्षा-परिषद् ने ही ठोस प्रयत्न किये।

इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र-संघ की और भी अनेक महत्वपूर्ण शाखाएँ हैं,

जन-मानस पर अंकित उनके त्याग एवं तपस्यापूर्ण चित्रों को धूमिल होने से बचाये रखने की ओर यह एक विशिष्ट पदन्यास है। नेहरू जी के नाम पर खेलों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ भी हो रही हैं, परन्तु इन सबमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण योजना नेहरू पुरस्कार की है, जो अनन्त काल तक पं० नेहरू को विश्व के मानस पटल पर अंकित रख सकेगी।

नोबेल पुरस्कार की भांति नेहरू पुरस्कार भी, विश्व में एक वर्ष में एक ही ऐसे व्यक्ति को दिया जाता है, जो संसार के लोगों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना व मैत्री को बढ़ावा देनें के लिये असाधारण योग देता है। एक लाख रुपए का नेहरू पुरस्कार १९६५ मे भारत सरकार द्वारा स्थापित किया गया था, जिसका प्रथम पुरस्कार श्री नेहरू के जन्म दिवस १४ नवम्बर १९६६ को दिया जाना था।

२६ सितम्बर १९६६ से ३० सितम्बर ६६ तक चार दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय नेहरू गोष्ठी का आयोजन था। विश्व के विद्वान् गोष्ठी मे भाग लेने दिल्ली में एकत्रित हो रहे थे। भारत सरकार द्वारा नियुक्त, नेहरू पुरस्कार निर्णायक समिति ने इसी शुभ अवसर पर अपने निर्णय की घोषणा करना उचित समझा। इस सात सदस्यी निर्णायक समिति में भारत के उपराष्ट्रपति और सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सदस्य होते हैं। अन्य पाँच सदस्यों में एक किसी हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश, दो वरिष्ठ भारतीय नेता, एक किसी विश्वविद्यालय के उपकुलपति और एक समाचार पत्रो के प्रतिनिधि। विभिन्न देशो की सरकार, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन और विश्व के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा पुरस्कार योग्य नामों की सिफारिश की जाती है। इस प्रथम निर्णायक समिति के सदस्य थे, स्व० डॉ० जाकिर हुसैन अध्यक्ष, भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश श्री के० सुब्बाराव, जस्टिस खलील अहमद, उड़ीसा हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस, श्रीमति विजयलक्ष्मी पण्डित, टाटा उद्योग के डाइरेक्टर श्री एन० ए० पालकीवाला, उस्मानिया विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० डी० एस० रेड्डी तथा नेशनल हेरल्ड के सम्पादक श्री चेलापति राव। निर्णायक समिति की ओर से उपराष्ट्रपति ने १७ सितम्बर १९६६ को घोषणा की कि अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिये जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार राष्ट्रसंघ के तत्कालीन महासचिव ऊ-थांट को दिया जायेगा। विश्व की कई सरकारो, अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठनों और विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा पुरस्कार पाने के लिये नामों की सिफारिश की गई थी। बहुत सोच-विचार के बाद ऊ-थान्ट का नाम तय किया गया।

निर्णायक समिति का यह निर्णय वास्तव में एक महत्वपूर्ण निर्णय था। राष्ट्रसंघ के महासचिव के रूप मे श्री ऊ-थान्ट की सेवाएँ इतिहास के पृष्ठ पर सदैव अंकित रहेंगी। युद्ध की विभीषिकाओ से त्रस्त विश्व को उन्होंने अनेक बार बचाया। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव और शांति बनाये रखने में वे निरन्तर प्रयत्नशील थे। उस समय उनका और भी महत्व बढ़ गया था क्योंकि इस समय सारे संसार की आँखें वियतनाम व पश्चिम एशिया में शांति स्थापना के लिये लगी हुई थी।

२८ सितम्बर १९६६ को नेहरू गोष्ठी की अध्यक्षता श्रीमती मिरदल ने की तथा संयुक्तराष्ट्र महासचिव से प्राप्त "शान्ति पुरस्कार" स्वीकृति सम्बन्धी तार पढ़कर सुनाया। इस अवसर पर श्री ऊ-थान्ट ने कहा था—"अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए भारत ने मुझे जो नेहरू पुरस्कार दिया है, यह मेरे लिए बड़ी गौरव की बात है।" उन्होंने कहा—"पुरस्कार की एक लाख रुपए की धनराशि मैं संयुक्त राष्ट्र-संघ के अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल (न्यूयार्क) को दे दूँगा। यह स्कूल आर्थिक संकट से गुजर रहा है।"

२७ सितम्बर को श्री ऊ-थान्ट ने एक वक्तव्य में कहा था कि जवाहरलाल नेहरू इस शताब्दी के एक महान् राजनेता थे। मुझे उनसे कई बार मिलने का सौभाग्य मिला। उनके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा थी। अतः यह पुरस्कार मिलना मैं अपने लिए गौरव की बात समझता हूँ। खासकर बच्चों और युवकों में स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू की विशेष दिलचस्पी थी। अतः मैं पुरस्कार की राशि संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल को दान करना उचित समझता हूँ।

१४ नवम्बर १९६६ के स्थान पर ऊ-थान्ट १० अप्रैल, १९६७ को भारत सरकार के निमन्त्रण पर ६ दिन की यात्रा पर भारत पधारे। १२ अप्रैल, १९६७ को एक विशेष समारोह का आयोजन किया गया तथा तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् ने "अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव का जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार" श्री ऊ-थान्ट को समर्पित किया। ऊ-थान्ट ने स्वर्गीय नेहरू की भावनाओं तथा उनके आदर्शों के लिए कार्य करते रहने का प्रण लेते हुए कृतज्ञतापूर्वक यह पुरस्कार स्वीकार किया।

इस अवसर पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा कि यह पुरस्कार भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ तथा बर्मा और भारत को एक सूत्र में बाँधता है। ऊ थान्ट ने अपना जीवन एक शिक्षक के रूप में शुरू किया और आज भी वे एक शिक्षक की तरह अपना सब कुछ विश्वशान्ति और सद्भाव उत्पन्न करने में समर्पित कर रहे हैं। वे एक बौद्ध हैं। एक बौद्ध की ही तरह उनमें अगाध विश्वप्रेम और सद्भाव भरा है। वे शान्ति और समझौते के ध्येय पर चलते हैं, मतभेदों को दूर करने के लिए शक्ति का प्रयोग अनैतिक ही नहीं, गलत नीति भी है। मनुष्य के भाई-चारे की माँग है कि मानव सहयोग बढ़े। हमारी सुरक्षा मानवीय मूल्यों तथा अध्यात्मवाद के परिपालन में है। शान्ति की सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अनुशासन आवश्यक है। प्रधानमन्त्री तथा राष्ट्रपति ने महासचिव के रूप में ऊ-थान्ट के कार्य की सराहना की और कहा कि वे विश्वशान्ति और सहयोग के पोषक हैं। उन्हें यह प्रथम पुरस्कार देने का फैसला बहुत ही उचित और प्रशंसनीय है। उन्होंने बर्मा की स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी कार्य किया है। श्री नेहरू राष्ट्र को युद्ध से बचाना चाहते थे। स्वतन्त्रता के लिए शान्ति आवश्यक है। अशोक संसार में सबसे बड़े सम्राट माने जाते हैं। वे भी विश्व शान्ति पक्ष के पोषक और प्रणेता थे। श्री नेहरू का संयुक्त-राष्ट्र-संघ में अटूट विश्वास था। हम भी राष्ट्रों के बीच शान्तिपूर्ण सहयोग तथा विवाद को बातचीत से हल करने के पक्ष में हैं। डॉ० राधाकृष्णन् ने ऊ-थान्ट के वियतनाम में शान्ति स्थापित करने के प्रयास की सराहना की और आशा व्यक्त की कि जिनेवा सम्मेलन दुबारा बुलाया जायेगा। विश्वमत का लोग ध्यान रखेंगे। ऊ-थान्ट शान्ति चाहते हैं, बिना किसी पक्ष की विजय अथवा पराजय के।

श्री ऊ-थान्ट ने अपने भाषण में कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए पहला नेहरू पुरस्कार पाना किसी भी व्यक्ति के लिए गौरव की बात होगी, किन्तु महासचिव के लिए यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है। इस तरह के पुरस्कार से प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिलता है। श्री नेहरू के प्रति भावभरी श्रद्धांजलि भेंट करते हुए ऊ-थान्ट ने कहा "उन्होंने अपनी भावना की गहराई तथा बुद्धि के बल पर महत्ता प्राप्त की। जीवन के हर अंग के लिए वे नैतिक दृष्टिकोण रखते थे। उनमें अपार धैर्य, उत्साह और लगन थी। इसके बावजूद वे हम सब की तरह ही एक मनुष्य थे। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में श्री नेहरू ने महान् नेतृत्व किया। उनके नेतृत्व में भारत ने संसार में एक उच्च स्थान पाया। विभिन्न राजनैतिक विचारों वाले राष्ट्रों के बीच में आज सहयोग है, किन्तु सहयोग की बातों की चर्चा कम होती है और विवादों का प्रचार

अधिक होता है। कांगो में सेना भेजने के उनके फैसले से संयुक्त-राष्ट्र संघ के कार्य में बड़ी मदद मिली और एक नया अध्याय शुरू हुआ। जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की बात है, एक दूसरे को जानना ही बहुत नहीं है, सहानुभूति तथा आपस में सहयोग भी होना चाहिये और हमारा मस्तिष्क विस्तृत एवं विशाल होना चाहिये।"

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना और मैत्री को बढ़ावा देने के लिए असाधारण योग-दान के आधार पर यह पुरस्कार १९६६ में अमेरिका के डॉ० मार्टिन लूथर किंग को, १९६७ मे पाकिस्तान के खान अब्दुल गफ्फार खाँ को, १९६८ में अमेरिका के यहूदी मैनूहिन को, १९६९ में अल्बानिया की मदर टेरेसा को, १९७० में जाम्बिया के केनेथ कोंडा को, १९७१ मे यूगोस्लाविया के प्रेसीडेन्ट टीटो को, १९७२ में फ्रांस के एन्ड्रे मालरोक्स को, १९७३ मे तन्जानिया के जूलियस नैरेरे को, १९७४ में अर्जेन्टाइना के डॉ० रौल प्रैबिस्च को, १९७५ में अमरीका के जोनस साल्क को, १९७६ में इटली के डॉ० गुईसप्पा टुक्की को, १९७७ में नेपाल के तुलसी मेहर श्रेष्ठ को, १९७८ में जापान के निचीदात्सु फ्यूजी को, १९७९ में दक्षिणी अफ्रीका के नेलसन आर० मांडेला को, १९८० में ब्रिटेन की श्रीमती बार्ट बारबारा को मिल चुका है।

श्री नेहरू ने अपने जीवन काल में अपने देश और समस्त विश्व के लिए जो कुछ किया, वह श्री नेहरू की कीर्तिपताका को ज्यों का त्यों बनाये रखने में अपने में स्वयं पर्याप्त था, परन्तु फिर भी ये उपाय उस महा-मानव के यशोध्वज को सुरक्षित रखेंगे तथा साथ ही साथ श्री नेहरू के आदर्शों पर चलने की प्रेरणा को प्रोत्साहन देते रहेंगे ऐसा हमारा विश्वास है।

५८. रुपये की आत्म-कथा

रुपया बोला—अपनी कहानी अपनी जबानी कहने मे जो आनन्द आता है वह अपनी कहानी दूसरे की जबानी सुनने मे नहीं आता, इसलिए मैं स्वयं आपको अपनी दर्द भरी गाथा सुनाता हूँ। मेरा जन्म उत्तरी अमेरिका के मैक्सिको प्रदेश में आज से युगों पूर्व हुआ था। पृथ्वी को खोदकर मुझे बाहर निकाला गया। मजदूरों ने निर्दयतापूर्वक मेरी माँ के शरीर को क्षत-विक्षत कर दिया और मुझे जबरदस्ती माँ की ममतामयी गोद से छीनकर वे लोग अपने साथ ले गये। थोड़ी प्रसन्नता मुझे थी क्योंकि वहाँ मैं अन्धकार मे रहता था। मुझे यह मालूम ही न था कि प्रकाश जैसी भी कोई वस्तु संसार में है। वह अन्धकारपूर्ण मेरी दुनिया थी और वही मेरा स्वर्ग। अपना घर कैसा भी हो अपना ही घर होता है, इसलिए मुझे वहाँ अत्यधिक सुख था, परन्तु इन फावड़े और तसले वाले मजदूरों ने विवश कर दिया, तो मुझे बाहर आना पड़ा। अपनी सहायता को किससे कहता और मेरी सुनता भी कौन? बाहर आकर कुलियों ने जलती हुई अग्नि की भयानक लपटों में मुझे ऐसे डाल दिया जैसे कि उन्हें मुझसे घृणा हो। एक दुख जब तक दूर नहीं हुआ था, तब तक मेरे भाग्य में दूसरा दुःख और आ गया। सीता की तरह शुद्धता के लिए मेरी भी अग्नि परीक्षा हुई। मेरा सारा शरीर पिघल गया, घोर कष्ट उठाना पड़ा। विपत्ति के समय कौन किसका साथ देता है। परिणामस्वरूप मेरे अन्य भाई, जो मेरे साथ आये थे, दूर हो गये। जब मेरा स्वरूप पिघलकर पानी-सा हो गया, तो मुझे निकाल लिया गया और बाहर आते ही ठण्ड पाकर मैं जम गया। अब मैं पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर था, चन्द्र रश्मियों के समान मेरी चमक थी और दूध के समान धवलता। लोगों ने मेरा नाम चाँदी रख दिया था।

प्रारम्भ में जब मुझे अपने घर से दूर कर दिया गया था, तब मुझे वास्तव मे बहुत दुःख हुआ था कि जाने मुझे क्या-क्या संकट उठाने पड़ेंगे।

मुझे बचपन में ही पानी के जहाज से यात्रा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ और मैं एक देश से दूसरे देश मे आ गया, जबकि लोग विदेश यात्रा के लिए तथा जहाज में बैठने के लिए जीवन भर तरसते रहते हैं। मुझे अपने देश से भारतवर्ष भेजा गया। जल-यात्रा में मुझे विशेष आनन्द आया। चारों ओर जल ही जल दिखाई पड़ता था और ऊपर आकाश। भारतवर्ष आकर मुझे गोदियों से भरकर उतारा गया, जैसे किसी नई बहू को नाईं सागे में से उतारता है। यहाँ की सरकार ने मुझे कलकत्ते की टकसाल में भेज दिया। वहाँ मुझे फिर एक बार अग्नि की शरण लेनी पड़ी, भट्टी मे पड़ना पड़ा। बड़े-बड़े कारीगर मेरी सेवा मे लगे। मेरे छोटे-छोटे टुकड़े बना दिए। दुःख तो मुझे बहुत ही हुआ पर कर ही क्या सकता था, परवश था, चुपचाप सब कुछ सहा। मेरी आकृति चन्द्रमा की तरह गोल बना दी गई, जैसे दुल्हन के मुख का छोटी छोटी बूँदो से शृंगार किया जाता है वैसा ही मेरा भी किया गया। एक ओर तत्कालीन सम्राट जार्ज पचम का स्वरूप बना दिया गया तथा दूसरी ओर मेरा नाम लिखा गया और मेरा जन्म सन् लिखा गया, जिससे मेरी आयु मालूम पड़ती रहे। टकसाल के पण्डितो ने मेरा नामकरण सस्कार किया और लोग मुझे रुपया कहने लगे। पहले मैं स्त्री था, सोचा था अच्छा है घर में बैठना ही पड़ेगा। बाहर के झगड़ों से मुझे क्या ? पुरुष जाने। परन्तु अब मैं पुरुष हो गया, तो चिन्ता हुई कि मुझे भी पुरुषार्थ करना पड़ेगा। अब तक सज धज कर घर मे बैठने का काम था अब मुझे बाहर भी टक्करें खानी पड़ेंगी।

> रुपये की आत्म-कथा
> १ प्रस्तावना, जन्म, प्रारम्भिक जीवन।
> २ भारतवर्ष में आना और रुपया बनाना।
> ३ कलकत्ते का जीवन।
> ४ देश भ्रमण।
> ५ जीवन के सुख।
> ६. उपसहार।

अब मेरी जीवन-यात्रा प्रारम्भ हुई। अपने हजारो सेवको द्वारा बैंक में गया। छोटे बडे कोषाध्यक्षो के साथ मैं उछलता कूदता जीवन का मधुर आनन्द लेने लगा॥ वहाँ कोलाहल की पराकाष्ठा थी। चारो ओर शोर हो रहा था और मेरा स्वभाव एकान्त मे रहने का था। खजान्ची ने मुझ पर कृपा की। मुझे मेरे और बहुत से भाइयो के साथ कलकत्ते के एक सेठ के मुनीम को दे दिया। अब मुझे कुछ स्वतन्त्रता और कुछ शान्ति मिली। वर्षों तक घूमकर कलकत्ते जैसे विशाल नगर की खब सैर की जिसके पास पहुँच जाता, वही बड़े प्यार से रखता। मेरी मधुर वाणी को सुनकर मेरे स्वामी एकदम प्रसन्न हो जाता और अपने प्यार भरे हाथ मेरे ऊपर फेरने लगता मैंने वस्तुयें खरीदने का काम शुरू कर दिया और मेरे माध्यम से लोग भिन्न भिन्न सामान खरीदने लगे, मानों मैं कोई कमीशन एजेण्ट हूँ। किसी को जवाहरात खरीदवाता तो किसी को सोना, किसी को रेशम खरीदवाता, तो किसी को मलमल, किसी को लोहा तो किसी को लकडी, किसी को अंगूर खरीदवाता, तो किसी को रसगुल्ले और चमचम, किसी को ऊँचे साहित्यिक ग्रन्थ, तो किसी को छोटी छोटी किताबें और कापियाँ ससार में मनुष्य की सभी जीवनोपयोगी सामग्री जुटाने मे व्यस्त रहा। स्वार्थ गन्ध कभी छू तक नहीं पाया। मैंने सदैव परहित के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। मुझे इसी मे आनन्द आता था। मेरा जीवन त्यागमय था। दूसरो को खाते-खेलते देखकर मुझे असीम प्रसन्नता होती। कुछ लोग ऐसे मिलते जो मुझे बडी चतुरता से दबाकर रख लेते, स्वयं चाहे कितना भी कष्ट सह लेते परन्तु मुझे खर्च न करते। ऐसे लोगों के पास पहुँचकर मुझे उनसे बडी घृणा होती, ग्लानि आती।

अपने सैकड़ों साथियों के साथ मैंने भ्रमण किया, देशाटन में मुझे विशेष आनन्द आता था। मैं कभी अयोध्या गया, तो कभी उज्जैन, कभी काशी पहुँचा, तो कभी कानपुर, कभी अलीगढ़, तो कभी आगरा। कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने देश का कोना-कोना झाँक कर देखा। अपने स्वामियों के साथ अनेक स्थानों के दर्शन किए, देवताओं के चरणों पर चढ़ा, कभी दिल्ली के चाँदनी चौक में घूमा, तो कभी काशी में भगवान विश्वनाथ के दर्शन किए, कभी कलकत्ते में महाकाली के चरणों में प्रणाम किया तो कभी उज्जैन में महाकालेश्वर के सिर पर चढ़ा, कभी जमींदारों की जेब में रहा, तो कभी दुकानदारों के गल्ले में, कभी गरीब के छप्पर में रहा, तो कभी विधवा की गाँठ में, कभी सर्राफ की थैली में रहा, तो कभी पढ़े-लिखे सेठों के पर्स में, कभी राजप्रासादों की रानियों के सुन्दर सन्दूकों में रहा, तो कभी धनवान् भिखारी की फटी गुदड़ी में। मैं जहाँ-जहाँ पहुँचा लोगों ने स्वागत किया, मुझे हृदय से लगाया। कोई-कोई तो मेरे मुख को चूमकर मस्तक से लगाते थे। मेरे पहुँचते ही जहाँ वर्षों में चिराग तक न हुआ था, वहाँ दीपावली जगमगा उठती। मुरझाई पलकें मुझे देखते ही ... री-भरी हो उठतीं। कराहते हुए प्राण और लम्बी-लम्बी श्वासें प्रसन्नता में बदल जातीं। ... इन घरों में कई दिनों से रोटियाँ तक न बनी थीं मेरे पहुँचते ही पूड़ियाँ बनने लगतीं।

सुख-दुःख की धूप-छाँह का नाम ही संसार है। जिस प्रकार दिन के प्रकाश के पश्चात् रात्रि की गहन कालिमा संसार को आच्छादित कर देती है, उसी प्रकार मेरे जीवन में भी दुःख के क्षण आए। समाज में अराजकता बढ़ रही थी। लोग बेकारी के शिकार बने हुए थे। उस समय मैं एक किसान के घर था। किसान का घर गाँव में था और वह गाँव अच्छे सम्पन्न व्यक्तियों का था। रात को बन्दूकों की आवाज सुनाई पड़ती, बेचारा किसान डर जाता। प्रातःकाल गाँव में रहने वाले सब मिलकर रात में पड़ोस के गाँव में हुई डकैती की चर्चा करते, बेचारा किसान और भी डर जाता। एक दिन उसने अपने घर के भीतर वाले कोठे में, जिसमें भूसा भरा हुआ था, एक गड्ढा खोदा और एक मिट्टी के बर्तन में मुझे और मेरे साथियों को बन्द करके उसमें गाड़ दिया, ऊपर से मिट्टी डाल दी। इस तरह, समतल पृथ्वी बनाई गयी, ऊपर भूसा था ही। वहाँ न प्रकाश था, न वायु थी, अजीब जेलखाना था, मन ऊबने लगा। कहाँ इतनी स्वतन्त्रता थी, कहाँ एक-दम भयङ्कर कारावास। मेरे लिए यह सब कुछ असह्य था, परन्तु विवश था, करता भी क्या। इसी प्रकार जीवन के पाँच वर्ष बिताने पड़े। एक दिन सहसा किसान की पत्नी किसान के पीछे पड़ गई, उसकी बहुत दिनों से इच्छा थी एक कौंधनी बनवाने की। किसान अपनी पत्नी की बात न टाल सका, उसने धरती खोदनी प्रारम्भ की। मैं भी कमल में बन्द भ्रमर की तरह प्रसन्न हो उठा। मुझे बाहर निकाला गया, मेरा सारा सौंदर्य मिट्टी में मिल चुका था, उज्ज्वलता कालिमा में परिवर्तित हो चुकी थी, मैं सुनार के यहाँ भेज दिया गया, मुझे पत्थर पर पटक कर देखा गया, मैं अपनी पहली अग्नि परीक्षा का स्मरण करके काँप उठा, हृदय में धड़कन होने लगी। मेरी कौन सुनता था, धीरे-धीरे मेरे अन्य साथी अग्नि की भेंट होते गए। सौभाग्य से मेरा नम्बर आने से पहले ही कौंधनी की नाप की संख्या पूरी हो गई और मैं बच गया। ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद दिया। अब मैं फिर स्वतन्त्र हूँ। मेरे अनियन्त्रित भ्रमण पर किसी एक का प्रतिबन्ध नहीं है। इस समय मैं फिर एक सौभाग्यवती सधवा सुन्दरी की डिब्बी में हूँ। नित्य स्नान करके जब वह अपना शृंगार करती है, तो मेरे ही माध्यम से वह अपनी माँग में सिन्दूर भरती है। उसके स्पर्श से मुझे भी सुख मिलता है, मेरे निकट रहने से उसे भी।

मैं आपसे अपनी प्रशंसा कहाँ तक करूँ, संसार के सभी कृत्य अच्छे व बुरे मेरे

आधार पर होते हैं। आज का युग मेरी पूजा करता है। मुझे तो यह सब कुछ देखकर अपने ऊपर स्वयं आश्चर्य होता है। जो शक्ति भगवान की थी वह शक्ति आज के लोग मुझ में मानते हैं। मूर्ख को विद्वान् बनाना मेरा बायें हाथ का काम है। नीच से नीच व्यक्ति को अगर मैं मिल जाऊँ, तो समाज उसे सभ्य और सज्जन समझने लगता है। रंक से राजा और पापी से पुण्यात्मा बनाने की शक्ति मुझ में है। आप किसी को कत्ल कर दीजिये, किसी के प्राणों से खेल लीजिये, यदि मैं आपके पास हूँ, तो कोई आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। असली धर्मात्मा मुझसे बड़े-बड़े परोपकार के कार्य सम्पन्न करते हैं, जैसे विद्यालय चलवाना, भूखों को भोजन देना, निर्धन लोगों के लिये धर्मार्थ औषधालय खुलवाना, आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतिवान् गुणज्ञः।

जिसके पास मैं वही अच्छा कुलीन है और गुणवान् है, अर्थात् आज के युग में मैं सर्वशक्तिमान् हूँ। आज मेरी घर-घर मे पूजा होती है।

५६. विश्व हिन्दी सम्मेलन

एक विश्व और एक परिवार की भावना से ओत-प्रोत, अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और जीवनदर्शन के वाहक के रूप में महाराष्ट्र प्रान्त के नागपुर शहर में जिस उदार, सर्वसग्राहक और सर्वसमावेश भावना से हिन्दी का जो यह महायज्ञ आयोजित किया गया वह मानवता के हृदयों को परस्पर में जोड़ने वाला, सारे विश्व में शान्ति और मैत्री के वातावरण का निर्माण करने वाला तथा सृष्टि के अन्तर्भूत चैतन्य तत्व की उपासना करने वाला एक अभिनव कार्यक्रम था, जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पहली बार विशुद्ध सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर इतने सुन्दर और विशाल ढङ्ग से आयोजित किया गया था।

विश्व हिन्दी सम्मेलन
१ प्रस्तावना।
२ एक अद्वितीय सङ्गम।
३ तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा उद्घाटन।
४ विभिन्न आयोजन एवम् उद्गार।
५ आयोजन-समापन।
६ उपसंहार।

दिनांक १० जनवरी, ७५ से १३ जनवरी, ७५ तक नागपुर में तथा १४ जनवरी को वर्धा में विश्व हिन्दी सम्मेलन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इसमें मारीशस, फिजी, सोवियत संघ, चैकोस्लोवाकिया, ट्रिनीडाड, कनाडा, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन आदि ४० देशों के लगभग ११० प्रतिनिधि तथा पर्यवेक्षक सम्मिलित हुए तथा भारत के कोने-कोने से जो १५ भाषाओं के विद्वान् प्रतिनिधि सम्मिलित हुए उनमें सभी भाषाओं, जातियों और धर्मों के २,००० व्यक्ति थे, जिनमें चार दक्षिणी राज्यों के ४०० प्रतिनिधि भी थे। विश्व हिन्दी सम्मेलन ने भाषायी सौहार्द और राष्ट्रीय एकात्मकता का जो वातावरण प्रस्तुत किया, वह अभूतपूर्व, अद्भुत और कल्पनातीत था। राज्य-राज्य के, देश-देश के, वर्ण-वर्ण के और जाति-जाति के लोगों का भाषा के तट पर विश्व से विश्व जोड़ने का यह एक अद्वितीय सङ्गम था। इनमें विचार वैभिन्य भले ही हो, परन्तु अन्तरात्मा में भावात्मक ऐक्य था। बड़े विशाल मण्डप के बहिर्कक्ष में संसार के अनेक देशों के ध्वज फहरा रहे थे और भीतर हिन्दी का अनुष्ठान सम्पन्न हो रहा था। वही अनुष्ठान जिसे आज से साठ-पैंसठ वर्ष पूर्व राष्ट्र-पुरुष महात्मा गाँधी ने

राष्ट्रभाषा प्रचार के रूप में प्रारम्भ किया था।

विदेशों के सभी प्रतिनिधि सम्मेलन की भिन्न-भिन्न गोष्ठियों और परिसंवादों में सक्रिय और महत्वपूर्ण योगदान करते और अपनी विशुद्ध हिन्दी वाणी से श्रोताओं को अभिभूत और मन्त्रमुग्ध कर देते। सम्मेलन के विभिन्न अधिवेशनों और कार्यक्रमों के प्रारम्भ में वैदिक मन्त्रों, भजनों एवम् अभंगों को संगीतबद्ध करके, स्वरांजलि का अद्भुत कार्यक्रम महिलाओं के चिन्तन और संगीत-साधनाओं का ही स्वरूप था।

पाँच दिवसीय इस महान् अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्‌घाटन १० जनवरी, ७५ को भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने किया। इस ऐतिहासिक सम्मेलन के उद्‌घाटन भाषण में श्रीमती गाँधी ने कहा कि—"हिन्दी के विद्वान और लेखक भाषा की सरलता पर ध्यान दें जिससे वह जनता की भाषा का स्थान ले सके व दैनिक जीवन का अङ्ग बन सके। यह तभी सम्भव है, जब हिन्दी के द्वार सभी भाषाओं के लिए खुले होंगे और वह उनके शब्द भाव आदि खपा सकने में समर्थ होगी। भारत की तथा विश्व की भाषा बनने के लिए इस ग्राह्यता शक्ति में संकोच नहीं करना चाहिए।" प्रधानमन्त्री ने कहा कि हिन्दी का विकास कभी राजदरबार में नहीं हुआ है, यह सूर और कबीर की भाषा है, उन्हें किसने राज्याश्रय दिया था? उन्होंने कहा—हम ऐसे भारत की कल्पना नहीं कर सकते जिसमें एक भाषा या एक धर्म हो, हम अनेकता में एकता की नीति में विश्वास रखते हैं। महात्मा गाँधी का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि उन्होंने सभी भारतीयों को स्वभावतः दुभाषी कहा था, यह सही है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर मारीशस के प्रधानमन्त्री श्री शिवसागर रामगुलाम को आसीन कराया गया था। अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा—'मुझे इस बात की खुशी है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में विश्व एकता और भाईचारे के आदर्श को सामने रखा गया है। आज दुनिया के सब देश यह अनुभव कर रहे हैं कि जब तक लोग वर्ग, जाति, रंग के भेदभावों को नहीं भूलेंगे, तब तक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता। विश्व की सारी भाषाएँ एक बहुत विशाल वृक्ष की डालियाँ हैं। हमें सब भाषाओं को अपने निकट लाना है और इसी प्रयास से ही हिन्दी को आगे बढ़ाने की योजना बनानी है। उन्होंने कहा कि इस महान् सम्मेलन का अध्यक्ष बनाकर आपने मेरे देश मारीशस और मेरे देशवासियों का जो सम्मान किया है, उसके लिए मारीशस की जनता और मेरे साथी आपके अत्यन्त आभारी हैं। मारीशसवासी हिन्दी की महानता से भली-भाँति परिचित हैं। यही एक भाषा है जिसे लेकर पिछले १५० वर्षों में हमने अपने बाप-दादा की परम्पराओं को जिन्दा रखा है। हिन्दी भारत के चिन्तन और दर्शन का मूल स्रोत है, इसी के द्वारा भारत की आत्मा को पहचाना जा सकता है। यही कारण है कि दुनिया भर में कई बड़े-बड़े स्कूलों, कालिजों व विश्वविद्यालयों में हिन्दी को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।" महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री वी० पी० नाइक ने जो इस सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष थे, कहा कि "महाराष्ट्र में सदा ही हिन्दी के अनुकूल वातावरण रहा है। देवनागरी लिपि अपनाने से मराठी भाषा हिन्दी के निकट हो गई है।" विश्व हिन्दी सम्मेलन के महासचिव श्री अनन्त गोपाल शेवड़े ने कनाडा से जापान और ट्रिनीडाड से फिजी तक चारों महाद्वीपों के विभिन्न देशों और भारत से आये प्रतिनिधियों का स्वागत किया।

इस अधिवेशन की महत्वपूर्ण बात यह रही कि आचार्य काका कालेलकर ने राष्ट्रसंघ में हिन्दी की मान्यता का आह्वान किया और कहा कि सम्पूर्ण संसार में

स्वाधीनता का सन्देश पहुँचाने के लिये राष्ट्रसंघ में हिन्दी का प्रयोग किया जाना चाहिये ताकि दुनिया मे कहीं भी मानवाधिकारों के दमन के खिलाफ जोरदार आवाज उठायी जा सके। इस तरह मानव द्वारा मानव के शोषण से हटकर यह दुनिया निश्चित रूप से शान्तिपूर्ण एवं अहिंसावादी समाज की रचना करने में समर्थ होगी। आचार्य कालेलकर ने कहा कि हिन्दी भारत में ३६ करोड लोगों की भाषा है और विदेशों में ६ करोड लोग हिन्दी बोलते हैं। इस प्रकार ४२ करोड लोगों की यह भाषा मानव के शोषण के विरुद्ध प्रभावशाली अभियान का माध्यम बन सकती है और सारी मानव जाति को सेवा का सन्देश दे सकती है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के दूसरे दिन ११ जनवरी को सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमे हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ तथा सम्बद्ध एजेंसियों की सरकारी भाषाओं में सम्मिलित करने की माँग की गई। सुप्रसिद्ध गाँधीवादी लेखक आचार्य काका कालेलकर तथा तत्कालीन केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री डॉ० कर्णसिंह द्वारा मूल प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, जिसका पश्चिमी यूरोप, सोवियत संघ और अन्य देशों से आये प्रतिनिधियों ने जोरदार समर्थन किया। "हिन्दी की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति" पर विचार गोष्ठी का शुभारम्भ मारीशस के युवा क्रीडा मन्त्री श्री दयानन्द व सन्तराम ने किया। तत्कालीन विदेश मन्त्री श्री यशवन्तराव चह्वाण इस विचारगोष्ठी के मुख्य अतिथि थे। श्री चह्वाण ने कहा कि किसी भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिलना उस भाषा के बोलने वालों की "सांस्कृतिक क्षमता" पर निर्भर करता है। आज विश्व के ९० विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढाई जा रही है। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि विश्व के लोगों में भारत के विषय में जानने और उसकी राष्ट्रीय भाषा को सीखने की कितनी लालसा है। हिन्दी धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे अपना स्थान बनाती जा रही है। उन्होंने विदेश जाने वाले सभी भारतीयों से चाहे वे महाराष्ट्रियन, गुजराती, केरलवासी अथवा अन्य किसी राज्य के हों, विदेश में हिन्दी बोलने का प्रयास करने की अपील की। मारीशस के प्रधानमन्त्री श्री शिवसागर रामगुलाम, सोवियत प्रतिनिधि मण्डल के नेता प्रो० चेलीशेव, पश्चिमी जर्मनी के डॉ० लोथार लित्सन्जे, ट्रिनीडाड के श्री शम्भुनाथ, चेकोस्लोवाकिया के डॉ० ओदोलन स्मेकल आदि ने विचारगोष्ठी में अपने विचार प्रकट करते हुए प्रस्ताव का पूर्ण एवं दृढ समर्थन किया।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के तीसरे दिन १२ जनवरी को आयोजित "विश्व मानव चेतना जाग्रत करने में जनसंचार साधन की भूमिका" विषयक गोष्ठी के संयोजक प्रसिद्ध पत्रकार श्री महावीर अधिकारी ने कहा कि विदेशों में गये भारतीयों ने संचार साधनों के अभाव के बावजूद भारतीय संस्कृति तथा हिन्दी का जिस प्रकार प्रचार व प्रसार किया, वह इतिहास मे सदैव अविस्मरणीय रहेगा। विचारगोष्ठी के अध्यक्ष कांग्रेस के महामन्त्री श्री पी० वी० नरसिंहराव ने विश्वास व्यक्त किया कि "सुदीर्घ संघर्ष को साथ लेकर हिन्दी विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होगी। हिन्दी, वर्तमान को युगवाणी प्रतिबिम्बित कर रही है, वह आज नई परिस्थितियों, अराजकता तथा कलोल को भी प्रतिबिम्बित कर रही है। हिन्दी में संकोच या संकीर्णता का कोई स्थान नहीं है, भारत के सारे गुण और अवगुण हिन्दी मे आने स्वाभाविक हैं तथा वे उपस्थित हैं।"

विश्व हिन्दी सम्मेलन द्वारा वर्धा मे 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की स्वीकृति पर हर्ष व्यक्त करते हुए गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण

शान्ति थी, बुद्धि थी तब तो विचार नहीं किया, उस समय तो मद के उन्माद में आँखें बन्द रहीं, लेकिन जब हाथ से सब कुछ निकल गया तब आँखें भी खुलीं, विवेक भी आया, परन्तु अब कुछ होने का नहीं, अब तो केवल पश्चात्ताप की अग्नि ही अवशिष्ट है, जिसमें जीवन भर जलना पड़ता है। परन्तु इस पश्चात्ताप से क्या लाभ ? जो कुछ होना था सो हो चुका। क्या लाभ थोड़े से बचे-बचाये को भी मिट्टी में मिलाने से। इस आशय की द्योतक ये पंक्तियाँ हैं—

"अब पछिताये होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत।"

"जब चिड़ियों ने खेत को चुग लिया, फिर पश्चात्ताप करने से क्या लाभ ?" तात्पर्य यह है कि काल रूपी चिड़िया जीवन के स्वर्णिम क्षणों रूपी कणों को खाती रहती है, उस समय तो मनुष्य कुछ विचार नहीं करता, न उसकी रक्षा का कोई प्रयत्न ही करता है। परन्तु जब कुछ भी पास नहीं रहता, चलने का समय निकट आ जाता है, तब वह चैतन्य होता है और पश्चात्ताप करता है। जब खेत हरा-भरा था, उस समय ही उसकी रक्षा नहीं की तो फिर बाद में आठ-आठ आँसू बहाने से क्या लाभ ? मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अच्छी प्रकार सोच-समझकर कार्य करे, जिससे कि उसे अन्त में हाथ न मलना पड़े। गिरधर कवि कहते हैं—

"बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥"

संस्कृत की भी एक उक्ति है—

"सहसा विदधीत न क्रियाम्, अविवेकः परमापदाम् पदम्।"

अर्थात् मनुष्य को कोई भी काम बिना सोचे-समझे नहीं करना चाहिये क्योंकि अविवेक हजारों आपत्तियों की जड़ होता है। पहले कार्य और अकार्य पर उसकी सार्थकता और निरर्थकता पर अच्छी तरह विचार करना चाहिये, क्योंकि कार्य समाप्त होने पर कुछ नहीं हो सकता, केवल पछतावामात्र रह जाता है।

"अरविन्द को मार तुषार गया, मुस्कराते हुए रवि आये तो क्या।"

जब कमलों को पाला मार जाये, प्रातःकाल के समय कितनी ही मुस्कराहट बिखराते हुए सूर्य आयें, कोई लाभ नहीं होता। अपने काम बिगड़ जाने पर रोने-धोने से न कुछ होता है और न पश्चात्ताप की अग्नि में स्वयं को जला डालने से ही कुछ बनता है। एक स्थल पर तुलसीदास जी ने लिखा है—

"का बरषा जब कृषि सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने।"

एक बार जब समय चूक गया फिर आप कितना ही पश्चात्ताप कीजिये कोई लाभ नहीं हो सकता। समय की गति पहचानकर तदनुकूल आचरण करना तथा अपने अभीप्सित कार्य-क्षेत्र में विचारपूर्वक आगे बढ़ना ही सफलता का मन्त्र है। पश्चात्ताप करना तो एक गलती के ऊपर दूसरी गलती करना है। हमने पहली गलती तो यह की कि सोचा-समझा नहीं, दूसरी गलती यह करते हैं कि अपने शरीर और मन को पश्चात्ताप की अग्नि में जलाये डालते हैं, थोड़े बचे हुए जीवन के आनन्द को भी जान-बूझकर खोये दे रहे हैं। किसी विद्वान् ने कहा है—

"गतं न शोचामि कृतम् न मन्ये।"

अर्थात् जो बात हो चुकी उस पर चिन्ता करना, खेद करना, व्यर्थ है। हाँ जब थोड़ा-सा भी समय बाकी था उस समय का थोड़ा-सा भी प्रयास, उस समय की थोड़ी-सी सावधानी हमारा बहुत कुछ कल्याण कर सकती थी, परन्तु समय समाप्त

हो जाने पर आप कितना ही पश्चाताप कीजिये, कोई लाभ नहीं। रहीम ने भी इसी बात की पुष्टि की है कि समय रहते हुये ही मनुष्य को सावधान हो जाना चाहिये। जब तक दूध, दूध है तब तक ही उसको मथकर मक्खन निकालने में बुद्धिमत्ता है, जब विगड़ जाता है तब आप कितना भी परिश्रम करें, दूध में से मक्खन नहीं निकाला जा सकता, दूध फट जाने पर मक्खन निकालने का प्रयास शक्ति का अपव्ययमात्र ही होगा। रहीम कहते हैं—

"रहिमन बिगरे दूध को, मथे न माखन होय।"

इतिहास साक्षी है कि पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी को १७ बार हराया, परन्तु इस आक्रान्ता के विषैले दाँत न तोड़े, जिसके परिणामस्वरूप भारत शताब्दियों तक विदेशियों से पदाक्रान्त रहा। आज भी भारतवासी पृथ्वीराज चौहान की बुद्धि पर पश्चात्ताप करते हैं, पर क्या लाभ? यदि चौहान ने पहले ही सोच-समझकर इस समस्या को सुलझा दिया होता तो भारत को इतने दुर्दिन न देखने पड़ते।

इतिहास साक्षी है कि जितने भी महापुरुष हुये उन्होंने समय की गति को पहचाना। जो समय जिस कार्य के लिये उपयुक्त था वह उसी समय किया तभी उन्हें निश्चित सफलता प्राप्त हुई, इसीलिये आज भी उनका नाम और उनकी कीर्ति अक्षुण्ण है। लोहे को तभी पीटना चाहिये जब वह गरम हो, तभी आप उससे अपने मनोनुकूल वस्तुएँ बना सकते हैं। यदि लोहा ठण्डा पड़ गया तो आप कितना ही पीटिये, उससे आप कोई वस्तु नहीं बना सकते आपका हथौड़ा और छैनी भले ही टूट जायें। अंग्रेजी की एक कहावत भी है।

"Strike the iron while it is hot"

प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को समय रहते ही सावधान हो जाना चाहिये। प्यास से व्याकुल होने पर जो व्यक्ति कुआँ खोदना प्रारम्भ करता है, वह प्यासा ही मर जाता है। जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों मे तो सोता है, मौज उड़ाता है परन्तु बाद मे पश्चात्ताप करता है तो उसका पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। समय पर कार्य न करने वाले और समय पर न बोलने वाले को शंकराचार्य ने मूक और बधिर की उपाधि दी है—

"मूकस्तु को वा बधिरस्तु को वा वक्तुं न शक्तु समये समर्थं"

अर्थात् जो व्यक्ति यथासमय न कार्य कर सकता है, न बोल सकता है, वह बहरा और गूंगा है। अतः अपने को मनस्ताप और खेद से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि हम समय पर ही सावधान हो जायें अन्यथा केवल हाथ मलना ही हमारे हाथ रह जायेगा और कुछ नहीं।

इसीलिये परिस्थिति को पहचानने वाले तथा समय पर कार्य करने वाले व्यक्तियों का ही सफलता सदा वरण करती है।

६१. "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत"

इस परिवर्तनशील संसार में देखा गया है कि कुछ व्यक्ति अनुकूल सहायता, अनुकूल प्रेरणा और अनुकूल वातावरण मिलने पर भी आगे नहीं बढ़ पाते, क्या कारण है उनके पीछे हटने का? देखने में ये लोग स्वस्थ हैं, हृष्ट-पुष्ट हैं, अच्छा पहनते और अच्छा खाते भी हैं, परन्तु उपलब्धि जैसी कोई वस्तु उनके निकट तक नहीं आ पाती और न वे उसके लिये प्रयत्नशील ही दिखाई पड़ते हैं। असफलताओं और संघर्षों से ये

दूर भागते हैं। किसी भी दुःखद या भयानक परिस्थिति का वे मुकाबला ही नहीं कर सकते। कुछ व्यक्ति ऐसे भी देखे गये हैं कि जो देखने में तो सूखे से, अस्थि पञ्जर मात्र दिखाई पड़ते है, मालूम पड़ता है कि हवा का साधारण झोंका भी इन्हें उड़ा ले जा सकता है परन्तु परिणामों से ज्ञात होता है कि उन्हें भयानक तूफान भी अपने स्थान से हटा नहीं सकता, सत्य ही है—

"न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य।"

अर्थात् प्रबल प्रभंजन केवल वृक्षों को उखाड़ने में ही समर्थ होता है, पर्वत को हिला भी नहीं पाता। फिर भी ऐसी कौनसी दैवी शक्ति है, जो उन्हें पराजय के क्षणों में भी, असफलताओं की घड़ियों में मुस्कराने और फिर आगे बढ़ने को कहती है? वे हँसते हैं, अपने लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं और अन्त में पहुँच जाते हैं। इन सब प्रश्नों का केवल एक ही उत्तर है, उनका 'मन' अर्थात् "मानसिक बल" (Will power)। अंग्रेजी की कहावत है—"If there a will there is a way" औ हिन्दी की कहावत तो स्पष्ट है ही—"मन चंगा तो कठौती में गंगा।"

> "मन के हारे हार है,
> मन के जीते जीत"
>
> १. प्रस्तावना।
> २. मानसिक शक्ति की महत्ता।
> ३. शक्ति का भाव तथा विवेचना।
> ४. सुखादुखात्मक सृष्टि के प्रति आशावान् दृष्टिकोण।
> ५. उपसंहार।

शक्ति को तीन भागों में विभाजित किया जाता है. शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति और आत्मिक शक्ति। यहाँ हम केवल शारीरिक और मानसिक शक्ति पर ही विचार करेंगे। संसार के सभी देशों के मनुष्य शारीरिक शक्ति में थोड़े बहुत अन्तर के साथ समान होते हैं। शरीर और शारीरिक बल की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह अमेरिका का निवासी हो चाहे अफ्रीका का, चाहे भारत का निवासी हो, चाहे ईरान का, समान स्वस्थ होते हैं, परन्तु जहाँ प्रश्न आता है मनोबल या मानसिक शक्ति का वहाँ प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर पाया जाता है। शरीर तो एक यन्त्र है, उसमें कोई न कोई खराबी होते रहना स्वाभाविक है, वह सूख सकता है, जल सकता है, उस पर भौतिक तत्व अपना प्रभाव डाल सकते हैं, परन्तु मन, तन को शक्ति प्रदान करता है। तन थक जाता है तो मन उसे शक्ति देकर पुनः खड़ा कर देता है। जब हम महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ते हैं, तब हमें आश्चर्य होता है कि इन व्यक्तियों मे कौन-सी ऐसी असाधारण शक्ति थी, जिससे इन्होंने ऐसे कल्पनातीत कार्य कर दिखाये। विचार करने पर ज्ञात होता है कि इन लोगों में मनोबल था, इनकी मानसिक शक्ति प्रबल थी जो इन्हें असाधारण लोगों की पंक्ति मे लाकर खड़ा कर देती है अन्यथा थोड़े से वीर मरहठों को लेकर शिवाजी और मुट्ठी भर हड्डियो को लेकर गाँधी जी, वह सब कुछ न कर पाते, जोकि उन्होंने कर दिखलाया।

विश्व का इतिहास इसका साक्षी है कि नैपोलियन ने कहा था कि आल्प्स नहीं है और आल्प्स नहीं रहा अर्थात् उसकी सेना ने आल्प्स को आनन-फानन में पार कर लिया। गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपना यह कथन, "चिड़ियों से मैं बाज बनाऊं तभी गोविन्दसिंह नाम कहाऊं" सिद्ध करके दिखला दिया। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने 'आजाद हिन्द फौज' बना डाली और हवलदार हमीद ने गत युद्ध में पाकिस्तानी टैंकों को अपनी जान पर खेल कर तोड़ डाला।

'मनुष्य जो कुछ उद्योग, आगे बढ़ने का प्रयास या सफलता प्राप्त करता है, वह

व मन के सहारे पर ही करता है। यदि मनुष्य का मन मर जाता है, तो उसके लिये संसार में कुछ रह नहीं जाता। उसे चारों ओर से निराशा घेर लेती है। जब तक उसकी हिम्मत बनी रहती है, वह बड़े से बड़े संघर्ष से भी नहीं घबराता। "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत" इस उक्ति का भाव यह है कि जब तक मनुष्य में धैर्य और हिम्मत बनी रहती है, तब तक वह पराजय को भी एक पाठ समझता है और फिर आगे बढ़ने का प्रयास करता है, वह थक हारकर नहीं बैठता। यदि मनुष्य का मन मर जाता है और हिम्मत टूट जाती है तो शरीर भी निष्क्रिय हो जाता है और जब तक मन नहीं हारता तब तक शरीर कितना ही अशक्त हो जाए, मनुष्य संघर्ष से मुंह नहीं मोड़ता। इसलिए कहा गया है कि—

"हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरिनाम,
जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।"

मनुष्य की मानसिक शक्ति उसकी इच्छाशक्ति पर निर्भर होती है। जिस मनुष्य की जितनी इच्छाशक्ति बलवती होगी उसका मन उतना ही दृढ़ और संकल्पवान होगा। इसी इच्छाशक्ति के द्वारा मनुष्य वह दैवी शक्ति प्राप्त कर लेता है, जिसके आगे करोड़ों व्यक्ति, स्वयं नत-मस्तक होते हैं। प्रबल इच्छाशक्ति द्वारा मानव एक बार मृत्यु के क्षणों को टाल सकता है। भीष्म पितामह मृत्युशैय्या पर थे, परन्तु सूर्य दक्षिणायन थे, भीष्म ने कहा कि, "मैं अभी प्राणत्याग नहीं करूंगा। जब सूर्य उत्तरायण होंगे तभी प्राणों को विसर्जन करूंगा," हुआ भी ऐसा ही। यह सब कुछ इच्छाशक्ति की प्रबलता और मानसिक दृढ़ता का ही परिणाम है। गांधी जी में भी हमें यही शक्ति दृष्टिगोचर होती है, जो वे चाहते थे वही होता था, शत्रु भी उनके आगे नतमस्तक देखे गये। बस यही विचित्रता गांधी को साधारण मनुष्य से ऊँचा उठा देती है। विघ्न बाधायें मार्ग की रुकावटें सभी के मार्ग में व्यवधान बनकर आती हैं, चाहे वह साधारण व्यक्ति हो या महान्। अन्तर केवल इतना है कि साधारण मनुष्य का मन विपत्तियों को देखकर जल्दी हार मान लेता है, जबकि महान् एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने मानसिक बल के आधार पर उन पर विजय प्राप्त करते हैं। विषम परिस्थितियाँ और उन पर दृढ़तापूर्वक विजय प्राप्ति ही मनुष्य को महान् बनाती है। भावी संतान के लिये उनके ये कार्य ही आदर्श बन जाते हैं, तथा उनका पथ-प्रदर्शन करते हैं, उन्हें प्रेरणा देते हैं।

आशा ही मानव-जीवन का सचार सूत्र है। आशा के सहारे मनुष्य बड़े-बड़े वीरतापूर्ण और साहसपूर्ण कृत्य कर दिखाता है। यही आशा मानव को कर्म की प्रेरणा देती है। इसलिये आशा को 'आशा बलवती राजन्' कहा गया है अर्थात् आशा बड़ी बलवान् वस्तु है। आशावादी व्यक्ति कभी अकर्मण्य नहीं हो सकता, वह सदैव कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी प्रयत्नशील रहता है। प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाले संसार में कभी सुख है, कभी दुःख है, कभी लाभ है, कभी हानि है, कभी उत्कर्ष है, कभी अपकर्ष है। ये समस्त विरोधी प्रवृत्तियाँ क्रमशः आती रहती हैं। बुद्धिमान व्यक्ति इस परिवर्तन को ध्यान में रखकर कभी भी विपत्तियों से नहीं घबराते और न कभी अपने मन को ही हारने देते हैं। संस्कृत में कहा गया है।

"छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः संतप्यन्ते न ते विपदा।"

अर्थात् वृक्ष कटने के बाद फिर बढ़ने लगता है, क्षीण हुआ चन्द्रमा भी फिर वृद्धि को प्राप्त हो जाता है इस प्रकार विचार करके बुद्धिमान व्यक्ति कभी विपत्तियों से दुखी नहीं होते। एक स्थान पर कहा गया है—

"चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च"

अर्थात् इस परिवर्तनशील संसार में सुख और दुःख चक्र के समान घूमते रहते हैं। अतः जब दुःख के बाद सुख आता ही है तो दुःख से भी नहीं घबराना चाहिये। बुद्धिमान मनुष्य को जीवन के प्रति आशावान् दृष्टिकोण अपनाना चाहिये, जिससे वह अपना और अपने राष्ट्र का कल्याण कर सके। हिम्मत हारने से कुछ बनता नहीं, बिगड़ता ही है। दूसरी बात यह है कि दुःख और सुख, सफलता और असफलता सब भगवान् की दी हुई वस्तुयें हैं, यदि उसके दिये हुए दुःख से आप घबरा जायेंगे तो वह आपको सुख नहीं देगा। विहारी ने कहा है—

"दई दई क्यों करत है, दई दई सो निहोरि।
आपे सुख चाहत लियें, ताके दुखहिं न फेरि॥"

भगवान् कृष्ण ने गीता में अर्जुन को उपदेश किया कि "माम् अनुस्मर, युद्ध्य च" अर्थात्—"हे अर्जुन ! मेरा स्मरण करो और युद्ध करो।" इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को भगवान् का स्मरण करते हुए संघर्ष करना चाहिये। इसी को दूसरे शब्दों में कर्मयोग भी कहा जाता है। जो व्यक्ति हिम्मत खो बैठता है वह निरुद्योगी और अकर्मण्य हो जाता है। हमें विश्वास रखना चाहिये कि जो कुछ करता है भगवान् करता है, मैं जो कुछ करता हूँ, उसी की प्रेरणा से करता हूँ। जब मनुष्य को ऐसा विश्वास हो जायेगा कि—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः
"त्वया हृषीकेश ! हृदिस्थितेन। यथा नियुक्तोऽस्मि, तथा करोमि।"

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ, परन्तु उधर मेरी प्रवृत्ति नहीं होती, मैं अधर्म को भी जानता हूँ पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। आप मेरे हृदय में स्थित हैं, आप जैसी आज्ञा देते हैं वैसे ही मैं करता हूँ। इस प्रकार मनुष्य की हिम्मत भी नष्ट नहीं होगी और अकर्मण्य नहीं बनेगा तथा वह मंगलमय भविष्य के लिये आशावान और प्रयत्नशील रहेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहता है, तो उसे कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी हिम्मत और अपना हौसला नहीं खोना चाहिये। मनुष्य को अपना मनोबल बनाये रखना चाहिये। मनोबल ही समस्त सफलताओं की कुंजी है। जिस मनुष्य का मनोबल ही समाप्त हो गया वह जीवित रहते हुये भी मृत के समान है। मनोबल से मनुष्य लौकिक ही नहीं लोकोत्तर शक्तियाँ भी प्राप्त कर सकता है।

मानसिक शक्ति के सञ्चय में ही सच्ची सफलता का अंकुर निहित है।

६२. "कबिरा संगति साधु की, हरै और की व्याधि"
अथवा
"सठ सुधरहिं सत्संगति पाये"
अथवा
सत्संगति

मानव और पशु के दैनिक जीवन में नितान्त समानता है। जहाँ तक भोजन, शयन और कर्म का सम्बन्ध है दोनों ही करते हैं। वासना दोनों में ही होती है, फिर ऐसी कौन-सी बात है, जिसके द्वारा मनुष्य, पशु से इतना आगे बढ़ गया है। यदि हम

बुद्धि कहें, तो बुद्धि तो पशुओं में भी होती है, किसी में कम किसी में अधिक। पशु अपना हित और अहित भी अच्छी तरह समझते हैं। इसीलिये तुलसीदास जी ने लिखा है कि—"हित अनहित पशु पक्षिहु जाना।" विचार करने पर प्रतीत होता है कि मानवता और पशुता की विभाजन रेखा यदि कोई है, तो वह ज्ञान ही है। ज्ञान की मात्रा मनुष्य में है, पशु में नहीं। यद्यपि मनुष्य विद्याध्ययन से ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु वह बहुत कुछ विद्वानों, गुरुजनों तथा अपने से बड़ों की संगति से भी प्राप्त करता है। सत्संगति का अर्थ है, "श्रेष्ठ पुरुषों की संगति।" मनुष्य जब अपने से अधिक बुद्धिमान, विद्वान्, गुणवान् एवं योग्य व्यक्ति के सम्पर्क में आता है, तब उसमें स्वयं ही अच्छे गुणों का उदय होता है और उसके दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं। सत्संगति से मनुष्य की कलुषित वासनायें, बुद्धि की मूढ़ता और पापाचरण दूर हो जाते हैं। जीवन में उसे सुख और शान्ति प्राप्त होती है। समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। साधारण से साधारण और नीच से नीच व्यक्ति भी सत्पुरुषों के साथ रहने से उच्च स्थान प्राप्त कर लेता है। कबीरदास जी ने लिखा है—

"कबीरा संगति साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगति नीच की, आठों पहर उपाधि॥"

सत्संगति कल्पलता के समान है। इससे मनुष्य को सदैव मधुर फल ही प्राप्त होते हैं। संस्कृत में कहा गया है—"सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्", सत्संगति मनुष्य के लिए क्या नहीं करती अर्थात् सब कुछ करती है। साधारण कीड़ा भी पुष्प की संगति से बड़े-बड़े देवताओं और महापुरुषों के मस्तक पर चढ़ जाता है—

"कीटोऽपि सुमनः संगात् आरोहति सतां शिरः।"

सत्संगति भी दो प्रकार से की जा सकती है—प्रथम, श्रेष्ठ, सज्जन एवं गुणवान व्यक्तियों की अनुभूत शिक्षायें ग्रहण करना, उनके साथ अपना सम्पर्क रखना आदि। दूसरी प्रकार का सत्संग हमें श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन से प्राप्त होता है। परन्तु मनुष्य में सजीवता रहने के कारण मानवीय सत्संगति का प्रभाव तुरन्त और चिरस्थायी होता है, जबकि पुस्तकों का विलम्ब से और क्षण भंगुर।

"कबिरा संगति साधु की
हरै और की व्याधि"

१ प्रस्तावना।
२ सत्संगति के भेद।
३ सत्संगति से लाभ—
(क) ज्ञान वृद्धि, (ख) आचरण शुद्धि, (ग) सम्मान प्राप्ति, (घ) सात्त्विकता।
४ कुछ उदाहरण।
५ कुसंगति से हानि।
६ उपसंहार।

सत्संगति से मनुष्यों की ज्ञान-वृद्धि होती है। ज्ञान वृद्धि के लिये इससे बढ़कर और कोई साधन नहीं। गोस्वामी जी ने लिखा है कि "बिनु सतसंग विवेक न होई", अर्थात् बिना सत्संगति के मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इससे मनुष्य को ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की समृद्धि प्राप्त होती है। ऐहिक समृद्धि से तात्पर्य यह है कि सत्संगति से मनुष्य को जीवन में सुख समृद्धि और परम शान्ति की प्राप्ति होती है, वह समाज में उच्च स्थान प्राप्त करता है, उसकी कीर्ति संसार में फैलती है। पारलौकिक ज्ञान से हम ब्रह्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील होते हैं। संसार के आवागमन से मुक्त होने के लिए पूर्ण ज्ञान ही एकमात्र उपाय है। यदि हम पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो वेदव्यास की भागवत, श्रीकृष्ण की गीता, तुलसी की रामायण, आदि ग्रन्थों में हम जब चाहें पढ़कर ज्ञान के भण्डार को भर सकते हैं। पुस्तकों का सत्संग

स्थान या समय की बाधा प्रस्तुत नहीं करता। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व के विद्वानों के साथ हम उसी प्रकार का विचार-विमर्श कर सकते हैं, जिस प्रकार आधुनिक विद्वानों के साथ। उनके ग्रन्थ-रत्नों से हम उनकी संगति का अमूल्य लाभ उठा सकते हैं।

श्रेष्ठ पुरुषों के सम्पर्क में आने से हमारे आचरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारा चरित्र उज्ज्वल और निर्मल हो जाता है। हमारे क्रूर-कर्म हमसे सदैव के लिये छूट जाते हैं। प्राचीन भारत में विद्यार्थी अहर्निश गुरु के निकट सम्पर्क में रहता था, इसीलिए आश्रमों और गुरुकुलों की व्यवस्था की गई थी, क्योंकि मनुष्य पर शिक्षा से अधिक प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। सत्संग के प्रभाव से अनेक दुश्चरित्र व्यक्ति सच्चरित्र बन गये, अनेक क्रूर-कर्मा पुरुष सत्संगति से ही महापुरुष बन गये, क्योंकि गुण और दोष मनुष्य में संगति से उत्पन्न होते हैं—"संसर्गजः दोषगुणाः भवन्ति।" आदिकवि बाल्मीकि ने सत्संगति के प्रभाव से अपना डकैती का नीच कर्म छोड़कर "मरा मरा" का जप किया था। जैसे—पारस की संगति से लोहा भी सोना हो जाता है, काँच में कंचन की संगति से मरकतमणी की सी चमक आ जाती है, कहा है—"काँचः कांचन-संसर्गाद्धत्ते मारकेतीं द्युतिम्।" उसी प्रकार सत्संगत से बुरा आदमी अच्छा बन जाता है। उसके दोष समाप्त हो जाते हैं। गोस्वामी जी ने लिखा है—

"सठ सुधरहिं सत्संगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई।"

सत्संगति से मनुष्य का समाज में सम्मान होता है। सज्जनों के साथ रहकर दुराचरी मनुष्य भी अपने दुष्कर्म छोड़ देता है। समाज मे उसकी प्रतिष्ठा होने लगती है। गुलाब के पौधे के पास की मिट्टी भी कुछ समय में सुवासित होकर अपने सम्पर्क मे आने वाले को सुगन्धित कर देती है। सहस्रों निरपराध पशुओं को मौत के घाट उतार देने वाला वधिक का छुरा कुशल शल्य चिकित्सक के हाथों में जाकर अनेक प्राणियों की जीवन-रक्षा करने में समर्थ होता है। इसी प्रकार दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति भी सज्जनों के सम्पर्क में आने से दयावान्, विनम्र, परोपकारी और ज्ञानवान् हो जाता है। सत्संगति से मनुष्य विवेकवान् और सदाचारी बनता है और इसी कारण समाज उसका आदर करने लगता है।

सत्संगति से मनुष्य में धैर्य, साहस और सान्त्वना का संचार होता है। कहावत है—"ज्ञान काटे ज्ञान से मूरख काटे रोय।" सत्संग उसे इतना विवेकपूर्ण बना देता है कि भयानक से भयानक विपत्ति में भी वह साहस नहीं छोड़ता। सत्संगति उसे सान्त्वना देती है। निराशा में आशा का संचार करती है, घोर अन्धकार में प्रकाश रश्मि विकीर्ण करती है। सत्संगति उसे सुख-दुःख मे हर्ष और शोक में सदैव समान रक्खेगी।

कुसंगति से अनेक हानियाँ होती हैं। क्योंकि दोष और गुण सभी संसर्ग से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य में जितना दुराचार, पापाचार, दुश्चरित्रता और दुर्व्यसन होते हैं सभी कुसंगति की कृपा के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं। श्रेष्ठ विद्यार्थियों को, जो सदैव प्रथम श्रेणी में ही पास होते हैं, इन आँखों से बिगड़ते देखा है, बर्बाद होते देखा है, केवल नीच साथियों के कारण बड़े-बड़े घराने नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति पर भी कुसंगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है, यह ऐसा जादू है कि अपना असर दिखाये बिना नहीं रहता है। ठीक ही कहा है—

"काजर की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय,
एक लीक काजर की लागहि पै लागि है।"

दुष्ट और दुराचारी व्यक्ति का साथ कभी नहीं करना चाहिये। नीच मनुष्य की

संगति से सदैव उपद्रव होने की आशंका बनी रहती है। नीच की संगति से अच्छे मनुष्य में भी दोष लग जाते हैं। शराब की दुकान पर खड़े होकर दूध पीने वाले व्यक्ति को भी सब यही समझते हैं कि यह शराब पी रहा है। दुष्ट से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। तुलसीदास जी ने कहा है—

"बरु भल बास नरक कर ताता, दुष्ट संग जनि देहु विधाता।"

निष्कर्ष यह है कि क्या विद्यार्थी और क्या गृहस्थी, क्या बालक और क्या वृद्ध, सत्संग से सभी लाभान्वित हो सकते हैं। कुसंगति से मनुष्य की बुद्धि का विनाश हो जाता है और सत्संगति से मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः सभी मनुष्यों को सुसंगति करनी चाहिये और कुसंगति त्याग देनी चाहिये। इससे मनुष्य समाज में आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त करके सुख और शान्तिपूर्वक जीवन-यापन कर सकता है। सत्संग की महिमा अनन्त है। सत्संगति के प्रभाव से साधारण मनुष्य भी महान् बन जाते हैं। विद्यार्थियों को सदैव अच्छे व्यक्तियों के साथ सम्पर्क रखना चाहिए। इससे वे निश्चय ही सदाचारी, आज्ञापालक और अनुशासन-प्रिय बनेंगे, परन्तु इतनी बात अवश्य है कि सत्संगति का प्रभाव देर में होता है और कुसंगति का प्रभाव तुरन्त। विद्यार्थियों की निर्दोष और निर्मल बुद्धि पर कहीं कुसंगति का वज्रपात न हो जाये, यह प्रतिक्षण देखना माता पिता का कर्त्तव्य है।

६३. "परहित सरिस धरम नहिं भाई"

अथवा

"मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिये मरे"

(परोपकार)

पाप और पुण्य की परिभाषा करना जटिल कार्य है। हम नित्य देखते हैं कि एक व्यक्ति जिस कार्य को पाप समझकर हेय दृष्टि से देखता है, दूसरा व्यक्ति उस कार्य को बड़ी रुचि और प्रसन्नता से करता हुआ पाया जाता है। वही कार्य एक के लिए पुण्य है और दूसरे के लिए पाप, यह भी बड़े आश्चर्य की बात है। भिन्न भिन्न विद्वानों ने अपनी रुचि और भावना के अनुसार पाप और पुण्य की परिभाषायें दी हैं, परन्तु वे भी एक दूसरे से नहीं मिलतीं। आधुनिक युग के परम प्रसिद्ध कवि श्री बच्चन जी ने तो यहाँ तक लिखा है कि—"वह न समझो पाप मैं कुछ कर रहा हूँ, विश्व की एक माँग पूरी हो रही है।"

जब संसार में कुछ पाप ही नहीं तो फिर पाप और पुण्य की परिभाषा कैसी? परन्तु वेदव्यास जी ने इस ग्रन्थि को सूक्ष्म शब्दों में बहुत पहले ही सुलझा दिया था। उन्होंने लिखा है—

"अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्॥"

व्यास जी ने अट्ठारह पुराणों की रचना की थी, परन्तु उन सब का सार उन्होंने केवल दो शब्दों में कह दिया कि पुण्य के लिए परोपकार और पाप के लिए परपीडन। अर्थात् परहित साधन ही पुण्य है और दूसरों को कष्ट देना ही पाप है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन पंक्तियों में धर्म-अधर्म की व्याख्या करते हुए एक महान् विश्व धर्म की स्थापना की है—

"परहित सरिस धरम नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥"

अर्थात् परोपकार के समान कोई दूसरा धर्म नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम संसार में 'स्व' और 'पर' का विभेद ही सांसारिक माया है। हम अधिकांश कार्य अपने ही लिये करते हैं, परन्तु 'स्व' की संकुचित सीमा से निकलकर 'पर' के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करना ही सच्ची मानवता है। यही धर्म है और यही पुण्य है। आत्मिक सुख और जीवन की शान्ति के लिए परोपकार परम आवश्यक है। रहीम ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है—

'परहित सरिस धरम नहिं भाई' अथवा 'मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे' (परोपकार)

१. प्रस्तावना।
२. प्रकृति और परोपकार।
३. मनुष्य और पशु।
४. मानव जीवन का उद्देश्य।
५. परहित प्राणोत्सर्ग की महानता।
६. कुछ आदर्श।
७. उपसंहार।

"यों रहीम सुख होत है उपकारी के संग।
बाँटन वारे के लगे ज्यों मेंहदी को रंग॥"

प्रकृति पदार्थ के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देती है। पृथ्वी अपने प्राणों का रस निचोड़ कर हमारा पेट भरती है। भर्तृहरि ने निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट कहा है—

"पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति शस्याम् खलु वारिवाहाः
परोपकाराय सतां विभूतयः॥"

अनन्त जल-राशि का भार वहन करती हुई नदियाँ अपने जीवन के प्रभात से सन्ध्या तक अनवरत रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान तक आजीवन प्रवाहित होती रहती हैं, क्यों? केवल दूसरों के कल्याण के लिए। आँधी और तूफानों के अत्याचारों को वृक्ष मौन होकर सह लेते हैं, क्यों? वे सोचते हैं कि सम्भवतः कभी वह दिन भी आयेगा जब थके-माँदे मुसाफिरों को हम अपनी छाया प्रदान कर तथा क्षुधार्तों को अपने मधुर फल देकर अपना जीवन सफल कर सकेंगे। मेघों ने धरिणी से प्रत्युपकार में कभी अन्न की याचना नहीं की, युग-युग से वे इसी प्रकार जल भर कर लाते हैं और धरिणी के अंचल को आर्द्र करके एक बार फिर लौट जाते हैं, परन्तु प्रतिदान का शब्द कभी उनके मुख तक नहीं आया। मैथिलीशरण गुप्त ने एक स्थान पर ऐसा ही कहा है—

"निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी।
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी॥"

भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में मानव-मात्र की कल्याण-भावना निहित है। यहाँ जो कुछ भी कार्य होते थे वे सदैव "बहुजनहिताय" और "बहुजनसुखाय" की दृष्टि से होते थे। यही संस्कृति भारतवर्ष की आदर्श संस्कृति रही है। इस संस्कृति की मूल भावना "वसुधैव कुटुम्बकम्" के पवित्र उद्देश्य पर आधारित थी। इसीलिए भारतीय ऋषियों ने विश्व कल्याण की कामना करते हुए लिखा था—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्॥"

अर्थात् सब सुखी हों, सब निरोग हों, सबका कल्याण हो, किसी को भी दुःख प्राप्त न हो। ऐसी पुनीत भावनायें भारतवर्ष में सदैव प्राप्त होती रही हैं। वास्तव में परोपकार के समान न कोई दूसरा धर्म है और न पुण्य।

3 जीवन के दैनिक कृत्य जिन्हें हम करते हैं, उन्हें पशु पक्षी भी बड़ी तल्लीनता से करते हैं, क्या भोजन और क्या शयन ? हम भी अपने अधिकारी से भयभीत रहते हैं और वे भी अपने स्वामी से डरते हैं। हमारी गृहस्थी भी आगे बढ़ती है और उनकी भी। वे भी अपने हित अहित से परिचित होते हैं और हम भी। जैसा कि इन पंक्तियों में कहा गया है—

"आहारनिद्राभयमैथुनञ्च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।"

मनुष्य और पशु में यदि कोई अन्तर है, तो यह है कि पशु परहित की भावना से शून्य होता है। वह जानता ही नहीं किसी को खिलाना भी चाहिए। पशु के जितने भी कार्य होते हैं वे सभी अपने तक ही सीमित रहते हैं। हम देखते हैं कि एक गाय के दो बछड़े हैं, परन्तु वे अपने भोजन में से एक-दूसरे को नहीं खाने देते। कुत्ता अपनी ही आत्मा से उत्पन्न हुये अपने बच्चे को रोटी के टुकड़े के ऊपर झकझोर डालता है और खाने नहीं देता। अब आप स्वयं ही विचार करें कि यदि मनुष्य भी मनुष्य के साथ ऐसा ही व्यवहार करने लगे तो फिर मनुष्य और पशु में अन्तर ही क्या रहा। गुप्त जी कहते हैं—

"यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे,
मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे।"

4 मानवता का उद्देश्य और मानव जीवन की सार्थकता, केवल इसी में है कि वह अपने कल्याण के साथ दूसरों के कल्याण की भी सोचे। उसका कर्त्तव्य है कि स्वयं उठे और दूसरों को भी उठाए। आर्त और दीन की करुणा भरी पुकार से, बड़ी-बड़ी आँखों में छलकते हुये आँसुओं से, अशक्त और असहाय की याचनापूर्ण करुणा दृष्टि से, जिसका हृदय द्रवीभूत न हुआ, तृप्ति और भूखों को अपने भूखे पेट पर हाथ फिराते हुये देखकर जिसने अपने सामने रखा हुआ भोजन नहीं दे दिया, अपने पड़ोसी के घर में लगती हुई आग को देखकर जो उसकी रक्षा के लिये एकदम न कूद पड़ा, कल की चमकती हुई चुनरी और सुहाग भरी चूड़ियों को उतरते और फूटते देखकर जिसका हृदय विदीर्ण नहीं हुआ, नदी की निष्ठुरता के कारण बहते हुए शिशुओं और रोती हुई माताओं को देखकर उनकी प्राण रक्षा के लिए जो सहसा जलराशि में कूद न पड़ा, वह मनुष्य नहीं पशु है। तुम्हारे पास यदि धन है तो निर्धनों की सहायता करो, यदि शक्ति है तो अशक्तों को अवलम्ब दो, यदि विद्या है तो वाद विवाद मत करो, अपितु उसको अशिक्षितों में वितरित करो, तभी सच्चे मनुष्य कहलाने के अधिकारी हो सकोगे। मानव जीवन का उद्देश्य केवल इतना ही नहीं कि खाओ, पीओ और मस्त रहो। गोस्वामी जी लिखते हैं—

"एहि तन कर फल विषय न भाई, सब छल छाड़ि भजिय रघुराई।"

अर्थात् इस जीवन का केवल यही उद्देश्य नहीं है कि मनुष्य अपने को विषय वासनाओं में व्यस्त कर दे, अपितु निष्कपट होकर भगवत् स्मरण करे। भगवद् भजन भी तभी सफल हो सकता है जब आप उस परमेश्वर की सन्तान को "आत्मवत् सर्व-भूतेषु य पश्यति स पण्डित" का सिद्धान्त लेकर सहानुभूति, सहयोग और सदेवना के साथ सेवा करेंगे। अतः परहित साधना ही मनुष्यता है, यही सबसे बड़ा भगवद् भजन है। किसी पाश्चात्य कवि ने भी लिखा है—"The best way to pray to God is to love His creation" कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनका न कोई स्वार्थ है और न कोई लाभ, फिर भी वे दूसरे के कार्य में विघ्न अवश्य डाल देते हैं। भर्तृहरि कहते हैं कि वे कौन हैं मैं नहीं जानता—

"ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।"

त्याग और बलिदान सदैव भारतीय संस्कृति के मूलाधार रहे हैं। इस पवित्र भूमि पर ऐसे महापुरुषों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने मानव-कल्याण के लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। आज भी सरस्वती उनका यशोगान गा रही है। वृत्रासुर राक्षस का विनाश महर्षि दधीचि की अस्थियों से विनिर्मित अस्त्र से ही सम्भव था। देवताओं ने इन्द्र की अध्यक्षता में, दधीचि से प्रार्थना की—और उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर ली। रन्तिदेव ने क्षुधातुर को द्वारस्थ देखकर अपने सामने से थाल उठाकर दे दिया—

"परार्थ रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि जाल भी।"

राजा शिवि को देखिये, बाज के आक्रमण से भयभीत कपोत, त्राण प्राप्ति की इच्छा से उनकी गोद में आ बैठा। बाज वहाँ भी आ पहुँचा और महाराज के सामने दो शर्तें रक्खीं कि या तो आप मेरा शिकार लौटा दीजिए या फिर उसके बराबर मुझे अपना मांस दे दीजिये। शिवि ने तराजू से तौलकर कबूतर के बराबर अपने शरीर का मांस दे दिया। एक बार महाकवि निराला किसी यात्रा से लौट रहे थे, मार्ग में एक भिखारिन वृद्धा मिली। इस वृद्धा ने निराला जी को बेटा ! सम्बोधन करके भीख माँगी। निराला जी बहुमूल्य शाल ओढ़े हुए थे, वृद्धा कुछ नग्न थी, शीत का समय था। निराला जी ने अपना शाल उसे उढ़ा दिया। महाकवि निराला जी का तो समस्त जीवन ही परमार्थ की कहानी है. उन्होंने अपने लिये कभी कुछ संचित नहीं किया।

यदि भारतवर्ष में चिरकाल से परहित साधना की भावना प्रवाहित होती न चली आती, मनुष्य यदि अपने संकुचित "स्व" में ही कूप-मण्डूक की भाँति सीमित रहता तो निश्चय ही मानवता रसातल को चली गई होती। आज भी, जबकि महायुद्ध की विभीषिकायें अपने मृत्यु संगीत से सृष्टि को श्मशान का रूप देने के लिए उत्सुक हैं, भारतवर्ष पंचशील, आदि सिद्धान्तों द्वारा विश्व की सहानुभूतिपूर्ण परिचर्या में व्यस्त है। इस बात की आवश्यकता है कि मानव स्वार्थभावना का परित्याग करके "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त पर चलता हुआ मानवता के कल्याण के लिये प्रयत्न करे। तभी हम उदार चरित्र वाले कहे जा सकते हैं। जब तक जन-जन में और व्यष्टि-व्यष्टि में इस मूल मन्त्र का प्रवेश न होगा, तब तक राष्ट्र न सुखी हो सकता है, न समृद्ध ही।

६४. दैव-दैव आलसी पुकारा

(आलस्य)

हम मानव को दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—प्रथम—कर्मवीर, द्वितीय-कर्मभीरु। कर्मवीर, संसार और समाज की अनन्त असफलताओं, संघर्षों और हानियों से लड़ता हुआ अपना पथ स्वयं प्रदर्शित करता है। कर्मवीर का सिद्धान्त होता है कि "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" अर्थात् या तो कार्य में सिद्धि प्राप्त करूंगा अन्यथा अपना शरीर ही नष्ट कर दूंगा। इसे हम दूसरे शब्दों में "करो या मरो" का सिद्धान्त कह सकते हैं। इसके विपरीत कर्मभीरु मनुष्य काम करने से डरता है, काम को देखकर भयभीत होता है। वह पराम्न और पराश्रय पर अपना जीवन निर्वाह करता है। स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरता उससे कोसों दूर खड़ी रहती है, न उसमें उनके आवाहन की शक्ति होती है और न आदर की। क्या आपने कभी सोचा है कि इस प्रकार के कर्मभीरु मानव के पुरुषार्थ और शक्ति को उससे किसने छीन लिया ?

वह अकर्मण्य क्यों बन बैठा ? उदासी ने उसके जीवन में घर क्यों बना लिया ? इन सब प्रश्नों का आप केवल एक ही उत्तर पायेंगे कि उसके सुनहरे जीवन को आलस्य रूपी कीटाणुओं ने खोखला बना दिया। आलस्य मानव-जीवन का सबसे भयंकर शत्रु है, जो उसकी समस्त सृजनात्मक और रचनात्मक शक्तियों को छीनकर उसे मिट्टी का पात्र बना देता है। आलसियों का गुरु मन्त्र है—

दैव-दैव आलसी पुकारा

१ प्रस्तावना।
२. उक्ति का संदर्भ एवं भाव।
३ आलस्य मानव का महान् शत्रु।
४ आलस्य से हानियाँ।
५. आलस्य-त्याग से लाभ।
६ उपसंहार।

"अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥"

एक समय था कि भारत में इस विषैले मन्त्र ने अकर्मण्यता का बीजारोपण कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप देश के करोड़ों लोग निकम्मे और निठल्ले बन गये। चीन को देखिये कि इतने विशाल देश के लोग सैकड़ों वर्ष तक अफीम का अंटा चढ़ाकर आलस्य की नींद सोते रहे और जापान जैसे द्वीप के लोगों से पिटते रहे। आलस्य व्यक्ति, परिवार, समाज और देश के लिये सबसे बड़ा कलंक होता है। संस्कृत में कहा गया है—

"आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।"

राम, रावण से युद्ध की तैयारी कर रहे थे। मार्ग में समुद्र पड़ता था, रास्ता कैसे बनाया जाये, राम के सामने यह कठिन समस्या थी। समुद्र से मार्ग देने के लिये राम ने कई बार प्रार्थना की, परन्तु समुद्र ने कुछ नहीं सुना। यह सब लक्ष्मण को कहाँ सह्य था, वे सहसा क्रुद्ध हो उठे और राम से प्रार्थना की कि बल प्रयोग कीजिये।

"कायर मन कहु एक अधारा, दैव-दैव आलसी पुकारा"

वास्तव में यह उक्ति अपने में सारगर्भित है। आलसी मनुष्य ही दैव का, भाग्य और प्रारब्ध का, काल और समय का अनावश्यक आश्रय लेते हैं। वे प्रयत्न तो स्वयं नहीं करते, बल्कि अपनी असफलता के लिये अज्ञात अदृश्य भाग्य एवम् ईश्वर को दोषी ठहराते हैं। ऐसा कायर पुरुषों का जीवन केवल इसलिये होता है कि वे निन्दित और तिरस्कृत होकर कुत्ते की तरह दूसरों के भोजन, दूसरों के बल और दूसरों के धन पर अपना जीवन बितायें तथा समय-समय पर दुर्गति के शिकार बनते रहें। आलसी का जीवन नारकीय जीवन होता है। उससे समस्त समाज घृणा करता है। आलसी भी चाहता है कि मैं भी औरों की भाँति काम करूँ और आगे बढ़ूँ परन्तु आलस्य, जिसने कि उसके हाथ पैरों की शक्ति को, मन और मस्तिष्क की सजगता को, अन्तःकरण के आत्मविश्वास को कुण्ठित कर दिया है—उठने के समय बैठा देता है और आगे बढ़ने के समय टाँग पकड़ कर पीछे घसीट लेता है। नीतिकारों का कथन है कि—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी,
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥

अर्थात् पुरुषों में सिंह के समान उद्योगी पुरुष को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। "दैव देगा" ऐसा कायर पुरुष कहा करते हैं। दैव को छोड़कर अपनी भरपूर शक्ति से पुरुषार्थ करो और यदि फिर भी कार्य सिद्ध न हो तो सोचिये कि इसमें कहाँ और क्या कमी रह गई।

आलस्य मानव का सबसे प्रबल शत्रु है। यद्यपि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि शत्रु भी बड़े शक्तिशाली हैं, परन्तु आलस्य तो मनुष्य को न इस लोक के लायक छोड़ता है और न परलोक के। आलस्य से मानव की समस्त चेतनायें और शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों का ह्रास हो जाता है। पग-पग पर उसे जीवन में अनेकानेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। परिणाम यह होता है कि वह जीवन से विमुख [illegible] उदासी बन जाता है, चारों ओर से उसे निराशा घेर लेती है। आलस्य के [illegible] अन्धकार में उसे कोसों तक आशा की धुँधली किरण भी दिखाई नहीं पड़ती। वह [illegible] जीवन व्यतीत करता है। पराधीन और पराश्रित को तो स्वयं ही, स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। तुलसी ने लिखा है कि—

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।
करि विचारि देखहु मन माहीं॥

इस प्रसङ्ग में मुझे एक घटना स्मरण आती है कि आलस्य मनुष्य को कहाँ तक नीचे गिरा देता है। दो आलसी किसी आम के वृक्ष के नीचे पड़े रहा करते थे। एक दिन वृक्ष से आम टूटकर एक आलसी की छाती पर आ गिरा। उसने दूसरे आलसी से प्रार्थना की कि "तुम इस आम को मेरे मुँह में निचोड़ दो।" परन्तु वह दूसरा आलसी भी कम नहीं था, उसने कहा, "भाई! कल तुम देख रहे थे कि एक कुत्ते ने आकर मेरे मुँह पर पेशाब कर दिया था, और मैंने अपने हाथों से उसे ही नहीं हटाया तो बताओ कि मैं तुम्हारे मुँह में आम कैसे निचोड़ सकता हूँ?" ये हैं आलसियों के कारनामे।

आलस्य से मानव जीवन का पतन हो जाता है। आलसी विद्यार्थी कभी परीक्षा में सफल नहीं हो पाता। वह पढ़ने के समय ऊँघता है या फिर पढ़ने में उसका मन ही नहीं लगता। उसका काम कभी समय पर पूरा नहीं होता, वह अपने साथियों से पिछड़ रहता है। गृहस्थाश्रम के लिये तो आलस्य एक घातक विष है। यदि गृहस्थी आलस्य करेगा तो वह स्वयं और उसके परिवार के लोग भूखे मरने लगेंगे, जीवन-निर्वाह भी कठिन हो जायेगा। आलसी व्यक्ति न व्यापार कर सकता है और न वकालत, न नौकरी कर सकता है और न नमाज पढ़ सकता है। चाहे मनुष्य वानप्रस्थ आश्रम में हो और चाहे संन्यास आश्रम में, वह न तो आत्म-चिन्तन की ओर ध्यान दे सकता है और न आचार-विचार पर। आलसी मनुष्य अनन्त दुर्गणों का भण्डार होता है। संसार की समस्त बुराइयाँ उसे आ घेरती हैं। आलसी सबसे बड़ा कायर बन जाता है। वह आगे बढ़ने के समय भी पीछे हटता है, और सदैव दूसरों का मुँह देखता है। उसमें स्वावलम्बन और आत्म-निर्णय की शक्ति नहीं रहती है। उसके जीवन की उन्नति को आलस्य समाप्त कर देता है। उसे उत्थान के स्थान पर पतन, उन्नति के स्थान पर अवनति, उत्कर्ष के स्थान पर अपकर्ष और यश के स्थान पर अपयश प्राप्त होता है। स्मरण रखिये कि सामने थाली में परोसा हुआ भोजन भी उस समय तक मुख में नहीं जा सकता जब तक कि उसके लिये हाथों द्वारा प्रयास न किया जाये। मृगेन्द्र की शक्ति और वनराजता सर्वविदित होते हुए भी उसके आहार के लिये वन्य-पशु स्वयं ही उसकी सेवा में उपस्थित नहीं होते। उसे भी अपने जीवन-निर्वाह के लिये दहाड़ मार कर शिकार करना पड़ता है। संस्कृत में कहा गया है—

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

गोस्वामी जी ने लिखा है कि आलसी और अकर्मण्य दैव पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं—

ते परत्र दुख पावहीं, सिर धुन-धुन पछिताहिं।
कालहिं, कर्महिं, ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाहिं॥

आलस्य का त्याग करने से मनुष्य को अपने लक्ष्य में निश्चित सफलता प्राप्त होती है, चाहे वह लक्ष्य विद्या सम्बन्धी हो, चाहे लक्ष्मी सम्बन्धी हो, चाहे व्यापार सम्बन्धी हो और चाहे ब्रह्म साक्षात्कार सम्बन्धी हो। सफलतायें उद्योगी एवं कर्मशील मनुष्य को स्वयं ही आकर वरण करती हैं। संसार की सुख सम्पत्ति वैभव-समृद्धि स्वयं ही कर्मण्य मनुष्य के चरणों पर न्यौछावर हो जाती हैं। भयानक विपत्ति और घोर विघ्न भी उद्योगी को लक्ष्य प्राप्ति से विचलित नहीं कर सकते। मानव स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। वह अपने उद्योग से, अपने अथक श्रम से, अपने भाग्य की वक्र रेखाओं को भी बदल सकता है। इतिहास साक्षी है, जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब अपने अथक परिश्रम से अपनी जीवन भर की साधनाओं और तपस्याओं से ही महान् बने हैं। जो आलसी और अकर्मण्य होते हैं, वे ही दैव-दैव पुकारा करते हैं। उनमें धैर्य और साहस का अभाव होता है जिससे न वे स्वयं उन्नति कर पाते हैं और न समाज के प्रति ही अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर पाते हैं। हमें चींटियों से शिक्षा लेनी चाहिये कि वे कितनी कर्त्तव्यशील हैं, आलस्य और विश्राम उन्हें छू तक नहीं गया। जब देखो तब आगे बढ़ते, चलते और प्रयत्न करती ही मिलेंगी। क्या कभी चींटी को विश्राम करते किसी ने देखा है।

गीता में अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्मयोग का ही उपदेश दिया था। संसार में आकर मनुष्य को कर्म करना चाहिये तभी वह मानव कहलाने का अधिकारी है और तभी वह अपना तथा अपने समाज का कल्याण कर सकता है। आलस्य तथा निरुद्योग पूर्ण जीवन तो पशु जीवन है, जिसके खूँटे पर बँध गये वह खाने को चारा तो देगा ही। उद्योग से मानव में स्वावलम्बन की भावना का उदय होता है, इससे वह अपना तथा देश का कल्याण कर सकता है। आलसी व्यक्ति धोबी के कुत्ते की तरह होता है जो न घर की ही रखवाली करता है और न घाट पर ही जा पाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आलसी व्यक्ति न अपना ही भला कर सकता है और न अपने परिवार का, न समाज का और न अपने राष्ट्र का। आलस्य का परित्याग ही सफलता का प्रथम सोपान है।

६५. "जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना"

"वन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज अभिमानी हों।
बान्धवता में बंधे परस्पर, परता के अज्ञानी हों॥"

वास्तव में वह देश वन्दनीय है, जहाँ के निवासियों को अपने देश पर गर्व हो, जिनमें स्वाभिमान हो और जो परस्पर बन्धुत्व की भावना से बँधे हुए हों। वह देश निःसन्देह उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचेगा, वह शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ होगा। एकता के सूत्र में बंधा देश कभी परतन्त्र और पराधीन नहीं हो सकता। उसमें शत्रु को पराजित करने की शक्ति होती है। किसी की ताकत नहीं कि उनकी तरफ आँख उठाकर भी देख ले। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी प्रकार की समृद्धियाँ उसे सहज में ही प्राप्त हो जाती हैं और वह अन्य देशों में शिरोमणि देश गिना जाता है। परन्तु देश की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये जनता में एकता होनी चाहिये। वह एकता विचारों की एकता हो, भावों की एकता हो, भाषा की एकता हो अथवा धार्मिक एकता हो। एक धागे को आसानी से तोड़ा जा सकता है, परन्तु वे सभी धागे मिलकर जब एक मोटा रस्सा बन जाते हैं, तो उनसे केवल कुयें में से पानी ही नहीं हाथी भी बंधे चले आते हैं। इसलिये कहा गया है कि—

"संघे शक्तिः कलौयुगे।"

"जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना"

1. प्रस्तावना। उक्ति का अभिप्राय
2. सुमति की शक्ति।
3. सुमति से धन।
4. सुमति से ऐश्वर्य।
5. सुमति से सुख और शान्ति।
6. कुमति से हानि।
7. उपसंहार।

कलियुग में संघ में ही शक्ति है। अकेला मनुष्य यदि कुछ करना चाहे, तो नहीं कर सकता, जब तक कि उसके पीछे एक सुसंबद्ध सामूहिक शक्ति न हो। देश की स्थिति के समान ही घर की स्थिति समझनी चाहिये। जिस घर में सदैव कलह और झगड़े बने रहते हैं वहाँ सदैव दरिद्रता निवास करती है, एक न एक दिन उस घर का विनाश हो ही जाता है। जिस घर में सभी मेल-जोल से हिल-मिल कर रहते हैं, वह घर दिन पर दिन उन्नति करता है, वहीं लक्ष्मी, सुख और शान्ति निवास करती है। जहाँ हृदय की एकता और विचारों का साम्य होगा, वहाँ धन-धान्य, सुख-सम्पत्ति, यश-गौरव स्वयं खिंचे चले आयेंगे। इसीलिये तुलसीदास जी ने लिखा है—

"जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहं विपति निदाना॥"

सुमति से मनुष्य में शक्ति आती है। आये दिन समाज में देखा जाता है कि जिस घर में एक ही आदमी होता है उसको सड़क पर पकड़ कर कोई भी पीट देता है और जिसके चार-छह भाई होते हैं, सभी मिल-जुलकर रहते हैं, उनसे मुहल्ले वाले भी डरते हैं। वे जानते हैं कि अगर एक से भी कुछ कह दिया तो सभी लड़ने चले आयेंगे और जान बचानी मुश्किल हो जायेगी। यह प्रभाव घर में सुमति का है, एकता का है। आप

अपनी एक उंगली किसी पर उठायें, उस उंगली को आसानी से पकड़कर कोई भी तोड़-मरोड़ सकता है, परन्तु जब चारों उंगली मिलकर घूंसा बना लेती हैं और ऊपर से उनका सरदार अंगूठा मजबूती से उनकी रक्षा को उनके ऊपर बैठ जाता है, तो बड़े बड़े शत्रु भी उस घूंसे को देखकर दहल जाते हैं। यह है एकता और सुमति की शक्ति। इसीलिए एकता को ही बल कहा गया है। अंग्रेजी में भी कहते हैं "Unity is strength" संस्कृत की परिभाषा तो स्पष्ट है ही 'संघे शक्ति कलौयुगे' फिर अर्जन करने में सुमति की बड़ी आवश्यकता है। दसवीं शताब्दी में विदेशी यवनों ने भारत पर आक्रमण किये और यहाँ के राजपूत सरदार पराजित होते चले गये। कारण क्या था? देश में सुमति का अभाव। सभी राजपूत राजे-महाराजे अपनी-अपनी रियासतों को ही स्वतन्त्र राष्ट्र मान बैठे थे, उन्हें आत्म-गौरव का तो ध्यान था, परन्तु देश के गौरव का किसी को ध्यान नहीं था। उन्हें व्यक्तिगत मान-मर्यादा की चिन्ता थी, परन्तु सामूहिक रूप से अपनी जाति, अपने देश और अपने धर्म का बिलकुल ध्यान नहीं था। फलस्वरूप शत्रु के सामने एक सूत्रबद्ध सामूहिक शक्ति का परिचय न दे सके और यहाँ यवनों का झण्डा फहराने लगा। यही अंग्रेजों ने किया, उन्होंने "Divide and rule" की कूटनीति के आधार पर लगभग दो सौ वर्ष तक भारत पर अपना अधिकार रक्खा। यह सब सुमति और एकता के अभाव का ही परिणाम था।

अकेला व्यक्ति कितना ही परिश्रम करे उतना पैसा पैदा नहीं कर सकता, जितना कि घर के चार छः व्यक्ति मिलकर एक व्यापार को ऊपर उठा ले जाते हैं। कहावत भी है कि "अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता"। जिस घर में सुमति का साम्राज्य होता है, उस घर की आर्थिक स्थिति बहुत जल्दी अच्छी हो जाती है और जहाँ कुमति होती है वहाँ सभी अपनी-अपनी जेब भरने की कोशिश करते हैं। परिणाम यह होता है कि व्यापार में लगाई गई असली पूंजी भी कुछ दिनों में साफ हो जाती है क्योंकि उन सभी के सामने अपने-अपने व्यक्तिगत स्वार्थ हैं और व्यक्तिगत लक्ष्य हैं। जहाँ सुमति होती है, वहाँ अलग-अलग स्वार्थ और लक्ष्य नहीं होते। सभी का एक लक्ष्य होता है कि हमारे घर, हमारे परिवार और हमारे पूर्वजों का नाम हो, यश फैले। घर के बड़े आदमी के इशारे पर भी चलते हैं। परिणाम यह होता है कि चन्द दिनों में ही परिवार कहीं से कहीं पहुँच जाता है। यही स्थिति देश की है। जिस देश की जनता में सुमति है, एकता है वह देश धन धान्य से सम्पन्न होता है। एक समय था जब भारत में सुमति थी, एकता थी, तब भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। विश्व के जितने भी समृद्धिशाली देश हैं, जैसे—अमेरिका, इङ्गलैण्ड आदि वहाँ देशवासियों में सुमति है, विचारों की एकता है, भाषा की एकता है, भावनाओं की एकता है। वे लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का देशहित के लिए बलिदान करना जानते हैं, इसलिए आज विश्व के कोने कोने में उनकी तूती बोल रही है।

संसार में दो शक्तियाँ महान् हैं—एक जनशक्ति, दूसरी धनशक्ति। जिसके पास दोनों हों उसका दूसरे पर स्वयं ही प्रभाव जम जाता है। उसे स्वयं कहने की आवश्यकता नहीं होती कि आप मेरा मान कीजिए या प्रतिष्ठा कीजिये। उसका ऐश्वर्य और उसका गौरव सर्वत्र स्वयं ही छा जाता है। आज अमरिका, इङ्गलैण्ड या रूस को किसी से कहने की आवश्यकता नहीं पड़ रही कि हम तुम से बड़े हैं बल्कि स्वयं ही विश्व के समस्त देशों पर उनका ऐश्वर्य छाया हुआ है। यही स्थिति परिवार की है, जिस परिवार में जन-धन की शक्ति पर्याप्त होती है, उसका यश और ऐश्वर्य मुहल्ले में क्या सारे नगर में छा जाता है, चारों ओर कीर्ति फैलने लगती है। जिस जाति, जिस

समाज और जिस देश में लोग परस्पर मेल-जोल, बन्धुत्व की भावना, परस्परावलम्बन, सहयोग तथा सहानुभूति से कार्य करते हैं, पारस्परिक स्वार्थों और मतभेदों में नहीं उलझते, उस जाति, उस देश और समाज का उज्ज्वल यश संसार में फैलता है, वह एक सार्वभौम, प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्र माना जाता है।

जहाँ सुख और शान्ति नहीं होती वह स्थान मनुष्य के लिये नर्क बन जाता है, दिन-रात झगड़े होते हैं, कलह होती है, एक की बात दूसरे को सहन नहीं होती, एक का खाया दूसरा देख नहीं सकता, एक की अच्छी कही हुई बात भी दूसरों को काँटों की तरह चुभती है। जहाँ एक दूसरे के प्राण लेने के लिए तैयार बैठा रहता है, जहाँ कुमति का गहन अन्धकार छाया हुआ है, वहाँ स्वर्ग की कल्पना कैसे की जा सकती है, वह तो घोर नर्क है। मनुष्य अपने कर्मों से ही स्वर्ग की सृष्टि कर लेता है और अपने कर्मों से ही नर्क की। जहाँ सुमति है, वहाँ स्वर्ग है, सुख है, शान्ति है, जहाँ कुमति है वहाँ नर्क है, कलह है, अशान्ति है। गुप्त जी ने लिखा है—

"बनालो जहाँ, हाँ, वहीं स्वर्ग है, स्वयं भूत थोड़ा कहीं स्वर्ग है।
खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है, भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है॥"

जीवन मे सफलता की कुञ्जी सुमति है। जहाँ सुमति है वहाँ धन-धान्य, सम्पत्ति, शक्ति, प्रतिष्ठा, यश, गौरव सभी कुछ है, फिर भला मनुष्य को सुख और शांति कैसे नहीं मिलेगी? जीवन की असफलतायें मनुष्य को दुखी, अशान्त बना दिया करती हैं परन्तु सफलता तो सुमति की दासी है, जहाँ सुमति होगी, वहाँ सफलता अवश्य होगी और जहाँ सफलता होगी वहाँ सुख और शान्ति भी अवश्य होगी। श्रीधर पाठक का स्मरण भाव देखिए—

"जन-जन सरस सनेह सुजन व्यवहार व्याप्त नहिं,
निर्धारित नर नारि उचित उपचार आप्त नहिं।
कलि-मल मूलक कलह कभी होवे समाप्त नहिं,
वह देश मनुष्यों का नहीं प्रेतों का उपदेश है।
नित नूतन अघ उद्देशयल भूतल नरक निवेश है।"

जिस परिवार में या जिस देश में कुमति घुसी हुई है, वह कभी फल-फूल नहीं सकता। कुमति से मनुष्य को कभी जीवन में सफलता नहीं होती। समाज मे वह अपमान का पात्र बना रहता है। कलहपूर्ण घर की धन-जन शक्ति नष्ट हो जाती है। एक समय वह आ जाता है कि पेट भरने के लिये रोटियाँ भी नहीं मिल पातीं और न शरीर ढकने के लिए कपड़े। जो मनुष्य कलहप्रिय होता है, उसकी विचारशक्ति नष्ट हो जाती है, उनके मन और मस्तिष्क जर्जर हो जाते हैं, वह हँसने के समय भी रोता है। कुमतिपूर्ण घर, परिवार या कुमतिपूर्ण देश, समझ लीजिये कि वह विनाश के कगार पर खड़ा हुआ एक धक्के की प्रतीक्षा कर रहा है। कुमति विनाश का घर है। झगड़ालू और कलहप्रिय व्यक्ति का जीवन भार बन जाता है, वह विश्व में आँखें फाड़कर देखता है पर दूर-दूर तक उसे अपना कोई दिखाई नहीं पड़ता, वह जीवन भर अशान्ति और विद्रोह की अग्नि में जलता रहता है।

आज भारतवर्ष की स्थिति बड़ी विचित्र है। शत-शत जातियों और उपजातियों में विभक्त इस देश की अशिक्षित जनता न जाने इस देश को कहाँ ले जाकर पटकेगी? व्यक्तिगत स्वार्थ इतने बढ़ गये हैं कि एकता को कहीं प्रश्रय भी नहीं मिल पा रहा। लोग अपनी-अपनी ढपली पर अपना-अपना राग अलापते जा रहे हैं। पृथकता एकदम बढ़ती जा रही है। एकता समाप्ति की ओर अग्रसर होती जा रही है। देश

में सुमति का नाम तक नहीं रहा। देश की जनता में न परस्पर सहयोग है न सहानुभूति, एक दूसरे का गला काटने को अहर्निश तैयार बैठे हैं। भारतवर्ष जैसे विशाल देश में अनेक जातियाँ रहती हैं, उनकी अनेक भाषायें हैं और वे भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी हैं। भारतीय होने के नाते राष्ट्रीयता की भावना सभी में होनी चाहिये, देशहित का ध्यान सभी को रखना चाहिए। जिस देश में हम पैदा हुए, जिसकी धूलि में लेट-लेटकर हम बड़े हुए, जीवन प्राप्त किया क्या उस मातृभूमि के प्रति हमारा यही कर्त्तव्य है कि उसके टुकड़े-टुकड़े कर दें और विनाश के मुँह में झोंक दें? लज्जा की बात है। आज एक जाति दूसरी जाति से घृणा करती है एक धर्मानुयायी दूसरे धर्मानुयायी को देखना तक नहीं चाहता। एक भाषा भाषी दूसरे भाषा भाषी की बात सुनना भी पसन्द नहीं करता। प्रान्तीयता इतनी घुस गई है कि इसके बारे में जितना कहा जाये उतना थोड़ा है। अब आप बतलाइये कि जिस देश में कुमति घर किए हुए हो और सुमति का कहीं नाम तक न हो उस देश का क्या भविष्य होगा?

६६. "जो तोकू काँटा बुवै ताहि बोय तू फूल"

अथवा

सहनशीलता

अजातशत्रुता एक ईश्वरीय गुण है। संसार के महान् पुरुष अजातशत्रु हुए हैं, उनकी पूर्ति आज भी विश्व के कोने-कोने में गाई जाती है। अजातशत्रु का अर्थ है, जिसका कोई शत्रु पैदा ही न हुआ हो। जब आप किसी का अहित नहीं करेंगे, किसी के मार्ग में विघ्न बनकर खड़े नहीं होंगे, या अपने स्वार्थ साधन के लिए दूसरों के स्वार्थ को क्षति नहीं पहुँचायेंगे, तब कौन आपका शत्रु हो सकता है? परन्तु आज का युग ऐसे व्यक्तियों पर भी कृपा नहीं करता, उन्हें भी नहीं छोड़ता, आप भले ही किसी का अहित-चिन्तन या स्वार्थ में क्षति न कीजिए फिर भी ऐसे-ऐसे महापुरुष आपको मिलेंगे जो बिना किसी प्रयोजन के ही आपके मार्ग में आकर खड़े हो जायेंगे और एक विघ्न उपस्थित कर देंगे। चाहे इस विघ्न के डालने से उनका कोई लाभ न होता हो, फिर भी उन नर-पिशाचों को इन कुकृत्यों में आनन्द आता है। "बिल्ली खायेगी नहीं तो गिरा अवश्य देगी" आदि कहावतों से ऐसे लोग अपने इन नीचतापूर्ण कृत्यों में मानसिक शान्ति प्राप्त करते हैं और अपनी विजय पर फूले नहीं समाते। ऐसे ही व्यक्तियों के लिए भर्तृहरि जी ने लिखा है कि ऐसे लोग जो निरर्थक ही दूसरों का अहित करते हैं, मैं नहीं जानता किस कोटि के हैं। वे लिखते हैं—

> "जो तोकू काँटा बुवै ताहि
> बोय तू फूल"
>
> १. प्रस्तावना—उक्ति का अर्थ और उसका महत्त्व
> २. इसके लाभ—
> (क) यश, (ख) समाज में प्रतिष्ठा, (ग) आत्म-शुद्धि, (घ) सुख और शान्ति।
> ३. कुछ आदर्श उदाहरण।
> ४. स्वाभिमानी का पतन।
> ५. उपसंहार।

"ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितम् ते के न जानीमहे।"

आज का संसार आपको अजातशत्रु नहीं रहने देगा। आप भले ही किसी का अहित या किसी से शत्रुता न रखें परन्तु इस घृणित समाज में ऐसे बहुत से व्यक्ति मिल जायेंगे, जो आपसे व्यर्थ में ही शत्रुता मान लेंगे, छिपकर आपके ऊपर तीर पर तीर चलाए जायेंगे, कभी तो आपको वह तीर लगेगा ही और आप तिलमिला उठेंगे। इसके पश्चात् आपके हृदय से प्रतिशोध की अग्नि भी धधकने लगेगी ही, क्योंकि मानव स्वभाव से ही प्रतिशोधपूर्ण होता है बस इस स्थिति पर विजय पाने के लिये ही प्रस्तुत निबन्ध के शीर्षक की उक्ति है। उक्ति का अर्थ है, 'जो तुम्हारे लिये काँटे बोता है, तुम उसके लिए फूल बोओ' अर्थात् जो तुम्हारा अहित करता है तुम उसका हित करो, जो तुम्हें दुख देता है तुम उसे सुख दो, जो तुमसे द्वेष रखता है तुम उससे प्रेम करो, जो तुम्हें हानि पहुँचा रहा है तुम उसे लाभ पहुँचाओ, जो तुम्हें गिरा रहा है तुम उसे उठाओ। निसन्देह एक दिन ऐसा आयेगा कि वह अपने इन धूर्ततापूर्ण कुकृत्यों को छोड़कर तुम्हारा प्रशंसक और सहायक बन जायेगा।

प्रतिशोध पशुओं की वस्तु है। आप जाते हुए सर्प पर छोटा सा ईंट या पत्थर का टुकड़ा फेंककर देखिए, यदि वह उसको थोड़ा-सा भी लग गया और उसने आपको देख लिया तो फिर वह आपको छोड़ नहीं सकता, चाहे आप दुनिया के किसी पर्दे पर क्यों न चले जायें। आप किसी भैंस या बिजार या बैल की ओर लाठी उठा लीजिए, वह भी आपको सींग उठाकर मारने दौड़ेगा। यदि आप इस पाशविक प्रवृत्ति से मुक्त होना चाहते हैं, यदि आप अपने को पशुओं की अपेक्षा अधिक ज्ञानवान जीव समझते हैं, यदि आप शुद्ध रूप से श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, तो आपको इस उक्ति के अनुसार अपना जीवन-यापन करना होगा, इस उक्ति को अपने जीवन की सहचरी बनाना होगा, फिर देखिये कि यह आपकी किस तरह सेवा करती है और आपको उठाकर कहाँ से कहाँ ले जाती है। यदि आप जीवन में उन्नति और उत्कर्ष प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावनाओं को तिलांजलि देनी ही होगी और इसके स्थान पर सहनशीलता, सहयोग, सहानुभूति, संवेदना और दुःख, कातरता आदि दैवी गुणों को जीवन में लाना होगा। प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की भावना से मनुष्य की आत्मा का पतन हो जाता है। क्रोध से उसकी बुद्धि का विनाश होता है और बुद्धि भ्रष्ट होने से वह भिन्न भिन्न जघन्य कुकृत्य और कुकर्म करने में प्रवृत्त हो जाता है, जिससे उसका पतन अवश्यम्भावी हो जाता है।

"कीर्तियस्य स जीवति"

जिस मनुष्य की संसार में कीर्ति होती है, वह सदैव जीवित रहता है, चाहे भले ही वह पार्थिव शरीर से इस संसार में न रहा हो। कीर्ति का भागी वही मनुष्य होता है, जिसमें कुछ असाधारण प्रतिभा होती है, जो अपने गुणों और प्रतिभा के सहारे से समाज की तन, मन, धन से सेवा करता है। जो मनुष्य बुराई के बदले में सदा भलाई ही करता है जो ईंट का उत्तर फूल से देता है, जो अपने सुकर्मों और सरल स्वभाव से घृणा को प्रेम में बदल देता है, उससे बढ़कर कौन गुणवान हो सकता है, उससे अधिक कौन समाजसेवी हो सकता है? समाज सेवा ही वह व्यक्ति कर सकता है, जो समदृष्टा हो, सहनशील हो, सहानुभूतिपूर्ण हो। जिस व्यक्ति ने आपके साथ दुर्व्यवहार किया है यदि उसके बदले में आपने उससे सद्व्यवहार किया, जिस व्यक्ति ने आपकी निन्दा की है, यदि आपने उसकी प्रशंसा की तो आप समाज के अन्य व्यक्तियों में कीर्ति के पात्र होंगे। समाज में आपका यश बढ़ेगा, घर घर में आपका गुणगान होगा। एक दिन ऐसा भी आएगा कि वे ही आपके निन्दक आपके प्रशंसक बन जायेंगे।

"क्षमाशस्त्रं करेयस्य दुर्जनः किं करिष्यति
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।"

"अर्थात् जिस मनुष्य के हाथ में क्षमा रूपी शस्त्र है उसका दुष्ट मनुष्य क्या करेगा अर्थात् कुछ नहीं बिगाड़ सकता, जैसे बिना तिनकों वाली भूमि पर गिरी हुई अग्नि स्वयं ही बुझ जाती है।"

समाज ऐसे ही व्यक्ति को मूर्धन्यता प्रदान करता है, उसी व्यक्ति को प्रतिष्ठा प्रदान करता है, जो स्वर्ण की भाँति अग्निपरीक्षा के बाद भी मुस्करा रहा हो, सदय और विपरीत परिस्थितियों में भी जिसकी भौंहों में सिकुड़न न पड़ी हो, गालियाँ खाने और पिटने के बाद भी जिसके हृदय में प्रतिहिंसा की भावना जाग्रत न हुई हो चोरी करते जाते हुए तथा पुलिस के द्वारा पकड़े जाने पर भी जिस धनी ने उन चोरों को अपना रिश्तेदार तथा अपहृत धन को अपने हाथ से दिया हुआ उपहार बना दिया हो, इतिहास ऐसे व्यक्तियों के उदाहरणों से भरा पड़ा है। जिन्होंने स्वयं कितना ही कष्ट

सह लिया, परन्तु कष्ट देने वाले के साथ थोड़ा-सा भी कठोर व्यवहार नहीं किया, ऐसे व्यक्तियों की उनके जीवन काल में भी और आज भी, जबकि वे नहीं रहे, ज्यों-की त्यों प्रतिष्ठा बनी हुई है। आज भी जनता उनका हृदय से स्वागत करती है और उनकी प्रशंसा करने मे अपनी वाणी को धन्य समझती है। आज भी वे महापुरुष समाज में श्रद्धा और आदर के पात्र बने हुये हैं।

जो मनुष्य शत्रु के साथ भी मित्रता का व्यवहार करता है, जो मनुष्य दुष्ट के साथ भी सज्जन जैसा आचरण करता है, उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और वैमनस्य ही मनुष्य की आत्मा के पतन के मुख्य कारण हैं। जो मनुष्य बुराई करने वाले के साथ भी भलाई करता है, उसकी आत्मा दिव्यलोक में विचरण करती है। वह कभी आत्म-ग्लानि और आत्म-पराजय की अग्नि में नहीं जलता। सबके साथ समानता का व्यवहार करना, शांति और सज्जनता का व्यवहार करना, संसार का सबसे बड़ा तप है, दान है और ज्ञान है। वह सबसे बड़ा आत्म-ज्ञानी है, जो संसार की समस्त आत्माओं को अपनी ही आत्मा समझता है। गीता मे कहा गया है कि—

"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।"

जो मनुष्य समस्त संसार को अपनी ही आत्मा के समान समझता है, वही पंडित है अर्थात् ज्ञानी है। जब सभी अपनी आत्मा हैं, अपने ही हैं, फिर किसके साथ प्रतिहिंसा और कैसा प्रतिशोध। जो लोग हिंसा और प्रतिहिंसा, अपना और पराया आदि की भावना में फँसे रहते हैं, वे संसार के क्षुद्र और निम्न कोटि के प्राणी होते हैं। उनकी आत्मा का कभी उद्धार नहीं हो पाता। वे आत्मशुद्धि और आत्मसंस्कार के कार्य में कभी उन्नति नहीं कर सकते।

"अयं निज परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार-चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"

मनुष्य की आत्मिक शुद्धि से उसे सच्चे सुख और शांति की प्राप्ति होती है। उसके हृदय में दिव्य भावनाएँ उत्पन्न होती हैं और वह प्रेम पारावार मे गोते लगा कर जीवन भर आनन्द का अनुभव करता है। आनन्द को नष्ट करने वाला शोक उसके पास तक नहीं आता, क्योंकि शोक उत्पन्न करने वाले शत्रु और स्वार्थ उसके निकट नहीं आते। वह किसी का बुरा नहीं चाहता, वह किसी से शत्रुता नहीं चाहता, वह किसी का अहित चिन्तन नहीं करता, वह किसी के मार्ग मे प्रत्यूह उपस्थित नहीं करता। वह वास्तविक सुख और शांति का अनुभव करता है। ईर्ष्या की आग और द्वेष का धुआँ उससे कोसों दूर खड़ा रहता है। शत्रु की ईंट के द्वारा फूटे हुए मस्तक से बहने वाली रक्त की धारा को वह अपने गले का हार समझता है, क्यों न इस व्यक्ति को जीवन का सच्चा सुख और शांति प्राप्त होगी। रहीम की पंक्तियों मे उसका अडिग विश्वास प्रकट होता है—

"प्रीति रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम में बहुरि न संगति होत॥"

महात्मा गांधी के निधन पर जितना हिन्दू रोये उतने ही मुसलमान, जितने सिक्ख रोये उतने ही पारसी, जितना इङ्गलैंड को दुःख हुआ उतना ही अमेरिका को। जब हम सोचते हैं कि गाँधी जी तो हिन्दू थे, हिन्दुओं को ही दुःख होना चाहिये था, तब हमारे सामने केवल यही उत्तर आता है कि उन्होंने जो कुछ किया वह सबके लिए किया। जिन्होंने विदेशों में उन्हें मारा-पीटा और तरह-तरह की यातनाएँ दीं, उनकी भी उन्होंने कल्याणकामना की, उनकी भलाई के लिए भी उन्होंने सोचा और प्रयत्न

किया। इसीलिए आज उन्हें विश्वबन्धु कहा जाता है। गाँधी जी ने 'जो तोकू काँटा बुवै ताहि बोय तू फूल' वाली उक्ति को जीवन में ग्रहण किया था। वे कहा करते थे जो व्यक्ति तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ जमाता है, तुम उसके आगे दूसरा गाल भी मारने के लिये कर दो, वह एक बार में नहीं तो दूसरी बार में अवश्य लज्जित होगा और अपने किए हुए कुकर्म पर अवश्य पश्चात्ताप करेगा। महात्मा बुद्ध के जीवन काल में बौद्ध धर्म के विरोधी शासकों ने उसका घोर विरोध किया। भिक्षा माँगते समय भिक्षुओं पर ईंट-पत्थर फेंके जाते, भिक्षु बेचारे खून से लथपथ हो जाते, परन्तु मुँह से एक शब्द भी न कहते। भगवान् बुद्ध को मारने के लिये अनेक भयानक डाकुओं को भेजा जाता। बुद्ध को जब यह पता लगता तो वह स्वयं उनके पास पहुँच जाते और कहते कि 'लो मारो, मैं आ गया हूँ।' भगवान् बुद्ध यदि चाहते तो अपने अनुयायी शासकों से उनको समाप्त भी करा सकते थे, परन्तु नहीं, यदि वे ऐसा करते तो सम्भवतः आज बुद्ध का नाम तक कोई न कहता। शान्ति, प्रेम और अहिंसा से उन्होंने अपने कट्टर विरोधियों पर विजय प्राप्त की। प्रभु ईसा मसीह के जीवन-काल में भी उनके विरोधियों ने उन पर कितने भयानक अत्याचार किये, परन्तु उन्होंने सदैव भगवान् से उनकी मङ्गलकामना ही की। परिणाम यह हुआ कि आज संसार में ईसाई धर्मावलम्बियों की संख्या सबसे अधिक है। इङ्गलैंड के प्रसिद्ध बिशप की कैंडलस्टिक चुराने के लिये जेल से भागा हुआ खूंखार डाकू खुली हुई खिड़की के रास्ते से जब भीतर आ गया, तब बिशप ने हाथ जोड़कर कहा कि आप कई दिनों से भूखे होंगे, बैठिये, मैं आपके लिये भोजन बनवाता हूँ, आप स्नान तो नहीं करेंगे ? इस व्यवहार को देखकर डाकू भी दंग रह गया। चोरी करके भागते हुये उसी डाकू को पुलिस ने पकड़ लिया और जब वह बिशप के पास लाया गया तो बिशप ने यही कहा कि ये तो मेरे रिश्तेदार हैं, उन्होंने ये चीजें चुराई नहीं बल्कि उपहारस्वरूप मैंने ही भेंट की थी। धन्य है रे बिशप तेरी महान् साधुता। इन दिनों आचार्य विनोबा भावे भी डाकुओं के हृदयपरिवर्तन में विश्वास रखकर उन्हें सभ्य नागरिक बनाने का प्रयत्न कर रहे थे।

कुछ व्यक्तियों का विचार है कि इस प्रकार की विचारधारा से मनुष्य में कायरता और भीरुता आ जाती है, वह अपने स्वाभिमान को खो बैठता है। विपत्तियाँ उसे चारों ओर से घेरती हैं। वह उनका कुछ भी प्रतिकार नहीं कर सकता, इस प्रकार वह एक नपुंसक व्यक्ति बन जाता है।

'शठे शाठ्यं समाचरेत्' या 'मायाचारो मायया वर्तितव्य ।'

ये उक्तियाँ, अर्थात् दुष्ट के साथ दुष्टता करनी चाहिये या मायावी के साथ मायावी बनना चाहिए, उचित नहीं।

कटुता से कटुता बढ़ती है, क्रोध से क्रोध कभी शान्त नहीं होता। वैर को प्रेम से ही जीता जा सकता है न कि वैर से, वैर से तो वैर और बढ़ेगा। अतः मानव जीवन में शान्ति, सन्तोष, दया, क्षमा, सहानुभूति आदि आदर्श एवं उदात्त गुणों की नितान्त आवश्यकता है बदला लेना तो पाशविक प्रवृत्ति है।

६७. "सबै दिन जात न एक समान"

अथवा

परिवर्तन

खोलता इधर जन्म लोचन
मूंदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण;
अभी उत्सव औ' हास-हुलास
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास !

संसार परिवर्तनशील है। इसके कण-कण में प्रत्येक क्षण परिवर्तन का चक्र चला करता है। कुछ परिवर्तन स्थल होते हैं, जिन्हें हम नित्य देख सकते है और कुछ सूक्ष्म होते हैं, जिन्हे हम नही देख सकते। मेज पर रक्खे हुए फूलदान के फूल आज ताजे थे और जब वे सूख जाएँगे तब हमें स्पष्ट परिवर्तन दीख जायेगा, परन्तु फूलदान वाली मेज में भी नित्य परिवर्तन हो रहा है, इसे हम नित्य अनुभव नही करते। कहने का तात्पर्य यह है कि क्षणभंगुर संसार की प्रत्येक वस्तु, चाहे वह जड़ हो या चेतन, परिवर्तनशील है। कल तक जहाँ भयानक वन थे, आज उन्ही स्थानों पर सुन्दर-सुन्दर भवन, विद्युत प्रकाश से जगमगाती गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ दृष्टिगोचर होती हैं और जहाँ जनरव से परिपूर्ण सुन्दर नगर थे, वहाँ कोसों तक दीपक का प्रकाश भी दिखाई नहीं पड़ता। कल तक जिन वृक्षो पर हरे भरे फल और फूल आते थे आज वे स्थाणु बने हुए अरण्यरोदन कर रहे हैं। कल तक जो बच्चे थे, जिन्हे पाठ याद न होने पर कक्षा में खड़ा कर दिया जाता था, इतना ही नही कभी-कभी पीट भी दिया जाता था आज हम उनको सफेद बालों से घिरे हुए चेहरे, और चार-चार, छह-छह, बच्चों के पिता के रूप में देखते हैं, तो संसार के तीव्र परिवर्तन चक्र पर आश्चर्य होता है। आज उनकी आकृति पर न वह तेज है और न शरीर में वह स्फूर्ति, न वह पुरातन उच्छृङ्खलता है और न उद्दण्डता।

'सबै दिन जात न एक समान'

१. प्रस्तावना।
२. संसार की परिवर्तनशीलता।
३. मानव जीवन में सुख-दुःख का मिश्रण।
४. सोदाहरण विवेचना।
५. उपसंहार।

आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात।
चार दिन सुखद चाँदनी रात
और फिर अंधकार अज्ञात।

ध्वंसावशेष मन्दिरो, मस्जिदो को जिनने इस समय वन्य पक्षियो ने अपने आवास बना रक्खे हैं जब कभी देखता हूँ तो तुरन्त उनका निर्माण काल और निर्माता की भक्ति और श्रद्धा नेत्रों के आगे नृत्य करने लगती है कि इनमें भी कभी शंख ध्वनि, घण्टा-वादन और दीपदान होता होगा और नमाज पढ़ी जाती होगी, परन्तु आज इन्हे कोई झाँक कर देखने वाला तक नही। कल की सधवा को आज विधवा बनते देर नही लगती। कल का राजा आज देखते-देखते भिखारी बन जाता है।

इस परिवर्तन का ही नाम संसार है। यदि संसार में एक ही रास्ता हो तो मानव ऊब उठे। मनुष्य के सामने कभी सुख आते हैं, तो कभी दुःख, कभी निराशा का पूर्ण साम्राज्य होता है, तो कभी आशा की सुन्दर झलक। सुख दुःख की धूप एवं छाया में संसार उठता बैठता है। सुख-दुःख दोनों अन्योन्याश्रित हैं। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं। जिस प्रकार नमकीन खाने के बाद मिठाई अच्छी लगती है और रात के बाद ऊषा की लालिमा नवस्फूर्ति प्रदान करती है, उसी प्रकार दुःख के बाद सुख अच्छा लगता है। किसी के दिन एक से नहीं रहते अन्यथा मानव अपने को किसी दिन समाप्त कर ले। उसे यही आशा रहती है कि—

"अब नीके दिन आइ हैं, बनत न लगिहै देर।"

रथ के चक्र के समान सुख-दुःख दोनों ऊपर नीचे आते रहते हैं, कभी सुख है तो कभी दुःख। इसलिए कहा गया है—

"चक्रवत् परिवर्तन्ते, दुःखानि च सुखानि च।"

यही आशा की किरण मानव को जीवन से निराश नहीं होने देती, वह जानता है कि कटा हुआ वृक्ष भी एक बार फिर हरा-भरा होकर भूले भटके पथिकों को अपनी सघन छाया प्रदान करेगा। क्षीण हुआ चन्द्रमा भी धीरे धीरे बढ़ता है। इसीलिए कहा गया है—

"छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न ते विपदा।"

अगर सभी दिन एक से ही बीतें तो मानव का जीवन आकर्षणहीन बन जाए। प्रकृति के सुकुमार कवि पन्त की ये पंक्तियाँ कितनी सुन्दर हैं—

"मैं नहीं चाहता चिर सुख, मैं नहीं चाहता चिर दुःख।
सुख दुःख की आँख मिचौनी, खोले जीवन अपना मुख।"

और फिर वे इस परिवर्तन चक्र की तीव्रता को देखकर सहसा कह उठते हैं—

"आह रे, निष्ठुर परिवर्तन!
एक सौ वर्ष, नगर उपवन, एक सौ वर्ष विजन-वन
यही तो है संसार असार, सृजन, सिंचन, संहार!"

संसार की परिवर्तनशीलता पर अस्थिरता और प्रसाद जी का एक अनुचिन्तन देखिये—

"सुख दुःख में उठता गिरता, संसार तिरोहित होगा।
मुड़ कर न कभी देखेगा, किसका हित अनहित होगा।"

इस परिवर्तन की महिमा का कहाँ तक वर्णन किया जाये। एक दिन भारत विश्व गुरु था, इसे 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। ह्वेनसांग और मेगस्थनीज आदि विदेशी यात्रियों ने अतीत भारत की सुसम्पन्नता का बहुत सुन्दर चित्र उपस्थित किया था। देश में पूर्ण रामराज्य था। गोस्वामी जी के शब्दों में—

"नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।"

परन्तु आज वह भारत न सोने की चिड़िया है और न विश्व गुरु। कितना भयङ्कर परिवर्तन है देश की स्थिति में। समय की क्रूरता बड़े-बड़े पुरुषों का नत कर देती है। यही तो नाम ना परिवर्तन है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र का डोम के घर दास बनना, भगवान् राम को चौदह वर्ष का अरण्यवास, नल और दमयन्ती का जङ्गलों में

मारे-मारे फिरना, सीता का गर्भावस्था में गृह परित्याग आदि सभी घटनायें परिवर्तन की निष्ठुरता की याद दिलाती हैं।

यह परिवर्तन प्रकृति में सदा गतिशील रहता है। आज बसन्त की हरीतिमा है, पुष्पों में विकास है, भ्रमरों का मधुर गुंजन है तो पतझड़ का रौद्र रूप प्रकृति के समस्त यौवनपूर्ण वैभव को विनष्ट करता हुआ वीरान बना देता है। परन्तु वहाँ भी भ्रमर के हृदय में आशा की धुंधली किरण अपना प्रकाश किए रहती है। पतझड़ का रौद्रता भ्रमर को निराश नहीं बना पाती, वह जानता है कि मुझे दुःख के बाद सुख अवश्य मिलेगा, इसीलिए—

"इहिं आस अटक्यो रहत, अलि गुलाब के मूल।
अइहैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारनि वे फूल।" —बिहारी लाल

नित्य के जीवन में हम देखते हैं कि कोई मनुष्य यदि कल धनवान् था, तो आज वह निर्धन है, यदि कल वह उन्नति के शिखर पर चढ़ रहा था, तो आज अवनति के गर्त में पड़ा हुआ है। कल यदि किसी का उत्कर्ष काल था तो आज उसका अपकर्ष काल है। महान् से महान् वैभवशाली राष्ट्र जो उन्नति के शिखर पर थे, वही समय के परिवर्तन के साथ धराशयी हो गये। विश्व की कितनी सभ्यताओं ने अपने वैभव पर गर्व किया, परन्तु समय के प्रवाह में आज उनका नाम भी सुनाई नहीं पड़ता।

किसी को सोने के सुख साज
मिल गया यदि ऋण सी कुछ आज,
चुका लेता दुःख कल ही ब्याज
काल को नहीं किसी की लाज।
× × ×
विपुल मणि रत्नों का छवि जाल,
इन्द्र धनुष की सी छटा विशाल।
विभव की विद्युत ज्वाल,
चमक, छिप जाती है तत्काल।

यही उत्थान और पतन का क्रम सृष्टि में अनवरत रूप से चलता रहता है। इसीलिये कहा गया है कि "सबै दिन जात न एक समान।" परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या इस परिवर्तन से मनुष्य को अपना साहस, धैर्य और शान्ति खो देनी चाहिये? कभी नहीं। उसे दृढ़ता के साथ विपत्तियों से संघर्ष करना चाहिये। धैर्यशाली व्यक्ति दुःख को भी सुख कह सकता है। मनुष्य को सम्पत्ति और विपत्ति में समान रहना चाहिये जैसे सूर्य जब उदय होते हैं, तब उनकी आभा लाल होती है, और जब अस्त होते हैं, तब भी उनकी लालिमा में कोई अन्तर नहीं आता। कहा भी है—

"उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च,
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।"

गीता में भगवान् कृष्ण ने भी यही उपदेश दिया है—

"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मद्भक्तिमान्यः स मे प्रियः।"

अर्थात् सुख-दुःख में, लाभ-हानि में, जय-पराजय में, समान भाव रहते हुए अपना मन और बुद्धि मेरे अर्पण कर देने वाला भक्त मुझे प्रिय है। कहने का तात्पर्य यह है कि भयानक से भयानक विपत्ति में भी मनुष्य को हतोत्साहित और बड़े से बड़े सुख

में भी अधिक प्रसन्न नहीं होना चाहिये । यह तो समय है—आता है और चला जाता है । अंग्रेजी में कहावत है—"It comes to go"

समय की शिला पर मधुर लेख लिखते, किसी ने बनाए किसी ने मिटाए ।

परन्तु अन्त में पन्त जी के शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है—

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन
निखिल उत्थान पतन !

६८ "हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश—अपयश, विधि हाथ"

अथवा

"विधि का लिखा को मेटनहारा"

ईश्वर अंश जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥ —गोस्वामी जी

जीवात्मा उस अनन्त शक्ति सम्पन्न परब्रह्म परमात्मा का अंश है, इसलिये जो गुण और जो शक्ति परमेश्वर में है, वह मानव में भी अवश्य है। उस अनन्त की शक्ति प्रत्येक मनुष्य के प्राणों में समाई हुई है। ब्रह्मज्ञानी तो जीवात्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं मानता। उसके 'तत्वमसि' और 'सोऽहम्' वाक्य स्वयं अपने में पूर्ण हैं। भगवान् शंकराचार्य ने भी 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' लिखकर यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जीव ब्रह्म ही है, कोई उससे भिन्न वस्तु नहीं। अद्वैतवादी ब्रह्मज्ञानी यदि इस बात को कहे तो मान भी लिया जाए परन्तु तुलसी जैसे द्वैतवादी और साकार उपासक भक्त के मुख से ये पंक्तियाँ कि 'जीव ब्रह्म का अंश है, इसलिये वह चेतन अमल सकल सुखरासी' है, कुछ समझ में नहीं आती और यदि वह ठीक है तो उन्होंने 'हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ' क्यों कहा? गोस्वामी जी ने दोनों बातें कहकर पाठकों को भ्रम में डाल दिया। परन्तु नहीं, उन्होंने 'ईश्वर अंश जीव अविनासी' से आगे इस विषय को स्पष्ट कर दिया है और लिखा है—

हानि-लाभ, जीवन-मरण यश-अपयश विधि हाथ
अथवा
"विधि का लिखा को मेटन-हारा"

१. पंक्ति की सार्थकता।
२. पंक्ति की विवेचना।
३. उदाहरण।
४. उपसंहार।

"परबस जीव, स्वबस भगवन्ता। जीव अनेक, एक श्रीकन्ता।"

इस पंक्ति में जो बात ध्रुव सत्य है, गोस्वामी जी ने वही कही है। जीव अर्थात् मानव किसी अनन्त शक्ति के संकेत पर नर्तन करता है, वह परवश है और स्वतन्त्र परमेश्वर ही केवल स्ववश है। इससे स्पष्ट है कि हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश ये वस्तुयें मानव की अधिकार सीमा से परे की हैं और ये पंक्तियाँ स्वयं में सार्थक हैं। आज का बुद्धिजीवी वैज्ञानिक मानव जो एक क्षण में संसार के संहार की शक्ति रखता है, बड़े-बड़े पर्वतों के गगनचुम्बी शिखरों को अपने चरण-चिन्हों से अंकित कर सकता है, जो निर्भय होकर चन्द्रलोक की यात्रा करने की अद्भुत शक्ति रखता है, जिसने जल और पवन पर भी एकाधिकार स्थापित कर लिया है, कहने का तात्पर्य यह कि जिसने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँचों तत्वों को अपने वश में कर रखा है, उस मानव के जीवन में कभी-कभी ऐसे भी क्षण आ जाते हैं, जब वह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर किसी अज्ञात शक्ति की ओर मुँह उठाकर ताकने लगता है। वह निरुपाय और निराश्रय होकर उस अदृश्य शक्ति से सहायता की याचना करता है।

यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से विचार करके देखें तो हमें यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है कि मानव के सभी शुभ कार्यों पर नियन्त्रण करने वाली कोई और शक्ति है जिसके आगे बड़े से बड़े विज्ञान को नतमस्तक होना पड़ता है। मानव की प्रिय वस्तुयें जीवन, यश और लाभ ही हैं। परन्तु हम देखते हैं कि वह इन्हें न बना सकता है और न मिटा सकता है, छिपी हुई कोई और शक्ति है जो इनके उत्पादन, स्थिति और विनाश का कारण है। अन्यथा बड़े-बड़े राजे-महाराजे, जिनके चरण लक्ष्मी सदैव चूमती थी, इस ठाठ-बाट को छोड़कर मृत्यु के मुख में क्यों जाते? आज का वैज्ञानिक यदि वहाँ अपनी पराजय स्वीकार करता है, तो यहीं करता है। बड़े-बड़े शल्य चिकित्सक बैठे के बैठे रह जाते हैं और प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। जिनका कोई नहीं होता है, जिनके लिये संसार में सब चाहते हैं कि वह कब मरे, वे आराम से क्यों बैठे रहते हैं। हम स्वयं नहीं जानते कि हमें संसार से कब विदा मिल जाये और हमारे अन्य सहयोगी साथियों को कब उठा लिया जाये। इसीलिये अन्त में मानव इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि—

"अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम् सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।"

अर्थात् विधाता के द्वारा रक्षा किया हुआ और संसार द्वारा रक्षा न किया हुआ मनुष्य भी संसार में सुख से जीवन व्यतीत कर लेता है और यदि विधाता से वह मनुष्य अरक्षित है, तो चाहे संसार की सारी शक्तियाँ एक ओर हो जायें उसे तब भी नहीं बचा सकतीं।

यही दशा यश-अपयश की है। यदि आपके भाग्य में यश अर्जन करना है, तो संसार आपको अपयश नहीं दे सकता। आपको हृदय से प्रेरणा ही ऐसे कार्यों की मिलेगी, जिनसे आपको यश मिले। कैकेयी के भाग्य में अपयश लिखा था, वही उसे मिला, अन्यथा वह जानती थी कि देश में अत्याचारी और दुराचारी राक्षसों का संहार बिना राम के जाये नहीं हो सकता। राक्षसों से समस्त देश आतंकित था। ऋषि मुनि और तपस्वी साधकों की बुरी दशा थी। परन्तु कैकेयी के मस्तक पर ऐसा कलंक का टीका लगा कि वह आज तक नहीं धुल सका। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि विधाता मनुष्य को यश दिलाना चाहता है, तो उसे शुभ कार्यों की ओर प्रेरित करता है और यदि अपयश दिलाना चाहता है, तो अशुभ कर्मों की ओर। मनुष्य स्वयं न कुछ करता है न कर सकता है। एक विद्वान् ने लिखा है—

"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन, यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥"

अर्थात् हे हृषीकेश! मैं धर्म को जानता हूँ पर मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म को भी जानता हूँ पर उसमें मेरी निवृत्ति नहीं होती। इसीलिए मैं तो यही कहता हूँ कि तुम मेरे हृदय में स्थित हो और वैसी मुझे प्रेरणा देते हो, मैं वही करता हूँ। यह बात है भी यथार्थ में सही। किसी कवि ने ठीक ही लिखा है—

"तेरी सत्ता के बिना हे प्रभु मंगलमूल।
पत्ता तक हिलता नहीं खिलता कहीं न फूल॥"

हानि-लाभ भी विधाता के ही हाथ की चीजें हैं। मनुष्य कोई काम करता है लाभ के लिये, पर मिलती है उसे हानि। वह एकदम किंकर्तव्य विमूढ़ होकर बैठ जाता है। बड़े-बड़े व्यापार, व्यवसाय और सुचारुरूपेण चलाये गये महान् उद्योग एक क्षण में चौपट हो जाते हैं और मनुष्य अपनी बुद्धि के क्रिया-कलापों को देखता का देखता ही रह जाता है और छोटे से छोटे यह उद्योग थोड़े ही दिनों में इतने बढ़ जाते हैं कि जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। विचार करने पर मनुष्य अनुभव करता

है कि इन सबके पीछे कोई अज्ञात शक्ति है, जो मनुष्य को आगे बढ़ाती है और सहसा पीछे खींच लेती है, क्योंकि—

"अनुकूलतामुपगते हि विधौ सफलत्वमेति लघुसाधनता।
प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।।"

यदि विधाता अनुकूल है, तो थोड़े से साधनों से ही महान् सफलता मिल जाती है और यदि विधाता प्रतिकूल है, तो आपके पास कितने ही साधन क्यों न हों आपको सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो थोड़े ही प्रयत्नों से अनन्त लक्ष्मी प्राप्त कर लेते हैं और कुछ बेचारे जीवन भर प्रयत्न करते-करते मर जाते हैं, परन्तु उन्हें रोटी और कपड़ा भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। क्या कारण है इन सब विशेषताओं के पीछे? केवल विधि का विधान या भाग्य की पंक्तियाँ जिन्हें मनुष्य चाहे वह वैज्ञानिक या कोई अन्य ही क्यों न हो, नहीं मिटा सकता।

"युद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं, स्तोकं महद्वा धनं,
तन्मार्जितुं कः क्षमः।।"

कुछ लोगों का विचार है कि मनुष्य काम करने में स्वतन्त्र है, पर वास्तव में वह स्वतन्त्र कहाँ है? वह जो कुछ भी करता है दैव की ही प्रेरणा से करता है, अन्यथा वह कोई भी गलत काम करता ही नहीं। त्रिकाल-दर्शी राम यह जानते थे कि न तो स्वर्ण-मृग कभी हुआ है और न होगा, परन्तु फिर भी उसका पीछा करना और उसके फलस्वरूप अनन्त आपत्तियों को अपने सिर पर लेना, यह सब समय और होनी की ही बात थी। दशरथ जैसे पिता, कौशल्या जैसी माता और कुलगुरु वशिष्ठ के द्वारा बताया हुआ राज्याभिषेक मुहूर्त, ये सब एक तरफ और विधि का विधान एक तरफ। हुआ वही जो विधाता को स्वीकार था। इसीलिये महात्मा कबीर जैसे वीतरागी महाज्ञानी कह उठे—

"करमगति टारे नाहिं टरी,
गुरु वसिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोध के लगन धरी।"

राजा नल जैसे सम्राट और दमयन्ती जैसी पत्नी, उन्हें भी विधाता के हाथों की कठपुतली बनना पड़ा। सत्यवादी हरिश्चन्द्र को भी समय के चक्र में फँसना पड़ा। विधि के विधानानुसार देवराज इन्द्र को भी कितनी ही बार इन्द्रासन का परित्याग करना पड़ा। शंकर जी को भस्मासुर द्वारा कष्ट और विष्णु के वक्षस्थल पर पादप्रहार, इन्द्र का परस्त्रीगमन तथा वृन्दा के शाप के कारण पत्थर का रूप लेकर तुलसी जैसे छोटे से वृक्ष के चरणों में जा बैठना, शंकरजी के पूर्ण प्रयास करने पर भी कामदेव का अनंग बनकर आज तक सुरक्षित रहना, प्रहलाद के वध के अनन्त प्रयास करने पर भी उसका पूर्ण सुरक्षित रहना, सब इसी बात की ओर संकेत हैं कि जो बात होनी है वही होती है या जो विधाता की इच्छा होती है वह अवश्य होता है, इसलिये कहा गया है कि—

"यद् भावी न तद् भावी भावी चेन्न तदन्यथा,
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किन्न पीयते।"

अर्थात् जो बात नहीं होने वाली है वह कभी नहीं होगी और जो बात होने वाली है, उसे कोई रोक नहीं सकता। इसलिये चिन्ता के विष को मारने वाली इस विचाररूपी औषधि को क्यों नहीं पीते।

परन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य यदि इस विचारधारा को सत्य मानकर ग्रहण करले तो वह अकर्मण्य और आलसी हो जाएगा। वह सोचेगा कि यदि रोटी मेरे

भाग्य में होगी तो अपने आप मिल जायेगी, इस प्रकार वह समाज के कर्मक्षेत्र से विमुख हो जायेगा। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि इस संसार में हमारा जीवन कर्म करने के लिए हुआ है। यही योग है, यही भक्ति और साधना है। इसलिये गीता में कहा है—

"योग कर्मसु कौशलम्"

अर्थात् कर्मों में कुशलता का ही नाम योग है। परन्तु इसके साथ एक शर्त यह भी है कि मनुष्य को आसक्ति रहित होकर ही कर्म करना चाहिये। मनुष्य तो केवल कर्म करने वाला है, कर्म का फल चाहे वह लाभ हो या हानि, यश हो या अपयश, जीवन हो या मरण देने वाला विधाता है, ईश्वर है, मनुष्य नहीं। इसीलिए गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"

अर्थात् हे अर्जुन तेरा अधिकार केवल कर्म करने में ही है, उसके फल में नहीं, फल तो मेरे हाथ में है।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव विधाता के हाथों का एक खिलौना मात्र है। उसे फल प्राप्ति की भावना से रहित होकर कर्म करना चाहिये। अकर्मण्य बनकर बैठने से कर्म करना ही कल्याणकारी है। इसका फल क्या होगा यह सोचना ही मूर्खता है, क्योंकि फल देने का अधिकार किसी और का है हमारा नहीं। हानि-लाभ, यश-अपयश और जीवन मरण निःसन्देह विधाता के ही संकेतों पर चलते हैं ऐसा भारतीय भाग्यवादी विचारकों का मत है। इसीलिए भगवान् राम ने कहा है—

"हँसि बोलेउ रघुवंश कुमारा, विधि कर लिखा को मेटन हारा।" —'तुलसी'

× × ×

"लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुम् कः समर्थः" —'भर्तृहरि'

६६. अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष १६७६

संसार का प्राणि मात्र माया रूपी ठगिनी से सदैव ठगा जाता रहा है। इसके मोहक रूप जाल में मानव अपना सब कुछ 'शुभ' भूल जाता है और जीवनपर्यन्त वही राग अलापता है जिसकी यह आज्ञा देती है, वही करता है, जिसकी आज्ञा इस ठगिनी से प्राप्त हो जाती है। परिणाम-स्वरूप दुःख सागर में डूबता-उतरता किसी तरह रो-धोकर मृत्यु रूपी शान्त-सरिता के किनारे पर जाकर लगता है, जहाँ पहुँच कर वह एक बार फिर अपनी प्राकृतिक निर्लिप्ता, निर्विकारिता, निस्पृहता और निर्वेदता को प्राप्त हो जाता है।

इस निर्लिप्तता और निर्विकारिता का अबाध साम्राज्य यदि आप देखना चाहते हैं तो किसी भोले-भाले बच्चे के मुँह पर देखिये जिस पर न काम की काली छाया है और न क्रोध की गहरी पर्तें। लोभ और मोह के नाम से अभी परिचय नहीं हुआ, मद और मात्सर्य को अभी वे आँखें पहिचानती भी नहीं। वहाँ न अधिनायकवाद है और न सामंतवाद, वहाँ शुद्ध साम्यवाद है, सौम्यता है; सरलता है, सहज आत्मीयता है सभी के प्रति चाहे परिचित हो या अपरिचित। इसलिए श्रीदामा ने कृष्ण से कह दिया था—

"खेलन में को काको गुसइयाँ"

इसी निर्लिप्तता के कारण बच्चों को परमहंस की उपाधि दी जाती है और उन्हें साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप माना जाता है। जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने सदैव बच्चों को अपने हृदय से प्यार किया है। पं० जवाहरलाल नेहरू, जहाँ कहीं भी जाते बच्चों को देखकर आत्मविभोर हो जाते और उन्हें बड़े प्रेम से माला और गुलदस्ता देते, पुचकारते और गोदी में उठा लेते, यहाँ तक कि पं० नेहरू ने तो अपने जन्म दिवस को ही बाल-दिवस के रूप में परिवर्तित कर दिया था। वे कहा करते थे कि देश की असली निधि और वास्तविक समृद्धि तो देश के बच्चे हैं, ये वे कली हैं जो कल विकसित होकर अपने सौरभ से अपने मुल्क को तथा दूसरे मुल्कों को सौरभान्वित कर देंगे।

किसी भी देश या किसी भी राष्ट्र की भावी समृद्धि उस देश के बच्चों पर अवलम्बित होती है। यदि किसी देश के बच्चे भूखे हैं, नंगे हैं, बीमारियों से घिरे हैं, अशिक्षा के वातावरण में पल रहे हैं, तो वह देश निश्चित ही पतन के कगार पर है। विजेता देश विजित देश और जाति पर इसी प्रकार के हथकण्डे काम में लाता है जैसा कि अंग्रेजों ने भारत में किया था। दिनकर जी ने स्पष्ट लिखा है—

श्वानों को मिलता दूध यहाँ,
बच्चे भूखे बिलखाते हैं।

भारत में लाखों बच्चे हैजा, प्लेग, चेचक आदि महामारियों एवं तथाकथित

भीषण अकालों से काल कवलित हो जाते थे। भूकम्प और बाढ़ों की चपेटों में उन्हें अपनी जीवन-लीला समाप्त करनी पड़ती थी। न उनके लिये शिक्षा थी और न चिकित्सा, न पौष्टिक आहार था न स्वच्छ विहार।

विश्व के बालकों की उभरती हुई दुर्दशा को देखकर मानव कल्याण से सम्बन्धित यू० एन० ओ० की शाखा, उपशाखाओं ने इस ओर सराहनीय कार्य किया। देश विदेशों के बच्चों के लिये पौष्टिक आहार की योजना क्रियान्वित की गई। उन्हें साक्षर और स्वस्थ रखने के लिए अनेक उपाय किये गये हैं। तरह-तरह की बीमारियों से उन्हें बचाने के लिये विश्व स्वास्थ्य संगठन अनेक प्रकार की औषधियाँ विश्व के सभी देशों को भेजता था।

मानव कल्याण में रत विश्व के अनेक संगठनों एवं यू० एन० ओ० के विश्व कल्याण संगठनों के सत्प्रयासों एवं प्रेरणाओं से सन् १६७६, अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के रूप में मनाया गया। विश्व के सभी देशों में बाल कल्याणकारी योजनायें प्रारम्भ की गईं। भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में राजकीय स्तर पर मेलों और उत्सवों का आयोजन किया गया। शहर-शहर में विद्यालयों के छात्रों ने सामूहिक जुलूस निकाले, बालकल्याण से सम्बन्धित गोष्ठी और प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। लाखों बच्चों को रोग निरोधक टीके लगाये गये। प्रान्तों के शिक्षा विभागों ने बाल शिक्षा की प्रोन्नति के लिये अपने-अपने सक्रिय पग आगे बढ़ाये। मध्यावकाश में पौष्टिक अल्पाहार प्रदान किया जाने लगा तथा उनकी स्वास्थ्य-परीक्षा करके अच्छे स्वास्थ्य के लिये उपाय किये गये। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के उपलक्ष में ५ मार्च १६७६ को चार नये सिक्के भी जारी किये। भारत के उपराष्ट्रपति श्री जत्ती ने एक विशेष समारोह में इन सिक्कों को जारी किया, इनमें से दो पचास रुपये और दस रुपये के और दस पैसे और पाँच पैसे के थे। भारत ने बाल वर्ष के उपलक्ष में १४ वर्ष तक के अकिंचन, गरीब, बेसहारा तथा कमजोर वर्गों के बच्चों के लिए विशेष योजनायें बनाईं। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य भारत आदि राज्य सरकारों ने अपने-अपने राज्यों में शिशु सदनों, बाल सदनों, निकेतनों को स्थापित करने की घोषणायें कीं। शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों पर विशेष ध्यान देने की व्यवस्थायें की गईं। सभी विकलांग बच्चों को कृत्रिम अंग तथा शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए आर्थिक सहायता और छात्र-वृत्ति सुलभ करने की भी व्यवस्थाएँ की गईं। बाल अपराधियों के सुधार एवं पुनर्वास पर भी विशेष ध्यान देने की व्यवस्था की गई। प्रान्तीय सरकारों ने इस वर्ष बच्चों को रोग मुक्त कराने के लिए व्यापक स्तर पर अभियान चलाया।

क्या अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष मनाने से बालकों की समस्याओं का समाधान सम्भव है? क्या विभिन्न देशों में बड़े-बड़े समारोह मना लेने से या सम्पन्न घरानों के कुछ सजे-धजे बच्चों को पुरस्कार देने से या नेताओं द्वारा बड़े बड़े वक्तव्य देने से अथवा अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के नाम पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक निकाल देने से बच्चों का कल्याण हो सकेगा? इन प्रश्नों का उत्तर शून्य में आता है। आजकल विश्व में कितने बाल अनुमान भिन्न-भिन्न अभावों से ग्रसित हैं, कहा नहीं जा सकता है। अकेले भारत

में है। साढ़े तीन करोड़ बच्चे अपने मौलिक अधिकारों से वंचित हैं तथा नियमित या अनियमित रूप से वैध या अवैध कामों में लगे हुए हैं। १९७१ की जनगणना के अनुसार सबसे अधिक बाल मजदूर (१६·२७ लाख) आन्ध्र में थे, उसके बाद उत्तर प्रदेश में (१२·२७ लाख)। इन पर कितने अत्याचार होते हैं और कैसा अमानुषिक व्यवहार किया जाता है यह कोई पूछने वाला नहीं है। वयस्क श्रमिक अन्याय के विरुद्ध अदालतों में आ सकता है परन्तु बाल श्रमिक तो यह भी नहीं कर पाता। बच्चों के संरक्षकों को भी इस व्यवस्था में कोई आपत्ति नहीं होती क्योंकि वे भी भविष्य के आर्थिक दायित्व से मुक्ति पा जाते हैं। यह स्थिति केवल भारत में ही नहीं अपितु विश्व के सभी देशों में समान है।

१९७९ से २ वर्ष पहिले संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणा-पत्र में बालकों के मौलिक अधिकारों की घोषणा की थी। इनमें प्रमुख अधिकार इस प्रकार हैं—स्नेह, प्रेम और सद्भावना पाने का, पर्याप्त पोषण का, डॉक्टरी देख-भाल का, निःशुल्क शिक्षा का, खेल और मनोरंजन का, समाज के उपयोगी सदस्य बनाने का, व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास का, आदि। विश्व के बहुसंख्यक बच्चों के लिए ये अधिकार आज भी कल्पना की चीज बने हुए हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि समाज के उस वर्ग को जगाया जाए जो अपने बच्चों को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित रखता है। समझदार, समाज सेवी और बुद्धिजीवी व्यक्तियों का यह कर्त्तव्य है कि वे अधिक से अधिक यह प्रचार करें कि प्रत्येक बच्चे के कुछ मौलिक अधिकार होते हैं और अगर कोई माता-पिता वे मौलिक अधिकार अपने बच्चों को नहीं दे सकते तो वे अपने बच्चों के साथ अन्याय करते हैं। जन साधारण के मन में यह बात अच्छी तरह बैठा लेनी चाहिए कि यह उनका अतिरिक्त दायित्व है जो उन्हें स्वीकारने से पहिले अपनी सामर्थ्य पर भली-भाँति विचार कर लेना चाहिए। यह प्रचार केवल शहरों तक ही सीमित न रह कर शहरों और गाँवों में समान रूप से होना चाहिये। माता-पिताओं में जब तक यह जागृति उत्पन्न नहीं होगी तब तक बाल कल्याण कैसे सम्भव हो सकता है।

१. भारतीय वीरांगना—झांसी की रानी

भारतवर्ष त्याग और बलिदान की भूमि है। यहाँ जितना त्याग पुरुषों ने किया, उतना ही किसी न किसी रूप में नारियों ने भी। पुरुषों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्धों में प्राण दिए, तो स्त्रियों ने भी जौहर की ज्वाला में भस्मसात् होकर अपने अमूल्य बलिदानों का परिचय दिया। मातृभूमि की रक्षा के लिए किसी ने अपने भाई को सजाया, किसी ने अपने पति को। परन्तु ऐसे उदाहरण कम हैं, जिन्होंने स्वयं ही रणभूमि में स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने को हँसते हँसते चढ़ा दिया हो। ऐसी आदर्श महिलाओं में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई अग्रगण्य हैं। अपने देश से विदेशियों को बाहर निकालने के लिये उन्होंने घोर युद्ध किया। जिस स्वतन्त्रता रूपी मधुर फल का आज हम लोग आस्वादन कर रहे हैं, उसका बीजारोपण महारानी लक्ष्मीबाई ने ही किया था। स्वतन्त्रता संग्राम का श्रीगणेश झांसी की रानी के कर-कमलों में सम्पन्न हुआ था और इस पवित्र यज्ञ में प्रथम आहुति भी उन्होंने दी थी। भारतीयों के लिए उनका आदर्श जीवन अनुकरणीय है।

भारतीय वीरांगना—झांसी की रानी

१ प्रस्तावना।
२ बाल्यकाल।
३ विवाह और वैधव्य।
४ अंग्रेज़ों का विश्वासघात।
५ अंग्रेज़ों से युद्ध।
६ कालपी यात्रा।
७ अन्तिम युद्ध।
८ उपसंहार।

लक्ष्मीबाई के पिता का नाम मोरोपन्त और माता का नाम भागीरथी था। बालिका के जन्म के समय वे लोग काशी वास कर रहे थे, क्योंकि बाजीराव द्वितीय राजगद्दी से हटा दिये गये थे और वे बिठूर में रहकर अपना जीवन यापन कर रहे थे। सन् १८३५ में भागीरथी के गर्भ से एक कन्या ने जन्म लिया, जिसका नाम मनुबाई रक्खा गया। आगे चलकर ये ही लक्ष्मीबाई और झांसी की रानी हुई। जन्म के बाद, चार वर्ष बाद ही मनुबाई की माता का देहावसान हो गया, मोरोपन्त काशी से बिठूर लौट आये। मनुबाई के लालन पालन का सारा भार अब इन्हीं पर था। बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब और रावसाहब के साथ मनुबाई खेलती और पढ़ती थी। सभी इन्हें छबीली के नाम से पुकारते थे। पढ़ने और लिखने के साथ-साथ मनुबाई नाना साहब के साथ अस्त्र-शस्त्रों का भी अभ्यास करती किसी विशेष उद्देश्य से नहीं, केवल खेल के बहाने से ही, शस्त्रों के साथ घोड़े पर चढ़ना, नदी में तैरना, आदि गुण भी यथावत् सीख लिये थे। इस विषय में सुभद्रा जी ने लिखा है—

नाना के सङ्ग पढ़ती थी वह, नाना के सङ्ग खेली थी।
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी, उसकी सखी सहेली थीं॥

बिठूर के स्वतन्त्र वातावरण में बाजीराव पेशवा की स्वतन्त्रता से भरी हुई कहानियों ने उसके हृदय में स्वतन्त्रता के प्रति अगाध स्नेह उत्पन्न कर दिया था।

सन् १८४२ में मनुबाई का विवाह झांसी के अन्तिम पेशवा राजा गंगाधर राव के साथ हुआ। मनुबाई झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बन गई। राजमहलों में आनन्द

मनाए गए, प्रजा ने प्रसन्नता में घर-घर दीप जलाये। लक्ष्मीबाई प्रजा के सुख-दुःख का विशेष ध्यान रखती थीं, उन्होंने राजमाता के पद से अपनी प्रजा को कभी कष्ट नहीं होने दिया, फलस्वरूप प्रजा भी उन्हें प्राणों से अधिक चाहती थी। विवाह के नौ वर्ष बाद लक्ष्मीबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया।, गंगाधर राव प्रसन्नता में फूले न समाए, राजभवनों में शहनाइयाँ बज उठीं। परन्तु जन्म से तीन महीने बाद ही वह इकलौता पुत्र चल बसा। क्या पता था कि वह लक्ष्मीबाई की गोद को सदैव-सदैव के लिये सूनी करके जा रहा है। पुत्र वियोग में गंगाधर राव बीमार पड़ गये। अनेक उपचारों के बाद भी जब स्वस्थ न हुए, तब उन्होंने अंग्रेज एजेण्ट की उपस्थिति में ही दामोदर राव को अपना दत्तक पुत्र स्वीकार किया। रानी के ऊपर अभी विपत्ति के काले बादल मंडरा रहे थे। २१ नवम्बर, १८५३ को रानी का सौभाग्य सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया। किसे पता था कि इतने लाड़-प्यार से पली मनुबाई अट्ठाईस वर्ष की छोटी-सी अवस्था में ही वैधव्य का मुख देख लेगी। सारे राज्य में भयानक हाहाकार मच गया, राजभवन की चीत्कार सुनकर जनता का हृदय विदीर्ण होने लगा, परन्तु विधाता की गति के सामने किसकी इच्छा चलती है।

गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात् झांसी की रानी को असहाय और अनाथ समझ कर अंग्रेजो की स्वार्थलिप्सा भड़क उठी। वे अपने साम्राज्य विस्तार के चक्कर में थे। उन्होंने दत्तक पुत्र को अपने एक-पत्र में अवैधानिक घोषित कर दिया और रानी को झांसी छोड़ने की आज्ञा हुई। परन्तु लक्ष्मीबाई ने स्पष्ट उत्तर भेज दिया कि "झाँसी मेरी है, मैं प्राण रहते इसे नहीं छोड़ सकती।"

रानी ने विचार किया कि अंग्रेज कूटनीतिज्ञ हैं। इनके साथ कूटनीति से ही काम लेना चाहिये। रानी ने पाँच हजार रुपये पेन्शन के रूप में स्वीकार कर लिये और गुप्त रूप से अपने शक्ति-संचय में लग गई। लक्ष्मीबाई ने स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम में श्रीगणेश के लिए जो तिथि और समय नियत किया, दुर्भाग्य से उस समय से पूर्व ही समस्त भारत में विद्रोह आरम्भ हो गया, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई प्रमुख रूप से परन्तु गुप्त नीति से उनका संचालन कर रही थी। जगह-जगह पर अंग्रेज कटने लगे, सर्वत्र शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ गई।. धीरे-धीरे अंग्रेजों ने देशव्यापी विद्रोह को काबू में किया, परन्तु आग धधकती रही, उपद्रव पूर्णरूप से शान्त नहीं हुये।

सन् १८५८ आरम्भ हो चुका था। ह्यू रोज ने झाँसी की ओर प्रस्थान किया, झाँसी की रानी पहले से ही पूर्ण प्रबन्ध किये हुए तैयार बैठी थी। अंग्रेज उन्हें साधारण स्त्री समझ बैठे थे। उन्हें क्या पता था कि वह साधारण स्त्री उनके दांत खट्टे कर देगी। पच्चीस मार्च को घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ओर से गोलियों की बौछारें होने लगीं। कभी तोपों से गोले दागे जाते। रानी अपनी सेना के साथ दुर्ग में थी और बड़ी सतर्कता और तत्परता से दुर्ग की रक्षा कर रही थी, रानी के तोपची धड़ाधड़ अंग्रेजों को उड़ा रहे थे। शत्रुओं के पैर कांपने लगे थे, परन्तु उनके पास अत्यधिक शक्ति थी, अतः वे पीछे न हटे। युद्ध होता रहा, पर ३१ मार्च तक अंग्रेज रानी के दुर्ग पर अधिकार न कर सके। लक्ष्मीबाई ने वीर तांत्या टोपे से सहायता की याचना की, वह भी ठीक समय पर आ पहुँचा, दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध होने लगा। एक न एक विश्वासघाती देशद्रोही हर जगह रहता है दूल्हा जी सरदार, जो कि दुर्ग के दक्षिण द्वार पर था, अंग्रेजों से मिल गया। उसने अंग्रेज सैनिक दुर्ग के कोठे पर चढ़ा लिये। दुर्ग में भयानक मारकाट होने लगी। रानी ने एक बार अपने गढ़ के कोठे पर से अपनी प्यारी झाँसी को देखा और अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव को लेकर किले से बाहर निकल

बाई। विदेशियों ने रानी को पकड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु शत्रुओं का विध्वंस करती हुई लक्ष्मीबाई आगे बढ़ती चली गई, किसी के हाथ न आई। श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने उनकी रणचातुरी का वर्णन इस प्रकार किया है—

"रानी थी या दुर्गा थी, या स्वयं वीरता की अवतार।
देख मराठे पुलकित होते, उसकी तलवारों के वार॥"

अंग्रेज वॉकर उनका निरंतर पीछा कर रहा था, दूसरे दिन उसने भंडारे में रानी को जा घेरा, रानी ने उसे बुरी तरह घायल करके वहीं डाल दिया और स्वयं आगे बढ़ गई। एक दिन और एक रात निरन्तर चलते-चलते रानी कालपी पहुंची, तभी उनके प्यारे घोड़े ने अपना दम तोड़ दिया। रानी ने उसकी वहां अन्त्येष्टि क्रिया की। अब रानी के सामने कालपी की रक्षा का प्रश्न था। अंग्रेज वहां भी पहुंच गए, गोलाबारी होने लगी। चौबीस को कालपी पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। महारानी लक्ष्मीबाई तथा राव साहब वहां से भी भाग निकले और सीधे ग्वालियर पहुंचे और उस पर अधिकार कर लेने का निश्चय किया। ग्वालियर के राजा सिंधियाराव पहले से अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। ग्वालियर में रानी का अंग्रेजों से घमासान युद्ध हुआ, खून की नदियां बहने लगी। अकेली लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। जबकि रानी अपने घोड़े पर बैठे हुये एक नाला पार कर रही थी तभी एक अंग्रेज ने पीछे से आकर रानी पर प्रहार किया, जिससे उनके शरीर का समस्त दक्षिण भाग कट गया। इसके तुरंत पश्चात् उसने उनके सीने पर एक और प्रहार किया। परंतु इसी दशा में उन्होंने अपने शत्रु के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और स्वयं भी स्वर्ग सिधार गई। शरीरांत होते ही उनके एक प्रिय सेवक ने उनके मृत शरीर में अग्नि लगा दी जिससे शत्रु उनके शरीर को स्पर्श करके अपवित्र न कर सके। युद्ध समाप्त हो गया, झांसी और कालपी पर यूनियन जैक फहराने लगा, ग्वालियर तो पहले से ही उनके अधिकार में था।

महारानी लक्ष्मीबाई ने देश को स्वतंत्रता का अमर सन्देश दिया। स्वतंत्रता की बलिवेदी पर स्वयम् बलिदान होकर भारतीयों के लिये एक आदर्श-पथ प्रशस्त किया। उनका त्याग और बलिदानपूर्ण जीवन भारतीयों के लिए आज भी अनुकरणीय है। जिस स्वतंत्रता संग्राम का बीजारोपण महारानी लक्ष्मीबाई ने किया था, १५ अगस्त सन् ४७ को वही वृक्ष फल के भार से झुक उठा। उनके जीवन की एक-एक घटना आज भी भारतीयों में नव-स्फूर्ति और नव चेतना का संचार कर रही है। आज उनकी यशोगाथा हमारे लिए उनके जीवन से अधिक मूल्यवान है।

बढ़ जाता है मान वीर का, रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की, भस्म यथा सोने से॥

२. समाज सुधारक—महर्षि दयानन्द

भारतवर्ष के राजनैतिक तथा धार्मिक उत्थान में भारत के प्रदेश गुजरात ने भी सदैव अपना सहयोग दिया है। वैसे तो वीर जननी उत्तर प्रदेश की पुण्य भूमि है, परन्तु गुजरात भी कुछ कम नहीं। महात्मा गांधी, सरदार पटेल ये दोनों ही महापुरुष गुजरात में उत्पन्न हुये थे पर ये दोनों राजनैतिक गुत्थियों को सुलझाने वाले थे। धार्मिक क्षेत्र में इनमें से किसी ने भी तथा अन्यों ने भी कोई स्तुत्य कार्य नहीं किया। देश की राजनैतिक

चेतना के साथ-साथ सांस्कृतिक या धार्मिक भावनाओं एवं हिन्दी के उत्थान में अपना बलिष्ठ कन्धा लगाने वालों में महर्षि दयानन्द का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। वह समाज सुधारक तथा आर्य संस्कृति के रक्षक थे। आज से पूर्व के महापुरुषों ने अपने प्राणपण से आर्य-संस्कृति की रक्षा की और उसके उत्थान में महत्वपूर्ण योग दिया। महर्षि दयानन्द ने जनता को अनुद्योग, आलस्य अकर्मण्यता के स्थान पर उद्योग, परिश्रम और कर्मण्यता का पाठ पढ़ाया। धार्मिक कृत्यों में प्राचीन विचारधारा के स्थान पर तथा आडम्बरपूर्ण अर्चना के स्थान पर नवीन मानसिक पूजा को महत्व दिया। रूढ़िवाद की पुरातन छिन्न-भिन्न शृंखलाओं को नष्ट करके जनता को धर्म के मूल तत्वों को समझाया। जाति वैषम्य, अस्पृश्यता और भेद-भाव को दूर किया। दुःखी हिन्दू जनता, ईसाई और मुस्लिम धर्म में परिवर्तित होती जा रही थी। हिन्दू जाति का एक बहुत बड़ा भाग धर्म परिवर्तन कर भी चुका था। महर्षि दयानन्द ने जातिवाद और वैषम्य की विषाक्त विचारधाराओं को समाज में से जड़ सहित उखाड़ फेंक देने का सबल प्रयत्न किया। इन्होंने हिन्दू धर्म में पर्याप्त संशोधन उपस्थित किये। ईसाई मिशनरियों से टक्कर ली। इन सब बातों के अतिरिक्त देश की स्वतन्त्रता के महान् उद्घोषकों में भी दयानन्द जी का प्रमुख स्थान है।

समाज सुधारक—महर्षि दयानन्द

१. प्रस्तावना।
२. तत्कालीन परिस्थितियां।
३. जन्म तथा शिक्षा।
४. धार्मिक भावना विचार।
५. सत्य की खोज, प्रसार, देश सेवा।
६. उपसंहार।

महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव सन् १८२४ में गुजरात प्रान्त के मोरवी राज्य के टंकारा नामक गाँव में हुआ था। कोई-कोई इन्हें दयाल भी कह देते थे। इनके पिता का नाम कर्षन जी था। वे गांव के बड़े जमींदार थे, परिवार सम्पन्न था। सनातन धर्म की पद्धति के अनुसार बालक मूलशंकर का पांच वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार तथा विद्यारम्भ संस्कार कराया गया। संस्कृत की शिक्षा से आपके अध्ययन का श्रीगणेश हुआ। प्रारम्भ में अमरकोष और लघु कौमुदी आदि संस्कृत के ग्रन्थ याद कराये गये, यजुर्वेद की कुछ ऋचायें भी कंठस्थ कराई गईं। प्रारम्भ से ही व्युत्पन्न बुद्धि होने के कारण थोड़े से ही समय में इन्होंने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

महर्षि दयानन्द के पिता प्राचीन विचारों के पोषक थे, वे शैव थे। परिवार में शिवजी की उपासना होती थी। बालक मूलशंकर की आयु लगभग १२ वर्ष की होगी। शिवरात्रि का महापर्व आया। शैव सम्प्रदाय वालों के लिये यह दिन विशेष महत्व का होता है। पारिवारिक प्रथा के अनुसार इन्होंने भी सारे दिन व्रत रक्खा और रात्रि को रात्रि-जागरण किया, शिवलिंग के निकट बैठे-बैठे जप करते रहे, जैसे परिवार के अन्य व्यक्ति कर रहे थे। अर्धरात्रि के समय इन्होंने देखा कि एक चूहा आया और शिवलिंग पर आकर बैठ गया। वह कभी चढ़ता और कभी उतरता, कभी रक्खे हुये भोग को खाता। वह विचित्र विस्मय में पड़ गये, सोचने लगे कि शिव तो अत्यन्त शक्तिशाली हैं, सारे विश्व का सृजन और संहार करते हैं, क्या वे इस चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर सकते हैं? उसी दिन से उन्हें मूर्ति पूजा के प्रति अनास्था हो गई, हृदय में विचार विद्रोह होने लगा। बात तो साधारण थी, परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर देखने से प्रतीत होता है कि इसका बड़ा महत्व था, क्योंकि जनता में अन्धविश्वास और अंधभक्ति थी। उनको युगों-युगों की विचारधारा के विरुद्ध एक शब्द भी कहना बड़ा

कठिन था, साधारण व्यक्ति के वश की बात नहीं थी ।

इस घटना के दो वर्ष बाद इनकी बहिन की मृत्यु हो गई । बहिन की मृत्यु ने इनके हृदय में संसार के प्रति अरुचि उत्पन्न कर दी । इनकी दृष्टि के सामने सदैव संसार की अस्थिरता, नश्वरता और क्षणभंगुरता नृत्य करने लगी । अपने तर्कों के आधार पर संसार को प्रिय लगने वाली माया, विष प्रतीत होने लगी । अपने पुत्र में संसार के प्रति बढ़ती हुई घृणा को देखकर पिता चिन्तित हो उठे और इन्हें विवाह के बन्धन में बाँधने का निश्चय कर लिया । एक दिन, घर में मंगल गीत हो रहे थे, बाजे बज रहे थे, सभी लोग मूलशंकर के विवाह की खुशी मना रहे थे । आप रात्रि को घर से निकल भागे । पैदल चलते-चलते आप अहमदाबाद आए, फिर कुछ दिन तक बड़ौदा रहे । नर्मदा के किनारे अनेक विद्वान् साधु सन्यासियों की सत्संगति प्राप्त करते हुये आप ज्ञानार्जन में व्यस्त हो गये । उन्हें अधिकांश सन्यासी पाखण्डी और ढोंगी मिले । सन् १८६० में वह मथुरा पहुंचे । वहां स्वामी विरजानन्द जी से इनकी भेंट हुई, स्वामी जी नेत्रों से अन्धे थे, फिर भी इन्हें वेद, व्याकरण, ज्ञान और वैराग्य की शिक्षा देने लगे । स्वामी विरजानन्द जी को भी देश में फैले हुये पाखण्डों के कारण बड़ा कष्ट होता था । दयानन्द की शिक्षा-दीक्षा समाप्त होने के पश्चात् उन्होंने आज्ञा दी कि तुम देश में वैदिक धर्म का प्रचार करो, जनता के हृदय-पटल से अन्धकार को दूर करके वेदों की मर्यादा की रक्षा करो ।

गुरु की आज्ञानुसार वे वैदिक धर्म के प्रचार में लग गए । उनके पास उस समय न बाहुबल था, न धन-बल, न संस्था थी न सभा, केवल बुद्धिबल था । उन दिनों हरिद्वार में कुम्भ का मेला हो रहा था । वहाँ जाकर उन्होंने 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' लगाकर जनता को धर्म के गूढ़ रहस्यों को बताया । कुम्भ में यद्यपि उनको विशेष सफलता नहीं मिली, परन्तु फिर भी धीरे-धीरे उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई । दयानन्द जी को शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था, वे लोगों से शास्त्रार्थ करते थे । उन दिनों देश में शास्त्रार्थों का प्रचलन था । दो विभिन्न सिद्धान्तों के मानने वाले विद्वान् आपस में शास्त्रार्थ करते थे, जो विजयी हो जाता था, जनता उसकी बात मान लेती थी । दयानन्द अनेक शास्त्रार्थों में विजयी हुए । काशी, विद्वानों का गढ़ था, स्वामी दयानन्द जी के वहाँ पर भी कई शास्त्रार्थ हुए । दयानन्द जी की धूम सारे देश में मच गई ।

वह समय सामाजिक चेतना का समय था और राजा राममोहन राय सती प्रथा के विरुद्ध तथा विधवा विवाह के पक्ष में आन्दोलन कर रहे थे, दूसरी ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्त्री शिक्षा के लिए प्रयत्नशील थे, स्वामी दयानन्द समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए प्रयत्नशील थे । एक ओर उन्होंने अन्ध विश्वास, पाखण्ड और मूर्ति-पूजा का विरोध किया, दूसरी ओर छुआ छूत और बाल विवाह को दूर करने तथा स्त्री शिक्षा एवं विधवा विवाह को प्रोत्साहन देने के लिए आन्दोलन किये । सन् १८७५ में उन्होंने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की, आर्य समाज के सिद्धान्तों का देश में तेज़ी से प्रचार और प्रसार होने लगा ।

देश के प्रायः सभी बड़े-बड़े नगरों में आर्य समाज मन्दिरों की स्थापना हो गई । आर्य समाज ने सर्वप्रथम स्त्रियों की अशिक्षा दूर करने की आवाज उठाई । स्वामी दयानन्द जी ने स्वयं गुजराती होते हुए अपने सिद्धान्तों का प्रचार हिन्दी भाषा में किया, इससे हिन्दी की वृद्धि हुई, पंजाब जैसा उर्दू भाषी प्रान्त भी हिन्दी में रुचि लेने लगा । हिन्दी भाषा इसके लिए सदैव दयानन्द जी की ऋणी रहेगी ।

भारतीय अपना स्वाभिमान खोते जा रहे थे । विदेशी सभ्यता, संस्कृति और

शिक्षा प्राप्त करने में अपने को गौरवशाली समझते थे तथा अपनी भारतीय प्राचीन संस्कृति को क्षुद्र। दयानन्द जी ने वेदों और संस्कृत साहित्य के अध्ययन पर बल दिया, अपने पूर्वजों के प्रति महान् श्रद्धा और निष्ठा जागृत की। ईसाई पादरी अपने मत का प्रचार करने में संलग्न थे, उन्हें शासन द्वारा बल मिला हुआ था। दयानन्द जी ने उनके बढ़ते हुए प्रभावों को रोका, उन्हें मुँह तोड़ उत्तर दिए, शास्त्रार्थों में पराजित किया और वैदिक धर्म की महानता सिद्ध कर दी। इसी का विस्तृत विश्लेषण उनके ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" में है। दयानन्द जी के अथक प्रयासों से जनता विधर्मियों के बहकावे से बच गई। दयानन्द जी के धर्म-प्रचार की यह विशेषता थी कि पढ़े-लिखे विद्वान लोग उनके धर्म से प्रभावित हुए। उन्होंने विद्वानों से टक्करें ली, बुद्धि की कसौटी पर उनके विचार खरे उतरे। उनसे पूर्व भी अनेक धर्म-प्रचारक और समाज-सुधारक हुए : उन्होंने पहले अशिक्षित जनता के हृदय को स्पर्श किया। इसके पश्चात् वे आगे बढ़े। परन्तु दयानन्द जी के आर्य समाज को पहले शिक्षितों ने अपनाया फिर अशिक्षितों ने. कहने का तात्पर्य यह है कि स्वामी जी के आर्य समाज और उन सिद्धान्तों का आधार बुद्धिवादी था। उन बातों को तर्क और व्यापार की कसौटी पर कस कर देख लिया गया था। शिक्षा प्रसार में भी स्वामी दयानन्द ने अमूल्य योगदान दिया। आपने समस्त भारत में डी० ए० वी० हाई स्कूल स्थापित कराये।

स्वामी जी स्वतन्त्रता का मूल्य समझते थे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि अपना बुरे से बुरा शासन भी अच्छा, और पराया, अच्छे से अच्छा शासन भी बुरा है। सामाजिक, नैतिक और धार्मिक उत्थान के पश्चात् वे राजनीतिक क्षेत्र में सुधार करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि पहले देशी रियासतों के सभी राजाओं को संगठित किया जाये तब कोई आगे ठोस कदम उठाया जाए। यह पवित्र कार्य उन्होंने प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु विधाता की इच्छा और ही थी, इन्हें संसार छोड़कर जाना पड़ा।

एक बार स्वामी जी को जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। स्वामी जी गए, बड़ी श्रद्धा से स्वागत किया गया। दूसरे दिन नगर की जनता के समक्ष आपका भाषण हुआ। महाराजा कई बार स्वामी जी के दर्शनों के लिए आए। एक दिन राजा ने स्वामी जी को राजमहल मे आमन्त्रित किया। राजा के पास वैश्या बैठी हुई थी। स्वामी जी को यह देखकर अत्यन्त खेद हुआ। उन्होंने कहा " राजन् ! क्षत्रिय वीर कुमार को यह शोभा नहीं देता, वैश्या जगह-जगह पर भटकने वाली कुतिया के समान है।" इसी प्रकार के अन्य तिरस्कारपूर्ण शब्द वैश्या की उपस्थिति में ही राजा से कहे। वैश्या को बहुत बुरा लगा। उसके हृदय में प्रतिशोध की अग्नि भड़क उठी तथा अपना रास्ता साफ करने को उसने रसोइया से मिलकर भोजन में विष मिलवा दिया। सारे शरीर में विष फैल गया, बहुत उपचार किये गये परन्तु स्वामी जी स्वस्थ न हुए, कुछ रोगों ने स्थायी रूप से अपनी जड़ जमा ली। महाराज जसवन्तसिंह उन्हे आबू पर्वत पर ले गये। बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखाया गया पर कोई लाभ नहीं हुआ। महाराजा बहुत खिन्न हुए परन्तु स्वामी जी ने उन्हे लौटा दिया। अन्त में दीपावली के दिन आपने अपने सभी शिष्यों को बुलाकर कहा कि "आज मेरा संसार से प्रस्थान का दिन है, तुम लोग अपने-अपने कर्तव्यों पर रहना, संसार में संयोग और वियोग का होना स्वाभाविक है।" इतना कहकर वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए स्वामी जी ने अपना नाशवान शरीर छोड़ दिया।

हिन्दू जाति पर स्वामी जी के इतने उपकार हैं कि वह उनसे कभी उऋण नहीं हो सकती।

३. राष्ट्रपिता—महात्मा गाँधी

अंग्रेजों की शोषण नीति और असह्य परतन्त्रता से भारतवर्ष को मुक्त कराने में अनेक महापुरुषों ने अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार योगदान दिया। आदरणीय लोकमान्य तिलक, श्रद्धेय मालवीय जी, पूज्य बापू, क्रान्ति दूत सुभाष, आदि स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानायक थे, जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया। कांग्रेस के बाल्यकाल में ही आपस में फूट पड़ी, दो दल बन गये, एक नरम दल और दूसरा गरम दल। नरम दल की बागडोर गाँधी जी के हाथ में आई। भारतवर्ष की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए गाँधी जी ने जीवन भर प्रयत्न किये, और उन्होंने भारतवर्ष को स्वतन्त्र कराया।

गाँधी जी का पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गाँधी था। इनके पिता करमचन्द किसी समय पोरबन्दर के दीवान थे, फिर बाद में राजकोट के दीवान रहे। इनकी माता का नाम पुतलीबाई था, जो एक साध्वी स्त्री थी। सदैव पूजा-पाठ में व्यस्त रहती थीं। वर्षा ऋतु के चार महीनों में वे चातुर्मास्य व्रत रखतीं, अस्वस्थ होने पर भी व्रत नहीं छोड़ती थीं। २ अक्टूबर सन् १८६९ ई० को पोरबन्दर में बालक मोहनदास का इसी परिवार में जन्म हुआ। इनका बाल्यकाल पोरबन्दर में ही व्यतीत हुआ। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें राजकोट की देहाती पाठशाला में दाखिल कराया गया, पाँच वर्ष तक ये वहाँ पढ़ते रहे। जैसा कि गाँधी जी ने स्वयं लिखा है। बालक मोहनदास में बचपन में कुछ दुर्गुण भी थे, बुद्धि भी इतनी तीव्र न थी। कौन जानता था कि यह भोला भाला बालक एक दिन राष्ट्र को इतना सम्मान प्रदान कराएगा कि जनता उसे बापू कहने लगेगी। वे माता पिता के भक्त थे। १८८५ में आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। सन् १८८७ में आपने मैट्रिक परीक्षा पास की। सन् १८८८ में बैरिस्ट्री पढ़ने आप विलायत चले गए और १८९१ में आप बैरिस्ट्री पास करके भारत लौट आए।

महात्मा गाँधी

१ प्रस्तावना।
२ जन्म, शिक्षा।
३ दक्षिणी अफ्रीका में।
४ भारत में विभिन्न आन्दोलनों में।
५ मृत्यु।
६. उपसंहार।

आपने बम्बई में वकालत प्रारम्भ की परन्तु विशेष सफलता न मिली। [illegible] की एक फर्म का अफ्रीका में मुकदमा चल रहा था। उसकी भारतीय [illegible] नालिश थी, उसमें वकील होकर आप अफ्रीका गए। सिर पर पगड़ी [illegible] अदालत में गए, वहाँ आपसे पगड़ी उतारने को कहा, सच्चे भारतीय की भाँति आपने अपनी पगड़ी की रक्षा की, आप बाहर आ गए। रेल, घोड़ा गाड़ी, होटल सभी जगह आपका अपमान किया गया, किन्तु आप अपने मिशन में लगे रहे। इसी प्रकार वहाँ रहने वाले भारतीयों के साथ भी होता था। अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों का पक्ष लेकर आपने आन्दोलन चलाया, आन्दोलन में आपको सफलता मिली और गाँधी जी को [illegible] प्राप्त हुआ कि वहाँ भारतीयों के सम्मान की रक्षा होने लगी।

भारतवर्ष लौटकर यहाँ की राजनीति में गाँधी जी ने भाग लेना आरम्भ किया। १९१४ में प्रथम युद्ध में गाँधी जी ने अंग्रेजों की सहायता की क्योंकि अंग्रेजों ने वचन दिया था कि युद्ध में विजयी होने पर हम भारत को स्वतन्त्र कर देंगे, परन्तु बाद उन्होंने

हुई। युद्ध में विजयी होने पर अंग्रेजों ने रौलट एक्ट तथा पंजाब की रोमांचकारी जलियाँवाला बाग काण्ड की घटना पुरस्कार के रूप में प्रदान की।

इसके पश्चात् १९१९ और १९२० में गाँधी जी ने आन्दोलन आरम्भ किया परिणामस्वरूप वे जेल भेजे गए। १९३० में देशव्यापी नमक आन्दोलन का संचालन किया। १९३१ में आपको गोलमेज कांफ्रेंस में आमन्त्रित किया गया। गाँधी जी विलायत गये और बड़ी विद्वता से भारत के पक्ष का समर्थन किया। १९३८ में भारत सरकार ने कांग्रेसियों को अपने-अपने प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बनाने की आज्ञा दे दी। गाँधी जी की सहमति से सभी प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बने। १९३९ में अंग्रेजों ने भारतीयों की बिना राय लिए हुए ही भारत को महायुद्ध में सम्मिलित राष्ट्र घोषित कर दिया। प्रथम महायुद्ध में गाँधी जी ने अंग्रेजों की दिल खोल कर सहायता की थी इस आश्वासन के ऊपर कि भारत को स्वतन्त्र कर देंगे, परन्तु उसका प्रतिफल बड़ा भयानक हुआ था। अतः इस बार गाँधी जी ने सहायता के विषय में स्पष्ट मना कर दिया कि तब तक आपकी सहायता न करेंगे, जब तक कि आप हमें पूर्ण स्वतन्त्र न कर दें, इस प्रकार महायुद्ध में अंग्रेजों की कोई सहायता नहीं की गई।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर विश्व की राजनैतिक स्थिति बहुत बदल गई थी। युद्ध से पूर्व ब्रिटेन को संसार की सबसे बड़ी शक्ति समझा जाता था, परन्तु अब उसकी स्थिति दूसरी थी। वह पहले नम्बर से अब तीसरे नम्बर पर आ चुका था। भारतवर्ष में १९४२ के "भारत छोड़ो" आन्दोलन तथा आजाद हिन्द के बलिदान के कारण प्रबल राजनैतिक जागृति हो गई थी। १९४२ का आन्दोलन साधारण आन्दोलन नहीं था। गाँधी जी तथा समस्त नेताओं को जेल में बन्दी बना देने के फलस्वरूप देश की समस्त जनता ने भयंकर रूप धारण कर लिया। अंग्रेजी शासन की नींव डगमगा उठी। किसी-किसी स्थान पर तो ऐसा लगता था मानो अंग्रेजी सरकार रही ही नहीं। विदेशी समझ गये कि अब भारतीयों पर शासन करना आसान खेल नहीं। उन्होंने भारत को छोड़ जाने में ही अपना कल्याण समझा। १५ अगस्त, १९४७ को भारतवर्ष स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया गया। भारतवर्ष दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया गया। गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन देश हित में ही लगा। उन्होंने अपना समस्त सुख देश के लिये बलिदान कर दिया था। एक साधारण सी लंगोटी धारण कर वे अपना जीवन बिताते थे। उनका रहन-सहन बहुत ही साधारण था। देश में फैले साम्प्रदायिक विष को शान्त करने के लिये उन्होंने नोआखाली की यात्रा की तथा दिल्ली में उपद्रव रोकने के लिए आमरण अनशन तक की घोषणा कर दी। ३० जनवरी, १९४८ की शाम को जब गाँधी जी अपनी प्रार्थना सभा में जा रहे थे तब नाथूराम गोडसे नामक व्यक्ति ने पिस्तौल की ३ गोलियाँ चलाकर उनकी हत्या कर दी। सारा देश शोकाकुल हो उठा। जिधर देखिये उधर लोग रेडियो पर कान लगाए बैठे थे और आँखों से आँसू बहा रहे थे। लोगों ने ऐसा अनुभव किया कि मानो उनके घर के किसी मनुष्य की मृत्यु हो गई हो। मृत्यु के कुछ ही क्षणों के बाद रेडियो पर पण्डित नेहरू ने बड़े दुःख से भरे गद्गद् कण्ठ से भाषण दिया। जनता के आँसू और भी अधिक बहने लगे। पं० नेहरू का स्वयं का हृदय भी भरा हुआ था। संसार के समस्त झण्डे झुका दिये गये। श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। लाखों व्यक्ति श्मशान यात्रा में सम्मिलित हुए। गाँधी जी के अन्तिम दर्शन के लिए देश के सभी भागों से जो जैसा बैठा था वैसे ही दिल्ली के लिये चल दिया।

गाँधी जी भारतवर्ष के महान् नेता थे, स्वतन्त्रता संग्राम में उन्होंने भारतीय जनता का नेतृत्व किया। भारत माता की परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने के लिये उन्होंने जीवन भर यातनायें सहीं, परन्तु पग पीछे न हटाया। साथ ही साथ वे उत्तम विचारक और श्रेष्ठ समाज सुधारक भी थे। वे समाज की बहुत-सी छिपी हुई कमियों को समाज के सामने लाये तथा उन्हें दूर करने का पूर्ण प्रयत्न किया। महात्मा बुद्ध की दया और अहिंसा, दयानन्द के सत्य और अछूतोद्धार के पवित्र नियमों पर वे स्वयम् चले और दूसरों को भी चलाया। गांधी जी ने समाज की बहुमुखी सेवा की। निःसन्देह भारतवर्ष उनका ऋणी है और चिर ऋणी रहेगा।

२ अक्टूबर, १९६९ तक गाँधी जी के आविर्भाव काल को सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। अतः समस्त विश्व में गाँधी शताब्दी समारोहों का आयोजन किया गया था। भारतवर्ष में यह समारोह पूरे एक वर्ष तक मनाया गया। २ अक्टूबर, १९६९ से पूरे वर्ष सरकारी स्तर पर तथा निजी स्तर पर विभिन्न आयोजन आयोजित किए गए थे। गाँधी विचारधारा पर नवीन मौलिक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ तथा देश विदेशों में गाँधी साहित्य का प्रचार एवं प्रसार किया गया। गाँधी जी की अमृतमयी वाणी को प्रतिदिन आकाशवाणी से भारतीयों के कर्ण कुहरों में उंडेला गया, जिससे कि देशवासी कुछ ग्रहण कर सकें पर खेद है कि हम तब भी और अब भी ज्यों के त्यों हैं, हम वही ग्रहण करते हैं जिससे हमारा कुछ उल्लू सीधा होता है।

४. जनमानस की अमूल्य निधि—पण्डित जवाहरलाल नेहरू और उनका महाप्रयाण

देश में छिहत्तर करोड़ नर नारियों की आँखें आज भी डबडबाई हुई हैं जब चाहती हैं, तब बरस पड़ती हैं, शोकाकुल हृदय की वेदना जब चाहती है, कराह उठती है। हाथ, पैर, मन और मस्तिष्क शक्तिहीन से प्रतीत होते हैं। हृदय शून्य है और शून्य हृदय की आह अपने हृदय सम्राट के स्मरण में आज भी उत्तरोत्तर भयानकता उत्पन्न करती जा रही है। महलों से लेकर फूस की झोंपड़ियों तक में वही सिसकियाँ, वही कराहट और वही आह। साधारण व्यक्ति से लेकर महान् विचारक तक, वही वेदना की एक चिन्ता, अपने हृदय मन्दिर के देवता का नाम, उसी जनमानस की अमूल्य निधि के असंख्य गुणों का संकीर्तन और उसके अनन्त अभाव में विचार मग्न दशा और चीख-चीत्कार। शत शत जातियों और उपजातियों में, धर्मों और उपधर्मों में विभक्त इस विशाल देश का अब क्या होगा? किसकी भुजाओं में शक्ति है, जो प्रबल झंझावतों और भयानक थपेड़ों से बचाते हुए भारत की नौका की पतवार अपने हाथ में लेकर उसे सुरक्षित तट पर पहुँचा दे। असहाय और अनाथ बालक की भाँति यह आज परमुखापेक्षी है। उसका दिव्यतम प्रकाश पुन्ज, उसकी अद्वितीय कलानिधि, उसका सजग प्रहरी, उसका अमूल्य रत्न-जटित मुकुट, विधाता के क्रूर करों ने सदा सदा के लिए छीन लिया। अपने रक्त और स्वेद से सींचकर और अविरल परिश्रम में व्यस्त, भारत के हरे भरे, हँसते और मुस्कराते उद्यान का वह कर्मठ और तपस्वी, माली आज अनन्त निद्रा में शयन कर चुका है। वह हिमालय जिसने उत्तर में ही नहीं, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण चारों दिशाओं में भारत के लिये ललकारा, वह कैसे गतिहीन हो गया, भारत की जनता का विश्वास

नहीं आता। जिसके संकेतों पर असंख्य भारतीयों ने अपनी आत्माहुति दी; क्या उसने भी स्वयम् अपनी पूर्णाहुति दे दी? अब क्या होगा?

चार दिन के विश्राम के लिये २३ मई १९६४ को भारत के हृदय-सम्राट नेहरू, इन्दिरा जी के साथ देहरादून गये थे। बड़े आनन्द के साथ वे वहाँ सर्किट हाउस में रहे। अपने पुराने साथी, महाराष्ट्र के भूतपूर्व राज्यपाल श्रीप्रकाश जी को अपने यहाँ बुलाया और स्वयम् उनको पहुँचाने उनके घर तक गए, उनके नये बनते हुए कुटीर को देखा, प्रशंसा की और बहुत से प्रश्नों में एक प्रश्न यह भी पूछा कि "आजकल कौन-कौन सी किताबें पढ़ रहे हो?" २६ मई तक छुट्टियाँ समाप्त हो रही थीं, उस महान् कर्मयोगी को अपने कार्य पर आना था फौजी पोलो ग्राउण्ड पर उमड़ी हुई जनता ने अपने प्रिय नेता को विदाई दी। नेहरू पहिले जब कभी. देहरादून सर्किट हाउस में ठहरते थे, चलते समय वहाँ की विजिटर्स बुक में देहरादून की जनता की खुशहाली और उन्नति के लिए कुछ न कुछ सम्मति लिख आते थे परन्तु अब की बार उन्होंने कोई सम्मति नहीं लिखी, केवल इतना लिखा कि "मैं उन लोगों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे हर प्रकार से आराम पहुँचाने की कोशिश की।" शाम को प्रधानमन्त्री दिल्ली आ गये। रात्री का भोजन किया फिर काम पर जुट गये। रात्रि का तत्कालीन स्वराष्ट्र मन्त्री श्री नन्दा से भेंट के समय कहा कि "मैंने अपनी समस्त फाइलें और कागज निबटा दिये हैं।" प्रातःकाल प्रधानमन्त्री प्रसन्न मुद्रा मे उठे, हजामत बनाई और स्नान किया। ६ बजकर २० मिनट पर उन्हे हमसे छीनकर दूर ले जाने वाला दिल का दौरा पड़ा। इससे पूर्व उन्होंने पीठ में दर्द की शिकायत की थी। तुरन्त डाक्टर बुलाये गये। दिल के दौरे ने प्रधानमन्त्री को मूर्च्छित कर दिया था। जीवन-रक्षा के सभी सम्भव उपाय किये गये, ऑक्सीजन की व्यवस्था की गई, पर कुछ लाभ न हुआ। उनकी एकमात्र पुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने पिता की प्राण रक्षा के लिए एक बोतल खून भी दिया, उन्होंने कहा—पापा के लिए मुझसे अच्छा खून किसी का नहीं हो सकता, इसलिए मेरा ही खून लिया जाए परन्तु राष्ट्रनायक पर विधाता की क्रूर दृष्टि थी, वह तो उसी दिन व्यंग्य से मुस्करा दिया था, जब देहरादून जाने से पाँच दिन पूर्व प्रेस कॉन्फ्रेंस में अपने उत्तराधिकारी के सम्बन्ध मे प्रश्न का उत्तर देते हुए नेहरू ने कहा था "मेरे जीवन का अन्त इतनी जल्दी नहीं होगा।" मूर्छा के तुरन्त बाद राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति को सूचना दी गई, केन्द्रीय मन्त्रियों को सूचना मिली। प्रधानमन्त्री की बीमारी की सूचना बैठक शुरू होते ही ११ बजे दोनों सदनों को दी गई। संसद सदस्य हृदय थामे हुए अपने प्रिय प्रधानमन्त्री को देखने के लिए आये

जनमानस की अमूल्य निधि
पंडित जवाहर लाल नेहरू
और उनका महाप्रयाण

१. प्रस्तावना।
२. महाप्रयाण।
३. शवयात्रा।
४. अस्थि-विसर्जन।
५. भस्म-विसर्जन।
६. अपार शोक—
   (क) भारत में।
   (ख) विश्व में।
७. प्रारम्भिक जीवन।
८. शिक्षा।
९. राष्ट्रीय जीवन।
१०. सत्याग्रह आन्दोलन में राजनीतिक नेता, उच्च-कोटि के लेखक, वक्ता, विश्वशान्ति।
११. देश की असह्य क्षति।
१२. उपसंहार।

लगे। पौने बारह बजे उनकी हालत तेजी से बिगड़ने लगी, डेढ़ बजे डाक्टरों ने उनके जीवन की आशा छोड़ दी। दो बजे इस बिखरे हुये देश को एकता के सूत्र में बाँधने वाला सूत्रधार, जिसने कहा था "अगर मेरे बाद कुछ लोग मेरे बारे में सोचें तो मैं चाहूँगा कि वे कहें—वह एक ऐसा आदमी था, जो अपने पूरे दिल और दिमाग से हिन्दुस्तानियों से मुहब्बत करता था और हिन्दुस्तानी भी उसकी कमियों को भुलाकर उसको बेहद, बेइन्तहा मुहब्बत करते थे।" भारतीयों को असहाय एवम् अनाथ बनाकर पूर्ण ब्रह्म में विलीन हो गया। कुछ ही क्षण में आकाशवाणी द्वारा यह दुःखद समाचार समस्त विश्व में फैल गया। भारत में जिसने भी सुना वह आह भरकर रो पड़ा, टप्-टप् आँसू टपकने लगे, लोग एक हाथ से अपने सीने दबाये और दूसरे हाथ से आँसू पोंछते हुए आपस में कहते—विश्वास नहीं होता इस खबर पर, क्या आपने भी सुना है ? अब क्या होगा इस देश का। किसान, मजदूर, व्यापारी, नौकर, अध्यापक, वकील, राजे-रईस, यहाँ तक कि द्वार-द्वार माँगने वाले भिखारी भी दहाड़ मारकर रो उठे, आँख पोंछते हुए वृद्ध लोग आपस में चर्चा करते—क्या आज वास्तव में सबका प्यारा जवाहर चल बसा और उसकी साँसें छोर से चलने लगतीं। तीव्र वायु की भाँति भारत की झोंपड़ी-झोंपड़ी में यह समाचार कुछ ही समय में फैल गया। असीम दुःख के कारण जनता विह्वल हो उठी, कारोबार एकदम बिना किसी घोषणा के बन्द कर दिए। भारत का प्रत्येक नगर, प्रत्येक कस्बा और प्रत्येक गाँव शोकाकुल था। समस्त भारत पर काल की कालिमापूर्ण छाया छायी हुई थी। सूर्य लज्जा, ग्लानि और दुःख से आकाश में छिपा हुआ था। भूकम्प आया, धरती हिली और भयानक तूफान, मानो प्रकृति भी अपनी असहाय वेदना प्रकट कर रही हो। वह दिल्ली, जिसमें जवाहर एक दिन दूल्हा बनकर आए थे, आज अपने प्यारे जवाहर के अन्तिम दर्शनों के लिए तीनमूर्ति स्थित प्रधानमन्त्री निवास की ओर उमड़ चली। सड़कें भरी हुई चल रही थीं पर शोकाकुल, मौन और आँखों में आँसू संजोये। घरों में स्त्रियाँ, बच्चे, वृद्ध सभी शोकग्रस्त थे। भारत में लाखों घरों में शाम को चूल्हे तक न जले, लोगों ने भोजन छोड़ दिया। प्रधानमन्त्री भवन के बाहर लाखों लोग इस प्रतीक्षा में खड़े थे कि राष्ट्र के देवता के अन्तिम दर्शन हो जायें। चढ़ाने के लिये किसी के हाथ में फूल थे, तो किसी के हाथ में सूत की माला, किसी के हाथों में चन्दन था तो कोई केवल हाथ जोड़े आह भर रहा था। हजारों लोग महात्मा गाँधी का प्रिय भजन 'रघुपति राघव राजा राम' गा रहे थे। भवन के भीतर गीता, रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों का पाठ हो रहा था। वेदपाठी ऋचाओं का उच्चारण कर रहे थे। समस्त देश और समस्त विश्व के राष्ट्रध्वज झुका दिए गये थे। सन्ध्या का अन्धकार बढ़ता जा रहा था, उसी के साथ साथ शोक की गहनता भी बढ़ती जा रही थी, पेड़ों के पत्ते गिर रहे थे और आकाश से तारे। आँसू और आँधी ने जन-जन की नेत्र गति अवरुद्ध कर दी थी। एक अजीब भयानक वातावरण देश पर छाया हुआ था। क्यों न छाता, आज एक महान् दिव्य आत्मा जो यहाँ से चल बसी थी।

२७ मई १९६४ की सन्ध्या के आठ बजे से लेकर २८ मई के मध्याह्न १ बजे तक भारत के करोड़ों व्यक्तियों ने दूर-दूर से दिल्ली आकर अपने प्रिय नेता के दर्शन किए, उन्हें अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित की। प्यारे जवाहर का देहावसान यद्यपि उनके निवास की प्रथम मंजिल के उनके शयनकक्ष में हुआ था, परन्तु उमड़ी हुई जनता की आकांक्षापूर्ति के लिए उनका शव तिरंगे राष्ट्रीय ध्वज में लपेट कर उनकी कोठी के दरवाजे पर विराजमान किया गया था। उनके शव पर संसार भर के राष्ट्रध्वजों की ओर से बस

चढ़ाये गये। शव-यात्रा में सम्मिलित होने के लिए ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री सर एलेक डगलस ह्यूम, श्रीलंका की तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती भण्डारनायके, रूस के प्रथम उप-प्रधानमन्त्री श्री अलेक्सी कोसीगिन, ईरान के स्वराष्ट्र मन्त्री, नेपाल के मन्त्री परिषद् के अध्यक्ष डा० तुलसीगिरी, फ्रांस के राज्य वित्तमन्त्री श्री लुई, यूगोस्लाविया के प्रधान मन्त्री श्री सम्बोलिच, ब्रिटिश महारानी के प्रतिनिधि लार्ड माउन्टबेटन, पाकिस्तान के पर-राष्ट्र मन्त्री श्री भुट्टो, अमेरिका के विदेशमन्त्री श्री डीन रस्क आदि अनेक राष्ट्रों के प्रतिनिधि आए हुए थे। त्रिमूर्ति के प्रधानमन्त्री निवास-स्थान से शव-यात्रा सवा बजे प्रारम्भ हुई। लाखों व्याकुल नर-नारियों की भीड़ से होता हुआ शवयात्रा की जुलूस ६ मील लम्बे मार्ग को तय करके दाह-संस्कार के लिए नियत स्थान पर ठीक सवा चार बजे पहुँचा। श्री नेहरू का तिरंगे झण्डे से ढका हुआ शरीर गेंदा, गुलाब और मोतिया के रंग-बिरंगे फूलों से लदी तोपगाड़ी पर था। तोपगाड़ी को तीनों सेनाओं के आठ सैनिक खींच रहे थे। अर्थी के पीछे राष्ट्रपति के अङ्गरक्षक, तीनों सेनाओं के अध्यक्ष, इसके बाद नेहरू परिवार के शोक-संतप्त सदस्य तथा नेतागण थे। जुलूस का नेतृत्व दिल्ली और राजस्थान के क्षेत्रीय सेनापति श्री भगवतीसिंह ने किया। श्री नेहरू का मुख अन्तिम दर्शनों के लिये खुला हुआ था। ठीक सवा चार बजे अन्तिम यात्रा शान्तिघाट पहुँची। यह स्थान यमुना तट पर राजघाट से ३०० गज उत्तर में है। राजघाट पर महात्मा गांधी की समाधि है। शान्ति घाट पर "१० मन चन्दन की लकड़ी से चिता बनाई गई थी, २५ सेर शुद्ध घी तथा सामग्री का प्रबन्ध था। चार बजकर पैंतीस मिनट पर प्रधान-मन्त्री का शव चिता पर रख दिया गया, असंख्य जनता चीत्कार कर उठी, सैंकड़ों मूर्च्छित हुये और कई मर गये। ४ बजकर ३७ मिनट पर तीनों सेनाध्यक्षों ने पूरे सम्मान के साथ राष्ट्रध्वज हटा लिया, मन्त्रोच्चारण के साथ शव पर गंगा-जल छिड़का गया और श्री नेहरू के दूसरे दौहित्र श्री संजय ने पुरोहितों के मन्त्रोच्चारण के साथ कपूर जलाकर चिता प्रज्वलित कर दी। अग्नि धाँय-धाँय कर जलने लगी और लोग "जवाहर लाल नेहरू अमर हो" "चाचा नेहरू जिन्दाबाद" के नारे लगाकर फूट-फूट कर रोते रहे।

श्री नेहरू की अस्थियाँ, भारत के समस्त प्रान्तों को अपने यहाँ की नदियों में प्रवाहित करने के लिये जिससे कि समस्त देश की जनता अपने प्रिय नेता को अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि समर्पित कर सके, प्रदान की गईं। समस्त मुख्य मन्त्रियों ने अपने-अपने प्रान्तों में पूर्ण सैनिक सम्मान के साथ, भाव और आंसू भरे लाखों जनसमूह के बीच, अपने पं० नेहरू की अस्थियों और पवित्र भस्म को विसर्जित किया। अस्थि-विसर्जन कार्यक्रम से पूर्व, प्रधानमन्त्री की अस्थियों का एक कलश उनके निवास स्थान पर अशोक वृक्ष के नीचे ३० मई से ७ जून तक उनके प्रिय सोफे पर रखा रहा। प्रातः से संध्या तक श्रद्धालु जनता का ताँता बँधा रहता, लोग आते और पण्डित जी को श्रद्धा सहित अन्तिम प्रणाम करते और मौन हो चले जाते। यह वही वृक्ष और पण्डित जी का प्रिय सोफा था, जिसके नीचे बैठकर विश्व का यह महान् राजनीतिज्ञ दार्शनिक देश-विदेश की गहनतम समस्याओं पर एकान्त में विचार किया करता था। अस्थि-विसर्जन का मुख्य संस्कार पण्डित नेहरू की इच्छानुसार इलाहाबाद में गंगा-यमुना और सरस्वती के पवित्र संगम पर हुआ। ७ जून को नई दिल्ली से एक स्पेशल ट्रेन द्वारा ये अस्थियाँ प्रयाग ले जायी गईं। यह ट्रेन विशेष रूप से फूलों से सजाई गई थी, अस्थि कलश को रखने का विशेष प्रबन्ध था जिससे प्रत्येक स्टेशन पर दर्शनों के लिये उत्सुक जनता सरलता से अपनी श्रद्धांजलि भेंट कर सके। प्रातः ६ बजकर २५ मिनट पर अस्थि कलश लेकर तोपगाड़ी प्रधानमन्त्री के निवास से नई दिल्ली स्टेशन के लिये रवाना हुई। मार्ग के

दोनों ओर खड़े व्यक्तियों ने पण्डित नेहरू का जय-जयकार किया। जुलूस का नेतृत्व सेना के तीनों अंगों के प्रधान कर रहे थे। तोपगाड़ी तीनमूर्ति, विजय चौक, राजपथ, जनपथ और कनाट प्लेस होती हुई नई दिल्ली स्टेशन पर पहुँची। हजारों व्यक्तियों ने स्टेशन पर अपने प्रिय नेता के अन्तिम दर्शन किये। नई दिल्ली से प्रयाग तक के बीच के सभी स्टेशनों पर गाड़ी आधा आधा घण्टा रुकी, कानपुर में दो घण्टे रुकी। गाड़ी जहाँ भी रुकी अपार जन-समूह वहीं खड़ा मिला, अपने प्रिय नेता की अस्थियों के ही दर्शन करने के लिये। प्रत्येक स्टेशन पर दर्शनार्थियों ने आवेश में रेलवे की समस्त सीमाओं का उल्लंघन कर दिया।

८ जून को प्रात पाँच बजे अस्थि-कलश लेकर जब विशेष रेल प्रयाग पहुँची तो शोक-विह्वल जनता अपने प्यारे नेता को इस रूप मे देखकर बरबस रो पड़ी। कलश को रास्ते में आनन्द भवन ले जाया गया, यह अत्यन्त करुणाजनक दृश्य था। आनन्द भवन ने, जो श्री नेहरू के परिवार के राजनीतिक जीवन का महत्वपूर्ण साथी रहा है, आज अपने स्वामी का इस रूप में स्वागत किया। कलश को वहाँ भवन के बरामदे में परिक्रमा करके एक गुलमोहर वृक्ष की छाया में रखा गया, जहाँ समस्त परिवार के व्यक्तियों ने प्रार्थना की। इसके पश्चात् जुलूस संगम के पवित्र तट पर पहुँचा। श्री नेहरू के दौहित्र राजीव और संजय ने जैसे ही पुण्यसलिला गंगा में अपने नाना की भस्मी प्रवाहित की, वैसे ही इलाहाबाद के ऐतिहासिक किले की प्राचीर से दिवंगत प्रिय नेता के सम्मान में दागी गई तोप का घोष दिशाओं में गूंज उठा। साथ ही मौन, श्रद्धानत खड़े दस लाख शोकार्त नर-नारियों के कण्ठ से 'जवाहरलाल अमर रहे' की ध्वनि गूंज उठी। श्री नेहरू ने अपनी वसीयत में गंगा को भारत की सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक बताया है। एक भावुक और पत्नीनिष्ठ की भाँति श्री नेहरू ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कमला नेहरू की भस्म जिनका देहावसान १९३६ में हुआ था, एक मंजूषा (डिबिया) में युगों से सजोकर रखी थी और दूसरी में मातृ-भक्त पुत्र ने अपनी माँ स्वरूप-रानी की। उनकी अंतिम स्मृति पण्डित जी के साथ-साथ गंगा में विसर्जित की गई, प्रयागराज के संगम पर यह भी अपूर्व संगम था।

स्वर्गीय नेहरू को भारत कितना प्रिय था और वे भारतवासियों से कितना स्नेह करते थे, यह उनकी लिखी हुई अद्वितीय एवं आदर्श वसीयत से स्पष्ट हो जाता है। वे जब तक जीवित रहे, उन्होंने प्रत्येक क्षण भारत की सेवा और उन्नति के अथक प्रयासों में ही व्यतीत किया। मृत्यु के बाद भी वे इसकी मिट्टी के कण-कण में मिल जाना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि उनके शरीर की राख भी व्यर्थ न जाये, उसका भी भारत के खेतों में खाद रूप में उपयोग हो और उनकी वह अंग बन जाये।

१२ जून ६४ को पण्डित नेहरू की भस्म उनकी अन्तिम इच्छानुसार उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक खेतों, खलिहानों, पहाड़ियों और घाटियों पर बिखेर दी गई और वह भारत के कण-कण का अभिन्न अंग बन गई। यह कार्य भारतीय वायु सेना को सौंपा गया था। भस्म बिखेरने के लिये २० स्थान निश्चित किये गये थे। इन स्थानों पर विमानों और हैलीकोप्टरों द्वारा प्रधानमन्त्री की पवित्र भस्म बिखेर दिया गया। उनकी भस्म को कश्मीर से पहलगाँव ले जाने वाले वायुयान में श्रीमती इन्दिरा गाँधी थी और अहमदनगर के किले के पास बिखेरने वाले विमान में श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित।

पण्डित नेहरू के निधन से भारत को कितना दुःख हुआ यह अवर्णनातीत है। कोई समाज, कोई संस्था, कोई संघ, कोई सभा, कोई प्रतिष्ठान, कोई पत्री, कोई नेता और

यहाँ तक कि पैंतालीस करोड़ व्यक्तियों में कोई ऐसा नहीं था, जिसका हृदय फूटकर शतशः विदीर्ण न हुआ हो, जिसने सिसकियाँ न भरी हों और जिसकी आँखों ने आँसू न बहाए हों। बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ, महान् से महान् आलोचक, गम्भीर से गम्भीर विचारक दहाड़ मार कर रो उठे अपने प्यारे नेहरू के निधन को सुनकर। भारत का गाँव-गाँव निःशब्द चीत्कार कर उठा। बारह दिनों का राजकीय शोक तो नियमानुकूल मनाया ही गया, परन्तु वास्तव मे देखा जाए तो वह शोक अनन्त था, आज भी है और युगों तक रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति चाहे गरीब हो या अमीर, आज भी यही अनुभव कर रहा है, जैसे उसके घर का ही कोई परमप्रिय चल बसा हो। आज भी वह मुँह छिपाकर अपने देश के कर्णधार की याद करके रो लेता है। महात्मा गाँधी के निधन पर जनता इतनी हताश और सन्तप्त नहीं हुई थी वह अपने प्रिय जवाहर को देखकर गाँधी को भी भूल गई, पर आज उसे गाँधी और जवाहर जैसे कर्णधार कोसों दूर तक दिखाई नहीं देते।

पं० नेहरू का जन्म प्रयाग मे १४ नवम्बर १८८९ में हुआ था। इनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू इलाहाबाद के उच्च कोटि के वकीलों में से थे। यद्यपि वे ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे, फिर भी उनके कठोर कार्यों से क्षत्रियता प्रकट होती थी। वे पाश्चात्य और पौर्वात्य सभ्यता के अद्भुत सम्मिश्रण थे। वे बुद्धिवादी विधि-विशेषज्ञ थे। भावुकता और कल्पना उनसे बहुत दूर थी। वे एक अदम्य, स्वाभिमानी और सनम्र बुद्धिवादी थे। वे अपने साहस और बुद्धिबल के अडिग विश्वासी थे। भारतवर्ष के प्रमुख कानून-विशेषज्ञों में उनकी गणना थी। पं० मोतीलाल नेहरू को मानसिक और भौतिक समृद्धि के समस्त साधन उपलब्ध थे। पिता और परिवार की इस उत्तम पृष्ठभूमि में जवाहरलाल के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था। पं० जवाहरलाल जी ने अपने पिता के विषय में स्वयं लिखा है कि "वे किसी ऐसे आन्दोलन में भाग नहीं लेना चाहते थे, जिसमें उन्हें किसी दूसरे के इशारों पर नाचना पड़ता हो। मै उनसे डरता भी बहुत था, नौकर-चाकरों पर और दूसरों पर बिगड़ते हुए उन्हें मैंने देखा था, उस समय वे बहुत भयंकर मालूम होते थे और मैं मारे डर के काँपने लगता था।" जवाहरलाल की देख-रेख का सारा प्रबन्ध एक शिक्षित अंग्रेजी महिला पर था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा एक अंग्रेज मास्टर द्वारा घर पर ही हुई। जब जवाहरलाल चौदह वर्ष के हुए, तब पं० मोतीलाल जी का झुकाव अपने योग्य पुत्र की ओर हुआ। सन् १९०५ में ये जवाहरलाल को इंग्लैंड में ले गये और वहाँ हैरो के विख्यात विद्यालय मे इनका नाम लिखा दिया गया। राजा महाराजाओं के बच्चों के साथ जवाहरलाल की प्रारम्भिक शिक्षा हुई, इसके पश्चात् ये कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गए। सात वर्ष तक विलायत में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् सन् १९१२ में बैरिस्ट्री पास करके जवाहरलाल भारतवर्ष लौटे।

देश की राजनीति में उस समय गोपालकृष्ण गोखले तथा लोकमान्य तिलक का नाम विशेष आदर से लिया जाता था। विलायत से लौटकर जवाहरलाल भी देश की राजनीति में भाग लेने लगे। प्रारम्भ मे जवाहरलाल जी के विचार अत्यन्त उग्र थे। प्रथम महायुद्ध समाप्त होते ही भारतीय राजनीति ने एक नवीन दिशा बदली। १९१९ के रोलट एक्ट और पंजाब के जलियाँवाला बाग काण्ड ने जवाहरलाल जी को राजनीति में प्रवेश करने का आमन्त्रण दिया। आपने गाँधी जी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। उस समय से अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक पं० नेहरू ने अनेक बार जेल यात्रायें कीं, असह्य यातनायें सहीं। परन्तु वे निर्भीकतापूर्वक अपने स्थान पर अडिग रहे। देश के भाग्य पर अनेक बार भयंकर आपत्तियाँ आयीं, परन्तु उन्होंने सबका बड़े साहस और धैर्य से तथा शान्तिपूर्ण प्रयत्नों से सामना किया।

लाहौर में पवित्र-सलिला रावी के पुनीत तट पर १९२९ में अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन में प० नेहरू को सर्वसम्मति से प्रथम बार अध्यक्ष बनाया गया था। उन्हीं की अध्यक्षता में भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास हुआ। इसके पश्चात् नेहरू जी की लोकप्रियता और मान-मर्यादा उत्तरोत्तर बढ़ती गई और उन्होंने समस्त भारतीयों के हृदय-राज्य पर अधिकार कर लिया चाहे वह किसी धर्म और किसी सम्प्रदाय का क्यो न हो।

जब १९२० में देश में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, प० नेहरू बड़े प्रसन्न हो उठे, उन्होंने इसमे भाग लिया। इस आन्दोलन में अवध के किसानो ने बडा भाग लिया। तभी से ये जनता के निकट सम्पर्क में आए। जनता की सगठन-शक्ति से परिचित हुए, इसी आन्दोलन में इन्हें सर्वप्रथम जेल जाना पडा। प० नेहरू के ही आग्रह से सन् १९२८ में कलकत्ते वाले कांग्रेस अधिवेशन में अंग्रेजों को एक वर्ष के भीतर औपनिवेशिक स्वराज्य देने की चुनौती दी गई। परन्तु अंग्रेजी सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। अगले वर्ष १९२९ में लाहौर में प० नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पास किया गया। सम्पूर्ण देश में स्वाधीनता दिवस मनाया गया। १९३० में नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण उन्हें फिर जेल में बन्द कर दिया गया। देश में आन्दोलन उग्र रूप धारण कर चुका था। जब ये जेल से मुक्त हुए, उसके आठवें दिन इन्हें अठारह महीने के कारावास की आज्ञा हुई। "गाधी इरविन समझौता" होने पर इन्हें छोड दिया गया। अब प० नेहरू शात होने वाले नहीं थे। जेल से आते ही उत्तर प्रदेश में किसान आन्दोलन का नेतृत्व आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप इन्हें फिर जेल जाना पडा। इस बार छ महीने की सजा मिली। इसके पश्चात् कलकत्ते में राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में इन्हें दो वर्ष की जेल यात्रा फिर मिल गई। अब की बार जब जेल से बाहर आए, तो इनकी पत्नी श्रीमती कमला नेहरू का दीर्घकालीन अस्वस्थता के उपरान्त स्वर्गवास हो चुका था। १९३६ और ३७ में क्रमश: लखनऊ और फैजपुर कांग्रेस अधिवेशनों में उन्होंने अध्यक्ष पद सुशोभित किया। सन् १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। भारतीयो की सलाह के बिना ही अंग्रेजो ने भारतवर्ष को युद्ध के लिए सम्मिलित राष्ट्र घोषित कर दिया। सरकार की इस नीति की प० नेहरू ने बडी कटु आलोचना की और समस्त देश में इसके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हो गया। जनता ने जवाहर के स्वर में स्वर मिलाया। फलस्वरूप अंग्रेजो ने इन्हें पुन राजद्रोह के अपराध में चार वर्ष के लिए कारावास का दण्ड दे दिया। सारा देश क्षुब्ध हो उठा, चारों ओर विद्रोह, लूट, आग लगाने की घटनायें होने लगी। रेल की पटरियाँ उखाड़ कर फेंक दी गईं, थाने और डाकखाने जलाकर भस्म कर दिये गए, तार टेलीफोन का कोई पता नहीं रहा। लाल पगडियाँ आसमान में उड़ने लगीं। अंग्रेजो ने भी बडी कठोरता से सन् ४२ के आन्दोलन का दमन करना प्रारम्भ किया, परन्तु यह दमन, अग्नि में आहुति का काम करने लगा। भीषण हाहाकार के पश्चात् १५ जून सन् ४५ को प० नेहरू को छोड दिया गया। वह इनकी नवीं जेल यात्रा थी। आते ही उन्होंने आजाद हिन्द फौज के सिपाहियो को छुडाने का महान् प्रयत्न किया, सरकार को उन्हें छोड़ना पड़ा क्योंकि नेहरू और भारतीय जनता में कोई भेद नहीं था। अंग्रेजों ने घबराकर २ सितम्बर १९४६ को भारत में एक अन्तरिम सरकार की स्थापना की, जिसके प० नेहरू प्रधानमन्त्री नियुक्त हुए। इसके पश्चात् देश में अंग्रेजो ने साम्प्रदायिक उपद्रव प्रारम्भ कर दिये। चारों ओर भयानक अराजकता छा गई, मनुष्य-मनुष्य के प्राणों से खेलने लगा। देश का विभाजन हुआ। प० नेहरू ने बड़ी से बड़ी कठिनाई और समस्याओं को

३ ने मजबूत कन्धों पर सहा। नेहरू जी गणतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री हुए, ग .न रो गहन समस्याओं को बड़ी बुद्धिमानी से सुलझाते हुए भारत को पूर्ण समृद्धिशाली बनाने में लगे रहे। सन् १९४७ में ही उन्होंने अन्तर एशियाई सम्मेलन किया, जिसका सभापतित्व आपको ही दिया गया।

पं० नेहरू अद्वितीय राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ एक उच्च कोटि के लेखक भी थे। विश्व साहित्य आपकी रचनाओं से पढ़ने को गौरवान्वित समझता है। आपके कई ग्रन्थ, जैसे डिस्कवरी ऑफ इण्डिया या पंडित जी की स्वयं की जीवनी, संसार के सभी भागों में बड़ी रुचि और श्रद्धा के साथ पढ़ी जाती है। बड़े-बड़े विद्वान उनकी लिखी हुई पंक्तियों पर मनन करते हैं। वे मौलिक शैली के लेखक होने के अतिरिक्त करोड़ों जनता को मन्त्र-मुग्ध कर देने वाले वक्ता भी थे। सिद्धान्त भेद रखने वाले व्यक्ति भी आपके भाषण के बाद आपकी हाँ मे हाँ बिना मिलाए नही रह सकते थे।

पं० नेहरू एक अन्तर्राष्ट्रीय महापुरुष थे। विश्व राजनीति के रंगमंच पर उन्होंने जहाँ एशिया के दस देशों के मुक्तिदाता का कार्य किया, वहाँ अपनी तटस्थता की नीति, मानवता और विश्वशान्ति के स्वर से उन देशों को भी विनाश के गर्त से बचा लिया, जो पारस्परिक सन्देह और भय के वशीभूत होकर युद्ध के कगार तक पहुँच गये थे। विश्व भर में वे शान्ति दूत के नाम से विख्यात थे। पुर्तगाल को छोड़कर विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश हो, जहाँ इस महामानव के निधन पर शोक प्रकट न किया गया हो। संसार के समस्त राष्ट्राध्यक्षों ने श्रीमती गाँधी तथा राष्ट्रपति को संवेदना-संदेश भेजे। विश्व के राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने उनकी शव-यात्रा में भाग लिया, उनके अन्तिम दर्शन करके पुष्पांजलि समर्पित की।

नेहरू जी एशिया के प्रेरणा स्रोत थे। उन्होंने एशिया को नई दिशा दी, नई रोशनी में नया सन्देश दिया। एशियाई देशों की संस्कृति, सभ्यता और परम्पराओं की रक्षा करने के लिए नेहरू जी उतने ही चिन्तित रहते थे, जितने भारत के लिए। उन्होंने समस्त एशिया के लिए एक ऐसा अस्तित्व प्रदान किया, जिसे यह महाद्वीप, यूरोप की प्रभुसत्ता के कारण भूल गया था। आज नेहरू के अभाव में समस्त एशिया शोक से चीख उठा, मानो उसका शक्ति-स्रोत सूख गया हो। नेहरू के चले जाने से एशिया के लोगों ने एक ऐसे नेता को खो दिया, जिसने उनके दुख-दर्द को समझा और समय पड़ने पर सही सम्मति दी। समस्त एशिया और यूरोप के देशों ने मिलकर एक स्वर से यही कहा—कि अब शान्ति का विश्व दूत और दासता का मुक्तिदाता संसार में नहीं रहा।

श्री नेहरू के निधन से राष्ट्र को जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति युगों तक न हो सकेगी। ऐसे युगपुरुष संसार में मानव-कल्याण के लिए यदा-कदा ही उत्पन्न होते हैं। श्री नेहरू आधी शताब्दी से भी अधिक भारतीय जन-जीवन, समाज और राष्ट्रों पर छाए रहे, उनका कुछ भी अपने लिए न था। सब कुछ समाज और राष्ट्र के लिए अर्पित था। श्री नेहरू ने अनेक रूपों में जनता की सेवा की। वे सफल साहित्यकार थे, दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ थे, तत्त्वदर्शी साधक थे, मर्मज्ञ राष्ट्रचिन्तक थे, युग-पुरुष दासता के मुक्ति-दाता थे और वे युग-निर्माता, युग सृष्टा। उनके जीवन के प्रमुख साथी थे अभय और साहस। वे चाहते तो सफल बैरिस्टर बनकर सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बन सकते थे, वे चाहते तो संसार के महान् प्रसिद्ध लेखक हो सकते थे। वे चाहते तो धनी पिता के उत्तराधिकारी के रूप में आनन्द भवन में विलास और विनोद कर सकते थे, वे

चाहते तो तत्कालीन ब्रिटिश सरकार से समझौता करके उच्च पद प्राप्त कर सकते थे, परन्तु उन्होंने सभी सुख एवं सुविधाओं को लात मार दी। तन, मन, धन से जनता-जनार्दन की सेवा को ही अपना जीवन धर्म बनाया। निरन्तर तीस वर्षों तक वे ब्रिटिश शासन से जूझते रहे भारत को मुक्ति प्रदान कराने के लिये। जेलों में अनन्त यातनायें और ताडनायें सही, अपनी आँखों के आगे अपने घर और वैभव को बरबाद होते देखा, परन्तु अपने पुनीत पथ का परित्याग नहीं किया, तभी तो देश का बच्चा-बच्चा भी "जवाहरलाल की जय" बोलने लगा था। यह था "दासता के मुक्तिदाता" नेहरू का प्रथम-स्वरूप। उनका द्वितीय महान् स्वरूप इस भारत की डगमगाती नौका को मजबूती से साधे हुये, तूफानों से बचाते हुये किनारे पर लाने का था, जिसे "आधुनिक भारत का निर्माता" कहा जाता है। नेहरू ने अपने १७ वर्ष के प्रधानमन्त्रित्व काल में अपनी शक्ति और सामर्थ्य से भी अधिक भारत की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये कार्य किया। इतिहास इसे कभी नहीं भुला सकता। नेहरू कहा करते थे—

"मुझे इसकी कतई चिन्ता नहीं है कि मेरे बाद दूसरे लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे। मेरे लिए तो बस इतना ही काफी है कि मैंने अपने को, अपनी ताकत और क्षमता को भारत की सेवा में लगा दिया।"

कुछ दिनों से सम्भवतः उन्हें अपने जीवन के अन्त का कुछ अनुभव होने लगा था, इसी कारण से उन्होंने और भी अधिक कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। पिछले एक वर्ष से उन्होंने अपनी मेज पर, अपने हाथ से, पैड पर अमेरिकी कवि रोबर्ट फ्रास्ट की निम्नलिखित कविता लिख रखी थी। यह पैड एक साल से उनकी मेज पर रखा रहता था जिस पर वे काम करते थे। इन पंक्तियों से उन्हें प्रेरणा मिलती थी। पंक्तियों का अनुवाद इस प्रकार है—

"जंगल प्यारे हैं, घनेरे और अंधेरे।
लेकिन मैंने वायदे किये थे, जो पूरे करने हैं।
और अभी मीलों दूर का, सफर करना है।
दूर जाना है, सोने से पहले, दूर, मीलों दूर॥"

उनका तीसरा महान् स्वरूप "एशिया का प्रेरणा स्रोत एवं जागरण का महान् उद्घोषक" था। आज समस्त एशिया के राष्ट्र अपने को असहाय-सा पा रहे हैं, ऐसा अनुभव करते हैं, मानो उनकी वाणी ही समाप्त हो गई हो। चौथा श्री नेहरू का महानतम स्वरूप 'विश्व-नेता' का था। वे समस्त विश्व में शान्ति दूत बन गये थे, विश्व की समस्त जनता उनके सामने झुकती थी, विश्व के बड़े से बड़े राष्ट्राध्यक्ष नेहरू के मुख से निकले एक एक वाक्य पर घण्टों विचार करते थे और कान लगाकर सुनते थे कि अब क्या कहेगा यह महामानव, यह युगपुरुष, जिसमें शान्ति, सहअस्तित्व, मानवता, स्वतन्त्रता न्यायप्रियता, तटस्थता, सत्यता, प्रेम और अहिंसा आदि सिद्धान्त केन्द्रीभूत थे। उस विराट व्यक्तित्व के प्रति विश्व एक कोने से दूसरे कोने तक श्रद्धायुक्त नमन कर रहा है।

विश्व से किसी का मित्र गया, किसी का साथी गया और किसी का सलाहकार गया, परन्तु भारत से क्या गया? उसका सब कुछ चला गया, आज उसकी कमर टूट चुकी है। श्री नेहरू का अनोखा आकर्षक व्यक्तित्व था। उसके सामने किसका साहस था, जो सिर उठा सके, चाहे वह देश का हो या विदेश का। पैंतालीस करोड़ नर-नारी, अपने जवाहर के हाथों अपनी बागडोर सौंपकर आराम से सोते थे और

कह देते थे जो करेंगे ठीक है। उन्होंने इस राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों की श्रेणी में स्पृहणीय स्थान प्रदान कराने के लिये राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में नवीन मापदण्ड स्थापित किये। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का सर्वसम्माननीय तटस्थ रूप और राष्ट्रीय क्षेत्र में लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय और समृद्धि की ओर बढ़ते चरण उन्हीं के अथक प्रयासों का परिणाम है। उनकी सहिष्णुता और विवेक ने देश की अनेक बार संकट से रक्षा की। उन्होंने व्यवहार के ऐसे मापदण्ड स्थापित किये, जो चिरकाल तक इस देश के लिए आदर्श बने रहेंगे। आज नेहरू-युग समाप्त हो चुका है, देश के नागरिकों ने और नये नेताओं ने नेहरू के पद-चिन्हों पर चलने की शपथ ली है। यदि देश के कर्णधार उसी पर चलते रहे, तो देश सदैव आगे बढ़ता रहेगा, अन्यथा देश की सुरक्षा और स्वतन्त्रता संकट में पड़ जायेगी क्योंकि गाँधीजी का उत्तराधिकारी अब नहीं रहा—

"जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा। उसका कहना है कि मेरी जुबान नहीं समझता और वह एक ऐसी भाषा बोलता है, जो मेरे लिए विदेशी है। यह बात ठीक भी हो सकती है। लेकिन दो दिलों के मिलाप में भाषा बाधा नहीं बन सकती। मैं इतना जानता हूँ कि जब मैं नहीं रहूँगा, तो वह मेरी भाषा बोलेगा।" —महात्मा गाँधी

५. भारत के अमर सेनानी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

मातृभूमि की वन्दना में अनेकों ने अपनी-अपनी स्वर साधनाएँ प्रस्तुत कीं, परन्तु सबसे ऊँचा स्वर ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी सुभाष का था। वह स्वर सर्वोच्च होने के साथ-साथ सबसे भिन्न भी था। उस समय की स्थिति ऐसी थी कि सुभाष के स्वर में शंखनाद था, सिंह गर्जना थी, वैरियों की छाती धड़कने लगी, मातृ-भूमि अपने वरदपुत्र की साधना पर मुस्करा उठी। जनता ने जय-जयकार किया, कवियों ने प्रशंसा में गीत लिखे, सम्पादकों ने लेखनी सफल की, बस फिर क्या था साधक अब बहुत आगे था, यही एक ऐसा साधक था, जिसने गाँधी जी जैसे कूटनीतिज्ञ व्यक्ति से एक बार नहीं अनेकों बार भारतवर्ष के सार्वजनिक क्षेत्र में टक्कर ली।

सुभाष बाबू का जन्म उड़ीसा राज्य के कटक शहर में २० जनवरी सन् १८९७ में हुआ था। इनके पिता रायबहादुर जानकी नाथ बोस कटक म्युनिसीपैलिटी तथा जिला बोर्ड के प्रधान थे तथा नगर के गणमान्य वकीलों में से थे। सुभाष की प्रारम्भिक शिक्षा एक यूरोपियन स्कूल में हुई। मैट्रिक की परीक्षा में सुभाष ने कलकत्ता यूनीवर्सिटी में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इसके बाद इन्होंने प्रेसीडेंसी कालेज में प्रवेश किया। वहाँ एक ओटेन नामक अंग्रेज प्रोफेसर था जो सदैव भारतीयों के प्रति निन्दाजनक शब्द कहा करता था, स्वाभिमानी सुभाष के लिये यह असह्य था। उन्होंने कक्षा में ही एक दिन उसके एक चाँटा जड़ दिया। उस दिन से ही उसने भारतीयों की निन्दा करनी तो बन्द कर दी, परन्तु सुभाष को कॉलिज से निकाल दिया गया। इसके पश्चात् वे स्कॉटिश चर्च कालिज में प्रविष्ट हुये और कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० ऑनर्स की उपाधि प्राप्त की। सन् १९१९ में वे भारतीय सिविल सर्विस की परीक्षा पास करने के लिये इङ्गलैण्ड गये। छः महीने के कठोर परिश्रम से उस परीक्षा में चौथा स्थान प्राप्त करके उत्तीर्ण हो गये। आई० सी० एस० की परीक्षा पास करके वे भारत लौट आये और नौकरशाही की शोषक मशीन का पुर्जा बनने से स्पष्ट इन्कार कर दिया।

सुभाष बाबू के जीवन पर देशबन्धु चितरञ्जन दास के त्याग और तपस्या का बड़ा बहुत प्रभाव पड़ा। वे उनके कार्यों में सहयोग देने लगे। उनके द्वारा निकाले गये "अग्रगामी" पत्र का सम्पादन भार इन्होंने अपने ऊपर ले लिया। सन् १६२१ में इन्होंने स्वयं सेवकों का संगठन-कार्य प्रारम्भ किया। फलस्वरूप अंग्रेज गवर्नमेंट नें इन्हें दिसम्बर मास में गिरफ्तार कर लिया। प्रिंस ऑफ वेल्स जब भारत आये, समस्त भारत में उनका बॉयकॉट किया गया, सुभाष ने बंगाल में इस आयोजन का नेतृत्व किया। देशबन्धु द्वारा आयोजित स्वराज्य पार्टी में इन्होंने तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दिया। इस भयानक आतंक से डर कर २५ अक्टूबर को इन्हें बर्मा की मांडले जेल भेज दिया गया, परन्तु स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण १७ मई, १६२७ को इन्हें मुक्त कर दिया। उस समय तक देशबन्धु की मृत्यु हो चुकी थी। कारावास से मुक्त होने के पश्चात् मद्रास कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष डॉ० अन्सारी ने इन्हें राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रधानमन्त्री नियुक्त किया।

नेता जी सुभाष

सुभाष बाबू भारतीय नेताओं की औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग से सहमत नहीं थे, वे पूर्ण स्वातन्त्र्य के पक्षपाती थे, अग्रिम वर्ष के कांग्रेस के अधिवेशन में यही प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। गांधी जी से विरोध होने पर भी, ये उनके द्वारा संचालित आन्दोलनों में सहर्ष भाग लेते रहे। १६३० में कानून भंग के अपराध में इन्हें पुन जेल भेज दिया गया। जेल में आपका स्वास्थ्य खराब हो गया, अंग्रेजी सरकार से आपने स्वास्थ्य लाभ के लिये विदेश जाने की अनुमति मांगी, सरकार ने आज्ञा दे दी। आप योरप चले गये। विदेश में चार वर्ष रहकर आपने देश के बाहर का वातावरण भारतीयों के अनुकूल बना लिया। विदेश से लौटने पर ये हरीपुरा कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित किये गये। इस अधिवेशन में आपने अपने ओजस्वी भाषण में फैडरल योजना का घोर विरोध किया। अगले वर्ष अर्थात् १६३६ में ये गांधी जी की इच्छा की अवहेलना करके कांग्रेस राष्ट्रपति के उच्च पद के लिये पुनः खड़े हुए। कांग्रेस के इतिहास में यह चुनाव अत्यधिक संघर्ष का था। जब वे गांधी जी के कहने से न माने तो, उन्होंने अपने प्रिय भक्त डॉ० पट्टाभि सीतारमैया को विरोधी उम्मीदवार के रूप में खड़ा कर दिया। अखिल भारतीय चुनाव हुआ, सुभाष २०१ वोटों से विजयी हुये, सीतारमैया की करारी हार हुई। गांधी जी ने इसे अपनी व्यक्तिगत हार मानी। सुभाष बाबू ने त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन का सभापतित्व किया। गांधी जी ने कांग्रेस छोड़ देने की धमकी दी। सुभाष बाबू यह नहीं चाहते थे, इसलिये कुछ दिनों के बाद स्वयम् उन्होंने ही इस पद से त्याग-पत्र दे दिया और स्वयम् अपने अग्रगामी दल का अलग निर्माण कर लिया।

कुछ समय पश्चात् भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत इन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। सुभाष ने आमरण अनशन की घोषणा कर दी, इसलिये सरकार ने इन्हें जेल से मुक्त करके घर पर ही नजरबन्द कर लिया, परन्तु उनका देशवास यहीं पर भी रहा।

नजरबन्दी के समय में आपने समाधिस्थ होने की घोषणा कर दी। एक दिन द्वारपालों को, अधिकारियों को और अंग्रेजी सरकार को अपनी अद्भुत दैवी शक्ति से पागल बना दिया। सबकी आँखों में धूल झोंकते हुये आधी रात के समय मौलवी के वेश में घर से बाहर निकल गये। ये कलकत्ते से पेशावर गये, वहाँ उत्तम चन्द्र की सहायता प्राप्त करके एक गूंगे मुसलमान के रूप में काबुल होते हुए जर्मनी पहुँचे। वहाँ इन्होंने "आजाद हिन्द सेना" की नींव डाली। जापान की सहायता से सुभाष ने ब्रह्मा तथा मलाया से अंग्रेजों को मार भगाया। अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये सैकड़ों नवयुवकों ने खून से हस्ताक्षर करके सुभाष को दे दिये। नेता जी सुभाष ने अपने सैनिकों से कहा था "तुम मुझे अपना खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।" विश्व के १६ राष्ट्रों ने आजाद हिन्द फौज को स्वीकार कर लिया था। 'जयहिन्द' और 'दिल्ली चलो' के नारों से इम्फाल और अराकान की पहाड़ियाँ गूंज उठीं। ५ जौलाई, १६४३ को सुभाष ने इस सेना का नेतृत्व सम्भाला। १६४५ में सुभाष ने अपनी भारत माता की परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने के लिये दूसरा भयानक आक्रमण किया। परन्तु जर्मनी की हार के साथ आजाद हिन्द फौज का भाग्य ही बदल गया। सैनिक गिरफ्तार कर लिये गये। वायुयान द्वारा नेता जी जापान जा रहे थे, रास्ते में जहाज में आग लग गई, इस प्रकार सुभाष १६ अगस्त, १६४५ को संसार छोड़कर चल बसे ऐसा कहा जाता है। परन्तु अधिकांश लोग इस जनश्रुति पर अभी विश्वास नहीं करते क्योंकि नेता जी के परिवार वाले अब भी उनकी जन्मतिथि अर्थात् वर्षगाँठ मनाते हैं।

क्रान्ति दूत सुभाष भयंकर ज्वालामुखी के समान थे। वे जीवनपर्यन्त ब्रिटिश साम्राज्य की आँखों में खटकते रहे। यदि वे आज हमारे बीच में होते तो निश्चय ही जनता उनका हृदय से स्वागत और आदर करती। परन्तु भारतीयों का दुर्भाग्य है कि वे लौटकर न आये और आये भी होंगे, तो किसी को पता नहीं चला। वे सिंह थे। उनकी गर्जनायें शत्रुओं के हृदय को शतशः विदीर्ण कर देती थीं। आज भी भारतवासियों के हृदय-पटल पर उनकी भव्यमूर्ति ज्यों की त्यों अंकित है। नेता जी स्वयम् में महान् थे और उनका त्याग और बलिदान था। भारतवर्ष की भावी संतति के लिये वे सदैव प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे। उनके आदर्शों पर चलकर जनता देश के कल्याण के लिये कटिबद्ध रहेगी।

६. लोकनायक जयप्रकाश नारायण

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"

ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व० ह्यू ग गेट्स केल ने जयप्रकाश जी के विषय में लिखा है कि—

"सारी दुनिया में जयप्रकाश नारायण के मित्र और प्रशंसक उनको भारतीय जनतान्त्रिक समाजवाद के प्रस्थापक-जनक के रूप में मुख्यतया जानते हैं। भारतीय सामाजिक जीवन को उनकी महान् देन यह है कि कम्युनिस्टों के सिद्धान्तवादी मार्क्सवाद को और कांग्रेस पार्टी के दक्षिणी पन्थी तत्वों के सतर्क परम्परावाद के आगे उन्होंने एक दिखाया। उनकी एक हस्ती है जिनका समाजवाद केवल

उनकी राजनीति में ही नहीं चमकता, केवल उनकी लिखावट में नहीं रहता, बल्कि उनके सारे जीवन में समाया हुआ है।"

निःसन्देह जयप्रकाश जी जैसे सपूतों को जन्म देकर भारत-माता ने अपनी कोख की सराहना अवश्य की होगी। मानवता के मूल्यों को और स्वयं मानवता को अन्धकार से निकालकर प्रकाश में लाने के लिये जयप्रकाश जी ने जीवन भर संघर्ष किया, जूझे पर झुके नहीं, पथ से मुड़े नहीं। मातृभूमि का कण-कण बोल उठा—जयप्रकाश शतायु हों।

जयप्रकाश नारायण का जन्म बिहार प्रान्त में छपरा जिले के सिताब दियारा नामक गाँव में दशहरे के दिन ११ अक्तूबर १९०२ को हुआ था। इनके बाबा का नाम श्री देवकी बाबू था तथा पिता श्री दयाल थे। जयप्रकाश जी की माता श्रीमती फूलरानी देवी बड़ी धर्मपरायणा थीं। तीन भाई और तीन बहनों में जयप्रकाश जी चौथी सन्तान थे। इनसे बड़े एक भाई और बहिन की बचपन में ही मृत्यु हो जाने से माता पिता का अपार स्नेह इन पर केन्द्रित था। चार वर्ष तक दाँत न निकलने के कारण माता इन्हें बउल जी के नाम से पुकारने लगी थीं। परन्तु जब बोलना प्रारम्भ किया तो बड़े-बूढ़ों की भाँति एक-एक शब्द सोच समझ कर और तोलकर बोलते थे। इसलिये पिताजी ने एक दिन कहा था कि "ई त बूढ़ लरिका हउअन" बाल्यावस्था में पशु-पक्षियों से जयप्रकाश जी को बड़ा प्रेम था। वे उनको खूब खिलाते।

लोकनायक
जयप्रकाश नारायण

१६ मई १९२० में जयप्रकाश जी का विवाह प्रभावती जी से हो गया। प्रभावती जी को गाँधी जी अपनी बेटी मानते थे। विवाह से पूर्व एक दिन प्रभा जी के पिता श्री ब्रज किशोर बाबू के यहाँ, चम्पारन सत्याग्रह के सिलसिले में जब गाँधी जी ठहरे हुये थे तब प्रभा को देखकर गाँधी जी ने कहा था 'ब्रज किशोर यह मेरी बेटी है इसे मेरे साथ भेजो।" प्रभाजी बचपन में ही अपने पिताजी के साथ सभाओं में जातीं और राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भाग लेतीं। इस शादी में न कोई दहेज था और न कोई लेन-देन, आदर्श सीधी सादा विवाह था। न डोली थी और न बाजे गाजे। दुल्हा और दुल्हिन पैदल चलकर ही सिताब दियारा पहुँचे। विवाह के बाद जयप्रकाश जी पढ़ाई के लिए पटना चले गये।

महात्मा गाँधी का असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था, नौजवानों में होड़ लग रही थी कि कौन ज्यादा सहयोग दे। जनवरी १९२१ का मौलाना अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में पटना में एक विशाल सभा हुई। मौलाना ने गर्जना की कि "कहाँ है नौजवान जो कि अंग्रेजों की जारी की हुई निकम्मी तालीम को छोड़कर मैदान में आएँ, इस ढहती हुई हुकूमत को धक्का देकर खत्म करें और नया हिन्दुस्तान बनाएँ जिसकी खुशबू से सारा आलम महक उठे—अगर इस वक्त चूके तो मैं कहता हूँ

कि आपको तवारीख माफ करने वाली नहीं है। जमाना आपको दावत दे रहा है। देर की गुंजाइश नहीं है।" इस भाषण ने जयप्रकाश जी के हृदय में हलचल पैदा कर दी। घर आये। रात भर नींद नहीं आई। दूसरे दिन दृढ़ निश्चय के साथ कालेज छोड़ दिया और बिस्तर बाँधकर साबरमती आश्रम जाने की तैयारी शुरू कर दी। परन्तु उनके ससुर श्री ब्रज किशोर की सलाह पर राजेन्द्र बाबू की निगरानी में सदाकत आश्रम में चल रहे बिहार विद्यापीठ में चले गये। इन्टर का इम्तहान दिया और ऊँचे नम्बरों से पास हुये। बी० एस-सी० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ने से जयप्रकाश जी ने मना कर दिया क्योंकि उसमें भी उसी शैतान अंग्रेजी सरकार का पैसा लगता था।

जयप्रकाश जी और प्रभावती जी इलाहाबाद आ गये और नेहरू परिवार के साथ घुल-मिल गये। जयप्रकाश जवाहरलाल जी को भाई कहते और कमला जी को भाभी। ३ फरवरी १९३२ को प्रभावती जी इलाहाबाद में पकड़ी गईं और दो साल की सजा सुनाई गई। उन दिनों जयप्रकाश जी के सुपुर्द एक बड़ी जिम्मेदारी थी, देश भर में घूमना और कांग्रेस के संगठन को मजबूत करना। जयप्रकाश ने उन दिनों देश का तीन बार दौरा किया और बड़ी मुस्तैदी से अपना दायित्व निभाया।

१७-१८ मई ३४ को पटना में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में समाजवादी मित्रों की राष्ट्रीय स्तर पर पहली मीटिंग हुयी। अध्यक्षीय भाषण में आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा कि साम्राज्य शासित राष्ट्र के लिये राजनैतिक आजादी तो समाजवाद की दिशा में पहली मंजिल है। राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता के लिए निम्न-मध्यम श्रेणी और आम जनता की शक्ति से सम्मिलित प्रयास होने चाहियें। उसके कार्यक्रम में जनता की दृष्टि से आर्थिक कार्यक्रम शामिल करने की जरूरत है। इस कन्वेंशन में ही अखिल भारतीय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनाने का निर्णय किया गया और जयप्रकाश को संगठन मन्त्री नियुक्त किया गया। बम्बई में अक्टूबर १९३४ को एक सम्मेलन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को बाकायदा कायम किया गया। जयप्रकाश जी नयी पार्टी के जनरल सेक्रेटरी नियुक्त किए गए। आचार्य नरेन्द्र देव और श्री जयप्रकाश नारायण इन दो विभूतियों ने समाजवादी आन्दोलन को सजीव रूप प्रदान किया। विचारों में काफी भेद होते हुये भी गांधी जी जयप्रकाश जी से प्रेम करते और उनकी न्यायनिष्ठा पर पूरा विश्वास रखते थे। जयप्रकाश जी की निर्भीकता, क्रान्तिकारी भावना, मनुष्यता, पौरुष, सौजन्य तथा आकर्षण शक्ति पर सारा देश मन्त्र-मुग्ध हो उठता। क्रान्तिकारी भावनाओं से अनुप्राणित भारतीय नवयुवक तो उन पर प्राण न्योछावर करते थे। जयप्रकाश जी लम्बे प्रोग्राम पर निकलते तो प्रभावती प्रायः बापू के पास चली जाती थीं।

७ मार्च १९४० की शाम को जयप्रकाश जी को पटना में गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस उन्हें जमशेदपुर ले गयी और वहाँ से चाईबासा जेल में बन्द कर दिया गया। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के मौके पर जयप्रकाश की इस गिरफ्तारी से देश में क्षोभ की लहर दौड़ गई। महात्मा गांधी ने १२ मार्च को निम्नलिखित मार्मिक वक्तव्य दिया।

"श्री जयप्रकाश नारायण की गिरफ्तारी एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। वह कोई साधारण कार्यकर्ता नहीं हैं, समाजवाद के वह महान् विशेषज्ञ हैं। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजवाद की जो बात उन्हें मालूम है उसे हिन्दुस्तान में और कोई भी नहीं जानता। वह बहुत कुशल योद्धा भी हैं। देश की स्वाधीनता के लिये उन्होंने सर्वस्व

त्याग किया है। वह अखिल उद्योगशील हैं। उनकी कष्ट सहिष्णुता अतुलनीय है—सच तो यह है कि इस गिरफ्तारी से लोगों को ऐसा लगने लगा कि ब्रिटिश सरकार दमन करना चाहती है। ऐसी स्थिति से इतिहास की पुनरावृत्ति होगी। पहले सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय सरकार ने कलीवन्धुओं को गिरफ्तार कर दमन का श्रीगणेश किया था। पता नहीं कि यह गिरफ्तारी पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार की गई या किसी बहुत जोशीले अधिकारी की भूल है। अगर यह किसी अधिकारी की भूल ही है तो इसका सुधार हो जाना चाहिये।"

कांग्रेस कमेटी के बम्बई अधिवेशन में ८ अगस्त १९४१ को वह ऐतिहासिक प्रस्ताव पास हुआ जिसमें कहा गया था कि आज विश्व के सामने जो संकट है उसके निराकरण के लिए भारत की स्वाधीनता बहुत जरूरी है। इसलिये कांग्रेस यह आवश्यक मानती है कि ब्रिटिश हुकूमत भारत छोड़े और एक स्वाधीन सरकार भारत की सुरक्षा का दायित्व उठाये । गांधी जी ने अपने सारगर्भित भाषण में 'करो या मरो' का मन्त्र दिया और कहा कि अब हर हिन्दुस्तानी अपने को आजाद समझे। दूसरे दिन अभी सूरज भी नहीं निकला था कि गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गए, सारी कांग्रेस कार्य समिति पकड़ ली गई, सैकड़ों हजारों की संख्या में कांग्रेसी कार्यकर्त्ता बन्द कर दिये गये। सारा देश उठ खड़ा हुआ—"अंग्रेजो भारत छोड़ो" की चिंगारी भड़क उठी। उत्तर प्रदेश में बलिया, बंगाल में मेदिनीपुर और महाराष्ट्र में सतारा कई दिनों तक स्वतन्त्र रहे। वहाँ जनता का अपना राज था। हजारीबाग जेल में जयप्रकाश जी भी आत्मा छटपटा रही थी इस जनक्रान्ति में भाग लेने के लिए। उन्हें बार-बार पछतावा होता कि वे इसके लिए कुछ नहीं कर पा रहे। उनकी छटपटाहट बढ़ती गई। जयप्रकाश जी के शब्द कोष में मजबूर और मजबूरी शब्द नहीं हैं। उन्होंने जेल से निकल भागने का निश्चय किया और बाहर जाकर ब्रिटिश सरकार की सत्ता से जोरदार टक्कर लेकर स्वाधीन जनता का राज्य स्थापित करने का निश्चय किया।

९ नवम्बर १९४२। दिवाली का त्योहार। जेल में सभी जेली और कर्मचारियों को जेलर की ओर से दावत का आयोजन था फिर नाच और गाने का प्रोग्राम था। राम वृक्ष बेनीपुरी ने उस जश्न के प्रोग्राम का संचालन किया। वातावरण अजीब मस्ती में झूम रहा था। ढोल मजीरे पर गीतों की बौछार। उसी समय जयप्रकाश जी ने जान की बाजी लगा दी। कई धोतियों की रस्सी बनाकर छः मिनट में जेल की दीवार लांघ गये और बाहर निकल गये। साथ में ६ मित्र और थे। प्रतिदिन की भांति प्राय: जब लोग मार्क्सवाद पढ़ने के लिये जयप्रकाश जी की बैठक में लगने वाली कक्षा की ओर जाने लगे तो बेनीपुरी जी ने रास्ते में ही उन्हें रोक दिया कि जय प्रकाश जी आज क्लास नहीं लेंगे, उनकी रात भर तबियत ठीक नहीं रही है, अभी सोये हैं जगाना उचित नहीं। पढ़ने वाले लौट गये। इस तरह बारह घण्टे तक जय प्रकाश जी के बाहर चले जाने का किसी को पता चलने नहीं दिया गया। जब जेल अधिकारियों को मालूम हुआ तो उनके होश उड़ गये। हजारी बाग से पटना, पटना से दिल्ली वायसराय की ओर दिल्ली से लन्दन खबर पहुंचा। ब्रिटिश सरकार ने जिन्दा या मुर्दा जयप्रकाश को पकड़ने के लिये दस हजार रुपये के इनाम का एलान किया।

एक दिन अंग्रेजी सरकार को सुराग मिला और अचानक जयप्रकाश और लोहिया पकड़ लिए गए। उन्हें हनुमान नगर थाने से लाया गया। इसके बाद नेपाल सरकार

उन्हें नेपाल भारत सीमा पर पहुँचाकर भारत सरकार के सुपुर्द करने वाली थी रास्ते में जयप्रकाश ने आजाद दस्ते के एक सैनिक को खबर करादी कि हनुमान नगर जा रहे हैं, जो कुछ हो सके करो ताकि यहाँ से भाग निकलें। जे० पी० और लोहिया के अलावा ५ साथी और भी पकड़ लिये गये थे। उसी शाम आजाद दस्ते के ३५ सैनिक हनुमान नगर आ गये। बाकायदा स्कीम बनाई गई, सातों कैदी सो गए, अचानक गोलियाँ चलने लगीं। सातों बहादुर दौड़ पड़े, कोई कहीं गया और कोई कहीं""" जयप्रकाश कलकत्ते चले गए और फिर अपने काम में लग गये। अंग्रेजी हुकूमत हैरान थी। वह जयप्रकाश के आजाद घूमने को ब्रिटिश सल्तनत के लिए सबसे बड़ी चुनौती मानती थी।

एल० पी० मेहता के नाम से फर्स्टक्लास में सूट-बूट पहिने श्री जयप्रकाश फ्रंटियर मेल से रावलपिंडी आ रहे थे। कश्मीर पहुँचकर पठानों से सम्पर्क करना था, उत्तर पश्चिमी सीमा में क्रांति का नया मोर्चा खोलना था। अमृतसर स्टेशन पर गाड़ी ठहरी, नीचे उतर कर चाय का आर्डर दिया और फिर अपनी सीट पर आकर बैठ गये। चाय आ गई, पी रहे थे, इतने में ही दरवाजे पर खट-खट हुई। बाहर एक अंग्रेज था दो हिन्दुस्तानी। वह भीतर आया और टिकिट दिखाने को कहा। जयप्रकाश ने कहा आप कोई रेलवे के अफसर हैं, उत्तर मिला—नहीं, पर मैं आपका टिकिट देखूंगा। देखिए। गोरे अफसर ने टिकिट देखा और कहा—आप जयप्रकाश नारायण हैं? नहीं मेरा नाम एल० पी० मेहता है। नहीं, आप गलत बोल रहे हैं। यह नेपाल नहीं पंजाब है, मुझे गोली मारने का अख्तयार है अगर आपने जरा भी हिलने की कोशिश की तो देखिये यह मेरा रिवाल्वर। जयप्रकाश समझ गये कि अब खेल खतम हो गया। लाहौर पहुँचने पर उनके हाथ में हथकड़ी डाल दी, बाहर उतारा, उस समय स्टेशन पर १६५० हथियार-बन्द सिपाही तैनात थे। बड़ी खोज और परेशानी के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का सब से बड़ा कैदी पकड़ा गया। लाहौर के किले में एक महीने तक जयप्रकाश काल कोठरी में रक्खे गये। २० अक्तूबर ४३ से जयप्रकाश की यातनाएँ शुरु हुई, सवाल पूछे गए कि ये कुछ बता दें कि कहाँ क्या हो रहा है और कौन कहाँ है। कुर्सी पर बांधकर पिटाई की गई। परन्तु भारत माता के इस सपूत ने स्पष्ट कह दिया कि आप चाहे कुछ भी करें मुझसे आपको कुछ जानकारी नहीं मिलने वाली है, मैं अपनी जान पर खेल जाऊँगा लेकिन आपके दमन के आगे नहीं झुकूँगा। जनवरी १९४५ में जयप्रकाश लाहौर के उस किले से आगरा सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये। लाहौर का किला जयप्रकाश के लिये जबरदस्त अग्नि परीक्षा थी। उस अग्नि में तप कर जयप्रकाश रूपी स्वर्ण और भी निखर उठा।

सहसा ब्रिटेन की राजनीति में मोड़ आया। २२ मार्च १९४५ को चर्चिल सरकार हार गई और मजदूर दल जीतकर आया। ब्रिटेन की उदारवादी सरकार ने स्पष्ट कह दिया कि हम भारत को बन्धन में नहीं रखना चाहते। २३ मार्च १९४५ को लन्दन से एक मिशन आया। मिशन के आने के अट्ठारहवें दिन ११ अप्रैल १९४६ को जयप्रकाश जी रिहा कर दिये गये। जयप्रकाश जिन्दाबाद के नारों से आकाश गूँज उठा। दिल्ली के स्टेशन पर अगस्त क्रान्ति के प्यारे वीर के स्वागत में विशाल जनसमूह उमड़ पड़ा था। जयप्रकाश जी सबसे पहले बापू से मिलने गए, बापू उन्हें देखकर गद्गद हो उठे और प्रार्थना सभा में मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा की।

मिशन योजना को कांग्रेस कार्यकारिणी ने स्वीकार कर लिया था। ६-७ जौलाई ४६ को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। कांग्रेस अध्यक्ष का

दायित्व प० नेहरू को सौंपा गया। पहिले दिन ६ जौलाई को जयप्रकाश जी ने अपने भाषण में मिशन योजना का डटकर विरोध किया।

एक दिन जयप्रकाश जी ने बापू से कहा कि मैं कांग्रेस से अलग होना चाहता हूं। बापू कुछ न बोले। पहिले ऐसा पूछने पर प्राय मना कर देते थे, इस बार चुप रहे। बस पर कुछ सोचा और फिर कहा—'बहुत तकलीफ उठानी पड़ेगी'। 'तकलीफ की कोई बात नहीं, आपके आशीर्वाद से सब कुछ सहन किया जा सकता है।' जय प्रकाश ने उत्तर दिया था। ३० जनवरी ४८ को बापू ही चल बसे। बापू की विदाई से जयप्रकाश अत्यन्त दुखी थे। उन्होंने मांग की कि बापू की हत्या के प्रायश्चित स्वरूप भारत सरकार को औपचारिक रूप से इस्तीफा दे देना चाहिये।

३० मई १९५२ को जयप्रकाश जी उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में आचार्य विनोबा भावे से मिले। तीन घण्टे तक दोनों एकान्त में बातें करते रहे। जे० पी० ने अनुभव किया कि विनोबा निष्ठा से भूमि समस्या का निराकरण चाहते हैं और उनका कार्यक्रम समाजवादी है। २२ जून १९५२ से जयप्रकाश जी ने तीन सप्ताह का आत्म शुद्धि के लिये उपवास किया, इस उपवास ने जयप्रकाश जी को बिल्कुल बदल दिया, जिस चीज की जयप्रकाश को आवश्यकता थी वह मिल गई। इसके बाद उन्होंने 'अच्छाई की प्रेरणा' नामक लेख लिखा। इसमें उन्होंने कहा "वर्तमान समाज और धर्म का असर जाता रहा, ईश्वर में श्रद्धा हिल गई है, इतिहास ने अब युगों में मुर्दा नारों के रूप में नैतिक मूल्यों को ठुकरा दिया है। संक्षेप में जब भौतिकवाद का सिक्का लोगों के दिल पर जम गया है, तो अच्छाई के लिए क्या कोई प्रेरणा बची है? मेरा मानना है अब कोई अन्य प्रश्न इतना महत्वपूर्ण नहीं है।" १९ अप्रैल १९५४ को बोधगया में जयप्रकाश जी ने सर्वोदय के लिये अपना जीवन दान दे दिया है। सन्त जयप्रकाश जी की प्रेरणा से ५८२ व्यक्तियों ने भी सर्वोदय के लिए अपना जीवन दान किया। आचार्य विनोबा ने जीवन समर्पित किया।

जयप्रकाश जी के जीवन दान की सुगन्धि विदेशों में फैली। सर्वोदय के सन्देश को देशदेशान्तरों में फैलाने के लिये वे २८ अप्रैल १९५८ को निकले। इस यात्रा में उन्होंने योरोप के १४ देशों (इंगलैंड, फ्रांस, जर्मन आदि) में सर्वोदय का संदेश पहुंचाया और लगभग ८० सभाओं में जयप्रकाश जी के महत्वपूर्ण भाषण हुये। २० सितम्बर ५८ को वे दिल्ली लौट आये।

१९७२ में जयप्रकाश जी ने वह कर दिखाया जो बड़े-बड़े योगी या सिद्ध पुरुष ही कर सकते हैं। भगवान बुद्ध के चरण में अंगुलीमाल डाकू ने समर्पण किया था। परन्तु जयप्रकाश जी के चरणों में न जाने कितने अंगुलिमालों ने अपनी भय नकता त्याग कर अपने मस्तक झुका दिए, उनके चरणों पर अपने भयावह प्राणघाती शस्त्रों को समर्पित कर दिया। जयप्रकाश जी ने सबको शरण दी। चम्बल घाटी के खूंखार भयानक डकैत निःशस्त्र और विनय होकर जयप्रकाश जी के पास आते और समर्पण करते। जयप्रकाश जी गीता व रामायण की पुस्तकें देते। १२ अप्रैल १९७२ को मुरैना से पच्चीस मील दूर पगारा के डाक बंगले में जयप्रकाश जी रुके हुये थे। चम्बल घाटी का सरनाम डाकू मोहरसिंह, जिसको जिन्दा या मुर्दा पकड़कर लाने के लिए मध्य प्रदेश सरकार ने दो लाख रुपये का इनाम घोषित कर रखा था, डाक बंगले में आया और अपना सिर जयप्रकाश जी के चरणों में रख दिया और मो[illegible]

यह सिर आपके चरणों में है चाहे आप इसे फाँसी के तख्ते पर लटकवाइये या चाहे जो कीजिए। जयप्रकाश ने मोहर को सीने से लगा लिया और बोले—"आपको फाँसी नहीं लग सकती, मुझे सरकार से आश्वासन मिल गया है लेकिन अगर आप में से किसी एक को भी फाँसी मिली तो आप में से एक की जान मेरी जान के बराबर होगी और मैं उपवास करके मर जाऊँगा।" इस प्रकार उन चरणों में ५०१ बागियों ने हथियार डाले और अच्छाई और सच्चरित्रता के जीवन को अपनाया। यह विचित्र हृदय परिवर्तन सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में अपनी तुलना नहीं रखता। १३ अप्रैल १९७३ को जयप्रकाश जी की धर्मपत्नी श्रीमती प्रभावती जी का स्वर्गवास हो गया। यह जयप्रकाश जी के जीवन की कठोरतम कसौटी थी सारी अग्नि परीक्षाओं से बढ़कर अग्नि परीक्षा थी। परन्तु उन्होंने इस पर भी बहादुर सिपाही की भाँति विजय प्राप्त की। छात्रों और बिहार की जनता की प्रार्थना पर जयप्रकाश जी ने अस्वस्थ होने पर भी बिहार आन्दोलन का नेतृत्व किया। ८ जून १९७४ के पटना के मौन जुलूस से इसका श्री गणेश हुआ था फिर ५ जून को दिल्ली का विशाल प्रदर्शन और ३ अक्तूबर से ५ अक्तूबर ७४ तक बिहार बन्द का आयोजन। जनवरी ७७ में भारत की जनता को जनता पार्टी के रूप में नेतृत्व प्रदान कर जयप्रकाश जी ने 'युगपरिवर्तन' उपस्थित कर दिया।

१४ फरवरी १९४८ को रेडियो पर पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में कहा था—

"जयप्रकाश जी की काबलियत और ईमानदारी पर मुझे कभी कोई शक नहीं रहा है। एक मित्र के नाते मैं उनकी इज्जत करता हूं और मुझे यकीन है कि एक वक्त आयेगा जब भारत के भाग्य निर्माण में वे महत्वपूर्ण पार्ट अदा करेंगे।"

जिस कालजयी महापुरुष ने अनेक बार मृत्यु को अपने दरवाजे से लौटा दिया हो उसे भी ८ अक्तूबर १९७९ को प्रातः ब्रह्म मुहूर्त मे ५.४५ बजे मौत से हार माननी पड़ी। हृदय विदारक समाचार सारे राष्ट्र में बिजली की तरह कौंध गया। सारा राष्ट्र शोक मे निमग्न था। दीर्घकालीन अस्वस्थता से ऊबकर एक दिन पूर्व ही ७ अक्तूबर ७९ को लोकनायक ने कदम कुंआं स्थित अपने निवास स्थान पर अपने डाक्टर मे कहा था—"यह उधार की जिन्दगी कब तक चलेगी"। देश-विदेश के नागरिकों एवं राजनीतिकों ने अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए लोकनायक के निधन को राष्ट्र की अपूरणीय क्षति बताया। ९ अक्तूबर १९७९ को दोपहर दो बजकर पाँच मिनट पर उनका पार्थिव शरीर राजकीय सम्मान के साथ अग्नि को समर्पित कर दिया गया। अपने प्यारे नेता की अन्तिम झलक पाने के लिये पटना की सड़को पर नर-नारियो का उमड़ा सैलाब भीगी आँखों से अब घर लौटने लगा था।

स्वर्गीय राष्ट्रकवि 'दिनकर' ने लोकनायक के प्रति लिखा था—

है जयप्रकाश जोकि पंगु का चरण, मूक की भाषा है,
है जयप्रकाश वह टिकी हुई जिस पर स्वदेश की आशा है।

× × ×

है जयप्रकाश वह नाम जिसे इतिहास समादर देता है,
बढ़कर जिसके पद चिह्नों को उर पर अंकित कर लेता है।

× × ×

कहते हैं उसको जयप्रकाश जो नहीं मरण से डरता है,
ज्वाला को बुझते देख कुण्ड में कूद स्वयं जो पड़ता है।

× × ×

७ आधुनिक विदेह—राजेन्द्र बाबू

राजेन्द्र बाबू का नाम लेते ही ऐसा अनुभव होने लगता है मानो किसी वीतराग, शान्त एवम् सरल सन्यासी का नाम लिया जा रहा हो और सहसा एक भोली-भाली निश्छल, निष्कपट, निर्दोष, सौम्य मूर्ति सामने आती है। भागीरथी के पवित्र जल के समान उनका पुनीत एवम् अकृत्रिम आचरण आज भी मनुष्यों के हृदयों को पवित्र बना रहा है। वह उन योगिराजों में थे, जो वैभव एवं विलासिता में रहते हुए भी पूर्ण विरक्त होते हैं, राष्ट्रपति के सर्वोच्च गौरव एवं गरिमा के पद पर आसीन होते हुए भी गर्व रहित थे। गीता में वर्णित अनासक्त कर्मयोग की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे और आधुनिक युग के विदेह थे। जब राजेन्द्र बाबू स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने, तो गाँधी जी की वह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हो गई कि "भारत का राष्ट्रपति किसान का बेटा नहीं, किसान ही होगा।"

आधुनिक विदेह—
राजेन्द्र बाबू

१ प्रस्तावना।
२ जीवन की झलक।
३ राजनीतिक जीवन।
४ उपसंहार।

३ दिसम्बर, १८८४ ई० को राजेन्द्र बाबू के जन्म से बिहार प्रान्त की भूमि गौरवान्वित हुई थी और सारन जिले का एक सम्भ्रान्त कायस्थ परिवार जगमगा उठा था इस अभूतपूर्व शिशु को गोद में लेकर। इनके परिवार का सामाजिक और आर्थिक स्तर पर्याप्त अच्छा था, इनके पूर्वज हथुआ राज्य के दीवान थे। राजेन्द्र बाबू की प्रारंभिक शिक्षा उर्दू के माध्यम से प्रारम्भ हुई थी, कलकत्ते में उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत के अनुसार वे प्रारम्भ से ही प्रबुद्ध और मेधावी छात्र थे। हाई स्कूल से एम ए तक सभी परीक्षायें इन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं, एल एल बी और एल एल एम (L L M) परीक्षाओं में भी वे प्रथम ही रहे थे। अध्ययन के पश्चात् इन्होंने वकालत प्रारम्भ की और थोड़े ही दिनों में उसमें अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था, चोटी के वकीलों में आपकी गणना थी। धन, पद, प्रतिष्ठा, विद्या, बुद्धि, सभी में राजेन्द्र बाबू का स्थान प्रथम था।

रोलेट एक्ट बनने के पश्चात् आपने वकालत को तिलांजलि दे दी और गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। प्रारम्भ में राजेन्द्र बाबू का जीवन गोपाल कृष्ण गोखले से प्रभावित था। गोखले की देश-भक्ति में केवल राजनीति ही नहीं थी, अपितु उच्च कोटि की विद्वत्ता, राजनैतिक योग्यता, त्याग, सेवा आदि सभी कुछ निहित था और राजेन्द्र बाबू में ये सभी गुण विद्यमान थे। गोखले के पश्चात् इनके जीवन पर गाँधी जी का प्रभाव पड़ा और वह प्रभाव ऐसा था, जिससे वे अन्त तक जुड़े रहे।

गोखले इन्हें "सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डियन सोसायटी" का सदस्य बनाना चाहते थे जो उन्होंने १९०५ ई० में पूना में स्थापित की थी। गाँधी जी के आदर्श और सिद्धान्तों से आकर्षित होकर राजेन्द्र बाबू तन, मन, धन से उनके अनुयायी हो गये और देश-सेवा का व्रत लिया। इनमें विनम्रता और विद्वत्ता के साथ-साथ अपूर्व संगठन शक्ति, अद्वितीय राजनैतिक सूझ-बूझ और अलौकिक समाज सेवाओं की भावना थी। यही कारण था कि राजेन्द्र बाबू स्वाधीनता संग्राम के गिने-चुने महारथियों में से तथा गाँधी जी के परम प्रिय पात्रों में से थे।

असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के बाद इन्होंने बिहार में किसानों को तथा बिहार की जनता को सफल नेतृत्व प्रदान किया। १९३४ में बिहार में एक भयानक भूकम्प आया, जिसमें धन-जन की अपार क्षति हुई। राजेन्द्र बाबू ने पीड़ितों की सहायता के लिए सेवायें समर्पित कीं, जिनके आगे जनता सदैव-सदैव के लिए नत मस्तक हो गई। शनैः शनैः राजेन्द्र बाबू की गणना भारत के उच्च कोटि के कांग्रेसी नेताओं में होने लगी।

राजेन्द्र बाबू हिन्दी के कट्टर समर्थक थे। पर जब गाँधी जी ने हिन्दी के स्थान पर हिन्दुस्तानी का प्रचार किया तो यह निष्ठावान् अनुयायी होने के नाते हिन्दुस्तानी के प्रचार में ही लग गये। वह अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी सभापति रहे। एक बार इसी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति का निर्वाचन होना था। हिन्दी पक्ष के उम्मीदवार डा० अमरनाथ झा थे और हिन्दुस्तानी पक्ष के राजेन्द्र बाबू उम्मीदवार थे। चुनाव हुआ तो हिन्दी पक्ष के डा० झा विजयी घोषित किये गये, परन्तु राजेन्द्र बाबू के मन में थोड़ी सी भी मलिनता नहीं आने पाई, बल्कि उन्होंने डा० झा के प्रति अधिक सम्मान प्रकट किया।

देश-सेवा के लिये राजेन्द्र बाबू ने अनेक बार जेल यात्रायें की थीं और गौरांग महाप्रभुओं की अमानवीय यातनायें सही थीं। वे अपने जीवन काल में दो बार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुये, अपने अध्यक्षीय काल में उन्होंने कांग्रेस की अनेकों उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाया तथा समस्त भारत में कांग्रेस के प्रति सौहार्दपूर्ण वातावरण स्थापित किया।

१५ अगस्त १९४७ को भारतवर्ष के स्वतन्त्र हो जाने पर देश के लिये नवीन विधान बनाने के लिये "विधान निर्माण सभा" बनाई गई, राजेन्द्र बाबू उसके अध्यक्ष नियुक्त किए गए। इस विधान के बनाने में लगभग तीन वर्ष का समय लगा। इस विधान के अनुसार २६ जनवरी, १९५० से भारत एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य घोषित किया गया तथा डा० राजेन्द्र प्रसाद को भारत रिपब्लिकन का प्रथम प्रधान नियुक्त किया गया। १९५२ में सामान्य निर्वाचन के पश्चात्, राजेन्द्र बाबू भारत के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित किए गए तथा १९५७ में दूसरी बार पुनः आप भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित किए गए।

राजनैतिक व्यस्तताओं तथा अत्यन्त गरिमामय पद की अनेक दैनिक औपचारिकताओं में और व्यस्त रहते हुये भी वे सदैव प्रातः उठते और स्नानादि से निवृत्त हो पूजा-आसन पर बैठ जाते। दो-तीन घण्टे की उनकी दैनिक पूजा थी, जिसे उन्होंने अन्तिम क्षणों तक नहीं छोड़ा। राष्ट्रपति भवन की विलासिता उनके लिए नगण्य थी, दैहिक वैभव तुच्छ थे, यही कारण था कि जब यह निर्लिप्त योगी दिल्ली का राष्ट्रपति

भवन छोड़कर बिहार के सदाकत आश्रम में पहुँचा, तो उसे न कोई क्षोभ हुआ और न विषाद। राम के आदर्श की प्रतिच्छाया हमें राजेन्द्र बाबू के चरित्र में मिलती है। राम भी इसी तरह अयोध्या छोड़कर चल दिए थे—

"राजीवलोचन राम चले, तजि बाप को राज, बटाऊ की नाईं।"

दिल्ली ने शायद ही किसी को इतनी भाव भरी विदाई दी हो, जितनी राजेन्द्र बाबू को दी थी। सड़कों के दोनों किनारे, राष्ट्रपति भवन से नई दिल्ली के स्टेशन तक अपने प्रिय राष्ट्रपति को विदाई देने के लिए, लोगों से खचाखच भरे हुये थे। प्लेट फार्म पर तिल रखने तक को जगह न थी। आँख में आँसू सँजोये दिल्लीवासी अपने राष्ट्रपति को दिल्ली में विदाई दे रहे थे। उधर दोनों हाथ जोड़े हुए, मुख पर हल्की सी मुस्कान लिए हुए थे राजेन्द्र बाबू।

१९६२ में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया, राजेन्द्र बाबू अपने सदाकत आश्रम में बीमार पड़े थे। आक्रमण सुनकर आत्मा तिलमिला उठी। पौरुष फिर से हुंकार भरने लगा। रोग शय्या छोड़ी और पटना के गांधी मैदान में वह ओजस्वी भाषण दिया कि जनता अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिये आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी। राजेन्द्र बाबू ने कहा था—"अहिंसा हो या हिंसा, चीनी आक्रमण का सामना हमें करना है।"

सहसा कुछ दिनों बाद समाचार पत्रों ने काले हाशिये में छापा "भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का स्वर्ग प्रयाण।" गांधी जी की मृत्यु के बाद यह दूसरा अवसर था, जब जनता को यह अनुभव हुआ कि उसका कुछ छुट गया। सारा भारत शोक संतप्त, सूखी हुई पलकें सहसा गीली हो उठी थीं, सारे भारत ने नतमस्तक होकर श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी।

निःसन्देह उनका चरित्र और व्यक्तित्व, दोनों महान् थे और उनका चरित्र अनुकरणीय है।

८. भारतीय जनता के प्रतीक श्री लालबहादुर शास्त्री

'लाल' बहुत हैं, किन्तु एक है 'लाल बहादुर'

२७ मई, १९६४ को एक युग समाप्त हुआ, जिसे भारतवर्ष के इतिहास में समस्त विश्व 'नेहरू युग' के नाम से पुकारता था। एक प्रकाश था, जो सदैव-सदैव के लिए लुप्त हो गया। उनके स्थान की रिक्तता की पूर्ति यद्यपि नितान्त असम्भव थी, फिर भी सरकार और देश के संचालन के लिए प्रधानमन्त्री की आवश्यकता थी। देश के राजनीतिज्ञों की आँखें चारों तरफ दौड़ने लगीं, लोग अपने को असहाय-सा अनुभव कर रहे थे। प्रधानमन्त्री पद के चुनाव के दौरान में मोरारजी देसाई और जगजीवन राम आदि, परन्तु एक ऐसा भी लोग मानता था, जो चुप था, जिसके कन्धों पर हाथ रखकर नेहरू

जी ने स्वयम् संबल बनाया था तथा अपनी नीतियों की गम्भीरता से शिक्षा दी थी। बड़े लोगों में चर्चा हुई कि इस समय देश को ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता है, जो सबको साथ लेकर चले, अपनों को तो बनाये रखे ही पर विरोधियों से भी कटुता न बढ़ाए। यह व्यक्तित्व था श्री लाल बहादुर शास्त्री का जिनके विषय में भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष स्वर्गीय पुरुषोत्तम दास टण्डन ने कहा था कि श्री लाल बहादुर शास्त्री कठिन से कठिन परिस्थिति का सामना करने व समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखते हैं और स्वर्गीय नेहरू तो सदैव कहा करते थे, श्री लाल बहादुर एक ईमानदार और परिश्रमी व्यक्ति है, जिसने उच्च कोटि के नेताओं के समझाने पर भी चुनाव मैदान में कूदने से मना कर दिया था, जिसने घोषणा की थी कि यदि एक भी व्यक्ति मेरे विरोध मे हुआ तो उस स्थिति मे मैं प्रधान मन्त्री बनना नही चाहूंगा। कांग्रेस के अध्यक्ष श्री कामराज ने कांग्रेसजनों की आम राय ली। समस्त दल ने हृदय खोलकर श्री शास्त्री का समर्थन किया। २ जून १९६४ को कांग्रेस के संसदीय दल ने सर्व सम्मति से श्री शास्त्री को अपना नेता स्वीकार किया तथा ९ जून १९६४ को श्री शास्त्री ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण की।

श्री लाल बहादुर शास्त्री का जन्म वाराणसी के मुगल सराय नामक ग्राम में २ अक्तूबर १९०४ ई० में हुआ था तथा सोवियत रूस के ताशकन्द नगर में भारतीय जनता के लिये चिरशान्ति की खोज करते-करते उनकी मृत्यु, ११ जनवरी, १९६६ ई० को हुई। इनके पिता श्री शारदा प्रसाद जी एक सामान्य शिक्षक थे। डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही पितृविहीन हो गए। अपनी माता श्रीमती रामदुलारी देवी का ही इन्हें बाल्यावस्था में स्नेह मिल सका। यद्यपि इनके पिता श्री शास्त्री को अपना स्नेह भले ही न दे सके तथापि ऐसी दिव्य प्रेरणाओं की विभूति प्रदान कर गए कि शास्त्री जी एक सेनानी की भाँति जीवन के समस्त संकटों को अपने चरित्र-बल से पद-दलित करते चले गए। शास्त्री जी की प्रारम्भिक शिक्षा बड़ी निर्धनता में हुई। उन्होंने स्वयं कहा है "जब मैं अपने गाँव से वाराणसी पढ़ने जाता था, इतने तो पैसे न होते थे कि नाव में बैठकर गङ्गा पार कर सकता, इसलिये गङ्गा को तैर कर ही पार करता था।" सत्रह वर्ष की अवस्था थी, श्री शास्त्री, हरिश्चन्द्र स्कूल वाराणसी के विद्यार्थी थे। गाँधी जी अपने असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में १९२१ में वाराणसी आए हुये थे। सभा में गाँधी जी ने कहा—भारत माँ दासता की बेड़ियों में जकड़ी है। जरूरत है नौजवानों की जो इन बेड़ियों को काट देने के लिये अपना सब कुछ बलिदान कर देने को तैयार हों। इसी सभा में एक नौजवान आगे आया। सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था, माथे पर तेज, बाहें दासता की बेड़ियों को काट डालने के लिये फड़क उठीं। यह बालक श्री लाल बहादुर ही थे। वे स्कूली शिक्षा छोड़ स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। साम्राज्यवादी सरकार ने इन्हें बेड़ियों में कस लिया। श्री शास्त्री की यह प्रथम जेल यात्रा ढाई वर्ष की थी। जेल से रिहाई के पश्चात् उन्होंने काशी विद्यापीठ में पुनः अध्ययन प्रारम्भ किया। सुप्रसिद्ध दार्शनिक, भारत-रत्न डॉ० भगवान दास जी विद्यापीठ के प्रिंसिपल थे तथा आचार्य कृपलानी, श्री प्रकाश और डॉ० सम्पूर्णानन्द उनके शिक्षक थे। यहीं से उन्हें शास्त्री की उपाधि प्राप्त हुई।

जनता के सच्चे प्रतिनिधि
श्री लाल बहादुर शास्त्री

१. प्रस्तावना।
२. जीवन-परिचय।
३. देश-सेवा।
४. उपसंहार।

यहीं पर चार वर्ष लगातार शास्त्री जी ने दर्शन और संस्कृत का अध्ययन किया।

शास्त्री जी का जीवन बहुत ही कठिनाइयों से भरा हुआ जीवन रहा है। कठिनाइयों के अनुभव ने उनके हृदय में गरीबी के प्रति एक असीम करुणा भरी थी। पिछड़े हुए वर्गों, उपेक्षित तथा आश्रयहीन व्यक्तियो को ऊपर उठाने में उनकी विशेष रुचि रही थी। हरिजनोत्थान में उनका विशेष हाथ रहा था। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में उनका कार्य क्षेत्र था। उन्होंने बहुत ही कठिन श्रम, निष्ठा और लगन से कार्य किया। अध्ययन के पश्चात् श्री शास्त्री, लोक सेवक संघ के आजीवन सदस्य बन गये और उनका कार्य-क्षेत्र इलाहाबाद बन गया। श्री शास्त्री जी सात वर्ष तक इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य रहे तथा चार वर्ष तक इलाहाबाद इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के सदस्य रहे, फिर इलाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी के महासचिव तथा १९३० से ३६ तक अध्यक्ष रहे। उनकी संगठन-कार्य करने की क्षमताओं की बड़े-बड़े नेताओं ने प्रशंसा की।

श्री शास्त्री का प्रारम्भिक राजनैतिक प्रशिक्षण उत्तर प्रदेश कांग्रेस संगठन में हुआ, जिस पर पं० गोविन्द बल्लभ पन्त का जबरदस्त प्रभाव था। गुणग्राहक पं० पन्त के नेतृत्व में श्री शास्त्री १९३५ से १९३८ तक उत्तर प्रदेश कांग्रेस के महासचिव रहे। ब्रिटिश शासन काल में कांग्रेस का यह पद कांटों की सेज से किसी प्रकार कम नहीं था। तब एक बागी संगठन को संगठित करने और उसका तथा उसके द्वारा संचालित आन्दोलन का संचालन करने की जिम्मेदारी का आज की स्थिति में सहज ही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। श्री शास्त्री उसमे पूर्ण सफल रहे। १९३७ में वे उत्तर प्रदेश विधान सभा के लिए चुने गए। १९४० में विदेशी सरकार द्वारा उन्हें पुन गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद १९४२ में भी वे गिरफ्तार कर लिये गये। शास्त्री जी अपने जीवन-काल में आठ बार जेल गये। इस प्रकार नौ वर्षों तक कारागृह मे उन्होंने स्वतन्त्रता की साधना की। दस वर्ष तक तो शास्त्री जी ने बड़ा ही कठिन और संघर्षमय जीवन व्यतीत किया। सारा परिवार आर्थिक संकट के कारण दु खी था। सन् १९४६ में वे प्रदेश के चुनाव अधिकारी नियुक्त हुए। शास्त्री जी की कार्यकुशलता और संगठन-शक्ति के कारण ही कांग्रेस को चुनाव में बहुमत प्राप्त हुआ। सन् १९४६ में उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री पं० पन्त ने इन्हें अपना सभा सचिव नियुक्त किया तथा १९४७ में पन्त मन्त्रिमण्डल में उन्हें गृह-मन्त्री बनाया गया।

श्री शास्त्री की कर्त्तव्यनिष्ठा और योग्यता को देखते हुये १९५१ में प्रधानमन्त्री पं० नेहरू ने उन्हें आम चुनावों में कांग्रेस का कार्य करने के लिये दिल्ली बुलाया। पं० नेहरू कांग्रेस अध्यक्ष थे और श्री शास्त्री महासचिव नियुक्त किये गये। पं० पन्त के नेतृत्व में कार्य करने के बाद देश में सर्वोच्च नेता का विश्वास प्राप्त करना और अपने प्रयासों के संगठन को अपूर्व सफलता दिलाना श्री शास्त्री की यह बुनियादी उपलब्धि थी। इसके बाद उनका कार्य-क्षेत्र केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल बन गया। यह उनका ...र देश का सौभाग्य था कि उन्हें केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में पं० नेहरू और पं० पन्त के साथ उनके उच्च स्तरीय सहयोगी के रूप में काम करने का काफी अवसर मिला।

पं० नेहरू के नेतृत्व में पहली बार जब भारतीय गणतन्त्र का निर्वाचित मं ?-मण्डल बना उसमें शास्त्री जी रेल और परिवहन मन्त्री बनाये गये। शास्त्री जी को भी कृपा से ही रेल को जनता नाड़ी मिली। छोटे छोटे स्टेशनों का निर्माण और विकास हुआ और हजारों मील लम्बी नई रेल की पटरियाँ बिछायी गईं। ... नाम यात्रियों

तथा सवारी गाड़ियों के डिब्बों के वर्कशाप बने ; तीसरी श्रेणी के यात्रियों को सुख-सुविधा देने आदि का कार्य उनके ही मन्त्रित्व काल में हुआ, किन्तु सन् १६५२ में आरियालूर रेल दुर्घटना के कारण शास्त्री जी ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। जिम्मेदारी न होने पर भी घटना का उत्तरदायित्व उन्होंने सम्भाला तथा एक नई परिपाटी को जन्म दिया। सन् १६५६-५७ में शास्त्री जी इलाहाबाद के शहरी क्षेत्र से लोक सभा के सदस्य चुने गये। नेहरू जी के नेतृत्व में जो नया मन्त्रिमण्डल बना उसमें शास्त्रीजी को संचार और परिवहन मन्त्री बनाया गया। इस पद पर रहकर उन्होंने जो कार्य किये, उनसे जनता और कर्मचारी दोनों ही प्रसन्न हुये। श्री टी० टी० कृष्णमाचारी के त्याग-पत्र से केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में जब परिवर्तन हुआ उस समय उन्हें वाणिज्य और उद्योग विभाग सौंपे गये। शास्त्री जी के सान्निध्य में हमारे देश का व्यापार विदेशों में बढ़ा तथा लघु और बड़े उद्योगों को बढ़ावा मिला। सन् १६६१ की अप्रैल में उन्हें स्व-राष्ट्र-मन्त्रालय का कार्यभार सौंपा गया। वे इस पद पर बहुत कुशलता से कार्य कर रहे थे। देश के कांग्रेस सङ्गठन में शक्ति-संचार का प्रश्न उठा, कामराज योजना प्रस्तुत की गई, "पद से पहले पार्टी" का नारा बुलन्द किया गया। शास्त्री जी ने निर्लिप्त भाव से कहा कि वह सङ्गठन का काम करने के इच्छुक हैं, अतः उन्होंने अगस्त १६६३ में स्वराष्ट्र मन्त्रालय से त्याग-पत्र दे दिया। राष्ट्र नायक पं० नेहरू का स्वास्थ्य खराब रहने लगा था। प्रश्न यह था कि नेहरू जी के काम में कौन मदद करे ? उन्होंने शास्त्री जी को अपने काम में अधिक सहायक समझा। फलस्वरूप केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में २६ जनवरी १६६४ को वह पुनः बिना विभाग के मन्त्री नियुक्त किये गये। इन दिनों नेहरू जी के गहन कार्यों को निपटाने में उन्होंने बहुत ही तत्परता से कार्य किया।

२७ मई १६६४ को दो बजे हमारे प्रिय प्रधानमन्त्री पं० नेहरू का देहावसान हुआ। उनके देहान्त से एकदम यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि हमारा प्रधानमन्त्री कौन हो ? कांग्रेस के संसद सदस्यों ने शास्त्री जी को सर्वसम्मति से अपना नेता चुना। श्री शास्त्री ने ९ जून १६६४ को प्रधानमन्त्री पद सम्भाल लिया।

शास्त्री जी का अपना निराला व्यक्तित्व था। उनके शांत, गम्भीर, मृदु और सौम्य स्वभाव का किसी भी व्यक्ति पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था। वे उच्च कोटि के विचारक, प्रशासक और राजनीतिज्ञ थे। वे भारतीय जनता के पं० नेहरू के बाद सच्चे हृदय सम्राट थे। विश्व उनकी ओर टकटकी लगाए देख रहा था। श्री शास्त्री में हिमालय-सा अडिग दृढ़ निश्चय, सागर सा अथाह जनप्रेम और किसी निर्वात स्थान पर रखे दीपक की तरह स्थिर उत्तरदायित्व की भावना विद्यमान थी। वे बहुत शांत थे, किन्तु उनमें शक्ति का समुद्र छिप रहा था। यद्यपि उनमें शासन की लिप्सा नहीं थी, परन्तु अपने बुद्धि-कौशल से कठिन से कठिन परिस्थिति को सम्भालने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। वे शासन के प्रमुख पदों पर रहे, परन्तु पद के मोह और आत्मविज्ञापन की आकांक्षा से सदा शून्य। सत्ता और शक्ति का त्यागपूर्वक उपभोग और मानवता में अटूट विश्वास ही शास्त्री जी का धर्म था।

भारत में स्वराष्ट्र-मन्त्री के रूप में शास्त्री जी ने कठिन से कठिन ग्रन्थियों को जो सरलता से सुलझा लिया था, वह बात आज भी देशवासियों से छिपी नहीं है। असम में भाषा विवाद ने जटिल रूप ले लिया था, भारत और नेपाल के सम्बन्धों में भ्रांति उत्पन्न हो गई थी अथवा कश्मीर में हजरत बल दरगाह से पवित्र बाल की चोरी हो जाने से गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इनमें से प्रत्येक स्थिति भारत की राज-

नैतिक सम्बद्धता की नींव हिला सकती थी। किन्तु श्री लाल बहादुर शास्त्री ने स्वराष्ट्र-मन्त्री के दायित्व का पूर्ण निर्वाह करते हुए असम की भाषा और बंगाल के भाषा विवाद को सदैव के लिये समाप्त कर दिया। उन्होंने नेपाल की सद्भावना यात्रा की। यात्रा करते समय उन्हें डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के देहावसान की सूचना मिली। वे पटना में रुक गये। वहाँ से नेपाल जाकर उन्होंने भारत और नेपाल के बीच जो सौहार्द की भावना उत्पन्न की, उसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि नेपाल नरेश ने भारत में अपनी सद्भावना यात्रा का कार्यक्रम बनाया।

जब कश्मीर में कुछ षड्यन्त्रकारियों ने हजरत बल दरगाह में पवित्र बाल की चोरी कराकर व्यर्थ का झगड़ा खड़ा किया, तो ऐसा ज्ञात होने लगा कि यह समस्या अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में एक भयानक अशान्ति उत्पन्न कर देगी। भारतीय मन्त्रिमण्डल के सदस्य के रूप में श्री लालबहादुर शास्त्री ने इसकी सम्भावनाओं को पूर्ण रूप से समझा और वह तुरन्त स्थिति सम्भालने के लिये वहाँ पहुंच गये। समस्या बहुत गम्भीर थी, किन्तु शास्त्री जी की दूरदर्शिता, प्रतिभा और राजनीतिक अन्तर्दृष्टि ने उस भीषण परिस्थिति को इतनी सुचारुता से सम्भाला कि षड्यन्त्रकारी एक-दूसरे का मुंह ताकते रह गये।

प्रधानमन्त्री के रूप में सर्वप्रथम शास्त्री जी ने संयुक्त अरब गणराज्य की यात्रा की। २ अक्टूबर १९६४ को शास्त्री जी ने ६१वें वर्ष में पदार्पण किया था उसी दिन गांधी जयन्ती के पुण्य पर्व पर गांधी जी की समाधि पर यज्ञ का सम्पादन कर शास्त्री जी एशियाई तटस्थ राष्ट्र सम्मेलन में भाग लेने गये। राष्ट्रपति नासिर ने हृदय खोलकर शास्त्री जी का स्वागत और सम्मान किया। तीन दिन की राजकीय यात्रा के पश्चात् शास्त्री जी ने ऐतिहासिक काहिरा सम्मेलन में भारतीय शिष्ट मण्डल का प्रतिनिधित्व किया। सम्मेलन में उन्होंने भारत की तटस्थता तथा सहअस्तित्व एवम् निःशस्त्रीकरण, आदि नीतियों का प्रभावोत्पादक प्रतिपादन किया। शास्त्री जी का यह अटूट विश्वास था कि प्रत्येक ग्रन्थि शांतिपूर्ण समझौते से सुलझाई जा सकती है और शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है। इस नीति के फलस्वरूप काहिरा से लौटते समय शास्त्री जी करांची में रुके और पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब खाँ से मिले, विचार-विमर्श किया। लंका के प्रवासी भारतीयों की समस्या भी, जो वर्षों से उलझी हुई चली आ रही थी, आपने बड़ी सुगमतापूर्वक सुलझाई और लंका की तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती भण्डारनायक के साथ समझौता किया।

२ दिसम्बर १९६४ को प्रधानमन्त्री श्री शास्त्री ने बम्बई में पोप पाल श्रेष्ठ का अभिनन्दन किया और उसी दिन अपनी प्रथम ब्रिटेन यात्रा की। ब्रिटेन के नवनिर्वाचित प्रधानमन्त्री श्री विल्सन के निमन्त्रण पर शास्त्री जी अपनी तीन दिन की राजकीय यात्रा पर लन्दन गये। ७ दिसम्बर को लन्दन से लौटने पर शास्त्री जी ने मुस्कराते हुये कहा कि "मेरी लन्दन यात्रा लाभप्रद रही, वास्तव में मैं वहाँ किसी विशेष उद्देश्य से या सहायता या वित्तीय सहायता मांगने नहीं गया था, मैं ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री के निमन्त्रण पर गया था, हम थोड़े से हम और निकट आये हैं तथा एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझ सके हैं।"

राष्ट्रीय नेतृत्व के महान् दायित्व को अपने सबल कन्धों पर लेते हुये प्रधान मन्त्री के रूप में अपने प्रथम भाषण में श्री शास्त्री जी ने जो घोषणा की थी वह उनकी महती कर्तव्यनिष्ठा एवं देशभक्ति की परिचायिका है। शास्त्री जी ने कहा था—

"सबसे अधिक विकल करने वाली समस्या हमारे सामने गरीबी की है और मैं ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करने में योग देकर गौरव अनुभव करूंगा, जिसमें आज की अपेक्षा अधिक न्याय हो, अनुसूचित जातियों और जनजातियों को मैं खास तौर से नहीं भूल सकूंगा, क्योंकि ये सदियों से तिरस्कृत रही हैं, हमें समाजवादी लोकतन्त्र के आधार पर सुखी तथा सशक्त भारत का निर्माण करना है। डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में,

भारत भू का भाग्य भव्य होगा भविष्य में,
राष्ट्र-यज्ञ हित हृदय हमारा हो हविष्य में।

नेहरू का नेतृत्व, नए नायक निर्णय में—
जीवित है जग के जन-जन की ज्योति जय में॥

जन मानस में हुआ तरंगित जननी का उर।
'लाल' बहुत हैं, किन्तु एक है 'लाल बहादुर'॥

श्री लाल बहादुर शास्त्री की अद्वितीय योग्यता और महान् नेतृत्व का परिचय भारत पाकिस्तान युद्ध के समय और भी अधिक मिला। इस युद्ध में जिस बुद्धि और कौशल का परिचय उन्होंने दिया, उसने उन्हें पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया—उनके ओजस्वी भाषणों से वीर सैनिकों और देश की जनता का मनोबल बहुत ऊंचा हो गया, उनके सफल नेतृत्व में भारत ने पाकिस्तान को पराजित किया। विश्व की दृष्टि में भारत को एक सम्माननीय स्थान दिलाने का श्रेय उन्हीं को है। भारत-चीन युद्ध के बाद भारत का मान बहुत गिर गया था। देश की जनता में आत्म-विश्वास जैसे खो गया था, श्री लाल बहादुर शास्त्री की सङ्गठनात्मक शक्ति और लगन ने भारत को अपना खोया हुआ गौरव प्रदान किया है। श्री लाल बहादुर शास्त्री के प्रति लोगों का बहुत विश्वास हो गया और वे जन जन के हृदय में समा गये। उन्होंने बड़े ओजपूर्ण और सन्तुलित भाषण दिए, जिनके प्रत्येक शब्द में जनता की वाणी विद्यमान थी। सचमुच में ही वे एक ऐसे साधु पुरुष थे, जिन्होंने हर क्षेत्र में अपनी कुशलता की छाप छोड़ी। ●

९. श्रीमती इन्दिरा गांधी
और
उनका महान् व्यक्तित्व

इस महान् राष्ट्र का प्रत्येक अचल और उसका कण-कण कराह उठा अपने राष्ट्र-पुरुष और अपने हृदय की अमूल्य निधि प० नेहरू के महानिर्वाण के हृदय विदारक सन्देश को सुनकर। देश के आबाल-वृद्ध नर-नारियाँ सिसकियाँ भरते और गहरी आह भर कर एक दूसरे की ओर देखकर धीरे से कहते "अब क्या होगा इस विशाल देश का ?"

"पंडित जी की पवित्र आत्मा हमारा पथप्रदर्शन करेगी", कहकर जनता ने अपने आँसू धीरे से पोंछकर देश की बागडोर पण्डित जी के भोले अनुयायी श्री लाल बहादुर जी के हाथों में थमा दी। अकाल और भुखमरी की आहें युद्ध की गर्जना से कुछ क्षणों के लिए दब-सी गयीं। पण्डित जी की आत्मा अपने देशवासियों की दरिद्रावस्था से दुखी होकर किसी कोने मे फिर भी कराह उठती थी। दैव के क्रूर हाथ आगे बढ़े और शास्त्री जी को भी देशवासियों के बीच से सहसा उठा लिया।

पण्डित जी के जीवन-काल मे विदेशों के कूटनीतिज्ञ एवं संवाददाता उनसे प्राय पूछ बैठते "आपके बाद कौन ?" प० जी मौन होकर मुस्करा भर देते। आज उसी प्रश्न का उत्तर उनकी साकार आत्मा इन्दिरा जी के रूप मे हमारे सामने है। यह उस युगपुरुष की दूरदर्शिता एवं सूक्ष्म सूझ-बूझ का ही परिणाम है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी

१ प्रस्तावना।
२ जन्म, शिक्षा।
३ सामाजिक जीवन।
४ प्रधानमन्त्रित्व।
५ राजनैतिक पराजय।
६ पुनरुत्थान।
७ उपसंहार।

इन्दिरा जी का जन्म ऐसे समय मे हुआ था, जबकि ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य अपने पूर्ण यौवन के साथ भारत मे चमक रहा था। देश भक्ति की बातें करना देश-द्रोह समझा जाता था, फिर भी भारत माँ के सपूत स्वतन्त्रता के संघर्ष में तन, मन, धन से लगे हुए थे। इलाहाबाद मे प० जवाहरलाल जी के पिता प० मोतीलाल नेहरू जी का निवास स्थान 'आनन्द भवन' इन बातों का मुख्य अड्डा था। आनन्द भवन को पुलिस घेरे रहती थी। आये दिन धर-पकड़ मची रहती थी। आनन्द भवन के इसी उन्मुक्त वातावरण में इन्दिरा जी का जन्म १९ नवम्बर १९१७ को हुआ था। जन्म के समय श्रीमती सरोजिनी नायडू ने एक तार भेजकर कहा था—'यह भारत की नई आत्मा है।' पं० नेहरू कारागार मे बन्द कर दिये जाते और यदि बाहर रहते तब भी कांग्रेस और आजादी के कामों में दिन और रात व्यस्त रहते, परन्तु वे सदैव योग्य पिता के समान अपनी पुत्री के लालन-पालन पर पूरा-पूरा ध्यान देते। इन्दिरा प्रियदर्शिनी की आरम्भिक शिक्षा स्विट्जरलैंड में हुई। इसके पश्चात् वे अपने अध्ययन के लिए शान्ति-निकेतन में आ गयीं। शान्ति निकेतन से इन्दिरा जी के विदा होते समय गुरुदेव रवीन्द्र-नाथ टैगोर ने नेहरू जी को पत्र में लिखा था—"हमने भारी मन से इन्दिरा को विदा

किया है। वह इस स्थान की शोभा थी। मैंने उसे निकट से देखा है और आपने जिस प्रकार उसका लालन-पालन किया है, उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता।" शान्ति-निकेतन के बाद वह ऑक्सफोर्ड के समर विले कॉलिज गयीं और वहाँ शिक्षा प्राप्त की।

पं० नेहरू अपनी प्रियदर्शिनी इन्दु का जहाँ लालन-पालन एवं सुख सुविधाओं का ध्यान रखते थे, वहाँ विस्तृत ज्ञानसंवर्धन भी उनको परम अभीष्ट था। उन्होंने जेल से भी इन्दिरा जी को पत्र लिखे, उनमें ज्ञान-राशि को ही उड़ेल कर रख दिया था। बाद में वे पत्र "पिता के पत्र पुत्री के नाम" से प्रकाशित हुए और जाने कितने भारतीय ज्ञानार्थियों ने उनसे बहुत कुछ ज्ञानार्जन किया। पंडित जी ने १९३५ में नये साल के अवसर पर एक दिन हज़ार पृष्ठ की एक पुस्तक अल्मोड़ा जेल से भेजी। उन्हें इस बात का भय था कि कहीं उनकी बच्ची इतनी मोटी और मुश्किल किताब देखकर घबरा न जाये और इसीलिए उन्होंने पुस्तक के ऊपर यह लिखा था नये साल के अवसर पर प्रेम और शुभकामनाओं के साथ इस आशा में कि 'साइन्स ऑफ लाइफ' का अध्ययन तुम्हें जीवन की सबसे बड़ी रहने की कला में सहायता करे। इस किताब के भारीपन और मोटेपन से घबराना नहीं। शुरू से तुम्हें एक छोर से दूसरे छोर तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं क्योंकि ऐसा करने में तुम बहुत बोर हो जाओगी। जो अध्याय तुम्हें दिलचस्प लगें उन्हें पढ़ो और उनसे तुम्हें जीवन के विस्तार और विकास का अन्दाजा होगा। बाद में शायद तुम पूरी किताब पढ़ना पसन्द करोगी। इसे ज़रूर पढ़ना चाहिये।"

इन्दिरा जी को अपनी माँ से अतुलनीय स्नेह था; उनका स्मरण उन्हें आज भी आन्दोलित कर देता है। उन्होंने उनके विषय में लिखा है—"डाँटती तो वे कभी नहीं थी, न ऊँची आवाज़ में बोलती थीं, लेकिन उनका प्रभाव ऐसा था कि जो कह थीं वही होता था।"

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व और उसके पश्चात् इन्दिरा जी सदैव भारतीय समस्या से जूझती रही हैं और उनका अध्ययन-विश्लेषण करती रही हैं। पं० नेहरू के जीवनका में यद्यपि उन पर अधिक जिम्मेदारी नहीं सौंपी गई थी, फिर भी सत्य यह है कि सदै देश और विदेश में एक योग्य सलाहकार के रूप में उनके साथ रहीं। जहाँ उन्होंने दे के हर भाग में स्वयं जाकर सभी समस्याओं को देखा और समझा, वहाँ विदेश में व्यापक भ्रमण करके उन्होंने अपने अनुभव को परिपक्व किया।

जब वे ऑक्सफोर्ड के समर विले कॉलिज में अध्ययन कर रही थीं, उन्होंने ब्रिटि मजदूर दल के आन्दोलन में भाग लिया, क्योंकि इस दल की सहानुभूति भारती स्वाधीनता आन्दोलन के साथ थी। २१ वर्ष की आयु में, १९३८ में इन्दिरा जी भारती कांग्रेस में सम्मिलित हुईं। सन् १९४२ में इन्दिरा जी का विवाह श्री फिरोज गाँधी साथ सम्पन्न हुआ और उसके कुछ ही दिनों बाद दम्पति को स्वाधीनता आन्दोलन में जे जाना पड़ा, इस प्रकार उन्होंने इलाहाबाद की नैनी जेल में १३ मास व्यतीत किये। जे से छूटने के बाद वे उत्साह से समाज सेवा के कार्यों में लग गईं। १९४६ में पं० नेह वायसराय की काउन्सिल के उपाध्यक्ष बनकर दिल्ली आ गये, इन्दिरा जी भी उनके सा दिल्ली आ गईं। राष्ट्र के संकट के क्षणों में इन्दिरा जी कभी पीछे नहीं हटीं और न झुककर देखा ही। वे सदैव आगे रहीं और अपने को समस्याओं के हल करने में जु किया। देश के विभाजन के समय सन् १९४७ में पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थि

को सुख-सुविधा प्रदान करने के लिये उन्होंने किस तरह कार्य किया, वह किसी से छिपा नहीं। १९५५ में उन्हें कांग्रेस की कार्य-समिति में सम्मिलित किया गया और अपने त्याग एवं तपस्या के चार वर्ष बाद ही वे अखिल भारतीय कांग्रेस की अध्यक्ष बन गईं। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में इन्दिरा जी ने सारे देश का दौरा किया और मुख्य रूप से युवक वर्ग में नया उत्साह और चेतना भर दी और केरल के चुनावों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। सन् १९६२ में जब चीन ने विश्वासघात करके भारत पर आक्रमण किया था, तब देश के कर्णधारों की स्वर्णदान की पुकार पर यह प्रथम भारतीय महिला थी, जिन्होंने अपने समस्त पैतृक स्वर्ण आभूषणों को देश की बलि-वेदी पर चढ़ा दिया था, इन आभूषणों में न जाने कितनी जीवन की मधुरिम स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं और इन्हें सजोए इन्दिरा जी कभी-कभी प्रसन्न हो उठती थीं। चीन के आक्रमण के समय देश की संकटकालीन स्थिति में उन्होंने केन्द्रीय नागरिक परिषद् की अध्यक्षता का भार भी सम्भाला। इस परिषद् का कितना बड़ा उत्तरदायित्व था, यह आज कल्पनातीत है, हमलावर चीन को भारत भूमि से बाहर करने के लिये जन-सहयोग को व्यवस्थित करना, जवानों के लिए हर प्रकार का सामान तथा सुविधायें जुटाना, सभी दलों का पूरा सहयोग प्राप्त करना, आदि कार्य सरल नहीं थे। १९६५ में जब पाकिस्तान ने भारत पर अपना बर्बर आक्रमण किया तब श्रीमती इन्दिरा जी ने राष्ट्र की सेवा में अपना दिन-रात एक कर दिया। वे भारतीय वीर जवानों के उत्साहवर्द्धन एवं सान्त्वना देने के लिये युद्ध के अन्तिम मोर्चों तक निर्भीक होकर गईं। केन्द्रीय सरकार के सूचना एवं प्रसारण मन्त्री के रूप में उन्होंने अपने मन्त्रालय में जो सुधार और सराहनीय ढंग से कार्य किया, वह देशवासियों से छिपा नहीं।

१९ जनवरी, १९६६ को देश ने एक बार फिर प० नेहरू की साकार आत्मा श्रीमती इन्दिरा जी को बड़े विश्वास और भरोसे के साथ अपनी सुरक्षा और समृद्धि के लिये अपनी बागडोर उनके हाथ में देकर सुख और शान्ति की श्वास ली। १९ जनवरी, १९६६ को देश फूला नहीं समाया, जब उसे फिर एक ऐसा माँझी मिल गया जो कि उसकी पुरातन नौका को आँधी और तूफानों के थपेड़ों से बचाते हुये पूर्ण समृद्धि के गौरवशाली किनारे तक बड़े चातुर्य और बुद्धिमत्ता से खेता हुआ ले चलेगा। १९ जनवरी १९६६ को भारी बहुमत से देश ने इन्दिरा जी को अपना नेता चुनकर एक बार फिर राष्ट्रनायक नेहरू की नीतियों में आस्था प्रकट करके उस युगपुरुष को अपनी भावभरी श्रद्धाञ्जलि भेंट की।

अपने एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी श्री मोरारजी देसाई को परास्त कर इन्दिरा जी ने २४ जनवरी १९६६ को अपराह्न १ ३० बजे, बड़े गम्भीर परामर्श और विचार के पश्चात् अपने मन्त्रिमण्डल की सूची तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् को दी तथा उसी दिन २ १५ बजे प्रधानमन्त्री पद की शपथ ग्रहण करके कार्य आरम्भ किया।

१९६७ के आम चुनावों में इन्दिरा जी ने बहुत परिश्रम किया जिसके परिणाम-स्वरूप कांग्रेस का अत्यधिक विरोध होते हुये भी केन्द्र में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिल सका। कांग्रेस संसदीय दल के नेता के लिये श्रीमती इन्दिरा गाँधी के साथ-साथ पुनः श्री मोरारजी देसाई ने चुनाव लड़ने का निश्चय किया। श्री कामराज, श्री मोरारजी देसाई तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी तथा अन्य नेताओं के प्रयास से चुनाव का संकट टल गया। श्री मोरारजी देसाई ने उप प्रधानमन्त्री एवं वित्तमन्त्री का पद स्वीकार कर लिया और श्रीमती इन्दिरा गाँधी निर्विरोध रूप से संसदीय दल की नेता चुन ली गईं। उन्होंने प्रधानमन्त्री पद सम्भाल कर देश को एक नया मन्त्रिमण्डल दिया।

इन्दिरा जी शरीर से भले ही कमजोर हों परन्तु उनमें अटूट कार्यक्षमता है। दृढ़ निश्चय और विवेकपूर्ण निश्चय उनके चरित्र की विशेषतायें हैं। वे सच बोलती हैं और सफाई से बात करती हैं। वे कोई झूठे वायदे करना पसन्द नहीं करतीं और सिद्धान्तों पर अटल रहना चाहती हैं। उनके जीवन पर गांधी और टैगोर का प्रभाव है। उन्होने एक बार कहा था कि—"बापू ने मुझे सच्चाई और निर्भयता सिखाई।" यही कारण है कि प्रधानमन्त्री बनने के बाद उन्होने देश के हित में बड़े-बड़े महत्वपूर्ण निर्णय किये और उन पर अन्त तक हिमालय की भाँति अडिग रहीं। इन्दिरा जी का मुख्य लक्ष्य देश से गरीबी दूर करना रहा और वे इस काम को जल्दी से जल्दी पूरा करना चाहती हैं।

चण्डीगढ़ के प्रश्न पर दर्शनसिंह फेरूमान के अनशन और उनकी मृत्यु से भी अपने निश्चय से न हटने वाली प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का अडिग, साहसी और ध्रुव निश्चयी व्यक्तित्व देश की जनता के समक्ष उस समय आया जब उन्होंने देश मे समाजवाद लाने के लिए रचनात्मक पदन्यास किया। पुराने पूँजीवादी साथियों की परवाह न करते हुए उन्होंने बैंक-राष्ट्रीयकरण की घोषणा की। पुराने साथी इससे झल्ला उठे परन्तु देश की जनता ने इसका हृदय से स्वागत किया। पुराने साथियों ने साथ छोड़ दिया पर देश की जनता ने इन्दिरा जी का पूरा साथ दिया। इस समर्थन में, देश भर में प्रदर्शन हुये और प्रधानमन्त्री निवास पर बधाई देने वालों का महीनों तांता बंधा रहा। इसी प्रकार पूँजीवादियो के विरोध की परवाह न करते हुये देश की ५५ करोड़ जनता के कल्याण को ध्यान में रखते हुए उन्होने अनाज के थोक-व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिया और अपने निर्णय पर पर्वत की भाँति अडिग रही।

जब राष्ट्रपति पद के लिए पुराने साथियो ने इन्दिरा जी को दबाने के लिए श्री नीलम संजीव रेड्डी का निश्चय कर लिया तो उन्होने सिंह और सपूत की भाँति लकीर को छोड़कर स्वाभिमान भरी सिंह गर्जना की और वह गर्जना श्री रेड्डी की पराजय में परिणत हुई। देश की जनता ने इन्दिरा जी का पूर्ण समर्थन किया।

फरीदाबाद और बंगलौर के कांग्रेस अधिवेशनों से यद्यपि विरोधी एवं विषाक्त प्रचार चल रहा था परन्तु इन्दिरा जी उसकी कोई परवाह न करते हुए जनता और देश के कल्याण के लिए सतत प्रयत्नशील रही। विरोधियो ने अपनी घटती हुई कीर्ति को देखकर कुछ षड्यन्त्र रचा और इन्दिरा जी को कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से निष्कासित करके संसदीय दल को नया नेता चुनने की आज्ञा दी।

परन्तु वह अडिग व्यक्तित्व अपने स्थान पर अडिग ही रहा। विरोधियो को मुँह की खानी पड़ी, संसद के बहुमत ने उनमे पूर्ण विश्वास व्यक्त किया। कुछ अन्य विरोधी दलों ने भी हृदय खोलकर प्रधानमन्त्री का पूर्ण समर्थन किया तथा भविष्य के लिए पूर्ण आश्वासन दिया।

भारतीय जनता और अपनी आत्म-शक्ति पर दृढ़ विश्वास रखते हुए १९६९ के अन्त में इन्दिरा जी ने कांग्रेस का विभाजन कर दिया। पुराने प्रतिक्रियावादियों को छोड़ते हुए युवा पीढ़ी को साथ में लेकर इन्दिरा जी आगे बढ़ती गईं। दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करके सुब्रह्मण्यम को अन्तरिम कांग्रेस अध्यक्ष तथा बम्बई के खुले महाअधिवेशन मे कांग्रेस अध्यक्ष पद पर श्री जगजीवनराम को सुशोभित कराया और स्पष्ट घोषणा की कि केन्द्रीय सरकार अब भी दृढ़ और स्थिर सरकार है, देश में मध्यावधि चुनाव नही होंगे। परन्तु समय की गति को पहचानते हुए तथा देश के समक्ष उपस्थित अनिश्चितता, पराश्रयता और सन्दिग्धावस्था को समाप्त करने के लिए श्रीमती गाँधी ने दिसम्बर, १९७० में संसद को भंग करके देश में मध्या-

वधि चुनाव कराने के लिये राष्ट्रपति से सिफारिश की। राष्ट्रपति ने उसे स्वीकार कर लिया। श्रीमती गांधी का यह क़दम पूर्ण त्याग, अद्वितीय साहस और अटूट वीरता से भरा हुआ था। कौन जानता था कि श्रीमती गांधी एम० पी० भी चुनी जायेंगी या नहीं। दो माह पश्चात्, मार्च १९७१ का प्रथम सप्ताह पंचम महानिर्वाचन के लिए निश्चय किया गया। श्रीमती गांधी ने समस्त देश की जनता के आगे अपने "गरीबी हटाओ" के सिद्धान्त को रक्खा। जनता उनकी सत्यता, त्याग और तपस्याओं के आगे नतमस्तक हो गई और उन्हें तथा उनकी नई कांग्रेस को इतने भारी बहुमत से जिताया कि शायद पं० नेहरू के समय में प्रथम और द्वितीय महानिर्वाचनों को छोड़कर कभी भी इतना बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था। उन्हें संसद में ३५० से अधिक स्थान प्राप्त हुये। संसार देखता रह गया इस अभूतपूर्व विजय को। श्रीमती गांधी के नेतृत्व में देश ने स्थायी केन्द्रीय सरकार प्राप्त की। उनका दो-तिहाई बहुमत था और उन्हें संविधान में संशोधन का अधिकार प्राप्त था।

इन्दिरा जी जैसा निर्भीक एवं प्रगतिशील व्यक्तित्व देश के राजनैतिक रंगमंच पर अभी तक नि सन्देह नहीं आया। उनका जादू भरा नेतृत्व विश्व के राजनीतिज्ञों के लिए एक रहस्यमय आकर्षण बन गया। १९७२ में भारत के दस प्रान्तों में कांग्रेस की अभूतपूर्व विजय उन्हीं के नेतृत्व का परिणाम है। दिसम्बर ७१ के भारत-पाकिस्तान युद्ध में भारत की अद्वितीय विजय के साथ साथ विश्व राजनीति पर हावी होना तथा बंगला देश के नव-निर्माण एवं उसकी रक्षा ने इन्दिरा जी की गौरवपूर्ण यशोगाथा को ऐतिहासिक बना दिया है। इससे भी अधिक ऐतिहासिक इलाहाबाद उच्च न्यायालय का १२ जून १९७५ का वह निर्णय है जिसमें श्रीमती गांधी का १९७१ का लोक सभा की सदस्यता का चुनाव अवैध घोषित किया गया। हिमालय की दृढ़ता और समुद्र की गम्भीरता की प्रतिमूर्ति श्रीमती गांधी को यह निर्णय अपने लक्ष्य से विचलित न कर सका। इस घोषणा के एक सप्ताह के भीतर ही राष्ट्रपति ने देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी। श्रीमती गांधी ने जन-जन के कल्याण के लिए तुरन्त ही २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया और उस पर दृढ़ता से अमल कराया गया। देश में अनुशासन जागा, सामाजिक व्यवस्थायें नियन्त्रित हुईं और गरीब मुस्करा उठा। ७ नवम्बर, १९७५ को उच्चतम न्यायालय ने श्रीमती गांधी के चुनाव को सर्वसम्मति से वैध घोषित किया। भारत का जन-मानस जो २५ जून को मुरझा सा गया था, फिर से, आनन्दातिरेक में झूम उठा अपने प्रिय प्रधानमन्त्री की विजय-वैजयन्ती पर। दृढ़ता, निर्भीकता और अजेयता से परिपूर्ण श्रीमती गांधी का व्यक्तित्व विश्व के इतिहास में निश्चय ही अद्वितीय है।

मार्च १९७७ के छठवें लोकसभा चुनावों में स्वयं की तथा कांग्रेस दल की पराजय के बाद श्रीमती गांधी ने २२ मार्च ७७ को प्रधानमन्त्री पद से त्याग-पत्र दे दिया। वे ११ वर्ष ५६ दिन भारतवर्ष की प्रधानमन्त्री रहीं। २२ मार्च ७७ को श्रीमती गांधी ने जनता पार्टी की नई बनने वाली सरकार को अपनी शुभकामनायें व्यक्त करते हुए एक वक्तव्य में कहा कि—

"चुनाव उस लोकतन्त्री प्रक्रिया का अंग है जिसके प्रति हम वचनबद्ध हैं। मैंने अनेक बार कहा है और मैं ऐसा विश्वास भी करती हूँ कि देश को मजबूत बनाना और जनता के जीवन को अधिक उन्नत करना चुनाव हारने जीतने से भी अधिक महत्वपूर्ण है। मैं नई बनने वाली सरकार के प्रति अपनी शुभ कामनायें प्रकट करती हूँ। मैं आशा करती हूँ कि हम सब धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और लोकतन्त्री सिद्धांतों को और भी मजबूत

किया जायेगा जो हमारे देश की नींव है। देश के सामने जो कार्य हैं उन्हें सम्पन्न करने के लिये मिले-जुले प्रयत्नों में कांग्रेस पार्टी और मैं रचनात्मक सहयोग देने को तैयार हूँ। हमें इस महान् देश पर गर्व है। प्रधानमन्त्री का पद छोड़ते हुए मैं अपने साथियों, अपने दल और उन करोड़ों नर नारियों और बच्चों के प्रति हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इन वर्षों मुझे अपना सहयोग और स्नेह दिया। जनता के हर वर्ग के प्रति मेरे प्रेम और कल्याण की भावना अपरिवर्तित रहेगी। बचपन से ही जनता की यथाशक्ति सेवा करना मेरा लक्ष्य था। मैं आगे भी ऐसा करती रहूँगी। आज भी और सदा ही आपके लिये मेरी शुभकामनायें।"

इस प्रकार ग्यारह वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ 'इन्दिरा युग' देश में समाप्त हो गया। परन्तु अस्थायी और क्षणिक था क्योंकि—

खुदा उस मुसाफिर की हिम्मत बढ़ाये,
जो मंजिल को ठुकराये, मंजिल समझकर।

२४ मार्च १६७७ को केन्द्र में जनता सरकार की स्थापना और अपनी करारी पराजय की चोट श्रीमती गांधी को विचलित न कर सकी। वे दुगुने उत्साह से भारत की जनता की सेवा में लग गईं। दिल्ली में बाढ़ आई तो उन्होंने बाढ़ग्रस्त दुखी जनता के घर-घर जाकर अन्न और वस्त्र दिये। असम में भूकम्प ने जब अपार जन-धन की क्षति की तो इन्दिराजी वहाँ पहुँचीं। बिहार में हरिजनों पर अत्याचार हुये तो इन्दिरा जी का हृदय चीत्कार कर उठा, वे वहाँ गईं और संत्रस्त जन मानस को आश्वस्त किया। देश में जहाँ भी साम्प्रदायिक उपद्रव हुए या दैवी आपदायें आयीं, वहाँ-वहाँ इन्दिरा जी पहुँचीं, उनकी सहायता और सहानुभूति पहुँची। जबकि जनता या लोकदल की सरकारों ने श्रीमती गांधी के व्यक्तित्व के दमन करने के लिये कोई कसर नहीं उठा रक्खी थी। श्रीमती गांधी को गिरफ्तार किया गया, विशेष अदालतों का गठन कर उन पर मुकदमे चलाये गए; शाह, गुप्ता आदि कई जाँच आयोग बिठाये गये, पर किसी अदालत ने उन्हें दोषी करार नहीं दिया। इतनी कठिन परिस्थितियों और विपरीत वातावरण में भी श्रीमती गांधी सदैव मुस्कराती हुई देश-विदेशी संवाददाताओं से मिलतीं, दर्शकों और प्रतिनिधि मण्डलों से भेंट करतीं तथा जनता की सेवा में सबसे आगे रहतीं। सत्य ही है—

उदेति सविता ताम्रस्ताम्रएवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

समय बदलते देर नहीं लगती और कब बदलेगा यह कोई कह नहीं सकता। श्रीमती गांधी नवम्बर १६७८ में कर्नाटक में चिकमंगलूर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से लोक सभा के लिए सदस्य चुन ली गईं लेकिन संसद की विशेषाधिकार समिति द्वारा विशेषाधिकार हनन का दोषी पाये जाने पर उन्हें २० दिसम्बर १६७८ को लोक सभा की सदस्यता से वंचित कर संसद के सत्रावसान तक के लिए जेल भेज दिया गया। जनता पार्टी की पारस्परिक फूट, ईर्ष्या, पदलोलुपता का संघर्ष आदि का लाभ शनैः शनैः श्रीमती गांधी को मिलता गया। भारी दल-बदल के कारण १५ जौलाई, १६७६ को जनता सरकार को त्याग-पत्र देना पड़ा तथा श्रीमती गांधी के समर्थन से २८ जुलाई, १६७६ को लोकदल की सरकार बनी, विश्वास मत प्राप्त करने के समय किन्हीं विशेष कारणों से श्रीमती गांधी ने अपना समर्थन वापस ले लिया। परिणामस्वरूप श्री चरणसिंह को त्यागपत्र देना पड़ा। राष्ट्रपति श्री रेड्डी ने लोकसभा भंग करने के साथ-साथ मध्यावधि चुनाव कराने की घोषणा कर दी तथा श्री चरणसिंह कामचलाऊ सरकार के

प्रधानमन्त्री बने रहे।

जीवन में पहली बार श्रीमती गाँधी विरोधी दल की नेता के रूप में चुनाव मैदान में थीं। विरोधों और कठिनाइयों के बावजूद भी केवल अकेला व्यक्तित्व भारत के एक आंचल से दूसरे आंचल तक कांग्रेस (इ) की नीतियों और लक्ष्यों की घोषणा करता, जनता के दुःख दर्दों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए आश्वासन देता तथा देश को स्थिर सरकार देने का वचन देता। कांग्रेस (इ) के घोषणा-पत्र में स्पष्ट कहा गया था कि श्रीमती गाँधी ही आज एकमात्र नेता हैं जो देश को अराजकता तथा बढ़ती हुई महंगाई से मुक्ति दिला सकती हैं। ३ और ६ जनवरी, १९८० को सारे भारत में सातवीं लोकसभा के लिए चुनाव हुए। "इन्दिरा लाओ, देश बचाओ" की सार्थकता एवं सारवत्ता भारतीय जनमानस पर अंकित हो चुकी थी। जनता और लोकदल की सरकारों की सिद्धान्तहीन राजनीति और दिशाहीन शासन के फलस्वरूप राजनैतिक अस्थिरता, दिन पर दिन बढ़ते हुये मूल्यों से मुक्ति पाने के लिये जनता छटपटा रही थी। परिणामस्वरूप जनता ने श्रीमती गाँधी एवं उनके दल को दो-तिहाई बहुमत से विजयी बनाकर संसद में भेज दिया। १४ जनवरी, १९८० को इन्दिरा जी ने भारत के प्रधानमन्त्री पद की शपथ ग्रहण की। प्रधानमन्त्री पद ग्रहण करने के बाद श्रीमती गाँधी ने देश में व्याप्त समस्याओं को दूर करने के लिए प्रभावकारी कदम उठाये। सन् १९८२ में उन्होंने नया बीस सूत्रीय कार्यक्रम लागू करके देशवासियों को एक नया जीवन दिया। इसी वर्ष उन्होंने दिल्ली में नवम् एशियाड का सफलतापूर्वक आयोजन करवा कर देश को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति व गौरव का अधिकारी बनाया। श्रीमती गाँधी की दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि वे दिल्ली में आयोजित ७वें निर्गुट देशों के सम्मेलन १९८३ और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में निर्गुट आन्दोलन की अध्यक्ष चुनी गईं। क्यूबा के राष्ट्रपति फीडेल कास्ट्रो और फिलीस्तीनी मुक्ति संगठन के प्रमुख श्री यासर अराफात ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी को विश्व का एक महान् राजनीतिज्ञ स्वीकार किया। इतना ही नहीं उनके प्रधानमन्त्रित्व काल में श्री राकेश शर्मा अन्तरिक्ष यात्रा करके प्रथम भारतीय व्योम पुत्र बन गये और भारतीय महिला बचेन्द्रीपाल ने एवरेस्ट की चोटी पर तिरंगा झण्डा लहराने में सफलता प्राप्त की। भारत की जनता जानती है कि इन्दिरा जी के हाथों में भारत का गरिमापूर्ण भविष्य सुरक्षित रहेगा।

अलगाववादियों से निपटने के लिये एवं पंजाब प्रदेश को आतंक-मुक्त करने के लिये एक बार फिर इन्दिरा जी को अग्नि परीक्षा में गुजरना पड़ा। उन्हें अपने कुशल नेतृत्व में पंजाब में ३ जून, १९८४ को सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। देश उनकी इस महान् शक्ति और विवेक को निश्चय ही युगों-युगों तक नहीं भुला पायेगा। ●

"सीमान्त गाँधी" बादशाह खान और भारत

भारत विभाजन के बाद गाँधी जन्म शताब्दी के अवसर पर एक बार फिर ऐसे व्यक्तित्व के दर्शन हुए जिसमें राष्ट्रपिता गाँधी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व ज्यों का त्यों समाया हुआ है। उस व्यक्तित्व का निर्माण यद्यपि इस देश की मिट्टी से नहीं हुआ, परन्तु फिर भी उसकी आत्मा भारतीय है, उसे इस देश से प्यार है, देशवासियों के प्रति ममता है। सत्य और अहिंसा में अटूट एवं अडिग आस्था रखते हुए जिसने अपना सारा जीवन राष्ट्र की सेवा के लिए महात्मा गाँधी के चरणों में समर्पित करके उनका सारा जीवन-दर्शन अपने मे समा लिया।

बादशाह खान का जन्म २४ दिसम्बर १८८० को पख्तूनिस्तान में जो उस समय पश्चिमी सीमा प्रान्त कहा जाता था, उतमान जई नामक गाँव में हुआ था। शिक्षा-दिक्षा के पश्चात् ये युवावस्था से ही मानवता के अनन्य सेवक और निर्भीक सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में जनता की आँखों के सामने आ गये थे। ये अपने प्रारम्भिक जीवन से ही पख्तून जाति को विद्या और ज्ञान के अभाव में पारस्परिक दलबन्दी, ईर्ष्या-द्वेष, व्यक्तिगत-स्वार्थ तथा अनेकों सामाजिक कुरीतियों एवं बुरी प्रथाओं में ग्रस्त देखकर उद्विग्न हो उठे थे। अतः पख्तून जाति के उत्थान के लिए और उसे कट्टर पंथी अंधविश्वासों तथा अंग्रेजों की शोषणात्मक स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिये उन्होंने सन् १९१० और १९२१ के बीच में अज्ञानान्धता को दूर करने के लिये अनेकों स्कूल और कालेजों की स्थापना करायी, तथा "अंजुमन-इस्लाह" नामक एक संस्था का भी श्रीगणेश एवं संचालन किया। इस प्रकार ये अंग्रेजों की काली सूची में आकर इनके कट्टर शत्रु माने जाने लगे। परिणामस्वरूप अनेकों बार जेल यातनायें भोगनी पड़ीं।

इन्हीं दिनों ये अपने प्राणों को हथेली पर रखकर गुप्त रूप से गाँव-गाँव मे घूम-घूम कर क्रान्तिकारी समाचार-पत्रों का प्रचार एवं प्रसार भी करते थे, जिनमें 'जमींदार' 'अलबलगा' 'मदीना' तथा मौलाना अब्दुल कलाम आजाद का 'अलहलाल' प्रमुख पत्र थे। १९२८ मे बादशाह खान ने स्वयं 'पख्तून' नामक पत्र निकाला, जिस पर अंग्रेजों ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। बाद मे पाकिस्तान सरकार ने भी उस पर कई बार रोक लगा दी। १९२९ मे इन्होंने 'खुदाई खिदमतगार' के नाम से एक और संस्था गठित की, जिसका उद्देश्य, बिना स्वार्थ के मानव मात्र की सेवा करना तथा जनता में सत्य-अहिंसा से युक्त सादा और सरल जीवन व्यतीत करने का प्रचार करना था।

भारतरत्न बादशाह खान—
भारत यात्रा और विचार

बादशाह खान भारतीय कांग्रेस की गतिविधियों से पहले से ही पूर्ण परिचित थे। १९१९ के रौलट एक्ट के विरुद्ध उतमान जई मे विशाल जन-सभा का आयोजन

तथा खिलाफत कमेटियों में सक्रिय कार्य करने के कारण उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा था। १९२० की कलकत्ता और नागपुर के कांग्रेस सम्मेलनों की अपीलों ने इनको एक दर्शक के रूप में बड़ा प्रभावित किया था। सन् १९२० में जब कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ तब सर्वप्रथम बादशाह खान की मुलाकात गांधी जी और नेहरू से हुई और तभी से उनके राजनीतिक जीवन में तीव्रता आई। १९३० में ही उनका प्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस से सम्बन्ध जुड़ा। धीरे-धीरे वे कांग्रेस मे इतने लोकप्रिय हो गये कि सन् १९३४ के बम्बई अधिवेशन मे इन्हें अध्यक्ष पद पर बैठाने की अथक कोशिशें की गयीं परन्तु इन्होंने एक सिपाही और खुदाई खिदमतगार की हैसियत से ही बने रहने की इच्छा व्यक्त की और दूसरों के आग्रह को टाल दिया। बड़ी मुश्किल से वे इसी अवसर पर अखिल भारतीय स्वदेशी का उद्घाटन करने के लिए राजी हुए थे। सीमाप्रान्त में इनके प्रवेश पर अंग्रेजों ने पाबन्दी लगा दी थी। उस समय इन्होंने वर्धा और कलकत्ते में कांग्रेस की शक्ति बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान किया था। सन् १९३८ में कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस शर्त पर कि युद्ध के बाद अंग्रेज भारत को स्वतन्त्र कर देंगे तो वह उनकी सहायता युद्ध मे करने को तत्पर हैं—अहिंसावादी सीमान्त गांधी ने इस समिति से त्याग-पत्र दे दिया क्योंकि उनकी दृष्टि से युद्ध मे अंग्रेजो की सहायता करना हिंसा को बढ़ावा देना था। नि सन्देह बादशाह खान स्वतन्त्रता से बड़ी वस्तु अहिंसा को मानते हैं।

विभाजन से पूर्व सीमा प्रान्त में जनमत संग्रह किया गया। जनता के समक्ष दो विकल्प रखे गये थे—(१) वहाँ के लोग भारत में मिलना चाहते हैं, या (२) पाकिस्तान में। बादशाह खान तथा उनके भाई डा० खान साहब चाहते थे कि एक विकल्प यह भी होना चाहिये कि पख्तून स्वतन्त्र रहें, लेकिन यह बात नहीं मानी गई। स्वतन्त्रचेता पठानों ने उस जनमत संग्रह का बहिष्कार कर दिया। इसका परिणाम यह निकला कि अंग्रेजों और मुस्लिम लीग की दुरभि सधि से सीमाप्रान्त पाकिस्तान का अंग बन गया। बादशाह खान ने इसके लिए कांग्रेस को माफ नहीं किया, परन्तु सच्चे खुदाई खिदमतगार की तरह उन्होंने मन मे घृणा नहीं रखी, उन्हें आज भी भारत से उतना ही स्नेह है जितना पहिले था।

बादशाह खान निर्भीक एवं सत्यनिष्ठ नेता थे। उन्होंने ५ मार्च, १९४८ को पाकिस्तानी लोकसभा में राज्य-भक्ति की शपथ ली थी। लोक सभा मे दिए गए अपने भाषण में सीमान्त गांधी ने ललकारते हुए कहा था—"भारत ने आजादी हासिल करली है, पाकिस्तान आज ब्रिटिश अफसरों से लदा हुआ है। एक ने अपना घर सम्भाल लिया है पर दूसरा अपने घर मे विदेशियों के गीत गा रहा है, देश मे आर्डिनेंस लागू हो रहे हैं। प्रान्तीयता का विष बढ़ रहा है। मैं स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान नहीं चाहता, परन्तु पाकिस्तान के वृक्ष की एक शाखा पख्तूनिस्तान को चाहता हूँ, हम अपनी पख्तून संस्कृति को चाहते हैं, गुलामों की गुलामी हमें मान्य नहीं"। करांची में दिए गए भाषण में बादशाह खान ने कहा था—"आज पाकिस्तान के पूँजीपति स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी पठानों से डर रहे हैं। ये वही सेनानी हैं, जिन्होंने पाकिस्तान और भारत को आजाद कराया। इन्होंने स्वतन्त्रता के युद्ध में आहुति दी थी। आज उन्हीं से पाकिस्तान का धनी वर्ग घबरा उठा है। पठानों की निष्काम और निःस्वार्थ सेवाओं से ये स्वार्थी, दम्भी और अहंकार के पुतले डर रहे हैं। लाखों रुपये की जायदाद जो हमारे भाई हिन्दू और सिख अमानत के तौर पर छोड़ गये हैं, उन्हें सीगी अफसरों ने आपस में बाँट लिया है। असलियत में यह जायदाद शरणार्थी भाइयों को देनी चाहिये, जो भारत से आये हैं।

हम यह जानना चाहते हैं कि हमारा क्या भाग्य है। पाकिस्तानी प्रेस और रेडियो पठानों के विरुद्ध लिखने और बोलने में जरा भी नहीं शर्माता।"

अहिंसा में बादशाह खान की अटूट आस्था एवं विश्वास था। इन्होंने अटक पार युद्धशाली पख्तूनों के हाथ से बन्दूकों को फिकवाकर उनके हिंसापूर्ण हृदय में मानव मात्र की सेवा का भाव जगाया और उन्हें शोषण तथा अन्याय के विरुद्ध सत्याग्रह करने के लिए प्रेरित किया। अंग्रेजों के अत्याचार भी इन्हें अहिंसा से विमुख न कर सके। शान्ति, सत्य और अहिंसा की त्रिवेणी पर आधारित बादशाह खान के निर्भीक एवं निष्कपट भाषणों का श्रोताओं पर जादू का सा प्रभाव होता था। बादशाह खान के विचार में राष्ट्रीय हित और जातीय उत्थान, शान्ति और सुख का एकमात्र साधन धर्म है। किन्तु इनका धर्म मनुष्य को सत्य, न्याय, बन्धुत्व का ज्ञान कराने तथा ईश्वर के सभी जीवों की सेवा करने के लिये है। जिस मनुष्य में मानव जाति का हित-चिंतन और प्रेम का भाव नहीं होता, घृणा होती है वह उनकी दृष्टि से धर्म से कोसों दूर है।

गांधी जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर सीमान्त गांधी का भारत आगमन एक सुखद एवं महत्वपूर्ण घटना थी। २ अक्तूबर ६९ को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए विशाल सार्वजनिक सभा में बादशाह खान ने कहा :—

"मैं २२ वर्ष के बाद यहाँ आया हूँ। इस दौरान हम पर जो गुजरी है वह शायद आपको मालूम न हो। बाईस वर्ष के बाद आपकी मुहब्बत और गांधी जी की याद मुझे यहाँ खींचकर लाई है। मैं आप लोगों के लिए यहाँ आया हूँ। मैं यहाँ आपसे पैसा माँगने नहीं आया। पख्तूनिस्तान के मामले में मदद प्राप्त करने के लिए भी यहाँ नहीं आया हूँ वह तो हमें मिलने ही वाला है। मैं आप लोगों को अपना मुरीद बनाने यहाँ नहीं आया हूँ। मैं इस गरज से यहाँ आया हूँ कि गांधी जी ने जो सबक सिखाया था उसकी आप लोगों को याद दिलाऊँ और यह देखूँ कि आपने उस पर कहाँ तक अमल किया है। मैं आपको याद दिलाने आया हूँ कि आप अपनी तवारीख देखें और उन बातों पर गौर करें; जो कौमें बात अधिक करती हैं और उन पर अमल कम, वह अधिक दिनों तक जिंदा नहीं रह सकतीं" इत्यादि।

इसके पश्चात् बादशाह खान ने भारत के विभिन्न राज्यों और नगरों का दौरा किया, स्थान-स्थान पर जनता बादशाह खान के दर्शनों और उनके मानवीय गांधीवादी विचारों को सुनने के लिये उमड़ पड़ती थी। भारतीय जनता को सीमान्त गांधी में अपने प्रिय बापू के दर्शन होते हैं। बादशाह खान हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और पारसियों का समान रूप से पथ-प्रदर्शन और उद्बोधन करते हैं।

एक बार पुनः ९६ वर्षीय सीमान्त गांधी अस्वस्थ होते हुए भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के शताब्दी समारोह में भाग लेने अपने पुत्र खान अब्दुल वली खाँ के साथ पाकिस्तान से विशेष विमान द्वारा २६ दिसम्बर ८५ को दिल्ली पधारे। प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने दिल्ली हवाई अड्डे पर उनका स्वागत किया। २७ दिसम्बर को सीमान्त गांधी प्रधान मन्त्री के साथ कांग्रेस शताब्दी समारोह में भाग लेने महात्मा गांधी नगर बम्बई पहुँचे तथा समारोह को गौरवान्वित किया।

१२ मई ८७ को बादशाह खान को दिल की बीमारी के इलाज के लिए पाकिस्तान से बम्बई लाया गया था। २६ जून ८७ को स्वस्थ होने पर उन्हें अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। लेकिन जब वे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे तभी उन्हें हृदय आघात हो

गया। उन्हें दिल्ली के आल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट ले जाया गया। हालत कुछ सुधरने पर वायुयान से १६ अगस्त ८७ को पेशावर वापस ले जाया गया। इस बीच जब वे भारत में ही थे भारत सरकार ने उन्हें सर्वो देश के सर्वोच्च पुरस्कार "भारत-रत्न" से सम्मानित किया था।

बादशाह खान पिछले छः महीनों से अचेतावस्था में थे। भारतवर्ष से जाने के बाद उन्हें पेशावर के लेडी रीडिंग अस्पताल में भर्ती करा दिया गया था। २० जनवरी ८८ को प्रातः पौने सात बजे मृत्यु ने उन पर विजय प्राप्त कर ली। भारत को सूचना मिलते ही भारत सरकार ने सीमान्त गांधी के शोक में पांच दिन के राजकीय शोक की घोषणा की तथा २१ जनवरी शुक्रवार को केन्द्रीय सरकार ने अवकाश घोषित किया। उस दिन बादशाह खान को जलालाबाद में दफनाया जाना था। बादशाह खान ने अपनी वसीयत में लिखा था कि वह चाहते हैं कि उन्हें जलालाबाद में अपने घर के बगीचे में दफन किया जाये। बादशाह खान के पुत्र तथा अवामी नेशनल पार्टी के अध्यक्ष वली खान ने उनकी अन्तिम इच्छा पूर्ति की।

स्वतन्त्रता संग्राम के समर्पित सेनानी खान अब्दुल गफ्फार खाँ के निधन से सारा भारत शोक सागर में डूब गया। भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री राजीव गांधी सहित अनेक नेताओं ने उन्हें भारत का सच्चा मित्र एवं मानवतावादी बताते हुए स्वतन्त्रता संग्राम में उनके विशिष्ट योगदान को नमन किया। प्रधान मन्त्री राजीव गांधी अपनी स्टाकहोम की यात्रा स्थगित कर बादशाह खान के अन्तिम दर्शन के लिए पेशावर पहुँचे। श्री गांधी ने जिन्ना पार्क में एक स्मारक भवन में रखे दिवंगत नेता के पार्थिव शरीर के बगल में बैठकर परम्परागत इस्लामिक तरीके से दुआ की। श्री गांधी के आने की खबर मिलते ही वहाँ अपार जन समूह उमड़ पड़ा था और लोगों ने 'हमारा दोस्त हिन्दोस्तां' के नारे लगाये। प्रधान मन्त्री ने १०० मिनट पेशावर में रहने के बाद स्वदेश लौटने से पूर्व पाकिस्तान के राष्ट्रपति जिया को तार द्वारा स्वयं तथा अपने परिवार को बादशाह खान के अन्तिम दर्शन करने के लिये धन्यवाद दिया तथा मोरे समय की सूचना पर इतने उत्कृष्ट प्रबन्ध किये जाने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। इस प्रकार स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण इतिहास का पटाक्षेप हो गया।

आज भारत स्वतन्त्र है परन्तु स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष में सीमान्त गांधी के नेतृत्व में खुदाई खिदमतगारों का जो योग था वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके इतिहास पर उनके त्याग और बलिदान की एक अमिट छाप है। कभी वे कांग्रेस की एक बहुत बड़ी शक्ति थे और इस शक्ति का ही यह प्रभाव था कि सीमा प्रान्त में कांग्रेस को कभी मुँह की नहीं खानी पड़ी। इस देश के लोग उनके प्रति महान् कृतज्ञता अनुभव करते हैं।

११. पूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी

देश के सत्तर करोड़ नर-नारियों की आँखें आज भी डबडबाई हुई हैं, जब चाहती हैं, तब बरस पड़ती हैं, शोकाकुल हृदय की वेदना जब चाहती है, कराह उठती है। हाथ, पैर, मन और मस्तिष्क शक्तिहीन से प्रतीत होते हैं। हृदय शून्य है, महलों से लेकर फूंस की झोंपड़ियों तक में वह सिसकियाँ, वही कराहट और वही आह। साधारण व्यक्ति से लेकर महान् विचारक तक वही एक देश की चिन्ता, अपने हृदय मन्दिर की देवी का नाम, उसी जनमानस की अमूल्य निधि के असंख्य गुणों का संकीर्तन और उनके अनन्त अभाव के विचार से रुदन और चीख-चीत्कार। शत-शत जातियों और उपजातियों में, धर्मों और उपधर्मों मे विभक्त इस विशाल देश का क्या होगा ? किसकी भुजाओं में शक्ति है, जो प्रबल झंझावातों और भयानक थपेड़ों से बचाते हुए भारत की नौका की पतवार अपने हाथ में लेकर, सुरक्षित तट तक पहुँचा दे। असहाय और अनाथ बालक की भाँति वह आज परमुखापेक्षी है। उसका दिव्यतम प्रकाश पुंज, उसकी अद्वितीय कलानिधि, उसका समर्थ प्रहरी, उसका अमूल्य रत्न-जटित मुकुट, विधाता के क्रूर करों ने सदा-सदा के लिए छीन लिया। अपने रक्त और स्वेद से अथक और अनवरत सिंचन में व्यस्त, भारत के हरे-भरे, हँसते और मुस्कुराते उद्यान का वह कर्मठ और तपस्वी माली आज अनन्त निन्द्रा में शयन कर चुकी है।

राष्ट्र आत्मा श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या का समाचार बिजली की तरह फैल गया, अपनी प्रिय प्रधान मन्त्री ने कुछ ही दिन पहले कहा था 'राष्ट्र की अखण्डता के लिये मेरे प्राण भी चले जायें तो मुझे चिन्ता नहीं—मेरे रक्त की एक-एक बूंद राष्ट्र की एकता के लिए समर्पित है' और वह महान् आत्मा राष्ट्र के लिए बलिदान हो गई—धिक्कार है उन क्रूर हाथों को जिन्होंने यह जघन्य कार्य किया, युगों-युगों तक आने वाली पीढ़ियाँ उस धृष्ट व्यक्ति को क्षमा नही कर सकती। अपनी प्रिय प्रधान मन्त्री की अकाल मृत्यु के समाचार के मिलते ही दिल्ली सहित देश के अनेक भागों में हिंसा भड़क उठी—चारों ओर नफरत ही नफरत थी—बदले की प्रबल भावना, लगता था यह किसी से रुकेगी नहीं, तब ही घोषणा हुई कि श्रीमती गांधी के सुपुत्र चिरंजीव राजीव को भारत का प्रधान मन्त्री बनाने का सर्व सम्मति से निर्णय लिया गया है। प्रधान मन्त्री होते ही राजीव जी ने राष्ट्र के नाम पहला प्रसारण किया—बड़े नपे तुले शब्दों में उन्होने कहा—"वह केवल मेरी ही माँ नहीं हम सबकी माँ थीं, हिंसा, घृणा व द्वेष से इन्दिरा गाँधी की आत्मा को दुःख पहुँचता था—आप शान्त रहें और धैर्य से काम लें," बिलखते हुए रोते हुये नागरिकों के आँसू थम से गये—जादू सा हो गया पूरे राष्ट्र पर—एक ओर इन्दिरा जी का पार्थिव शरीर पड़ा हुआ था दूसरी ओर माँ का लाडला—आँसुओं को थामे हुए—भारत माँ की सेवा में जुटा था—सारी रात स्वयं दिल में भारी तूफान रोके हुये दिल्ली की बस्तियों में घूम-घूमकर राजीव जी ने दुःखी जनता के आँसू पोंछे। राजीव जी के व्यक्तित्व का सब पर ऐसा प्रभाव हुआ कि नफरत की आँधी रुक सी गई। राजीव जी की कोमलता, मधुर स्वभाव, ईमानदारी ऐसे गुण

हैं जिनसे ऐसा नहीं लगता था कि वह राजनीति और कूटनीति के कर्तव्यों को इतनी अच्छी तरह वहन कर लेंगे—परन्तु उन्होंने एक के बाद एक जो सन्तुलित निर्णय लिये उन पर सारा विश्व स्तम्भित हो गया। उन्होंने पंजाब की वह विकराल समस्या जिसने उनको प्रिय माँ और पूरे राष्ट्र की आत्मा श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्राण ले लिये निर्भीकता और शान्तिपूर्ण ढंग से हल कर एक चमत्कारिक कार्य किया।

असम समस्या जिसे वर्षों से कोई हल नहीं कर पाया अत्यन्त धैर्यपूर्वक वार्ताओं के द्वारा राजीव की ओजस्विता और विवेक का विश्व में दूसरा अविस्मरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

भोपाल गैस काण्ड में कितने लोगों की जानें गईं—कितने बेघरबार हुए—कितने बच्चे अनाथ हुए और कितनी महिलायें विधवा हुईं उनके राहत कार्यों पर राजीव जी ने कड़ी निगाह रखी और इनके परिजन तो कोई वापस नहीं दिला सकता पर उनको सम्मानपूर्ण जीवन जिये रखने का श्रेय राजीव जी को ही प्राप्त हुआ। उन्होंने देश की सुरक्षा की बारीकियों की ओर वह सतत् दृष्टि रखी और सेवाओं में छिपे हुए गद्दारों को उजागर कर उन्होंने बड़े साहस का परिचय दिया था।

देश की सीमाओं की सुरक्षा के लिए वह हर समय जागरूक रहे। आधुनिकतम युद्ध के अस्त्र शस्त्रों से वह अपनी सेवाओं को सुसज्जित करने के लिए सदैव तत्पर रहे।

आदि जातियाँ—पिछड़ी जातियाँ और निर्धन वर्ग के तो वह मसीहा ही बन गये थे। देश में दूर सुदूर अंचलों में स्वयं जा-जाकर उनकी झोपड़ियों में उनके नन्हें-मुन्नों को लाड दुलार देकर उनकी वास्तविक स्थिति का इतनी बारीकी से अध्ययन करने का भी प्रशंसनीय कार्य उन्होंने किया था।

एशियाई राष्ट्रों के सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने जिस बुद्धि और विवेक का परिचय दिया उससे इन राष्ट्राध्यक्षों को अपने नये अध्यक्ष के प्रति स्नेह और विश्वास कई गुना हो गया था।

रूस, अमेरिका, इङ्गलैंड जैसे बड़े राष्ट्रों की जनता भारत के इस सपूत के दर्शनों के लिये उमड़ पड़ी थी।

हर स्थान पर तीखे प्रहार करने वाले बड़े बड़े जर्नलिस्ट (पत्रकार) उनके उत्तरों से स्तम्भित रह गये थे। मुस्कराते हुए हर बात के पूर्णतया सन्तोषजनक उत्तर देकर उन्होंने सबको चकित कर दिया था।

क्या राजीव जी को कोई दैवी शक्ति प्राप्त है। या वह किसी शक्ति के अवतार हैं—नहीं वह भारत माँ के लाल हैं। पण्डित जवाहरलाल जी के सिर पर बैठ-बैठकर, उनको घोड़ा बना-बनाकर खेलते कूदते हुए उन्ह राजनीति की शिक्षा बाल्य-काल से ही प्राप्त हुई है। फिरोज गाँधी जैसे महान् पिता की वह योग्य सन्तान हैं—विश्वम्भर को प्रिय माँ—इन्दिरा गाँधी ने घुटनों चला चलाकर, उँगली पकड़-पकड़ कर जीवन में उतारा। गम्भीर से गम्भीर मसलों पर उनसे परामर्श कर उन्ह राजनीति में निपुण किया। राष्ट्र के लिए जीना और राष्ट्र के लिए मरना सिखाया।

लोक सभा और विधान सभा के चुनावों का समय आ गया था। राजीव जी ने दृढ़तापूर्वक इन चुनावों का सामना करने का निश्चय किया था। वह चाहते तो चुनाव

कुछ दिन के लिए टाल भी सकते थे, पर वह तो ऐसी माँ के लाल ही नहीं जिसने पीछे मुड़कर देखना सीखा हो। समय पर चुनाव कराने का ऐतिहासिक निर्णय लिया गया।

श्रीमती गांधी के हत्या के दो माह के अन्दर ही चुनाव कराकर राजीव जी ने व्यूह रचना और राजनीतिक सूझबूझ का परिचय दिया। उन्होंने लौह पुरुष की तरह निर्भीकतापूर्वक सारे देश का भ्रमण किया। राजीव जी जहाँ जहाँ भी गये उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ, धन्य है भारत की जनता जिसने भारत के इस सपूत के हाथों में एक बार पुनः देश की बागडोर सम्भाल दी—चाहे लोकसभा हो या राज्य सभा सभी में राजीव जी ने सभी पुराने रिकार्ड तोड़ दिये थे।

चुनाव में अभूतपूर्व विजय प्राप्त करने के बाद राजीव जी ने देश की आन्तरिक समस्याओं को हल करने में अपना तन-मन-धन लगा दिया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा एव सामान की वृद्धि के लिए उन्होने अनेक प्रशंसनीय कार्य किये हैं।

१६८६ के सामान्य निर्वाचन में उत्तरी भारत में उनकी पार्टी को करारी हार का सामना करना पड़ा, तथापि राजीव जी अपने आकर्षक व्यक्तित्व और विलक्षण योग्यताओं के कारण अपने निर्वाचन क्षेत्र से भारी मतों से विजयी घोषित हुए। नयी लोक सभा में राजीव जी ने विरोधी दल के नेता बनकर देश की समस्याओं के प्रति जागरुक रहते हुए जनहित के कार्यों में संलग्न हैं।

राजीव जी का जन्म २० अगस्त १६४४ को हुआ था और केवल ४० वर्ष की अवस्था में वह विश्व के कुछ गिने-चुने व्यक्तियों में बैठकर अपनी सूझ-बूझ का परिचय देकर भारत को विश्व के शीर्षस्थ देशों में स्थान दिलाने के अपने दृढ़ निश्चय को साकार करने में जुटे हुए हैं। भगवान उन्हें चिरायु करें जिससे २१वीं सदी के जिस भारत की कल्पना उनके मस्तिष्क में है, वह साकार रूप धारण कर सके और भारत में ऊँच-नीच, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, देशद्रोह, निर्धनता, पिछड़ापन, बेरोजगारी, दहेज प्रथा, महिलाओं पर अत्याचार जैसी कुरीतियाँ न रहें।

समाजवाद और गांधीवाद

आज के विषमताओं से भरे युग मे मानव सुखी है अथवा दु:खी ? आप यह प्रश्न किसी भी कोटि के व्यक्ति से करके देख लीजिए, उत्तर सभी का एक ही होगा कि आज का मानव परम दु:खी है, परन्तु जब आप इस दु:ख का कारण पूछेंगे तब आप को विभिन्न रायें, सम्मतियाँ तथा आलोचनायें सुनने को मिलेंगी। वास्तव मे, आज का मानव दु:खी है और इस दु:ख का कारण है हमारे समाज का दोषपूर्ण सगठन। वैषम्य की अग्नि चारो ओर सुलग कर, धधकने की अवस्था मे आ गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो समानता युगो के लिए कहीं किसी कोने मे जाकर सो गई हो। उसी को मनाकर और जगाकर समाज मे फिर से लाने के लिए अनेक विचार-धारायें प्रस्तुत की जा रही है। आज मनुष्य को इन सामाजिक और आर्थिक विषमताओ ने इतना निरीह और निष्किचन कर दिया है कि कुछ नही कहा जा सकता। समाजवाद और गांधीवाद ये भिन्न भिन्न विचारधारायें भी मानव समाज को सुखी सम्पन्न एव समृद्ध बनाने के लिए अपना विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

आज के युग से पूर्व, लगभग दो शताब्दियो तक विश्व मे पूंजीवाद का अखण्ड एव अबाध साम्राज्य रहा। पूंजीवाद मे कोई भी व्यक्ति असख्य धन सम्पत्ति का स्वामी बन सकता है और उत्पादन के साधनो पर भी अपना व्यक्तिगत अधिकार रखता है। किसी व्यक्ति का इस प्रकृति प्रदत्त मातृभूमि पर अधिकार हो जाना और अपनी स्वेच्छा से एकाकी ही उसका उपभोग करना, एक मनुष्य के लिए कहाँ तक उपयुक्त है। प्रकृति की ओर से न इसका कोई मूल्य है और न कोई इसका स्वामी। इसी प्रकार, श्रम भी किसी एक व्यक्ति के ही अधिकार की वस्तु नही। श्रम सभी कर सकते हैं और करते हैं। दो व्यक्तियो के श्रम मे इतना अवनि और अम्बर का अन्तर नही हो सकता, जितना की उनकी आय मे देखा गया है। एक व्यक्ति जो न शारीरिक श्रम करता है और न अधिक मानसिक श्रम ही, परन्तु उसकी आय लाखो रुपये प्रतिमास होती है जबकि एक श्रमिक प्रात से सन्ध्या तक अनवरत लगे रहने पर भी अपने परिवार को न आवश्यक भोजन सामग्री ही जुटा सकता है और न कल की बीमारी के लिए एक पैसा अलग उठाकर रख सकता है। भूखे पेट रहकर वह अपने श्रम से दूसरो को उद्योगपति बना देता है। पूंजीपति और पूंजीवाद के विरुद्ध महाकवि निराला का मानस और लेखिनी भी विद्रोह भरे स्वर मे बोल उठी—

> अबे सुनबे गुलाब !
> भूल मत गर पाई खुशबू रगो आब,
> खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
> डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।

इस भयानक आर्थिक विषमता के दो कारण हैं—प्रथम तो पूंजी है, जिसके द्वारा एक पूंजीपति नवीन उद्योगों को प्रारम्भ करके नई सम्पत्ति उत्पन्न करता है। यह वह शक्ति है, जो बेचारे श्रमिक के लिए दुर्लभ होती है और जिसके माध्यम से

एक पूँजीपति बैठा बैठा मानवता का नग्न दृश्य देखा करता है। इसी प्रकार का दूसरा कारण है—पूँजीपति द्वारा जोखिम लेकर किसी नवीन उद्योग का श्रीगणेश करना, जिसे हम ज़वारम्भ कहते हैं। इसी जोखिम को उठाने के कारण वह उसके लाभ का पूर्ण अधिकारी बन बैठता है। यह तो निश्चय है, कि पूँजीवाद ने व्यावसायिक क्षेत्र में एक नवीन क्रांति उत्पन्न कर दी है, उत्पादन को अधिक बढ़ाया, मशीनों और कल-कारखानों की आशातीत वृद्धि हुई, परन्तु मानवता शनैः-शनैः ह्रास की ओर बढ़ती गई। जब मानव के सभी कार्य मशीनों ने ले लिए तब वह अकर्मण्य होता गया और उसकी कार्य-क्षमता एवम् कार्य-कुशलता नष्ट होती गई। जिस प्रकार मशीनें खरीदी जाती थीं, उसी प्रकार मजदूरों की मजदूरी भी खरीदी जाने लगी है। एक रुपया या सवा रुपया उसका मूल्य निर्धारित कर दिया गया। लाभ का बहुत बड़ा भाग उद्योगपति की जेब में जाने लगा और उनकी सफलता का आधार-स्तम्भ वह श्रमिक रात्रि को भूखे पेट सोने लगा। शनैः-शनैः पूँजीपति और श्रमिक के बीच एक भयानक खाई बन गई और वह बढ़ती रही। जैसे-जैसे पूँजीवादी व्यवस्था उत्तरोत्तर विकसित होती गई, वैसे-वैसे श्रमिक, निर्धन, अकिंचन और दरिद्र होता गया। एक ओर विद्युत प्रकाशपूर्ण अभ्रंकष प्रासाद थे, तो दूसरी ओर दुर्गन्धपूर्ण टूटी फूँस की झोपड़ियाँ। एक ओर भौतिकता एवं-विलासिता का नग्न नृत्य था, तो दूसरी ओर दरिद्रता का ताण्डव नृत्य।

किसी भी वस्तु के अधिक उत्थान के पश्चात् उसका पतन अवश्यम्भावी होता है। पूँजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप में समाजवाद का जन्म हुआ। समाजवाद ने मानव के आर्थिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई। मनुष्य ही मनुष्य का शोषण करे, इससे बढ़कर और लज्जा की क्या बात हो सकती है। जहाँ कि पूँजीवाद आर्थिक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को इच्छानुसार कार्य करने, इच्छानुसार श्रमिक को पारिश्रमिक देने और इच्छानुसार उसके शोषण को वैध घोषित करता है, वहाँ साम्यवादी विचारकों ने इस भयकर आर्थिक वैषम्य और आर्थिक क्षेत्र मे स्वेच्छाचारिता का घोर विरोध किया। समाजवाद के अनुसार, उत्पादनो के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त करके राज्य के समस्त निवासियो का सम्मिलित स्वामित्व होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी उत्पादन क्षमता के अनुसार जीविकोपार्जन के लिए श्रम का अवसर दिया जाना चाहिए और उस श्रम के बदले में उसे अपनी पारिवारिक समस्त आवश्यकताओं के लिए वेतन रूप मे या वस्तु रूप मे सभी वस्तुये प्राप्त होनी चाहिये। समाजवाद के अनुसार, किसी भी बड़े व्यवसाय का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है। सभी वस्तुओं का उत्पादन उतना ही होना चाहिए जितना कि आवश्यक है। इसीलिए समाजवाद शासन-व्यवस्था में न अधिक उत्पादन सम्भव होता है और न अधिक पूँजीकरण। इस प्रकार की शासन प्रणाली मे शोषित और शोषण का प्रश्न ही नहीं उठ पाता। समाजवाद शासन प्रणली मे अकर्मण्य, निरुद्योगी और पराश्रित जीवन निर्वाह करने वालो का नितान्त अभाव होता है। सभी श्रम करते हैं और सभी सुखी रहते हैं। इसी प्रकार, समाजवादी एक वर्गहीन समाज में विश्वास रखता है। समाजवादी विचारकों का विश्वास है कि पूँजीपतियो और श्रमिकों के संघर्ष में, अन्त मे श्रमिक वर्ग ही विजयी होगा।

समाजवाद समस्त विश्व को शोषक और शोषित, इन दो रूपो मे विभाजित करता है। वह राज्य की परिधियों मे विश्वास नहीं रखता। समाजवाद विश्व के समस्त

शोषितो को एक ध्वज के नीचे संगठित देखना चाहता है, जिसे कि शोषक वर्ग सदैव-सदैव के लिए इस पृथ्वी से समाप्त हो जाए और इस प्रकार एक नवीन वर्गहीन समाजवाद की स्थापना हो। यही कारण है कि आज के पूँजीवादी देश समाजवाद की बढ़ती हुई भावनाओ को रोकने मे सचेष्ट हैं और सदैव समाजवाद अथवा साम्यवादी देशो से आतंकित एव भयभीत रहते हैं।

भारतीय समाजवाद को गांधीवाद की सज्ञा दी जाती है, परन्तु वास्तव मे, देखा जाए तो समाजवाद और गांधीवाद मे बहुत कुछ समानता होते हुए भी थोड़ा बहुत मूलभूत अन्तर है। जिस प्रकार, समाजवाद समाज मे समानता एव श्रमिको को सुख और शांति प्राप्त कराना चाहता है, वैसा ही गांधी जी को भी समस्त जनता का श्रेय अभीष्ट था और इसलिए सर्वोदय समाज की स्थापना भी की गई थी। गांधीवाद की प्रमुख विशेषता यह है कि वह अर्थशास्त्र और राजनीति को धर्म के साथ आबद्ध देखना चाहता है। गांधीवाद जीवन के भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक पक्षो को लेकर चलता है। समाजवाद जहाँ व्यक्तियो की आवश्यकताओ की पूर्ति पर बल देता है, वहा गांधीवाद जीवन की आवश्यकताओ को कम करने पर भी बल देता है, क्योकि मानव की इच्छायें तो अनन्त हैं यदि उन्हें न रोका जाये तो उनकी पूर्ति सर्वथा असम्भव है। यदि हम उत्पादन शक्ति मे वृद्धि करते जायें तो हमारा अभीप्सित सुख और शांति सदैव आकाशपुष्प ही बने रहेंगे। इस प्रकार गांधीवाद आवश्यकताओ को कम करने मे नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक बल देता है। समाजवाद उत्पादन के लिए मशीनो की आवश्यकता समझता है। उसका तर्क है कि मशीनो से थोड़े समय मे अधिक और अच्छी वस्तु का उत्पादन हो सकता है जिससे रिक्त समय मे श्रमिक अपना आनन्द विनोद तथा अध्ययन-अध्यापन कर सकते हैं। गांधीवाद छोटे छोटे कुटीर उद्योगो का समर्थन करता है। गांधीवादी विचारको का विचार है कि मशीनो का अनावश्यक आश्रय लेने से मानव अकर्मण्य बन जाता है तथा उसमे आत्मनिर्भरता जैसी भावनायें लुप्त हो जाती हैं। दूसरी बात यह है कि जब मशीनो द्वारा अधिक उत्पादन होने लगता है तो उसको खपाने के लिए बाजारो की आवश्यकता होती है और शनै-शनै पूँजीवादी व्यवस्था की भांति साम्राज्य बनाने की आवश्यकता भी उपस्थित होने लगती है। अत मनुष्य को धीरे धीरे अपनी आवश्यकतायें कम करते जाना चाहिए, जिससे कि उसकी आवश्यक आवश्यकतायें कुटीर उद्योग से ही सरलता से पूर्ण हो सकें। गांधीवाद और समाजवाद मे प्रमुख अतर यह भी है कि गांधीवाद सत्य और अहिंसा के पवित्र सिद्धान्तो पर आधारित है। गांधी जी मनुष्य का हृदय जीतने मे विश्वास रखते थे। प्रेम और अहिंसा द्वारा किया गया हृदय-परिवर्तन अधिक चिरस्थायी होता है, अपेक्षाकृत बल और शक्ति के। गांधीवाद अन्याय और शोषण की समाप्ति शांतिपूर्ण अहिंसात्मक उपायो द्वारा ही करना चाहता है, जबकि समाजवादी या साम्यवादी यह विश्वास रखते हैं कि इस प्रकार के शोषण संस्थानो को शांतिपूर्ण प्रयासो से नष्ट नही किया जा सकता।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि यद्यपि दोनो विचारधाराओ का लक्ष्य बिन्दु एक ही है, फिर भी, साध्य समान होते हुए भी साधनो की वरिष्ठता मे पर्याप्त अन्तर है। गांधीवाद चाहता है कि श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति श्रेष्ठ साधन से हो, जबकि समाजवादी या साम्यवादी किसी भी साधन का उपयोग अनुचित नही समझते। निःसन्देह भारतवर्ष मे गांधीवाद ही सफल हो सकता है। क्योंकि यह भूमि त्याग, तपस्या और साधनाओ की ऋषि-महर्षियो की भूमि है। ●

प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली को स्पष्ट करते हुए अमेरिका के सोलहवें राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने कहा था कि **"प्रजातन्त्र वह शासन है, जिसमें जनता द्वारा जनता के हित के लिए जनता की सरकार की स्थापना की जाती है"** **(Govt. by the people, of the peple and for the people)** । इस परिभाषा से विदित हो जाता है कि प्रजातन्त्र मे जनता की सम्पत्ति प्रधान होती है, जनता के चुने हुए व्यक्ति जनता के हित को दृष्टि मे रखकर देश का शासन चलाते है प्रजातन्त्र शासन का आरम्भ अठारहवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे हुआ था ।। पश्चिमी देशों मे—सर्वप्रथम यूनान मे इस शासन प्रणाली को अपनाया गया । वहाँ उस समय दास प्रथा होने के कारण शासन तो राजा ही करता था, परन्तु देश की विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के कारण शासन-प्रणाली मे समय-समय पर सुधार करने के लिए सभ्य जनता को आमन्त्रित किया जाता था । शनैः-शनैः फ्रांस, स्पेन आदि देशों में राजतन्त्र समाप्त होता गया और प्रजातन्त्र की स्थापना होती गई । आज का युग प्रजातन्त्र का युग है । संसार के सभी बडे-बडे देशों मे प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली चल रही है ।

प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली के उद्देश्य महान् एवं आदर्श है । शासन मे जनता पूर्ण स्वतन्त्रता का उपयोग करती है । प्रजा को लिखने तथा बोलने की स्वतन्त्रता, विचारो की स्वतन्त्रता, शासन की आलोचना की स्वतन्त्रता तथा धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है । प्रजातन्त्र शासन मे जनता को अपने धर्म का पालन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, परन्तु वहाँ तक जहाँ तक वह दूसरे के धर्म मे बाधा उपस्थित न करे शासन की आलोचना भी वहाँ तक क्षम्य है, जहाँ तक कि वह जनता मे विष बीज का वपन न करे । अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, अपील करने के लिये प्रदर्शन की भी स्वतन्त्रता नागरिको को प्राप्त होती है । नागरिको के अधिकारो की सुरक्षा के लिए प्रजातन्त्र देश मे मे एक शासन विधान होता है जिसे जनता के चुने हुये प्रतिनिधि बनाते है । विधान-निर्माण मे जनता के सभी वर्गो का प्रतिनिधित्व होता है प्रजातन्त्रीय देश का शासन-विधान सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है । उसकी दृष्टि मे सभी एक समान होते है ।

प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली

१. प्रस्तावना—प्रजातन्त्र की परिभाषा एवम् प्रारम्भ ।
२. प्रजातन्त्र शासन का उद्देश्य ।
३. प्रजातन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक गुण ।
४. प्रजातन्त्र शासन के लाभ ।
५. प्रजातन्त्र से हानियाँ ।
६. उपसंहार ।

किसी भी देश मे प्रजातन्त्र की सफलता के लिए कुछ बातें आवश्यक होती हैं प्रथम तो यह कि देश की जनता सुशिक्षित होनी चाहिये, जिसे अपने अधिकारो और कर्त्तव्यो का पूर्ण रूप से ज्ञान हो । अशिक्षित देश में प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली के सचालन में अनेक कठिनाइयाँ आती है । धनवान पैसो के सहारे जनता की वोटों को खरीद लेते हैं और पदासीन होकर देश को उन्नति की अपेक्षा अवनति की ओर घसीटते हैं । दूसरी बात यह है कि देश मे कई राजनैतिक दल होने चाहियें जिससे सत्तारूढ़ दल अपनी मनमानी न कर सके । विरोधियो की कटु आलोचना के भय से सत्तारूढ़ दल किसी भी अनुचित नीति को नहीं अपनाता । तीसरी बात यह है कि देश में समाचार-पत्र भी पर्याप्त संख्या में प्रकाशित होने चाहियें तथा उन्हे जनमत के प्रकाशन की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये ।

प्रजातन्त्र शासन प्रणाली के अनेक लाभ हैं। प्रजातन्त्र शासन में राज्य की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया जाता है। राज्य व्यक्ति के विकास के लिये पूर्ण अवसर प्रदान करता है अर्थात् राज्य साधन है और व्यक्ति साध्य है। प्रजातन्त्र शासन में भी व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। वह अपने मत द्वारा किसी भी व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि चुन सकता है। भाषण व लेखों से जनता के समक्ष अपने विचार प्रकट करके वह उसका बहुमत प्राप्त कर सकता है। प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह विदित हो जाता है कि भिन्न-भिन्न देशों में जितनी क्रान्तियाँ तथा विद्रोह हुए, वे सब इसलिए हुये कि न तो उन्हें अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता थी और न अपनी बात शासकों तक पहुँचाने की सुविधा, इस प्रकार अन्याय सहते-सहते जब वे असह्य हो जाते थे, तब रक्तपूर्ण क्रान्तियाँ होने लगती थी, परन्तु प्रजातन्त्र शासन में इस प्रकार का कोई भय नहीं रहता।

प्रजातन्त्र शासन में सरकार को प्रजा के ऊपर कम से कम शासन करने की आवश्यकता पड़ती है। सरकार जनता पर मनमाना अत्याचार नहीं कर सकती क्योंकि उसको अन्य विरोधी राजनैतिक दलों तथा समाचार-पत्रों का भय बना रहता है। प्रजातन्त्र के शासन में कानून सबसे ऊपर होता है। इसीलिए उसे कानून का शासन कहा जाता है।

प्रजातन्त्र शासन में जनता प्रत्यक्ष रूप से शासन नहीं करती, अपितु जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है। चुनाव में जिस दल का बहुमत होता है, उसी दल का नेता अपना मन्त्रिमण्डल बनाता है। मन्त्रिमण्डल संसद् के सामने उत्तरदायी होता है और यह तब तक सत्तारूढ़ रहता है, जब तक संसद से उसे बहुमत प्राप्त रहता है। जब किसी दल का संसद में बहुमत नहीं रहता, तब उसे मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देना पड़ता है। इसीलिए प्रत्येक दल इसका पूर्ण प्रयत्न करता है कि जनता उससे और उसकी नीतियों से पूर्ण सन्तुष्ट रहे। इस प्रकार प्रजातन्त्र शासन में जनता की इच्छा का प्रत्येक विषय में पूर्ण ध्यान रखा जाता है।

राजनीति शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान प्लेटो ने प्रजातन्त्र शासन को 'मूर्खों का शासन'' माना है (Democracy is the Govt of fools)। उनका तर्क है कि संसार में मूर्खों की संख्या अधिक होती है, बुद्धिमानों की कम। बहुमत सदा मूर्खों का रहता है, इसलिए बहुमत का शासन मूर्खों का शासन है। अशिक्षित जनता को न अपने अधिकारों का ज्ञान होता है और न प्रजातन्त्र शासन के महत्त्व का। राजनैतिक दलों का सहारा लेकर लोग चुनाव में खड़े होते हैं, मतदाता उम्मीदवार के गुण-अवगुणों को न देखते हुए राजनैतिक दलों को वोट देते हैं। इससे अयोग्य और अभद्र व्यक्ति भी ऊपर पहुँच जाते हैं। अब प्लेटो के सिद्धान्त में कुछ सुधार होने की आवश्यकता है अब सिद्धान्त होना चाहिये "Democracy is the Govt roughs' जब कोई दल चुनाव में जीत जाता है, तो वह समर्थकों को प्रसन्न करने के लिए ऊँचे-ऊँचे पद प्रदान करता है तथा उनको व्यक्तिगत लाभ पहुँचाने वाली सहायतायें दी जाती हैं। इससे जनता में पक्षपात फैलता है और योग्य व्यक्तियों को अपनी योग्यताओं के सहज विकास का अवसर नहीं मिल पाता। जब एक एक दल का पूरा बहुमत नहीं हो पाता, तब उसे दूसरे दलों के साथ गठ-बन्धन करना पड़ता है। गठ-बन्धन करने में विरोधी दल वालों को अनेक सुविधायें दी जाती हैं। ऐसी अवस्था में वहाँ जल्दी-जल्दी सरकारें बदलती रहती हैं।

प्रजातन्त्र शासन का सबसे बड़ा दोष उसकी मन्थर गति है। कोई भी कार्य शीघ्रता से सम्पन्न नहीं हो पाता। संसद् में बहुत समय तक बहस चलती रहती है। इसलिए जब किसी देश में युद्ध या अन्य किसी संकट के समय तुरन्त कार्यवाही करने की आवश्यकता होती है, उस समय प्रजातन्त्र शासन की मुस्त चाल देश के लिए हानिप्रद सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है कि प्रजातन्त्र शासन व्यय-साध्य है। चुनाव में बहुत-सा रुपया शासन की ओर से तथा उम्मीदवारों की ओर से व्यर्थ में ही व्यय किया जाता है। संसद् सदस्यों की सुख-सुविधा एवं वेतन आदि में भी देश के धन का अपव्यय होता है। इस धन को यदि देश के उत्थान में लगाया जाए, तो कुछ समय में ही देश उन्नति के शिखर पर पहुंच जाता है।'

प्रजातन्त्र शासन का यह अभिप्राय कि इसमें कोई भी काम जल्दी नहीं हो पाता एक अवस्था में वरदान भी है, क्योंकि जल्दबाजी में बहुत से काम बिगड़ जाया करते हैं। जिस काम को करने से पूर्व अच्छी तरह विचार कर लिया जाता है, उसमें अशुभ होने की सम्भावना कम रहती है। विद्वानों ने कहा है कि—

'सहसा विदधीत न क्रियाम् अविवेकः परमापदां पदम्"

प्रजातन्त्र शासन में जहाँ थोड़े से दोष हैं, वहाँ गुण भी बहुत हैं। आज तक की शासन की सभी प्रचलित प्रणालियों में प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है। जहाँ शासन की बागडोर एक दो आदमियों के ही हाथ में होती है, वहाँ स्वेच्छाचारी शासन हो जाता है। शोषण और अन्याय बढ़ने लगता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतवर्ष में भी प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली चल रही है और उसका पूर्णरूप से निर्वाह किया जा रहा है। प्रायः सभी शान्ति-प्रिय देश इस शासन-प्रणाली को अपनाते हैं।

आज विश्व के सभी उच्च-कोटि के राजनीतिज्ञ प्रायः इस विषय में एकमत हैं कि विश्व की सर्वश्रेष्ठ शासन-प्रणाली प्रजातन्त्र ही है। इसमें मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इससे देश में परस्पर सहयोग और सहानुभूति की भावना बढ़ती है। प्रजातन्त्र की सुरक्षा के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि जनता अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करे और कर्त्तव्यों का पूर्णरूप से पालन करे। उसे युग चेतना के प्रति सजग और सजीव रहना चाहिए। ●

३. भारत की तटस्थ नीति

भारतवर्ष युगों से विश्व को शान्ति का संदेश देता आ रहा है। यही कारण है कि उसने अहिंसा के शान्तिपूर्ण मार्ग द्वारा मातृ-भूमि को विदेशियों के जाल से सरलता से मुक्त करा लिया। भारत की इच्छा है कि विश्व के सभी राष्ट्र ऐसा जीवन व्यतीत करें, जैसा कि एक परिवार के सदस्य करते हैं। उनमें परस्पर सहयोग, सद्भावना और संवेदना हो। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का सदैव हितचिन्तन ही करे और यथाशक्ति समय आने पर उसकी सहायता भी। भारत यह कभी नहीं चाहता कि शोषण को प्रधानता दी जाय, एक राष्ट्र दूसरे का गला घोटे और जनता को भूखा मारा जाय। उसका सिद्धांत है—

भारतवर्ष की तटस्थ नीति

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत ॥'

भारत विश्व की राजीतिक में अब तक तटस्थ है। 'तटस्थ का साधारण अर्थ है, किनारे पर खड़ होकर रहने वाला'। यह काम साधारण नहीं है। अनन्त जलराशि की उत्ताल तरङ्गो से जिसके पग उखड़ सकते हैं। या जल राशि की प्रत्येक तरङ्ग के साथ जो आगे-पीछे हटेगा, या जिसमे भयानक झंझाओ के सहन करने की शक्ति नहीं है, वह किनारे पर खड़ा होकर लहरो का थिरक-थिरक नर्तन और मादक सगीत न सुन सकता है और न देख सकता है। किनारे पर खड़े रहने वाले व्यक्ति मे इतनी शक्ति और सामर्थ्य होनी चाहिए कि वह समुद्र की संघर्षमय, उत्ताल तरगो के घात प्रतिघातों को अपने स्थान पर खड़ होकर एक प्रसन्नता भरी मुस्कान के साथ देख सके।

आज विश्व के रंगमंच पर बड़े-बड़े शक्तिशाली राष्ट्र अभिनेता, अपना-अपना अभिनय करने में व्यस्त है और आपस में यह दिखाना चाहते है कि किसने अधिक सुन्दर अभिनय किया है। सभी अपनी-अपनी शक्ति सामर्थ्य का ढोल पीट रहे हैं। प्रसाद जी ने कितना सुन्दर लिखा है—

> यह नीड़ मनोहर कृतियों का, यह विश्व कर्म रंगस्थल है,
> है परम्परा लग रही यहाँ, ठहरा जिसमें जितना बल है।

भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् निश्चित किया था कि वह विश्व की राजनीति मे तटस्थ रहेगा और आज तक वह इसी प्रतिज्ञा का निर्वाह करता चला आ रहा है। विश्व की दो महान् शक्तियां—अमेरिका और सोवियत रूस—परस्पर विरोधी शक्तियां हैं, परन्तु भारत ने किसी के साथ गठबन्धन करना कभी स्वीकार नहीं किया, बल्कि वह इन दोनो महान् राष्ट्रों की मैत्री का सदैव इच्छुक रहा है, यही कारण है कि भारत का जो आदर अमेरिका की दृष्टि मे है, वही आदर और श्रद्धा रूस की दृष्टि में भी है। भारत के अमेरिका और रूस दोनो के साथ मित्रता के बड़े अच्छे सम्बन्ध हैं। भारत छोटे-छोटे राष्ट्रो के साथ भी सद्भावना पूर्ण मैत्री सम्बन्ध रख रहा है। वह सदैव समस्त राष्ट्रो का हित चाहता है, चाहे वह राष्ट्र अपनी शक्ति और सामर्थ्य में छोटे हो या बड़े। अपनी इसी विश्व बन्धुत्व की भावना के कारण वह दो परस्पर विरोधी राष्ट्रो का समान मित्र बना हुआ है और उसे उन सभी महान् शक्तियो का सच्चा विश्वास भी प्राप्त है। वास्तव मे यह भारत की तटस्थ नीति का परिणाम है। अपनी इस विशेषता के कारण एक नवोदित राष्ट्र होते हुए भी भारत ने विश्व की अनेक भयानक समस्याओ को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने मे अपना अपूर्व सहयोग दिया है। भारत यद्यपि वैज्ञानिक शक्ति की दृष्टि से इतना अधिक समुन्नत राष्ट्र नहीं है, फिर भी अपने उच्चादर्शों के कारण ही विश्व के सभी राष्ट्रो पर उसका विशेष प्रभाव है। आज अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर भारत द्वारा जो मत प्रस्तुत किया जाता है, उसे सभी राष्ट्र ध्यानपूर्वक सुनते हैं और उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार-विनिमय करते हैं। आज विश्व के सभी राजनीतिज्ञ भारत की तटस्थता नीति की मुक्त कंठ से प्रशंसा और सराहना करते हैं। यदि भारत ने विश्व के किसी गुट के साथ गठबन्धन कर लिया होता तो उसी गुट के मित्र राष्ट्रो की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हुआ होता। परन्तु आज विश्व के सभी राष्ट्र भारत की उन्नति में सहयोग दे रहे हैं। भारत के लिए विदेशी सहायता का मार्ग चारो ओर से खुला है। दूसरे देशो के नेता हमारे यहाँ आते हैं और हमारे नेता भी दूसरे देशो मे जाते हैं जिनका वहाँ की जनता हृदय खोलकर स्वागत करती है।

चार महान् राष्ट्रो ने 'शिखर सम्मेलन' नाम से विश्व-शांति की दिशा में, एक महत्त्वपूर्ण प्रयास किया था, परन्तु अमेरिका के अबुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार के कारण रूस क्षुब्ध हो उठा और वह सम्मेलन सफल न हो सका। तृतीय महायुद्ध की सम्भावनायें और भी अधिक बढ गई। परन्तु इस युद्ध में अमेरिका और रूस का ही बलिदान न होता बल्कि वह युद्ध विश्व के सभी राष्ट्रों की उन्नति में बाधक होता। भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री स्वर्गीय पण्डित नेहरू ने इस सम्बन्ध मे कहा था कि—'महान् शक्तिशाली सभी राष्ट्रों को आपस में समझौता करना होगा। यों तो वर्तमान समय में विश्व का कोई राष्ट्र युद्ध से सहमत नहीं है, कोई भी राष्ट्र युद्ध नहीं चाहता, किन्तु प्रत्येक देश को इस बात की आशंका बनी रहती है कि कहीं दूसरे गुट वाला अचानक आक्रमण न कर दे। इस संदेह से शस्त्रों के निर्माण की स्पर्धा जारी रहती है। भारत ने निःशस्त्रीकरण की योजना का समर्थन किया है, किन्तु जब तक परस्पर युद्ध के भय की भावना का विश्व से अन्त नहीं होगा, तब तक निःशस्त्रीकरण की योजनायें कार्यान्वित नहीं हो सकेंगी।" इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे देश के कर्णधार युद्ध के स्थान पर शांति चाहते हैं। भारत की तटस्थ नीति किसी विशेष भय के कारण या अपनी अकर्मण्यता के कारण नहीं हैं अपितु विश्व-शांति तथा पारस्परिक सद्भावना स्थापित करने के लिए एक ठोस प्रयास है। आज भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गांधीवाद का प्रयोग कर रहा है। हमारी अहिंसा अशक्तों और अबलों की अहिंसा नहीं है, वह प्रेमजन्य है, वह भयजन्य नहीं। भारत केवल वाणी से ही शांति चाहता हो, ऐसी भी बात नहीं है, वह इस विचारधारा को कार्यरूप में परिणत भी कर रहा है। इस पवित्र कार्य में भारत को अन्य राष्ट्रों का सहयोग भी प्राप्त हो रहा है। उसने विश्व के सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों को शांति के कार्य करने के लिए प्रेरणा भी दी है।

यदि भारत आज अपनी तटस्थता की नीति को छोडकर किसी एक विशेष गुट के साथ सम्बन्धित हो जाता है तो उससे हम फिर परतन्त्र हो जायेंगे। हमारी नीति फिर परावलम्बी हो जायेगी। जिस परतन्त्रता के पाश को हमने बड़ी साधनाओं के बाद छिन्न-भिन्न किया है उसे फिर स्वीकार कर लेना बुद्धिमानी नहीं होगी। सैनिक गुटबन्दी में सम्मिलित होने से हमारी वैदेशिक नीति पूर्णरूप से पराश्रित होगी और हमारी स्वतन्त्रता संकट में पड सकती है। भारत-चीन सीमा-विवाद का उल्लेख करते हुए स्वर्गीय पण्डित-नेहरू ने कहा था, "हम चीन की समस्या शांतिपूर्वक ढङ्ग से सुलझाना चाहते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि हम युद्ध से डरते हैं। हम यह भली-भाँति जानते हैं कि युद्ध करने वाले दोनों देशों में-से किसी भी पक्ष के लिए युद्ध लाभदायक नहीं हो सकता और युद्ध के कारण समस्याओं का समाधान होने के बजाए ये अधिक कठिन हो जाती हैं।" हमारी तटस्थता की नीति का अनुकरण एशिया के अरब, अफ्रीका आदि के प्राय अधिकांश देश कर रहे हैं, इससे इस नीति की सफलता स्पष्ट ही है। यदि हम किसी देश के साथ सैनिक गठबन्धन कर लेते हैं, तो यह निश्चय है कि वह सामरिक अड्डे हमारे देश में बनाएगा, हमें कुचक्रों और षड्यन्त्रों मे फँसना पड़ेगा। सेना पर हमें अधिकाधिक व्यय करना पड़ेगा, जैसा कि जापान और पाकिस्तान को अमेरिका से गठबन्धन के कारण करना पड रहा है। दिन पर दिन इन देशों मे हवाई अड्डे बनाए जा रहे हैं, जिनका उपयोग कुकृत्यों के लिए ही होता है। भारत एक तटस्थ देश है। आज उसके ऊपर कोई देश न दबाव ही डाल सकता है और न युद्धात्मक अड्डे का निर्माण ही कर सकता है और न इस

प्रकार की कोई सुविधा ही मांग सकता है कोई भी राष्ट्र हमारे हवाई अड्डों से उचित उडान के अतिरिक्त और लाभ प्राप्त नही कर सकता।

भारत की तटस्थता की नीति भारत की स्वतन्त्रता और उसकी सार्वभौमिकता के लिये एक दृढ़ पदन्यास है। इसी नीति से उसे विश्व मे आदर और सम्मान प्राप्त हुआ है और निश्चय है कि यदि इसी नीति का भविष्य मे दृढतापूर्वक निर्वाह किया गया तो एक दिन वह आयेगा तब उसकी प्राचीन विश्व-गुरु की उपाधि उसे पुन प्राप्त हो जायेगी। देश की तटस्थता की नीति के विषय मे स्वर्गीय पण्डित नेहरू ने कांग्रेस के ५० व अधिवेशन मे सन १९५४ मे कहा था, वे शब्द आज भी भारतीयो के कर्ण कुहरो मे ज्यो के त्यो गूंज रहे है। वे शब्द इस प्रकार थे—

"हमने तटस्थता की नीति न केवल इसलिए अपनाई है कि हम विश्व शांति के लिए उत्सुक हैं, बल्कि हम अपने देश की पाश्वभूमि को नहीं भूल सकते। हम उन तत्वों को नहीं छोड सकते जिन्हें हमने अब तक अपनाया था। हमें विश्वास है कि आजकल की समस्यायें शांतिपूर्ण ढङ्ग से सुलझाई जा सकती हैं। केवल युद्ध का न होना ही शांति नहीं है, बल्कि शांति एक मानसिक स्थिति है, जो आजकल के शीत-युद्ध जगत् में नहीं पाई जाती। यदि युद्ध प्रारम्भ हो जाए, तो हम उसमें सम्मिलित नहीं होना चाहते। ऐसा हमने घोषित किया है क्योंकि हम शांति के क्षेत्र को विकसित करना चाहते हैं।"

पाकिस्तान म हुई क्रांति के फलस्वरूप नवोदित बगला देश के निर्माण तथा पाकिस्तान द्वारा किये गये नृशस नर सहार के कारण भारत मे आए हुए एक करोड के लगभग शरणार्थियो की भयावह समस्या एव अमेरिका से मिलकर पाकिस्तान का भारत पर आक्रमणकारी षड्यन्त्र, आदि गहन समस्याओ को दृष्टि मे रखते हुए भारतवर्ष ने अगस्त १९७१ में यद्यपि रूस के साथ बीस वर्ष के लिए सन्धि कर ली थी, फिर भी इस सन्धि से भारत की तटस्थता की नीति पर कोई आँच नही आती।

भारत रूस सन्धि के पश्चात्—प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी के बाद प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी ने गुट निरपेक्ष दशों के सम्मेलनों में बडी निर्भीकता के साथ भारत की तटस्थता और गुटों से पृथक् रहने की नीति का समर्थन किया। वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री वी॰ पी॰ सिंह ने भी तटस्थता तथा गुट-निरपेक्षता को ही भारत की विदेश नीति का प्रमुख आधार बनाया है।

वर्तमान समय में भारत विश्व के तटस्थ दशो का मुखिया है। विश्व के सभी तटस्थ देश भारत का नेतृत्व सहर्ष स्वीकार करते हैं। सन् १९८९ में बेलग्रेड मे निर्गुट देशों का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी हो चुका है। जिसमें भारत ने अपनी तटस्थता की नीति व पचशील के सिद्धान्तो का पालन करते हुये विश्व के परतन्त्र राष्ट्रों की स्वाधीनता का प्रबल समर्थन किया। अफ्रीका में होने वाले जातिगत अत्याचारो की भर्त्सना की है। आज यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत अपनी अभूतपूर्व तटस्थ नीति का पालन करके शान्ति व सुरक्षा की दिशा में विश्व का पथ प्रदर्शन करता रहेगा।

४ भारत और चीन

सन १९५० म, २९ एशियाई राष्ट्रों का बाडुङ्ग सम्मेलन विश्व म शांति स्थापना की भावना से हुआ था। इसमें एशिया के सभी देशो ने सहर्ष भाग लिया और सभी ने नेहरू जी के पचशील के सिद्धांत को स्वीकार किया था। भारतवर्ष और

जनवादी चीन इन सिद्धांतों के निर्माता थे। इसके पश्चात् चीन के प्रधानमन्त्री चाऊ-एन लाई भारत आए और भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री स्वर्गीय पंडित नेहरू चीन गए। दोनों प्रधानमन्त्रियों का दोनों देशों की जनता ने हृदय खोलकर स्वागत किया। 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के गगन भेदी नारों से आकाश गूंज उठा, परन्तु भारत ने शत्रु को मित्र समझने में भूल की। दूसरी भूल तब की जबकि उसने तिब्बत पर चीन का अधिकार स्वीकार किया। जब चीन और भारत में मैत्री के सम्बन्ध बढ़ाए जा रहे थे, तभी चीन चुपके-चुपके अमृत में विष मिलाता जा रहा था, अर्थात् वह तिब्बत प्रदेश में होकर हमारी सीमाओं तक सड़कें बना रहा था और सैनिक हमारी सीमाओं पर एकत्रित होते जा रहे थे।

शनैः-शनैः चीन ने समस्त तिब्बत पर अधिकार कर लिया। दलाई लामा ने भारत में आकर अपनी प्राणरक्षा की। हृदय से तो चीन भारत का शत्रु था ही, परन्तु अब उसे भारत के साथ अपनी शत्रुता प्रदर्शित करने का और भी बहाना मिल गया। चीन ने भारतवर्ष की उत्तरी-पूर्वी सीमा 'नेफा' प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया, फिर कुछ समय पश्चात् लद्दाख प्रदेश में आक्रमण हुए और वह भी चीनियों के अधिकार में हो गया। इस प्रकार, भारत की १२,००० वर्ग मील की भूमि चीन के अधिकार में चली गई। भारतवर्ष शांतिपूर्ण ढंग से सीमा समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करता रहा। भारत ने मैकमोहन लाइन को अपनी सीमा घोषित किया, मानचित्र छपवाकर चीन को दिखाये गये, परन्तु उसने एक बात भी स्वीकार नहीं की।

१९६० के अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पूना अधिवेशन में उत्तरी सीमा की संकटकालीन स्थिति के सम्बन्ध में कांग्रेस सभापति श्री संजीव रेड्डी ने कहा था, "उत्तर से हमारे देश पर आक्रमण हुआ है, शत्रुओं ने हमारे देश की १२,००० वर्ग मील भूमि दबा रक्खी है यह हमारे देश की विषम समस्या है और हमें इसका सामना करना है।" परन्तु इसके ठीक विपरीत, भारत के तत्कालीन रक्षामन्त्री श्री कृष्णामेनन ने संयुक्त राज्य अमेरिका में चीन के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा था, "चीन का विषय अधिकार के लिए युद्ध नहीं है।" जहाँ देश की एक ही समस्या पर देश के दो उत्तरदायी व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न विचार हों, वहाँ समस्या और भी भयंकर बन जाती है। शिखर सम्मेलन की असफलता ने इस समस्या को और भी भयंकर बना दिया। चीन ने रूस के मन में यह स्पष्ट बैठा दिया कि रूस का यदि कोई सच्चा मित्र है, तो वह चीन ही है। २० जून सन् १९६० को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने भी किसी विशेष उद्देश्य से दो सप्ताह की रूस यात्रा की थी, परन्तु इससे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

भारत और चीन

1. **भारत और चीन के मैत्री सम्बन्ध।**
2. **चीन की वर्तमान समस्या।**
3. **समस्या का समाधान।**
4. **चीन की कूटनीति।**
5. **उपसंहार।**

चीन की समस्या को सुलझाने में बड़े-बड़े विचारशील पुरुष व्यस्त हैं, परन्तु कोई मार्ग ही दृष्टिगोचर नहीं होता। भारतवर्ष न युद्ध करना चाहता और न वह भविष्य में चाहेगा ही। वह इस ग्रन्थि को शांति पूर्ण ढंग से ही सुलझाना चाहता है, परन्तु यह सम्भव तभी हो सकता है जब चीन भी यह चाहे। क्योंकि एक हाथ से कभी ताली नहीं बज सकती। उसमें दोनों हाथों का सहयोग आवश्यक है।

चीन की नीति एक विशेष प्रकार की है। वह दूसरों को मूर्ख बनाकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि करना चाहता है। माओत्से तुंग ने एक बार कहा था कि यदि बिना युद्ध के ही विजय प्राप्त हो जावें तो कितना उत्तम है। युद्ध से तो सभी विजय प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु बिना युद्ध के विजय मिल जाना एक विशेषता होती है। वह विशेषता चीन में है। केवल कोरिया में ही चीन को सैनिक युद्ध खेलना पड़ा था, उसमें भी अभूतपूर्व विजय प्राप्त हुई थी, वह जानता था कि विश्व का कोई देश इस समय युद्ध के लिये उद्यत नहीं है। इण्डोचीन में उसने गुप्त रूप से वियतनाम को सहायता दी। हो-ची-मिन्ह को विजय प्राप्त करने के लिये घोर युद्ध करना पड़ा परन्तु चीन को बिना युद्ध के ही विजय प्राप्त हो गई। वियतनाम की पश्चिमी दिशा में चीन ने सभी आक्रमण इस नीति से किये। लाओस में गुप्त रूप से सैनिक प्रवेश द्वारा, बर्मा में गुमनाम डाकुओं और लूटमार द्वारा, तिब्बत में आतंक और दमन द्वारा, नैपाल में मित्रता-पूर्ण प्रतिज्ञाओं तथा झूठे अधिकारों द्वारा, भारत में मैत्री सम्बन्ध और गुप्त आक्रमणों द्वारा, सिक्किम और भूटान में दबाव और फुटलाहट के द्वारा ही चीन ने सफलता प्राप्त की। इन चालों में हानि कम थी और लाभ अधिक था। इस प्रकार साम्यवादी चीन ने अपने पड़ोसी देशों के साथ सदैव से ही मैत्री में विश्वासघात किया। जो भी पड़ोसी राष्ट्र चीन की मैत्री में विश्वास रखते हैं और उनके राज्यों की सीमाओं को थोड़ा थोड़ा चुपचाप दबा लेना, वहाँ की शासन प्रणाली में आन्तरिक भेद भाव उत्पन्न कर देना, वहाँ के निवासियों के नैतिक चरित्र को गिराने का प्रयत्न करना, चीन के बायें हाथ का काम है। वह ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देना चाहता है कि दूसरा देश विवश होकर उसके उपग्रहों में सम्मिलित हो जाये और येन केन प्रकारेण उसे अपना संरक्षक स्वीकार कर ले।

चीन की इस नीति को सभी जानते हैं। आज पैंतीस से अधिक वर्षों की स्वतन्त्रता के पश्चात् भी चीनी सरकार चीनवासियों पर पूर्णरूप से विश्वास नहीं करती। न शासन का शासितों पर विश्वास है और न शासितों का शासकों पर। चीन की सरकार जानती है कि अत्याचार, शोषण, अनैतिकता और दमन के आधार पर स्थित साम्राज्य चिरस्थायी नहीं हो सकता। दूसरी बात यह कि वह अपने चारों ओर के देशों में साम्यवादी वातावरण उत्पन्न करना चाहता है क्योंकि जब तक उसके निकट राष्ट्रों में साम्यवादी वातावरण उत्पन्न नहीं हो जाता तब तक उसकी स्थिति कदापि सुरक्षित नहीं है। चीन अन्य राष्ट्रों को सदैव संदिग्ध दृष्टि से देखता है क्योंकि अनेकों वर्षों तक विदेशियों ने चीन की सम्पत्ति और वैभव को लूटा है, इस लिये वह जानता है कि वही स्थिति फिर भी आ सकती है।

१० अक्टूबर १९६२ को चीन ने भारत पर व्यापक आक्रमण किया, यह आक्रमण २० नवम्बर, १९६२ तक चलता रहा—चीनियों के अचानक और कपटपूर्ण आक्रमण से समस्त भारत को गहरा आघात पहुंचा। हमारे तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने चीनियों को 'बेशर्म दुश्मन' के नाम से सम्बोधित किया और चीनियों के आक्रमण की कठोरतम शब्दों में निन्दा की। उन्होंने जनता के सामने घोषणा की कि भारतवासी तब तक चैन से नहीं बैठेंगे जब तक शत्रु को अपनी पवित्र मातृभूमि से नहीं खदेड़ देंगे। इन चीनियों से तब तक कोई समझौते की वार्ता नहीं करेंगे, जब तक की चीनी मैकमोहन रेखा के पार नहीं पहुँच जाते।

हमारे वीर योद्धा बहुत साहस तथा वीरता से मोर्चे पर लड़ रहे थे और समस्त राष्ट्र एकता के सूत्र में बँधकर स्वरक्षा के लिए सन्नद्ध हो गया। देश के कोने-कोने से स्वर्ण और रुपये की वर्षा होने लगी। स्थान-स्थान पर क्रुद्ध जनता के प्रदर्शन होने लगे। युवतियों और कारखानो मे काम करने वाले मजदूरो ने देश के लिए अपनी सेवायें अर्पित की।

सरकार भी दृढता और संकल्प के साथ आक्रमण का सामना करने के लिए कटिबद्ध हो गयी। हमारे राष्ट्रपति ने देश मे आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी। सेनायें पूर्ण उत्साह के साथ शत्रु का सामना करने के लिए मोर्चे पर बढ चली। इंग्लैंड और अमेरिका ने नवीनतम हथियारो से हमारे योद्धाओं को सुसज्जित करने के लिए सहायता देने का वचन दिया। विश्व के विभिन्न देशो ने भारत के प्रति अपनी सहानुभूति और नैतिक सहायता का प्रदर्शन करते हुए चीनी आक्रमणकारियों की घोर-निन्दा की।

सहसा २० नवम्बर, १९६२ को चीन सरकार ने नाटकीय घोषणा की कि चीन ने अपनी सारी सेना को आज मध्य रात्रि से भारत-चीन सीमा पर युद्ध विराम का आदेश दिया है। चीनी सीमान्त सेनायें पहली दिसम्बर १९६२ से सीमा से २० किलोमीटर हटकर १९५९ की स्थिति मे आ जायेंगी। इसके बाद—

चीन ने अपना त्रिसूत्री प्रस्ताव भारत को भेजा जिसे भारत सरकार ने पूर्णतः अमान्य घोषित कर दिया। इसमे चीन की भारतीय प्रदेश को हड़पने की चाल छिपी हुई थी। युद्ध विराम पर भारत ने कई बार स्पष्टीकरण मांगा, परन्तु प्रत्येक बार चीन द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण सन्तोषजनक नही था। इसके पश्चात् कोलम्बो राष्ट्रों के प्रस्ताव प्रारम्भ हुए, भारत ने कोलम्बो प्रस्तावो को स्वीकार कर लिया, परन्तु चीन पूर्णतः अब तक उन्हे मानने को तैयार नही है।

चीनी आक्रमण से भारत को एक लाभ हुआ। जनता मे पार्टियों के रूप में जो आपस के मतभेद जड़ पकड़ते जा रहे थे, वे सब समाप्त हो गये। देश में जिस भावात्मक एकता के लिए सरकार निरन्तर प्रयत्नशील थी, वह स्वयम् ही देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हो गई। ऐसा कौन व्यक्ति था, या ऐसी कौन-सी पार्टी थी, जिसने उस भयकर समय मे स्वर्गीय नेहरू के स्वर मे स्वर मिलाकर उनके हाथ मजबूत न किये हो। इस प्रकार की जन-जागृति तो युगो से भारत मे देखने को नही मिली थी। जिनके पास पाँच रु० थे, वह पाँच ही दे रहा था, जिसके पास सोने का हार था वह सोने का हार दे रहा था। जिनके पास न रुपया था न सोना था, वह अपनी संतान को ही सेना मे भेज रहा था। वास्तव मे उस समय बड़ा अभूतपूर्व दृश्य था देश की एकता का। कोई भी वर्ग ऐसा नही था, जिसने रक्षा कोष मे अपनी शक्ति के अनुसार दान न दिया हो। साहित्यकारो ने नाटक और गोष्ठियो मे धन एकत्रित किया, सिनेमा के कलाकारो ने बम्बई मे जुलुस निकालकर धन-संग्रह किया, विद्यार्थियों ने अपने खाने के पैसों को कालेजो में रक्षाकोष मे दिया, महिलाओ ने अपने प्रिय आभूषण दिये, व्यापारियो ने समस्त लाभांश दिया, ससद और विधान-सभा के सदस्यो ने अपने मासिक वेतन छोड़े, अध्यापकों ने प्रतिमास अपने वेतन कटवाये, कहने का तात्पर्य यह है कि शायद ही ऐसा कोई अभागा रहा हो, जिसने देश रक्षा के समान यज्ञ मे कुछ न कुछ आहुति न दे दी हो। वास्तव मे चीनी आक्रमण भारतीय धैर्य, वीरता, त्याग और बलिदान की परीक्षा थी। अब देश जागृत है और सजग है।

इसके पश्चात् भी चीन ने अनेको भड़काने वाली कार्यवाहियाँ कीं और समय-समय पर झूठे सच्चे विरोध पत्र भारत सरकार को भेजता रहा। पिछली बार जब पाकिस्तान से युद्ध चल रहा था, तब भी झूठा दोषारोपण करते हुए चीन ने तीन दिन का अल्टीमेटम दिया था। उसके बाद कहा कि हमारी ७५ या ८० भेड़ हिन्दुस्तानी उठा ले गये। भारत ने वे भी लौटाईं। कभी कहता है कि हमारे सैनिको पर गोली चलाई। यही चीन का स्वभाव है। पिछले वर्षों से चीन मे आन्तरिक गृहकलह का बोलबाला है। माओ त्से-तुग की विचारधारा का बड़े जोर शोरा,से प्रचार किया जा रहा था। लाल रक्षक बना दिये गये थे, और लाल किताबें उनके हाथो मे दे दी गई थी। १२ जून १९६७ को एक और षड्यन्त्र रचकर चीन भारत को अपमानित करना चाहा। पेकिंग मे भारतीय दूतावास के द्वितीय सचिव श्री के० रघुनाथ तथा तृतीय सचिव पी० विजय पर जासूसी का आरोप लगाकर उनका कूटनीति का दर्जा समाप्त कर दिया तथा उन पर मुकद्दमा भी वहाँ की अदालत में शुरू कर दिया। भारतीय दूतावास को लाल रक्षको ने घेर लिया, और कई दिनो तक घेरा डाले रहे। दोनो सचिवो के वहाँ से चलते समय इतना अमानुषिक तथा बर्बर व्यवहार किया गया कि सुनने वालो का भी खून खौलता था। इसकी प्रतिक्रिया नई दिल्ली में हुई। भारतीय जनता ने चीनी दूतावास पर अपना विरोध प्रकट करने के लिए प्रदर्शन किया। पथराव आदि से सात चीनी घायल हुए। चीनी दूतावास पर भी सरकारी पहरा बैठा दिया गया, कहने का तात्पर्य यह है कि इस बार भारतीय सरकार ने अधिक दृढ़ता से कार्य किया, जैसा जैसा चीन करता गया भारत भी पीछे-पीछे वैसा ही करता गया। भारतीय परिवारो को लाने के लिए भारतीय हवाई जहाजो पर चीन ने पाबन्दी लगाई तो भारत ने भी ऐसा ही किया।

आज भारत की वह स्थिति नहीं जो सन् १९६२ मे थी। चीनी आक्रमण ने भारत का वह उपकार किया, जो कभी भुलाया नहीं जा सकता। देश मे भावात्मक जागृति तो हुई ही, पर इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि देश, रक्षा सम्बन्धी मामलो मे अपने पैरो पर खड़ा हुआ। यही कारण था कि सन् १९६५ और १९७१ के युद्ध मे पाकिस्तान को मुँह की खानी पड़ी। २९ जून १९६७ को भारत के रक्षा मन्त्री ने कहा था—"भारतीय सेना चीन और पाकिस्तान जैसे अविश्वासनीय पड़ोसियो की साँठ-गाँठ के जवाब मे पहले से अधिक समर्थ और सतर्क हैं। हम सशस्त्र हैं और १९६७, अब १९६२ नही है। हम पिछले वर्षों मे खाली हाथ नही बैठे रहे हैं। देश के गौरव और मर्यादा की रक्षा के लिए हमे और भी शक्ति संग्रह करना होगा, जिससे कोई भी शत्रु इधर आँख उठाकर न देख सके।

सन् १९७१ के मध्य मे विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर एक दूसरा नाटक खेला गया जो स्वप्न मे भी सम्भावित नहीं था। अमेरिका ने, जो सदैव से ही साम्यवाद का कट्टर विरोधी और चीन का कटु आलोचक रहा था, सहसा चीन के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाया। पहले खिलाड़ियो के आवागमन का आदान-प्रदान हुआ, फिर व्यापारिक क्रय विक्रय का मार्ग प्रशस्त किया गया और उसके पश्चात् प्रेसीडेन्ट निक्सन ने चीन की यात्रा की। विश्व ने इस नाटक को बड़े आश्चर्य से मौन होकर देखा। सन् १९७३ मे चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य भी बना लिया गया है।

सन् १९७४ मे सिक्किम के प्रश्न पर भारत व चीन के सम्बन्ध तनावपूर्ण हुए।

लेकिन सन् १९७६ में चीन की राजनीति में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। ९ सितम्बर १९७६ ई० को साम्यवादी क्रान्ति के जन्मदाता तथा चीन सरकार के अध्यक्ष एवं सर्वेसर्वा माओत्से तुंग परलोक सिधार गये। माओ की मृत्यु के बाद चीन के उत्तराधिकार के लिए संघर्ष छिड़ गया। एक लम्बे समय तक यह संघर्ष चलता रहा। अन्त में चीन में उग्रवादियों की पराजय हुई। चीन के नये प्रधानमन्त्री ने भारत से मैत्रीपूर्ण नीति अपनायी है। २६ जून, १९८१ ई० को चीनी मन्त्री ह्वांग ने भारत की यात्रा की और १९८२ में दो चीनी शिष्ट मण्डल भारत आये। इन सबसे यह आशा की गई कि दोनों के सम्बन्धों में सुधार होगा। श्री राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में इन सम्बन्धों में और भी निखार आया। १९८८ में श्री राजीव गाँधी ने चीन-यात्रा पर गये और दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध सुधारने में पहल की। वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री वी० पी० सिंह भी चीन के साथ अच्छे सम्बन्ध रखने के इच्छुक हैं। मई १९९० के अन्तिम सप्ताह में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के उपप्रधानमन्त्री एवं कृषि मन्त्री श्री देवी लाल चीन की सद्भावना यात्रा पर गये थे जिसके परिणाम स्वरूप दोनों देश और अधिक निकट आये हैं। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में चीन और भारत के सम्बन्धों में अत्यधिक प्रगाढ़ता हो जायेगी। ●

५ भारत-पाक सम्बन्ध

महात्मा गाँधी और पं० नेहरू जैसे देश के कर्णधारों ने सन् १९४७ के भयानक साम्प्रदायिक रक्तपात के फलस्वरूप अंग्रेजों का देश के विभाजन का प्रस्ताव इसलिए स्वीकार कर लिया था कि यह झगड़ा हमेशा के लिए शान्त एवं समाप्त हो जायेगा और दोनों देश अच्छे पड़ोसी के नाते एक दूसरे की उन्नति में सहयोग देते रहेंगे। उस समय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जैसे कुछ महान् विचारक इसके विपरीत थे और पाकिस्तान को विष वृक्ष की संज्ञा देते थे, परन्तु बहुमत के आगे उन लोगों की आवाज धीमी पड़ गई और पाकिस्तान बन गया। तब से आज तक ४३ वर्ष हो चुके हैं, पाकिस्तान ने भारत के विरोध को अपनी विदेश-नीति का प्रमुख लक्ष्य बनाया हुआ है। अब तक जितने भी शासक पाकिस्तान में आये, उन्होंने एक स्वर से भारत का विरोध किया और वहाँ की जनता को भड़काया। परिणामस्वरूप आज तक पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के ऊपर अत्याचार और बलात्कार होते रहे हैं। जनवरी सन् १९६४ में पूर्वी पाकिस्तान में हुए बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगे और हिन्दुओं का महाभिनिष्क्रमण तथा १९७१ के गृह युद्ध के परिणामस्वरूप नवोदित बंगला देश में क्रूर नर-संहार, असंख्य शरणार्थियों के रूप में भारत में आ जाना, पाकिस्तान की बर्बरता पूर्ण नीति का ज्वलन्त उदाहरण है। जनवरी १९६४ में हुये पूर्वी पाकिस्तान के साम्प्रदायिक दंगों पर अपने विचार प्रकट करते हुए लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि "देश का बंटवारा समस्याओं का युक्तिसंगत समाधान सिद्ध नहीं हुआ।"

भारत के प्रति घृणा, कटुता और वैमनस्यपूर्ण नीतियों के कारण ही पाकिस्तान ने ९ अप्रैल १९६५ को कच्छ की सीमाओं पर आक्रमण कर दिया। इससे पूर्व पश्चिमी बंगाल की सीमा पर स्थित कूच बिहार, मकावाड़ी, तीसे बीघा, चार-बारिया आदि स्थानों पर उसके आक्रमण हो ही रहे थे। ७ अप्रैल, १९६५ को स्वराष्ट्रमन्त्री ने लोकसभा को यह सूचना दी कि कच्छ-सिन्ध सीमा के दक्षिण में कन्जार कोट-कच्छ इलाके में पाकिस्तानी भारतीय सीमा में घुस आये हैं। इसके बाद ९ अप्रैल, १९६५ से १ मई १९६५ तक दोनों ओर से युद्ध चलता रहा। अन्त में २ मई, १९६५ को ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री श्री विल्सन के हस्तक्षेप से युद्ध विराम हुआ।

लेकिन दोनों देशों के प्रधानमन्त्रियों के समझौते के हस्ताक्षरों की स्याही भी अभी सूख न पाई थी कि पाकिस्तान ने ५ अगस्त, १९६५ को काश्मीर पर पुनः अचानक आक्रमण कर दिया। यद्यपि भारत-पाक संघर्ष, द्वन्द्व और युद्ध की कहानी पाकिस्तान के जन्म के साथ-साथ प्रारम्भ हो गई थी। तब से किसी न किसी रूप में इस कहानी की पुनरावृत्ति होती रही, परन्तु जिसे घोषित युद्ध कहते हैं, वह यही था। वह यही युद्ध था, जिसमें भारतीयों ने पाकिस्तानियों के दांत खट्टे किये थे और उन्हें रुला दिया था। अगस्त १९६५ में पाकिस्तान ने अपने मुजाहिद आक्रमणकारियों को काश्मीर में भेजकर अक्टूबर १९४७ के आक्रमण की फिर पुनरावृत्ति की थी। माओ-त्से तुंग की नीति अपना कर पाकिस्तान ने आजाद काश्मीर तथा अपनी नियमित सेना को गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण दिया। इसके लिए मरी में कैम्प खोला गया था। अप्रैल १९६५ से ये तैयारियाँ खूब जोर-शोर से चल रही थीं। इन्हीं ५-६ हजार घुसपैठियों को बाकायदा टुकड़ियों और कम्पनियों में बाँटकर तथा आधुनिक हथियारों से लैस करके ५ अगस्त १९६५ और उसके आस-पास के दिनों में पाकिस्तान ने काश्मीर में भेजना प्रारम्भ कर दिया। यही इस युद्ध का प्रारम्भ था।

भारत-पाक सम्बन्ध
१ प्रस्तावना।
२ साम्प्रदायिक द्वेषपूर्ण नीति।
३ कच्छ पर आक्रमण।
४ भारत विरोधी मनोवृत्ति का रहस्य।
५ १९७८ तक की स्थिति।
६ उपसंहार।

२० सितम्बर, १९६५ को सुरक्षा-परिषद ने भारत-पाक युद्ध विराम सम्बन्धी अपना अन्तिम प्रस्ताव पास किया और १२ सितम्बर को दोपहर तक ७२ घण्टे में युद्ध विराम की माँग की। उधर पाकिस्तान का हिमायती चीन भी १८ सितम्बर को अपनी सेनायें सिक्कम-लद्दाख सीमा तक (८०० भेड़ें चुराने के अभियोग में) ले आया था। परिणामस्वरूप युद्ध बन्द हो गया, परन्तु वह युद्ध भारत की प्रतिष्ठा का था और पाकिस्तान को हमेशा के लिए सबक सिखाने का प्रश्न था। उस युद्ध के वीर सेनापतियों की शौर्य-गाथाओं के अतिरिक्त अनेक वीरों की कहानियाँ आज भी भारत के घर-घर में गाई जा रही हैं। भारत-पाक युद्ध का समय ऐसा था, जबकि प्रत्येक सैनिक अपने देश की प्रतिष्ठा और मान रक्षा के लिए अपने प्राणों को मातृभूमि की रक्षा के लिए न्यौछावर कर देना ही अपना प्रिय पवित्र कर्त्तव्य समझता था, तभी तो सभी ने मिलकर देश की इज्जत बचा ली थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के कहने पर भारत और पाकिस्तान ने २३ सितम्बर १९६५ को सुबह साढ़े तीन बजे से युद्ध-विराम किया था। लोकसभा में युद्ध विराम स्वीकार करने की घोषणा करते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री ने गद्गद् कण्ठ से कहा था—

"मैं इस सदन और समस्त देश की ओर से अपनी सेनाओं के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। उन्होंने अपने अदम्य साहस और वीरता से देश के लोगों में नया विश्वास भरा है।"

तत्कालीन प्रतिरक्षा मन्त्री श्री चह्वाण ने १५ नवम्बर १९६५ को लोकसभा में बताया कि ५ अगस्त से १९ नवम्बर तक भारत के २२२६ जवानों ने वीरगति प्राप्त की। ७८७० जवान घायल हुए और लगभग १५०० लापता हुए। जवानों में

से २५११ ने स्वस्थ होने पर अपनी ड्यूटी पुनः संभाल ली । वीरगति प्राप्त करने वालों में १६१ अफसर थे ।" भारत सरकार के अनुसार पाकिस्तान के लगभग ५६०० सैनिक मारे गये । घायलों की संख्या का पता नही । श्री चह्वाण ने यह भी बताया कि हमारे ३५ हवाई जहाज नष्ट हुए और ८० टैंक तबाह हुये । भारत के अनुसार पाकिस्तान के लगभग ४७५ टैंक नष्ट या क्षतिग्रस्त हुए अथवा कब्जे में लिए गए । १६३ पाकिस्तानी टैंक भारत के हाथ पड़े, जिसमे से ३६ बिल्कुल चालू हालत में थे । भारतीय हवाबाजो और तोपचालको ने ७४ पाकिस्तानी विमानो को निशाने लगाकर मार गिराया । इसके अलावा जो विमान हवाई अड्डो पर बम वर्षा से तबाह या क्षतिग्रस्त किए, उनकी सख्या अलग है और ठीक मालूम नही हो सकी ।

भारत-पाक युद्ध मे भारतीय सैनिको की जिस वीरता के ज्वलन्त उदाहरण मिले, वे इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से लिखे जायेगे । इस युद्ध से "एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह हुई कि देश की नई पीढ़ी ने अपने अटूट देशानुराग और अदम्य साहस का अपना नया कीर्तिमान बनाया ।"

इतने बड़े संघर्ष के बाद भी भारत ने, अपनी अद्वितीय सहनशीलता और सहअस्तित्व की भावना का परिचय देते हुए ताशकन्द घोषणा को स्वीकार किया और उस पर बराबर अमल किया ।

इतना होने पर भी पाकिस्तान ने सदैव भारत की मैत्री का प्रस्ताव ठुकराया है और भारत को खा जाने की सदैव धमकियाँ देता रहा है, ऐसा क्यों ? इसका केवल एक ही उत्तर है कि पाकिस्तान की नीव ही घृणा, द्वेष, कटुता, सकीर्णता, स्वार्थ और वैमनस्य पर रखी गई है । इस नीति को वहाँ का प्रत्येक शासक बढ़ावा देता रहा है । इससे उनको लाभ भी हुआ है कि वे वहाँ की जनता को भारत के विरोध के अलावा कुछ और सोचने का मौका ही नहीं देना चाहते अन्यथा उनका तख्ता पलट जायेगा । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जहाँ भारत अपनी आर्थिक विकास की योजनाओ मे लग गया वहाँ पाकिस्तानी शासक ऐसे प्रपंच रचते रहे जिससे भारतवर्ष को नीचा दिखाया जा सके तथा पाकिस्तानी जनता को उनके मूल अधिकारो तथा देश की वास्तविकता से दूर रक्खा जा सके ।

अब प्रश्न यह है कि क्या पाकिस्तान के झगडे का प्रश्न आसानी से सुलझाया जा सकता है ? इसका एक मात्र उत्तर है नही । शायद कोई दिन ही ऐसा जाता हो जिस दिन पाकिस्तान की सीमा पर कोई झगडा न होता हो, कश्मीर मे तो कोई दिन ऐसा न जाता होगा, जिस दिन दो चार न मरते हो । फिर इसका उपचार क्या है, केवल यही है कि—

"खीरा का मुंह कोटि कै, मलियत नमक मिलाय ।
रहिमन कड़ुवे मुखन की चहिए यही सजाय ।।

सन् १९७१ मे पूर्वी पाकिस्तान मे पहिले गृह-युद्ध छिड़ा और फिर सहसा, पाकिस्तान की अन्याय और दमनकारी नीतियो के फलस्वरूप, उस गृह-युद्ध ने क्रान्ति का रूप धारण कर लिया । पाकिस्तान का पूर्वी भाग आज 'नवोदित बगला देश' के रूप मे विश्व के समक्ष आ चुका है ।

पड़ोस मे लगी आग की चिन्गारियाँ भारत मे आनी स्वाभाविक थी । नब्बे हजार शरणार्थी अपनी जान बचाकर भारत में आये । क्रूर एवं निर्दयी हाथों से मानवता की रक्षा के लिये भारत ने उन्हें शरण दी, भोजन, वस्त्र और औषधि का

प्रबन्ध किया। भारत ने यह सब कुछ मानवीय दृष्टिकोण के आधार पर किया, परन्तु पाकिस्तान ने अपने घर की लड़ाई को हम पर थोपना चाहा और अनर्गल युद्ध की धमकियाँ ही नहीं दी बल्कि भारत के विरुद्ध ३ दिसम्बर, १९७१ को खुल्लम खुल्ला युद्ध छेड़ दिया, जिसके परिणामस्वरूप १४ दिन के विनाशकारी युद्ध के पश्चात्, पाकिस्तानी सेना के एक लाख सैनिकों ने बिना शर्त आत्मसमर्पण किया और बंगला देश अस्तित्व में आया। विवश होकर पाकिस्तान के राष्ट्रपति भुट्टो ने भारत की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया, जिसके फलस्वरूप शिमला में भारत-पाक समझौता २ जुलाई, १९७२ को सम्पन्न हुआ। दोनों देश समझौते को व्यावहारिक रूप देने के लिए प्रयत्नशील रहे, परन्तु चीन की हस्तक्षेप नीति बाधक बनकर सदैव खड़ी रही।

भारत तथा पाकिस्तान के सम्बन्धों को आपसी विश्वास तथा सद्भाव को नया आधार देने की दृष्टि से भारत सरकार के तत्कालीन विदेश मन्त्री श्री अटल-बिहारी वाजपेयी ने ६ फरवरी, १९७८ को पाकिस्तान की यात्रा की। पाकिस्तान में भी इस यात्रा की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जा रही थी। ७ फरवरी, १९७८ को पाकिस्तान की राजकीय यात्रा के समय भारत के विदेश मन्त्री से इस्लामाबाद में पाक पत्रकारों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा, "भारत सरकार की घोषणाओं और आश्वासनों का सब देशों में स्वागत और समर्थन किया जा रहा है पाकिस्तान में भी उन पर भरोसा और विश्वास किया जाना चाहिए। भारत पाकिस्तान की स्वतन्त्रता और सार्वभौमिकता का सम्मान और आदर करता है।" कश्मीर के सम्बन्ध में विदेश मन्त्री ने कहा—"अन्य पुरानी बातों की जगह हमें नई स्थिति के आधार पर विचार करना होगा। हम खुद आगे की ओर देख रहे हैं पीछे की ओर नहीं। हमारे दोनों देशों के बीच सम्बन्धों की धार में बहुत पानी बह चुका है। हमें अब पुरानी बातों को भुलाकर सम्बन्धों के नये युग की ओर देखना चाहिए हमने भूतकाल भुला दिया है, और अब हमें आगे की ओर देखना चाहिए।"

भारत की सरकार के सौमनस्य के कारण, दोनों देशों के बीच लगभग ८ वर्ष से चले आ रहे सलाल पन बिजली परियोजना विवाद पर १४ अप्रैल, १९७८ को दोनों देशों में समझौते पर हस्ताक्षर होते ही पटाक्षेप हो गया।

१९८१ में पाकिस्तान के राष्ट्रपति व मार्शल ला प्रशासक जनरल जिया उल हक ने अमेरिका आदि देशों से आधुनिक शस्त्रास्त्र प्राप्त करने प्रारम्भ कर दिये और परमाणु बम बनाने की प्रतिज्ञा-सी कर ली है। पाकिस्तान की इस सैनिक तैयारी को भारत ने शंका की दृष्टि से देखा तथापि भारत अपनी सुरक्षा के लिए पूर्णतया सजग एवं तत्पर रहा। १ नवम्बर, १९८२ को पाकिस्तान के राष्ट्रपति जिया उल हक दिल्ली पधारे, जिससे यह आशा की गई कि दोनों देशों के सम्बन्ध और अधिक मैत्रीपूर्ण बनेंगे। प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी से वार्ता के उपरान्त उन्होंने वार्ता को बहुत उपयोगी एवम् सौहार्दपूर्ण बताया। श्री राजीव गांधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में भारत-पाक सम्बन्धों में और भी अधिक सुधार की आशा हुई। १९८५–८६ में जनरल जिया भारत की मैत्रीपूर्ण यात्रा पर और श्री गांधी भी १९८६ में पाकिस्तान गये। उस समय यह आशा हुई थी कि दोनों देशों में आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सहयोग बढ़ेगा।

अपवित्र हृदय की दोस्ती भी समय पर दगा देती है। प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जिया की ओर शुद्ध हृदय से मैत्री का हाथ कई बार बढ़ाया है, बदले में वे भी मुस्कराकर हाथ बढ़ाते हैं, ८७ और ८८ में दो बार टेस्ट मैच देखने भी भारत आ चुके हैं पर पाकिस्तान की कथनी और करनी में जमीन आसमान का अन्तर है। सीमाओं पर पाकिस्तानी सेनाओं की सजगता, युद्ध का पूर्वाभ्यास, परमाणु बमों का निर्माण, अमेरिका से संहारक अस्त्र-शस्त्रों का अत्यधिक आयात, भारत के सैन्य ठिकानों की गुप्तचरी, सिखों का भारत के विरुद्ध पाकिस्तान में प्रशिक्षण, आदि क्रिया कलाप यह सिद्ध करते हैं कि पाकिस्तान भारत के साथ कभी भी युद्ध में कूद सकता है। आये दिन भारत की सीमा सुरक्षा चौकियों पर गोलाबारी होना, सीमाओं का अतिक्रमण करके घुसपैठिये भेजना, आतंकवादियों को हथियार सप्लाई करना आदि कार्य मैत्री के द्योतक नहीं हैं।

सियाचिन पर आये दिन गोलीबारी होती रहती है। कोई दिन ऐसा नहीं मुठभेड़ न होती हो। ४ नवम्बर ८८ को प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने स्पष्ट चेतावनी दी है कि—"यदि उसने सियाचिन में फिर से भारत पर हमला किया तो उन्हें मुँह तोड़ जवाब दिया जाएगा, जैसा कि उन्हें पहले भी दिया जा चुका है।"

गाँधी ने काठमांडू से लौटते हुये विमान में संवाददाताओं से कहा कि वह पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री मोहम्मद खान जुनेजो को बता चुके थे कि पाकिस्तानी सेना सियाचिन ग्लेशियर में भारतीय सुरक्षा चौकियों पर हमला कर रही है। बाद मे यहाँ पहुंचने पर दिल्ली हवाई अड्डे पर उन्होंने संवाददाताओं से बातचीत करते हुए कहा कि पाकिस्तान को हमला नहीं करने का सबक सीखना चाहिये।

प्रधानमन्त्री ने कहा कि उन्होंने जुनेजो से स्पष्ट तौर पर यह भी कह दिया था कि सियाचिन क्षेत्र मे भारतीय चौकियों पर हमला पाकिस्तान ने किया था और हम रक्षा के लिये जवाबी कार्रवाई करने को बाध्य थे।

प्रधानमन्त्री ने कहा कि जुनेजो ने आपसी बातचीत के दौरान जब सियाचिन का प्रश्न उठाया था तो उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि मामला उनके हाथ मे है। यदि उन्होंने हमारे ठिकानों पर हमला किया तो हम अपनी सुरक्षा करेंगे ही।

गाँधी ने जुनेजो से यह भी कहा कि "समस्या का यही कारण है। इसलिये बेहतर यही है कि वह हमला नहीं करे।"

गाँधी ने दोहराया कि पाकिस्तान का परमाणु कार्यक्रम दोनों देशों के बीच सम्बन्ध सामान्य बनाने में मुख्य बाधा है और वास्तविकता यह है कि पाकिस्तान का परमाणु कार्यक्रम उसकी आवश्यकता से काफी बड़ा है।

जब गांधी ने पाकिस्तान द्वारा आवश्यकता से अधिक यूरेनियम परिष्कृत किये जाने की बात की और कहा कि मित्र देश भी मानने लगे हैं कि पाकिस्तान का परमाणु कार्यक्रम है और वह हथियार बनाने जा रहा है।

उन्होंने कहा कि बातचीत के दौरान उन्होंने जुनेजो को बता दिया है उनके परमाणु कार्यक्रम से इस क्षेत्र में हथियारों की होड़ शुरू होगी, जिसकी पूरी जिम्मेदारी पाकिस्तान पर होगी।

गाँधी के अनुसार जुनेजो इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे सके कि पाकिस्तान आवश्यकता से अधिक मात्रा में यूरेनियम परिष्कृत कर रहा है।

चर्चा के लिये तय चौदह सूत्री कार्यक्रम में सियाचिन मामले पर बातचीत

पुन शुरू करना, आतंकवाद और नशीले पदार्थों के आवागमन रोकने में सहयोग, निजी क्षेत्र के माध्यम से व्यापार बढाना और प्रत्यावर्तन करार की बातें शामिल हैं।

इसके अलावा राजस्थान क्षेत्र में खोखरापार, मुनाबू रेल मार्ग पर यातायात शुरू करने, पुस्तक समाचार, पत्र-पत्रिकाओं का मुक्त रूप से आदान-प्रदान और भूमि तथा जल सीमा निर्धारित करने के बारे मे बातचीत का भी प्रस्ताव किया गया है।

जाफ़र ए सूत्रों के अनुसार राजीव जुनेजो की बातचीत के फलस्वरूप दोनों देशो के विदेश सचिवों की बैठक दिसम्बर में होगी। इससे पहले दोनो देशो के वित्त और योजना सचिवो को भी बैठक होगी।

गांधी ने दक्षेस के शिखर सम्मेलन में अपने साथ गये संवाददाताओं को बताया कि जुनेजो के साथ व्यापक-विचार /विमर्श के दौरान उन्होंने दोनो देशो के बीच शान्ति एव समझौते से लेकर व्यापार तथा जनता के पारस्परिक सम्पर्क तक के मुद्दों पर तत्काल फिर से बातचीत शुरू करने का प्रस्ताव किया था।

प्रधानमन्त्री ने कहा कि बैठक में इस बात पर सहमति हो गई थी कि भारत पाक संयुक्त आयोग की अगले वर्ष के प्रारम्भ महीने वाली बैठक के पूर्व दोनों देशो के विदेश सचिवो की किसी उपयुक्त तिथि को बैठक होगी।

परन्तु इन घोषणाओ और चेतावनियो का पाकिस्तान पर क्या प्रभाव ? ८ मई, ८८ को आधिकारिक सूत्रो के अनुसार पाकिस्तानी सैनिक अधिकारी जम्मू-कश्मीर से लगी सीमा पर अमेरिका से प्राप्त माउन्टेन गन तथा टैंकों से लैस अतिरिक्त सैन्य बल तैनात कर सीमा पर दबाव बढ़ाना शुरू कर दिया है।

इन सूत्रों के अनुसार मत-साय जम्मू के आर० एस० पुरा सैक्टर से सीमा सुरक्षा बल के साथ हुई दो अलग-अलग मुठभेड़ों में इस सीमान्त क्षेत्र से सक्रिय पाक तस्करों व जासूसो के गिरोह के ३ सदस्य मारे गये।

सूत्रों ने बताया कि यह तीनों पाक नागरिक आर० एस० पुरा सैक्टर में सीमा महत्वपूर्ण स्थानों पर सक्रिय थे और कल जब वे सीमा में घुसने की कोशिश कर रहे थे तभी सीमा सुरक्षा बल के जवानों के ललकारे जाने पर उन्होंने गोलियाँ चला दी। जिसके जवाब म जवानों ने गोलियाँ चलाई और वे तीनों मौत के घाट उतार दिये।

समझा जाता है कि पाक जासूसों के इस संवेदनशील ठिकानों का आतंकवादियों तथा तस्करों के लिये उपयोग किया जाता था। मारे गये तीनों तस्करों व जासूसों से कुछ आपत्तिजनक दस्तावेज भी बरामद हुए हैं।

सन् १९८८ में पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल जियाउल हक की आकस्मिक मृत्यु और वहाँ पर लोकतन्त्र की बहाली के बाद दोनों देशों के मध्य तनाव कुछ कम हुआ है। दिसम्बर १९८८ के सार्क सम्मेलन के दौरान प्रधानमन्त्री राजीव गांधी तथा पाक प्रधानमन्त्री श्रीमती बेनजीर भुट्टो के मध्य औपचारिक वार्ता हुई। लेकिन सितम्बर १९८९ के बेलग्रेड गुट निरपेक्ष सम्मेलन में पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने कश्मीर का प्रश्न उठाकर दोनों देशों मध्य सम्बन्धों को पुन तनावपूर्ण बना दिया। सियाचीन की समस्या भी दोनों देशों के मध्य कटुता बने रहने का प्रमुख कारण बनी हुई है।

सन् १९९० के वर्ष में कश्मीर और पंजाब में पाकिस्तान के आक्रामक हस्तक्षेप श्रीमती बेनजीर भुट्टो द्वारा निरन्तर कश्मीर पर प्रभुत्व का दावा, पाक सेना का सीमा पर युद्ध का पूर्वाभ्यास आदि बातों ने दोनों देशो के मध्य सम्बन्धों को अत्यधिक तनावपूर्ण बना दिया है। प्रधानमन्त्री श्री वी० पी० सिंह ने पाकिस्तान

को स्पष्ट रूप से चेतावनी दे दी है कि भारत अपनी अखण्डता की रक्षा के लिए युद्ध के लिए भी सदा तत्पर रहेगा।

पहला इतिहास, वर्तमान परिस्थितियाँ और भावी विचारधाराओं से स्पष्ट है कि—पाकिस्तान न कभी चैन से बैठेगा और न भारत को बैठने देगा। राग द्वेष का यह क्रम अनन्त काल तक इसी प्रकार चलता रहेगा।

६ निःशस्त्रीकरण

समय की गति एक-सी नहीं रहती। समय के साथ-साथ मनुष्य की विचार-धारायें भी परिवर्तित होती रही हैं। अपने जीवन को सुखी और समृद्धिशाली बनाने के लिये मानव ने विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की। भयानक रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये उसने नवीन वैज्ञानिक चिकित्सा-यन्त्रों का आविष्कार किया। अपनी इस आश्चर्यजनक सफलता पर उसे गर्व हुआ और वह अट्टहास करने लगा। नवीन शक्तियों के प्रादुर्भाव के साथ-साथ मानव के हृदय में युगों की छिपी हुई दानवीय-प्रवृत्ति भी शनैः शनैः जागृत होती रही और उसने हिंसात्मक एवं विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्र का निर्माण करना भी आरम्भ कर दिया। मानव युद्ध एवं संघर्ष-प्रिय तो पहले ही था अब उसकी यह भावना और बलवती हो उठी। हाइड्रो-जन एवं कोबाल्ट बमों के विनाशकारी कृत्यों का वर्णन मात्र ही मनुष्य को रोमांचित कर देता है। विश्व के शक्ति-शाली राष्ट्र एक-दूसरे को एक क्षण में समाप्त करने के लिये आज उद्यत बैठे हैं। मानवता भयभीत होकर आज काँप रही है। युद्ध की विभीषिकाओं ने छोटे-छोटे निर्बल राष्ट्रों के पग हिला दिये हैं। बड़े-बड़े राष्ट्र भी बाहर से नहीं तो भीतर से अवश्य ही युद्धजन्य दुष्परिणामों से आतंकित हैं। ऐसी भयानक स्थिति में मानव के हृदय में फिर शान्ति की भावना जन्म लेती जा रही है। विश्व के समस्त अंचलों से यह ध्वनि कर्णगोचर हो रही है कि अब युद्ध नहीं चाहिये, युद्ध बन्द करो, युद्ध बन्द करो।

> **निःशस्त्रीकरण**
> १. प्रस्तावना—शान्ति की भावना का उदय।
> २. निःशस्त्रीकरण का इतिहास।
> ३. निःशस्त्रीकरण का अर्थ।
> ४. उपसंहार।

युद्ध समाप्ति का एकमात्र यदि कोई सम्भव उपाय है, तो वह निःशस्त्री-करण है। अमेरिका और रूस जैसे सबल राष्ट्र भी आज निःशस्त्रीकरण की समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे हैं, परन्तु ये विचार केवल मौखिक ही हैं, क्योंकि निःशस्त्रीकरण का अर्थ है, युद्धात्मक एवं हिंसात्मक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण एवं प्रयोग पर पूर्ण नियन्त्रण करना, जबकि ये राष्ट्र इस प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण

में आज भी अहर्निश व्यस्त है। निःशस्त्रीकरण की समस्या अन्तर्राष्ट्रीय जगत् की आज सबसे बड़ी समस्या है। जब तक यह समस्या पूर्णरूप से हल नहीं हो जाती, तब तक विश्व-शांति किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। आणविक शक्तियों के विध्वंसकारी दुष्परिणामों को देखकर विश्व के अनेक राष्ट्रों ने इन शक्तियों के निर्माण एवं प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रस्ताव किया है, परन्तु आज तक इस समस्या पर विश्व के महान् राष्ट्रों ने हृदय से विचार नहीं किया और यह समस्या उत्तरोत्तर उग्र रूप धारण करती जा रही है।

द्वितीय महायुद्ध के विध्वंसकारी दुष्परिणामों को देखकर विश्व के बड़े-बड़े राष्ट्रों ने सन् १९४५ में निःशस्त्रीकरण के प्रश्न को उठाया। न्यू मैक्सिको में प्रथम आणविक विस्फोट के पश्चात् अमेरिका और ब्रिटेन दोनों देशों ने मिलकर एक सम्मिलित उद्घोषणा की कि आणविक अस्त्रशस्त्रों के उत्पादन एवम् उपयोग पर नियन्त्रण लगाने के लिये एक संयुक्त राष्ट्र आयोग की स्थापना की जानी चाहिये। इस घोषणा के फलस्वरूप जनवरी सन् १९४६ में अमेरिका, ब्रिटेन तथा सोवियत रूस के तत्कालीन विदेशमन्त्रियों ने एक 'संयुक्त-राष्ट्र-अणुशक्ति-आयोग' की नियुक्ति की। इसी वर्ष अमेरिका ने जून के महीने में 'बरुच योजना' के नाम से एक योजना प्रस्तुत की। इस योजना के कुछ प्रस्ताव इस प्रकार थे—

(१) भयपूर्ण सम्भावनाओं से युक्त सम्पूर्ण आणविक क्रिया-कलापों तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों की व्यवस्था तथा नियन्त्रण एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के अधीन हो।

(२) इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की आज्ञाओं का उल्लंघन करने वाले राष्ट्र को दण्डित किया जाए तथा स्थायी सदस्यों का विशेषाधिकार भी इस निर्णय में बाधा उपस्थित न करे।

(३) दण्ड विधान के नियम के साथ ही आणविक उत्पादन पर नियन्त्रण लगाया जाये और इन आणविक शक्तियों के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली समस्त सामग्री का मानव के कल्याण में उपयोग किया जाये।

इस बरुच योजना के इन प्रस्तावों पर संयुक्त राष्ट्र संघ में भिन्न भिन्न प्रकार से विचार किया गया तथा १९४६ में सदस्यों के बहुमत के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु सोवियत रूस तथा उसके अन्य मित्र राष्ट्रों ने इसमें यह संशोधन उपस्थित किया कि सर्वप्रथम आणविक अस्त्रों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिये तथा नियन्त्रण विधि बाद में कार्यान्वित की जानी चाहिये। इसके कुछ समय पश्चात् सद्भावनाओं से प्रेरित होकर रूस ने यह निर्णय किया कि अणुबमों पर प्रतिबन्ध एवं नियन्त्रण दोनों कार्य साथ-साथ ही प्रारम्भ किये जाने चाहियें। इसके पश्चात् रूस के अनेक विरोधों के कारण संयुक्त-राष्ट्र-संघ की समिति, अणुशक्ति अस्त्रायोग तथा आयोग को तोड़कर उन्हें केवल एक ही आयोग में "निःशस्त्रीकरण आयोग" के नाम में परिवर्तित कर दिया। कालान्तर में रूस और अमेरिका के पारस्परिक वैमनस्य के कारण संयुक्त-राष्ट्र-संघ की समिति ने इस आयोग के समस्त कार्य-कलापों को एक निष्पक्ष एवं मध्यस्थ उपसमिति के अधीन कर दिया। सन् १९५३ और १९५४ के बीच में इस समिति की अनेक बैठकें हुईं। अक्टूबर १९५४ में राष्ट्र-संघ ने यह प्रस्ताव पारित किया कि प्रमुख रूप से अस्त्र निर्माता "पाँच महान्" राष्ट्रों का सम्मिलित निर्णय होगा। इसके पश्चात् अब तक इन पाँच महान् राष्ट्रों की अनेक बैठकें हुईं, जिनमें बहुत से प्रस्ताव और समाधान

उपस्थित किये जाते रहे, परन्तु अभी तक कोई निश्चित निर्णय निकालना सम्भव न हो सका और न भविष्य में ही कोई आशा की किरण दिखाई पड़ती है।

सन् १९५५ में रूस ने अपनी सेना में से सात लाख सेना कम करने की घोषणा की थी। विश्वशांति के लिये रूस का यह सद्भावनापूर्ण पदन्यास प्रशंसनीय था। अगस्त १९५७ में निःशस्त्रीकरण की समस्या पर विचार करने के लिये एक सभा फिर हुई थी, जो केवल सुझाव और संशोधन तक ही सीमित रही। अमेरिका के तत्कालीन विदेश मन्त्री श्री डलेस ने अमेरिका, रूस और वारसा संधि के देशों में 'हवाई-निरीक्षण' का प्रस्ताव पेश किया। नाटो परिषद् ने भी निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी सभी बातों पर अपनी पूर्ण सहमति प्रदर्शित की। परन्तु दुःख है कि विश्व के महान् राष्ट्र निःशस्त्रीकरण के संबंध में किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके। यद्यपि भारतवर्ष ने अपने सद्भावनापूर्ण प्रयत्नों से विश्व के समस्त महान् राष्ट्रों को निःशस्त्रीकरण की पवित्र दिशा की ओर प्रेरित किया। पं० नेहरू की विदेशों की मैत्रीपूर्ण यात्राओं तथा वहाँ प्रकट किये हुये विचारों ने इस पुनीत कार्य को पर्याप्त रूप में आगे बढ़ाया था, फिर भी कोई उज्वल भविष्य दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इस प्रकार १९५८ के बाद के कुछ वर्षों में निःशस्त्रीकरण आयोग निष्क्रिय बना रहा। संयुक्त राष्ट्र महासभा के १४वें अधिवेशन में रूस के प्रतिनिधि ने एक निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव रखा, जिसके आधार पर मार्च, १९६२ में १८ राष्ट्रों की एक निःशस्त्रीकरण समिति बनाई गई। इसके बाद १९६३ में जेनेवा में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ जो महाशक्तियों की स्वार्थप्रियता के कारण विफल रहा। २५ जुलाई, १९६३ को अणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि पर अमेरिका, ब्रिटेन तथा रूस ने हस्ताक्षर करके निःशस्त्रीकरण के लिये एक नया पथ प्रशस्त किया। इसके बाद की सभी निःशस्त्रीकरण योजनायें विफल रहीं। १३ जून १९६८ ई० को परमाणु शक्ति निरोध सन्धि हुई, जिसे ६१ राज्यों ने स्वीकार किया और यह ५ मार्च १९७० ई० को लागू की गई। सन् १९७० से १९७८ तक अनेक निःशस्त्रीकरण सम्मेलन हुए, लेकिन इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण प्रगति न हो सकी। सन् १९७८ में अमेरिका ने न्यूट्रान बम बनाने की घोषणा कर दी, जिससे जेनेवा का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन भी विफल रहा। सन् १९८१—८२ में रीगन का अमेरीकी प्रशासन निःशस्त्रीकरण के पक्ष में नहीं था, इसी प्रकार १९८७ में भी अमेरिका ने इसका विरोध किया। अतः यह समस्या निरन्तर जटिल होती जा रही है। शान्ति, शांति और प्रेम से ही स्थापित की जा सकती है, युद्ध और हिंसा से नहीं। जब तक विश्व में पूर्ण रूप से निःशस्त्रीकरण न हो जाएगा, तब तक साम्राज्यवादी सबल राष्ट्र अबल राष्ट्रों को अपने चंगुल में फंसाते रहेंगे और मानवता इसी प्रकार ध्वस्त होती रहेगी। अतः निःशस्त्रीकरण आज विश्व की प्रमुख समस्या है, विश्व के कूट-राजनीतिज्ञों को एक स्वर से इसका समाधान करना अत्यन्त आवश्यक है। भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी भी इस दिशा में प्रयत्नशील रही हैं।

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में भारत की सरकार विश्व-शान्ति और विश्व बन्धुत्व की भावनाओं पर आधारित भारत की सत्य, अहिंसा और प्रेम की नीति का अनुसरण करती रही है। प्रधानमन्त्री ने अपनी ब्रिटेन, अमेरिका और सोवियत संघ की राजकीय यात्राओं में निःशस्त्रीकरण के सिद्धान्त पर बल देते हुए विश्व के अन्य राष्ट्रों से बार-बार कहा है कि—निःशस्त्रीकरण से ही विश्व में

शान्ति और मानवता की रक्षा हो सकती है। परन्तु अपने को बड़ा समझने वाले राष्ट्र अभी इस सिद्धान्त पर एकमत नहीं हैं। कल्याण इसी में है कि विश्व के शक्तिशाली राष्ट्र निःशस्त्रीकरण को स्वीकार करलें अन्यथा तृतीय विश्व युद्ध की विभीषिकायें सदैव ही बनी रहेंगी। प्रधानमन्त्री राजीव गांधी इस दिशा की ओर विश्व की महान् शक्तियों को प्रेरित करने में सतत प्रयत्नशील हैं। परन्तु उनके अथक प्रयासों में अमेरिका विघ्न उपस्थित करता रहा है।

३१ मई १९८८ से चार सप्ताह के लिये आरम्भ हुए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा बुलाये गये निःशस्त्रीकरण के विशेष अधिवेशन में भारत के प्रधानमन्त्री राजीव गांधी द्वारा निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी सर्व सम्मत प्रस्ताव पास करने में सफल सिद्ध न हो सके। २६ जून ८८ को यह प्रस्ताव अमेरिका के विरोध के कारण पास नहीं हुआ।

निरस्त्रीकरण सम्बन्धी इस सर्वसम्मत समझौते के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ में १५९ देशों के प्रतिनिधि लगातार २२ घंटे तक प्रयास करते रहे, लेकिन अमेरिका के अड़ियल रवैये के कारण उनकी तमाम कोशिशें निष्फल रहीं। संयुक्त राष्ट्र महासभा का चार सप्ताह तक चला सम्मेलन अपना मकसद हासिल किये बिना आज यहाँ समाप्त हो गया।

भारत ने सर्वसम्मत समझौता तैयार करने के लिये काफी प्रयास किये लेकिन आज अन्तिम क्षणों में सारे प्रयासों पर पानी फिर गया और १५९ राष्ट्रों के प्रतिनिधि अमेरिका पर यह आरोप लगाते हुए जुदा हो गये कि अमेरिका विश्व निरस्त्रीकरण की दिशा में एक नयी कार्ययोजना के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक है।

उल्लेखनीय है कि इस अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने सन् २०१० तक पूर्ण विश्व निरस्त्रीकरण से सम्बन्धित कार्य योजना पेश की थी और संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों से अपील की थी कि वे इस योजना को यथाशीघ्र अमल में लाने के लिये प्रयास करें।

तीन चरणों की इस कार्य योजना के प्रस्तावों के अनुरूप संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधि राष्ट्रों ने एक व्यापक समझौते की रूपरेखा तैयार की थी। अधिवेशन समाप्त होने के २२ घंटे पहले से कुछ प्रमुख राष्ट्रों के सदस्य इसे अन्तिम रूप देने के प्रयास में जुट गये थे, लेकिन उनकी यह अभिलाषा इस अधिवेशन में पूरी नहीं हो सकी।

प्रस्तावित समझौते के अंतिम दस्तावेज के ६७ पैरों में से ५० पैरों पर सभी प्रतिनिधियों में सहमति हो चुकी थी कि तभी अमेरिका ने आगे बातचीत में शामिल होने से इंकार कर दिया। नतीजतन अधिवेशन को वहीं समाप्त कर देना पड़ा।

अमेरिका इस दस्तावेज में उल्लिखित उन पैरों को नहीं पचा पाया जिनमें इजराइल और दक्षिण अफ्रीका के परमाणु कार्यक्रमों और अंतरिक्ष आयुधों की आलोचना की गई थी। अमेरिका ने नौसैनिक निःशस्त्रीकरण पर जोर देने वाले पैरों पर भी आपत्ति प्रकट की।

भारत सहित तीसरी दुनिया के लगभग सभी देशों ने अधिवेशन की असफलता पर गहरा अफसोस जाहिर किया। संयुक्त राष्ट्र में भारतीय राजदूत चिन्मय आर० गरेखान ने भी इसे बेहद अफसोस जनक बताया।

भारत के साथ-साथ कई दूसरे देशों के प्रतिनिधियों ने अधिवेशन को सफल होने के बनाने की भरसक कोशिश की पर इसका कोई नतीजा नहीं निकला। अधि-

वेशन के आखिर में कोई घोषणा नहीं की गयी, लेकिन यह आशा व्यक्त की गयी कि इससे कुछ न कुछ तो हासिल होगा ही।

विकासशील देशों को इस अधिवेशन की सफलता को लेकर बड़ी-बड़ी आशायें थी। खासकर अमेरिका और सोवियत संघ के बीच वाशिंगटन और मास्को में मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्रों को खत्म करने के बारे में संधियों के होने से इस अधिवेशन के लिये अच्छा माहौल बन गया था। लेकिन अन्ततः सब निष्फल रहा और इस अधिवेशन का भी वही नतीजा रहा जो १९८२ और १९८७ में हुए अधिवेशनों का रहा था।

कुछ गुट निरपेक्ष देशों के प्रतिनिधियों ने तो अधिवेशन की असफलता पर अपने गुस्से का खुलकर इजहार भी कर दिया। तंजानिया के राजदूत ने आरोप लगाया कि 'अधिवेशन की कार्यसूची को मनमाने तौर पर बदलकर कुछ ताकतों ने अधिवेशन को ही अपनी धौंस में लेने की कोशिश की।'

अधिवेशन में अपने रुख के बारे में सफाई देते हुये अमेरिकी राजदूत जान वर्न वाल्टर्स ने कहा 'महज एक कागज के टुकड़े के लिये अमेरिका अपनी राष्ट्रीय नीतियों के अहम पहलुओं में फेर बदल नहीं कर सकता। तीसरी दुनिया के देशों को चाहिये कि अगली बार समझौते की शर्तों को ज्यादा वाजिब रूप दें।' ●

७   कश्मीर समस्या

संस्कृत साहित्य में कश्मीर-सुषमा का अनेक प्रकार से मनोहारी वर्णन किया गया है। प्रकृति की प्यार भरी गोद में पला हुआ कश्मीर आज तक अनेक भारतीय नरेशों की क्रीडा तथा विहार भूमि रहा है। महाराज अशोक ने इस भू-भाग को अपनी कलाप्रियता के कारण उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया था। बाद में मुगलों ने इसे अधिकार में लिया, उनसे महाराजा रणजीतसिंह ने छीन लिया, तब से आज तक इस प्रकृति के हरे-भरे प्रांगण पर डोंगरा नरेशों का आधिपत्य रहता आया है। भारत की यही स्वर्ण-भूमि आज राजनैतिक दुर्दशा के कारण त्राहि-त्राहि कर रही है। यद्यपि इसने आज तक ऐसे अनेक उत्थान पतन देखे है, परन्तु आज भी उसका छिन्न-भिन्न शरीर असीम वेदना में चीत्कार कर उठा है। अंग्रेज यहाँ से गये तो सही, परन्तु विष के ऐसे बीज बो गये, जिनके कटुफल आज भी मनुष्य को मृत्यु के मुंह में धकेल रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, जहाँ भारत के सामने अन्य समस्यायें थी, वहाँ देशी रियासतों के विलय की भी बड़ी भयानक समस्या थी। लेकिन लौह पुरुष सरदार पटेल की कुशाग्र बुद्धि ने इस समस्या को बहुत जल्दी सुलझा दिया था।

१५ अगस्त १९४७ को भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ। एक देश दो देशों में विभक्त हुआ। स्वतन्त्र देशी रियासतों को छूट दी गई कि वे जिधर चाहें उधर मिल सकती हैं, चाहे हिन्दुस्तान की ओर और चाहे पाकिस्तान की ओर। जो देशी रियासतें भारत या पाकिस्तान के बीच में पड़ती थीं, उनके ऊपर तो इस बात का कोई विशेष प्रभाव नहीं था, क्योंकि वे तो बीच में होने के कारण किसी दूसरे के साथ गठबन्धन कर ही नहीं सकती थी, परन्तु कश्मीर ऐसा राज्य था, जिसकी सीमायें एक ओर भारत को तथा दूसरी ओर पाकिस्तान को छू रही थी। समस्या इसलिये कुछ गम्भीर थी कि कश्मीर की बहुत बड़ी जनसंख्या मुसलमान थी तथा राजा हिन्दू था। यद्यपि भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के अनुसार राजा को यह चुनने का अधिकार था कि वह

भारत या पाकिस्तान किसी के साथ मिल सकता है। कश्मीर के महाराजा हरिसिंह ने अपनी तटस्थ नीति की घोषणा की अर्थात् वे न पाकिस्तान में मिलना चाहते थे और न हिंदुस्तान में। इधर हैदराबाद के सामने, जहाँ की ६०% जनता हिन्दू थी, परन्तु राजा मुसलमान था और भारत के बीच में फँस जाने के कारण उसके पास भारतवर्ष में मिलने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं था। लेकिन पाकिस्तान कश्मीर को अपने कब्जे में रखना चाहता था। इसलिए उसने कश्मीर को सैनिक बल पर हड़पने की योजना बनाई। उसके निर्देश पर सीमावर्ती कबायलियों ने कश्मीर पर हमला कर दिया, पाकिस्तान

> **कश्मीर समस्या**
> १. प्रस्तावना।
> २. कश्मीर की तटस्थ नीति तथा पाकिस्तान की प्रतिक्रिया।
> ३. भारतीय संघ में विलीनीकरण।
> ४. भारतीय सेनाओं द्वारा कश्मीर की रक्षा।
> ५. संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर समस्या।
> ६. कश्मीर हड़पने के लिए युद्ध की चालें।
> ७. उपसंहार।

के सैनिक अफसर उसका नेतृत्व कर रहे थे। कश्मीर के भिन्न-भिन्न भागों पर कब्जा करते हुए वे आगे बढ़ने लगे। कश्मीर नरेश की थोड़ी-सी सेना उनका मुकाबला न कर सकी। जब पाकिस्तान की कबायली सेना कश्मीर से केवल २० मील दूर रह गई, तब वहाँ के राजा तथा कश्मीर की जनता की ओर से शेख अब्दुल्ला ने भारत सरकार से सहायता माँगी, लेकिन भारत सरकार की यह शर्त थी कि पहले कश्मीर का भारत में विलीन होना परम आवश्यक है। शेख अब्दुल्ला उसी दिन प्रातः चार बजे, राजा से आवश्यक कागजों पर हस्ताक्षर कराकर वापस लौट आये। भारतीय सेना अविलम्ब विमानों द्वारा कश्मीर की ओर उड़ चली। पहिला वायुयान वीरों को लेकर उड़ा। उन्होंने पहुँचते ही युद्ध भूमि में अंगद का-सा पैर गाड़ दिया ताकि शत्रु आगे न बढ़ सके। इसके बाद दो-दो मिनट पर सशस्त्र भारतीय वायुयान वहाँ पहुँचने लगे। इन्होंने शत्रुओं को पीछे धकेलना शुरू कर दिया, अनेक छीने हुए स्थान उनसे ले लिये गये। इस समय यदि भारतीय सेना को कुछ समय की छूट और मिल जाती, तो यह समस्या सुलझ गई होती और समस्त कश्मीर पर आज भारत का अधिकार होता, परन्तु तभी भारत-सरकार ने इस प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र-संघ की सुरक्षा परिषद के सामने उपस्थित कर दिया। सुरक्षा-परिषद ने तुरन्त दोनों देशों में सन्धि कराकर युद्ध समाप्त कर दिया। फलस्वरूप आज तक समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। कश्मीर के कुछ भाग पर पाकिस्तान का अधिकार है और शेष पर हिन्दुस्तान का। संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से अब तक कई मध्यस्थ आये और चले गये, परन्तु यह समस्या सुलझ न सकी।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने कश्मीर समस्या को अब तक सुलझाने का बिल्कुल प्रयास नहीं किया, बल्कि और नये-नये विवाद उत्पन्न कर दिये हैं। सारा प्रश्न ज्यों का त्यों पड़ा है। इसका मुख्य कारण है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में गुटबन्दियाँ हैं और शक्तिशाली राष्ट्र अपने स्वार्थ साधने में लगे रहते हैं, निष्पक्षता उनसे बहुत दूर है। युद्ध विराम संधि के बाद ही भारतीय नेताओं ने यह घोषणा की थी कि कश्मीर से आक्रमणकारी सेनायें हटाने के पश्चात् वहाँ की जनता को शांतिमय वातावरण में मतदान द्वारा अपने भाग्य निर्णय का शुभअवसर प्राप्त होगा परन्तु जनमत संग्रह की

आवश्यक शर्तें आज तक पूरी नहीं हुईं। कश्मीर विवाद की मध्यस्थता करने के लिये यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ ने कई कूटनीतिज्ञ विद्वान भेजे हैं, परन्तु सभी असफल लौट कर गये हैं। पाकिस्तान किसी की बात मानता नही। सर्वप्रथम एडमिरल चैस्टर निमिट्स मत संग्रह अधिकारी बनाकर भेजे गये थे, परन्तु उपयुक्त वातावरण के अभाव में जनमत सम्भव न हो सका। १९५० में सर ओवन डिक्सन को और उनके पश्चात् डॉक्टर ग्राहम को मध्यस्थ बनाकर कश्मीर भेजा गया, परन्तु ये सभी महानुभाव असफल होकर लौटे। १९५७ में स्वीडन के श्री जारिंग भी दोनों देशों में फैसला कराने आए थे, दोनों देशों के गम्भीर विचारकों से १४ अप्रैल से ११ मई तक विचार विमर्श करने के बाद उन्हे भी वैसे ही लौटना पड़ा। एक बार रूस के प्रधान-मन्त्री श्री बुलगानिन और ख्रुश्चेव भी कश्मीर गए। रूसी नेताओं ने कश्मीर को भारत का अंग स्वीकार किया। उन्होंने कश्मीर की जनता से मिलकर यह भी जान लिया कि वह भारत मे मिलने का हार्दिक समर्थन करती है। लेकिन इनका प्रयास भी विफल रहा।

१९५१ में कश्मीर में विधान सभा के लिये आम चुनाव हुए, संविधान बना और कश्मीर में लागू कर दिया गया। इस संविधान में कश्मीर ने भारत में अपना विलीनीकरण स्वीकार किया। तत्कालीन कश्मीरी जन नेता शेख अब्दुल्ला थे। कुछ विदेशी व्यक्तियों के प्रभाव में आकर उन्होंने ऐसा षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया जिससे कश्मीर का संविधान समाप्त हो जाये और यह राज्य फिर से एक स्वतन्त्र राज्य बन जाए। उन्ही दिनों प्रसिद्ध जनसंघी नेता डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी वहाँ गये। देश-द्रोहिता के कारण शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार कर लिया गया और बक्शी गुलाम मुहम्मद को नया प्रधानमन्त्री बनाया गया। उनका कथन था कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, कश्मीर की संविधान सभा कश्मीर की जनता के सच्चे प्रतिनिधियों की सभा है और उसका निर्णय जनमत संग्रह के समान ही प्रामाणिक एवं पवित्र है।

पाकिस्तान उत्तरोत्तर भिन्न-भिन्न देशो से शस्त्र अर्जन में संलग्न रहा है। जनमत संग्रह की बात पुरानी पड़ चुकी है, न अब वह परिस्थिति रही है और न समय। श्री जारिंग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"भारत सरकार ने जनवरी १९४८ को सुरक्षा परिषद के सामने इस मामले को रखा था। उनकी शिकायत है कि परिषद ने अभी तक यह मत व्यक्त नहीं किया कि आक्रमणकारी कौन है—भारत या पाकिस्तान। उनकी राय में परिषद् को अपना मत व्यक्त करना चाहिये। साथ ही पाकिस्तान का कर्तव्य है कि वह आक्रमण को वापस ले। सुरक्षा परिषद् जब तक यह नहीं करती और पाकिस्तान जब तक कश्मीर से नहीं हटता, तब तक प्रस्तावों के अन्तर्गत भारत ने जो वायदे किये हैं, वे अमल की स्थिति तक नहीं पहुँचते।"
एशिया का शक्ति सन्तुलन परिवर्तित हो चुका है। पाकिस्तान को अमेरिका से सैनिक सन्धि के फलस्वरूप उसे अनेक प्रकार की सैनिक शक्ति प्राप्त हो रही है। पाकिस्तान आज 'बगदाद पैक्ट' का सदस्य है। सीएटो की सैनिक संगठन की सन्धि आदि प्रत्येक पाकिस्तान की बदलती हुई विचारधारा की ओर संकेत कर रहे। समय के साथ-साथ कश्मीर के सम्बन्ध में भी भारत सरकार के सामने नई-नई समस्यायें दी जा रही है। १९५८ मे पाकिस्तान में भी सैनिक तानाशाही स्थापित हुई। जनरल अयूब खाँ ने भी कश्मीर की समस्याओं को सुलझाने के लिये युद्ध की धमकियाँ दीं। पाकिस्तान की पिछले बीस वर्षों की सभी सरकारों ने भी यही बातें दुहराई थीं।

कश्मीर जनता के प्रतिनिधियों, संसद सदस्यों तथा वहाँ की सरकारी सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार द्वारा संविधान की धारा संविधान की धाराओं में परिवर्तन के फलस्वरूप कश्मीर की विशेष स्थिति में परिवर्तन लाया गया। अन्य प्रान्तों की तरह अब वहाँ राष्ट्रपति का प्रतिनिधि राज्यपाल होता है, फिर मुख्य मन्त्री, मन्त्रिगण तथा सचिव एवं सचिवालय। यद्यपि इस सामान्य परिवर्तन से पाकिस्तान ने काफी शोर मचाया और नाक मुँह सिकोड़े।

पाकिस्तानी राष्ट्रपति अय्यूब हमेशा इस तलाश मे रहे कि कैसे भारत से झगड़ा मोल लिया जाये। भारत बहुत-सी बातों को बड़े भाई की तरह सहता रहा और टालता रहा। जनवरी १९६० मे पाकिस्तानियों ने पहिले हुए समझौतों पर कायम न रहते हुए कच्छ के रन पर भारी तोपों और सैनिकों के साथ आक्रमण कर दिया। मार्च १९६० मे अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का उल्लंघन करके भारतीय प्रदेशों में दो चौकियाँ बना लीं। भारत ने इन दो स्थितियों पर कड़ा विरोध किया। तीसरी बार १९६५ में जब २५०० पाकिस्तानियों ने तोपों की आड़ लेकर आक्रमण किया तो भारतीय सैनिकों ने डटकर मुकाबला ही नहीं किया, अपितु इनके दाँत खट्टे कर दिये। अन्ततः ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री विल्सन की भाग-दौड़ से पाकिस्तान युद्ध-विराम के लिए समझौते पर तैयार हुआ।

यह सब उस आक्रमण की भूमिका मात्र थी, जो बाद में पाकिस्तान ने कश्मीर पर किया। अभी तक कच्छ के रन समझौते के हस्ताक्षरों की स्याही भी न सूख पाई थी कि पाकिस्तान ने ५ अगस्त १९६५ को कश्मीर में अपने सशस्त्र घुसपैठिये भेज कर पुनः अघोषित युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस युद्ध में भारतीय वीरों ने जिस वीरता और शौर्य का परिचय दिया वह भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। पाकिस्तानियों ने युद्ध तो इसलिये किया था कि बचा हुआ कश्मीर इनको मिल जाएगा, पर हुआ उल्टा ही। भारतीय वीर लाहौर से थोड़ी दूर तक पहुँच गये, उधर पाकिस्तानियों से अधिकृत कश्मीर के मुख्य-मुख्य स्थानों पर पूर्ण अधिकार कर लिया। चौबेजी गए थे छब्बे जी होने वहाँ दुबे जी भी न रहे। पाकिस्तान इतनी जन-धन की क्षति के लिए कभी तैयार नहीं था, जो उसे उठानी पड़ी। संयुक्त राष्ट्र संघ के कहने पर भारत और पाकिस्तान ने २३ सितम्बर १९६५ को सुबह साढ़े तीन बजे से युद्ध विराम स्वीकार किया। लोकसभा में युद्ध विराम की घोषणा स्वीकार करने की घोषणा करते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने कहा था—

"मैं इस सदन और समस्त देश की ओर से अपने वीर, ... कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने अदम्य साहस और शौर्य ... अपना विश्वास बना है।"

कश्मीर को हड़पने के पाकिस्तान के सभी दाँव-पेच अभी तक तो व्यर्थ गए हैं। तब से अनेकों बार अब तक पाकिस्तान के भूतपूर्व और अब स्वर्गवासी विदेश मन्त्री मिस्टर जुल्फिकार अली भुट्टो ने कश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र-संघ में कई बार उठाया। वे बड़ा बयान के हक में थे, जो रूप में आना था भारत के लिए वह बैठते थे। उनकी बचकानी बातों की वजह से पाकिस्तान भी स्वयं परेशान था, क्योंकि इनके कारण विदेशों में पाकिस्तान के मान को निःसन्देह ठेस पहुँची। उन्होंने ही राष्ट्रपति अय्यूब खाँ को ही लड़ने की तोर दी थी, जब वह षड्यन्त्र सामने आया तब बड़ी मुश्किल से लोगों के कहने से उन्हें हटाया गया। यदि मिस्टर भुट्टो न होते तो जनरल अय्यूब भारत से युद्ध का जोखिम न करते।

युद्ध के बाद से कश्मीर के नाम पर कोई लम्बी चौड़ी कार्यवाही यद्यपि नहीं हुई, फिर भी मियाँ अयूब उन्हीं गीत गाते थे, तब बातें काश्मीर की रागिनी में ही थे। उनकी जिद यही थी कि पहिले कश्मीर का मामला तय हो, जबकि कश्मीर का कोई मसला है ही नहीं। राष्ट्रपति अयूब के उत्तराधिकारी राष्ट्रपति याह्या खाँ भी उसी स्वर और उसी राग में बोलते थे, जिसमें पाकिस्तान के पहिले स्वामी बोल चुके हैं, न कोई नवीनता है न मौलिकता।

१९६७ की समाप्ति पर जब देश में से आपातकालीन स्थिति समाप्त कर दी गयी, तब शेख अब्दुल्ला को नजरबन्दी जेल से छोड़ना आवश्यक हो गया। वैसे भी कुछ विरोधी पार्टियों के और कुछ कांग्रेस के संसद सदस्य कुछ समय से शोर मचा रहे थे और लिख-लिखकर प्रधानमन्त्री को ज्ञापन भेज रहे थे कि अब्दुल्ला को अब रिहा कर दिया जाए। परिणाम यह हुआ कि शेख को रिहा कर दिया गया।

अपनी लीडरी बरकरार रखने के लिए तथा अपना महत्त्व सिद्ध करने के लिए आपने अपना कार्यक्रम उन्हीं पुराने गीतों से शुरु किया कि मैं तो अपना जीवन, भारत और पाकिस्तान की मैत्री कराने में लगा दूँगा। एक मास दिल्ली में रहकर सभी प्रमुख व्यक्तियों से भी मुलाकातें की। प्रधानमन्त्री, गृहमन्त्री एवं रक्षा मन्त्री आदि प्रमुख केन्द्रीय स्तम्भों से भी विचार-विमर्श किया। इसके बाद जैसे ही आप कश्मीर में ईद की नमाज पढ़ने पहुँचे, आपने वही विषवमन किया, जो आप पहिले किया करते थे—"मैं कश्मीर की इस सरकार को अवैधानिक मानता हूँ, जनमत संग्रह बिना कश्मीर का भारत में विलय अपूर्ण है' इत्यादि। इसी बीच में किसी पत्रकार ने शेख की नागरिकता के बारे में प्रश्न कर दिया। शेख ने भारतीय नागरिक होने से साफ इन्कार कर दिया। इसके पश्चात् शेख के जितने भाषण हुए, वे सभी अमर्यादित एवं राष्ट्रहित में अवांछनीय थे। फिर क्या था, चारों ओर से केन्द्रीय सरकार के पास फिर खबरें आने लगीं कि या तो शेख पर पाबन्दी लगायी जाए या इन्हें देशहित में फिर बन्दी बना लिया जाए। शेख ने अपने भाषणों में जो जहर उगला उसका परिणाम-यह हुआ कि साम्प्रदायिक दंगे शुरु हो गए। मेरठ में जिस दिन शेख ने भाषण दिया, उस दिन नगर में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे शुरु हो गये। २८ जनवरी से २ फरवरी १९६८ तक नगर का सामान्य जनजीवन अस्तव्यस्त हो गया। उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री चौ० चरणसिंह ने जब यह कहा कि सरकार शेख के उत्तर प्रदेश में घूमने पर पाबन्दी लगाने के विषय में गम्भीरता से विचार कर रही है। तब कहीं शेख का उत्तर प्रदेश में आना बन्द हुआ। इधर श्रीमती गाँधी ने जब दूसरी मुलाकात के लिए यह कहकर मना कर दिया कि पहले वे अपने को भारतीय नागरिक मानें तभी कोई बात हो सकती है। तब कहीं उनका दिल्ली के चक्कर काटना बन्द हुआ। इस बात से तो वह पहिले ही झल्लाये हुए थे कि इन्दिरा जी ने यह क्यों कहा कि शेख की मुक्ति केवल परीक्षण मात्र है।

अब भी कश्मीर में पाक एजेन्टों द्वारा भारत विरोधी विषाक्त प्रचार किया जाता है। साम्प्रदायिक उपद्रव होते हैं तथा अल्पसंख्यक अपने को असुरक्षित अनुभव करते हैं। कश्मीर की जनता को विभिन्न माध्यमों से गुमराह करके भारत विरोधी प्रचार ही वहाँ के साम्प्रदायिक नेताओं का एकमात्र कार्य व्यापार है।

१९७१ में हुई क्रांति के फलस्वरूप नवोदित बङ्गला देश की भयानक परिस्थितियों एवं गृह युद्ध की भयानक लपटों में झुलसा हुआ पाकिस्तान और शेख

अब्दुल्ला कश्मीर की समस्या पर मौन रहे, परन्तु उनके एजेन्ट अपनी कार्यवाही में सलग्न रहे।

शेख अब्दुल्ला १९७५ में कश्मीर के पुन मुख्य मन्त्री बनने के बाद मौन रहे और भारत सरकार से सहयोग करते रहे। सहसा २ वर्ष १ माह, २ दिन के बाद कांग्रेस द्वारा अपना समर्थन वापस लेने के फलस्वरूप शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में चल रही कश्मीर सरकार २७ मार्च, १९७७ को रात्रि के ८ ३५ पर समाप्त हो गई। राष्ट्रपति भवन की विज्ञप्ति के अनुसार जम्मू कश्मीर के सविधान की धारा ९२ के अन्तर्गत राज्य में ६ मास के लिए राज्यपाल के शासन को स्वीकृत किया गया। प्रशासन अपने हाथो में लेने से पूर्व राज्यपाल ने विधान सभा भग कर दी। २९ मार्च १९७७ को केन्द्रीय गृह मन्त्री चौ० चरणसिंह ने ससद में घोषणा की कि जम्मू कश्मीर विधान सभा के लिए तीन महीने में चुनाव करा दिये जायेंगे। इससे पूर्व और पश्चात् शेख अब्दुल्ला लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण से कई बार भेंट कर चुके थे।

१९७७ के विधान सभा के चुनावों में शेख अब्दुल्ला की पार्टी को बहुमत प्राप्त हुआ। कश्मीर के नेतृत्व की बागडोर शेख अब्दुल्ला के हाथों में आई। शेख पुन मुख्य मन्त्री बनाये गये। १९७९ में कश्मीर में आन्तरिक विद्रोह फिर भडक उठा। भिन्न भिन्न राजनैतिक पार्टियो ने शेख की सरकार से असहयोग करना प्रारम्भ कर दिया, सत्याग्रह और आन्दोलन उग्र रूप धारण कर उठे। उधर पाकिस्तान के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री जुल्फिकार अली भुट्टो को ४ अप्रैल १९७९ को पाकिस्तान में दी गई फाँसी के कारण कश्मीर में साम्प्रदायिक हिंसात्मक प्रदर्शन और तोडफोड प्रारम्भ हुई। परन्तु शेख अब्दुल्ला इन सब को दबाने में समर्थ सिद्ध हुए। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के १९८० में पुन प्रधानमन्त्री बनने पर शेख ने उन्हें बधाई दी और उन्हें पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया। ८ सितम्बर १९८२ ई० को शेख अब्दुल्ला का देहावसान हो गया। भारतवासियों ने अपनी गौरवमयी परम्परा का निर्वाह करते हुए उन्हें शोक श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। शेख के बाद उनके पुत्र शेख फारूख अब्दुल्ला जम्मू-कश्मीर के मुख्यमन्त्री बन गये थे। उन्होंने अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए काश्मीर पुनर्वास विधेयक जम्मू काश्मीर विधान सभा से पारित करवा लिया। अब इस विधेयक पर वहाँ के राज्यपाल द्वारा हस्ताक्षर करना अनिवार्य हो गया है। लेकिन यह विधेयक भारत की अखडता व सम्प्रभुता की दृष्टि से अत्यन्त खतरनाक है, क्योकि इसमें यह व्यवस्था की गई है कि सभी मुसलमान नागरिक जो विभाजन के बाद पाकिस्तान चले गए, पुन कश्मीर में आकर स्थायी रूप से बस सकते हैं। अत यदि यह विधेयक कानून बन जाता है तो पाकिस्तान से अनेक अराजक तत्व कश्मीर में बस कर उपद्रव कर सकते हैं। इसीलिए तत्कालीन भारत मन्त्री श्रीमती गाँधी ने १९८६ में काश्मीर में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया था। इसके बाद फारूक अब्दुल्ला के नेतृत्व में काश्मीर में वैधानिक शासन की बहाली हुई। लेकिन १९८८-८९ की अवधि में काश्मीर पाक घुसपैठिए और आतकवादियों का शिविर बन गया। अत देशद्रोही एव आतकवादी गतिविधियो पर नियन्त्रण पाने तथा राज्य का बहुमुखी विकास करने के लिए १९८९ में काश्मीर में पुन राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। पाक घुसपैठियों और आतकवादियों ने काश्मीर में कहर बरसा रखा है। आज सर्वत्र काश्मीर में अशान्ति व अराजकता फैली हुई है।

सारांशत विश्व की दृष्टि में और पाकिस्तान की निगाहों में क्यों काश्मीर समस्या क्यों बनी हुई है। काश्मीर का कुछ भाग जो अनधिकृत रूप से पाकिस्तान दबाए हुए है जब तक भारत को नहीं मिल जाता तब तक काश्मीर

समस्या, समस्या ही बनी रहेगी। काश्मीर की समस्या यदि केवल काश्मीर तक ही सीमित रहती तब भी कुछ भय नहीं था परन्तु पाकिस्तान निरन्तर काश्मीर की सीमाओं से प्रशिक्षित आतंकवादियों को भारत में प्रवेश करा रहा है तथा अवैध तस्करी को बढ़ावा मिल रहा है। १९८८–८९ काश्मीर की सीमाओं पर शनैः शनैः संघर्ष चल रहा है। थोड़े-थोड़े अन्तराल के बाद पाकिस्तानी सैनिक भारतीय चौकियों पर गोलीबारी करते रहे हैं और भारतीय सीमा सुरक्षा बल भी उन्हें मुँह तोड़ जवाब देता रहा है। सरकारी सूचनाओं के अनुसार गोटरियाँ, बोकर और दगियाल सेक्टरों में भारतीय सुरक्षा बलों ने भी जवाबी गोलियाँ चलाई हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि कश्मीर समस्या एक कैंसर का रूप धारण कर चुकी है। पाकिस्तान सदैव युद्धोन्माद में रहता है परन्तु भारत एक उन्माद रहित शांति प्रिय देश कहलाने में अपना गौरव समझता है। इस समस्या का निदान यथा स्थिति ही की ओर है।

८ नवम् गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन (१९८९)

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का अत्यन्त महत्वपूर्ण नौवाँ शिखर सम्मेलन यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्राद में ४ सितम्बर से ८ सितम्बर १९८९ तक हुआ। मेजबान यूगोस्लाविया ने कहा कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को आधुनिक साँचे में ढालने और शांति, सुरक्षा एवं निरस्त्रीकरण के लक्ष्य हासिल करने के लिये नये तरीके अपनाये जायें। इसके अतिरिक्त नेताओं ने संकल्प लिया कि वह नयी आर्थिक व्यवस्था के लिए विकसित तथा विकासशील देशों के बीच यथा शीघ्र वार्ता शुरू करने का प्रयास तेज करेंगे।

इसके बावजूद सम्मेलन में विश्व के नेताओं ने विकसित देशों की आर्थिक नीतियों की कड़ी आलोचना करते हुये उत्तर-दक्षिण के बीच विकास ऋण और पर्यावरण पर वार्ता कराये जाने की सलाह दी ताकि विकासशील देशों में बढ़ते हुये आपसी तनाव को कुछ कम किया जा सके।

आन्दोलन के नेताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय असंतुलन को विश्व की शांति तथा सुरक्षा के लिये खतरनाक बताया और कहा इसमें सुधार के लिये विकसित तथा विकासशील देशों की बातचीत आवश्यक है।

चार दिन तक चलने वाले १०२ सदस्य देशों के संगठन के इस सम्मेलन के उद्घाटन समारोह में नेताओं ने विकसित देशों से अपील की कि वह विकासशील देशों के विदेशी ऋण के बोझ और व्यापार की समस्या के हल के लिये कदम उठायें।

उन्होंने कहा कि यदि निर्धन देशों की आर्थिक समस्यायें बनी रहीं तो निरस्त्रीकरण की वर्तमान प्रक्रिया और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक वातावरण में सुधार का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा।

सम्मेलन में कहा गया कि अगर निरस्त्रीकरण की वर्तमान प्रक्रिया और तनाव शैथिल्य को सफल बनाना है तो विदेशी ऋण की समस्या को हल करना होगा।

गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन के पूर्ण अधिवेशन जो २८ वर्ष पूर्व इस संगठन की स्थापना के बाद दूसरी बार यूगोस्लाविया में हुआ है। यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति जानेज द्रनोवेक ने जिम्बाब्वे के राबर्ट मुगाबे से अध्यक्ष पद ग्रहण किया।

श्री द्रनोवेक ने अपने उद्घाटन भाषण में असंतुलित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास की चर्चा की और कहा कि अब यह बात साफ होने लगी है। संगठन को और प्रभावी बनाने के लिये इसकी कार्यपद्धति में सुधार लाया जायेगा।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के जनक पण्डित जवाहर लाल नेहरू, मार्शल टीटो और जमाल अब्दुल नासिर को श्री द्रनोवेक श्री मुगाबे, मिस्र के राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक और इक्वेडर के राष्ट्रपति रोड्रिगो बोर्जा ने भावभीनी श्रद्धांजलि दी। नेताओं ने कहा कि वर्तमान समय के अनुरूप आन्दोलन का रुख निर्धारित करते हुये यह ध्यान रखना होगा कि अपने मूल सिद्धान्तों और उद्देश्यों से यह भटक न जाये।

संयुक्त राष्ट्र महासचिव पेरेज डी० क्वेयार ने कहा कि परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में आन्दोलन का महत्व फिर स्थापित हुआ है। उन्होंने कहा कि आन्दोलन की नीति संयुक्त राष्ट्र घोषणा-पत्र की पुष्टि करती है।

नौवें गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन के पूर्ण सत्र को सम्बोधित करते हुये श्री गाँधी ने कहा कि प्रस्तावित कोष संयुक्त राष्ट्र के तहत कार्य करेगा तथा इसकी सदस्यता विश्व स्तर पर होगी।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को आर्थिक खेमाबन्दी के खतरे से आगाह करते हुये उन्होंने कहा कि शीत युद्ध की खेमाबन्दी अब धीरे-धीरे खत्म होने के बाद व्यापार युद्ध और टकराव की दिशा में नये खेमों को बनने से रोका जाये।

अपने भाषण में पूर्व प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी ने विश्व अर्थ व्यवस्था में खेमाबन्दी को समाप्त करने के पहले कदम के रूप में पर्यावरण सुरक्षा के लिये एक धरती रक्षा कोष के गठन का सुझाव दिया।

जिन पश्चिम व पूर्वी देशों में जहाँ पर्यावरण की समस्या अति गम्भीर है उनके पर्यवेक्षकों तथा प्रतिनिधियों ने प्रधानमन्त्री के प्रस्ताव को तुरन्त सराहा तथा श्री गाँधी को मुबारकबाद दी।

फलस्तीनी नेता यासर अराफात स्वापो के अध्यक्ष सैम नुजोमा और श्रीलंका के विदेश मन्त्री रंजन विजयरत्ने समेत गुटनिरपेक्ष देशों के कई नेताओं ने भी प्रधानमन्त्री के प्रस्ताव की सराहना की।

शिखर सम्मेलन के दूसरे दिन प्रधानमन्त्री काफी व्यस्त रहे। उन्होंने मार्क्सवादी देश के राष्ट्रपति एमन रामिया से तथा दोपहर के खाने पर बंगलादेश के राष्ट्रपति इरशाद से वार्ता की।

अपने एक घण्टे के भाषण में श्री गाँधी ने कहा कि कोष से पर्यावरण की विस्फोटक अवस्था से निपटने के लिये सामूहिक प्रयासों को ठोस आधार तैयार हो सकेगा।

श्री गाँधी ने कहा कि यह नाजुक क्षेत्रों में संरक्षण तकनीक विकसित करेगा या खरीदेगा। बाद में इन तकनीकों को सार्वजनिक कर दिया जायेगा ताकि विकासशील

और विकासशील देश इनसे समान रूप से लाभ उठा सकें।

प्रधानमन्त्री ने कहा कि कृषि अधिकार वाली सभी प्रकार की तकनीक हर सदस्य देश के लिये मुफ्त और बिना किसी प्रतिबन्ध के उपलब्ध रहेगी। कोष के दाताओं और कोष से लाभ उठाने में केवल विकासशील देश ही नहीं बल्कि औद्योगिक देश भी होंगे।

सम्मेलन का घोषणा पत्र—नौवें गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन ने धनी देशों द्वारा विकासशील देशों की आर्थिक आवश्यकतायें पूरी नहीं किये जाने की स्थिति में विश्व शांति और सद्भाव के लिये खतरे की चेतावनी दी है। निर्गुट देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने जोर देकर कहा है कि आणविक अस्त्रों को समयबद्ध कार्यक्रम के जरिये पूरी तरह समाप्त किया जाये। चार दिवसीय शिखर सम्मेलन की समाप्ति पर १०२ देशों के राष्ट्राध्यक्षों और शासनाध्यक्षों ने अपने जारी घोषणा पत्र में कहा कि आर्थिक पहल पर ध्यान दिये बिना हथियारों का प्रसार प्रभावी ढंग से नहीं रोका जा सकता।

(१) सभी महाद्वीपों के एक सौ दो गुट निरपेक्ष देशों ने आज विकासशील देशों, खास तौर से सबसे कम विकसित देशों को संसाधनों के हस्तान्तरण में भारी बढ़ोतरी की घोषणा करते हुए तीसरे विश्व के देशों पर विदेशी कर्ज के भारी बोझ की समस्या के स्थायी समाधान तथा संरक्षणवादी बाधाओं को हटाकर उपभोक्ता वस्तुओं के लिये लाभकारी मूल्य दिये जाने की माँग की।

(२) नौवें गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन ने अपनी घोषणा में विश्व भर में ऊँची विकास दर सुनिश्चित करने के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक शिखर सम्मेलन आयोजित करने की चार राष्ट्रों की पेरिस पहल का भी समर्थन किया।

शिखर सम्मेलन ने धरती रक्षा कोष बनाने के बारे में प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी के प्रस्ताव की पुष्टि करते हुये अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से अनुरोध किया कि वह पर्यावरण सम्बन्धी सहयोग के लिये अलग से वित्तीय संसाधन निर्धारित करें और विकासशील देशों को पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित टैक्नालोजी मुहैया करायें।

(४) नौवें गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन ने जिसमें ५४ देशों के राष्ट्राध्यक्षों तथा शासनाध्यक्षों ने भाग लिया यह भी ऐलान किया कि जब तक अन्तर्राष्ट्रीय विकास के स्तर में विषमतायें कम नहीं की जाती तब तक विश्व में न तो स्थिरता आ सकती है न ही बेहतर संभावनायें पैदा हो सकती हैं।

(५) गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने सभी जनगण के लिये निर्णय के अधिकार की पुनः पुष्टि की बीस से अधिक क्षेत्रों में रहने वाले उन करोड़ों लोगों की दीन दुनिया की याद दिलायी जो इक्कीसवीं सदी की पूर्व संध्या में भी औपनिवेशिक दासता में जीने को विवश है और आन्तरिक मामलों में दखल या हस्तक्षेप और आक्रमण के शिकार सभी देशों के साथ एकजुटता की घोषणा की।

(६) उन्होंने जोर देकर कहा कि उपनिवेशवाद का खात्मा सम्पूर्ण मानव-जाति का नैतिक दायित्व है। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से अनुरोध किया कि वे दक्षिण अफ्रीका के खिलाफ आर्थिक प्रतिबंधों को बढ़ाने व्यापक बनाने, तेज, और सख्त करने का साथ दें ताकि उस घिनौनी सरकार को अलग-थलग करके रंगभेदवादी प्रणाली समाप्त की जा सके।

(७) गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन ने मास्को और वाशिंगटन द्वारा मध्यम दूरी परमाणु प्रक्षेपास्त्र संधि पर हस्ताक्षर के बाद परमाणु निरस्त्रीकरण की गति धीमी पड़ने पर दोनों महाशक्तियों से अपनी चिंता व्यक्त की और उनसे अनुरोध किया वे मंच का परित्याग करके परमाणु हथियारों के पूर्ण उन्मूलन की दिशा में कदम आगे बढ़ायें।

(८) उन्होंने संयुक्त राष्ट्र में अपनी आस्था फिर से दुहराते हुये मुद्दों की समाप्ति, विकास तथा समृद्धि को बढ़ावा देने और मानवों तथा राष्ट्रों के समागम हुए अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से पर्यावरण के क्षेत्र में सहयोग के लिये अतिरिक्त वित्तीय संसाधन देने का आह्वान किया गया है जिससे विकासशील देशों को पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित प्रौद्योगिकी हासिल हो सके। आन्दोलन भी इसमें अपना योगदान देगा।

(१९) घोषणा पत्र में मांग की गयी है कि खुले समुद्र या अन्य देशों के आस-पास के क्षेत्रों में जहरीले और घातक पदार्थों का गिराया जाना तुरन्त बन्द किया जाय।

नेहरू जी के उपरान्त श्रीमती इन्दिरा गांधी ने गुट निरपेक्षता की नीति को और अधिक प्रभावशाली बनाया। जनवरी, १९८० में श्रीमती इन्दिरा गांधी पुनः सत्तारूढ़ हुई और उन्होंने भारत की स्वतन्त्र आत्मनिर्णयकारी, स्वावलम्बी और गुट-निरपेक्ष नीति को नई तेजस्विता के साथ आगे बढ़ाया। अक्टूबर, १९८१ के अपने एक राष्ट्रीय भाषण में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा— 'गुट-निरपेक्षता अपने आप में एक नीति है। यह केवल एक लक्ष्य ही नहीं है इसके पीछे उद्देश्य यह है कि निर्णय-कारी स्वतन्त्रता और राष्ट्र की सच्ची शक्ति तथा बुनियादी हितों की रक्षा की जाये। शक्ति में अस्थायी वृद्धि से कभी-कभी दीर्घकालिक सुरक्षा पर आंच आती है। यदि हमने भी अपनी सेनाओं को अन्य देशों से शस्त्र ले लेकर मजबूत किया होता तो स्वनिर्णय का अधिकार हमारे हाथ से निकल चुका होता। ऐसे भी उदाहरण हैं जहां शस्त्र प्राप्त करने वाले देशों की रक्षा बजाय अपने हितों की रक्षा के लिये किया। हम ऐसे लोगों के शिकार हो चुके हैं।

श्रीमती इन्दिरा गांधी के उपरान्त उनके पुत्र श्री राजीव गांधी भी इस नीति पर चल रहे हैं। उन्होंने निरस्त्रीकरण पर विशेष बल दिया है तथा गुट निरपेक्ष आन्दोलन को और भी सक्रिय एवं प्रभावशाली बनाया है।

स्वतन्त्रता की ४२वीं वर्षगांठ पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने राष्ट्र को सम्बोधित करते हुये भारत की विदेश नीति के विषय में कहा, "भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति के कारण ही भारत का विश्व में आदर है। भारत बोलता है तो वह आवाज ७५ करोड़ लोगों की होती है। गुट निरपेक्षता के रास्ते पर चलकर भारत आज बगैर किसी दबाव के चलता है। उसके साथ दुनिया के दो तिहाई गुटनिरपेक्ष देशों की आवाज होती है। इसका श्रेय पं० जवाहरलाल नेहरू को देते हुये उन्होंने कहा कि पंडित जी ने भारत को यह मार्ग दिखाया और इन्दिरा जी ने देश को इस मार्ग पर आगे बढ़ाया।'

६ स्वतन्त्रता के ४३ वर्ष

दो सौ वर्षों की दासता की शृंखलाओं से भारतीय जनता के हाथ और पैर खड़खड़ाने लगे थे। दिग्भ्रान्ति से जनता पथ विहीन थी। शनैः-शनैः भारतीयों में आत्म-बोध हुआ, जन जागृति हुई। देश के विचारकों, लेखकों, साहित्यकारों एवं राजनैतिक मस्तिष्कों से जनता को अग्रसर होने का सम्बल मिला। भारत के शक्तिशाली अतीत का तथा अपने पूर्वजों के वैभव का स्मरण कर सन् १९४७ में अन्तिम जोर लगाया गया, फिर क्या था गाड़ी कीचड़ से बाहर थी, शत्रु स्तम्भित थे, मित्रों में उत्साह था, बधाइयाँ मिलने लगी। अंग्रेज चले गये और १५ अगस्त सन् १९४७ को हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी। परतन्त्रता ने हमें बिल्कुल खोखला कर दिया था। हम सब कुछ खो चुके थे, हमें बीच बाजार में खड़े करके दिन दहाड़े लूट लिया गया था। न हमारे पास आर्थिक शक्ति थी और न नैतिक बल,

स्वतन्त्रता के ४३ वर्ष

१. प्रस्तावना।
२. राष्ट्र के समक्ष विभिन्न समस्यायें तथा उनका समाधान।
३. कुछ नवीन समस्यायें।
४. भविष्य।
५. उपसंहार।

न हमारे पास सैनिक शक्ति थी, न सामाजिक बल, न हमारे पास धार्मिक एकता थी न आध्यात्मिक बल। फिर भी हमे प्रसन्नता थी, अपनी स्वतन्त्रता की। भारत माँ के बहते हुये आँसू रुके, मुखारविन्द पर सहसा मुस्कराहट खिल उठी।

राजनैतिक एवं साम्प्रदायिक कारणो ने भारत माँ के शरीर को छिन्न-भिन्न कर दिया। इतने पर भी निरालम्ब राष्ट्र की समस्यायें मुँह बाए खड़ी थी। इनका समाधान करना बड़ा कठिन था। सर्वप्रथम देश की आन्तरिक शांति परम आवश्यक थी। अब हम इन समस्याओं पर पृथक्-पृथक् रूप से विचार करेंगे।

शरणार्थी आवास-समस्या—मुस्लिम लीगियो की द्वेषपूर्ण भावनाओं के फलस्वरूप ही देश का विभाजन हुआ था। देश के विभाजन से पहले भी साम्प्रदायिक रक्तपात हुआ। विभाजन के पश्चात् इस समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया। लाखों परिवार अपने पूर्वजों की चल अचल सम्पत्ति छोड़कर अपने प्राणों की रक्षा के लिए भारत की ओर भाग खड़े हुए। मार्ग में उन पर भीषण प्रहार हुए, गाड़ियाँ लूटी गयी, भरी गाड़ियों मे आग लगा दी गई। भाग्य से जो बचे, उन्होंने भारत में शरण ली। किसी की स्त्री बिछुड़ी, किसी का पुत्र छूटा. किसी के माँ-बापों का भी पता न चला कि कहाँ मारे गये। इस प्रकार लाचार और दुःखी होकर और सब कुछ खोकर ६५ लाख से अधिक परिवार अपना घर-बार छोड़कर भारत की शरण में आए। भारत सरकार ने इन अनाथ शरणार्थियों के आवास की समस्या का बड़े साहस और धैर्य के साथ सामना किया। उन्हें घर दिया, जीवन की सभी सुविधायें दी। उनके लिये नवीन बस्तियों का सरकारी खर्चे पर निर्माण हुआ। उनकी हानि की पूर्ति के लिये ३१ करोड़ रुपया बाँटा गया। आज वे बस चुके हैं, सम्पन्न हैं। अब यह समस्या सरकार के अथक प्रयासों से शांतप्राय है।

अन्न-वस्त्र और महँगाई की समस्या—भ्रष्टाचार और महँगाई अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। लोगों को न पेट भर अन्न उपलब्ध था और न पहिनने को वस्त्र। सरकार ने इस समस्या को भी सुलझाया। विदेशों से अन्न और वस्त्र की

सहायता ली गई, कुछ वस्तुओं पर कन्ट्रोल लगाया गया। जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं को जनता तक पहुँचाने के लिये राशन की नीति अपनाई गई। स्वदेशी उद्योगों की उन्नति के लिये तथा देश को आत्मनिर्भर और समृद्ध बनाने के लिये प्रथम पंचवर्षीय योजना आरम्भ की गई, जिससे देश में एक नई उमंग दौड़ी। सभी उद्योग-धन्धों का विकास हुआ। अन्न-वस्त्र का भी लक्ष्य से अधिक उत्पादन हुआ पिछले कुछ दिनों से भारतवर्ष में महँगाई बहुत बढ़ गई है। फिर भी सरकार पूर्ण-तया यत्नशील है कि वह इस समस्या को हल कर सके।

रियासतों का विलीनीकरण—पाकिस्तान की तरह अंग्रेजों ने जाते-जाते दूसरा विष-वृक्ष बोया कि उन्होंने भारत की ६०० देशी रियासतों को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। ये रियासतें षड्यन्त्रों का अड्डा बनती जा रही थी, उनमें अराजकता थी, पारस्परिक द्वेष था। इनके पीछे अंग्रेजों की प्रबल चाल थी वह यह कि ये रियासतें समय आने पर विद्रोह करेंगी और इस प्रकार भारत को शासन के अयोग्य ठहराकर हम फिर शासन-सूत्र सम्भाल लेंगे। परन्तु जिसको प्राप्त करने में जर्मनी के बिस्मार्क और चीन के चांगकाई शेक ने वर्षों तक संघर्ष किया, उसे हमारे आदर और श्रद्धा के पात्र लौह पुरुष सरदार पटेल ने एक रात्रि में (सम्पूर्ण देशी रियासतों को भारतीय गण राज्य में सम्मिलित कर लिया) पूर्ण कर दिखाया। यह थी सरदार पटेल की नीतिकुशल और निश्चयात्मक बुद्धि। निजाम हैदराबाद ने थोड़ी सी हिच-किचाहट दिखाई थी, वहीं सरदार ने तुरन्त पुलिस एक्शन करा दिया था। झगड़ा सदैव के लिये शांत हो गया। आज भी इतिहास सरदार वल्लभ भाई पटेल को स्वर्णिम अक्षरों में स्मरण करता है।

काश्मीर समस्या—अन्य देशी रियासतों की भांति ही काश्मीर रियासत भी थी। परन्तु सरदार पटेल इसे भारतीय गणराज्य में शामिल न कर पाये, इसके कुछ मुख्य कारण थे। काश्मीर की एक ओर सीमा पाकिस्तान से बिल्कुल मिली हुई है तथा इधर कुछ भारत से मिलती है। वहाँ तक पहुँचने के लिये भारत में कोई सीधी सड़क नहीं है। वहाँ के महाराजा ने पहिले तो भारतीय गणराज्य में मिलने से इन्कार कर दिया, परन्तु जब पाकिस्तान का आक्रमण हुआ और महाराजा ने अपने को राज्य की रक्षा में असमर्थ पाया, तो भारतीय संघ में मिलने की एकदम घोषणा की। उधर काश्मीर की नेशनल कॉफ्रेंस भारत में मिलने की पहिले ही घोषणा कर चुकी थी। भारत ने हवाई मार्ग से तुरन्त सेनायें भेजी। आक्रमण से बचे हुए काश्मीर भू-भाग की रक्षा की। मामला यू० एन० ओ० को सौंपा गया, युद्ध विराम रेखा बनी विराम सन्धि हुई। इसके पश्चात् काश्मीर में नये निर्वाचन हुए तथा उस नव-निर्वाचित एसेम्बली ने भारतीय संघ में सदा के लिये सम्मिलित होने की घोषणा कर दी। परन्तु अमेरिका और इंग्लैंड इस प्रश्न पर पाकिस्तान को उकसा कर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। लेकिन निर्विवाद सत्य है कि काश्मीर का भारतीय संघ में विलय अन्तिम था और वह भारतवर्ष का एक अविभाज्य अंग है।

पाकिस्तान की समस्या—भारत ने पाकिस्तान को सदैव अपना पड़ोसी मित्र राष्ट्र माना और उसे हर प्रकार की सहायता देने को सदैव उद्यत रहा। परन्तु पाकिस्तान ने सदैव भारत के प्रति घृणा पूर्ण नीति अपनाई, उसके विरोध में प्रचार किया। नहरी पानी, व्यापारिक यातायात, शरणार्थियों की सम्पत्ति आदि अनेक पुराने प्रश्नों पर वह भारत के साथ विरोध करता रहा। पाकिस्तान सदैव सीमा-

व [देश में नये-नये संघर्ष उत्पन्न करके अग्नि को भड़काना चाहता है। भारत प चीनी आक्रमण के समय पाकिस्तान ने चीन के साथ साँठ-गाँठ करके पूर्ण शत्रुता का परिचय दिया। ५ अगस्त १९६५ को उसने भारत पर स्पष्ट आक्रमण करके तथा उससे पूर्व ९ अप्रैल १९६५ को कच्छ पर आक्रमण करके यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया कि वह भारत का एक पड़ोसी शत्रु देश है, जो ताशकन्द समझौते के बाद आज भी विद्वेष रखता है। सीमा मुठभेडों के समाचार तो प्रायः पत्रों में प्रकाशित होते रहते थे। पाकिस्तान के १९७१ के दानवी नरसंहार से संत्रस्त एक करोड़ शरणार्थी बंगला देश से भारत आए, भारत के सामने नयी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक समस्याये आईं जिनका समाधान भारत और पाकिस्तान के बीच दिसम्बर १९७१ मे सीधा युद्ध होने के बाद ही निकला और स्वतन्त्र बंगला देश की स्थापना हुई, फिर भी मन-मुटाव और आन्तरिक तनाव की भावना कम नही हुई है।

संविधान निर्माण की समस्या—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश के समक्ष नवीन संविधान निर्माण की भी एक समस्या थी, क्योंकि यह देश बहुत से धर्मों का, बहुत सी जातियों का, अनेक भाषाओं का और अनेक मतों का देश है। यहाँ का संविधान ऐसा होना चाहिये, जो सब को समान रूप से न्याय और अधिकार दे सके। देश के नेताओं ने बडी दूरदर्शिता पूर्वक सभी विचारधाराओं का समन्वय करके १९४९ के अन्त तक संविधान तैयार कर लिया। यह संविधान २६ जनवरी सन् १९५० से देश भर मे लागू किया गया। इसमें ३९५ धाराएँ तथा ८ अनुसूचियाँ हैं। यह संविधान भारत के प्रत्येक नागरिक को किसी अधिकार से वञ्चित नहीं रखता। इसमें सभी प्रादेशिक भाषाओं को प्रमुखता प्राप्त है, परन्तु राजभाषा के रूप मे हिन्दी को ही स्वीकार किया गया है। संविधान के अनुसार अछूतों को बडी सुविधाएँ प्रदान की गई है तथा भारत के कलंक अस्पृश्यता को सदा के लिये समाप्त कर दिया गया। सभी राज्य अपने मे स्वतन्त्र होते हुए भी केन्द्र के अधीन हैं। भारतीय संविधान इस प्रकार एक आदर्श संविधान बनाया गया है।

विदेश नीति की समस्या—भारत स्वतन्त्रता के पश्चात् जब अन्तर्राष्ट्रीय रंगमञ्च पर आया, तो उसने देखा कि विश्व की शक्ति दो गुटों मे विभाजित है—एक का नेता है अमेरिका, दूसरे का अध्यक्ष है रूस। तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० नेहरू ने तटस्थता की नीति की घोषणा की। भारत किसी भी गुट मे सम्मिलित नहीं हुआ है। आज विश्व मे इस नीति के बल पर भारत का और भारत के कर्णधारों का सम्मान एवम् आदर है। विश्व शान्ति के नेता के रूप मे भारत आज अग्रदूत बना हुआ है। आज हमारी सहायता के लिए जितना अमेरिका तैयार है, उतना ही रूस। १९७१ मे भारत और रूस की २० वर्षों के लिये सन्धि हो जाने के बाद भी भारत की तटस्थ विदेश नीति आज भी ज्यों की त्यों अप्रभावित है। विश्व के सभी राष्ट्रों के लिए भारत के मैत्री द्वार खुले हुए है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व तो हमारी कोई नीति ही नही थी, जो ब्रिटेन के मित्र और शत्रु थे, वे हमारे भी मित्र और शत्रु थे।

व्यक्ति और राष्ट्र के चरित्र-निर्माण की समस्या—परतन्त्रता के क्षणों मे देश की बडी दयनीय स्थिति थी। विदेशी हमारा आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सभी प्रकार का शोषण करते थे। वर्ण-भेद अपनी सीमा को पहुँचा हुआ था। स्वतन्त्रता मिलने के बाद भारत सरकार ने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण की ओर भी

ध्यान दिया। जनता के जीवन को सुखी बनाने के लिये शिक्षा और स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। शासन के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवम् पंचम पञ्चवर्षीय योजनाओं में व्यक्ति के जीवन-स्तर को उठाने पर विशेष ध्यान दिया है। गाँव-गाँव में पाठशाला और चिकित्सालय खोले गये हैं। देश के जन जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए १९८० में छठी पंचवर्षीय योजना भी चालू हो गई है।

भाषा समस्या—पञ्जाबी अपने को पञ्जाब का होने में और पञ्जाबी भाषा बोलने में तथा बंगाली अपने को बंगाल का होने में एवं बंगाली भाषा बोलने में गर्व अनुभव करते हैं। अभी-अभी बम्बई, मद्रास और पञ्जाब को भाषा के आधार पर ही पुनः टुकड़े हुए और इधर का उधर मिलाया गया, उधर का इधर। पञ्जाब ने अपना पञ्जाबी सूबा अलग बना लिया है। उधर मद्रास में द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम् अपनी अलग चीख पुकार मचाए हुए था। भारत का संविधान भारत की १५ भाषाओं को प्रमुख स्थान देता है। परन्तु प्रदेशों की क्षुद्र विचारधारा को कहाँ तक रोका जा सकता है हिन्दी, जो आज से ३५ वर्ष पूर्व राज भाषा बन चुकी है वह गौण है, उस पर शासन ने २६ जनवरी १९६५ के बाद भी १० वर्ष के लिये अंग्रेजी को सरकारी कार्यों में सहायक भाषा स्वीकार कर लिया था और आज १९८६ में भी अंग्रेजी यथास्थान है। इस प्रकार देश में आज भाषाओं की समस्या बनी हुई है। यह समस्या भारतीयों की संकुचित मनोवृत्ति की परिचायिका है।

बेरोजगारी की समस्या—प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम पञ्चवर्षीय योजनाओं में जनता की बेकारी की समस्या को यद्यपि सरकार ने बहुत कुछ सुलझाने का प्रयास किया है, परन्तु यह समस्या आज भी बनी है। इसका मूल कारण यह है कि प्रत्येक हाई स्कूल या इण्टर पास विद्यार्थी नौकरी की ओर दौड़ता है। बी० ए० तथा एम० ए० पासों की भी कमी नहीं है। थोड़ा सा भी पढ़ने के बाद गाँव का लड़का गाँव में रहना पसन्द नहीं करता, हल या बैल को हाथ लगाना पाप समझता है। कृषि के अतिरिक्त उद्योग-धन्धों की ओर भी प्रवृत्ति कम होती है। वह तो केवल नौकरी के स्वप्न देखता है। यह तो निश्चित है कि इतनी नौकरियाँ न तो शासन के पास हैं और न किसी और सूत्र के पास। फिर भी भारत सरकार देश में विद्यमान बेरोजगारी की समस्या को पूरा करने के लिए दृढ़ संकल्प है।

विदेशी विनिमय की समस्या—देश में मान की कमी के कारण यह समस्या आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। स्वर्ण अधिनियम से कुछ सोना राजकोष में जमा हुआ है। इससे विदेशी विनिमय की समस्या कुछ-कुछ अवश्य सुलझेगी ऐसी आशा की जाती है।

चीनी आक्रमण—२० अक्टूबर १९६२ को भारतवर्ष पर अचानक चीन ने आक्रमण कर दिया। हमारे सैनिकों में जितनी शक्ति थी, उन्होंने उसका मुकाबला किया परन्तु अकेले साहस और शक्ति से काम नहीं चलता, युद्ध के लिये आधुनिक उपकरणों की भी आवश्यकता होती है, जो उस समय हमारे पास [illegible] थे। परिणाम यह हुआ कि हम को पीछे हटना पड़ा। इस [illegible] पराजय के कारण जनता की पुकार पर तत्कालीन रक्षा मन्त्री श्री मेनन को अपने पद से त्याग पत्र देना पड़ा। वह चीनी भय आज भी बना हुआ है।

काश्मीर में पाकिस्तानी षड्यन्त्र की समस्या—काश्मीर की समस्या [illegible] से ही बनी हुई थी, [illegible] मुहम्मद की दरगाह से बाल चोरी की [illegible]

काश्मीर में फिर उपद्रव हुए, यद्यपि यह सब पाकिस्तान का षड्यन्त्र था। पूर्वी पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों पर भयानक अत्याचार हुए, जिनके परिणामस्वरूप लाखों व्यक्तियों को फिर अपना घर-बार छोड़ने को विवश होना पड़ा, पाकिस्तान स्वयं ही फिर काश्मीर प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र-संघ में ले गया, जिसमें भारत-पाक सम्बन्ध और काश्मीर पर विचार हुआ। एक बार फरवरी १९६४ में मीटिङ्ग हो चुकी थी, दूसरी मई १९६४ में हुई। १९६५ में भारत-पाक युद्ध के बाद ताशकन्द समझौते के समय पर भी पाकिस्तान काश्मीर, काश्मीर चिल्लाता रहा। आज तक उसे यही रट है किन्तु काश्मीर भारत का एक अविभाज्य अङ्ग है और रहेगा।

राष्ट्र नेता की समस्या – भारत की स्वतन्त्रता के १६वें वर्ष का अन्तिम चरण भारतवर्ष के लिए अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण रहा। देश के जनमानस के सम्राट पं० नेहरू २७ मई १९६४ को भारत को अनाथ बनाकर अनन्त एवं अज्ञात दिशा की ओर चल दिये। सारा देश शोक-सागर में डूब गया। झोंपड़ी से लेकर महलों तक की आँखें आंसुओं से डबडबा आईं। देश के समक्ष राष्ट्र के नेता की समस्या मुँह फाड़कर आई। विदेशी भी इस नाटकीय परिवर्तन को देखने की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। श्री कामराज ने बड़ी बुद्धिमतापूर्वक इस समस्या को हल किया और श्री शास्त्री को एक स्वर से प्रधानमन्त्री बनाया गया। रूस में स्वर्गीय श्री शास्त्री के महाप्रयाण के पश्चात् राष्ट्र ने बड़े विश्वास के साथ देश का भार श्रीमती गांधी के हाथों में सौंप दिया, १९७१ के महानिर्वाचन में श्रीमती गांधी को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। मार्च १९७७ के चुनावों में श्रीमती गांधी की तथा उनके दल की पराजय के बाद श्री मोरारजी देसाई भारत के प्रधान मन्त्री बने लेकिन उनका कार्यकाल अति अल्प रहा। सन् १९८० में श्रीमती गांधी पुनः देश की प्रधानमन्त्री और सर्वमान्य राष्ट्रीय नेता बन गईं। ३१ अक्टूबर १९८४ को उनकी मृत्यु तक उनके कुशल निर्देशन में राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर रहा।

लंका तथा बर्मा के भारतीय प्रवासियों की समस्या—श्री शास्त्री के प्रधानमन्त्री बनने के बाद विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में भी कुछ आश्चर्यजनक परिवर्तन हुये। ख्रुश्चेव को रूस में अपदस्थ किया गया, उधर चीन ने परमाणु बम बनाकर विस्फोट किया। बर्मा तथा लङ्का जैसे देशों में भारतीयों को आवास की कठिनाइयाँ सामने आईं तथा श्री शास्त्री के आगे भारतीय प्रवासियों की समस्या एक भयानक रूप में खड़ी कर दी गई। इस सब के पीछे चीन और पाकिस्तान की चाल थी। श्री शास्त्री ने बड़ी गम्भीरता से लङ्का और बर्मा के प्रवासी भारतीयों की समस्या का पारस्परिक बातचीत तथा समझौते के द्वारा समाधान निकाला।

सन् १९६४-६५ की खाद्य समस्या—श्री शास्त्री के प्रधानमन्त्री बनते ही देश में एक भयानक अन्न संकट उठ खड़ा हुआ। अबाध गति से वस्तुओं के मूल्य बढ़ने लगे। खाद्य वस्तुओं का बाजार में उपलब्ध होना दूभर हो गया। परिणामस्वरूप केरल में भयानक प्रदर्शन और उपद्रव हुए। वहाँ की जनता को सन्तुष्ट किया गया। तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी द्वारा मार्च १९७१ में अनाज के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिये जाने तथा जून १९७५ में देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा से देश में अन्न के अभाव की स्थिति में कुछ सुधार हुआ था। मार्च ७७ से केन्द्रीय सरकार के प्रयासों से देश खाद्यान्नों के सम्बन्ध में अब आत्मनिर्भर हो चुका है। अन्न के भावों में भी पर्याप्त गिरावट आ चुकी है।

राष्ट्र-भाषा की समस्या—श्री शास्त्री के प्रधानमन्त्रित्व काल में राष्ट्रभाषा की समस्या भी उग्ररूप से उठ खड़ी हुई क्योंकि २६ जनवरी १९६५ से संविधान के अनुसार हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान ले लेना था। फलस्वरूप मद्रास, केरल, बङ्गाल आदि अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी का विरोध हुआ। परिणामस्वरूप राजभाषा कानून में संशोधन का निर्णय किया गया तथा अंग्रेजी का स्थान आगामी १० वर्षों के लिये सहभाषा के रूप में निश्चित कर दिया गया। लेकिन आज १९८९ आ गया है, फिर भी अंग्रेजी की स्थिति ज्यों की त्यों सुदृढ़ है।

भ्रष्टाचार निवारण की समस्या—भारत के भूतपूर्व गृह मन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा की प्रेरणा से देश में भ्रष्टाचार-निवारण का व्यापक कार्यक्रम भी एक स्मरणीय वस्तु है। इस दशा में नन्दा जी ने बहुत कुछ किया था। इस छूत की बीमारी से कोई अछूता नहीं है, चाहे वह छोटा अधिकारी हो या बड़ा, छोटा व्यापारी हो या बड़ा। धीरे-धीरे इस दिशा में लोगों ने गम्भीरतापूर्वक सोचना शुरू किया है, जिससे आशा है कि देश में जागरण अवश्य होगा और हमारा मनोबल ऊँचा होगा। श्रीमती गांधी के सतत प्रयासों के फलस्वरूप देश में भ्रष्टाचार उन्मूलन अभियान तीव्रता से चला। जून ७५ में घोषित आपातकालीन स्थिति के कारण लोगों ने स्वयं अपने काले धन की घोषणायें कीं। भारत की वर्तमान सरकार भी इस दिशा में प्रयत्नशील है।

कच्छ के रन पर पाकिस्तानी आक्रमण—स्वतन्त्रता के १८वें वर्ष के अन्तिम चरण की यह ऐतिहासिक घटना है—पाकिस्तान जैसे छोटे देश का भारत जैसे विशाल देश पर आक्रमण करना परस्पर मैत्री की भावनाओं को समाप्त करना है।

ताशकन्द एवं शिमला समझौता समस्या—५ अगस्त १९६५ से भारत और पाकिस्तान में युद्ध छिड़ा। देश के वीर सपूतों ने शत्रु के दाँत खट्टे किए, वह परास्त हुआ। संयुक्त-राष्ट्र-संघ के प्रस्ताव के अनुसार २३ सितम्बर १९६५ को युद्ध बन्द हो गया। रूस के आग्रहपूर्ण आमन्त्रण पर श्री लालबहादुर शास्त्री और अयूब खाँ में ताशकन्द में बातचीत हुई और ऐतिहासिक ताशकन्द समझौता हो गया। परन्तु यह समझौता अपने में ही एक समस्या बना रहा, क्योंकि भारत अपने नैतिक दायित्व से बँधा हुआ था और उन शर्तों का पालन कर रहा था, परन्तु पाकिस्तान अपनी दुष्टभरी हरकतें बराबर करता चला आ रहा था, वही घृणा का प्रचार, वही सीमाओं का अतिक्रमण, लूटमार और आगजनी की घटनायें तथा वही काश्मीर हड़पने की दुराशायें। दिसम्बर १९७१ के भारत-पाक युद्ध के बाद १९७२ में श्रीमती [illegible] के फलस्वरूप शिमले में पाक राष्ट्रपति और भारत के प्रधानमन्त्री के [illegible] समझौता हुआ। परन्तु पाकिस्तान ने उस समझौते का भी पालन नहीं किया। १९७८-७९ में भी नई केन्द्रीय सरकार ने पाकिस्तान से कई सद्भावनापूर्ण समझौते किये। वर्तमान समय में केन्द्रीय सरकार भी पाकिस्तान के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है।

रुपए के अवमूल्यन से मूल्य वृद्धि की समस्या—भारत सरकार ने ६ जून १९६६ को प्रातः दो बजे से विदेशों के लिये भारतीय रुपए का ३६.५ प्रतिशत से अवमूल्यन कर दिया। भारतीय [illegible] भावों को आकाश में ले उड़ी। लेकिन प्रधानमन्त्री इन्दिरा जी ने अपनी कठोर आज्ञाओं और निर्देशों से परिस्थिति पर बड़ी कुशलता से काबू पा लिया है।

छात्रों में अराजकता की समस्या—आज राष्ट्र के समक्ष सबसे बड़ी समस्या राष्ट्र के भावी नागरिकों की है। छात्रों की अनुशासनहीनता, उच्छृङ्खलता और अल्हड़पन इतना बढ़ गया है, कि कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो बच्चों में कोई अनुशासन है ही नहीं। जिस विषय को चाहेंगे, उसे पढ़ेंगे, जिस परीक्षा में बैठना चाहेंगे, उसमें बैठेंगे और नहीं बैठने पर भी जबरदस्ती उत्तीर्ण होना चाहेंगे। विद्यार्थियों की उच्छृङ्खलता पिछले दिनों बहुत बढ़ गई थी, पर विद्यार्थियों की बुद्धिमत्ता एवम् शासन वर्ग की तत्परता से अब उस स्थिति में सुधार हो गया है।

केन्द्र और राज्य में पारस्परिक सम्बन्ध—सन् १९६७ के आम चुनावों के बाद विभिन्न प्रांतों में विभिन्न दलों की गैर कांग्रेसी संयुक्त सरकार बनी। राष्ट्र-नायकों के आगे जो समस्या २० वर्षों से नहीं थी और भारत पर एकछत्र राज्य कर रहे थे, वह समाप्त हो गया। शासन के समक्ष यह एक समस्या आई कि देश का सतुलित और सशक्त सचालन किस प्रकार हो। मतभेद और विचार-विभिन्नता न केन्द्र को ही सशक्त बनने देगी और न प्रान्त ही सुखी एवं समृद्ध हो सकेंगे। भिन्न-भिन्न दलों की सरकारें कभी भी देश को स्थायी शासन और स्थायी नीति नहीं प्रदान कर सकती। यह अस्थिरता की स्थिति १९७१ के पचम महानिर्वाचन में प्रायः समाप्त सी ही हो गई क्योंकि श्रीमती गांधी की कांग्रेस को आशातीत बहुमत प्राप्त हुआ और केन्द्र में सशक्त और स्थिर सरकार की स्थापना हो गई है।

साम्प्रदायिक उपद्रव—स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में साम्प्रदायिक उपद्रवों की चिंगारी लगनी आरम्भ हो गई, इलाहाबाद, मेरठ, नागपुर, राँची आदि बड़े-बड़े नगरों में बड़े पैमाने पर उपद्रव भड़क उठे। इनके भीषण परिणामों से चिन्तित केन्द्रीय एवं प्रदेशीय सरकारों ने बड़ी ही तत्परता एवं सूझ-बूझ का परिचय दिया। राष्ट्रीय एकता परिषद् की २२, २३, २५ जून १९६८ को सभा बुलाई गई और इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गये। छोटे-मोटे साम्प्रदायिक उपद्रवों के अतिरिक्त १९६९ में अहमदाबाद में उस चिंगारी ने इतना भयानक रूप धारण कर लिया कि सैकड़ों व्यक्तियों को मौत के मुँह में जाना पड़ा तथा लाखों और करोड़ों रुपये की क्षति उठानी पड़ी। वर्तमान में १९७७ से १९८६ तक भारत के विभिन्न स्थानों पर होने वाले साम्प्रदायिक उपद्रव देश के लिये कलंक की बात है।

१९६९ में कांग्रेस का विभाजन—एक प्रश्न—जो कांग्रेस ८०—८५ वर्षों से देश की सेवा करती चली आ रही थी, उसमें कुछ स्वार्थी और पूँजीवादी बहुमत [illegible] उनके द्वारा देश की समाजवादी प्रगति में रोड़ा अटकाने तथा खींचा-[illegible] होकर श्रीमती गांधी के नेतृत्व में देश का बहुमत उस पुरानी कांग्रेस से अलग हो गया, जो केवल चन्द आदमियों के हाथ में बन्द थी और जनता से दूर थी। यह विभाजन समस्त स्तरों पर हुआ है—नगर और मुहल्ले से लेकर अखिल भारतीय स्तर तक। इन्दिरा जी ने बड़े कौशल और साहस के साथ देश की बागडोर को सम्हाला, फिर भी जनमानस की, केन्द्रीय शासन की अस्थिरता तथा कांग्रेस के अभाव में किसी दूसरी [illegible] पार्टी का अखिल भारतीय स्तर का न होना, साहस उद्वेलित कर देता था कि देश के शासन का क्या होगा। परन्तु १९८० के महानिर्वाचन में श्रीमती गांधी को संसद् में आशातीत बहुमत प्राप्त हुआ। राष्ट्र ने पुनः आगामी ५ वर्षों के लिये शासन का भार श्रीमती गांधी के सबल कन्धों पर रख दिया।

बाढ़ों की समस्या—भारतवर्ष की नदियों में वर्षा के दिनों में प्रायः बाढ़ें

आती हैं। प्रतिवर्ष हजारों एकड़ भूमि जलमग्न हो जाती है। हजारों गाँव और सैंकड़ों लोग बर्बाद और बेघर हो जाते हैं। इस दिशा में राज्य सरकारें निरन्तर प्रयत्नशील हैं। बाँध बनवाये गए हैं, रोक थाम की गई है। पर बाँधों में भी दरारें पड़ रही हैं। अगस्त १९७१ में सारे देश में बाढ़ों का प्रकोप रहा। बिहार और बंगाल और पूर्वी उत्तर प्रदेश के हजारों गाँव जल मग्न हो गये। लाखों एकड़ खेती नष्ट हो गयी। यहाँ तक कि ७, ८, ९, १० सितम्बर १९६१ को गोमती की बाढ़ ने आधे से अधिक लखनऊ को जलमग्न कर दिया। बटलर और सहानी बाँधों में दरारें पड़ गईं। ४ मुहल्ले खाली करा दिये गये और हजरतगंज में सेना की नौकाएँ चलने लगीं। चिड़ियाघर के हिरण आदि जानवर स्वतन्त्र होकर भाग उठे। अगस्त १९८२ में बिहार प्रान्त के पटना नगर में आई हुई विनाशकारी बाढ़ तो पटना वासियों को कई पीढ़ी तक याद रहेगी जिसमें दुमंजिले मकान भी जलमग्न हो गये।

भारत-रूस संधि—अगस्त १९७१ में भारत ने अपने मित्र रूस के साथ आगामी बीस वर्षों के लिये संधि की। यह संधि, इन दोनों महान् देशों की सुरक्षा और समृद्धि तथा विश्व शान्ति की दृष्टि से अपने में महत्वपूर्ण है। आशा है इससे विश्व-कल्याण और विश्व-शान्ति में कुछ सहायता ही मिलेगी।

लोकतन्त्र की रक्षा की समस्या—१९७५ में देश में अराजकता और अव्यवस्था पनपने लगी थी। भारत सरकार के आगे एक विचित्र समस्या थी। तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी ने देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा करके देश की अराजकता को दूर करने में सफलता प्राप्त की थी।

जनता पार्टी का अभ्युदय—१९ जनवरी १९७७ को दिल्ली में श्री मोरारजी देसाई के निवास स्थान पर गैर कम्युनिस्ट चार विपक्षी दलों ने एक होकर जनता पार्टी के नाम से चुनाव लड़ने का निश्चय किया। ये चार दल थे—१ संगठन कांग्रेस, २ जनसंघ, ३ सोशलिस्ट पार्टी ४ भारतीय लोकदल। जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री मोरारजी देसाई तथा उपाध्यक्ष चौधरी चरण सिंह बनाये गये। २ फरवरी १९७७ को सहसा भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री श्री जगजीवनराम तथा उ० प्र० के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा के नेतृत्व में लोकतान्त्रिक कांग्रेस (सी० एफ० डी०) के नाम से एक नये दल का जन्म हुआ तथा दल ने पूर्वोक्त पार्टी में सम्मिलित होकर लोक सभा का मार्च १९७७ का चुनाव लड़ा।

जनता पार्टी की केन्द्रीय सरकार—मार्च १९७७ के चुनावों में जनता पार्टी को अद्वितीय सफलता मिली। २३ मार्च १९७७ को राष्ट्रपति ने जनता पार्टी को सरकार बनाने को कहा। २४ मार्च १९७७ को सर्व सम्मति से श्री मोरारजी देसाई संसदीय दल के नेता चुन गये तथा उसी दिन अपराह्न में उन्हें भारत के गौरवपूर्ण प्रधानमन्त्री पद की शपथ दिलाई गई। २५ और २६ मार्च को भारत के नये प्रधानमन्त्री ने अपने नवीन मन्त्रिमण्डल की घोषणा की।

१९७७ में कांग्रेस का पुनर्विभाजन—१९७७ के लोक सभा चुनावों में भारी पराजय तथा आपातकालीन दुराग्रहों के कारण कांग्रेस में पुनः विभाजन हो गया। भारी बहुमत कांग्रेस में रहा। कुछ लोग श्रीमती इन्दिरा गाँधी के साथ हो लिये जिसको कांग्रेस (इ) का नाम दिया गया। कांग्रेस (इ) की अध्यक्षा श्रीमती इन्दिरा गाँधी रहीं तथा कांग्रेस में कासानन्द ब्रह्मानन्द रेड्डी अध्यक्ष सरदार स्वर्ण सिंह बनाये गये।

जनता पार्टी का विघटन व पतन—जनता पार्टी की सरकार अधिक समय तक देश पर शासन न कर सकी क्योंकि वह विभिन्न विचारधाराओं एवं नीतियों के लोगों का संगठन थी। इसमें उभरता, भटकाव इसके पतन का कारण बना। जुलाई १९७९ में इसका पतन हो गया और कुछ समय के लिए चौधरी चरणसिंह देश के कार्यवाहक प्रधानमन्त्री बने। जनता पार्टी पुनः चार राजनीतिक दलों में बँट गई।

सातवीं लोक सभा का निर्वाचन—जनवरी, १९८० में सातवीं लोक सभा के लिए मध्यावधि चुनाव हुआ, जिससे इन्दिरा कांग्रेस को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। २८ माह के बाद श्रीमती गांधी पुनः भारत की प्रधानमन्त्री बन गई। उस समय से श्रीमती गांधी के नेतृत्व में भारत अपनी अनेक समस्यायें सुलझाकर प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ।

इन्दिरा युग का अवसान—३१ अक्टूबर १९८४ को उनके अंगरक्षक पृथक्तावादी आतंकवादियों ने भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी को गोली मारकर हत्या कर दी। देश एक बार फिर अपने को अनाथ अनुभव करने लगा जैसा कि नेहरू के स्वर्गारोहण के समय हुआ था। श्रीमती गांधी के ज्येष्ठ पुत्र श्री राजीव गांधी को प्रधानमन्त्री पद की शपथ दिलाई गई।

आठवीं लोक सभा के चुनाव—दिसम्बर, १९८४ के अन्तिम सप्ताह में देश में आठवीं लोक सभा के चुनाव सम्पन्न हुए। कांग्रेस दो तिहाई बहुमत से भी अधिक बहुमत से विजयी हुई। दल के नेता पद के चुनाव के बाद श्री राजीव गांधी को देश का प्रधानमन्त्री बनाया गया।

पृथकतावादी शक्तियाँ—विगत तीन-चार वर्षों से भारत में पृथकतावादी शक्तियाँ अपना सिर उठा रही हैं। कहीं खालिस्तान की माँग है तो कहीं गोरखालैंड की। कहीं नागालैंड की पुकार है तो कहीं असमगण परिषद की। प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने अपने राजनैतिक चातुर्य से समझौतों द्वारा असम और नागालैंड की समस्यायें सुलझा दी हैं परन्तु दो समस्यायें अभी भी मुँह बाये खड़ी हैं।

आतंकवाद—भय, आतंक एवं भीषण नरसंहारों से कुछ वर्ग भारत सरकार से अपनी पृथक्तावादी शर्तें मनवाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इधर पंजाब में उग्रवादी नर संहार कर रहे हैं तो उधर गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रन्ट वाले। बिहार में नक्सलवादी नर संहार में लगे हुए हैं।

सारांशतः देश के स्वतन्त्र ४३ वर्षों की यह छोटी-सी कहानी है। इन वर्षों में देश के विकास ने अनेक क्षेत्रों में प्रशंसनीय प्रगति की है, जोकि अन्य देश नहीं कर पाये हैं। इस अल्प अवधि में अनेक भीषण समस्याओं का समाधान किया गया है। परन्तु अभी सबसे बड़ी समस्या भारत में चरित्र-निर्माण की है। इसमें अकेली सरकार का ही दोष नहीं है, सामाजिक चेतना की भी कमी है और इसके लिए व्यक्तिगत चेतना परमावश्यक है।

किसी उर्दू के शायर ने लिखा है—

ए दोस्त, हमें तू ने बहुत आजमा लिया,
यह दिल दुआ करे कि तुझे आजमायें हम।

स्वर्ण के अनेकों अग्नि-परीक्षणों के पश्चात् उसकी यह स्थिति आती है कि वह गले का हार बन जाता है और हृदय पर विहार करने लगता है। रूस आज भारत के गले का हार है और वह उसके सौन्दर्य को दुगुना कर रहा है। १५ अगस्त १९४७ से अनेकों अग्नि-परीक्षण आये और सोवियत रूस उनमें सफल सिद्ध हुआ। सोवियत रूस ने सदैव भारत के पक्ष का दृढ़ता और मजबूती से समर्थन किया है और कर रहा है, चाहे वह संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर का प्रश्न रहा हो, और चाहे सन् ६२ का चीन आक्रमण रहा हो, और चाहे सन् ६५ का पाकिस्तानी युद्ध रहा हो और चाहे सन् ७१ का नवोदित बंगला देश का प्रश्न हो। ऐतिहासिक ताशकन्द समझौता भी सोवियत नेताओं के अथक परिश्रम से सोवियत भूमि पर ही हुआ। स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने एक बार अपनी रूस यात्रा में कहा था—"मैं जब कभी रूस जाता हूं, तो मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैं अपने घर जा रहा हूं।"

भारत-रूस सन्धि

१ प्रस्तावना।
२ सन्धि का विवरण।
३ देश विदेशों में प्रतिक्रिया।
४ लाभ।
५ सन्धि का मूल्यांकन।
६ अन्य विवरण।
७ उपसंहार।

प्रबल समर्थन और सहायताओं की साधनाओं ने भिन्नता की भित्ती को सदैव-सदैव के लिए उखाड़ फेंका। शनैः-शनैः बढ़ती हुई अभिन्नता इतनी बढ़ी कि दोनों एक हो उठे। भारत का हृदय एक स्वर से बोल उठा—रूस हमारा अभिन्न मित्र और हमारे दुख सुख का साथी है। भारत के प्रति रूस की साधना, सहायता, त्याग और दृढ़ समर्थन के प्रशस्ति भरे गीत भारत के अंचलों में गुंजरित हो उठे। सन् १९७१ की ९ अगस्त, दिल्ली का स्वर्णिम प्रभात—प्राची में शनै-शनै बढ़ते हुए रवि की लाल-रश्मियाँ, सन्धि-पत्र पर नृत्य करती हुई दोनों अभिन्न देशों की लेखनियाँ, सहसा एक साथ मुस्करा उठीं। दोनों के हृदय एक संधि-बन्धि में बंधने के लिए मचल उठे—देश का प्रेम-पारावार उमड़ रहा था—भावनायें हिलोरें ले रही थीं। संधि-बन्धन सम्पन्न हुआ—दोनों देशों की जनता आत्मीयता से जयजयकार कर उठी। शान्ति, मित्रता और सहयोग से भरे सन्धि-पत्र को भारत की ओर से विदेश मन्त्री सरदार स्वर्णसिंह ने तथा सोवियत रूस की ओर से सोवियत विदेश मन्त्री श्री ग्रोमिको ने अपने-अपने हस्ताक्षरों से सुसज्जित कर दिया। अतः पूर्वोक्त शेर को यदि निम्नवत् कर दिया जाए तो अधिक समीचीन होगा—

ए दोस्त हमने तुझे बहुत आजमा लिया,
यह दिल दुआ करे कि हमें आजमाये तू।

इस संधि के अवसर पर भारत के तत्कालीन विदेश मन्त्री ने कहा कि "इस सन्धि से दुश्मनों की भारत पर हमला करने की हिम्मत नहीं पड़ेगी।" प्रधान मन्त्री श्रीमती गांधी ने घोषणा की कि "आज सोवियत रूस के साथ जो सन्धि हुई है, उसके अनुरूप भारत अपनी गुट निरपेक्षता की नीति पर कायम रहेगा, हमने सोवियत संघ

के सामने स्पष्ट कर दिया है कि भारत गुटों की नीति से अलग रहना चाहता है और हमारी बात उसने मान ली है।" सहसा संसद के दोनों सदनों में तालियो की गड़गडाहट के बीच सदस्यों को सन्धि-प्रतियाँ बाँट दी गई। सदन एक अभूतपूर्व निश्चिन्तता की श्वांस ले उठा और संसद सदस्यों के मुखमण्डलो पर शान्ति के साथ प्रसन्नता खेलने लगी।

छ: पृष्ठों की इस सन्धि में, प्रथम पृष्ठ प्रस्तावना का है, जिसमें दोनों देशों की शान्ति और सहअस्तित्व की नीतियों का वर्णन है। सन्धि में कुल १२ अनुच्छेद हैं। सन्धि के एक मास के भीतर दोनों देशों ने सन्धि की पुन: पुष्टि की और मास्को में दस्तावेजो का आदान-प्रदान हुआ। २० वर्षों की इस ऐतिहासिक सन्धि का विवरण निम्न प्रकार है—

"दोनों के बीच वर्तमान सच्ची मित्रता के सम्बन्धों को सुदृढ़ और सुविस्तृत करने की इच्छा रखते हुए, इस विश्वास से कि मित्रता और सहयोग के अधिक विकास से दोनो राज्यो के मौलिक राष्ट्रीय हित तथा एशिया और सारे संसार में सुदीर्घ शान्ति को पोषण मिलता है, विश्व शान्ति और सुरक्षा की दृढता को सम्बन्धित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने के सतत प्रयास एवं उपनिवेशवाद के अवशेषों को पूर्णतया एवं अन्तिम रूप से समाप्त करने के निश्चय से, विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक प्रणालियो वाले राज्यों के बीच शान्ति पूर्ण सहअस्तित्व और सहयोग के सिद्धान्तो में अटूट विश्वास रखते हुए इस पूर्ण विश्वास के साथ कि संसार की वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें संघर्ष द्वारा नही वल्कि केवल मात्र सहयोग द्वारा सुलझाई जा सकती हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर के उद्देश्यो और सिद्धान्तो को मानकर चलते रहने के संकल्प की पुन: पुष्टि करते हुए एक ओर भारत गणतन्त्र और दूसरी ओर सोवियत समाजवादी गणतन्त्र संघ ने वर्तमान सन्धि करने का निश्चय किया है। दोनों देश निम्न प्रकार से सहमत हुए हैं—

(१) महान् संविदाकारी पक्ष निष्ठापूर्वक घोषणा करते हैं कि दोनों देश और उनकी जनता के बीच स्थायी शांति और मित्रता बनी रहेगी। प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्ष की स्वतन्त्रता, प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखण्डता का सम्मान करेगा तथा एक-दूसरे के आंतरिक मामलो मे हस्तक्षेप नही करेगा। महान् संविदाकारी पक्ष सच्ची मित्रता, अच्छी प्रतिवेशिता और व्यापक सहयोग के वर्तमान सम्बन्धो को उपरोक्त सिद्धान्तों तथा समानता एवं पारस्परिक लाभ के आधार पर विकसित और सुदृढ़ करते रहेगे।

(२) प्रत्येक सम्भव प्रकार से दोनों देशो की जनता के लिए स्थायी शांति और सुरक्षा को सुनिश्चित करनें मे योगदान की इच्छा से प्रेरित होकर, महान् संविदाकारी पक्ष अपने इस संकल्प की घोषणा करते हैं कि वे एशिया और समूचे संसार मे शांति बनाये रखनें, उसको दृढ़ करनें, शस्त्र दौड़ को रोकने तथा प्रभावकारी अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के आधीन सामान्य एवं सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण के लिए, जिनमे आणविक एवं परम्परागत अस्त्र-शस्त्र दोनों शामिल हैं, सतत प्रयास करते रहेगे।

(३) समस्त राष्ट्र और सभी देशों की जनता की समानता के, चाहे उनका कोई भी धर्म या जाति हो, उच्च आदर्श के प्रति अपनी निष्ठा से प्रेरित होकर महान् संविदाकारी पक्ष उपनिवेशवाद और जातिवाद के सभी रूपो की निन्दा करते हैं और उन्हें पूर्णतया लुप्त कर देने के प्रयास के संकल्प में पुन: आस्था प्रकट करते हैं। इन उद्देश्यो की प्राप्ति तथा उपनिवेशवाद एवं जातिवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वाले

सभी देशो की जनता की उचित आकाक्षाओ का समर्थन करने के लिए महान् सविदाकारी पक्ष दूसरे राज्यो के साथ सहयोग करेंगे ।

(४) भारत गणतन्त्र सोवियत समाजवादी गणतन्त्र सघ की शान्तिप्रिय नीति का सम्मान करता है, जिसका उद्देश्य सभी राष्ट्रो के साथ मित्रता और सहयोग को सुदृढ करना है । सोवियत समाजवादी गणतन्त्र सघ भारत की गुट मुक्त नीति का सम्मान करता है और इसमे पुन आस्था प्रकट करता है कि विश्व शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को बनाये रखना तथा ससार मे तनाव को कम करने मे इस नीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

(५) विश्व शान्ति एव सुरक्षा को सुनिश्चित करने मे गहरी अभिरुचि रखते हुए तथा इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे पारस्परिक सहयोग को बडी महत्ता देते हुए महान् सविदाकारी पक्ष दोनो राज्यो के हितो को प्रभावित करने वाली मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के बारे म प्रमुख राजनेताओ के बीच गोष्ठी, विचारो के आदान प्रदान, दोनो सरकारो के विशेष दूतो तथा सरकारी प्रतिनिधि मण्डलो की यात्रा एव राजनयिक माध्यमो के द्वारा बराबर सम्पर्क बनाये रखेंगे ।

(६) दोनो के बीच आर्थिक, वैज्ञानिक एव तकनीकि सहयोग का पूरी महत्ता देते हुए महान् सविदाकारी पक्ष परस्पर लाभकारी एव व्यापक सहयोग को इन क्षेत्रो मे बराबर सुदृढ एव विस्तृत करते रहेंगे तथा २६ दिसम्बर १६७० के भारत-सोवियत व्यापार समझौते के अन्तर्गत निकटस्थ देशो के साथ उल्लिखित विशेष व्यवस्था एव वर्तमान समझौते के अध्याधीन समानता, पारस्परिक लाभ तथा अति अनुगृहीत राष्ट्र के प्रति व्यवहार के आधार पर व्यापार, परिवहन और सचार का विस्तार करेंगे ।

(७) महान् सविदाकारी पक्ष विज्ञान, कला, साहित्य, शिक्षा, जनस्वास्थ्य, प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, पर्यटन और खेल क्षेत्रो मे आपसी सम्बन्ध एव सम्पर्क को और अधिक विकसित करेंगे ।

(८) दोनो पक्षो के बीच विद्यमान परम्परागत मित्रता के अनुसार, महान् सविदाकारी पक्ष का प्रत्येक पक्ष निष्ठापूर्वक घोषित करता है कि वह किसी भी ऐसे सैनिक गठबन्धन मे, जो दूसरे पक्ष के विरुद्ध हो, न सम्मिलित होगा और न भाग लेगा । प्रत्येक महान् सविदाकारी पक्ष वचनबद्ध है कि यह दूसरे पक्ष पर किसी प्रकार का आक्रमण नही करेगा तथा अपने क्षेत्र मे किसी प्रकार के ऐसे कार्य का नही होने देगा, जिससे दूसरे पक्ष को सैनिक क्षति होने की आशका हो ।

(६) प्रत्येक महान् सविदाकारी पक्ष वचनबद्ध है कि वह किसी तीसरे पक्ष का जो महान् सविदाकारी पक्ष मे दूसरे पक्ष के विरुद्ध सशस्त्र सघर्ष मे लगा हो, किसी प्रकार की सहायता नही देगा । दोनो मे से किसी पक्ष पर आक्रमण होने या आक्रमण का खतरा उपस्थित होने पर महान् सविदाकारी पक्ष शीघ्र ही परस्पर विचार विमर्श करेंगे ताकि ऐसे खतरे को समाप्त किया जाये तथा दोनो की शान्ति और सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए समुचित प्रभावकारी कदम उठाये जायें ।

(१०) प्रत्येक महान् सविदाकारी पक्ष निष्ठापूर्वक घोषित करता है कि वह किसी भी एक या एक से अधिक राज्यो के साथ कोई भी गुप्त या प्रगट दायित्व अपने ऊपर नही लेगा, जो इस सधि के प्रतिकूल हो । महान् सविदाकारी पक्ष का प्रत्येक पक्ष यह भी घोषित करता है कि उसका किसी राज्य या राज्यो के साथ न कोई ऐसा

वर्तमान दायित्व है और न भविष्य में वह कोई ऐसा दायित्व लेगा, जिससे दूसरे पक्ष को किसी प्रकार की सैनिक हानि हो सकती हो।

(११) यह सन्धि बीस वर्षों की अवधि के लिये की गई है और यदि महान् संविदाकारी पक्षों में से एक पक्ष सन्धि के समाप्त होने के बारह महीने पूर्व दूसरे पक्ष के पास नोटिस देकर सन्धि को समाप्त करने की इच्छा घोषित न करे तो प्रत्येक पांच वर्ष की अवधि के बाद स्वतः इसकी अवधि बढ़ जायेगी। यह सन्धि अनुसमर्थन के अध्याधीन होगी और अनुसमर्थन के दस्तावेज के आदान-प्रदान के दिन से लागू होगी। दस्तावेज का यह आदान-प्रदान सन्धि पर हस्ताक्षर हो जाने के एक महीने के भीतर मास्को में होगा।

(१२) महान् संविदाकारी पक्ष के बीच इस सन्धि के किसी एक या एकाधिक अनुच्छेद की व्याख्या में किसी प्रकार का अन्तर उत्पन्न होने पर शान्तिपूर्ण उपायों, पारस्परिक सम्मान और सूझ-बूझ द्वारा द्विपक्षीय ढंग से उसे निबटाया जायेगा। उपरोक्त पूर्णाधिकारियों ने वर्तमान सन्धि पर हिन्दी और रूसी भाषा में हस्ताक्षर कर दिये हैं। इस पर उन्होंने अपनी मुहर लगा दी है और इस सन्धि के सभी पाठ समान रूप से प्राधिकृत हैं।" (न० भा० टा० १० अगस्त १९७१)

भारत और रूस की सन्धि से अमेरिका आश्चर्यचकित रह गया। अमेरिकी राजनयिकों की राय थी कि यह सन्धि अमेरिका और चीन की पिंगपोंग कूटनीति का उत्तर है। सन्धि के समाचार ने पाकिस्तान में चिन्ता की लहर दौड़ा दी। पीपुल्स पार्टी के अध्यक्ष श्री भुट्टो ने कहा कि यह पाकिस्तान के लिये बहुत बड़ी चुनौती है, इसलिये पाकिस्तान को अब सतर्क रहना होगा। जापान के 'जापान टाइम्स' के मत से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तटस्थ राष्ट्र के नाते भारत की आवाज में अब तक जो नैतिक बल था, वह अब नहीं रहेगा। इस सन्धि पर चीन ने बहुत समय तक कोई टिप्पणी ही नहीं की।

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने इस सन्धि को "गुलाम को बेगम की मात" बताया। स्वतन्त्र पार्टी के नेता श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने इस सन्धि का स्वागत किया। कम्युनिस्ट पार्टी के नेता श्री भूपेश गुप्त ने कहा कि यह सन्धि ऐतिहासिक दस्तावेज है, यह नवोदित गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों के लिये आदर्श है। भूतपूर्व रक्षामन्त्री श्री कृष्णामेनन ने कहा कि यह सन्धि सही दिशा की ओर बढ़ा कदम है। सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि यह सन्धि दक्षिण-पूर्वी एशिया के लिये शान्ति की निश्चित गारण्टी है।

इस सन्धि के यद्यपि दीर्घकालिक अनेकों लाभ हैं, फिर भी तात्कालिक लाभ की दृष्टि से अत्यधिक फलदायिनी सिद्ध हुई है। बंगला देश में अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए पाकिस्तान, भारत से लड़ाई मोल लेने का निरन्तर प्रयत्न कर रहा था। उसका विचार था कि भारत अकेला पड़ गया है, चीन और अमेरिका उसकी पीठ पर हैं ही, सोवियत रूस इस झगड़े में अपने को उलझायेगा नहीं। अतः यह समय भारत पर आक्रमण करने का अधिक समीचीन है, इससे बंगला देश स्वतः समाप्त हो ही जायेगा क्योंकि बंगला देश को शरण देने वाला एकमात्र देश भारत ही है। इस ऐतिहासिक सन्धि से पाकिस्तान का वह मधुर स्वप्न एक दम टूट गया, अब भविष्य में वह युद्ध की धमकी देने का दुस्साहस नहीं करेगा।

इस सन्धि से जहाँ भारत को तात्कालिक लाभ हुआ है, वहाँ रूस को भी

स्वीप्द सात हुआ है। सोवियत रूस के समक्ष भी कुछ समय से चीन एक प्रश्न बना हुआ था। चीन के प्रति अमेरिका के मैत्रीपूर्ण हाथ बढ़ने से तथा प्रेसीडेन्ट निक्सन की प्रस्तावित पीकिंग यात्रा से रूस का चिंतित एवं विचारशील होना स्वाभाविक ही था। इस सन्धि के अनुसार रूस पर चीन के हमले के समय भारत मास्को के साथ होगा। इस सन्धि से चीन को यह भय रहेगा कि यदि उसने रूस पर हमला किया तो भारत भी दक्षिण की ओर से उसका मुकाबला कर सकता है। इस प्रकार चीन दक्षिण की ओर से अपनी सारी सेना हटाकर रूस के खिलाफ नहीं लगा पायेगा।

सन्धि की कुछ धारायें अपने में विशेष महत्व रखती हैं। पहली तो यह कि सन्धि में बँधे देश एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे और दूसरी यह कि दोनों में से कोई देश आक्रान्ता को मदद नहीं देगा, तथा तीसरी यह कि यदि कोई तीसरा देश दोनों मे से किसी एक पर आक्रमण करता है, तो वे उसके प्रतिकार के लिये एक दूसरे से परामर्श करेंगे और यह सुनिश्चित ही है कि जब परामर्श होगा तो उसमें आक्रमण के प्रतिकार का उपाय सोचा और निकाला ही जाएगा। उसका अर्थ सैनिक सहायता भी हो सकता है, आक्रमण भी हो सकता है और आक्रान्ता को समझा बुझाकर चुप बैठाल देना भी हो सकता है। शांति के लिये, आक्रमण की आशंका समाप्त हो जाना ही पर्याप्त और अभीष्ट होता है। यह सोचना या कहना नितान्त निर्मूल है कि इस सन्धि से सोवियत रूस अपने पैर फैलाना चाहता है। यह भ्रम या यह आशंका भी निर्बल एवं निराधार है कि यह सन्धि किसी देश या विदेशों के विरुद्ध है। यह तो भारत और रूस के बीच मैत्री, सहयोग और शांति की सन्धि है। यह सोचना भी नितान्त मिथ्या एवं भ्रामक है कि भारत ने अपनी गुट निरपेक्षता की नीति को छोड़ दिया है। यह सन्धि तो युद्ध के विरुद्ध शांति की सन्धि है। सन्धि की किसी धारा से यह प्रकट नहीं होता कि भारत ने रूस से कोई सैनिक गठजोड़ कर लिया है। यह सन्धि निःसन्देह युद्ध की विभीषिकाओं पर शांति की विजय का तुमुलनाद है और जाति एवं रंग-भेद पर समानता एवं मानवता की विजय है।

भारत के आगे यद्यपि और विकल्प थे, परन्तु वे भारत के मान और गौरव के अनुकूल नहीं थे। पहला विकल्प था कि वह "एकला चलो रे" की नीति पर ही रहता, परन्तु आज की दुनिया शांति का अर्थ दुर्बलता लगाती है और खामोश तमाशा देखने वाले को चैन से कान बैठने देता है। पिछले चीनी आक्रमण और पाकिस्तान से युद्ध इसी बात के प्रमाण हैं। दूसरा विकल्प था कि चीन के साथ सम्बन्ध सुधर जाते, परन्तु शत्रु के साथ मित्रता का अर्थ है कि यह मित्रता उसकी मनमानी शर्तों पर होती और भारत को अपने स्वाभिमान के विरुद्ध झुकना पड़ता। अमेरिका ने चीन के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाकर भारत को अमेरिका के विदेश मन्त्री श्री रोजर्स ने धमकी भरी चेतावनी दे ही दी थी कि "भारत-पाक युद्ध में चीन के हस्तक्षेप के बावजूद अमेरिका भारत की सहायता नहीं करेगा।" इतना ही नहीं अमेरिका ने भारत के साथ बराबर झूठ बोला, अपमानित किया और पाकिस्तान को शस्त्रास्त्रों का भेजना जारी रक्खा। ऐसी स्थिति में, प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का यह सुनिश्चित और दृढ़ कदम निःसन्देह प्रशंसनीय ही नहीं, इतिहास के पृष्ठों पर चिरस्मरणीय रहेगा। बंगला देश को उचित समय पर मान्यता देने और उसने उत्पन्न स्थिति का सामना करने की दिशा में यह महत्वपूर्ण कदम था। सन्धि पर हस्ताक्षरों के बाद सोवियत रूस द्वारा राष्ट्रपति याहिया को कड़ी चेतावनी दिया जाना

पाकिस्तान के विदेश सचिव का रूस जाना तथा प्रधानमन्त्री श्री कोसीगिन से भेंट न होना, राष्ट्र संघ तथा सुरक्षा परिषद् में पाकिस्तान की योजनाओ को विफल बनाने में सोवियत रूस की महत्त्वपूर्ण सतर्कता इस बात के प्रमाण है कि बंगला देश बनकर रहेगा। इस सन्धि के बाद से लेकर आज तक सोवियत संघ व भारत के सम्बन्धो में निरन्तर मधुरता व दृढता आयी है। वास्तव में दोनो देशों की यह मैत्री सन्धि भारतीय विदेश नीति का एक परिवर्तनकारी बिन्दु है। इस सन्धि के फलस्वरूप एशिया मे भारत का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। सन् १९७१ के बाद भारत रूस के सम्बन्ध निरन्तर दृढ ही होते रहे हैं। सयुक्त राष्ट्र सघ की सुरक्षा परिषद् मे अनेक बार रूस ने भारत का पक्ष लिया है। दिसम्बर १९७७ ई० मे भारतीय प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई की मास्को यात्रा ने दोनों देशों के सम्बन्धो को और भी अधिक मजबूत बना दिया। सन् १९८० मे साम्यवादी नेता राष्ट्रपति ब्रेझनेव की भारत यात्रा और सितम्बर १९८२ मे प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की मास्को यात्रा ने भारत रूस-सम्बन्धो की घनिष्टता में बहुत वृद्धि की है। वर्तमान समय मे दोनो देशो के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण और अति मधुर हैं।

पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो के कारण ही भारत ने आज अन्तरिक्ष यात्रा करके विश्व मे महान् ख्याति प्राप्त कर ली है। भारत के श्री राकेश शर्मा ने अपनी साहसिक अन्तरिक्ष यात्रा करके इतिहास के पृष्ठों मे अपना नाम अंकित कर दिया है। रूस की सहायता से ही भारत का नाम भी आज अन्तरिक्ष यात्री भेजने वाले देशों के साथ ही लिया जाता है।

११ नवम्बर १९८२ को सोवियत-राष्ट्रपति ब्रेझनेव के निधन से भारत में गहरा शोक हुआ है। लेकिन रूस के नये नेता आन्द्रोपोव के आश्वासनो से आशा की जाती है कि भारत-रूस सन्धि चिरस्थायी और चिरजीवी होकर दोनो देशों को समृद्धिशाली और गौरवशाली बनाती रहेगी।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के महा सचिव महामहिम श्री गोर्वाच्योव के १९८७ मे भारत पधारने पर भारत रूस सन्धि सुदृढ से सुदृढतर हुई। उसके बाद अनेक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मण्डलो का दोनो देशो मे आदान प्रदान चल रहा है तथा अनेक समझौते होते रहे हैं जिसमे भारत अधिक से अधिक विकसित होता रहे।

भारत रूस मैत्री की शृखला मे ही जून ८७ मे एक वर्ष के लिये रूस मे भारत महोत्सव का आयोजन किया गया जिसका समापन ८ जून १९८८ को भारत के राष्ट्रपति श्री रामास्वामी वेंकटरामन ने किया। अपने समापन भाषण मे भारतीय राष्ट्रपति ने कहा कि—

सोवियत सघ मे पिछले एक वर्ष से चल रहे भारत महोत्सव की समाप्ति की घोषणा आज राष्ट्रपति रामास्वामी वेंकटरामन ने की। उन्होंने इसे दोनों देशों की दोस्ती और एक-दूसरे की सस्कृति को गहराई से जानने की ऐतिहासिक पहल बताया।

उन्होंने कहा कि सोवियत संघ में भारत महोत्सव और भारत में सोवियत महोत्सव अपने आप मे बेजोड है। इन समारोहो के तहत दो महान देशों के आम आदमी, महिलाएँ और बच्चे प्यार बांटने और प्यार पाने के लिए हजारो मील का सफर तय करके एक-दूसरे की दहलीज तक पहुंचे।

वेंकटरामन यहां ओलम्पिक स्टेडियम मे हुए समापन समारोह के मुख्य अतिथि

हैं। उन्होंने दोनों देशों के बीच युगों से चले आ रहे मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का जिक्र किया और कहा कि ईसाई युग की शुरुआत होने से पहले भी दोनों देशों के बीच महत्वपूर्ण सम्बन्ध थे। इन्हीं सम्बन्धों ने दोनों देशों के लोगों की आत्मा को जोड़ रखा।

वेंकटारमन ने कहा कि उजबेकिस्तान और ताजिकिस्तान की खुदाई से बौद्ध स्तूपों, मूर्तियों और चित्रों के अवशेष मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि भारतीय संस्कृति के साथ क्षेत्रीय संस्कृति किस कदर घुल-मिल गई थी।

उन्होंने कहा कि १५ वीं शताब्दी में भारत आए अफानासी निकितिन जैसे यात्रियों ने दोनों देशों के बीच मेल जोल बढ़ाने में मदद की। राष्ट्रपति ने कहा कि आपके महान लेखक पुश्किन ने लिखा है कि सोवियत संघ के लेखकों ने अपनी आत्मा की आवाज से प्रभावित होकर भारतीय साहित्य की महान कृतियों के अनुवाद का बीड़ा उठाया। इसके तहत १८ वीं शताब्दी में भगवद् गीता और कालिदास के उपन्यास शाकुन्तलम् का अनुवाद किया गया।

उधर सोवियत संघ के महान लेखकों में भारत के सर्वश्रेष्ठ लेखकों की दिलचस्पी और प्रभाव बढ़ा।

भारत महोत्सव का उद्‌घाटन प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने पिछले वर्ष तीन जुलाई १९८७ ई० को किया था।

वेंकटारमन ने भारत महोत्सव में विशेष रुचि दिखाने के लिए सोवियत जनता को धन्यवाद दिया।

उन्होंने कहा कि सोवियत संघ में भारत महोत्सव और भारत में सोवियत महोत्सव से यदि दोनों देशों के लोगों के बीच मानवीय और बौद्धिक स्तर पर और बेहतर तालमेल स्थापित हुआ तो हम समझेंगे कि हमने अपनी इस शानदार पहल का मकसद हासिल कर लिया।

राष्ट्रपति ने कहा, यह हकीकत है कि भारत महोत्सव आज समाप्त हो गया और भारत में सोवियत महोत्सव इस साल नवम्बर में समाप्त हो गया, लेकिन इन समारोहों की छाप और प्रभाव कभी समाप्त नहीं होगा।

ये महोत्सव एक सत्र की समाप्ति के साथ-साथ समय के एक एक नए चक्र की शुरुआत के प्रतीक हैं। इन समारोहों की समाप्ति के बाद दोनों देशों में अनेक नये क्षेत्रों में सहयोग के एक नये युग का सूत्रपात हुआ है। बहुत से लोगों ने सांस्कृतिक और व्यावसायिक सहयोग बढ़ाने के अवसरों की खोज शुरू भी कर दी है। संगीत, नृत्य और चलचित्र के क्षेत्र में अनेक संयुक्त कार्यक्रम शुरू हो चुके हैं।

राष्ट्रपति ने नवम्बर १९८६ में सोवियत महासचिव मिखाइल गोर्बाच्योव और प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की दिल्ली घोषणा का जिक्र करते हुए कहा कि इससे १९७१ में दोनों देशों के बीच हुई शांति और मैत्री की जड़ें और मजबूत हुई हैं।

वेंकटरामन ने ऋग्वेद की एक सूक्ति के साथ अपना भाषण समाप्त किया, जिसमें मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे से सहयोग करने की प्रेरणा दी गई है।

६ जौलाई १९८८ को राष्ट्रपति ने सोवियत राष्ट्रपति श्री आन्द्रेई ग्रोमिको से क्रेमलिन भवन में दो घण्टे तक बातचीत की। रूसी राष्ट्रपति द्वारा श्री आर० वेंकटरामन के सम्मान में दिये गये भोज के अवसर पर श्री आर० वेंकटरामन ने कहा कि पाकिस्तान के भारत के विरुद्ध आतंकवादी गतिविधियों में शामिल होने तथा

उसके गुप्त परमाणु शस्त्र कार्यक्रम की वजह से दोनों देशों के बीच सामान्य सम्बन्ध बनाने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न हो गई है।

उन्होंने कहा कि यह जगजाहिर है कि भारत अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान के साथ मैत्रीपूर्ण और बेहतर सम्बन्ध बनाने का आकांक्षी है। भारत सरकार ने इस दिशा में कई बार पहल की, लेकिन पाकिस्तान ने उसका उसी भावना से जवाब नहीं दिया।

वेंकटरामन ने कहा कि यह खेद का विषय है कि कुछ पक्ष अफगान समस्या पर हुए ऐतिहासिक समझौते की भावना को नजर-अंदाज कर रहे हैं।

उन्होंने कहा कि अफगानिस्तान को आज बाहरी हस्तक्षेप के बिना शांति की जरूरत है ताकि अफगान जनता आंतरिक समस्याओं को सुलझाकर अपना भविष्य खुद तय कर सके।

उन्होंने कहा कि भारत अफगान समस्या के समाधान में द्विपक्षीय और बहु-पक्षीय रूप से योगदान करने को तैयार है।

राष्ट्रपति ने कहा कि अफगानिस्तान हमारा पड़ोसी है और वहाँ होने वाली घटनाओं से हम उदासीन नहीं रह सकते। विशेष रूप से जबकि वहाँ हलचलों का हमारी सुरक्षा पर सीधा असर पड़ता है।

सोवियत संघ में समाज सुधार के लिए हाल ही में की गई पहल का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि भारत इनकी सफलता की कामना करता है। राष्ट्रपति ने कहा कि हर बार यहाँ अपने आने पर वह सोवियत संघ की प्रगति और राजनयिक सूझबूझ से अभिभूत हुए हैं।

उन्होंने कहा कि दोनों देशों के बीच इस प्रकार उच्च स्तरीय यात्राओं से दोस्ती और मजबूत होती है।

वेंकटारमन ने कहा कि भारत और सोवियत संघ में भिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के बावजूद दोनों देशों के सम्बन्ध बेहतर बढ़े और मजबूत हुए हैं।

उन्होने कहा कि सोवियत नेता मिखाइल गोर्बाच्योव और अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन के बीच हस्ताक्षरित मध्यम दूरी परमाणु प्रक्षेपास्त्रों सम्बन्धी सन्धि एक महत्व-पूर्ण शुरूआत थी। लेकिन उन्होने खेद प्रकट किया कि मास्को वार्ता में परमाणु हथियारों में ५० प्रतिशत कटौती के प्रस्ताव पर समझौता नहीं हो सका।

उन्होंने कहा कि वार्ता का आगे जारी रहना एक अच्छा संकेत है और भारत इन सभी प्रयासों का पूरा समर्थन करता है। परमाणु हथियार रहित और अहिंसा-त्मक विश्व के सिद्धांतो पर आधारित दिल्ली घोषणा पत्र हमारा मार्ग दर्शक रहा है।

राष्ट्रपति ने कहा कि यद्यपि मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्र सन्धि विश्व में परमाणु हथियारों के एक छोटे भाग तक ही सीमित है लेकिन यह परमाणु निरस्त्रीकरण की दिशा में व्यापक कदम उठाने में सहायक हो सकती है।

आशा है भारत और रूस की सन्धि भविष्य में और भी अधिक मजबूत होकर भारत के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी।

११ बैंकों का राष्ट्रीयकरण

"मैं गरीब और पिछड़ी हुई अपनी जनता के साथ हूं, आपके कष्टों का मुझे एहसास है।" आत्मीयता भरे इन शब्दों को सुनकर बधाई देने आई हुई भीड़ ने आह्लादित होकर प्रधानमन्त्री की जय-जयकार की और इस आत्मीयता भरे अभिनन्दन से प्रधानमन्त्री भवन एक बार फिर गूंज उठा।

देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थाओं ने जी भर कर हर्षोल्लास पूर्ण खुशियाँ मनाई थी, अपनी प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी की इस अभूतपूर्व विजय और वीरता भरे पदन्यास पर। छोटे उद्योगपतियों, श्रमिकों और साधारण व्यापारियों के मुखों पर युगों से छाई हुई गहरी उदासी धुलने लगी थी। कृषक-ललनाओं के घुंघरू, खेतों और खलियानों में गति एवं लय से मुखरित हो उठे थे, यह जानकर कि अब उनके स्वामियों को साहूकार की शरण में जाना नहीं पड़ेगा। वर्षों से गिने-चुने हाथों में ही खेलने के कारण घुटन महसूस करने वाली देश लक्ष्मी भी अंगड़ाई लेकर जन-साधारण के बीच में आने के लिए आतुर हो उठी थी। पुरानी शीशियों में बन्द इत्र अपने सुवास से देश के कण-कण को सुवासित करने के लिए लालायित हो रहा था।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण

१ प्रस्तावना।
२ बङ्गलौर अधिवेशन में प्रधान मन्त्री का नोट।
३ अध्यादेश द्वारा राष्ट्रीयकरण,
४ संसद में बिल।
५ समाजीकरण की त्रुटियाँ।
६ राष्ट्रीयकरण से लाभ।
७ उपसंहार।

सहसा तिजोरियों के द्वार खुले। लक्ष्मी का युगों का कारावास समाप्ति के चरणों में था। ९ जुलाई १९६९ को कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में श्रीमती गांधी द्वारा देश की बुनियादी आर्थिक नीतियों पर प्रेषित 'नोट' खुला, जिसमें प्रमुख वित्तीय संस्थाओं के राष्ट्रीयकरण के ५० सुझाव थे, जिनका उद्देश्य देश की अर्थ व्यवस्था को मजबूत बनाना और उसे समाजवादी आधार देना था, या यों कहिये कि इस नोट में वह संदेश निहित था, जिससे भारतीय जनता निर्धनता, दरिद्रता, गरीबी और भुखमरी से मुक्ति पा सके।

श्रीमती गांधी ने अपने नोट में कांग्रेस कार्य समिति से बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण, सरकारी प्रतिभूतियों में बैंकों की पूंजी विनियोग की कानून सम्मत राशि की सीमा में वृद्धि, एकाधिकार को सीमित करके औद्योगिक लाइसेंस नीति में आमूल परिवर्तन करने और औद्योगिक लाभ में कर्मचारी के भागीदार होने आदि के प्रश्नों पर विचार करने को कहा था। हाल ही में संसदीय कानून के द्वारा जो सामाजिक नियन्त्रण लागू किया गया था, उससे वे प्रसन्न नहीं थी। नोट में सुझाव था कि कच्चे माल के आयात का अविलम्ब राष्ट्रीयकरण किया जाय, उद्योग को अस्वास्थ्य प्रदान करने वाली प्रतिबन्धित व्यापारिक चालों पर अंकुश लगाने तथा भूमि रखने की सीमा को अविलम्ब निर्धारित कर भूमि सुधार को जोरदार ढंग से लागू किया जाये। सामाजिक नियन्त्रण प्रणाली के अन्तर्गत बैंक द्वारा जमा किये जाने वाली राशि को ५ प्रतिशत तक बढ़ा देना था। सुझाव देते हुए श्रीमती गांधी ने कहा था कि इससे २०० करोड़ रु० की अतिरिक्त आय होगी, जिसका उपयोग सरकारी क्षेत्रों के उद्योगों में किया जायेगा।

मतभेद, विचार भिन्नता और विरोधी प्रहारो की तीव्र अग्नि परीक्षा में भी जब स्वर्ण चमक उठा तो श्री चह्वाण से आर्थिक व सामाजिक नीति पर एक नए प्रस्ताव का मसविदा तैयार करने को कहा गया, जिसमे नयी आर्थिक नीति का प्रस्ताव श्रीमती गाँधी द्वारा उनके नोट में दिये गए सकेत के आधार पर हो। ११ जुलाई १९६९ को कांग्रेस कार्य समिति ने बगलौर मे उक्त आर्थिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत कर दिया। हालांकि कांग्रेस से बाहर के राजनीतिज्ञों को इस प्रस्ताव पर कुछ आश्चर्य भी हुआ क्योंकि कुछ मास पूर्व ही फरीदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में बैंको के समाजीकरण के लिये संसद मे कानून पास कराया था।

कांग्रेस महासमिति के बंगलौर अधिवेशन से १४ जुलाई को लौटने के पश्चात् प्रधानमन्त्री ने १६ जुलाई को श्री मोरारजी देसाई को वित्तमन्त्री पद से मुक्त कर दिया तथा १७ जुलाई को स्वयं वित्त-विभाग सम्भाल लिया। इस पर मोरारजी देसाई ने उप-प्रधानमन्त्री पद से भी अपना त्याग-पत्र दे दिया और वह १९ जुलाई की सध्या को स्वीकार कर लिया गया।

१९ जुलाई १९६९ को वर्षों की चर्चा और विवाद के पश्चात् श्रीमती गाँधी के आकस्मिक निर्णय पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने अपनी स्वीकृति दे दी। उसी दिन रात्रि को राष्ट्रपति वी० वी० गिरी ने अध्यादेश जारी किया, जिसके अधीन देश के १४ बैंको को जिनके पास ५० करोड रुपये से ज्यादा रकम जमा थी, केन्द्रीय सरकार के अधीन कर लिया गया।

अध्यादेश के अनुसार यह निर्णय राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और लक्ष्यो के अनुरूप अर्थव्यवस्था के विकास की जरूरतो को अच्छी तरह पूरा करने के उद्देश्य से किया गया। इन बैंको के हिस्सेदारो को मुआवजा दिया जायेगा। अध्यादेश मे कहा है कि भारत से बाहर निगमित बैंको की शाखाओं का तथा जून १९६९ के अन्त मे ५० करोड़ रुपये से कम जमा रकम वाले भारतीय अनुसूचित बैंको का राष्ट्रीयकरण नही किया गया है। पचास करोड रुपये से अधिक जमा रकम वाले बैंक सरकार के अधीन किये गये है, विदेशी बैंको का राष्ट्रीयकरण नही किया गया है।

१९ जुलाई १९६९ ई० को आकाशवाणी से राष्ट्र के नाम सदेश प्रसारित करते हुए प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी ने देशवासियों से अपील कि वे बैंको के राष्ट्रीयकरण के सामाजिक व लोकतन्त्रीय प्रयोग को सफल बनाने में सहयोग दे। उन्होंने बैंको के मैनेजरो और कर्मचारियो से खास तौर से अनुरोध किया कि वे बैंको द्वारा राष्ट्रीय उद्देश्यो की पूर्ति मे पूरा-पूरा सहयोग दें, किन्तु इस फैसले का यह अर्थ नही कि क्षेत्रो मे भी राष्ट्रीयकरण हो रहा है।

श्रीमती गाँधी ने आगे कहा—"हमारा एकमात्र उद्देश्य हमारी गरीब जनता की भलाई और उसकी उन्नति है। हर समय हमारी यही कोशिश रहेगी कि उसका जीवन जल्दी से जल्दी सुखद बने। विदेशी नीति की तरह हमारी आन्तरिक नीति मे भी, हम अपनी राष्ट्रीय आकाक्षाओ, राष्ट्रीय आवश्यकताओ और राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते है, इनसे हमारी योजनाओ और नीतियो के कार्यान्वयन मे मदद मिलेगी। राष्ट्रीयकरण से हम अपने उद्देश्यों की पूर्ति अब तेजी से कर सकेंगे। बैंक व्यवस्था के लिये अधिकारियों और कर्मचारियो के प्रशिक्षण का इन्तजाम करना और उनकी सेवा की शर्तों पर भी गौर करना है। केवल राष्ट्रीयकरण से ही

हमारा उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। आगे चलकर इन बैंकों के संगठन में परिवर्तन किया जायेगा। विशेषज्ञों की जाँच के बाद यह काम होगा। पन्द्रह वर्ष पहिले १९५४ में संसद में हमने समाजवादी समाज को अपनाने का फैसला किया था और यह तय हुआ था कि इसको ध्यान में रखते हुए हम अपनी सभी योजनायें और नीतियाँ बनायें। हमारा समाज गरीब और पिछड़ा है, हमें विकास करना है, विभिन्न तबकों—गरीब और अमीर में विषमता कम करनी है। इसके लिए यह जरूरी है कि हमारी अर्थव्यवस्था के खास मोर्चों पर सरकार द्वारा जनता का कब्जा हो। भारत प्राचीन है लेकिन हमारा लोकतन्त्र नया है और इसकी रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था चन्द लोगों की मुठ्ठी में न रहे। किसी भी मुल्क की अर्थव्यवस्था में बैंक का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। बैंक अमीरों के पैसों का अमानतदार है, अगर ये कुशलता से चलें तो जमा करने वालों का फायदा होता है। देश में करोड़ों छोटे-छोटे किसान, कारीगर छोटे धन्धे करने वालों को अपने कारोबार के लिए कर्ज की जरूरत है और बैंक इस जरूरत को पूरा कर सकता है। व्यापार और उद्योग चाहे बड़े हों या छोटे बैंक से वाजिब दर पर कर्ज लिए बिना तरक्की नहीं कर सकते। पढ़े लिखे नौजवानों की संख्या हमारे देश में बढ़ती जा रही है उनके रोजगार और देश की सेवा का अवसर देने में बैंकों का बहुत बड़ा स्थान है।

प्रधानमन्त्री के इस साहसिक एवं दृढतापूर्ण पदन्यास की सारे देश में भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। दल के अध्यक्षों ने बधाई संदेश भेजे और श्रीमती गांधी के इस "साहसिक कदम" को समाजवाद की ओर एक सही कदम बताया। बैंक कर्मचारियों ने आतिशबाजियाँ कीं और मिठाइयाँ खाई गईं। उद्योगपतियों तथा व्यापारी वर्ग द्वारा उसकी आलोचनायें भी हुईं तथा इसे वाणिज्य, व्यापार और उद्योग के विकास में बाधक बताया गया। जनसंघ और स्वतन्त्र पार्टी के नेताओं की ओर से बैंक के राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी अध्यादेश को उच्चतम न्यायालय में २१ जुलाई को चुनौती दी गई। दो अलग-अलग याचिकायें प्रस्तुत करते हुए कहा गया कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण से संविधान प्रदत्त व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है, इसलिए यह अवैध है। दूसरे, कुछ ही घंटों में संसद का अधिवेशन होने वाला था, ऐसी अवस्था में अध्यादेश निकाल संसद को उसके अधिकारों से वंचित किया गया है अर्थात् संसद सदस्य होने के नाते हमारे अधिकारों का भी अपहरण हुआ है। २२ जुलाई को श्रीमती गांधी ने संसद् के दोनों सदनों में घोषणा की कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी अध्यादेश पर उच्चतम न्यायालय द्वारा अन्तरिम निषेधाज्ञा देने से १४ बड़े बैंकों पर सरकारी स्वामित्व हो जाने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन बैंकों के निदेशक मण्डल भंग किये जाने को है इस पर भी निषेधादेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, रिजर्व बैंक को भी सतर्क कर दिया गया है, जिससे जनता के हितों की रक्षा हो सके।

२५ जुलाई, १९६९ ई० को लोक सभा में बैंक राष्ट्रीयकरण बिल पेश किया गया तथा १० दिन की बहस के बाद ४ अगस्त को तालियों की गड़गड़ाहट के बीच राष्ट्रीयकरण विधेयक लोकसभा में पारित कर दिया गया। ६ अगस्त को राज्य सभा के पटल पर यह बहुचर्चित बिल रक्खा गया तथा तीन दिन की बहस के पश्चात् ८ अगस्त को पारित कर दिया गया। ९ अगस्त, १९६९ ई० को कार्यवाहक राष्ट्र-

पति श्री हिदायतुल्ला ने बैंक राष्ट्रीयकरण विधेयक को स्वीकृति दे दी और इसके साथ ही विधेयक कानून लागू हो गया।

१५ अप्रैल, १९८० को भारत सरकार द्वारा देश के छः बैंकों के राष्ट्रीयकरण का अध्यादेश जारी किया गया, जो जून १९८० ई० में अधिनियम के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण महात्मा गाँधी को भी प्रिय था। आज विश्वबन्धु बापू के अनेक स्वप्नों में से एक स्वप्न साकार हुआ। इस स्वप्न को सत्य सिद्ध करने का श्रेय प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी को है। इस साहसिक कदम के लिए भारत का इतिहास उन्हें सदैव स्मरण करेगा।

पिछले कुछ वर्षों से कृषि और छोटे उद्योगों के लिए कर्ज में विस्तार की जरूरत बहुत अधिक अनुभव की जा रही थी। नगरों में जरूरतों की पूर्ति पर आधारित बैंक व्यवस्था में परिवर्तन लाने पर जोर दिया जाने लगा था। इसके पीछे राजनीतिक नारेबाजी से अधिक आर्थिक अनिवार्यता थी। साथ ही कुछ थोड़े से लोगों के हाथों में आर्थिक सत्ता और राष्ट्रीय सम्पत्ति केन्द्रित हो गई थी, इससे सामाजिक तथा राजनीतिक तनाव भी उत्पन्न होने लगा था। इसके बाद बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण की योजना लागू की गई, ऋण परिषद् की स्थापना हुई, बैंकों में सुधार के लिए आयोग का गठन हुआ, परन्तु न उतनी तेजी आ सकी और न ही उतनी सफलता ही मिल सकी, जितनी आशा थी। वर्षों पहिले अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के एक प्रतिनिधि मण्डल ने भी सिफारिश की थी कि भारत के बैंकों को मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण देना शुरू करना चाहिए। जर्मनी में बैंक इसी आधार पर काम करते हैं, किन्तु भारत के बैंक ब्रिटेन की व्यवस्था पर आधारित होने के कारण अल्पकालीन ऋण देने का काम करते थे।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण से तीन लक्ष्य पूरे होंगे। पहला, प्राथमिक क्षेत्र को कर्ज अधिक उपलब्ध होगा, दूसरा बैंक प्रबन्ध में व्यावसायिक प्रशिक्षण और ज्ञान को बढ़ावा मिलेगा तथा तीसरा बड़े उद्योग समूहों पर सरकार का नियन्त्रण स्थापित होगा। इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि देश का आर्थिक असन्तुलन किसी सीमा तक समाप्त हो जायेगा। सारे प्रयत्नों के बावजूद देश के आयात और निर्यात व्यापार का असन्तुलन बना हुआ है। विदेशों से जो भी नयी सहायता मिलती है; उसका अधिकांश उन्हीं विदेशी महाजनों को पुराने ऋण के ब्याज और किश्तों के रूप में वापस हो जाता है, इधर आन्तरिक साधनों की कमी के कारण सार्वजनिक ऋण बढ़ता जा रहा है। चौथी योजना इसलिए तीन साल तक लटकी रही। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से सरकार को एक साथ अरबों रुपये की राशि प्राप्त हुई है। दूसरे, देश के २० बैंकों की हजारों शाखाओं के द्वारा वह आसानी से उन इलाकों की तक पहुँच सकेगी जहाँ तक पहुँचने के लिए उसे एक विशाल प्रशासन तन्त्र की स्थापना करनी पड़ती।

देश में बैंक खातेदारों की संख्या दो करोड़ बतायी जाती है। मोटे-तौर पर इनका कोई ८० अरब रुपया विभिन्न बैंकों में जमा है। इन्हें अभी ५ से ६% तक का ब्याज मिलता है। इन्हें यह ब्याज आगे भी मिलता रहेगा, इसका आश्वासन सरकार ने दिया है। जहाँ तक खातेदारों की रकम की सुरक्षा का प्रश्न है, राजकीय संरक्षण की वरीयता से ज्यादा और क्या वरीयता हो सकती है। अब न बैंक बन्द

होने का भय है और न जमा धन के लुटने का भय। खातेदारों को केवल ५ से ६ प्रतिशत ब्याज मिलता है जबकि बैंक शेयर होल्डरों को २२ प्रतिशत लाभांश मिलता रहा है। बैंको के राष्ट्रीयकरण से यह ठेकेदारी समाप्त होगी, आर्थिक वैषम्य शनैः शनैः समाप्त होगा और नीचे के लोगों को ऊपर उठने का अवसर मिलेगा। कुछ लोगों की यह धारणायें भ्रान्त एवं निर्मूल हैं कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण से देश की अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। विश्व के कई विकसित देशों ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया है और उन देशों की अर्थ-व्यवस्था पर इसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। जिन लोकतन्त्री देशों मे बैंको का राष्ट्रीयकरण हुआ है वे हैं—फ्रांस, इटली, स्वीडन और श्रीलंका।

देश का बाजार भाव बैंकों के सहारे अब तक धनिकों के हाथ में रहा है। जब चाहें तब किसी भी वस्तु को खरीद की और गोदाम भर दिये गए। स्वाभाविक है, कि उस वस्तु का बाजार में न होना, उसका मूल्य बढ़ा देगा। कुछ समय बाद उसी वस्तु को अपने मनमाने भावों पर बेचना, उपभोक्ताओं के साथ अन्याय नहीं था तो और क्या था? अब बैंक के धन का इच्छानुसार उपयोग और उपभोग नहीं किया जा सकेगा। क्योंकि मनी अब छिपाकर नहीं रखी जा सकती, जिसके पास जो कुछ है, वह सरकार की नजर मे रहेगा। चन्द लोग बैंको के रुपये से फाइनेन्स कम्पनियाँ खोलकर जनता को न चूस सकेंगे। अब जनता को अनावश्यक टैक्सों का भार वहन न करना पड़ेगा क्योंकि बैंकों के माध्यम से सरकार पर पर्याप्त धन आयेगा, जिससे योजनायें पूरी होंगी। पिछले कुछ दशकों से देश में जो गरीब-अमीर की खाई बढ़ती जा रही थी, आर्थिक-वैषम्य की जो आग धीरे धीरे सुलगती जा रही थी वह प्रधानमन्त्री के इस साहसिक कदम से दूर एवं शान्त होगी। निःसन्देह ऐसा साहसिक कदम उठाकर श्रीमती गांधी ने करोड़ों भारतीय नागरिकों की इच्छा का सम्मान किया है।

२० सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की प्रेरणा से भारत की सभी राष्ट्रीयकृत बैंको ने प्रतिवर्ष की भाँति १६८८ मे भी निरीह और असहायों को, निर्धन और निराश्रितो को, रेढी और रिक्शे वालों को, बेरोजगार और निर्बल उद्यमियों को, विकलांग और विधवाओं को करोड़ों रुपयों का ऋण बाँटा, छोटे किसानों को खेती और खेती के उपकरणों के लिए सरल ब्याज पर आर्थिक सहयोग दिया जाना, बिना सहारे लोगो को अपने पैरो पर खड़ा करना यही राष्ट्रीयकृत बैंको की सर्वाधिक उपयोगिता है। हर गरीब आज इन्दिरा जी को याद करके इस पुण्य कार्य के लिए नमन करता है।

१२ भारत में नशाबन्दी कानून

"ओ चिन्ता की पहली रेखा, अरी विश्व-वन की व्याली,
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण, प्रथम कम्प सी मतवाली।"

महाकवि प्रसाद ने जिस चिन्ता की भयानकता का इन पंक्तियों में वर्णन किया है, वही चिन्ता रूपी सर्पिणी आज संसार को डसे जा रही है। आज का चिन्ताग्रस्त मानव चेतना और चिन्तन से बहुत दूर है। भय, कायरता, विषाद, व्याधि और असफलतायें उसके मन और मस्तिष्क पर छाई रहती हैं। वह इन सबको दूर करने

का प्रयास करता है, परन्तु पग-पग पर आने वाले विघ्न और अड़चनें उसे आगे पद-न्यास नहीं करने देते। आज हजारों में सम्भवतः कुछ ही व्यक्ति ऐसे निकलेंगे, जो यह कह सकते हैं कि हम पूर्ण सुखी हैं। किसी को धन की, किसी को दोनों समय भोजन की, किसी को सन्तान की, किसी को स्त्री की, किसी को मूर्ख संतान सुधारने की, किसी को अपने प्रिय और प्रेयसी की, किसी को अपने व्यापार की और किसी को अपनी असफलताओं की चिन्ता घेरे हुए है। सुख और शान्ति गूलर का फूल हो चुकी है। ज्ञान और सन्तोष संसार से उठ चुके हैं, तो भला मानव को विश्राम और शान्ति कैसे मिल सकती है। खिन्नता और क्लान्ति को मिटाने के लिए वह दोपहरी में प्यासे मृग की भाँति, कभी सिनेमा घर की ओर मुड़ता है, तो कभी अन्य मन बहलाव के साधनों की ओर। पर वहाँ भी उसकी चेतना उसे शान्ति से नहीं बैठने देती। वह दुखी होकर उठ खड़ा होता है। 'क्या संसार में ऐसा कुछ नहीं जो कि तेरी चेतना को कुछ क्षणों के लिए अचेतना में परिवर्तित कर दें'—मन, मस्तिष्क से प्रश्न पूछता है। बिना कहे पैर मुड़ जाते हैं, मदिरालय की ओर, जहाँ न शोक है और न दुःख। जहाँ सदैव दीवाली मनाई जाती है और वसन्त-राग अलापे जाते हैं। चिन्ता, विषाद, ग्लानि, खिन्नता कोई भी मदिरालय में प्रवेश का अनधिकारी नहीं। या फिर जहाँ विषपायी शंकर का प्रसाद भंग हो, चरस हो, गाँजा हो, अफीम हो, वहाँ वह प्रवेश करता है। इस प्रकार वह अपनी मानसिक वेदना को कुछ क्षणों के लिए भूलने का प्रयास करता है। नशे से उसकी मानसिक गति कुछ समय के लिए शिथिल पड़ जाती है और उसके रक्त संचार पर नशे की मादकता का प्रभाव हो जाता है जिससे संसार की भीतियाँ उससे स्वयं भयभीत होने लगती हैं। लेकिन यह क्रम जब अपनी सीमा का उल्लंघन कर रोजाना की आदत के रूप में समाज में गत्यावरोध उत्पन्न करता है, तब वह समाज से तिरस्कृत होकर निन्दा और आलोचना की वस्तु बन जाता है।

नशाबन्दी कानून

१. प्रस्तावना।
२. नशे से लाभ तथा हानियाँ।
३. नशाबन्दी की आवश्यकता सरकारी प्रचार।
४. नशाबन्दी से लाभ तथा हानियाँ।
५. उपसंहार।

किसी नशीली वस्तु का सीमित और अल्प मात्रा में सेवन स्वास्थ्य और रोग के लिए लाभदायक होता है। अधिक अवस्था वाले लोग तो प्रायः दवा के रूप में किसी न किसी नशीली वस्तु का नित्य सेवन करते देखे गये हैं। यदि वे ऐसा न करें तो उनके हाथ पैर चल ही नहीं सकते, क्योंकि उनको ऐसी आदत पड़ गई है। स्वास्थ्य के लिए भाँग और शराब दोनों ही लाभकर हैं, यदि इन्हें भोजन से पहिले बहुत थोड़ी मात्रा में सेवन किया जाय तो। बड़े-बड़े पहलवान भाँग का सेवन करके शक्तिवर्धन करते हैं, क्योंकि उसमें खाना पचाने की अपूर्व क्षमता होती है। डाक्टर और वैद्य प्रायः दस्त और दर्द बन्द करने की जितनी औषधियाँ देते हैं, उनमें भंग और सुरा का किसी न किसी रूप में सम्मिश्रण होता ही है। चिन्तित और दुखी व्यक्ति को यदि इन नशीले मादक पदार्थों का सहारा न हो, तो न जाने कितने लोग नित्य आत्महत्या करने लगें, क्योंकि दुखी व्यक्ति कुछ आगा पीछा नहीं सोचता और न असीमित दुःख उसमें सोचने की क्षमता ही छोड़ते हैं। इसीलिए श्री पन्त एक स्थान पर लिखते हैं—

"मैं नहीं चाहता चिर सुख, मैं नहीं चाहता चिर दुःख।
सुख दुःख की आँख मिचौनी, खोले जीवन अपना मुख॥"

सुनते हैं कि कवियों, लेखकों और प्रवक्ताओं की सरस्वती उभरती ही तब है, जब वे थोड़ी भी सुरा या शिव प्रिया का पान कर लेते हैं।

संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिससे लाभ ही लाभ हो और हानि कुछ न हो। प्रत्येक वस्तु जब अपनी 'अति' की अवस्था में आ जाती है, तो वह अमृत के स्थान पर विष बन जाती है। नशे के चक्कर में बड़े-बड़े घरानों को उजड़ते देखा है। नशे से द्रव्य का अपव्यय होता है, जिस पैसे को खून और पसीना एक करके मनुष्य सुबह से शाम तक कमाता है, जिसके आने की प्रतीक्षा में घर की पत्नी और बच्चे इंतजार में बैठे रहते हैं, कि कब वे आयें और इन बच्चों के लिये कुछ खाने के लिये बनाऊँ और जब वे आते हैं, गिरते पड़ते, ठोकरें खाते, डगमगाते पैरों का सहारा लेकर, जिन्हें देखकर मुहल्ले भर के बच्चे हँसते हैं, पड़ौसी निन्दा करते हैं, तो पत्नी आह भरकर रह जाती है, जल्दी जल्दी बच्चों को, इस भय से कि कहीं वे मारें न भूखे ही भीतर छिपाकर सुला आती है और स्वयं सब कुछ सहने के लिये पत्थर का कलेजा करके बैठ जाती है। घर में जवान लड़कियाँ हैं, पर पिता जी उनकी शादी नहीं कर सकते क्योंकि शाम को रोज दस रुपये तो उनको पीने को ही चाहिये। बच्चे किताबों और कपड़ों के लिये तरस रहे हैं, पर पीने वालों को इसकी चिन्ता कहाँ। अगर है तो पीयेंगे, नहीं है तो बीवी के गहने और कपड़ों को, बाप दादा के मकान को बेचकर पीयेंगे, यदि ये भी नहीं हैं तो फिर उधार लेकर पीयेंगे, और ये भी नहीं है तो चोरी करके पीयेंगे, पर पीयेंगे अवश्य। दुनियाँ हँसे तो पीयेंगे और दुनियाँ रोये तो पीयेंगे। रोटी मिले तो पीयेंगे और न मिले तो भी पीयेंगे। नशीली वस्तुओं के सेवन से मनुष्य का स्वास्थ्य खराब हो जाता है—हालांकि कहने को जवानी है, पर शक्ल पीली पड़ गई है, गालों और आँखों में दो-दो इन्च गहरे गड्ढे हैं, दो तिहाई सिर के बाल या तो सफेद पड़ गये हैं या फिर झड़ गये हैं पेट आँतों से जा लगा है, कमर और कन्धे नीचे को झुक आये हैं, खाँसने पर कफ आता है, सीढ़ियाँ चढ़ने पर साँस उखड़ आती है, घण्टों टट्टी में पड़े रहते हैं, पर आतें सूखी हैं, फेफड़े और श्वास नलिकायें खराब हो चुकी हैं कभी-कभी खाँसी और कफ में खून भी आ जाता है, घी दूध की वर्षों से शक्ल तक नहीं देखी, घर की पत्नी जिन्हें अपना पति कहने में संकोच करने लगी है पर पीयेंगे अवश्य। डॉक्टर कहता है कि आप नशा करेंगे तो ठीक नहीं हो सकते, फिर भी वही करेंगे जो करते आये हैं। हजारों लोग देश में सड़कों पर दुर्घटनाग्रस्त इसलिये होते हैं कि वे पिये हुये होते हैं, चाहे वे पैदल चल रहे हों या स्कूटर पर हों या ड्राइवरी कर रहे हों।

समाज के नैतिक स्तर के पतन का मुख्य कारण नशीली वस्तुओं का समाज में बहुतायत से प्रयोग करना है—मदोन्मत्त हो जाने के बाद मनुष्य में लज्जा, भय, संकोच और मान-मर्यादा जैसी कोई वस्तु नहीं रह जाती। वह निर्द्वन्द होकर जब, जहाँ, जैसे चाहता है, करता है, जिसे देखकर घर और बाहर के व्यक्ति भी बिगड़ जाते हैं। ऐसे लोगों की सन्तानें भी प्रायः आरम्भ से चरित्रहीन, अकर्मण्य और मूर्ख होती हैं। नशीली वस्तुओं का सेवन समय की अमूल्यता का कोई ध्यान नहीं रखता। चाहे छः घण्टे में आँखें खुलें और चाहे दूसरे दिन। यदि इतने समय में कोई श्रम-साध्य कार्य किया जाता, तो कितना लाभ होता। देश का नशीला वातावरण, देश

की शक्ति, वीरता और मानमर्यादा के लिये हानिकारक तो है ही, इसके साथ ही साथ समाज का आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक वातावरण भी कलुषित हो जाता है।

नशाबन्दी के लिये समाज सुधारक और धार्मिक संस्थायें प्रारम्भ से प्रयत्नशील हैं। जन-जागरण के लिये विद्वानों, सन्तों तथा गुरुजनों के भाषण कराये जाते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व मदिरालयों के आगे पिकेटिंग कराये जाते थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् उपर्युक्त हानियों को ध्यान में रखते हुए और समाज के सम्यक् उन्नयन के लिये सरकार ने नशाबन्दी कानून बनाया, जिसके अनुसार केवल कुछ लाइसेन्स-प्राप्त व्यक्ति ही नशीली वस्तुओं को बेच सकते हैं। इनके अतिरिक्त यदि और कोई व्यक्ति इनका व्यापार करता है, तो उसे दण्ड दिया जाता है। इस कानून से कोई लाभ नहीं हुआ। क्योंकि नशीली वस्तुयें बेचने के लिये लाइसेन्स और ठेके की प्रणाली ने चोर बाजारी और तस्करी को प्रोत्साहन दिया। कितनी देशी शराब खींची जाती है और बिकती है। कितनी भाँग और गाँजा लोग एक प्रान्त से दूसरे प्रान्तों में पैसा कमाने के लिये ले जाते हैं। यद्यपि कानूनन प्रतिबन्ध है, यह कानून इसलिये भी बेकार है कि बेचने पर लाइसेन्स और पीने वालों को छूट, चाहे कोई पीये और कितनी ही पीये। आजकल तो शाम को बाजारों में कम भीड मिलेगी, पर भट्टी (मदिरालय) में देखिये तो आपको खूब मेला लगा मिलेगा, जिसमें बाबू जी, डाक्टर साहब, वकील साहब, पं० जी, दुकान से घर जाते हुए लाला जी, मन चले विद्यार्थी, थका हुआ रिक्शेवाला, पिटा हुआ जुआरी, बीवी का सताया हुआ उम्मेदार, बोझ ढोने वाला कुली, कमर सीधा करने के लिए झाड़वाला, खोंमचे वाला, सभी श्रेणी के लोग आपको मिलेंगे। पहले लोग ऐसे स्थानों पर चोरी-छिपे जाते थे, पर अब खुल्लमखुल्ला जाते हैं। बात इतनी सी है कि छोटा जल्दी बदनाम हो जाता है और बड़ों को कोई जानता नही।

यदि देश में पूर्ण नशाबन्दी कर दी जाये तो इससे अनेक लाभ होंगे। जिस देश के चारित्रिक-पतन के लिये बड़े-बड़े नेता और धर्म के ठेकेदार चर्चा करते हैं, उन्हें फिर रोना न पड़ेगा। देश स्वतः सुधरेगा। हजारों घर उजड़ने से बच जायेंगे, हजारों स्त्रियाँ विधवा होने से बच जायेंगी, हजारों अनाथ न होंगे, हजारों केस अपहरण के न होंगे। देश सामूहिक शक्ति अर्जन करेगा, अकर्मण्यता, उदासी और नपुंसकता दूर होगी। विलासिता के स्थान पर कर्मण्यता और अध्यवसाय आयेगा। नागरिक बलिष्ठ होंगे, अकाल मृत्यु बन्द होगी, सड़क दुर्घटनायें समाप्त हो जायेंगी, क्षय रोग दूर भाग जायेगा। लोग चरित्रवान और मनस्वी होंगे, उनकी तामसी वृत्ति समाप्त होकर सात्विकी वृत्ति का उदय होगा। वे धर्म और कर्तव्य को पहिचानेंगे, आज्ञापालक पुत्र होंगे और सद्गृहिणियाँ होंगी। लोगों को अपनी और अपने देश की मान मर्यादा का ध्यान होगा। देश की धन, श्रम शक्ति का ह्रास होना बन्द हो जायेगा। चिड़चिड़ाहट के स्थान पर सहन शक्ति और क्रोध का स्थान दया और शान्ति ले लेगी। लोगों में सत् असत् की विचार क्षमता आयेगी।

हानि केवल एक होगी और वह है आर्थिक। सरकार को करोड़ों रुपये का केवल नुकसान उठाना पड़ेगा क्योंकि सबसे अधिक राजस्व सरकार को एक्साइज से मिलता है। आज भी शराब का एक ठेका १० लाख में उठता है।

नशीली वस्तुओं का धन्धा करने वालों को कठोरता से दबाने के लिये कारण

सरकार कठोर दण्ड देने पर विचार कर रही है जिससे नशे का बढ़ता हुआ जाल रोका जा सके।

सरकार नशीली वस्तुओं की तस्करी और अवैध धन्धा करने वालों को मृत्युदण्ड देने के लिए संसद के मानसून अधिवेशन १९८८ में एक विधेयक लाने पर विचार कर रही है।

नशीली वस्तुओं की तस्करी तथा उत्पादन करने वालों के खिलाफ शुरू किये गये अभियान को तेज करने के उद्देश्य से यह कदम उठाया जा रहा है। इसके लिए गृह मन्त्रालय के अधीन मन्त्रिमण्डल की एक उपसमिति बनायी गयी है, जो इस दिशा में विभिन्न कदम उठाने पर विचार कर रही है।

मादक पदार्थ नियन्त्रण बोर्ड के महानिदेशक बी० बी० कुमार ने संवाददाताओं को यह जानकारी दी।

कुमार ने कहा कि सरकार ने इस धन्धे में लगे लोगों के खिलाफ 'पूर्णयुद्ध' घोषित किया है। अध्यादेश जारी होने के बाद से नजरबन्दी के ११५ आदेश जारी किये गये हैं।

उन्होंने कहा कि दिल्ली में सबसे अधिक १२ लोगों को गिरफ्तार किया गया है। कलकत्ता में ४, बम्बई में १०, बनारस में दो, पटना में १३ और मद्रास में तीन लोगों को गिरफ्तार किया गया है। इसके अलावा पंजाब में भी गिरफ्तारियाँ हुई हैं, लेकिन वहाँ का विवरण अभी उपलब्ध नहीं है।

कुमार ने कहा कि राज्यों से कहा गया है कि वे अध्यादेश का लाभ उठाकर इस धन्धे में लगे लोगों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करें।

उन्होंने कहा कि एक तरफ पाकिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान तथा दूसरी तरफ बर्मा, थाईलैण्ड और लाओस में अफीम की अच्छी फसल होने के कारण इस साल स्थिति काफी खतरनाक हो गयी थी। दोनों क्षेत्रों में करीब चौबीस सौ मीट्रिक टन अफीम का उत्पादन हुआ है। इन देशों में अफीम की खेती अवैध रूप से होती है।

इन देशों में अफीम की खेती के अलावा अवैध रूप से लेबोरेटरी भी काम कर रही हैं, जिनमें अफीम से हेरोइन तैयार की जाती है, जो कि बहुत ही खतरनाक किस्म की होती है। बर्मा में इस तरह की ९० और अफगानिस्तान में १५ लेबोरेटरी काम कर रही हैं।

लेकिन देश की व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि देश में पूर्ण नशाबन्दी कानून बनाया जाय और उसका परिपालन कठोरता से किया जाय। आर्थिक हानि का भी देश के नैतिक पतन के आगे कोई महत्त्व नहीं है।

●

१३ नये विद्यार्थी और नई राजनीति

कॉलेज में एक छात्र के पिता को इसलिए बुलाया गया क्योंकि उसने अपने पिता के हस्ताक्षर अपने छुट्टी के प्रार्थना-पत्र पर स्वयं कर लिये थे। किसी के हस्ताक्षरों को कोई बना ले, यह कानून की दृष्टि से चार सौ बीसी का सबसे बड़ा अपराध है। पिता आये और उनके आगे यह स्थिति रखी गई। पिता ने कहा—

'प्रिंसिपल साहब, लड़का तेज हो गया है—यह कहकर मुस्करा दिये। इण्टर द्वितीय वर्ष में एक छात्र के पिता को इसलिये बुलाया गया कि उनका लड़का एक भद्र महिला का पीछा करता है। अतः उसका चरित्र संदिग्ध है। महिला की प्रिंसिपल के पास लिखित शिकायत आई थी। पिता आये और स्थिति पर विचार करके बोले—'अजी प्रिंसिपल साहब, लड़का बुरी संगति में फँस गया है।' कुछ विद्यार्थी तो डकैती डालते हुए रंगे हाथों पकड़ लिए गये और उन पर मुकदमा चला।

नये विद्यार्थी और नई राजनीति

1. **प्रस्तावना।**
2. **नये विद्यार्थी।**
3. **नई राजनीति।**
4. **वास्तविक राजनीति में भाग लेने से हानि और लाभ।**
5. **उपसंहार।**

विवेक एव बुद्धि, अध्ययन एव शिक्षा, गुण एवं ज्ञान की सम्मिलित राशि ही मनुष्य को मनुष्यता तक ले जाती है। इसी मनुष्यता को प्राप्त करने के लिये विद्यालयों के एवं गुरुजनों के द्वार खटखटाये जाते हैं। बाल्यावस्था और किशोरावस्था इस ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति के लिए इसलिये निश्चित की गई हैं कि संसार में आकर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह सबसे पहले संसार मे रहने के योग्य बने, तब सांसारिक झगड़ो मे फँसे। शिक्षा-दीक्षा उसे इस योग्य बनाती है कि वह एक अच्छा गृहस्थी, एक अच्छा पिता, एक अच्छा नागरिक और एक अच्छा राष्ट्रचिन्तक हो। विद्यार्थी-जीवन परिश्रम, लगन और एकनिष्ठ तपस्या का जीवन होता है जिसमे "एकै साधै सब सधै सब साधै सब जाय" वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है। पुराने लोगो ने तो यहाँ तक कह दिया था कि—"सुखार्थी वा त्यजेत् विद्या, विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।" अर्थात् विद्यार्थी जीवन में सुख चाहने वाला विद्या को छोड़ दे और विद्या चाहने वाला सुख का नाम भी लेना छोड़ दे।

आधुनिक युग में राजनीति दो प्रकार की हो गई है। पहली राजनीति वह है जैसे—छात्र को कक्षा मे गणित, इतिहास, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा दी जाती है। उसी प्रकार नागरिक शास्त्र की तथा उच्च कक्षाओं में नामातरित होकर उसी विषय की 'राजनीति विज्ञान' के रूप मे शिक्षा दी जाती है। बारहवी कक्षा तक तो राजनीति जैसा कोई नाम भी छात्रो के विषयों में नही होता क्योंकि छोटे बच्चे उस विषय को समझ नही सकते, प्रबुद्ध एवं बडे छात्रो के लिए ही उस विषय की उपयोगिता है। इसलिए बी० ए० से यह विषय पढ़ाया जाता है जिसमे राजनीति का स्वरूप, भिन्न-भिन्न वाद, विभिन्न सिद्धान्त तथा विभिन्न शासन-प्रणालियो पर विचार किया जाता है। यह तो हुई वह राजनीति जो कॉलिजों मे सिर खपा कर पढी जाती है। दूसरी प्रकार की राजनीति पर नीचे विचार किया जायेगा।

नया युग आया, विचारधाराओ मे नई मान्यतायें आई और विद्यार्थी ने भी अपनी शिष्टता, सभ्यता और अनुशासनप्रियता का पुराना कलेवर उतार फेंका। "काकचेष्टा बकोध्यानम्" और "सुखार्थी वा त्यजेत् विद्या" वाली पुरानी उक्तियाँ रद्दी के टोकरे में फेक दी गईं। उनके स्थान पर तफरीह और कॉलिज मे गुटबन्दियाँ व अनुशासनहीनता जैसी चीजों ने घर कर लिया। जैसे आज के विज्ञान के युग मे कोई वस्तु असम्भव नही रही और नैपोलियन की डिक्शनरी मे असम्भव कोई शब्द ही

ही था, उसी प्रकार आज के नये विद्यार्थियों के लिये भी कोई वस्तु असम्भव नही है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या विद्यार्थी को देश की वास्तविक राजनीति में भाग लेना चाहिये या नही। कम से कम मैं इस निश्चित मत का हूँ कि एक अच्छे विद्यार्थी को पढने के अतिरिक्त इतना समय ही नही होता कि वह इधर-उधर की खुराफातो मे लगा रहे। उसे तो पढ़ने के लिए प्रतिदिन जितना समय मिलता है वह भी कम मालूम पडता है, इसलिए वह रात को सोने के घन्टो मे कमी करके पढता है। दूसरी बात यह है कि पहले आप योग्य बनिये फिर महत्वाकाक्षा कीजिये। योग्य व्यक्ति के पीछे तो सफलतायें स्वय आती हैं, योग्य आप बनें नहीं और नेता बनने का प्रयत्न करने लगें तो आप कभी सफल नही होंगे। तीसरी बात यह है कि आप अपने अधिकार और कर्तव्य का पालन कीजिये। आपको मालूम होना चाहिये कि आप विद्यार्थी हैं। अत आपके क्या कर्तव्य हैं और क्या-क्या अधिकार हैं। यदि आपने अपने कर्तव्य में कमी की तो आप असफल हुए और यदि आपने वह काम किया जो आपके अधिकार से बाहर है तो आप दूसरो की दृष्टि से गिरे। आन्दोलन, सत्याग्रह, हड़ताल और तोडफोड, मैं समझता हूँ कि न तो यह विद्यार्थी का कर्तव्य ही है और न उसका अधिकार ही है। चौथे जब विद्यार्थी राजनीति मे भाग लेने लगता है तो न वह पूरा समय पढ़ने को ही दे सकता है और न पूरा समय राजनीति म ही लगा सकता है। इसलिए वह बीच मे ही लटका रहता है, अर्थात् न पूर्ण ज्ञान ही प्राप्त कर सका और न पूरा नेता ही बन पाया। इस प्रकार उसका भविष्य अन्धकारमय बन गया और उसके जीवन म अनुशासनहीनता घर कर गई।

हाँ, इतना अवश्य है कि विद्यार्थी को कूप मण्डूक भी नही होना चाहिए। उसे अध्ययन से बचे समय मे अपनी सामान्य ज्ञान वृद्धि के लिए देश विदेश म घटने वाली घटनाओ पर मनन और चिन्तन करना चाहिये। भिन्न भिन्न वादो पर विचार करना, देश की विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो पर विचार विनिमय करके अपना ज्ञानवर्धन करना अच्छे विद्यार्थियो के लक्षण है। विद्यार्थी, क्योंकि समाज का ही एक अंग है, अत समाज की प्रत्येक गतिविधि से वह आँखे बन्द करके रहे यह भी सम्भव नही है, परन्तु यह सम्भव है कि वह उनमे लिप्त न हो, केवल दर्शक मात्र बना रहे क्योंकि विद्यार्थी का लक्ष्य विद्या प्राप्त करना है, न कि नारेबाजी और हुल्लडबाजी करना। हाँ यदि सन् १८६२ की सी स्थिति आ जाए और आन्दोलन के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा न हो, तो फिर लाचारी है।

अत हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे माता पिता अपने परिश्रम से पैदा किए हुए पैसे को हमारे ऊपर इसलिए खर्च करते है कि हम पढ लिखकर कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकें और एक सुयोग्य नागरिक बन सकें जिससे उनका मान बढ़े। जब हम किसी आन्दोलन या हुल्लडबाजी में पडकर पुलिस के डण्डे के नीचे आ जाते है और महीनों खाट पर पडे रहकर बिताते रहते हैं—तो उनको कितना दुख होता है। जब हम पकड कर पुलिस जेल भेज देती है तो उनको क्या-क्या कठिनाइयाँ उठानी पडती हैं, यह हम कल्पना भी नहीं करते। विद्यार्थी जीवन म ही राजनीति के चक्कर म पड़ने वाला विद्यार्थी कभी सफल राजनीतिज्ञ नहीं बन पाता क्योंकि उसमे समुचित एव आवश्यक बौद्धिक क्षमता का अभाव होता है। उसकी वही हालत होती है कि 'धोबी का कुत्ता, न घर का रहा, न घाट का' ... न ही

अनुशासनहीन और उद्दण्ड हो जाते हैं इसलिए उनका जीवन भी सफल नहीं हो पाता।

१४ मूल्य-वृद्धि अथवा महंगाई की समस्या

प्रत्येक स्थिति और अवस्था के दो पक्ष होते हैं, पहला—आन्तरिक और दूसरा—बाह्य। बाह्य स्थिति को तो मनुष्य कृत्रिमता से सुधार भी सकता है, परन्तु आन्तरिक स्थिति के बिगड़ने पर मनुष्य का सर्वनाश ही हो जाता है। बाहर के शत्रुओं की मानव उपेक्षा भी कर सकता है परन्तु आन्तरिक शत्रु को वश में करना बड़ा आवश्यक हो जाता है। यही नियम हमारे देश की स्थिति के साथ भी लागू होता है। हमारे देश की बाह्य स्थिति चाहे कितनी ही सुन्दर क्यों न हो,

मूल्य-वृद्धि अथवा महंगाई की समस्या

१. प्रस्तावना।
२. मूल्य-वृद्धि के कारण।
३. मूल्य-वृद्धि से हानि।
४. दूर करने के उपाय।
५. उपसंहार।

विदेशों में हमारा कितना ही सम्मान क्यों न हो, हमारी विदेश नीति कितनी ही सफल क्यों न हो, हमारी सीमा सुरक्षा कितनी ही दृढ़ क्यो न हो, परन्तु यदि देश की आन्तरिक स्थिति मजबूत नही है, तो निश्चय ही एक न एक दिन देश पतन के गर्त में गिर जायेगा। देश की आन्तरिक स्थिति धन-धान्य और अन्न-वस्त्र पर निर्भर करती है। आज मानव-जीवन के दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुओं की महार्घ्यता (बढ़ी हुई कीमतें) देश के सामने सबसे बड़ी समस्या है। समस्त देश का जीवन अस्त-व्यस्त हुआ जा रहा है। उत्तरोत्तर वस्तुओं के मूल्य बढ़ते जा रहे हैं, अतः जीवन-निर्वाह भी आज के मनुष्य के समक्ष एक समस्या बनी हुई है। रुपये की कोई कीमत ही नहीं रही, भाव कई गुने बढ़ गये हैं, गरीब और मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों के लिये जीवनयापन दूभर हो गया है। यही कारण है कि अभाव और असन्तोषपूर्ण जीवन की अपेक्षा मानव मृत्यु को वरण करना अधिक श्रेयस्कर समझता है।

अर्थशास्त्रियों के अनुसार जब उत्पादन बढ़ता है, तब वस्तु का मूल्य कम हो जाता है। सरकार कहती है कि हमारा उत्पादन बढ़ा है, सरकारी आँकड़े भी यही बताते हैं कि उत्पादन बढ़ रहा है, परन्तु वस्तु के मूल्य आठ गुने और दस गुने हो गये, यह बड़ी आश्चर्यजनक बात लगती है। आज का एक रुपया सन् १९४० के छः पैसे और सन् १९४७ के बीस पैसे के बराबर है। निश्चय ही कपड़ा, सीमेंट, लोहा, इस्पात, कागज आदि अन्य वस्तुओं का उत्पादन कई गुना बढ़ा है, हमारी सभी पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश की उत्पादन-क्षमता हर क्षेत्र में बढ़ी है, फिर भी यदि आप इनमें से कोई वस्तु खरीदने जायें तो पहले तो मिलेगी ही नहीं और यदि मिल भी गई तो उन भावों पर, जिन पर आपको खरीदने के लिये कई बार सोचना पड़ेगा। अर्थशास्त्र के विद्वानों के अनुसार देश में इस समय खाद्यान्नों में ६०% की वृद्धि हुई तथा भूमि का मूल्य भी बहुत बढ़ा है। जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं के मूल्य में भी कल्पनातीत वृद्धि हुई है, रुपया अवश्य ऐसा है, जिसके मूल्य में वृद्धि के स्थान पर ह्रास हुआ है। माचिस पहले एक पैसे की आती थी, अब २० पैसे की और कहीं-कहीं तीर्थ स्थानों में २५ पैसे की भी कठिनाई से मिलती है। जो साबुन

पहिले बारह पैसे का आता था अब ढाई व तीन रुपये का आता है, जो जूता तीन चार रुपये का आता था अब वह ७० और १०० रुपये का आता है। जो कपड़ा पचास और साठ पैसे मीटर आता था वही १५ और २० रुपये मीटर आता है, घी जो १ रु० सेर आता था आज १० रुपये किलो है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी वस्तु ऐसी नहीं, जो सस्ते मूल्य पर बाजार में मिल सके।

प्रश्न उठता है कि इस अव्यवस्था का क्या कारण है? क्या देश में इस पर नियन्त्रण करने वाला कोई नहीं? बिना नाविक की सी नाव, जिधर पानी के थपेड़े बहाये लिए जा रहे हैं उधर ही वह सामाजिक अव्यवस्था की नौका बही चली जा रही है। आजकल समाज की कुछ ऐसी हालत है कि जिसके मन में जो आ रहा है, वही कर रहा है। अपने को पूर्ण स्वतन्त्र समझता है। किन्तु बात ऐसी नहीं है, दीर्घकालीन परतन्त्रता के बाद, हमें अपना देश बहुत ही जर्जर हालत में मिला है, हमें नये सिरे से सारी व्यवस्था करनी पड़ रही है, नई-नई योजनायें बनाकर अपने देश को सँभालने में समय लगता ही है, कुछ लोग इस स्थिति का लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं, जिसके कारण सबको हानि उठानी पड़ती है। सरकार इस विषय में सतत प्रयास कर रही है, काले धन की भी इस देश में कमी नहीं है, उस धन से, चोर बाजारी से, लोग मनमानी मात्रा में वस्तु खरीद लेते हैं और फिर मनमाने भावों पर बेचते हैं, अतः निहित स्वार्थ वाले जमाखोरों, मुनाफाखोरों और चोरबाजारी करने वालों के एक विशेष वर्ग ने समाज को भ्रष्टाचार का अड्डा बना रक्खा है। उन्होंने सामाजिक जीवन को तो दूभर बना ही दिया, राष्ट्रीय और जातीय जीवन को भी दूषित कर दिया है। समूचे देश के इस नैतिक पतन ने ही आज मूल्य-वृद्धि की भयानक समस्या खड़ी कर दी है। मुनाफे के आगे, आज न परिचय रहा, न सम्बन्ध रहा और न रिश्तेदारी ही रही। यह तो रहा मूल्य-वृद्धि का मुख्य कारण, इसके अतिरिक्त अन्य कई कारण और भी हैं, जो उचित हैं—राष्ट्र की आय का साधन विभिन्न राष्ट्रीय उद्योग एवं व्यापार ही होते हैं। देश की उन्नति के लिये विगत सभी पंचवर्षीय योजनाओं में बहुत-सा धन लगा, कुछ हमने विदेशों से लिया और कुछ देश में से ही एकत्र किया, छोटे सरकारी कर्मचारियों के वेतन बढ़े, पड़ोसी शत्रुओं से देश के सीमान्त की रक्षा के लिए सुरक्षा पर अधिक व्यय करना पड़ा, दिसम्बर १९७१ में पाकिस्तान से युद्ध करना पड़ा, बंगला देश के एक करोड़ शरणार्थियों पर लगभग एक वर्ष तक करोड़ों रुपयों का व्यय करना पड़ा, उसके बाद एक लाख युद्ध-बन्दियों पर १९७३ के अन्त तक पूरे दो वर्ष करोड़ों रुपयों का व्यय और इन सबके ऊपर देश के विभिन्न भागों में सूखा और बाढ़ों का प्राकृतिक प्रकोप तथा देश में खाद्यान्नों की कमी, आदि बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन पर हमने अपनी शक्ति से अधिक धन लगाया और लगा रहे हैं। सरकार के पास यह धन करों के रूप में जनता से ही आता है। इन सबके परिणामस्वरूप मूल्य भी बढ़े।

आज जनता में असन्तोष बहुत बढ़ गया है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक मूल्य-वृद्धि से लोग परेशान हैं। सरकार के विरोधी दल इस स्थिति से लाभ उठा रहे हैं। कहीं वे मजदूरों को भड़काकर हड़ताल कराते हैं तो कहीं मध्यम वर्ग को भड़काकर जुलूस और जलसे करते हैं, जो बात जितनी नहीं है वह उससे अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कही जाती है, अधिकांश भोली जनता को उन बातों का विश्वास होता है। स्व० पं० नेहरू और लालबहादुर शास्त्री के अभाव में जनता में कुछ क्षणों के

लिए जो निराशा फैला दी थी, उसे श्रीमती गांधी के प्रभाव एवं प्रतापपूर्ण नेतृत्व ने समाप्त कर दिया है। १६८० के सप्तम महानिर्वाचन में जनता ने श्रीमती गांधी का आशातीत समर्थन किया। आज देश के पास दृढ़ और स्थायी केन्द्रीय सरकार है। मूल्य-वृद्धि का श्रीमती गांधी ने बड़ी शक्ति और साहस के साथ मुकाबला किया तथा काले धन व चोर बाजारी करने वालों के लिये भी कठोर पग उठाये।

वर्तमान मूल्य-वृद्धि की समस्या को रोकने का एकमात्र उपाय यही है कि जनता का नैतिक उत्थान किया जाये। उसको ऐसी नैतिक शिक्षा दी जाये, जिसका उसके हृदय पर प्रभाव हो। बिना हृदय परिवर्तन के वह समस्या सुलझने की नहीं। अपना-अपना स्वार्थ-साधन ही आज प्रायः प्रत्येक भारतीय का प्रमुख जीवन-लक्ष्य बना हुआ है। उसे न राष्ट्रीय भावना का ध्यान है और न देशहित का। इसके लिये यह परमावश्यक हो जाता है कि उसे उच्च कोटि की नैतिक शिक्षा दी जाए, जिससे उसका कलुषित हृदय पवित्र हो और व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा वह राष्ट्र-हित और देश-हित को सर्वोच्च समझे। दूसरा उपाय है, शासक दल का कठोर नियन्त्रण। जो भी भ्रष्टाचार करे, मिलावट करे या ज्यादा भाव में सामान बेचे उसे कठोर दण्ड दिया जाये। जिस अधिकारी का आचरण भ्रष्ट पाया जाये, उसे नौकरी से हटा दिया जाये या फिर कठोर कारावास दे दिया जाये, इस प्रकार घूस-खोरी समाप्त हो सकती है। आप जानते हैं कि बिना टेढ़ी उँगली किये तो घी भी नहीं निकलता, फिर यह तो ८० करोड़ जनता का शासन रहा। मूल्य-वृद्धि के सम्बन्ध में जनसंख्या की वृद्धि या जीवन-स्तर आदि कारण भी महत्वपूर्ण हैं।

वर्तमान मूल्य-वृद्धि पर हर स्थिति में नियन्त्रण लगाना चाहिये। इसके लिए सरकार भी चिन्तित है और बड़ी तत्परता से इसके रोकने के उपाय सोचे जा रहे हैं और उन्हें कार्य रूप में परिणत करने का भी प्रयत्न किया जा रहा है। पिछले वर्षों में दिल्ली और बड़े-बड़े शहरों में कितने लाख मन छिपा हुआ अन्न गोदामों में बन्द पकड़ा गया, जबकि देश में अन्न के लिये त्राहि-त्राहि मची हुई थी। हमें ऐसी प्रवृत्तियों को रोकने में सरकार की भी मदद करनी है और स्वयं को भी आचरण शुद्ध करना चाहिये। वास्तविकता यह है कि यदि सरकार देश की स्थिति में सुधार और स्थायित्व लाना चाहती है, तो उसे अपनी नीतियों में कठोरता और स्थिरता लानी होगी तभी वर्तमान मूल्य-वृद्धि पर विजय पाना सम्भव है अन्यथा नहीं। १६८८ में जब केन्द्रीय सरकार में श्री नारायणदत्त तिवारी वित्त मन्त्री थे तब उन्होंने मूल्य-वृद्धि रोकने के ठोस प्रयास किये थे। श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार नवम्बर १६८६ में पदारूढ़ हुई। बेतहाशा मूल्य वृद्धि रोकने का सरकार ने संकल्प लिया। सन्तोष है कि ६० के मध्य तक मूल्य वृद्धि जहाँ की तहाँ रुकी हुई, बढ़ी नहीं है। परन्तु जिस सीमा तक यह मूल्य वृद्धि पहुँच चुकी थी सामान्य जनता के लिये वह भी सीमा से अधिक थी।

इस दिशा में सरकारी प्रयत्नों को और गति देने की आवश्यकता है, जिससे शीघ्र ही जनता को सुख सुविधायें मिल सकें। यदि देश में अन्न-उत्पादन इसी गति से होता रहा और जन-कल्याण के लिये शासन का अंकुश यथावत् बना रहा और जनता में जागरूकता रही तो मूल्य-वृद्धि स्वयं ही रुक जायेगी। ●

९५ दल परिवर्तन

औरंगजेब आदि मुसलमान तानाशाहों के समय में धर्म-परिवर्तन की घटनायें हुई थीं, ईश्वरदत्त से लोग अल्लाहबख्श बना दिये जाते थे। परन्तु यह परिवर्तन वही स्वीकार करते जो निम्न स्तर के होते या हीन मनोवृत्ति के तथा भीरू एवं कायर, जिनका अज्ञान के अन्धकार में जन्म हुआ और अज्ञात में ही मर जाना ध्रुव

था। अन्यथा लोग हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे को माला की भाँति गले में पहनते या चमचमाती हुई तलवार की धार को गले में आलिंगन करते और मुस्कराते हुए 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह' का पाठ करते-करते सीधे स्वर्ग सिधार जाते। गुरु गोविन्द सिंह के छोटे-छोटे बच्चे दीवार में चिन दिये गये, पर धर्म-परिवर्तन के नाम पर अन्तिम क्षणों तक 'न' ही 'न' करते रहे। यह था भारतीय आदर्श।

दल-परिवर्तन

१ प्रस्तावना।
२ परिवर्तन के कारण।
३ परिवर्तन से लाभ।
४ परिवर्तन के कुप्रभाव।
५ उपसंहार।

भारत में अंग्रेजों के आधिपत्य के समय ईसाई मिशनरियों ने भी वही काम किया जो अपने काल में मुसलमानों ने किया था। अन्तर केवल इतना था कि मुसलमान तलवार के जोर पर धर्म-परिवर्तन करते थे, इन्होंने धन और सुख-सुविधाओं का प्रलोभन देकर वह कार्य किया। इसमें भी वे ही निम्न कोटि के लोग थे जिनका हिन्दू समाज में कुछ संकीर्णताओं के कारण कोई महत्त्व नहीं था और पैसे के लोभ में अपने धर्म को, अपने शरीर को, अपने बच्चों को, अपनी स्त्री को और अपने दीन ईमान को बेच सकते थे, जिनके पास न बुद्धि थी और न आत्मा। वे ही बैजू से बैंजामिन और हीरा से हैरीसन हुए। हिन्दू समाज के लिये वे कलंकित होकर सदैव-सदैव के लिये समाप्त हो गये। इन ईसाईयों का बदला आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन चला कर लिया।

इन कलुषित एवं जघन्य परिवर्तन की शृंखला में आधुनिक युग में एक नवीन मनोवैज्ञानिक कड़ी भी जुड़ी और वह थी हृदयपरिवर्तन की। विनोबा भावे का 'दस्यु-हृदय-परिवर्तन' प्रारम्भ हुआ। कुछ चला भी, परन्तु बिना दण्ड के दस्यु-मुक्ति में जब वैधानिक अड़चनें आकर खड़ी हुईं तो वह भी समाप्त हो गया। परन्तु यह एक पवित्र और पुण्य कार्य था, दुराचार से सदाचार की ओर लाने का एक सराहनीय प्रयास था। इसमें न किसी के धर्म, जाति, सम्प्रदाय और सिद्धान्त बदले जा रहे थे और न माँ-बाप का नाम, और न किसी की संस्कृति और सभ्यता से किसी को छीना जा रहा था। यह तो विचार परिवर्तन मात्र था, बुराई से अच्छाई की ओर ले जाने का एक महत्वपूर्ण पद-याम था।

सन् १९६७ के चतुर्थ सामान्य निर्वाचन के पश्चात् भारत के समक्ष दल-परिवर्तन का एक नवीन प्रचलन प्रारम्भ हुआ। जहाँ विदेशों में बड़े-बड़े डॉक्टर दिल-परिवर्तन में लगे हुए हैं वहाँ भारत में दल-परिवर्तन बड़ी तेजी से चल रहा है। जिस प्रकार संसार में जन्म लेकर मनुष्य किसी विशेष देशीय संस्कृति, किसी विशेष धर्म और कुछ विशेष परम्पराओं में आबद्ध रहता है और उस जाति और उस देशीय संस्कृति के प्रति उसके कुछ दायित्व होते हैं जिन्हें वह मृत्यु पर्यन्त निभा कर अपने कर्त्तव्य का पालन करता है उसी प्रकार दल विशेष भी एक जाति, एक धर्म और एक संस्कृति के समान होता है। उसकी परम्पराओं, नियमों, नीतियों और सिद्धान्तों से हम बँधे होते हैं जिनका कठोरता से अनुपालन और अनुसरण हमारा कर्त्तव्य होता है। दल परिवर्तन भी उसी प्रकार जघन्य और नैतिक दृष्टि से हेय है जितना हिन्दू से मुसलमान हो जाना या सिक्ख से ईसाई हो जाना। पुराने लोगों का कहना है कि—अपने बाप को बाप कहो, दूसरे के बाप को अपना बाप बनाने में क्या लाभ।

दल-परिवर्तन की इस दूषित मनोवृत्ति के पीछे, जिसके कारण आये दिन विभिन्न प्रान्तों में सरकारें बन रही हैं और बिगड़ रही हैं, अविश्वास के प्रस्ताव लाये जा रहे हैं और पास हो रहे हैं, सरकार के आगे अनिश्चितता और अस्थिरता छायी रहती है, कई कारण कार्य कर रहे हैं। पहिला कारण तो यह है कि आज के युग में व्यक्तिगत स्वार्थान्धता इतनी आ गयी है जिसके कारण न उसे देश दिखाई पड़ता है और न अपना दल। दलीय प्रतिष्ठा से पहले उसे अपनी प्रतिष्ठा और अपनी जेब गरम चाहिए। स्वार्थ सिद्धि में वह इतना पागल हो जाता है कि उसे ध्यान ही नहीं रहता कि मैंने जनता को क्या वचन दिये थे और अब उसे कैसे मुँह दिखाऊँगा? दूसरा कारण पद लोलुपता है, जब सदस्य को यह मालूम हो जाता है कि इस सरकार में न मुझे कोई पद मिला और न महत्त्व, तब वह विरोधी पार्टियों से साँठ-गाँठ जोड़ लेता है और पहली सरकार के पतन में सहायक सिद्ध होकर झट से मंत्री या सचिव का पद ग्रहण कर लेता है। तीसरा कारण पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष है, मान लिया कि एक सदस्य किसी विशेष पार्टी से खड़ा हुआ और जीत भी गया, परन्तु उस पार्टी के प्रमुख स्तम्भों से उसका किसी विशेष कारणवश मनोमालिन्य है या ईर्ष्या या द्वेष है वह निश्चित ही उन्हें नीचा दिखाने के लिये जीतने के बाद पार्टी छोड़ देगा और दूसरों से जा मिलेगा। चौथा कारण व्यक्ति सम्मान है, यदि सम्मान के योग्य को उचित सम्मान प्राप्त नही होता तो वह दूसरों के द्वार खट-खटाने लगता है और कुछ दिनों वह उन्हीं का हो जाता है। पाँचवाँ कारण व्यक्ति मे निश्चित निर्णायिका शक्ति का अभाव है। भगवान ने जब बुद्धि दी है तो पहिले ही सोच समझकर पार्टी चयन करना चाहिये जिससे बाद में छोड़ने पर, जनता मे अपयश न उठाना पड़े और लोक हँसाई से व्यक्ति बच सके। छठा कारण व्यक्ति की मानसिक अस्थिरता है। ऐसे व्यक्ति के प्रत्येक कार्य में सदैव अस्थिरता बनी रहती है। न उसकी वाणी का कोई भरोसा और न किसी कार्य का। ऐसा व्यक्ति आज इस पार्टी में है तो कल दूसरे मंच पर जा बैठेगा और परसों तीसरे मंच पर। देखने वाले भी आश्चर्य में पड़ जायेंगे कि यह भी अजीब आदमी है, किसी का सगा नही। सातवाँ कारण है-अस्थिर नेतृत्व की भावना। ऐसे व्यक्ति केवल ५ वर्ष के लिये ही नेता बनते हैं, न आगे कभी उन्हें चुनाव में खड़ा होना है और न किसी से वोट माँगना है। "आगे अपने घर का धन्धा देखेंगे, वैसे तजुर्बा सब चीजों का करना चाहिये, इसीलिये एक बार इलेक्शन भी लड़कर देख लिया और जीत भी गये। पाँच साल लखनऊ में उन कुर्सियों पर भी बैठ आये जिनको लोग देखने को तरसते हैं।" ऐसे नेताओं को यह कहते सुना गया है। आठवाँ कारण—किसी दूसरी पार्टी के शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण नेता का प्रभाव होता है, जिसके आकर्षक व्यक्तित्व के आगे लोग 'न' नही कर सकते, क्योंकि सदैव उसे बड़ा और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है, अतः चुपचाप हम बदली कर लेते हैं। नवाँ प्रमुख कारण है—ऐसे व्यक्तियों में आदर्श और चरित्र का नितान्त अभाव होना। ऐसा जाति बदलने वाले लोगों का न कोई आदर्श होता है न चरित्र। गंगा गये तो गंगादास और जमुना गए तो जमुनादास।

दल परिवर्तन से दो प्रकार का लाभ होता है, व्यक्ति को और जनता को। व्यक्ति की स्वार्थ-सिद्धि हो जाती है, वह थोड़े से ही समय में अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति कर लेता है। स्वार्थी व्यक्ति का निम्नलिखित मूल-मन्त्र होता है—

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः ।
स्वकार्यं साधयेत् धीमान् कार्यध्वंसो हि मूर्खता ॥

अर्थात् बुद्धिमान व्यक्ति को अपमान सामने रखकर और मान को पीछे रखते हुये अपना काम सिद्ध करना चाहिये, क्योंकि काम बिगड़ जाना सबसे बड़ी मूर्खता है। जनता को यह लाभ होता है कि वह उस व्यक्ति के फन्दे में दुबारा फिर नहीं आ सकती। जब एक बार उसकी पोल खुल गयी तो फिर वह कैसा ही आदर्शवान बनकर आवे, जनता उसका स्वागत नहीं कर सकती। सन् १९६८ में हरियाणा के एक सज्जन ने भी तीन चार बार दल बदल की, परिणाम यह हुआ कि मई १९६८ में जब हरियाणा में मध्यावधि चुनाव हुए तो उनकी करारी हार हुई।

दल-परिवर्तन के बड़े दुष्प्रभाव होते हैं जो व्यक्ति और राष्ट्र दोनों को सहने पड़ते हैं। दल-परिवर्तन से दलीय सरकार का बहुमत समाप्त हो जाता है और इस प्रकार सरकार का पतन हो जाता है। पतन के बाद या तो दूसरा दल जिसे बहुमत प्राप्त है अपनी सरकार बनाये, या फिर राष्ट्रपति शासन लागू हो। राष्ट्रपति शासन की अवधि भी अधिक से अधिक छः महीने तक रह सकती है। इसके बाद मध्यावधि चुनाव होना आवश्यक होता है। मध्यावधि चुनावों में सरकार को लाखों रुपये खर्च करने पड़ते हैं, तब कहीं दूसरी सरकार स्थापित हो पाती है और यदि थोड़े दिन बाद फिर दल-बदली हो गई तो फिर चुनाव। इस प्रकार राष्ट्र की अपार धन शक्ति का अपव्यय होता है और समय की बर्बादी होती है। इसके साथ-साथ राज्य में अस्थिरता का साम्राज्य छाया रहता है, न कोई प्रशासनिक कार्य हो पाते हैं और न कोई निर्णय। ऐसी अस्थिरता की स्थिति में न जनता के हित की कोई योजना क्रियान्वित की जा सकती है और न राज्य में कोई सुधार ही लाया जा सकता है। सरकार के दलों को आपस में लड़ने से ही फुर्सत नहीं मिलती तो सुधार कौन करे। दूसरे अधिकारी भी काम करना बन्द कर देते हैं, ऊपर फाइल भेजें तो किसके पास? जब कोई मन्त्री जी ही नहीं, मन्त्री जी इस्तीफा दिए घर बैठे हैं। किसी भी अधिकारी को किसी का कुछ भय नहीं रहता। इस प्रकार राज्य में एक अव्यवस्था भी छा जाती है।

व्यक्ति, जो दल परिवर्तन करता है, उसके विश्वासघात के कारण जनता में एक प्रकार की नीरसता और उदासी छा जाती है, क्योंकि उसने किसी दल विशेष की नीतियों के आधार पर ही उस व्यक्ति को चुना था। दल-परिवर्तन से नीति परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। उधर उस व्यक्ति की भी एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक मृत्यु हो जाती है वह जनता के सामने आ नहीं सकता और न उसके दुख दर्दों को सुन ही सकता है। एक व्यक्ति के नैतिक पतन के कारण दूसरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार यह दूषित वातावरण बढ़ जाता है। उस व्यक्ति की जो दल परिवर्तित करता है, जगह-जगह चर्चा होती है और वह अपयश का पात्र बन जाता है—

"सम्भावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते ।"

अर्थात् प्रतिष्ठित मनुष्य की निन्दा या अपकीर्ति होना मृत्यु से भी बढ़कर होता है।

अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक दल अपनी-अपनी एक चरित्र-संहिता तैयार करे, जिसमें स्पष्ट उल्लेख हो कि यदि मैं दल परिवर्तन करूँगा तो पहले जिस दल

के प्रतिनिधि के रूप में जनता ने मुझे चुना है उस दल की सदस्यता त्यागने के साथ-साथ विधान-सभा की सदस्यता से भी त्याग-पत्र दे दूँगा, उसके पश्चात् जिस दल की सदस्यता स्वीकार करूँगा उस दल की ओर से दुबारा चुनाव लड़ूँगा। इस प्रकार के अनुबन्धों को वैधानिक समर्थन भी प्राप्त होना चाहिए, अन्यथा न इनका कुछ महत्व होगा और न कोई इन्हें मानेगा ही, क्योंकि यह तो भारतीय परम्परा है कि बिना दण्ड भय के अपना नैतिक कर्त्तव्य समझते हुए कोई भी कुछ काम करने को तैयार नहीं होता, "भय बिन होई न प्रीति" या फिर केन्द्रीय सरकार ही कोई ऐसा अधिनियम बनाये जिससे दल-परिवर्तन इतना सरल न रह जाए। देश में १९७१ से १९७३ की अवधि में दल-परिवर्तन की घटनायें हुई और दल-परिवर्तन के कारण ही १९७९ में केन्द्र में जनता पार्टी सरकार का पतन हुआ। यद्यपि १६ मई, १९७३ ई० को इन्दिरा सरकार के गृहमन्त्री श्री उमाशंकर दीक्षित ने दल-बदल पर रोक लगाने के लिये एक संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया था, लेकिन आपसी मतभेदो के कारण यह विधेयक पारित न हो सका। भारत के अनेक प्रांतो मे दल-बदल की स्थिति के कारण सरकारें समुचित रूप से कार्य नहीं कर पा रही थी। इस स्थिति को देखते हुए भारत सरकार ने इस जटिल समस्या को समाप्त करने के लिए १९८५ मे लोकसभा मे दल-परिवर्तन सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत किया जो सामान्य संशोधनों के पश्चात् बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार चार दशको से चली आ रही दल बदल राजनीति कानूनन समाप्त कर दी गई।

अपनी-अपनी पार्टी के सांसदों को एकता के सूत्र में बांध रखने में दल परिवर्तन विरोधी कानून ने जो भूमिका निभाई है उससे पार्टियों की श्रृंखला की कड़ियाँ टूटने नही पाई हैं। यह कानून प्रधानमन्त्री राजीव गांधी के लिये भी अमोघ अस्त्र सिद्ध हुआ है।

जून ८८ के संसदीय एवं विधान सभा के उपचुनावो के परिणामो को देखते हुए तथा विश्वनाथ प्रतापसिंह द्वारा नवगठित जनमोर्चे की अराजनैतिक स्थिति को देखते हुए सरकार दल-बदल विरोधी कानून को और कड़ा तथा प्रभावी बनाने के लिए उसमें सुधार पर विचार कर रही है। सरकार के उच्चस्तरीय विचार विमर्श के बाद कानून मंत्रालय को यह निर्देश दिया गया है कि वह कानून में मौजूद कमियो को पूरा करने के लिए सुधार विधेयक तैयार करे। आशा है जौलाई ८८ के तीसरे सप्ताह में शुरू होने वाले संसद के मानसून अधिवेशन मे संसदीय कार्य मंत्रालय यह विधेयक लाने का प्रयत्न करेगी। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि इस विधेयक मे सभी पक्षो एवं पार्टियो के सदस्यो में अनुशासन दृढ़ से दृढ़तर होगा। ●

१६ एशियाड ८२

४ मार्च १९५१ को प्रथम एशियाई खेलो के आयोजन के अवसर पर पण्डित नेहरू ने अपने अमर सन्देश मे कहा था—

"खिलाड़ियों के इस अन्तर्राष्ट्रीय मिलन का एक और भी महत्वपूर्ण पहलू है। इनमे अनेक देशो के युवा लोग शामिल होते हैं और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और सहयोग को बढावा मिलता है। इन दिनो जबकि संघर्ष के काले बादल सभी ओर मडरा रहे है हमे राष्ट्रो के बीच भाई-चारे और सहयोग की भावना को

बढ़ाने के लिए प्रत्येक अवसर का फायदा उठाना चाहिए। मैं एशियाई खेलों का स्वागत करता हूँ और भारत तथा एशिया के अन्य देशों से आये उन सभी खिलाड़ियों का अभिवादन करता हूँ जो इन मैत्रीपूर्ण प्रतियोगिताओं में भाग ले रहे हैं। हमें याद रखना चाहिए कि इन खेलों और प्रतियोगिताओं का सञ्चालन अत्यन्त मैत्रीपूर्ण ढंग से हो। प्रत्येक खिलाड़ी को अपनी पूरी कोशिश करनी चाहिए चाहे वह जीते चाहे हारे, उसे द्वेष मुक्त होकर खेल, खेल की भावना से ही खेलना चाहिए।"

एशियाड ८२

१ प्रस्तावना।
२ एशियाड का इतिहास।
३ आयोजित विभिन्न खेल एवं उनके महत्वपूर्ण स्थान।
४ एशियाई खेल ग्राम।
५ *नवम् एशियाई खेलों का उद्घाटन।*
६ एशियाड खेलों की यात्रा—दिल्ली से दिल्ली तक।
७ एशियाड १९८२ के पदक विजेता देश।
८ एशियाड का समापन समारोह।
९ उपसंहार।

'हम इन एशियाई खेलों में, नियमों का पालन करते हुए खिलाड़ी-भावना का परिचय देते हुए, अपने देश और क्रीडा जगत का सम्मान करते हुए, ईमानदारी से भाग लेंगे—यह थी 'वह शपथ' जो आज से ३१ वर्ष पहले, ४ मार्च १९५१ को नई दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में जुड़े ११ देशों के ४८९ खिलाड़ियों ने ली थी और इस तरह द्वितीय विश्वयुद्ध के त्रासदायक दौर के बाद 'सम्बन्धों के नवीनीकरण' के रूप में एशियाई खेलों ने जन्म लिया था।

एशियाड का जन्म १९१३ में हुआ था

इतिहास का कुछ लोग महत्त्व घटनाओं और तारीखों का उबाऊ विषय मान लेने की भूल कर बैठते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि उसका जन्म भावनाओं और विचारों से होता है, एशियाई खेलों के मामले में भी कुछ ऐसा ही है, यह सही है कि १९५१ में पहले एशियाई खेल भारत में ही हुए थे और उससे लगभग दो वर्ष पहले—यानी १३ फरवरी १९४९ को एशियन गेम्स फेडरेशन का जन्म हुआ था। लेकिन इन खेलों का जन्म या यूँ कहा जाये कि इस भावना का जन्म फिलीप्पीन्स के प्रयासों से १९१३ में ही हो चुका था, जब फिलीप्पीन्स, जापान व चीन ने मनीला में 'ओरियण्टल ओलिम्पिक गेम्स' आयोजित किये थे।

फिर १९१५ में चीन के शंघाई नगर में ये खेल 'फार ईस्टर्न गेम्स' के नाम से हुए, ये खेल १९२७ तक हर दो वर्ष के अन्तराल पर होते रहे तथा जापान, चीन, स्याम, मलाया व फिलीप्पीन्स इसमें भाग लेते रहे, १९१९ के आसपास अन्तर्राष्ट्रीय ओलिम्पिक संघ ने इन्हें मान्यता भी प्रदान कर दी। इसी समय इन्हें चार-चार वर्ष के अन्तराल पर आयोजित कराने का निर्णय किया गया, १९३० में पहली बार भारत ने भी इसमें भाग लिया लेकिन यह सिलसिला ज्यादा न चल सका और १९३४ में मंचूकुओ को सम्बद्धता देने के प्रश्न पर विवाद के कारण कहानी यहीं खत्म हो गयी।

लेकिन इसी समय २ और ३ मार्च १९३४ को दिल्ली में भारतीय ओलिम्पिक संघ के सचिव प्रो० गुरुदत्त सोंधी तथा पटियाला के तत्कालीन युवराज यादवेन्द्रसिंह के प्रयासों से प्रथम पश्चिम एशियाई खेल हुए, जिसमें अफगानिस्तान, श्रीलंका, भारत व फिलस्तीन ने भाग लिया। ये खेल द्वितीय विश्वयुद्ध की आशंकाओं की बलि चढ़

वर्ष और १९३८ में इन्हें दोबारा आयोजित नहीं किया जा सका। फिर मार्च १९४७ में जब नई दिल्ली में 'एशियन रिलेशन्स कांफ्रेंस' हुई, तो प्रो० सोंधी ने एशियाई खेलों का आयोजन कराने के विचार से, तत्कालीन भारतीय प्रधानमन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू को अवगत कराया। किन्तु जुलाई, १९४७ में प्रो० सोंधी ने अपनी योजना में कुछ सुधार किया तथा फरवरी १९४९ में नयी दिल्ली में एशियन ट्रैक एण्ड फील्ड चैम्पियनशिप के लिए एशियाई देशों को निमन्त्रित किया।

किन्तु कतिपय कारणों से १९४९ की 'एशियन ट्रैक एण्ड फील्ड इन्विटेशन मीट' रद्द कर दी गयी और नई दिल्ली में १२ और १३ फरवरी १९४९ को केवल विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों की बैठक हुई। इस बैठक में प्रस्तावित फैडरेशन का संविधान पारित किया गया तथा इस प्रकार 'एशियन गेम्स फैडरेशन' का जन्म हुआ, पहले एशियाई खेल १९५० में नयी दिल्ली में होने थे लेकिन निर्माणकार्य पूरा न हो पाने, वित्तीय संकटों व भाग लेने वाले कुछ देशों के बीच मतभेद के कारण ये खेल मार्च १९५१ में ही आयोजित किये जा सके।

फिलीप्पीन्स, जापान, इण्डोनेशिया, बैंकॉक और तेहरान की यात्रा करते हुए ये एशियाई खेल श्रीमती इन्दिरा गांधी की प्रेरणा और अथक प्रयासों के फलस्वरूप १९८२ में एक बार फिर भारत आ पहुँचे। इनके स्वागत और संयोजन के लिए भारत के सपूत पिछले दो वर्षों से दिन और रात काम कर रहे थे। ९ सितम्बर १९८० को एशियाई खेलों के लिए विशेष संचालन समिति का गठन किया गया था जिसमें २२७ सदस्य थे। इस समिति ने २७ विशेष समितियाँ बनाई जिनमें से प्रत्येक को 'एशियाड ८२' के संचालन का कोई एक विशिष्ट पहलू सौंपा गया था।

भारत में आयोजित इन नवें एशियाई खेलों में ३३ देशों ने भाग लिया जोकि विगत खेलों की अपेक्षा सबसे अधिक संख्या है। इन एशियाई खेल प्रतियोगिताओं में २१ खेल खेले गये जबकि १९५१ में सिर्फ ६ खेल खेले गये थे। उसके बाद १९५४ में ८ खेल खेले गये, १९५८ में १३, १९६२ में १५, १९६६ में १४, १९७० में १३, १९७४ में १६ और १९७८ में १९ खेल खेले गये। इन खेलों के क्रम में दो प्रदर्शन खेलों का भी आयोजन किया गया जैसा कि प्रथम एशियाड के समय में भी किया गया था। ये खेल हैं—मलेशिया का राष्ट्रीय खेल—'सेपक तकरा' और भारत का कबड्डी। नवीं एशियाई खेल प्रतियोगिता में शामिल २१ खेलों में से १९ खेल भारत की राजधानी दिल्ली में हुए, शेष दो खेल—पाल नौकायन और नौकायन क्रमशः बम्बई अरब सागर और जयपुर स्थित रामगढ़ झील में हुए। १९ खेलों के लिए १७ स्टेडियमों को लिया गया था जिनमें १२ पहले ही बने हुए थे, ५ स्टेडियमों का निर्माण विशेष रूप से नवें एशियाई खेलों के लिए ही किया गया था।

जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम मुख्य रूप से नवें एशियाई खेलों के लिए बनवाया गया था जिसके निर्माण पर लगभग १९ करोड़ रुपये व्यय हुए हैं। यह स्टेडियम ३६ हेक्टेयर भूमि पर बना है, इसमें ७५ हजार दर्शक बैठ सकते हैं। स्टेडियम के दो तल्ले हैं। निचले तल्ले में १८००० दर्शक बैठ सकते हैं और ऊपर तल्ले में ५७००० दर्शक। इस स्टेडियम में ५६ द्वार हैं। इस स्टेडियम में ही मुख्य इलेक्ट्रॉनिक स्कोर बोर्ड लगा है जिस पर अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में परिणाम आते रहे। इस स्कोर बोर्ड का आकार २० मीटर × ३ मीटर है। इसके अतिरिक्त अन्य सहायक स्कोर बोर्ड भी हैं जिनका आकार १३ मीटर × ६ मीटर है।

नेहरू स्टेडियम के अतिरिक्त एशियाड ८२ का एक खास आकर्षण इन्डोर स्टेडियम था। इन्द्रप्रस्थ एस्टेट पर बनाये गये इस स्टेडियम मे २५००० दर्शकों के बैठने की व्यवस्था है। यह एशिया का सबसे बडा तथा विश्व मे चौथे नम्बर का इन्डोर स्टेडियम है। यह स्टेडियम देखने मे एक कटोरे जैसा लगता है। इस स्टेडियम के निर्माण मे १५ ३५ करोड रुपये का आनुमानिक व्यय हुआ है। बैडमिंटन, जिमनास्टिक और वालीबाल प्रतियोगितायें इसी स्टेडियम में सम्पन्न हुई।

इन्डोर स्टेडियम के उत्तर में साईकिल वेलोड्रोम बनाया गया है। इसके ट्रैक इस तरह के बनाये गये हैं कि हर प्रतियोगी को प्रतियोगिता के दौरान एक जैसे वायुदाब का सामना करना पडे। दर्शक दीर्घा, ट्रैक से ५ मीटर दूर है इसमें २००० दर्शकों के बैठने की व्यवस्था है।

तालकटोरा स्थित तरणताल नवें एशियाई खेलों के लिये विशेष रूप से बनाया गया है, यह दर्शकों के लिये आकर्षण का केन्द्र बना रहा। यह ताल ५० मीटर लम्बा है और २६ मीटर चौडा है और सभी जगह इसकी गहराई २ मीटर है। ताल कटोरा इन्डोर स्टेडियम में ही बास्केट बाल प्रतियोगितायें आयोजित की गई। कुश्ती और फुटबाल की प्रतियोगितायें अम्बेडकर स्टेडियम में सम्पन्न हुई। लॉन टेनिस प्रतियोगिता हौज खास स्थित टेनिस स्टेडियम मे तथा हाकी प्रतियोगितायें नेशनल स्टेडियम मे हुई। गोल्फ प्रतियोगिता दिल्ली के गोल्फ क्लब मे, हैंड बाल तथा तीरन्दाजी दिल्ली विश्वविद्यालय ग्राउंड पर तथा घुडसवारी प्रतियोगिता हरबक्श स्टेडियम मे सम्पन्न हुई। नौकायन जयपुर मे, बॉक्सिंग और टेनिस हाल ऑफ स्पोर्टस म सम्पन्न हुई। शूटिंग प्रतियोगिता तुगलकाबाद मे और वेट लिफ्टिंग प्रतियोगिता खेल गाँव मे हुई।

एशियाई खेल ग्राम भारत सरकार के गौरव के रूप म चमक उठा। यही वह स्थान था जहाँ खिलाडियों तथा उनके टीम अधिकारियो के रखने की व्यवस्था की गई थी। यह खेल ग्राम ५४ हेक्टेयर क्षेत्र मे १८ ५४ करोड रुपये की आनुमानित लागत से बनकर तैयार हुआ है इसम लगभग ५००० प्रतियोगी और अधिकारी ठहर सकते हैं। इसमे विभिन्न ११ श्रेणियों की ८५३ आवास इकाइयाँ बनी हैं। प्रत्येक आवास इकाई मे तीन पूर्णत सज्जित शयन कक्ष और एक ड्राइंग कक्ष है। प्रत्येक शयन कक्ष मे दो खिलाडियो के ठहरने की व्यवस्था है। प्रत्येक दल के साथ आने वाले को पूरी एक आवास इकाई दी गई। इस इकाई का एक कमरा कार्यालय के लिए है जहाँ पर टाइपराइटर और आशुलिपि की व्यवस्था है। खेल ग्राम मे प्रतियोगियों के अभ्यास और मनोरंजन के साज-सामान की व्यवस्था तो थी ही, उनके भोजन, परिवहन, चिकित्सा सेवा आदि का पूरा प्रबन्ध था। भोजन मे भारतीय, योरोपीय और चीन तीन तरह के भोजन परोसे जाते थे। भोजन के चारो कक्षो मे एक साथ बैठकर दो हजार आदमी भोजन कर सकते हैं।

इस शताब्दी के जिस भव्यतम और गौरवपूर्ण दिन की भारतवासी चिर-प्रतीक्षा में लीन थे, अनन्तत वह दिन आ ही गया। ३१ वर्ष पूर्व भारत के नेशनल स्टेडियम म जो खेल ज्योति प्रथम एशियाई खेलो की समाप्ति के बाद शमित कर दी गई थी वह १९ नवम्बर १९८२ को नवम् एशियाड के अवसर पर दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में प्रात १० बजकर ३५ मिनट पर भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी के कर-कमलों मे सूर्य किरणो द्वारा पुन प्रज्वलित हो उठी। प्रधानमन्त्री ने यह

ज्योति जलाकर प्रथम मशाल वाहक श्री रामसिंह को दी और वह वामवर्ती दिशा मे दौड़ते हुए स्टेडियम की मुख्य दीर्घा तक पहुँचे और वहाँ बने एक छोटे ज्योति स्तम्भ पर इस मशाल से अग्नि प्रज्वलित कर दी। दोपहर बाद यहीं से मशाल जलाकर के उद्घाटन स्थल जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम तक ले जाई गई।

१९ नवम्बर ८२ को अपराह्न तीन बजकर बावन मिनट पर भारत के राष्ट्रपति श्री जैलसिंह ने बीसवीं शताब्दी के पूर्ण राजकीय गरिमा के साथ इस भव्यतम समारोह का उद्घाटन किया। नवम एशियाई खेलों के उद्घाटन ने एक बार फिर यह कर दिखाया कि भव्यता और शान-शौकत भरे समारोह आयोजित करने मे दिल्ली और भारत सरकार का कोई मुकाबला नहीं। मुगलों और अंग्रेजों ने राजकीय जश्न की जो परम्परायें इस नगर मे छोड़ी हैं वे आज भी पूरे वेग से कायम हैं। अपनी ६५वी साल गिरह पर शुरू हो रहे इस ऐतिहासिक समारोह में प्रधान-मन्त्री श्रीमती गांधी ठीक तीन बजे पधारीं और ७५ हजार दर्शकों से खचाखच भरे स्टेडियम ने तालियों से उनका अभिवादन किया। एक मिनट बाद उत्तर-पश्चिम के प्रवेश द्वार से राष्ट्रपति के घुड़सवार अंग रक्षक आने लगे। उनके बीच काली लियूजीन कार मे राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह आये। राजा भालिन्दर सिंह और श्री बूटासिंह ने उनकी अगवानी की और जैसे ही वे सीढ़ियां चढ़कर अपने नियत आसन पर बैठे, सामने के पैवेलियन पर खड़े बैंड ने राष्ट्रीय धुन बजानी शुरू कर दी। राष्ट्रपति उतर कर मैदान में आये, वहाँ एशियाई खेल महासंघ तथा विशेष आयोजन समिति अधिकारियों से उनका परिचय कराया गया। राष्ट्रपति के अपने आसन पर बैठने के बाद तीन बजकर सात मिनट पर ३३ देशों की खिलाड़ी टीमो का मार्च पास्ट शुरू हुआ जो सैंतीस मिनट तक चला। सम्भवतः अपनी ताजी बीमारी के कारण मार्च पास्ट के समय राष्ट्रपति ने मैदान में बने मंच पर खड़े होकर सलामी नहीं ली बल्कि वे अपने लिए नियत कक्ष मे ही रहे। मार्च पास्ट के लिए खिलाड़ियो की टीमें देवनागरी वर्णमाला के क्रम से दक्षिण-पूर्वी द्वार से स्टेडियम में आई। सबसे पहिले अफगानिस्तान और इण्डोनेशिया, फिर इराक, ईरान और अन्त में मेजबान देश के नाते भारत।

मार्च पास्ट में एशिया की काफी विविधता प्रतिबिम्बित हो रही थी। चीन, जापान और थाईलैंड की टीमो मे काफी फुर्ती और चुस्ती थी। जापान की प्रभावशाली टीम ने लाल कोटे, क्रीम पैंट और सफेद कैप और नीली टाइयाँ पहन रखी थीं। उनके हाथों मे भारतीय तिरंगे झन्डे थे, जिन्हे हिला-हिलाकर वे दर्शको का अभिवादन कर रहे थे। चीनियो का सारा यूनीफार्म ही क्रीम कलर का था लेकिन उनकी कमीजों पर लाल कालर थे। ईरानी प्रायः नंगे सिर थे, वे नीले कोट पहिने थे, उन्होंने अपने हाथों मे आर्किड फूलो की टहनियाँ ले रखी थी। फिलिपीन्स की टीम ने चम्बल के खेतो के किसानो की सी टोपियाँ पहन रखी थी तो सऊदी अरब की टीम अपने देश के ढीले ढाले सफेद वस्त्रों में और टोपियों में थी।

उत्तर और दक्षिण कोरिया ने अपने आपको कपड़ो से भी अलग सिद्ध किया। यही कोशिश उत्तरी और दक्षिणी यमन ने भी की। इराक और ईरान खेल के मैदान पर एक के पीछे एक चले, हालांकि दोनो देश युद्ध के मैदान मे गुत्थमगुत्था हैं।

एक यमन ने सफेद कुर्त्ता, नीचे घुटनो तक धोती और काले मोजे पहने और उनके खिलाड़ी कमर मे कृपाण लेकर चले। दूसरे यमन ने नीली कमीजे और पतलून

पहने। सीरिया के खिलाड़ी भी सूट पहन कर आये, मानो दावत में जा रहे हों। पाकिस्तान के खिलाड़ियों ने हरे ब्लेजर, क्रीम पतलून और फैज टोपियाँ पहन रखी थीं।

भारत के खिलाड़ी गुलाबी साफों में थे, जो मुश्किल से सबने बाँधे होंगे। उन्होंने नीले ब्लेजर पहने थे। महिला खिलाड़ियों ने गुलाबी साड़ियाँ पहनी थीं पर नीले कोट थे।

मार्च पास्ट करने वाले सारे खिलाड़ी जब स्टेडियम के हरे चौगान में (जहाँ फुटबाल खेला गया था) पंक्तिबद्ध एकत्रित हो गये, तो पौने चार बजे बैंकाक के मेयर आठवें एशियाई खेलों का झण्डा लेकर मैदान में आये और उसे उन्होंने एशियाई खेल महासंघ के अध्यक्ष राजा भालिन्दर सिंह को सौंप दिया। फिर नवें एशियाई खेलों का झण्डा मैदान में आया। तब विशेष आयोजन समिति के अध्यक्ष श्री बूटासिंह ने राजा भालिन्दर सिंह का परिचय कराया और राजा भालिन्दर सिंह ने राष्ट्रपति से अनुरोध किया कि उद्‌घाटन की रस्म पूरी करें।

तूयनाद के साथ खेल ध्वज ऊपर गया और फहराने लगा। स्टेडियम के ऊपर हेलिकाप्टर उड़ान भरते हुए आए और फूल बरसा गये। तीन तोपें दागी गयीं, और दो हजार कबूतर तथा पाँच हजार गुब्बारे यकायक हवा में तैरने और फड़फड़ाने लगे। कई कबूतर अपने आसपास से बेखबर ट्रैक पर बैठ गये, मानो उड़ने के बजाय यहीं सुखद हो। गुब्बारे से लटकी हुई दो अप्पू आकृतियाँ भी स्टेडियम के उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर हवा पर तैरने लगी।

अब उत्तर-पूर्वी द्वार से गुरुवचन सिंह रंधावा एशियाड की मशाल लेकर (जो पहले नेशनल स्टेडियम में श्रीमती गांधी प्रज्ज्वलित कर चुकी थीं) मैदान में आये। उन्होंने मशाल मिलखासिंह और कमलजीत सिंह संधु को दी जो पूरे ट्रैक पर दौड़ते हुए गुजरे। फिर मशाल बलबीर सिंह और डायना साइम्स ने थामी। वे दोनों स्टेडियम की पूर्वी सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ज्योतिकुण्ड तक पहुँचे और ठीक चार बजे उन्होंने एशियाड ज्योति प्रज्ज्वलित की। यह ज्योति खेलों के दौरान दिन-रात जलती रही।

अगले १५ मिनट तक कुछ रस्म और हुई। २०० गायकों की टोली ने नरेन्द्र शर्मा द्वारा लिखित एवं रविशंकर द्वारा संगीतबद्ध गीत गाया जिसका अंग्रेजी अनुवाद अमिताभ बच्चन की आवाज में सुनाया गया। सारे खिलाड़ियों की ओर से गीता जुत्शी ने जब खेल की शपथ ली और जब सारी टीमें मैदान के बाहर चली गयीं और लड़कियों का वह विशाल गोला भी, जो रंग-बिरंगे स्कार्फों को हवा में हिला-हिला कर उनका स्वागत कर रहा था।

सवा चार बजे भारत की सांस्कृतिक नृत्य विविधता को प्रस्तुत करने वाला एक कार्यक्रम शुरू हुआ, जिसकी इन्द्रधनुषी छवियाँ स्तब्ध करने वाली थीं।

हर समूह नृत्य की विशेषता यह थी कि सैकड़ों नर्तक लयबद्ध गाते नाचते मैदान में आते और पूरे फुटबाल के चौक को अपने अंग विन्यास से भर देते।

गुजरात का डण्डों से खेला जाने वाला डांडिया रास, महाराष्ट्र का लेजिम पर आधारित अर्ध-सैनिक नृत्य, गोआ का पश्चिमी तर्ज का कार्निवाल, पंजाब का भांगड़ा, सबके सब विराट संयोजन में योग्य सिद्ध हुए। पश्चिमी बंगाल के नवान्न नृत्य ने सारे स्टेडियम को लोबान के धुएँ से भर दिया, तो यू० पी० के होली नृत्य ने फाग के हरे और गुलाबी रंगों में समा बाँध दिया। बस्तर, मणिपुर और मेघालय के नृत्यों का अपना अलग मांगलिक रंग था।

अन्त में अप्पू की आकृति समारोह मैदान में आयी और एक समूह नृत्य से उसका स्वागत हुआ। जन-गण-मन के साथ जब सारा समारोह समाप्त हुआ, स्टेडियम के उत्तर-पूर्वी आकाश में खड़ी इलेक्ट्रानिक स्कोर-बोर्ड सुनहरे अक्षरों में दर्शकों को प्रति सेकेण्ड की जानकारी देता रहा कि समय कितना हुआ है और कार्यक्रम कौनसा चल रहा है।

प्रतिस्पर्धा भरी इन पन्द्रह दिनों की उन्नीस प्रतियोगिताओं का असंख्य दर्शकों, भिन्न-भिन्न खेलों के प्रशंसकों, देश-विदेश के खेल प्रेमियों एवं आलोचकों ने देखा कि भारत ने दूध का दूध और पानी का पानी किया। अनेक नये कीर्तिमान स्थापित किये गये और पुराने रिकार्ड तोड़े गये। जिस देश को जैसी आशायें थीं उसे उसके अनुरूप सफलतायें मिलीं सिवाय भारत के। भारत को हाकी में अप्रत्याशित पराजय का मुँह देखना पड़ा। नवें एशियाई खेलों में चीन ने जापान को पछाड़ दिया। १९५१ से १९७८ तक के आठों एशियाई खेलों में जापान प्रथम स्थान लेता आ रहा था। परन्तु इस बार जापान द्वितीय स्थान पर रहा और चीन ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। आगे दी हुई तालिका से एशियाई खेलों की जीत का अब तक का इतिहास बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

एशिया के सभी देश खेल की दुनिया में कुछ न कुछ आगे बढ़े परन्तु भारत आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे हटा। मनीला (फिलीपीन्स) में १९५४ में आयोजित एशियाई खेलों में भारत चौथे स्थान पर रहा था, परन्तु अपने देश और अपने ही घर में भारत पांचवें स्थान पर रहा। १९८२ के नवम एशियाई खेलों में प्राप्त पदकों की तालिका आगे दी गई है।

बीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े इस खेल महोत्सव का समापन दिनांक ४ दिसम्बर १९८२ में जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम में उसी भव्यता और विराटता के साथ सम्पन्न हुआ जिस शालीनता और भव्यता के साथ उन्नीस नवम्बर ८२ को इसका उद्घाटन हुआ था। ७५ हजार दर्शकों से खचाखच भरे स्टेडियम में ३३ देशों के ५ हजार खिलाड़ियों और अधिकारियों ने बड़े अनुशासित ढंग से प्रवेश किया परन्तु आज के प्रवेश में और उद्घाटन के दिन के प्रवेश में अन्तर था। उस दिन का प्रवेश मार्च पास्ट के लिए था पर आज का प्रवेश अगले एशियाड तक एक-दूसरे से विदा के लिये था। कल तक प्रतिस्पर्धा के रूप में जो आमने-सामने लड़ रहे थे वे आज एक-दूसरे से गले मिल रहे थे और बधाई दे रहे थे।

प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी समापन समारोह आरम्भ होने से दो मिनट पहले ही पहुंची थीं। उसके थोड़े समय के बाद ही राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी पधारे। प्रधानमन्त्री ने राष्ट्रपति का स्वागत किया। खेलों में भाग लेने वाले ३३ देशों के ध्वज वाहक अपने देश के ध्वज के साथ उसी क्रम में आये जिस क्रम में इन टीमों ने उद्घाटन समारोह के दिन मार्च पास्ट में भाग लिया था। भारत के ध्वज वाहक प्रसिद्ध निशाने बाज कर्णी सिंह थे। ध्वज वाहकों के आगे उन देशों के नामों की तख्तियाँ लिये हुए भारतीय महिलायें चल रही थीं। उनके पीछे खिलाड़ी और अधिकारी थे। उपस्थित जन-समूह ने खिलाड़ियों का स्वागत किया और खिलाड़ियों ने हाथ हिला-हिलाकर दर्शकों का अभिवादन किया। अपनी टोपियाँ उतारकर जापानी खिलाड़ियों ने जनता का अभिवादन स्वीकार किया और वे टोपियाँ दर्शकों में ही बाँट दीं। इसके बाद एशियाई खेल परिसंघ का ध्वज फहराया गया, भारत

एशियाड खेलों की यात्रा दिल्ली से दिल्ली तक

स्थान एवं वर्ष	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	
१९५१ नई दिल्ली (भारत)	जापान (६०) योग स्व रजत कांस्य २४, २०, १६	भारत (५) योग १५, १ , २१	ईरान (१६) योग ८, ७, [illegible]	
१९५४ मनीला (फिलीपीन्स)	जापान (८५) ३७, २४, २४	फिलिपीन्स (३) १०, १०, १३	द० कोरिया (१९) ८, ६, ५	भारत चौथ स्थान पर (५, ४, ६)
१९५८ तोक्यो (जापान)	जापान (१३८) ६७, ४१, ३०	फिलिपीन्स (२९) ८, १९, २२	द० कोरिया (१७) ८, ७, १२	भारत सातवे स्थान पर (५, ५, ४)
१९६२ जकार्ता (इंडोनेशिया)	जापान (१५२) ७३, ५५, २४	इंडोनेशिया (५१) ११, १२, २८	भारत (३४) १०, १३, १०	
१९६६ बैंकाक (थाईदेश)	जापान (१६४) ७८, ५३, ३३	द० कोरिया (५१) १२, १८, २१	थाईदेश (३४) ११, ११, १२	भारत पांचवें स्थान पर (७, ३, ११)
१९७० बैंकाक (थाईदेश)	जापान (१४४) ७४, ४७, २३	द० कोरिया (५४) १८, १३, २३	थाईदेश (२९) ९, ७, १३	भारत पांचवें स्थान पर (६, ९, १०)
१९७४ तेहरान (ईरान)	जापान (१७६) ७५, ५०, ५१	ईरान (८१) ३६, २८, १७	चीन (८६) ३३, २८, २८	भारत सातवें स्थान पर (४, १२, २२)
१९७८ बैंकाक (थाईदेश)	जापान (७८) ७०, ५९, ४९	चीन (१५१) ५१, ५४, ४६	द० कोरिया (६९) १८, २०, ३१	भारत छठे स्थान पर (११, ११, ६)
१९८२ नई दिल्ली (भारत)	चीन (१५३) ६१, ५१, ४१	जापान (१५०) ५७, ५२, ४१	द० कोरिया (९०) २८, २८, ३४	भारत पांचवें स्थान पर (१३, १७, २०)

१९८२ के एशियाई खेलों की पदक तालिका

देश	स्वर्ण	रजत	कांस्य	योग
चीन	६१	५१	४१	१५३
जापान	५७	५२	४	१५०
दक्षिण कोरिया	२८	२८	३४	९०
उत्तर कोरिया	१६	१९	१७	५२
भारत	१३	१९	२२	५२
इण्डोनेशिया	४	४	७	१५
ईरान	४	४	४	१२
मंगोलिया	३	३	०	६
पाकिस्तान	३	२	०	५
फिलीपीन	२	३	७	१२
थाईलैंड	१	५	४	१०
इराक	१	२	३	६
कुवैत	१	२	१	४
मलेशिया	१	०	३	४
सिंगापुर	१	०	२	३
सीरिया	१	१	०	२
लेबनान	०	१	०	१
अफगानिस्तान	०	१	०	१
हांगकांग	०	०	१	१
वियतनाम	०	०	१	१
बहरीन	०	०	१	
कातार	०	०	१	१
सऊदी अरब	०	०	१	१
	१९७	१९३	१९१	५७६

का राष्ट्रीय ध्वज भी देश के राष्ट्रीय गीत की धुन पर फहराया गया। अन्त में दसवें एशियाई खेल १९८६ के मेजबान देश कोरिया गणराज्य का झण्डा फहराया गया और उसके राष्ट्रगान की धुन बजायी गई। एशियाई खेल संघ के अध्यक्ष भालिन्दर सिंह ने नवें एशियाई खेलों के समापन की घोषणा करते हुए एशियाई ओलम्पिक समितियों, खिलाड़ियों, अधिकारियों, प्रतिनिधियों तथा सलाहकारों को हार्दिक धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि हर खेल प्रेमी आज प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का ऋणी है जिनकी व्यक्तिगत दिलचस्पी के कारण ही नवें एशियाई खेल सम्भव हो सके। इसके बाद ही रिट्रीट के अन्तिम स्वरों पर एशियाड की वह पावन ज्योति बुझा दी गई जो १९ नवम्बर से खेलों के दौरान निरन्तर जलती रही थी। पाँच तोपों की सलामी के साथ राष्ट्रीय खेल परिसंघ का ध्वज उतारा गया। मशाल और परिसंघ का झण्डा अगले एशियाड तक सुरक्षित रखने के लिये समारोहपूर्वक दिल्ली के उपराज्यपाल श्री जगमोहन को सौंप दिया गया। अन्त में राष्ट्रीय गीत 'जन-गण-मन' के साथ समारोह समाप्त हुआ।

धन और मान इन दोनों में महापुरुष मान को ही महत्व देते हैं। धन तो

क्षण भंगुर है इसलिये "मानो हि महताम् धनम्" कहा गया है। एशियाड ८२ के संयोजन ने भारत को विश्व की दृष्टि में कितना मान दिलाया है यह आज कहने की बात नहीं है और इस सम्पूर्ण मान का श्रेय देश की एकमात्र नेता श्रीमती गांधी को है जिन्होंने भयंकर विरोध एवं विवाद के बावजूद एशियाड ८२ भारत में सम्पन्न कराने में अद्वितीय सफलता प्राप्त की। वैसे १९७६ में नई दिल्ली में मूल रूप से एशियाई खेलों का आयोजन करने का निर्णय लिया गया था तभी से लगभग कई वर्षों तक अनिश्चितता के बादल छाये रहे। अन्त में १९८० में यह आशा बंध गई थी कि भारत 'एशियाड ८२' का आयोजन करेगा। इस आयोजन के लिए नवनिर्मित छः स्टेडियम भारत की आने वाली पीढ़ी के लिये शारीरिक कला का प्रदर्शन करने वाली ऐसी धरोहर बन गई है जो कभी नष्ट नहीं हो सकती। इस महान आयोजन से भारत में खेलों के प्रति नई चेतना जाग्रत हुई है। भारत को गौरव मिला है। ७० नवम्बर ८२ को अन्तर्राष्ट्रीय ओलम्पिक समिति के अध्यक्ष श्री जुआन अन्तरा-मियो समराच ने प्रधानमन्त्री गांधी से भेंट करके इस आयोजन की भूरि-भूरि सराहना की। अन्तर्राष्ट्रीय ओलम्पिक समिति के निदेशक मैडम मोनिक बल ने 'एशियाड ८२' के आयोजन से प्रभावित होकर अपने विचार प्रगट करते हुए कहा कि "भारत कुछ और बुनियादी सुविधायें और प्रशिक्षण सुविधायें जुटाकर ओलम्पिक खेलों का आयोजन करने के लिये भी सक्षम हो सकता है।" प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी की प्रेरणा प्रयासों के फलस्वरूप जहाँ भारत विज्ञान के क्षेत्र में अधिकाधिक उन्नति कर रहा है वहाँ खेलों के आयोजनों के क्षेत्र में भी किसी से पीछे नहीं रहा। ●

१७ अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष, १९८१

विश्व का प्रबुद्ध बौद्धिक वर्ग १९७५ में नारी जाति के प्रति पुरुष के भेद-भावों, असमानताओं और सहिष्णुताओं के प्रति खिन्न हो उठा था तब विश्व संगठना ने एक स्वर में महिला वर्ष मनाने की आवाज उठाई थी। उसका परिणाम भी सुखद हुआ था, महिलायें जागी थी, आगे बढ़ी थी, विश्व की सरकारों ने महिलाओं के उत्थान के लिए नये-नये कानून बनाये थे। उसी प्रकार विश्व के मानवता उपासकों ने, अनेक विश्व संगठनों ने और अनेक राष्ट्राध्यक्षों ने १९८० में निर्णय लिया कि १९८१ को विकलांग वर्ष मनाया जाये तथा उनके उत्थान के लिये सामूहिक प्रयास किये जायें क्योंकि वे भी मनुष्य हैं और उसी ईश्वर की सन्तान हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इसकी विधिवत् घोषणा कर दी गई और समस्त विश्व में १९८१ अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष के रूप में मनाया जाने लगा।

विकलांग का अर्थ है कि जिसके शरीर के अंगों में कोई कमी हो, पांच कर्मेन्द्रिया में से किसी एक की छिन्न भिन्नता हो। विकलांगों की श्रेणी में लूले-लगड़े, अन्धे, बहिरे आदि सभी प्रकार के विकृत अंग वाले व्यक्ति आ जाते हैं। विकलांगों के तीन भेद है—(१) शारीरिक विकलांग, (२) मानसिक विकलांग, (३) आध्यात्मिक विकलांग। शारीरिक विकलांगों की श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जिनके शरीर के अंगों में या अवयवों में कोई कमी होती है जैसे अन्धे बहिरे, लगड़े एक हाथ

और एक आँख वाले या इसी प्रकार के शरीर के अन्य अंगों से रहित व्यक्ति। मानसिक विकलांगों की श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जिनका मस्तिष्क और मन संसार की अनेक सघन चिन्ताओं से जूझता रहता है और मानसिक तनाव के शिकार होते हैं और रक्तचाप के बीमार होते हैं या फिर इस कोटि में वे दयनीय व्यक्ति आते हैं जिनके मन को दुर्दिनों ने और संसार की आपदाओं ने मार दिया होता है। आध्यात्मिक विकलांगों की श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जो "खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ" के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। उन्हें न अपने धर्म-कर्म से मतलब और न राम-रहीम से सम्बन्ध। आत्मा और परमात्मा तो उनके लिए प्रहसन की वस्तु होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष, १९८१

१. प्रस्तावना।
२. विकलांगों के भेद।
३. विकलांगता के कारण।
४. विकलांगता दूर करने के उपाय।
५. विकलांगों के प्रति समाज का दायित्व।
६. उपसंहार।

विश्व की सरकारों का लक्ष्य १९८१ में चूँकि केवल शारीरिक विकलांगों के उत्थान और उन्नयन से है इसलिये इस निबन्ध में अब केवल शारीरिक विकलांगों तक ही चर्चा होगी। शारीरिक विकलांगता के दो कारण होते हैं : पहला—प्राकृतिक, दूसरा—अप्राकृतिक। प्राकृतिक विकलांगों में वे व्यक्ति आते हैं जिनके शरीर में माता के गर्भ में से ही कोई कमी आती है। बहुत से बच्चे जन्मान्ध पैदा होते हैं, बहुत से दो सिर वाले पैदा होते हैं, आदि-आदि। प्राकृतिक विकलांगता बहुत कुछ माता के आचार-विचार, आहार-विहार, रहन-सहन आदि पर निर्भर करती है। पहिले, गर्भ रक्षा और गर्भ पोषण के अनेक आचार विचार थे इसलिये बालक स्वस्थ और सकलांग पैदा होता था। आज की नई रोशनी में वे सब नियम और परम्परायें ताक पर उठाकर रख दिए गए। इसीलिए जन्मजात विकलांगों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। उन प्राचीन नियमों और परम्पराओं का निर्वाह करना मनुष्य ने छोड़ दिया परन्तु पशुओं और पक्षियों ने नहीं छोड़ा इसीलिए पशु-पक्षियों में जन्मजात विकलांग आपको नहीं मिलेंगे।

अप्राकृतिक कारण चार प्रकार के हो सकते हैं—(१) रोग, (२) दुर्घटना, (३) युद्ध, (४) वैज्ञानिक परीक्षण। विकलांगता का प्रथम कारण रोग है। औषधि विज्ञान की नई-नई खोजों ने यद्यपि इस दिशा में पर्याप्त रोक-थाम की है फिर भी रोगों की भयानकता गरीबों के लिये आज भी कम नहीं हुई है। अनेक चिकित्सा सुविधाओं के बाद भी ग्रामीण जनता रोगों के प्रभाव से विकलांगता से बच नहीं पाती, जिनमें लकवा और नेत्रहीनता मानव के ये दो प्रमुख शत्रु हैं। पहिले चेचक में जिसे माता कहते थे बहुत से बच्चों की नेत्र ज्योति नष्ट हो जाती थी और लकवे (पक्षाघात) में एक तरफ के हाथ और पैर जाते थे। विकलांगता का दूसरा कारण दुर्घटनायें हैं। आजकल आये दिन रेलें और मोटर ट्रक और तांगे आपस में टकरा रहे हैं जिनके फलस्वरूप किसी यात्री का हाथ कट जाता है और किसी का पैर, किसी की आँखें ही निकल पड़ती हैं। विकलांगता का तीसरा भयानक कारण युद्ध है। युद्ध से विकलांगता असीमित बढ़ जाती है। शत्रु की गोलियों से हजारों सैनिक विकलांग हो जाते हैं, हालाँकि अब नये युग में वैज्ञानिक उपकरणों से सैनिकों के हाथ और टाँग कृत्रिम लगा दिये जाते हैं परन्तु नेत्र अब भी नहीं लग पाते। युद्ध में केवल सैनिक ही विकलांग नहीं होते अपितु जनता भी विकलांगता का शिकार हो जाती है।

हीरोशिमा और नागासाकी पर छोड़े गये बमों के कुप्रभाव और दुष्परिणामों से वहाँ की जनता तक मुक्त नहीं हो सकी। विकलांगता का चौथा कारण वैज्ञानिक परीक्षण है। वैज्ञानिक परीक्षणों और विस्फोटों से जो विषैली धूलि और गैस उड़ती है उससे मानवमात्र असंख्य रोगों से पीड़ित रहने लगता है। उस धूलि का प्रभाव शनैः-शनैः मानव के विभिन्न अंगों को निर्जीव बना देता है। १९८१ के जौलाई और अगस्त के महीनों में भारत में आई फ्लू फैला, उसमें बहुत से लोगों की नेत्र ज्योति पर प्रभाव पड़ा। कहते हैं कि यह भी वैज्ञानिक परीक्षण की गैसों और धूलि का ही परिणाम था।

किसी भी राष्ट्र की सरकार यदि अपनी जनता के सुख दुखों के प्रति सजग और जागरूक है और ईमानदारी से जनता के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करती है तो विकलांगता दूर हो सकती है। यदि सरकार अपनी जनता के स्वास्थ्य और कल्याण के प्रति सजग है तो वह रोगों से रक्षा कर सकती है, युद्ध को टाल सकती है, वैज्ञानिक परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगा सकती है, आये दिन अनेक दुर्घटनाओं को सतर्क प्रशासन के द्वारा रोक सकती है। कुछ स्तरों पर जन सामान्य को भी सजग रहना होगा जैसे आहार-विहार, खान-पान, स्वास्थ्य निर्देशक नियमों के प्रति निष्ठा। तभी विकलांगता किसी भी देश में से कम हो सकती है।

सकलांग समाज का दायित्व हो जाता है कि वह अपने विकलांग बन्धुओं की शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन एवं जीवन निर्वाह के साधनों को प्रोन्नत करके सहयोग दें। वे भी हमारे समाजरूपी शरीर के अभिन्न अंग हैं। शरीर के एक अंग में तकलीफ हो जाने से सारा शरीर प्रसन्न कैसे रह सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष १९८१ के सदर्भ में १० अगस्त १९८१ को विज्ञान भवन दिल्ली में आयोजित संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए भारत के उपराष्ट्रपति श्री एम० हिदायतुल्ला ने कहा कि—"सामाजिक तथा शारीरिक कारणों से समाज के कटे वर्गों के लिए हमने गत वर्षों में काफी कुछ किया है पर जब मैं इस समस्या पर दृष्टिपात करता हूँ तब मैं यह देखकर चिन्तित हो जाता हूँ कि आज भी देश के एक-तिहाई बच्चे सौ रुपये की मासिक पारिवारिक आय पर जीने को मजबूर हैं।" उन्होंने कहा कि—"इनमें से अधिकांश संख्या कमजोर वर्ग के बच्चों की है। अध्ययन से पता चलता है कि २० प्रतिशत बच्चों को बीच में ही पढ़ाई छोड़ देनी पड़ती है और जब कभी मैं यह सोचता हूँ कि अगले कुछ साल में ही ऐसे ३० करोड़ बच्चों की समस्या और हमारे सामने आने वाली है तब मैं चिन्तित हो जाता हूँ। सरकार से इस दिशा में जो हो पाता है, करती है लेकिन इस समस्या को बिना स्वैच्छिक संस्थाओं की सहायता के हल नहीं किया जा सकता। मैं समझता हूँ कि हमारे देश में कुछ लोग ऐसे हैं जो इसके लिये काफी योगदान कर सकते हैं।"

इस आयोजन की अध्यक्षता करते हुए केन्द्रीय उद्योग मन्त्री श्री नारायणदत्त तिवारी ने बताया कि अनुमानतः विश्व में ५० करोड़ बच्चे किसी न किसी तरह की विकलांगता से ग्रसित हैं। हमारे देश में ही कोई १ करोड़ २० लाख बच्चे तो दृष्टिहीन हैं। इनमें से काफी ऐसे हैं जिनको ज्योति मिल सकती है। बधिरता दूसरा बड़ा रोग है, यह ऐसा रोग है जिसके कारण व्यक्ति समाज से पूर्णतः विच्छिन्न हो जाता है। लेकिन गरीबी के कारण इन लोगों का ठीक उपचार नहीं होता। श्री तिवारी ने कहा—"हमारे संविधान निर्माताओं ने शारीरिक तथा सामाजिक रूप से

अक्षम व्यक्तियों के बारे मे गम्भीरता से सोचा था तभी तो उन्होंने संविधान मे यह लिखा था कि ऐसे लोगो के कल्याण की जिम्मेदारी राज्यों को निभानी होगी।"

अगस्त १९८१ मे अफ्रीका के सिनेकिन नगर मे अपंगो के उत्थान के विषय पर आयोजित २८वी वर्ल्ड स्काउट कांग्रेस में निश्चय किया गया कि स्काउटिंग के माध्यम से अपंगो के दिलो-दिमाग को इस प्रकार से तैयार किया जायेगा कि वे समाज में अपने को निम्न श्रेणी का न समझें। स्काउट्स की ओर से लन्दन में एक कार्यालय बनाया गया है जो समस्त देशों को उनकी आवश्यकतानुसार अपगों के लिए सामान देगा। उन्हे स्काउटिंग स्तर पर जानकारी दी जा रही है कि प्रत्येक गाँव, कस्बे और नगर मे कितने अपग हैं। भारत की ओर से पचमणी में एक कैम्प लगाया जायेगा जिसमे ५० स्काउट व गाइड भाग लेंगे, उनके लिए आवश्यक होगा कि वे अपने साथ एक-एक अपग बच्चे को लाये जहाँ उसका मानसिक विकास इस प्रकार से हो कि वह अपने को समाज का ही एक अंग समझे।

अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष १९८१ के उपलक्ष्य में भारत सरकार ने सरकारी नौकरियों, प्रशिक्षण सस्थाओं एवं अन्य अधिष्ठानो में विकलांगों का आरक्षण कर दिया है। विकलागो की शिक्षा-दीक्षा के लिए भारत सरकार पहिले से ही जागरूक है। सरकार से पोषित अनेकों शिक्षा-संस्थाये इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। सरकार इस ओर पूर्ण प्रयत्नशील है। १९८८ तक हजारो विकलांगो को भारत सरकार ने उनके शरीर के अभाव अंग प्रदान किये हैं। प्रत्येक प्रदेश में सरकार की ओर से विकलांग सहायता शिविर आयोजित किये जा रहे है। जिला मजिस्ट्रेटों की देख-रेख मे उनकी आर्थिक एवं आंगिक सहायता की जा रही है। विकलांगों को बैंको से भी चलने फिरने एवं जीवकोपार्जन के साधन उपलब्ध कराये जा रहे हैं। यदि समाज का प्रत्येक नागरिक इस ओर सहानुभूति पूर्ण और रचनात्मक सहयोग की ओर अग्रसर हो उठे तो सोने मे सुहागे का कार्य होगा। ●

१८ प्रौढ़ शिक्षा

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विलसन का कथन था कि 'प्रजातंत्र शासन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने स्वामियो (सामान्य जनता) को शिक्षित करें। इस कथन का अभिप्राय यही है कि प्रजातन्त्र में वास्तविक शक्ति या शासन सत्ता जनता मे निहित होती है, किन्तु खेद का विषय है कि अपनी निरक्षरता व असहायता के कारण सामान्य जनता अपनी इस शक्ति का समुचित प्रयोग नही कर पाती है। भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातान्त्रिक देश माना जाता है, किन्तु यहाँ भी शिक्षितों की संख्या बहुत कम है। एक सरकारी अनुमान के अनुसार इस समय भारत मे प्रति तीन व्यक्तियो मे दो व्यक्ति निरक्षर हैं और १५ से ३५ वर्ष आयु समूह मे लगभग १० करोड व्यक्ति निरक्षर या अशिक्षित हैं। देश में कुल निरक्षरों की संख्या तो २० करोड से भी अधिक है। देश की अनेक जटिल समस्याओं, जिनमे गरीबी, भुखमरी, मँहगाई, बेरोजगारी आदि मुख्य है, व्यापक निरक्षरता के कारण ही आज तक हल नही की जा सकी हैं। अतः देश में व्याप्त इस निरक्षरता को दूर करने के लिए राष्ट्रीय प्रौढ शिक्षा योजना का एक विशाल कार्यक्रम तैयार किया गया है और इसे लागू करने के व्यापक प्रबन्ध किये गये हैं।

प्रौढ़ शिक्षा से हमारा आशय यह है कि ऐसे निरक्षर व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान की जाय, जो विषम परिस्थितियों मे रहकर शिक्षा प्राप्त करने में असफल रहे और अपने परम्परागत व्यवसाय में लग गये हैं। प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से ऐसे निरक्षर व्यक्तियों को न केवल साक्षर बनाना है, वरन् उन्हे व्यावसायिक और तकनीकी ज्ञान देकर नागरिकता के अधिकारो और कत्तव्यों से भी अवगत कराना है।

भारत जैसे विकासशील देश में प्रौढ शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। देश की गम्भीर समस्याओ जैसे जनसख्या मे अतिशय वृद्धि, बेरोजगारी, मँहगाई, निम्न जीवन स्तर, प्रति व्यक्ति आय मे कमी, तकनीकी ज्ञान का अभाव आदि को हल करने के लिए भारतीयो को साक्षर बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इतना ही नहीं साक्षरता भारतीय प्रजातन्त्र की सफलता की एक अनिवार्य शर्त है। साक्षर व्यक्ति ही अपने मताधिकार का समुचित प्रयोग कर सकता है और अपना, समाज का और देश का कल्याण कर सकता है।

प्रौढ शिक्षा की परिकल्पना भारतीय शिक्षा के इतिहास म सर्वथा नवीन नही है। देश की स्वाधीनता स पूर्व भी अनेक समाज सेवी भारतीयो ने इस दिशा म कुछ प्रयास किये थे। परन्तु आज प्रौढ शिक्षा का प्रश्न और भी ज्वलन्त हो गया है।

प्रौढ़ शिक्षा

१ प्रस्तावना।
२ भारत मे प्रौढ शिक्षा की आवश्यकता।
३ प्रौढ शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास।
४ प्रौढ शिक्षा का विकास और विस्तृत कार्यक्रम।
५ प्रौढ शिक्षा के विकास मे कठिनाइयां व उनका निराकरण।
६ उपसंहार।

गाधी जी भी प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम को बड़ा महत्व देते थे और डा० राम मनोहर लोहिया भी प्रौढ शिक्षा के हामी थे।

अतएव सन् १९४६ म केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने राज्य मन्त्रियो के सम्मेलन मे प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम की एक योजना प्रस्तुत की। सन् १९५० में 'शैक्षणिक कारवाँ' योजना के अधीन देश के ग्राम ग्राम म प्रौढ शिक्षा का प्रचार और प्रसार किया गया। सन् १९५१ मे अलीपुर नामक ग्राम म प्रथम जनता कालेज स्थापित किया गया। जामिया मिलिया विश्वविद्यालय दिल्ली की पब्लिक लाइब्रेरी न प्रौढ शिक्षा के प्रसार के लिए विशेष प्रयत्न किये। ४ सितम्बर १९६६ ई० को एक 'प्रौढ साक्षरता मण्डल' की स्थापना की गई, जिसने प्रौढ शिक्षा के कार्यक्रम को आगे बढाया। इसके अतिरिक्त भारत सरकार न प्रौढ शिक्षा को पचवर्षीय योजनाओ म भी प्रमुख स्थान दिया और इस हेतु क्रमश प्रथम पचवर्षीय योजना म ७ ५ करोड, द्वितीय में १० करोड, तृतीय म १२ करोड रुपय की व्यवस्था की थी। छठी पचवर्षीय योजना म प्रौढ शिक्षा कार्यक्रमो के लिए अरबो रुपय व्यय किये जाने का प्रावधान है

विगत वर्षों म प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम की उपलब्धि आशाजनक नही रही। इसलिए ५ अप्रैल १९७७ ई० को भारत सरकार ने प्रौढ शिक्षा सम्बन्धी एक नई नीति की घोषणा की। तत्पश्चात् २ अक्टूबर १९७८ ई० को देश भर म प्रौढ शिक्षा का विराट कार्यक्रम लागू किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, देश भर म ८०

करोड़ प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का लक्ष्य रखा गया और २०० करोड़ रुपये की धन-राशि व्यय हेतु निर्धारित की गई।

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण प्रणाली, शिक्षण केन्द्र आदि बातों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। कार्यक्रम की रूपरेखा के अनुसार प्रौढ़ शिक्षा का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम ८ से १० माह की अवधि में पूरा किया जायेगा और प्रौढो को ३५१ घण्टे शिक्षा प्रदान की जायेगी। इस शैक्षिक कार्यक्रम का संचालन परियोजना अधिकारी, पूर्वकालिक निरीक्षक व अनुदेशक शिक्षक करेंगे। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निरक्षर महिलाओं को भी शिक्षित करने की व्यवस्था की गई है।

प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम को गतिशील बनाने के लिए एक राष्ट्रीय प्रौढ शिक्षा बोर्ड स्थापित किया गया है। इसके सदस्य केन्द्रीय मन्त्री और योजना आयोग के अध्यक्ष आदि होंगे। राज्य स्तर पर भी प्रौढ शिक्षा बोर्डों की स्थापना की जा रही है। प्रत्येक जिले मे जिलाधीश को प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम को सुचारु रूप से चलाने का दायित्व सौंपा गया है।

वस्तुत: प्रौढ शिक्षा योजना का कार्यक्रम बड़ा ही उपयोगी और उत्साहवर्द्धक है, तथापि इस योजना की सफलता वर्तमान भारत की परिस्थितियों में उतनी सफल प्रतीत नही होती। इसके निम्न कारण हैं—

(१) अभी तक प्रौढ शिक्षा का कोई निश्चित पाठ्यक्रम भी तैयार नही हो पाया है। पाठ्यक्रम के अभाव मे इस योजना की सफलता सन्दिग्ध प्रतीत होती है।

(२) प्रौढ शिक्षा के प्रसार मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण कठिनाई यह है कि देश में योग्य शिक्षको का अभाव है और साधनो व धन की पर्याप्त कमी है।

(३) भारत में निरक्षरों की सख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है, अतः इतनी बडी सख्या मे निरक्षरों को साक्षर बनाना एक कठिन कार्य है।

(४) देश के राजनीतिज्ञ और उच्च पदाधिकारी प्रौढ शिक्षा योजना को सफल बनाने के प्रति उतने प्रयत्नशील नही हैं।

(५) प्रत्येक जनपद मे एक प्रथम श्रेणी का प्रौढ शिक्षा अधिकारी होता है उसके अधीन तहसील एवं ब्लाक स्तर पर एक-एक परियोजना अधिकारी होते हैं। उनके अधीन गाँव स्तर पर एक-एक अनुदेशक एवं अनुदेशिका होती है। इनके प्रशिक्षण शिविर भी आयोजित किये जाते हैं। पर उपलब्धि शून्य होती है। कागज का पेट पूरा भर दिया जाता है।

इन कठिनाईयों के बावजूद भी प्रौढ़ शिक्षा योजना को एक दम निरर्थक समझना एक भारी भूल होगी। जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण, प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता, सुनिश्चित पाठ्यक्रम का निर्माण व पाठ्य पुस्तकों की व्यवस्था, योग्य शिक्षकों की नियुक्ति, संचार साधनों का समुचित विकास, आवश्यक वित्तीय व्यवस्था आदि उपायो को अपनाकर प्रौढ शिक्षा योजना को सफल बनाया जा सकता है और भारतीय समाज के निरक्षरता रूपी अभिशाप को दूर किया जा सकता है। सरकार इस दिशा में भरपूर द्रव्य एवं उपकरण दे रही है। १९९० मे प्रत्येक केन्द्र के लिए सरकार ने १४ हजार रुपये का बजट देने का फैसला किया है। जिसमें केन्द्र पर टेलीविजन, टेपरिकार्डर और लघु पुस्तकालयों की व्यवस्था की जानी है। प्रत्येक जनपद में ब्लाक स्तर पर अनेक केन्द्र होते हैं। इसके साथ ही साथ सिलाई एवं

पढ़ाई की दर्जनों मशीनें, प्रौढ़ छात्रों के लिए स्लेट, किताबें, कापियाँ अर्थात् सभी कुछ नि:शुल्क उपलब्ध कराया गया है। लेकिन पढ़ने वालों में वही फर्जी नाम, फर्जी उपस्थिति, जहाँ तक मेरी जानकारी है, दिखाई जाती है। प्रौढ़ शिक्षा योजना के अन्तर्गत सरकार की योजना १९९५ तक निरक्षरता उन्मूलन की है।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की सार्थकता तभी है, जब वह प्रौढ़ों की कार्यक्षमता, सामाजिक चुनौतियों से निपटने की उत्सुकता और दलीय सकीर्णता से ऊपर उठकर भावात्मक एकता स्थापित करने में सहायक हो।

१८ प्रदूषण और पर्यावरण

मनुष्य पर्यावरण की उपज होती है, अर्थात् मानव जीवन को पर्यावरण की परिस्थितियाँ व्यापक रूप से प्रभावित करती हैं। पृथ्वी के समस्त प्राणी अपनी वृद्धि व जीवन क्रम को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए 'सन्तुलित पर्यावरण' पर निर्भर रहते हैं। सन्तुलित पर्यावरण में सभी तत्व एक निश्चित अनुपात में विद्यमान होते हैं, किन्तु जब पर्यावरण में निहित एक या अधिक तत्वों की मात्रा अपने निश्चित अनुपात से बढ़ जाती है, या पर्यावरण में विषैले तत्वों का समावेश हो जाता है, तो वह पर्यावरण प्राणियों के जीवन के लिए घातक बन जाता है। पर्यावरण में होने वाले इस घातक परिवर्तन को ही प्रदूषण की संज्ञा दी जाती है।

सामान्य में प्रदूषण जलवायु या भूमि के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में होने वाला कोई भी अवाछनीय परिवर्तन है, जिससे मनुष्य, अन्य जीवों, औद्योगिक प्रक्रियाओं, सांस्कृतिक तत्वों तथा प्राकृतिक ससाधनों को कोई हानि हो या होने की सम्भावना हो। प्रदूषण में वृद्धि का कारण मनुष्य द्वारा वस्तुओं के प्रयोग करने के बाद फेंक देने की प्रवृत्ति और मनुष्य की बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण आवश्यकताओं में वृद्धि है। दूसरे शब्दों में प्रदूषण वे सभी पदार्थ और ऊर्जा हैं, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मनुष्य के स्वास्थ्य और उसके संसाधनों को हानि पहुँचाते हैं। इस प्रकार प्रदूषण मनुष्य की वांछित गतिविधियों का अवाछनीय प्रभाव है।

प्रदूषण के विभिन्न रूप हो सकते हैं, जिनमें वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण प्रमुख हैं। वायु प्रदूषण सबसे अधिक व्यापक व हानिकारक है। वायुमण्डल में विभिन्न गैसों की मात्रा लगभग निश्चित रहती है और अधिकांशतः आक्सीजन और नाइट्रोजन ही होती है। श्वसन अपघटन और सक्रिय ज्वालामुखियों से उत्पन्न गैसों के अतिरिक्त हानिकारक गैसों की सर्वाधिक मात्रा मनुष्य के कार्य-कलापों से उत्पन्न होती है। इनमें लकड़ी, कोयले खनिज तेल तथा कार्बनिक पदार्थों के ज्वलन का सर्वाधिक योगदान रहता है। औद्योगिक संस्थानों से निकलने वाली सल्फर डाइ-आक्साइड और हाइड्रोजन सल्फाइड गैसें वायुमण्डल में पहुँचकर पुन: वर्षा के जल के साथ घुलकर पृथ्वी पर पहुँचती हैं और गन्धक का अम्ल बनाती हैं, जो प्राणियों और अन्य पदार्थों को काफी हानि पहुँचाता है। नाइट्रोजन आक्साइड जल से मिलकर अम्लीय स्थिति उत्पन्न करती है। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रदूषण प्रभाव स्मॉग के रूप में होता है। स्मॉग धुँआ और कोहरे के मिलने से बनता है। इससे कम ताप वाले प्रदेशों के प्राणियों को काफी हानि पहुँचती है। वायु प्रदूषकों में फ्लोराइड का भी प्रमुख स्थान है। ये गैसीय पदार्थ एल्युमिनियम के कारखानों में सर्वाधिक मात्रा में पाये जाते हैं। पौधों पर इसका प्रभाव पत्तियों को नष्ट करने के रूप में

होता है। इसके अतिरिक्त भूसे और चारे के साथ जली हुई पत्तियाँ पशुओं के पेट में पहुँचने पर अत्यन्त घातक सिद्ध होती हैं। इसके साथ ही कीटनाशक, शाकनाशक, जीवनाशक, रसायनों निकल टाइटेनियम, बेरीलियम, टिन, आर्सेनिक, पारा, सीसा आदि के कार्बनिक यौगिकों के कण भी वायु मे रहते हैं। इनका घातक प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर पड़ता है। सामान्य प्रभाव एलर्जी उत्पन्न करता है, जिसका कोई विशेष उपचार नही हो पाता। अन्य प्रभावों मे फेफड़ों के रोग अधिक पाये जाते हैं।

प्रदूषण और पर्यावरण

१. प्रस्तावना।
२. प्रदूषण का अर्थ।
३. प्रदूषण के प्रकार।
 (१) वायु प्रदूषण।
 (२) जल प्रदूषण।
 (३) ध्वनि प्रदूषण।
४. प्रदूषण की समस्या के निराकरण के उपाय।
५. उपसंहार।

मनुष्य, पौधों और प्राणियों को रोग से बचाने के लिए और हानिकारक जीवों के विनाश के लिए अनेकानेक रसायनों का प्रयोग कर रहा है। उद्योगों मे भी असंख्य रसायनों के प्रयोग मे वृद्धि हो रही है, जो तत्व कभी पर्यावरण मे विद्यमान नही थे, ऐसे सैकड़ो रसायन मनुष्य प्रति वर्ष संश्लेषित कर रहा है। विगत दशकों में डी. डी. टी. और उसके समान अन्य रसायनों का विकास और विस्तार तेजी से हुआ है और शीघ्र ही उसके घातक परिणाम भी हमारे सामने आ गये हैं।

जल सभी प्राणियों के जीवन के लिए एक अनिवार्य वस्तु है। पेड़-पौधे भी आवश्यक पोषक तत्व जल से ही घुली अवस्था में ग्रहण करते हैं। जल मे अनेक कार्बनिक, अकार्बनिक पदार्थ, खनिज तत्व व गैसें घुली होती हैं। यदि इन तत्वों की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो जल हानिकारक हो जाता है और उसे हम प्रदूषित जल कहते हैं। जल का प्रदूषण अनेक प्रकार से हो सकता है। पीने योग्य जल का प्रदूषण रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु, विषाणु, कल-कारखानों से निकले हुए वर्जित पदार्थ, कीट नाशक पदार्थ व रासायनिक खाद से हो सकता है। ऐसे जल के उपयोग से पीलिया, आँतों के रोग व अन्य संक्रामक रोग हो जाते हैं। दिल्ली, कानपुर, वाराणसी आदि महानगरों में भारी मात्रा मे गन्दे पदार्थ नदियों के पानी में प्रवाहित किये जाते हैं, जिससे इन नदियों का जल प्रदूषित होकर हानिकारक बनता जा रहा है।

महानगरों मे अनेक प्रकार के वाहन, लाउडस्पीकर, बाजे एवं औद्योगिक संस्थानों की मशीनों के शोर ने ध्वनि प्रदूषण को जन्म दिया है। ध्वनि प्रदूषण से न केवल मनुष्य की श्रवणशक्ति का ह्रास होता है, वरन् उसके मस्तिष्क पर भी इसका घातक प्रभाव पड़ता है। परमाणु शक्ति उत्पादन व नाभकीय विखण्डन ने वायु, जल व ध्वनि तीनों प्रदूषणों को काफी विस्तार दे दिया है। इसके घातक परिणाम न केवल वर्तमान प्राणियों को, वरन् उसकी भावी पीढ़ियों को भी भुगतने पड़ेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक युग मे प्रदूषण की समस्या अत्यधिक भयंकर रूप धारण करती जा रही है। यदि इस समस्या का निराकरण समय रहते न किया गया, तो एक दिन ऐसा आयेगा, जबकि प्रदूषण की समस्या सम्पूर्ण मानव जाति को निगल जायेगी। अतः प्रदूषण से बचने के लिए अग्रलिखित उपायों पर अमल करना आवश्यक है—

(१) वृक्षारोपण का कार्यक्रम तेजी से चलाया जाय और भारी संख्या में नये वृक्ष लगाये जायें। (२) वनों के विनाश पर रोक लगायी जाय। (३) बस्ती व नगर के समस्त वर्जित पदार्थों के निष्कासन के लिए सुदूर स्थान पर समुचित व्यवस्था की जाय। (४) बस्ती व नगर में स्वच्छता व सफाई की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। (५) पेय जल की शुद्धता की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। (६) परमाणु विस्फोटों (अहमदाबाद) पर पूर्णतः नियन्त्रण लगाया जाय।

हमारे देश में सरकार ने प्रदूषण की समस्या के निराकरण के लिए अनेक उपाय किये हैं। केन्द्रीय जन स्वास्थ्य इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने जल व वायु प्रदूषण को रोकने के लिए अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये हैं, जिन पर तेजी के साथ अमल भी किया जा रहा है। कारखानों एवं खानों में प्रदूषण रोकने के उपायों की खोज में औद्योगिक विष विज्ञान संस्थान (लखनऊ) और राष्ट्रीय संस्थान (अहमदाबाद) विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं।

१९८८ के मध्य में सरकार भारत ने सभी राज्य सरकारों को स्पष्ट कड़े निर्देश दिये हैं कि प्रदूषण फैलाने वाली फैक्ट्रियों में ट्रीटमेंट प्लान्ट लगवाये जायें। प्रदेश सरकारों ने प्रदूषण फैलाने वाली फैक्ट्रियों के खिलाफ कार्यवाही करते हुए उन्हें एक मास के भीतर ट्रीटमेंट प्लान्ट लगाने के निर्देश दिये हैं। अगर एक माह के भीतर ट्रीटमेंट प्लान्ट नहीं लगाये गये तो अगली कार्यवाही में उन पर जुर्माना किया जायेगा। केन्द्र सरकार के प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड ने १९८८ के आरम्भ में ही ऐसी फैक्ट्रियों की लिस्ट जो प्रदूषण फैला रही हैं, मंगाली थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत सरकार देश में प्रदूषण रोकने के लिए युद्ध-स्तर पर प्रयत्नशील है।

वैज्ञानिकों का मत है कि गंगाजल में कैंसर पैदा करने वाले तत्व पाये गये हैं। उनका विचार है कि नरौरा परमाणु बिजली घर चालू हो जाने के बाद गंगा में रेडियोधर्मिता का खतरा बढ़ जायेगा।

गंगा एक्शन प्लान के अंतर्गत कार्य करने वाले अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक इन सम्भावित खतरों के प्रति सतर्क हैं और वे गंगाजल की रेडियोधर्मिता का पता लगा रहे हैं। इसके साथ-साथ गंगाजल में कैंसर पैदा करने वाले तत्व भी पाये गये हैं।

गंगा सफाई योजना के अंतर्गत अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय ने एक योजना प्रस्तुत की थी। इसकी केन्द्र सरकार ने स्वीकृति प्रदान करते हुए योजना के लिए ३१ लाख रुपये दिये और इसकी अवधि तीन वर्ष निर्धारित की। योजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय और विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, वनस्पति, रसायन विभाग के विभागों सहित इंजीनियरिंग कालेज के अनेक वैज्ञानिक अपने-अपने विषयों पर शोध कार्य कर रहे हैं।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के इन समस्त विभागों को अध्ययन के लिए नरौरा से कन्नौज तक का क्षेत्र सौंपा गया है। उन्होंने अध्ययन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण क्षेत्र को चार भागों में बाँटा है और नरौरा, कछला, फतेहगढ़ तथा कन्नौज में अध्ययन केन्द्र बनाये गये हैं। जहाँ से गंगाजल के नियमित सैम्पल लेकर उनका रासायनिक व अन्य प्रकार से विश्लेषण कर गंगा का परीक्षण किया जाता है।

अब तक एक वर्ष में नरौरा किये गये अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नरौरा से कन्नौज तक के सम्पूर्ण क्षेत्र में कोई भी ऐसा नाला या फिर औद्योगिक इकाई ऐसी नहीं है जो दूषित जल को गंगा में प्रवाहित करती हो। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में गंगाजल

का प्रदूषण किसानों द्वारा फसलों में प्रयोग किये जाने वाले कीटनाशकों और रासायनिक खादों से होता है।

किसान फसल बढ़ाने के लिए उक्त दोनों का प्रयोग सही जानकारी न होने के कारण निर्धारित मात्रा से अधिक करता है। वर्षा होने पर खेत में भरे पानी के साथ बहकर यह रसायन गंगा के पानी में जाकर मिल जाते हैं। इसके साथ-साथ गंगा में मिलने वाली अनेक बरसाती नदियाँ भी इसी प्रकार के रसायनों को बहाकर लाती हैं और इस प्रकार गंगाजल में हानिकारक रसायनों की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। ऐसे रसायनों में एक्मलाई सिगला फालमोनला आदि हैं। इसके अतिरिक्त गंगाजल में कैंसर पैदा करने वाले रसायन, मट्रोजिन्म, मासी मोजन्स आदि भी पाये गये हैं, किन्तु इनकी मात्रा बहुत कम है।

वैज्ञानिक गंगाजल की रेडियोधर्मिता का भी अध्ययन कर रहे हैं। यद्यपि यह विषय गंगा सफाई अभियान में शामिल नहीं किया गया है। किन्तु नरौरा में परमाणु विद्युत-गृह बनने और आगामी कुछ माह में उसके चालू होने से रेडियोधर्मिता की सम्भावनायें बढ़ गई हैं। गंगा एक्शन प्लान में लगे अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय रसायन विभाग के डा. मसूद अहमद ने बताया कि वैज्ञानिक प्रत्येक सीमा से परे होता है और उसका वास्तविक उद्देश्य यही होता है कि वह अपने शोध में समस्याओं के प्रत्येक पहलू पर विचार कर सही बात को उजागर कर।

बताया जाता है कि नरौरा परमाणु बिजली घर में रेडियोधर्मिता के खतरों से निपटने के लिए हर संभव उपाय किये गये हैं किन्तु फिर भी खतरे की सम्भावना से इंकार नहीं किया जाता। विद्युत-गृह में कुछ ऐसा निषेध क्षेत्र है जहाँ गंगा एक्शन प्लान के अन्तर्गत कार्य करने वाले वैज्ञानिकों को विद्युत-गृह के अन्दर जाने की अनुमति नहीं है। अत. यहाँ प्रयोग होने वाले परमाणु ईंधन से रेडियोधर्मिता का कितना प्रभाव गंगा पर होगा इसका वास्तविक प्रतिशत ज्ञात नहीं हो सकता किन्तु वैज्ञानिकों का स्पष्ट विचार है कि इससे गंगाजल अवश्य प्रभावित होगा।

इतना होने के बावजूद भी प्रदूषण की समस्या दिन-प्रतिदिन गम्भीर, जटिल और विश्वव्यापी होती जा रही है। यद्यपि विश्व के सभी देश प्रदूषण की समस्या के समाधान के लिए प्रयासरत हैं, फिर भी औद्योगिक विकास, नागरीकरण, वनों का विनाश और जनसंख्या में अतिशय वृद्धि होने के कारण यह समस्या निरन्तर गम्भीर होती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक संस्थाओं जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व पर्यावरण संस्थान, अन्तर्राष्ट्रीय वन्य संरक्षण संस्थान ने प्रदूषण की समस्या को हल करने के लिए अनेक उपाय किये हैं, तथापि अभी तक आशाजनक परिणाम सामने नहीं आये हैं और निकट भविष्य में भी प्रदूषण की समस्या के निराकरण और पर्यावरण की शुद्धता के कोई आसार नजर नहीं आ रहे हैं।

१९　　सातवाँ गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन

१९८३

आज सम्पूर्ण विश्व दो शक्तिशाली गुटों—पूँजीवादी और साम्यवादी, में बँटा हुआ है। विश्व के अधिकांश राष्ट्र इन दोनों में से किसी एक के सदस्य हैं। लेकिन विश्व में कुछ राष्ट्र ऐसे भी हैं जो इन दोनों गुटों में शामिल न होकर गुट निरपेक्षता

या तटस्थता की नीति का पालन कर रहे हैं। इन राष्ट्रों को ही गुट निरपेक्ष कहा जाता है। इन राष्ट्रों की प्रमुख नीति किसी देश के घरेलू मामलों में दखल न देकर शान्ति एवं सहयोग की नीति का पालन करना है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व की महाशक्तियों के मध्य बढ़ती हुई अणु आयुधों की प्रबल प्रतियोगिता ने समस्त मानव जाति को बारूद के ढेर पर बिठा दिया है। किसी भी समय एक छोटी सी चिनगारी इस बारूद में ऐसा भयंकर विस्फोट करेगी कि उसकी आग में सम्पूर्ण मानव जाति का अस्तित्व ही मिट जायेगा। इस विषम परिस्थिति में गुट निरपेक्ष देश अपनी ही एकता के बल पर भयाक्रान्त मानव जाति की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एशिया और अफ्रीका के गुट निरपेक्ष देशों ने पारस्परिक एकता के लिए अनेक प्रयत्न किये और आज तो उन्हें संसार की तीसरी शक्ति (तृतीय विश्व) के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। भारत के प्रधानमन्त्री स्वर्गीय प० जवाहरलाल नेहरू का पंचशील सिद्धान्त गुट निरपेक्ष देशों की एकता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

विश्व में गुट निरपेक्ष आन्दोलन का श्रीगणेश भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। सन् १९५५ के बाडुंग सम्मेलन में अफ्रीका व एशिया के गुट निरपेक्ष देशों ने एकमत से विश्व में निःशस्त्रीकरण को बढ़ावा देने, शान्ति और सहयोग की नीति पर चलने का निश्चय किया। बाडुंग के बाद गुट निरपेक्ष देशों के अनेक सम्मेलन हुए जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम गुट निरपेक्ष सम्मेलन १९६१ में बेलग्रेड में हुआ, दूसरा सम्मेलन १९६४ में काहिरा में, तीसरा सम्मेलन १९७० में लुसाका में, चौथा सम्मेलन १९७३ में अल्जीरिया में, पाँचवाँ सम्मेलन १९७६ में कोलम्बो में, छठा सम्मेलन १९७९ में हवाना में हुआ। इन सम्मेलनों में गुट निरपेक्ष आन्दोलन को सफल बनाने में भारत के पं० जवाहरलाल नेहरू, मिस्र के कर्नल नासिर और युगोस्लाविया के मार्शल टीटो ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

सातवाँ गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन ७ मार्च से १२ मार्च १९८३ ई० तक भारत की राजधानी नयी दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित हुआ। गुट निरपेक्ष आन्दोलन के इतिहास में यह सम्मेलन सबसे विशाल, महत्वपूर्ण और अभूतपूर्व था। इस सम्मेलन में १०१ गुट निरपेक्ष देशों के राष्ट्राध्यक्षों, प्रधानमन्त्रियों, राजनीतिज्ञों और गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। यह सम्मेलन आधुनिक भारत के इतिहास की एक ऐतिहासिक और अविस्मरणीय घटना थी। भारत ने अपने आमन्त्रित गण-मान्य अतिथियों के स्वागत, सत्कार, आवास, मनोरंजन आदि की प्रशंसनीय व्यवस्था की थी। इस सम्मेलन में देश की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी, क्यूबा के राष्ट्रपति फीदेल कास्त्रो, फिलीस्तीनी मुक्ति संगठन के नेता यासिर अराफात ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

७ मार्च, १९८३ ई० के पावन दिन को नई दिल्ली स्थित विज्ञान भवन में सातवें गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन का उद्घाटन श्रीमती इन्दिरा गाँधी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। क्यूबा के राष्ट्रपति फीदेल कास्त्रो और श्री यासिर अराफात ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी को बधाई देते हुए सम्मेलन की सफलता की कामना की। सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर आरूढ़ होकर श्रीमती गाँधी ने अपने प्रारम्भिक भाषण में

कहा—"वर्तमान सम्मेलन विश्व के इतिहास में शांति के लिए सबसे बड़ा और अभूतपूर्व सम्मेलन है। हमारे समक्ष दो भीषण सकट हैं। पहला विश्व का अर्थतंत्र विनाश के कगार पर पहुँच चुका है और दूसरा परमाणु युद्ध विश्व की मानव जाति को नष्ट करने के लिए सम्भावित प्रतीत होता हैं। हमें इन दोनो संकटो को दूर करने के लिए कारगर कदम उठाने हैं।" श्रीमती गांधी के भाषण को आमन्त्रित राष्ट्राध्यक्षों, प्रधानमन्त्रियों, प्रतिनिधियो और अन्य गणमान्य अतिथियों ने ध्यानपूर्वक सुना और कई बार करतल ध्वनि की। १२ मार्च १९८३ ई० तक यह सम्मेलन नई दिल्ली के विज्ञान भवन मे सफलतापूर्वक चलता रहा। गुट निरपेक्ष देशों के प्रतिनिधियों ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नो पर विचार विमर्श किया और उनके लिए निराकरण के सुझाव दिये। सम्मेलन के समापन के पूर्व गुट निरपेक्ष देशों ने एक राजनीतिक और आर्थिक घोषणा पत्र भी सहर्ष स्वीकार किया।

सातवाँ गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन

१. प्रस्तावना।
२. गुट निरपेक्ष आन्दोलन की आवश्यकता।
३. गुट निरपेक्ष आन्दोलन का श्रीगणेश।
४. गुट निरपेक्ष देशों के सम्मेलन।
५. सातवें गुट निरपेक्ष आन्दोलन की उपलब्धियाँ।
६. उपसंहार।

सातवें गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन की उपलब्धियाँ बड़ी महत्वपूर्ण रही। सर्वप्रथम तो इस आन्दोलन में १०१ देशो के नेता सम्मिलित हुए, इससे पूर्व किसी सम्मेलन में इतने अधिक नेता शामिल नही हुए थे, इस दृष्टि से यह सम्मेलन बडा महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक था। दूसरे इस सम्मेलन द्वारा जारी संदेश मे गुट निरपेक्ष देशों की प्रमुख राजनीतिक और आर्थिक माँगे सार रूप में प्रस्तुत की गई और इसमें विश्व की महाशक्तियो से अपील की गई कि वे विश्व को परमाणु युद्ध की ओर बरबस बढ़ने से रोकें, जो हमारे युग में ही नहीं वरन् हमारी आगामी पीढियो में मानव-जाति के कल्याण के लिए भयंकर खतरा बन गया है। इस संदेश में न्याय और औचित्य पर आधारित नयी विश्व अर्थ-व्यवस्था की भी माँग की गई और यह अपील की गई कि आर्थिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया आरम्भ करने तथा विश्व अर्थ-व्यवस्था को विकास पद पर अग्रसर करने के लिए प्रभावकारी कदम उठाये जाने चाहियें। संदेश के अन्त में कहा गया, "हमारी सभ्यता के सामने जो संकट उपस्थित है वह मानवीय इतिहास में अभूतपूर्व है, बड़े-बड़े काम हमारे सामने हैं और उनके लिए विवेकपूर्ण निर्णय आवश्यक हैं, महाशक्तियो से हम अपील करते हैं कि वे अविश्वास का परित्याग करें और निःशस्त्रीकरण से सम्बन्धित विभिन्न उपायो के बारे में सहमति पर पहुँचने और हम सभी के लिए खतरा बने हुए आच्छादित आर्थिक संकट से निकलने के मार्ग की खोज हेतु परस्पर मैत्रीपूर्ण व सहयोग तथा ईमानदारी व दूरदर्शितापूर्ण वार्ता का शुभारम्भ करें।"

सारांशत: सातवाँ गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन भारत की एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है। इसने विश्व की मानव जाति के कल्याण के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया है। उसके साथ ही विश्व की महाशक्तियों के समक्ष गुट निरपेक्ष देशों को एक तृतीय विश्व के रूप मे उपस्थित करके उनकी सामूहिक शक्ति का आभास कराया है। संक्षेप में यह शिखर सम्मेलन शान्ति, सहयोग और बन्धुत्व का सच्चा प्रतीक है।

वर्तमान काल में खेलो का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। विश्व के लगभग सभी देशो में खेलो के महत्व को स्वीकार किया गया है। विश्व शिक्षण पद्धतियों मे खेल द्वारा शिक्षा के सिद्धान्त पर बल दिया गया है। खेल एक निरर्थक क्रिया न होकर बालक की एक महत्वपूर्ण एवं स्वाभाविक प्रक्रिया है। सबसे पहले यूनानी विचारक प्लेटो ने खेल के महत्व को समझा था। लेकिन उसने खेल को शारीरिक विश्राम का साधन बताया था। इसके बाद फ्रोबेल नामक शिक्षा शास्त्री ने अपनी किण्डर गार्टन पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त 'खेल' रखा। उसका कहना था कि खेल बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति है इसलिए इसका सम्बन्ध शिक्षा से जोड देना चाहिए, क्योंकि खेल ही खेल मे बालक ऐसी शिक्षा ले सकता है, जो अन्य साधनों द्वारा प्राप्त करनी असम्भव है। श्री कुक ने खेल को सीखने का एक महत्वपूर्ण साधन बताया है। उनका कहना है कि बालक सीखने के लिए खेलता है। खेल में बालक की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ स्पष्ट, बलवती तथा आदर्श रूप मे प्रकट होती हैं।

खेलो का इतिहास अति प्राचीन है। प्रागैतिहासिक काल से ही खेल मनुष्य के मनोरंजन का प्रमुख साधन रहे हैं। आधुनिक काल में तो खेलो का महत्व अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। आजकल विश्व भर में खेलो की अनेक प्रतियोगितायें होती हैं, जिनमे ओलम्पिक खेल, एशियाई खेल और राष्ट्र मण्डलीय खेल अन्तर्राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

ओलम्पिक खेलो का इतिहास काफी पुराना है। सर्वप्रथम यूनान के नगर राज्य एथेन्स मे ७७६ ईसा पूर्व मे ओलम्पिया पर्वत पर खेल-कूद की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया था। उसके बाद ६७ ई० तक पूर्व में खेल एथेन्स में ही हुए, परन्तु ३९४ ई० में आन्तरिक संघर्षों के कारण यूनान के सम्राट थ्योडोसियस ने इन खेल प्रतियोगिताओं को बन्द करवा दिया। इसके बाद फ्रांस के बैरन (लार्ड) पाइरे दि कुबरतीन ने आधुनिक खेल प्रतियोगिताओं को आरम्भ करवाया। सन् १८९६ ई० में प्रथम आधुनिक ओलम्पिक खेल प्रतियोगिता यूनान के नगर एथेन्स में आयोजित हुई। इसके बाद से प्रति चार वर्ष के बाद विश्व के विभिन्न देशो के बड़े बड़े नगरो में ओलम्पिक खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है, जिसमे विश्व के विभिन्न देशो के खिलाड़ी भाग लेते हैं। पेरिस (१९००, २४), सेण्ट लुइस (१९०४), लन्दन (१९०८, ४८), स्टाकहोम (१९१२), बर्लिन (१९१६, ३६), एण्टवर्प (१९२०), एमस्टरडम (१९२८), लॉस एँजिल्स (१९३२, ८४), हेलसिंकी (१९५२), मेलबोर्न (१९५६), रोम (१९६०), टोकियो (१९६४), मैक्सिको (१९६८), म्यूनिख (१९७२), मांट्रियल (१९७६) तथा मास्को (१९८०) नगरों को ओलम्पिक खेल आयोजित करने का गौरव प्राप्त हो चुका है।

लॉस एँजिल्स अमरीका का पहला नगर है जिसे दूसरी बार ओलम्पिक खेलों को २८ जुलाई से १२ अगस्त १९८४ ई० तक आयोजित करने का गौरव प्राप्त हुआ है। २८ जुलाई, १९८४ ई० को लॉस एँजिल्स के कोलेसियम में अमरीकी राष्ट्रपति रीगन ने २३वें ओलम्पिक खेलों का उद्घाटन किया। यह उद्घाटन समारोह बड़ा ही भव्य और आकर्षक था। इस अवसर पर अमेरिका के एक सुपरमैन ने आकाश में उड़कर दर्शकों को आश्चर्य चकित कर दिया। उद्घाटन समारोह के अवसर पर

१००० से अधिक गुब्बारे आकाश में छोड़े गये और अमेरीकियों ने अपने परम्परागत नृत्यों व संगीत का प्रदर्शन किया। ओलम्पिक मशाल प्रज्जवलित करने के बाद ओलम्पिक खेलों का श्रीगणेश हो गया।

लॉस एँजिल्स में आयोजित २३वें ओलम्पिक खेलों में विश्व के १४२ देशों के लगभग १२ हजार खिलाड़ियों और ४ हजार अधिकारियों ने भाग लिया। इन खेलों को देखने के लिए विश्व के कोने-कोने से लगभग ६ लाख से अधिक दर्शक और ८ हजार संवाददाता आये। खेलों में सुरक्षा के लिए व्यापक प्रबन्ध किये गये और आधुनिकतम इलेक्ट्रानिकी की सहायता से विभिन्न प्रतियोगिताओं के नतीजों को अति शीघ्र विश्व के सुदूर स्थानों तक प्रेषित किया गया। कम्प्यूटर द्वारा संचालित सुदूर संचार प्रणाली ने विश्व के लगभग दो करोड़ दर्शकों का मनोरंजन किया।

ओलम्पिक खेल

१. प्रस्तावना खेलों का महत्व।
२. खेलों का संक्षिप्त इतिहास।
३. लॉस एँजिल्स में ओलम्पिक खेल ८४।
४. ओलम्पिक खेल की पदक तालिका।
५. उपसंहार।

ओलम्पिक इतिहास में यह पहला अवसर था, जबकि इन खेलों को आयोजित करने का भार एक निजी व्यावसायिक संगठन ने उठाया। अमरीकी ओलम्पिक कमेटी के अध्यक्ष विलियम सिमोन के अनुसार इन ओलम्पिक खेलों के आयोजन पर लगभग ५००० लाख डालर व्यय हुए और निजी संगठन को ११० लाख डालर का शुद्ध लाभ हुआ।

लॉस एँजिल्स में २८ जुलाई से १२ अगस्त १९८४ तक तीरन्दाजी, एथेलेटिक्स, बास्केट बॉल, मुक्केबाजी, केवोइंग, साइक्लिंग, घुड़सवारी, तलवार बाजी, फुटबाल, जिमनास्टिक, हैण्डबाल, हॉकी, जूडो, पैंटायलन, नौका दौड़, निशानेबाजी, तैराकी, गोताखोरी, वाटरपोलो, वालीबॉल, भारोत्तोलक, कुश्ती और पाल नौकायन की लगभग २२३ प्रतियोगितायें हुईं।

१२ अगस्त १९८४ की सुहावनी शाम में धीमी पड़ी हुई ओलम्पिक मशाल, स्कोर बोर्ड पर अंकित किया और १९८८ में सियोल में फिर मिलेंगे के निमन्त्रण और विश्वास के साथ विश्व के सबसे बड़े खेल मेले का समारोह पूर्वक समापन हुआ। लगभग ९९ हजार दर्शकों के समक्ष विश्व भर के खिलाड़ियों ने हँसते-गाते और धूम मचाते हुए एक दूसरे से विदा ली। इस अवसर पर आकर्षक आतिशबाजियाँ छोड़ी गईं। और विभिन्न प्रकार के रंगारंग कार्यक्रम आयोजित हुए।

लॉस एँजिल्स के ओलम्पिक खेलों में अनेक खिलाड़ियों ने नये विश्व रिकार्ड स्थापित किये। अमेरिका ने ८३ स्वर्ण, ६१ रजत और ३० कांस्य पदक जीतकर प्रथम स्थान प्राप्त किया। दूसरा स्थान रुमानिया, तीसरा पश्चिमी जर्मनी, चौथा चीन और पांचवां स्थान इटली को मिला। पाकिस्तान ने हॉकी का स्वर्ण पदक जीता। जापान व दक्षिण कोरिया ने पहले से अधिक पदक जीत कर एशिया महाद्वीप को गौरवान्वित किया। विश्व विख्यात मेराथन दौड़ में पुर्तगाल ने स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

तेइसवें ओलम्पिक खेलों में यद्यपि भारत को कोई पदक नहीं मिला, तथापि अनेक खिलाड़ियों का प्रदर्शन काफी उत्साहजनक रहा। भारत की हाकी टीम ने अपने खेल का अच्छा प्रदर्शन किया। भारतीय धाविका पी० टी० उषा ४०० मीटर

की दौड़ में और बाधा दौड़ में कुछ सेकण्डों की अधिकता से ही पदक पाने से वंचित रह गई, यद्यपि उनका प्रदर्शन काफी अच्छा रहा।

सारांशत तेइसवें ओलम्पिक खेलों का आयोजन बड़ी सफलता के साथ लॉस एंजिल्स में किया गया। विश्व बन्धुत्व की भावना को बढ़ाने में ओलम्पिक खेलों की भूमिका चिरस्मरणीय रही है और आगे भी रहेगी। सच तो यह है कि ओलम्पिक खेल मानव सभ्यता की उत्कृष्टतम उपलब्धि हैं। ●

२१ हमारी सामाजिक समस्यायें

आज हिन्दू जाति कुरीतियों का घर है, इन कुरीतियों ने उसे जर्जर कर दिया है। समय बदला, देश की स्थिति बदली, हम स्वतन्त्र हुये, परन्तु हमारी सामाजिक विषमतायें आज भी वैसी ही हैं, जैसी दो सौ वर्ष पहले थीं। ये दोष कुछ तो अंग्रेजों ने हमारे समाज को दिए थे और कुछ हमारे ही घर के स्वार्थी धर्म के ठेकेदारों ने। एक समय था जब हमारा देश, हमारा समाज विश्व में सर्वश्रेष्ठ समाजों में गिना जाता था। यहाँ की जनता सुखी और धन-धान्य से सम्पन्न थी।

हमारी सामाजिक समस्यायें
१ प्रस्तावना
२ सामाजिक समस्यायें —
(क) स्त्रियों के प्रति अन्याय।
(ख) शूद्रों के प्रति दुर्व्यवहार।
(ग) विवाह सम्बन्धी कुरीतियाँ।
(घ) जाति पाँति का भेद-भाव।
(ङ) विद्यार्थियों में अनुशासन हीनता।
(च) सामाजिक जागृति का अभाव।
(छ) निरक्षरता की समस्या।
(ज) छात्रों में नकल की समस्या।
३ उपसंहार।

हिन्दू समाज की सबसे प्रधान समस्या स्त्रियों की है। यद्यपि भारतीय संविधान ने स्त्रियों को पुरुषों के अधिकारों के समान ही अधिकार दिये हैं परन्तु वे केवल नाममात्र के हैं। पति की इच्छा ही उसका सर्वस्व है, पति के दुराचार अन्याय, अत्याचारों को वह मूक पशु की तरह सहन करती है। उसका संसार घर की चार-दीवारी तक ही सीमित है। पति देवता की सेवा और बच्चों का पालन-पोषण करने तक ही उसका कर्त्तव्य है। घर में बैठकर यह गिनना कि किसका विवाह हुआ है? कब किसके बच्चा हुआ? इन्हीं बातों तक उसकी सामाजिक मान्यता है। [illegible] निसान बना है, मानव जाति किन परिस्थितियों में गुजर रही है, [illegible] से कोई सम्बन्ध नहीं। वह तो केवल घर की दासी है, आत्मोन्नति और आत्म-संस्कार से मतलब नहीं। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विवाह-विच्छेद, विवाह-निषेध, आदि ने उसकी और भी दुर्दशा कर दी है। न वह स्वतन्त्र वायुमण्डल में साँस ले सकती है और न स्वतन्त्रतापूर्वक किसी से बोल सकती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक की आजीवन कैद विधाता ने इसके भाग्य में लिख दी है—

'पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्च स्थविरे भावे न स्त्रीस्वतन्त्र्यमर्हति।"

अर्थात् बाल्यावस्था में पिता रक्षा करता है, युवा अवस्था में पति रक्षा करता है, वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है, इस प्रकार स्त्री कभी स्वतन्त्र नहीं रह पाती।

भारतीय स्त्री की अवनति का सबसे प्रधान कारण उसकी 'आर्थिक पराधीनता' है। उसे एक-एक पैसे के लिए पुरुषों के आगे हाथ फैलाना पडता है। इस आर्थिक स्वतन्त्रता के अपहरण ने उसे अवनति के गर्त में डाल दिया है। नारी समाज की इस प्रकार की हीनावस्था भारतीय समाज के लिये कलंक है। समाज के उत्थान के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम स्त्री का आदर करे, उसे अपने समान अधिकार दें। नारी त्याग, बलिदान, तपस्या और साधन की मूर्ति है, वह एक व्यक्ति के लिए जीवन भर साधना कर सकती है और अपने अमूल्य जीवन का बलिदान कर सकती है। प्रसाद जी ने नारी की महिमा मे लिखा है—

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में॥"

समाज की भयानक दूसरी समस्या हरिजनों के प्रति दुर्व्यवहार करना है। जिन्हें हम हरिजन कहते है, वे समाज के सबसे बड़े सेवक और तपस्वी हैं। क्या वे मनुष्य नही हैं, क्या उन्हे भगवान का नाम लेने तक का अधिकार नहीं, क्या वे उसके मन्दिर मे जाकर दर्शन नही कर सकते ? क्या वे कुएँ से अपनी प्यास बुझाने के लिए जल भी नही ले सकते ? क्या उनके शरीर में अग्नि की लपटे निकल रही हैं, जिन्हे छूने से तुम्हारा हाथ जल जाएगा ? क्या उनके शरीर में आत्मा या प्राण नही ? फिर ऐसा कौनसा कारण है, जो समाज उन्हें अपने तक नही आने देता। हाँ, यह बात अवश्य है कि उनमें हम जैसी बनावट नही है।

भगवान् पर सबका अधिकार है, जो उसका प्रेम से स्मरण करता है, वह तो उसी का है। फिर ये धनवान् बेचारे हरिजनों को मन्दिर में क्यो नहीं घुसने देते ? क्या उन पर इन्ही का एकाधिकार है ? भगवान् राम ने तो शबरी, जो भील जाति की थी, के झूठे बेर खाये थे। स्वर्गीय गुप्त जी ने लिखा है—

"गुह निषाद, शबरी तक का मन रखते हैं प्रभु कानन में,
क्या ही सरल वचन रहते हैं, इनके भोले आनन में।
इन्हें समाज नीच कहता है पर हैं ये भी तो प्राणी।
इनमें भी मन और भाव हैं, किंतु नहीं वैसी वाणी।"

शहरों मे तो यद्यपि यह दुर्व्यवहार सरकार की कठोर आज्ञाओं के कारण बन्द-सा हो गया है, परन्तु गाँवो मे तो अब भी अपनी पराकाष्ठा पर है। अतः हमें उनको भी मनुष्य समझना चाहिए और उनका आदर करना चाहिये।

हमारे समाज की विवाह प्रथा भी एक विषम समस्या है। मूक पशु को जिस तरह [illegible] रे खूँटे पर बाँध दिया जाता है, उसी प्रकार हमारी कन्याओं का [illegible] विवाह [illegible]। चाहे पति मूर्ख हो, कुरूप हो, काना हो, लंगड़ा हो, पर उसे उसके साथ जाना है। चाहे रुचि भिन्न हों, विचार भिन्न हों, स्वभाव भिन्न हो, परन्तु लड़की को माता-पिता की आज्ञा माननी पड़ती है। परिणामस्वरूप आये दिन आत्महत्याओं की दुर्घटनायें हो रही हैं। होना यह चाहिए कि समर्थ लड़की और लड़कों को अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार होना चाहिए। ऐसा करने से अनमेल विवाह की समस्या स्वतः सुलझ जाएगी। विवाह सम्बन्धी दूसरी समस्या दहेज की है। दहेज की समस्या के कारण कन्या का जीवन माता-पिता को भार मालूम पड़ता है। पहले तो गाँव में कुछ जातियों में ऐसी प्रथा थी कि लड़की का जन्म होते ही उसे आक का दूध पिला कर सुला दिया जाता था, घण्टे आधे घण्टे मे वह मर जाती थी। तभी तो कवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में कण्व के मुख से कहलवाया था कि—

"पुत्रीति जात महतीह चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क ।
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेत्ती, कन्या पितृत्व खलु नाम कष्टम् ॥"

प्रसन्नता की बात है कि भारतीय सरकार ने दहेज पर प्रतिबध लगा दिया है। परन्तु इस कुरीति की जडें इतनी गहरी चली गई हैं कि उखाडने से भी नहीं उखडती। जिस तरह पैंठ मे बैलो का मोल-तोल होता है, एक खरीदार के बाद दूसरा आता है और जो अच्छी कीमत लगा देता है उसी को बैल मिल जाता है, इसी प्रकार शादी के बाजार मे लडके बिक रहे हैं, चाहे लडकी वाला अपना मकान बेचे या भूखो मरे। वास्तव मे यह सामाजिक समस्या बडी भयकर है, इसे किसी न किसी तरह छोड देना चाहिए, इसी मे समाज का हित है।

जिस सती प्रथा को राजा राम मोहन राय जैसे समाज सुधारको ने बन्द करा दिया था अब वह स्वतन्त्र भारत में फिर से सिर उठाने लगी है। राजस्थान में रूप कुंवर के सती होने को भारत सरकार ने बडी कठोरता से लिया है। आगे इस प्रकार की घटनाओ को रोकने के लिए सरकार ने ससद् में विधेयक पेश कर सती होने को कानून विरोधी घोषित कर दिया है। सती प्रथा को प्रोत्साहित करने वालों को १६८८ के इस कानून मे कठोरतम दण्ड की व्यवस्था की गई है।

जाति-पाँति का भेद-भाव भी आज की एक सामाजिक समस्या है। समाज इसी के कारण आज विशृंखलित है। न समाज मे परस्पर प्रेम है, न सहानुभूति, न राष्ट्र का कल्याण है, न न्याय। सामूहिक और सामाजिक हित की बात तो कोई सोचता ही नहीं। ब्राह्मण, ब्राह्मण के लिये, वैश्य, वैश्य के लिए, और क्षत्रिय, क्षत्रिय के लिए ही कुछ करता है। इस जाति पाँति का विशाल रूप प्रान्तीयता में परिवर्तित हो जाता है। बगाली, बगाली का ही हित और पजाबी, पजाबी का ही हित सोचता है। यह संकीर्ण विचारधारा उत्तरोत्तर बढती जा रही है। देश की एकता में ये विचारधारायें कुठाराघात कर रही हैं। साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित होकर हमे कभी कोई काम नहीं करना चाहिये। हमारे सामने सदैव देशहित और राष्ट्र कल्याण का आदर्श होना चाहिए।

आजकल विद्यार्थियो के एक वर्ग की अनुशासन हीनता भी एक भयकर सामाजिक समस्या बनती जा रही है। आज का विद्यार्थी उद्दण्ड है, अनुशासनहीन है। आज वह भयानक स भयानक और जघन्य से जघन्य कुकृत्य करने को भी तैयार है। आज उसे न माता पिता का भय है और न गुरुजनो के प्रति श्रद्धा है। बडे-बडे अपराधो में विद्यार्थियो के नाम सुने जाते हैं। चरित्र-हीनता उसका सिरमौर बन गई है। क्या होगा इस देश का ?

सामाजिक जागृति का अभाव भी हमारी एक सामाजिक समस्या है। हम जो कुछ भी करते हैं वह अपने लिये करते हैं। न हमे देश का ध्यान है, न अपने नगर का और न पडोस का। हमारे सभी काम अपने सकुचित 'स्व' पर आधारित होते हैं, परमार्थ और परोपकार का नाम तक नही है। समाज हित हमसे बहुत दूर रह गया है। हमें इस कलुषित मनोवृत्ति का त्याग कर देना चाहिये। समाज के प्रति भी हमारे बहुत से कर्तव्य हैं, उत्तरदायित्व हैं। अत हमें सदैव समाज कल्याण के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये।

"निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी।
हम हों समष्टि के लिये व्यष्टि बलिदानी॥'

इसी प्रकार देश में बेरोजगारी की समस्या भी समाज के आगे मुह बाय खडी

है। जब बड़े-बड़े पढ़े-लिखों को हाथ पर हाथ रखे बेकार बैठे देखा जाता है, तो बड़ी लज्जा आती है, इस देश के दुर्भाग्य पर। इसी प्रकार निरक्षरता की समस्या भी इतने विशाल देश में एक भयानक समस्या है। बिना पढ़ा-लिखा व्यक्ति न अपने अधिकार को समझ पाता है और न अपने कर्तव्य का ही उसे ज्ञान होता है। भारत की नई सरकार इसको दूर करने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़-शिक्षा योजना के अन्तर्गत प्रौढ़ पाठशालायें स्थापित कर रही है।

वर्तमान में परीक्षाओं में नकल भी एक भयंकर सामाजिक समस्या बनती जा रही है। निर्भीकता और उद्दण्डता कुछ छात्रों के मन और मस्तिष्क में रहती है। इसे कैसे दूर किया जा सकता है। यह समस्या भी भारतीय शिक्षकों एवं समाज सुधारकों के आगे प्रश्नवाचक चिह्न के रूप में मुंह बाये खड़ी है और इस समस्या का समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आता है।

इसी प्रकार की अन्य छोटी-मोटी समस्यायें हैं, जो हमारे समाज को निष्प्राण किये दे रही हैं। हमें उन्हें दूर करने के लिये भगीरथ प्रयत्न करना चाहिये, जिससे कि समाज का अधिक अहित न हो सके। हमारी राष्ट्रीय सरकार भी इन सामाजिक विषमताओं को समूल नष्ट करने के लिये प्रयत्नशील है। तभी हमारा देश वास्तविक उन्नति कर सकेगा, अन्यथा हमारी अमूल्य स्वतन्त्रता का भी कोई मूल्य नहीं रहेगा।

२२ सर्वोदय

सृष्टि के प्रारम्भिक क्षणों से ही समाज के मनीषियों ने समाज को सुखी, शान्त और समृद्ध बनाने के लिये अनेकानेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। समाज को सुसगठित और सुव्यवस्थित बनाने के लिए ऋषि मुनियों ने वर्णाश्रम व्यवस्था को जन्म दिया, जिसकी पृष्ठभूमि में जातिवाद और ब्राह्मणों का धर्मवाद निहित था। इस व्यवस्था पर आधारित समाज नि.सन्देह बहुत समय तक सुसगठित रूप से चलता रहा, यहाँ तक कि आज भी उसका ज्यों का त्यों रूप भारतवर्ष में विद्यमान है, उसमें कुछ विकृति अवश्य आने लगी है। समाज को शाश्वत सुख और अनन्त शान्ति प्रदान करने के लिये ही महात्मा बुद्ध ने भिक्षु रूप धारण करने तथा संघारामों की घोषणा की थी। समाज की विशृंखलता और जातिवाद को दूर करने के लिये ही कबीर ने निर्भीक होकर समाज के चौराहे पर गर्जना की थी। इसी तरह समय-समय पर अनेक समाज-सुधारक, समाज को व्यवस्थित बनाने में प्रयत्नशील रहे। आज का समाज विभिन्न विचारधाराओं का केन्द्र है। सभी अपने-अपने रूप में समाज को सम्पन्न बनाने का दावा रखते है। प्रमुख रूप से चक्की के दो पाट आज समस्त विश्व को पीसे डाल रहे हैं, वे हैं—पूंजीवाद और साम्यवाद। आधुनिक युग में ही ये विचारधारायें विशेष रूप से प्रचलित हैं। साम्राज्यवादी देश पूंजीवाद का समर्थन करते हैं। पूंजीवाद पैसे के बल पर सभी का शोषण कर सकता है, चाहे वह विद्वान् हो या श्रमिक। साम्यवाद पूंजीवादी व्यवस्था को पूर्णरूप से नष्ट कर देना चाहता है। यह विचारधारा वर्ग-संघर्ष में विश्वास रखती है। उनका विश्वास है कि एक दिन आयेगा जबकि

> **सर्वोदय**
> १. प्रस्तावना।
> २. सर्वोदय एक विचारधारा।
> ३. सर्वोदय की आधार भूमि।
> ४ सर्वोदय के सिद्धान्त।
> ५ उपसंहार

श्रमिक और मजदूरों का इस शोषण पूँजीपतियों पर स्वामित्व होगा। साम्यवादी, रक्तमय क्रान्ति में विश्वास रखते हैं। इनकी दृष्टि में सत्य, अहिंसा और ईश्वर जैसी कोई वस्तु महत्व नहीं रखती है।

परन्तु इन विचारधाराओं के अतिरिक्त कुछ विचारक ऐसे भी होते हैं जो किसी वर्ग-विशेष का हितचिन्तन न करके, मानव-मात्र के कल्याण की कामना करते हैं जो हर किसी को सुखी, समृद्ध एवं सम्पन्न देखना चाहते हैं। सबके विकास में ही देश का कल्याण समझते हैं। इनकी इच्छा रहती है कि—

'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्।'

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोग हों, सभी कल्याण प्राप्त करें, किसी को कोई दुःख प्राप्त न हो, इस प्रकार की पुनीत भावनाओं को महात्मा गांधी जैसे पुण्यात्माओं ने उपस्थित किया था। वर्गभेद, वर्णभेद, जातिभेद तथा छूत-अछूत जैसे सामाजिक रोगों को समाज से बहिष्कृत करने के लिये, आर्त, दुःखी और चिरविपन्न जनता को शान्ति प्रदान करने एवं उसके अभ्युदय और सर्वांगीण विकास के लिये राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एक ऐसे समाज की स्थापना करने चाहते थे जिसमें सभी प्राणियों को अपनी-अपनी सहज योग्यताओं के विकास का अवसर मिले और जिसमें न कोई ऊँचा हो और न नीचा।

इस प्रकार का समाज 'सर्वोदय' के सिद्धान्तों में निहित है। सर्वोदय के मन्त्रदाता महात्मा गांधी थे। उन्होंने मानव-कल्याण के लिये अनेक सूत्रों का निर्माण किया तथा उन्हें रचनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। गांधी जी ने इन्हीं सूत्रों का नाम 'सर्वोदय' है। सर्वोदय की प्रेरणा गांधी जी को रस्किन की 'अन्टू दी लास्ट' नामक पुस्तक से प्राप्त हुई। उन्होंने अपनी आत्मकथा में इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा—'मैं नेटाल के लिये रवाना हुआ। मास्टर पोलक स्टेशन पर मुझे पहुँचाने आये और रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दी लास्ट' मेरे हाथ में देकर बोले—"यह पुस्तक पढ़ने लायक है।' मेरे जीवन में यदि किसी पुस्तक ने महत्वपूर्ण रचनात्मक परिवर्तन कर डाला तो वह यही पुस्तक है। मेरा विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्तर में बसी हुई थी उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैंने इस किताब में देखा है।" इस पुस्तक से गांधी जी ने केवल तीन सिद्धान्तों को अपने 'सर्वोदय' का आधार बनाया।

१ व्यक्ति का श्रेय समष्टि के श्रेय में ही निहित है।

२ वकील और नाई दोनों के काम का मूल्य समान है, क्योंकि प्रत्येक को अपने व्यवसाय द्वारा अपनी आजीविका चलाने का समान अधिकार है।

३ किसान, कारीगर तथा मजदूर का जीवन सच्चा तथा सर्वोत्कृष्ट है।

समाज का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिये कार्य दे और उसकी आवश्यकता पूरी करे। सर्वोदय के मानव मान-दण्ड ने पर्याप्त क्रांति की है। सर्वोदय समाज के आर्थिक और सामाजिक वैषम्यों का तीव्र विरोध करता है तथा जड़वाद और व्यक्तिवाद के विरुद्ध है। सर्वोदय सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण में विश्वास रखता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति में शोषण और संघर्ष की भावनाएँ अन्तर्निहित होती हैं। निजी सम्पत्ति से मानव की स्वार्थपरता बढ़ती है। अतः सहकार्य और साहचर्य से मानव की ईर्ष्या के स्थान पर सहयोग और सहानुभूति, वैमनस्य के स्थान पर स्नेह तथा संकीर्णता

के स्थान पर औदार्य की वृद्धि होती है। इस प्रकार सर्वोदय, समाजवाद, आत्मवाद और समत्व में विश्वास रखता है। सर्वोदय नेता एवम् गम्भीर विचारक श्री शंकरराव देव ने सर्वोदय के विषय में लिखा है, '**साम्यवाद अथवा पूंजीवाद की भाँति सर्वोदय, साध्य के लिये साधना की अपेक्षा नहीं करता** " साम्यवाद शोषितों का पक्ष लेकर हिंसात्मक रक्तमय क्रान्ति का पक्षपाती है। इसी प्रकार, पूंजीवाद स्वतन्त्र को गुलाम बनाकर शोषण करता ही है।

सर्वोदय केवल सैद्धान्तिक पक्ष का ही प्रतिपादन नही करता, वह क्रियात्मक रूप से कर्म करने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। राष्ट्रपिता गांधी जी ने सर्वोदय के अट्ठारह नियम, सूत्र रूप से जनता के सामने उपस्थित किये थे। उन्ही सूत्रों के आधार पर सर्वोदय का विकास भारत में हुआ। वे सूत्र निम्नांकित है—

१. साम्प्रदायिक एकता	७. प्रारम्भिक शिक्षा	१४. कृषक
२. मद्य-निषेध	८. प्रौढ शिक्षा	१५. श्रमिक
३. वर्ग-भेद तथा अस्पृश्यता का विनाश	९. महिलाओं की सेवा	१६. आदिवासी
	१०. स्वास्थ्य एवं शिक्षा	१७. कुष्ट रोग
४. खादी का प्रयोग	११. प्रान्तीय भाषायें	१८. विद्यार्थी।
५. गृह-उद्योग का विकास	१२. राष्ट्रभाषा	
६. ग्रामों की सफाई	१३. आर्थिक सहायता	

इन अष्टादश सूत्री नियमों पर चलकर भारतवर्ष अपनी सर्वांगीण उन्नति कर सकता है। जब तक मानव में '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' और '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' जैसी पवित्र भावनाओं का उदय नही होता, तब तक न वह स्वयम् उन्नति कर सकता है और न दूसरों को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर कर सकता है। सर्वोदय के आधार पर ही हम '**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया.**' की पवित्र भावनाओं को फिर से जाग्रत कर सकते हैं। एक समय था जब हमारे ऋषि कहा करते थे—

शं नो अस्तु द्विपदे शं नो अस्तु चतुष्पदे।

अर्थात् दो पैर वाले और चार पैर वाले सभी का कल्याण हो। परन्तु आज चार पैर वालो की तो दूर की बात है, मानव अपने बन्धु दो पैर वाले का भी भला नही चाहता। स्वार्थ की कालिमामयी प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि चारों ओर अपना ही अपना दिखाई पड़ता है, दूसरे के कल्याण की तो कोई सोचता ही नही। अतः भारतवर्ष यदि अपनी सार्वभौमिक और सर्वांगीण उन्नति चाहता है, तो राष्ट्रपिता गांधी के सर्वोदय के सिद्धान्तों को स्वीकार करना पड़ेगा, तभी उसकी उन्नति सम्भव है।

२३ दहेज प्रथा

शाप और अभिशाप दोनो समानार्थक होते हुए भी अपने में थोड़ा अन्तर छिपाये हुए हैं। शाप वस्तु विशेष, समय विशेष और हानि विशेष के लिये होता है जब कि अभिशाप जीवन में, जीवन भर, गेहूँ के घुन की भाँति लगा रहता है। विधि की विडम्बना है कि एक ही वृक्ष पर लगे दो पुष्पों में से एक को जो अधिक सुरभित और सुरम्य होता है, उसे अभिशाप समझ लिया जाता है और दूसरों को कष्टमय होते हुये भी वरदान। एक के जन्म से घर पर मौन की छाया और माता-पिता के

मुख पर मलीनता की छाया, मामा-मामियों के मन पर उदासीनता की काली घटा मडराने लगती है और दूसरे के जन्म से नवे, ढोलक और नफीरी बजने लगती हैं। अजीब और आश्चर्यजनक वैषम्य है, दो जीवात्माओं के जन्म ग्रहण करने में। विभेद और विषमता भरे ये दोनों तत्व हैं—कन्या और पुत्र।

मां की जिस कोख (कुक्षि) में पुत्र जन्म लेता है उसी कोख में से पुत्री जन्म लेती है पर मां स्वयं भी पुत्री के जन्म से दुखी हो उठती है। ब्रजभाषा के एक लोक गीत में मां की खिन्न अभिव्यक्ति और पति को सान्त्वना भरा सन्देश देखिये—

ललली जने को सोच मत करो,
राजा जी ! अबके मैं लल्ला जनूंगी।

जन्म से ही मां लड़की को 'पराया धन' कहना प्रारम्भ कर देती है। उसके लालन-पालन, शिक्षा दीक्षा, आदि सभी क्षेत्रों में दृष्टि रखी जाती है। कन्या दबी और सहमी अनुभव करती है जबकि पुत्र उभरा और उछलता हुआ। परिवार में कन्या के जन्म से ही इन उमड़ते-घुमड़ते बादलों के तीन कारण हैं—१ पराया धन होने के कारण कन्या के भावी सुखमय जीवन की चिन्तापूर्ण कल्पनाएँ, २ दहेज, ३ मानव की स्वार्थी मनोवृत्ति। प्रथम कारण के विषय में तो महाकवि कालिदास ही 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में बोल उठे हैं और लिख दिया है कि कन्या का पिता होना ही कष्टकारक होता है—

दहेज प्रथा।

१ प्रस्तावना।
२ कन्या को कष्टप्रद अनुभव करने के मनोवैज्ञानिक कारण।
३ दहेज प्रथा का प्रारम्भ एवम् प्राचीन स्वरूप।
४ वर्तमान स्वरूप।
५ दहेज प्रथा से राष्ट्र को हानि
(क) व्यक्तिगत।
(ख) समष्टिगत।
६ गांधी युग में चेतना का अभ्युदय।
७ आधुनिक युग में नवजागृति।
८ दहेज प्रथा के विनाश के उपाय।
९ वास्तविक स्थिति।
१० उपसंहार।

"पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा नवेति, कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥"

अन्य पुरातन विद्वानों ने लिखा है कि—"दुरतिक्रमा दुहितरो विपदः" अर्थात् कन्या की विपत्तियों को पार करना अत्यन्त कठिन है।

दूसरा कारण है दहेज, जिसमें माता पिता समाज में अपनी मान प्रतिष्ठा को बचाने के लिए तथा अपनी लड़की को सास-ननद एवं देवरानी जिठानी के ताना से बचाने के लिए अपना सर्वस्व झोंक देते हैं। तीसरा कारण है मानव की स्वार्थी मनोवृत्ति। माता पिता कन्या को 'पराया धन' समझकर अर्थात् इसे तो दूसरों के घर जाना है, यह विचार करते हुए उसके साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार करते हैं और पुत्र को 'बुढ़ापे का सहारा' समझकर जन्म से ही मान सम्मान और लाड-प्यार देना प्रारम्भ कर देते हैं। माता पिता यह समझते हैं कि लड़का तो जीवन भर हमें कमा कर खिलायेगा, हमारे दुःख में हमारा सहारा होगा और इससे हमारे वंश का नाम चलेगा। चाहे भले ही पुत्र इन भावनाओं के नितान्त प्रतिकूल निकले, पर फिर भी वह माता पिता का स्नेह भाजन होता है। यह सोचकर कि मरने के बाद मरघट तक तो पहुँचा ही देगा।

विश्ववन्द्य महात्मा गाँधी भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ देश की आर्थिक, नैतिक और सामाजिक स्वतन्त्रता के भी पक्षपाती थे। गाँधी जी अपने जीवन काल मे दैनिक प्रार्थना सभाओं और सामाजिक सभाओं में समय समय पर देश की कुप्रथाओं की ओर संकेत करते और जनता से उन्हें त्याग देने का संकल्प कराते। दहेज प्रथा की क्रूरता और भयावहता से क्षुब्ध होकर सन् १९२८ में गाँधी जी ने कहा था—

'दहेज की पातकी प्रथा के खिलाफ जबरदस्त लोकमत बनाया जाना चाहिये और जो नवयुवक इस प्रकार गलत ढंग से लिए गये धन से अपने हाथों को अपवित्र करें उन्हें जाति से बहिष्कृत कर देना चाहिए। ...इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह हृदयहीन बुराई है।"

राजा राममोहन राय ने जिस प्रकार सती प्रथा को बन्द कराया था, उसी प्रकार राष्ट्रीय चेतना के अभ्युदय के साथ-साथ सामाजिक चेतना एवं जागृति के लिए भी राष्ट्र नेताओं ने जन-जागरण प्रारम्भ किया। उधर आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द आदि समाज सुधारकों ने भी इस राष्ट्रीय कलंक की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। पं० नेहरू ने भी इस दहेज दानव के विनाश के लिए जनता को उद्बोधन प्रदान किया। परन्तु अन्य महान् और विकराल समस्याओं के समक्ष इस समस्या ने गौण रूप धारण कर लिया।

वर्ग वैषम्य के साथ-साथ यह महान् रोग समाज में बढ़ता गया। केन्द्रीय सरकार ने पं० नेहरू के प्रधानमन्त्रीत्व काल मे सन् १९६१ में दहेज निरोधक अधिनियम बनाया, परन्तु जनता के पूर्ण सहयोग के अभाव मे यह कानून केवल कानून की पुस्तकों तक ही सीमित रहा। इस अधिनियम की मुख्य-मुख्य धाराएँ निम्नवत् है—

(१) दहेज केवल उस राशि को माना जाएगा जिसे वर-पक्ष के लोग विवाह के समय किसी शर्तनामे के आधार पर निर्धारित करते हैं। इसके अन्तर्गत वह धन तथा वस्तुयें शामिल नहीं है जिन्हे कन्या का पिता स्वेच्छा से देता है।

(२) इस अधिनियम के अन्तर्गत दहेज लेना अथवा देना या दहेज के लेन-देन मे सहायता देना अपराध घोषित कर दिया गया। प्रत्येक अपराधी को ५००० रु० तक जुर्माना और ६ माह की कैद हो सकती हैं।

(३) कन्या के माता-पिता से प्रत्यक्ष रूप से भी दहेज मांगना अपराध है। ऐसे अपराधी को उक्त दण्ड की व्यवस्था है।

(४) अधिनियम की धारा ६ में स्पष्ट रूप से लिख दिया गया है कि दहेज से प्राप्त होने वाली धनराशि पर कन्या का अधिकार होगा। यदि किसी प्रकार का दहेज परिवार के अन्य किसी सदस्य ने स्वीकार कर लिया है तो उसे एक वर्ष के अन्दर वह धन कन्या को वापस करना होगा। आदि......

समस्त राज्य सरकारों ने १९६१ के दहेज विरोधी कानून में संशोधन करके नये अध्यादेश जारी किये हैं। पंजाब, बिहार, राजस्थान और उत्तर प्रदेश आदि सभी राज्य सरकारों ने विवाह के व्यय का एक निश्चित मापदण्ड निर्धारित किया है। दहेज स्वरूप धनराशि अथवा उपहारों के रूप मे ३००० से ५००० रुपये तक निश्चित किये गये हैं। अनावश्यक साज-सज्जा के खर्च मे कमी लाने के लिए जनता को दिन मे विवाह करने की सलाह दी गई है। बरातियों की अधिकतम संख्या २५ रखी गई

है। सरकारी अधिकारियो, मन्त्रियो एव राजपत्रित अधिकारियों का ऐसे आयोजनो मे भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। निमन्त्रण पत्रो पर 'दहेज रहित सस्कार' लिखा रहना आवश्यक है। भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने १५ फरवरी, १९७६ को मावलकार हॉल, नई दिल्ली मे भाषण करते हुये इस सम्बध मे कहा था—

"ऐसे रीति रिवाज जो स्त्री वर्ग के लिए कष्टप्रद हैं, उन्हें नष्ट करने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिये। दहेज एक ऐसा ही रिवाज है। इस बुराई को कानून द्वारा ही समाप्त नहीं किया जा सकता, इसके लिए सामाजिक चेतना व जागृति भी बहुत आवश्यक है। यह कार्य भविष्य मे बनने वाली सास अच्छी प्रकार से कर सकती हैं जिन्हे कि इस रिश्वत (दहेज) को लेने से इकार कर देना चाहिये।" (हिन्दुस्तान टाइम्स, १६ फरवरी, १९७६)

देश के युवक युवतियो से अपने विवाह मे दहेज न लेने के लिए शपथ उठाने के लिए कहा गया था। महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयो में पढने वाले युवक-युवतियो ने दहेज न लेने की शपथ ग्रहण की। कॉलेज की छात्राओं ने भी दहेज माँगने वाले युवको से विवाह न करने की शपथ ग्रहण की। उत्तर प्रदेश के समस्त हाईस्कूल और इण्टर कॉलिजो मे छात्राओ ने लिखित शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर किये कि हम दहेज न लेंगे और न अभिभावको को लेने देंगे। ये शपथ-पत्र विशाल पुस्तक के रूप में शिक्षा निदेशक, उ० प्र० लखनऊ के यहाँ एकत्रित किये गये। आर्य समाज आदि अन्य समाज सेवी सस्थायें भी इस दिशा मे महान् योगदान दे रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के अन्तर्गत भी इस कुप्रथा के विरोध मे कठोर कदम उठाये गये हैं। नेशनल फेडरेशन ऑफ इण्डिया वोमेन ने ११ अक्टूबर १९७६ को दहेज प्रथा के विरोध में प्रस्ताव पास किया था। समाचार पत्र-पत्रिका और प्रचार के अन्य साधनो द्वारा जनता को दहेज के भयानक परिणामो से अवगत कराया गया। फलस्वरूप देश के कोने-कोने में दहेज विरोधी भावनायें जनता मे उत्पन्न होती जा रही हैं।

दहेज प्रथा के उन्मूलन के लिए देश के युवा वर्ग मे जागृति परमावश्यक है। पुरातन रीति-रिवाजो मे विश्वास रखने वाले पुराने लोगो की प्रवृत्ति मे आमूल-चूल परिवर्तन होना असम्भव-सा ही है। इसके लिए दृढ प्रतिज्ञ होकर शिक्षित युवक-युवतियो को आगे आना चाहिये। इस दिशा मे युद्ध स्तर पर सामाजिक क्रान्ति का आह्वान किया जाए, इसमे भी नेतृत्व युवा वर्ग के हाथो मे ही हो। गाँव गाँव, नगर-नगर में सभाओ का आयोजन हो तथा अनपढ व्यक्तियो एव रूढिवादी प्रवृत्ति के व्यक्तियो को दहेज के दुष्परिणामो से व्यापक रूप मे परिचित कराया जावे। दहेज विरोधी क़ानून का सख्ती से पालन कराया जाए एव अपराधी को कड़ा दण्ड देने की व्यवस्था की जाए। इस प्रकार धनवानो को गरीबो की गरीबी का मजाक उड़ाने से रोका जा सकता है। कन्या शिक्षा पर माता पिता अधिक ध्यान दें और उन्हें आत्म निर्भर व अपने पैरो पर खडे होने योग्य बनायें। अन्तर्जातीय विवाहो को भी प्रोत्साहन दिया जाए, इससे योग्य वर मिलने मे कठिनाई न होगी। प्रेम विवाहो को भी प्रोत्साहन दिया जाए परन्तु माता पिता के परामर्श एव पथ प्रदर्शन मे, तो पुरुषो की अपेक्षा महिलाओ मे अधिक जागृति उत्पन्न की जाये। जहाँ दहेज लेने न देने के भी समाचार मिलें वहाँ युवा वर्ग पिकेटिंग का भाग ग्रहण करे और विवाह को सम्पन्न न होने दें जब तक कि ली हुई धनराशि वापस न कर दी जाए। हमें

लिए गांधी जी के सत्याग्रह का शान्तिपूर्ण शस्त्र भी कार्य में लाया जा सकता है। सामूहिक विवाह की योजना बनाई जाए, जिसमें गरीब-अमीर सभी वर्गों की कन्याओं के विवाह सम्पन्न हों।

माता-पिता की सुख-शान्ति पर तुषारापात करने वाला, बालिकाओं के सुख सुहाग पर वज्रपात करने वाला, आये दिन वधु हत्याओं और आत्म-दाहों को प्रोत्साहन देने वाला, घोड़े और बैलों के क्रय-विक्रय का यह व्यवसाय, निश्चित ही आज एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में सरकार और जनता के समक्ष मुँह खोले खड़ा है। यदि जनता ने विशेषकर शिक्षित युवक-युवतियों ने पुरातन मनोवृत्तियों वाले माता-पिता की अवहेलना कर सरकार को हृदय से सहयोग दिया तो भारतीय संस्कृति पर लगा हुआ यह कलंक सदैव-सदैव के लिए धुल जायेगा। यदि भारत का प्रत्येक नागरिक हृदय से दहेज न लेने और न देने की प्रतिज्ञा ले ले, तब यह समस्या समाप्त हो सकती है। प्रत्येक भारतीय को यह नारा बुलन्द करना चाहिये कि—"दुल्हिन ही दहेज है।"

२४ शहरी सम्पत्ति : दुष्प्रभाव और सीमांकन

शहरी सम्पत्ति : दुष्प्रभाव और सीमांकन

१. प्रस्तावना।
२. संविधान का आदेश और सरकार का प्रयत्न।
३. आर्थिक केन्द्रीयकरण के विभिन्न रूप।
४. आर्थिक वैषम्य के दुष्प्रभाव।
५. सम्पत्ति के सीमांकन के आधार।
६. सीमांकन का स्वरूप।
७. उपसंहार।

क्या मुट्ठी भर लोग ही सुखी जीवन बिताने के लिये पैदा हुए हैं? क्या भारतीय जनता सदैव निरीह और निष्किंचन ही बनी रहेगी? क्या भारतीय किसान और मजदूर सदैव शोषित ही बने रहेंगे? क्या भारत की सर्वसाधारण जनता भी कभी सुख की नींद सो सकेगी? ये ज्वलन्त प्रश्न राष्ट्र के नेताओं के आगे आज भी मुँह बाये खड़े है। भारत को स्वतन्त्रता देकर अंग्रेज अपने देश जा चुके थे, परन्तु साथ-साथ दे गये थे, आर्थिक वैषम्य के ऊबड़-खाबड़ मार्ग, जिन्हें भारतीय कर्णधारों को समतल और सुन्दर बनाना था, जनता के हृदय में लगी हुई अभावों की आग को शान्त करना था, परन्तु यह प्रश्न था, बहुत बड़ा और कड़ा। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए दिसम्बर, १९५४ में पं० नेहरू के नेतृत्व में भारत सरकार ने समाजवादी समाज की रचना की घोषणा की थी, जिसमें निजी लाभ के स्थान पर सार्वजनिक लाभ को महत्ता प्रदान की गई थी।

भारतीय संविधान के राज्यनीति निर्देशक सिद्धान्तों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि राज्य, राष्ट्र के भौतिक साधनों के वितरण का प्रयास सामान्य हित में करेगा और सामान्य हित के लिए आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने का प्रयास करेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखकर आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण की घातक प्रवृत्ति को रोकने के लिये सरकार निरन्तर प्रयत्नशील रही। देश में लघु और सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना के साथ ही साथ प्रगतिशील कर-प्रणाली का प्राविधान हुआ है। परन्तु जैसे-जैसे सरकार इधर प्रयत्नशील हुई वैसे-वैसे समाज में धन-वंटन, अपसंचय, अवैध व्यापार आदि दूषित प्रवृत्तियों से आर्थिक

केन्द्रीयकरण और भी सबल होता गया और असमानता की खाई और भी अधिक चौडी होती गई। महलनवीस समिति और एकाधिकार आयोग, दोनो के प्रतिवेदना से भी यह ध्वनि निकलती है। शनै-शनै यह असमानता इतनी बढती गई कि उच्चवर्गीय १० प्रतिशत शहरी परिवारो की आय ४२४ प्रतिशत और सबसे निम्न श्रेणी के १० प्रतिशत परिवारो की सम्पूर्ण आय केवल १३ प्रतिशत है। आय के वितरण मे ग्रामीण क्षेत्र मे शहरी क्षेत्र की अपेक्षा कम असमानता है।

इस भयकर आर्थिक-असमानता को जड से मिटा देने के लिए शहरी सम्पत्ति की अधिकतम सीमाकन का प्रश्न सरकार के सामने है। शहरी सम्पत्ति के सीमाकन का प्रश्न आज एक सवमान्य सिद्धान्त बन चुका है। पर प्रश्न यह है कि चारो ओर फैली हुई और छिपी हुई धनवानो की आर्थिक शक्ति को किस प्रकार अकुश मे लाया जाये। नगरो म चल और अचल सम्पत्ति के अतिरिक्त छोटे-छोटे उद्योग धन्धे, व्यापारिक फम, धर्मादा सस्थायें तथा न्यास आदि के विभिन्न रूप पाये जात हैं। अनेक व्यक्तियो के पास एक से अनेक विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियाँ है। उन सभी प्रकार की सम्पत्तियो का समावेश सम्पत्ति सीमा के अन्दर करना होगा। जसे, भूमि—चाहे वह विकसित है, चाहे अविकसित, बडे बडे भवनों के साथ लगी हुई है, कही उसे बाग का रूप दे दिया गया, तो कही यह वैसे ही पडी है। इन भूमियो का उपयोग नागरिको के कल्याण के लिए किया जा सकता है। भवन—आवासीय गृह कुछ वैभवशाली हाथो मे केन्द्रित हैं, दूसरी ओर झुग्गी झोपडी वाले और गन्दी बस्तियाँ बढती जाती हैं, किराये-दार को रहने के लिये मकान नही मिलता और यदि मिलता है, तो मनमानी शर्तों पर। व्यापारिक फर्मों पर पिछले कुछ वर्षो से प्रसिद्ध धनियो का एकाधिकार होता जा रहा है। ये लोग उत्पादन से लेकर फुटकर वितरण तक की समस्त क्रियाओ पर हावी हैं। छोटे बडे सभी उद्योग, उद्योगपतियो के हाथो मे हैं ही। धर्मादा सस्थायें भी लक्ष्यहीन सिद्ध हो चुकी हैं और निहित स्वार्थों की पूर्ति करने म सलग्न हैं कहीं-कहीं तो इन सस्थाओ स अत्यधिक अचल सम्पत्ति जुडी हुई है। कर चोरी की प्रवृत्ति धनिको मे बढती जा रही है उनके पास अपार काला धन है, जिसका प्रयोग वे या तो तस्कर व्यापार मे करते हैं या फिर बडे-बडे औद्योगिक प्रतिष्ठानो और भवनो के निर्माण म। इस धन से केवल सचयकर्त्ता ही प्रभावित नही हैं, अपितु सारे देश की अर्थव्यवस्था भी प्रभावित है, इसमे भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिलता है। इसी काले धन पर अकुश लगाने के लिये १९७८ मे नई केन्द्रीय सरकार ने १००० रु० के नोटो को एक निश्चित तिथि के पश्चात् अवैध घोषित कर उनका प्रचलन बन्द कर दिया। इसी प्रकार आभूषण, अशबीमा, बचत और जमा आदि कई प्रकार की सम्पत्तियाँ हैं, जो देश मे दरिद्रता, निर्धनता, असमानता और भ्रष्टाचार को प्रश्रय देती हैं। वास्तव मे इस धन का उपयोग देश के उत्पादन को बढाने मे होना चाहिये।

आर्थिक वैषम्य के दुष्प्रभाव की छाया आज समाज मे यत्र-तत्र स्पष्ट दृष्टि-गोचर होने लगी है। पढे लिखे लडके जब डकैतियाँ डालने निकल पडे या मडी और बाजारो मे लूट करने लगे तो क्या होगा ? यदि आज दस सुखी हैं तो पचास दुखी और दरिद्र। विषमता मे सदैव विद्रोह और क्रान्ति की आग सुलगती रहती है। नैतिकता अपना मूल्य खो बैठती है, समाज का आचरण सामूहिक रूप से भ्रष्ट हो जाता है। लोग कर्तव्य और अकर्तव्य की बुद्धि से शून्य हो जाते हैं। स्वार्थपरता बढ जाती है। कोमल भावनाओ के स्थान पर कर्कशता और कठोरता आ जात है, व्यक्तिगत स्वार्थ बढ

जाता है और राष्ट्र प्रेम समाप्त होने लगता है—"बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।

यदि आज देश में सभी प्रकार की सम्पत्तियों का कानूनन सीमांकन कर दिया जाता है, तो लाभ यह होगा कि अतिरिक्त सम्पत्ति देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में लगेगी और साथ ही साथ उसका उपयोग राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने में किया जा सकेगा। इसका काम यह होगा कि एक वर्ग की पूँजी दूसरे वर्ग को प्रभावित, विनियोजित और नियन्त्रित न कर सकेगी। तीसरा काम यह होगा कि लोग, अवैधानिक और अनैतिक धन्धों से अपनी सम्पत्ति को बढ़ा न सकेंगे। इससे केवल उनका ही कल्याण न होगा अपितु पूरे समाज का कल्याण होगा। इससे पूरे देश का स्तर ऊँचा उठेगा। सीमांकन के पश्चात् देश को जो अतिरिक्त सामूहिक पूँजी प्राप्त होगी, उससे देश का आर्थिक विकास किया जा सकेगा। गरीबों को घर मिलेंगे और भूमिहीनों को भूमि।

पश्चिमी बंगाल, केरल, विहार आदि राज्य सरकारों ने जो जोत भूमि-सीमा निर्धारित की है, वह दो लाख रुपये की परिधि में आती है। ऐसी स्थिति में शहरी सम्पत्ति भी दो लाख रुपये से अधिक होने का कोई औचित्य नहीं दिखाई पड़ता। संसद के पिछले अधिवेशनों में इस विषय पर पर्याप्त चर्चायें हुई हैं, जिनमें तीन लाख से पाँच लाख तक की आवाजें उठी थीं। इस विवादपूर्ण विषय पर विचार करने के लिए प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी द्वारा मई १९७२ में दस व्यक्तियों की एक समिति बना दी गई थी, जिसने अपनी विस्तृत रिपोर्ट और संस्तुति सरकार को दी थी—इस समिति में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मन्त्री पं० कमलापति त्रिपाठी भी एक सदस्य थे। भारत की १९७७ में आसीन नई केन्द्रीय सरकार भी इस दिशा में प्रयत्नशील रही। सन् १९८० के बाद श्रीमती इन्दिरा की सरकार ने भी शहरी सम्पत्ति के सीमांकन के लिए अनेक उपाए किए। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता जैसे बड़े नगरों में इस सम्बन्ध में कई कानून भी बनाये जा चुके हैं। १९८९ में पदारूढ़ श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार भी शहरी सीमांकन के लिए दृढ़ता से विचार कर रही है।

वस्तुतः सम्पत्ति का सीमांकन समाज और राष्ट्र के हित में सरकार का एक पवित्र और महत्वपूर्ण पदन्यास है। परन्तु इसकी पवित्रता क्या यथावत् बनी रहेगी यह थोड़ा संदिग्ध है। लोग अभी से बचाव के उपाय सोचने लगे हैं—वकीलों में राय मशविरा चल रहा है और उपाय प्रारम्भ भी कर दिए हैं, इजारेदारी शुरू हो गई है। परन्तु फिर भी—आज यदि थोड़ा लाभ हुआ तो कभी ज्यादा होने की भी आशा है। आर्थिक वैषम्य और असमानता के रोग का समूलोन्मूलन तो वास्तव में मानवकृत सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त कर देने में ही है, जिसके लिए संविधान में परिवर्तन करना होगा। सम्पत्ति मनुष्य रखता ही क्यों है, इसका एकमात्र उत्तर यही है कि वह अपने वर्तमान और भविष्य की सुख-सुविधाओं की गारन्टी के लिए। फिर यदि उसे यही गारन्टी राज्य की ओर से मिल जाये, तो वह स्वयं ही सम्पत्ति रखना पसन्द नहीं करेगा। यदि सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त कर, रहन-सहन के स्तर का एक निम्नतम आधार बनाकर कार्य की अनिवार्यता का प्रावधान संविधान में कर दिया जाए, तब सदैव-सदैव के लिए भारत में स्वयं ही समाजवाद समासीन हो जायेगा। ●

देश की वर्तमान स्थिति में हमारा कर्त्तव्य और संकल्प

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उन्तालीस वर्ष पश्चात् जब देश की वर्तमान स्थिति पर दृष्टि जाती है तो सहसा सामने वह रोगी आ खड़ा होता है, जिसे शुरू में कोई एक ही रोग हुआ था, पर परिचायकों के प्रमाद एवं असावधानी के कारण तथा चिकित्सकों के सही निदान और समीचीन औषधि के अभाव में रोगी का रोग कम होने के स्थान पर उत्तरोत्तर बढ़ता गया और उसके अधिक दुर्बल हो जाने पर रोग की अनेक शाखा-उपशाखायें फूट पड़ी हों। ऐसी अवस्था में तीमारदार किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर एक तरफ बैठ गये हों, तो आश्चर्य क्या है?

देश की वर्तमान स्थिति पर विज्ञान-भवन, दिल्ली में आयोजित चतुर्थ पुरस्कार सम्पूर्ण समारोह में भारत के राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरी ने १९ दिसम्बर, १९६९ को श्री सुमित्रानन्दन पन्त को उनकी काव्यकृति 'चिदम्बरा' पर भारतीय ज्ञान पीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार समर्पित करते हुए कहा था—

"चरित्र के इस संकटकाल में साहित्यकार राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए विघटनकारी शक्तियों का मुकाबला करें।" उन्होंने कहा, "भारत आज विकट परिस्थितियों में से गुजर रहा है, अतः उसे कठिन प्रयास से प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सदा जागरूक रहना है। वे प्राचीन मूल्य और पुराने संगठन जिनसे अब तक समाज अविच्छिन्न था, अब टूटते जा रहे हैं और उनका स्थान लेने के लिए न तो कोई ठोस कार्यक्रम नजर आ रहा है, न कोई सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना, जो समयानुकूल हो, पनप रही है। परिणामस्वरूप सामाजिक विघटन के चिन्ह दिखाई पड़ रहे हैं। किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि साहित्यकार ही राष्ट्रीय चेतना के आधार हैं। वर्तमान परिस्थिति में जबकि चारों ओर साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना और अनुशासनहीनता का बोलबाला है, यह आवश्यक है कि साहित्यिक कृतियों के प्रणेता राष्ट्रीय एकता के ध्येय को अपने समक्ष रखें और अनुशासन, समर्पण और सत्य की अनवरत खोज का वातावरण पैदा करें।" *(न० भा० टा० २० दिसम्बर १९६९)*

> देश की वर्तमान स्थिति में हमारा कर्त्तव्य और संकल्प
> १ प्रस्तावना
> २ वर्तमान स्थिति।
> ३ हमारे कर्तव्य।
> ४ हमारा संकल्प।
> ५ उपसंहार।

देश, वर्तमान स्थिति में आर्थिक, राजनैतिक एवं नैतिक पहलुओं में तो शैथिल्य है ही, परन्तु असामाजिक तत्त्वों का बाहुल्य, मानवीय पक्षों का ह्रास, अनियमित रहने की भावना, कर्त्तव्यपराङ्मुखता, पाश्चात्य शैलियों का अन्धानुसरण आदि कुछ ऐसे विघातक तत्व हैं, जिनसे देश में भीतर ही भीतर मानो घुन लग गया हो, खोखला होता जा रहा है। यदि ऐसी ही स्थिति चलती रही तो भारत का भविष्य क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। लोग अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं, मर रहे हैं पर हमारा कुछ कर्त्तव्य भी है, इसे कोई सोचता भी नहीं।

अतः नीचे हम अपने कर्त्तव्यों पर दृष्टिपात करेंगे, जिनके अभाव में ऐसा प्रतीत होता है कि हम कुछ खो चुके हैं।

चरित्र—इस समय देश की सबसे बड़ी आवश्यकता जनता के चारित्रिक बल

की है। हमारे व्यक्तिगत और सामूहिक चरित्र का पतन हो जाने के कारण देश पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। इसलिए सबका एक पवित्र कर्त्तव्य है कि अपने चरित्र की ओर ध्यान दें और सच्चरित्र बनें। किसी एक वस्तु का नाम चरित्र नही है, चरित्र मे बहुत से गुणो का समन्वय होता है, बहुत से गुण मिलकर चरित्र के सुन्दर भवन का निर्माण करते है। सच्चरित्र बनने के लिए हमारा यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि हम किसी को धोखा न दे। किसी को धोखा देना प्रवंचना कहलाता है। आज एक ऐसी हवा चल रही है कि प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को धोखा देने में अपनी कार्यकुशलता अथवा बुद्धि की सफलता समझता है। दूसरे को उल्लू बनाकर अपना मतलब सीधा करने की चाल-सी चल गई है, जो कि देश के जनजीवन को घृणित और निन्दास्पद बनाये हुए है। यहाँ तक कि जन-साधारण तो दूर रहा मानव अपने निकटतम व्यक्तियो को भी धोखा देने में नही चूकता। पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई तक एक-दूसरे को ऐसा धोखा देते है कि वास्तविकता की तस्वीर ही गायब हो जाती है। अतः इस विषाक्त वातावरण को समाज मे से समाप्त करने के लिए हमे अपने चरित्र की ओर ध्यान देना चाहिये।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम समाज मे एक-दूसरे के साथ ईमानदारी का व्यवहार करें। आज कुछ ऐसा युग पलटा है कि ईमानदारी का स्थान बेईमानी ने ले लिया है। लोग बेईमानी को ही ईमानदारी और व्यापार की सफल कुञ्जी समझने लगे हैं। हर काम मे, हर चीज मे और हर क्षेत्र मे आपको मिलावट और बनावट मिलेगी। मूर्ख और समाज को पथ-भ्रष्ट करने वाले लोगों ने यह धारणा बना रक्खी है कि ईमानदारी मे भूखा मरना पडता है, अतः सुखी जीवन बिताने और लखपति बनने के लिए बेईमानी आवश्यक है। वह बेईमानी धीरे-धीरे रक्त मे अब ऐसी मिल गई है कि अब हमारा ध्यान भी नही जाता कि ऐसा करने मे हम कोई बुरा काम कर रहे हैं। हम यह भूल जाते है कि—

'अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे समूलं तु विनश्यति॥

अर्थात् बेईमानी से पैदा किया हुआ धन केवल दस वर्ष ठहरता है। यदि वह सोलह वर्ष तक रुक गया तो फिर मूल सहित नष्ट हो जाता है। अतः यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम प्रत्येक क्षण ध्यान रक्खे कि हमारे कार्य, व्यवहार और व्यापार मे ईमानदारी हो।

झूठ बोलना हमारे जीवन का अंग बन गया है। पहले लोग झूठ बोलने से डरते थे, झिझकते थे, संकोच करते थे और उसे पाप समझते थे। अब लोग सत्य बोलने मे डरते है, झिझकते हैं, संकोच करते हैं और उसे पाप समझते हैं। न समाज के पारस्परिक व्यवहार मे सत्यता है और न पारिवारिक जीवन मे। न व्यापार मे सत्यता रही, न व्यवहार मे। परिणाम यह हुआ कि समाज मे चारो ओर अविश्वास, भ्रम और सन्देह का वातावरण छाया हुआ है। कोई किसी की बात पर आसानी से विश्वास तक नही करता। वह जानता है कि यह सरासर झूठ बोल रहा है, झूठ बोलने वाला भी जानता है कि मैं झूठ बोल रहा हूँ परन्तु दोनो एक-दूसरे की सुनकर सिर हिला रहे है और हाँ मे हाँ मिला रहे है। हमे याद रखना चाहिए कि असत्य भाषण से हम अपनी आत्मा का पतन कर रहे है, हम चोर है, शाह नही। देश और

समाज के श्रेय एवम् उत्थान के लिए तथा अपनी व्यक्तिगत पवित्रता के लिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम सत्य भाषण करें।

स्वतन्त्र देश के सभ्य नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वह अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों से शिष्ट और नम्र व्यवहार करें। इससे देश का चारित्रिक उत्कर्ष होगा। आज ऐसी आशंका होने लगी है कि धीरे-धीरे देश में शिष्टता जैसे शब्द और वस्तु दोनों ही कहीं समाप्त न हो जाएँ। कुछ पुराने पढ़े-लिखे लोगों में या बिना पढ़े लिखे पुराने लोगों में शिष्टता और नम्रता के भले ही दर्शन हो जायें, परन्तु नयी पीढ़ी में शिष्टता और नम्रता गूलर का फूल हो चुकी है और सम्बन्धों का तो कहना ही क्या, गुरु और शिष्य जैसे सम्बन्धों में जहाँ केवल विनम्रता, शिष्टता थी, आज अनम्रता, अशिष्टता ही नजर आती है। सड़क पर, बाजार में, गलियों में, दफ्तरों में, आप जहाँ भी देखें वहाँ आपको जलाने और झुलसाने वाला व्यवहार मिलेगा। शान्ति और शीतलता प्रदान करने वाला व्यवहार नहीं, जो कि पारस्परिक जन-जीवन की प्रगति के लिए आवश्यक है। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम शिष्ट एवं मिष्ट बनें।

नागरिक सभ्यता—अंग्रेजी में जिसे 'सिविक सेंस' कहा जाता है, हमसे कोसों दूर चली गयी है। हम समझते नहीं कि 'सिविक सेंस' क्या होता है और हमें कैसा आचरण करना चाहिए। समझें तो तब, जब कोई समझाने वाला हो, स्वतन्त्र देश में जिस वस्तु की सबसे अधिक आवश्यकता है, उस पर कोई ध्यान नहीं देता। भले ही आपके मुँह पर थूक के कण आ जाएँ, पर बात करने वाले को न इसकी चिन्ता है न भान। आपके कपड़े भले ही खराब हो जायें, पर घर के ऊपर से पानी डालने वाला पानी डाल ही देगा। दूकान झाड़ने में तल्लीन लाला जी को इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि सड़क पर चलने वाले नहाये धोये लोगों पर धूल जाएगी। सड़क झाड़ने वाला 'स्वीपर' इस बात की परवाह नहीं करता कि यह धूल किसकी आँख में जाएगी और किसकी नाक में। भले ही रिक्शे का आगे का पहिया आपकी टाँगों के बीच में आ जाए और आप बच जाएँ या गिर पड़ें, परन्तु रिक्शा चालक को इसका कोई गम नहीं। भले ही आप गहरी नींद में सो रहे हों या बीमार हों पर पड़ोसी ऊँची आवाज में अपना रेडियो जरूर बजाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन का प्रत्येक कार्य उस परिधि से बाहर है जो नागरिक सभ्यता में आनी चाहिए। स्वतन्त्र देश के नागरिक में कोई नागरिक सभ्यता न हो यह बड़ी लज्जास्पद बात है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम सभ्य नागरिक बनें।

सहयोग और सहानुभूति—देश के कल्याण के लिए आवश्यक है कि हमारे सामाजिक जीवन की आधार शिला सहयोग और सहानुभूति पर आधारित हो, परन्तु होता यह है कि हम दूसरे की मुसीबत और परेशानी में मजा लेते हैं, हँसते हैं। दूसरे के घर में लगी आग में हम अपने हाथ गर्म करते हैं। आगे बढ़ते हुए व्यक्ति की टाँग पकड़कर पीछे घसीट कर फेंक देना और फिर तमाशा देखना, यह आचरण मानव-जीवन को दूषित बनाए हुये है। यदि देखा जाय तो हमसे वे पशु-पक्षी अच्छे हैं, जो न एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं, न कलह। हमें अपने साथियों को, सहयोगियों को, पड़ोसियों को तथा अन्य दुःखी एवम् आर्त व्यक्तियों को यहाँ तक कि मानव-मात्र को सहयोग देना चाहिये। यदि आप सहयोग देंगे तो सहयोग मिलेगा, यदि आप सहानुभूति देंगे तो आपको सहानुभूति मिलेगी। संसार तो आदान प्रदान के सम्बन्धों में बंधा हुआ

है। जो चीज आप दूसरों को नहीं देंगे वह आपको दूसरों से नहीं मिलेगी। फिर अकेला चना भाड़ में कब तक भुनता रहेगा। आगे बढ़ने के लिए और उठने के लिए परस्परावलम्बन चाहिए, सहानुभूति मानव की सबसे बड़ी विभूति है। अतः यह मानव-मात्र का कर्त्तव्य है कि वह समाज में सहयोग और सहानुभूति का व्यवहार करे। श्री गुप्त जी ने इसे स्वीकार किया है।

"सहानुभूति चाहिये, महा विभूति है यही।
परस्परावलम्बन से उठो सभी बढ़ो सभी।"

सहिष्णुता—सहिष्णुता मानव के चरित्र का एक अपरिहार्य अंग है। आप सहनशील बनें, थोड़ी सी बात पर गर्म हो जाने वाले या छोटी-सी मुसीबत में घबरा उठने वाले या थोड़े से कष्टों में पथ से विचलित हो जाने वाले या कांटो के मार्ग को देखकर पीछे हट जाने वाले, कभी आगे नहीं बढ़ सकते और न देश को ही आगे बढ़ा सकते हैं। देश को स्वतन्त्रता दिलाने वाले राष्ट्र-नायकों ने विदेशियों द्वारा दी गई कितनी यातनायें सही, कितने कष्ट भोगे तब कहीं स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। यदि ये घबराकर और हिम्मत हार कर अपने मार्ग से विचलित हो गये होते तो न देश स्वतन्त्र होता और न आप हम इस देश के स्वतन्त्र नागरिक। देश की वर्तमान स्थिति में सामाजिक सद्‌भावना और शान्ति के लिए सहानुभूति और सहनशीलता की बड़ी आवश्यकता है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने जीवन में सहनशीलता लायें और शान्त बनें। गरम बर्तन को तो लोग छूने में भी डरते हैं कि कहीं हाथ न जल जाये।

जितेन्द्रियता—जितेन्द्रियता चरित्र-बल की कुञ्जी है। यदि आप जितेन्द्रिय नहीं हैं, तो न आप अपना भला कर सकते हैं और न देश का। जितेन्द्रिय व्यक्ति में ही वह शक्ति और सामर्थ्य होती है, जिससे वह समुद्र तक को लाँघ जाता है, पर्वत शृंखलायें उसके मार्ग में बाधा बनकर खड़ी नहीं हो सकती। आँधी और तूफान उसे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकते। जितेन्द्रिय व्यक्ति का मन और बुद्धि स्थिर और शान्त होते हैं। वह समाज के कल्याण में दृढ़तापूर्वक हाथ बँटा सकता है। सबको लेकर आगे बढ़ सकता है। समाज को पतन से बचा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि भारतीय जितेन्द्रियता की ओर बढ़ें।

अनुशासन—स्वतन्त्र और सभ्य देश के नागरिक अनुशासित होने चाहियें। अनुशासन, जीवन और जगत् की सफलता की कुञ्जी है। यदि आपका अध्ययन-अध्यापन, खान-पान, रहन-सहन, आहार-व्यवहार अनुशासित नहीं है तो आप सामाजिक जीवन में अनुशासित नहीं रह सकते। प्रत्येक देश के कुछ नियम-नीतियाँ होती हैं, समाज की कुछ मर्यादायें होती हैं, जिन पर चलना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य होता है। देखा यह जा रहा है कि मानो देश में अनुशासन जैसी कोई चीज है ही नहीं, सभी अपने को स्वतन्त्र समझकर अमर्यादित होते जा रहे हैं; उद्दण्डता और उच्छृंखलता की परिधि में डूबे जा रहे हैं। वास्तव में देखा जाये तो हमने स्वतन्त्र शब्द का अर्थ गलत समझा है, जिसके परिणाम आज हम भुगत रहे हैं और भविष्य में भी इसके दुष्परिणाम हमको सहन करने होंगे। आज देश में अनुशासनहीनता का नग्न नृत्य हो रहा है। किसी को किसी की कोई परवाह नहीं है। यदि हम देश को पतन से बचाना चाहते हैं, तो हमारा यह प्राथमिक कर्त्तव्य है कि हम स्वयं अनुशासित बनें, दूसरों को अनुशासित बनायें तथा अपने बच्चों को, परिवार के अन्य व्यक्तियों को व

सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो को अनुशासित जीवन व्यतीत करने के लिये कहें और प्रेरित करें।

मादक पदार्थों का त्याग—हमारा कर्तव्य है कि हम प्रतिज्ञा कर कि हम कभी मादक वस्तुओ का सेवन नही करेंगे। मादक वस्तुओ के सेवन से देश के जन-जीवन की कितनी क्षति हो रही है, चाहे वह आर्थिक हो, बौद्धिक हो, शारीरिक हो, इसको हम और आप कल्पना भी नही कर सकते। मादक वस्तुओ के आवेश में व्यक्ति कितना अनर्थ और अत्याचार करता है और जो सहने वाले सहते हैं वह कहते नहीं बनता। ससार मे सभी अनर्थ, हत्यायें, उपद्रव और उत्पात किसी न किसी आवेश मे ही होते हैं। उन आवेशो मे मदिरा की मादकता अधिक धनी सिद्ध हुई है। अत यदि हम देश को विनाश से बचाना चाहते हैं, घरो को उजडने से रोकना चाहते हैं, पत्नियो की आत्म-हत्यायें रोकना चाहते हैं, बाजारो को लूट से बचाना चाहते हैं, पाशविक प्रवृत्तियो पर विजय पाना चाहते हैं, समाज मे शान्ति और सद्भावना का वातावरण चाहते हैं और देश की भावी सन्तति को पगु, बधिर, मूर्ख और अङ्गहीन नही बनाना चाहते, तो देश की वतमान स्थिति मे हमारा यह पुनीत कर्तव्य है कि हम मादक वस्तुओ का पूर्ण बहिष्कार करें।

राष्ट्रीय ए ता—कर्तव्यो की शृखला मे उपरिलिखित चारित्रिक गुणो का उल्लेख करन के पश्चात् हम उन आवश्यक कर्तव्यो पर आते हैं, जिनका पालन करना देश की वतमान स्थिति मे आवश्यक हो जाता है—उनमें सर्वप्रथम राष्ट्रीय एकता आती है। आ ा की स्थिति मे, राष्ट्रीय एकता एक बहुत बडा प्रश्न बनी हुई है। भारतवर्ष में अनेक भाषाओ, धर्मों और जातियों तथा उपजातियो के लोग रहते हैं। भारतीय सविधान सभी को समान व्यवस्था और समान रक्षा का वचन देता है। हमारा कर्तव्य है कि पारस्परिक साम्प्रदायिक वैमनस्य को त्याग कर सौहार्द के साथ रहें। सभी धर्मों का समान आदर करें। अल्पसख्यको के प्रति सद्व्यवहार करें। प्रान्तीय, भाषायी या धार्मिक सकीर्णताओ को हृदय मे न आने दें, क्योकि इन बातो से फूट और अलगाव बढता है। फिर घृणा से द्वेष और द्वेष से हिंसा का जन्म होता है, जोकि देश के लिये नितान्त घातक वस्तु है।

राष्ट्र-निष्ठा—इसके पश्चात् राष्ट्र-निष्ठा की बात आती है। जब तक किसी देश के रहने वालों की उस देश के प्रति पूर्ण निष्ठा नहीं होगी तब तक वह देश सर्वाङ्गीण उन्नति नही कर सकता। हम देखते हैं कि राष्ट्र-निष्ठा का अभाव होता जा रहा है और व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्णरूप से सामने आ गये हैं, उन्ही की पूर्ति को आज का मानव अपने जीवन का लक्ष्य बनाये हुये है। इसीलिये आज हमारे यहाँ राष्ट्र-निष्ठा जैसी कोई वस्तु नहीं दिखाई पडती और हम दिन पर दिन अपने कर्तव्य से गिरते जा रहे हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम अहर्निश राष्ट्र गौरव का चिन्तन कर और शुभ कार्यों से देश के गौरव और गरिमा की वृद्धि करें। सकुचित विचारधाराओं को छोडकर एक शक्ति के रूप मे राष्ट्र को आगे बढायें। यह तभी सम्भव है जब प्रत्येक देशवासी के हृदय मे राष्ट्र के प्रति मान और मोह हो, परन्तु जब अपना घर दूसरो के चगुल से छूटकर हमारे ही हाथो मे आ गया तो हमने उसकी टूट-फूट और साधारण मरम्मत के बारे मे सोचना बन्द कर दिया, जोकि हमारे लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। यह हमारा कर्तव्य है कि हम स्वय अपने हृदय मे राष्ट्रनिष्ठा को जाग्रत करें और दूसरा न। उसके लिए प्रेरित करें।

राष्ट्र-भाषा—हमारा कर्त्तव्य है कि हम राष्ट्र-भाषा की उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें। उसकी उन्नति और पूर्ण अभिवृद्धि के लिए पाश्चात्य या प्रान्तीयता के मोह को छोड दे। एक शक्ति और एक सूत्र मे होकर हम राष्ट्र-भाषा को आगे बढ़ायें। एक राष्ट्र और एक राष्ट्र-भाषा का लक्ष्य हमारे समक्ष होना चाहिए। प्रान्तीय भाषायें प्रान्तो मे बढ़ें, , और फलें परन्तु जहाँ तक समूचे राष्ट्र का प्रश्न है उसकी भाषा एक हो और हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसकी उन्नति के लिये तन-मन-धनसे, जो कुछ भी कर सकते हैं, करें। भारतेन्दु जी ने लिखा है—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को सूल॥

इसलिये अपने हृदय के शूल को मिटाने के लिए, अपने पूर्वजों को सुरक्षित एवं सचित ज्ञानराशि से लाभ उठाने के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह सिद्ध करने के लिए कि भारत जैसे महान् लोकतन्त्रात्मक देश की भी कोई अपनी राष्ट्र-भाषा है और उसका पूर्ण समृद्ध साहित्य है, यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी राष्ट्र-भाषा का आदर करे और उसकी वृद्धि के लिए प्रयत्नशील हों।

व्यावसायिक संयम—आज की बढ़ती हुई आर्थिक वैषम्य की खाई को पाटने के लिए हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपने व्यापार और व्यवसायो मे लाभ की दृष्टि मे सयम से काम ले। गरीबों को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्न करे। आज हम इतने स्वार्थी हो गए हैं कि अपनी थैली भरने का ही ध्यान रहता है, दूसरे का पेट भी भर जाता है या नहीं, यह नही सोचते। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने साथ दूसरे की भी सोचें और उसे आगे बढ़ावें। समाजवाद की दिशा मे हम आगे तभी बढ़ सकते हैं, जब सब सुखी हों और समान स्तर पर हों। यह तभी सम्भव है जबकि गरीब-अमीर की खायी दूर हो।

धार्मिक भावना—आज के युग मे चारो ओर जो अशान्ति और हाहाकार मचा हुआ है और दूर-दूर तक कही भी किनारा दिखाई नही दे रहा इसका मूल कारण है, हमारी धार्मिक बुद्धि का समाप्त हो जाना। हमारे अन्दर राजनीतिक जागृति आई, विज्ञान मे हम आगे बढ़े, पाश्चात्य रीति-रिवाजो और विचारधाराओ को अपनाने मे हमने दूसरे देशो से बाजी मारी, परन्तु धार्मिक भावनाओं को हमने छोड दिया, जिनसे हमको अपार शान्ति प्राप्त होती थी। मानसिक सुख और शान्ति के लिए धार्मिक उद्बोधन बड़ा आवश्यक है। जीवन के कण्टकाकीर्ण मार्ग मे मानव को यदि थोड़ी बहुत शान्ति मिल सकती है, तो वह धार्मिक क्षेत्र मे ही मिल सकती है। अतः हमारा यह कर्त्तव्य है कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक चेतना के साथ-साथ धार्मिक चेतना को भी जाग्रत रखे।

वैसे तो मानव-जीवन अनन्त कर्त्तव्यो से भरा पड़ा है, जिसका पालन करना मानव-मात्र का धर्म है, परन्तु देश की वर्तमान स्थिति मे हमारे कुछ आवश्यक कर्त्तव्य हो जाते है, जिनमे से कुछ का ऊपर विवेचन किया गया है।

अन्त में हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सभी देशवासी यह सकल्प करे कि हम ऐसा कोई काम नही करें जिससे देश की अखण्डता और उसके गौरव पर आँच आती हो या देश की प्रतिष्ठा गिरती हो या देश विशृंखल होता हो। हमारे प्रत्येक कार्य-व्यापार देशहित मे होंगे और अपने व्यक्तिगत स्वार्थो से ऊपर उठकर तन-मन-धन से देश को पूर्ण समृद्धशाली बनाने का प्रयत्न करेंगे।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि वर्तमान स्थिति में उपर्युक्त कर्त्तव्यों का पालन किया जाए और किये हुए संकल्प पर दृढ़ रहें, तो देश की न कोई क्षति कर सकता है और न कोई समृद्धिशाली होने से रोक ही सकता है। देश निःसंदेह आगे बढ़ेगा यदि हमने कर्त्तव्यों का पालन किया तो। हमें अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए, कर्त्तव्य होते ही इसलिए हैं कि उनका पालन किया जाए। तभी हम देश की अखण्डता और राष्ट्रीय एकता की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं।

२६ भारतवर्ष में ग्रामोत्थान योजनायें

भारत के गाँव राष्ट्र की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक हैं। गाँव भारतवर्ष की आत्मा हैं और राष्ट्र उनका शरीर। सम्पूर्ण शरीर की उन्नति आत्मा की स्वस्थ स्थिति पर निर्भर है। आत्मा के स्वस्थ होने पर ही सम्पूर्ण शरीर में नव-चेतना और नवजागृति उत्पन्न हो सकती है। आज भी देश की पचहत्तर प्रतिशत जनता गाँवों में ही रह रही है गाँधी जी कहा करते थे, "भारत का हृदय गाँवों में बसता है गाँवों की उन्नति से ही भारत की उन्नति हो सकती है। गाँवों में ही सेवा और परिश्रम के अवतार किसान बसते हैं।"

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत के ग्रामों और ग्रामीणों की दशा बड़ी दयनीय थी। वहाँ पर निर्धनता, बेरोजगारी और भुखमरी का नग्न-नृत्य होता रहता था। इनमें अशिक्षा और सामाजिक वैषम्य की अग्नि अहर्निश धधकती रहती थी। विश्व के किस भाग ने क्या नई अंगड़ाई ली उसके क्या सुपरिणाम और दुष्परिणाम हुए इन बातों से उन बेचारों का कोई सम्बन्ध नहीं था। उनका संसार केवल उनके गाँव तक ही सीमित था। जीवनयापन की स्वस्थ प्रणाली से ग्रामवासी अपरिचित थे। उनके जीवन में संघर्ष करने के लिए दरिद्रता, अस्वस्थता और अज्ञानता ही बहुत थे। प्रतिवर्ष अनेक मनुष्यों की असमय मृत्यु होती थी। महामारी से रक्षा करने के लिए छोटे छोटे नियम भी नहीं समझ पाते थे। न इनके मन में आगे बढ़ने की इच्छा होती थी और न कभी प्रेरणाओं का ही कोई फल होता था। स्वच्छता और आर्थिक स्थिति के साथ-साथ ग्रामवासियों की शिक्षा की समस्या भी प्रबल थी।। शोषण अन्याय, अन्धविश्वास और अशिक्षा का पूर्ण साम्राज्य था। परन्तु आज वे गाँव वे गाँव नहीं रहे। भारतीय सरकार के अनवरत प्रयत्नों से उनमें पर्याप्त सुधार हो गये हैं। गाँवों की ७० प्रतिशत जनता अब खुशहाल है, जिनका जीवन झोंपड़ियों में बीता था, अब उनके कोठियों के मकान हैं। जिनकी सात पीढ़ियाँ निरक्षर थीं, उनके बच्चे बी० ए० और एम० ए० की कक्षाओं में पढ़ रहे हैं। इस प्रकार समय बदलने के साथ ही देश का भाग्य भी बदल गया।

भारतवर्ष मे ग्रामोत्थान योजनायें

१ प्रस्तावना—ग्रामोत्थान का महत्त्व।
२ गाँवों की स्वाधीनता से पूर्व की दशा।
३ स्वतन्त्र भारत मे ग्रामोत्थान की योजनायें।
४ उपसंहार।

ग्रामीणों की दशा में परिवर्तन लाने के लिए महात्मा गांधी जी ने नन्हूर में

स्वावलम्बन का आदर्श उपस्थित किया गया था, जिससे ग्रामीणों में आत्मविश्वास और आत्म-निर्भरता जैसी पवित्र भावनाएँ उत्पन्न होने लगीं। सन् १९३७ में एक ग्राम-सुधार विभाग स्थापित किया गया था और प्रत्येक जिले में दस से लेकर पन्द्रह तक ग्राम-सुधार केन्द्रों की स्थापना की गई थी। किसानों की सर्वांगीण उन्नति के लिये एक विकास कमिश्नर भी नियुक्त किया गया था। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् से विकास कार्य बड़ी तीव्रता से प्रारम्भ हुए। इन कार्यक्रमों को दो भागों में विभाजित किया गया था। प्रथम—विभागीय कार्यक्रम जो सरकार द्वारा बनाये जाते थे, दूसरे—जन-कार्यक्रम जिनका निर्माण जनता द्वारा किया जाता था। ग्रामीणों के तन, मन, धन—तीनों प्रकार के पूर्ण सहयोग से इन कार्य-क्रमों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। कार्य में सहयोग प्रदान करने के लिये ग्राम्य सहकारिता और कुछ चुने हुए भारतीय विशेषज्ञ भी नियुक्त किये गए। सन् १९४८ में उत्तर प्रदेश की सरकार ने अग्रगामी विकास योजना का भी श्रीगणेश किया। इस विकास योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों को स्वावलम्बी बनाने की शिक्षा देना, आधुनिक यन्त्रों से कृषि करना, आर्थिक विषमता को दूर करना, पशु-पालन तथा स्वास्थ्य एवं समृद्धि के नियमों में दक्ष बनाना, प्रौढ़ों को शिक्षित करना, आदि थे। इस नवीन एवं अद्भुत प्रोत्साहन से ग्रामीणों का संकुचित दृष्टिकोण सहसा व्यापक बना, कृषि के कार्यों में उनकी रुचि बढ़ी और भारत के उत्पादन में वृद्धि होने लगी। अमेरिका की सरकार इस योजना से प्रभावित होकर भारत सरकार को टैक्नीकल सहायता देने को उद्यत हो गई और उसने देश में पचपन सामुदायिक योजनायें प्रारम्भ करने के लिये ५ करोड़ डॉलर की सहायता देना सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इन सामुदायिक योजनाओं का प्रधान लक्ष्य ग्रामीणों की रचनात्मक कार्यों की ओर रुचि उत्पन्न करना, उनका आर्थिक विकास करना, उनके सामाजिक वैषम्य को समाप्त करना था। अज्ञानता, बेरोजगारी तथा अन्धविश्वास को दूर करने के लिये भिन्न-भिन्न कार्यों की व्यवस्था की गई। सामुदायिक योजनाओं के प्रमुख कार्य ये हैं—शिक्षा, समाज शिक्षा, कृषि, सिंचाई, पशुपालन, जनस्वास्थ्य, यातायात और कुटीर उद्योग-धन्धे, आदि। प्रथम पंचवर्षीय योजना में विशेष रूप से कृषि को प्रधानता दी गई, जिसके फलस्वरूप बहुत-सी बंजर-भूमि भी उपजाऊ बन गई। विभिन्न रासायनिक खादों का प्रयोग आरम्भ हुआ, खेती के नये-नये आविष्कार हुए, किसानों ने बड़ी रुचि से इन्हें ग्रहण किया।

भारतीय कृषि वर्षा पर अवलम्बित रहती है। अतः राष्ट्रीय सरकार ने कृषकों को सिंचाई की नई सुविधायें प्रदान कीं। गाँव-गाँव में ट्यूबवैल लगवाये गये। कुओं, तालाबों और नहरों के अतिरिक्त नदियों तथा झीलों के भी उपयोग इसमें सम्मिलित कर लिए गए। खेती का अधिकांश भाग पशुओं पर ही आधारित है, इसलिये पशुओं की नस्ल सुधारने के लिये पशु-चिकित्सालयों का प्रबन्ध किया गया। ग्रामीणों की संक्रामक बीमारियों से रक्षा करने के लिये गाँव-गाँव में आयुर्वेदिक तथा एलोपैथिक औषधालयों की स्थापना की गई। बड़े-बड़े गाँवों में प्रसूतिका गृह भी खोले गए। आजकल शिशु कल्याण और सफाई के साधनों की व्यवस्था की जा रही है। आदर्श ग्राम स्थापित किये जा रहे हैं। गाँवों के आर्थिक विकास के लिये, आर्थिक स्थिति को सम्पन्न बनाने के लिये, एक गाँव को दूसरे गाँव के निकट लाने के लिये सड़कें बनायी जा रही हैं, जिससे ग्रामीणों को यातायात में सुविधा हो। ग्रामीण उद्योग धन्धों को

पुन विकसित किया जा रहा है, जिससे किसान अपने अवकाश के क्षणों का उपयोग करके अधिक द्रव्योपार्जन करके अपने जीवन-स्तर को अधिक ऊँचा उठा सकें और पढ़े-लिखे ग्रामीणों की बेरोजगारी की समस्या हल हो।

इतना ही नहीं, शिक्षा के प्रसार के लिए एक-एक मील पर प्राइमरी स्कूल खोले गये हैं। मिडिल स्कूल और प्रौढ़ पाठशालाओं की स्थापना की जा रही है, जिससे ग्रामीण समाज शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा तथा स्वच्छता, आदि के नियमों को समझ सकें। ग्रामीणों के प्रमुख व्यवसाय खेती की शिक्षा-दीक्षा के लिये विभिन्न स्थानों में कृषि विश्वविद्यालय खोले गये हैं जहाँ पर पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों प्रकार से कृषि का प्रशिक्षण दिया जा रहा है आकाशवाणी दिल्ली से ग्रामीण भाइयों के लिए नित्य नवीन प्रसारण किए जाने लगे हैं। कभी खेती की बातें समझाई जाती हैं, तो कभी ग्रामोत्थान पर विद्वानों के विचार विमर्श प्रस्तुत किये जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारें अपनी अर्थव्यवस्था के अनुसार अपनी सुनिश्चित ग्रामोत्थान योजनाओं को साकार रूप देने में निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

लेकिन भारतवर्ष एक विशाल देश है। सहसा इसकी विशाल जनता के जीवन का समृद्ध बनाना कोई सुगम काय नही है। सरकार के पास कोई जादू का डण्डा नहीं है, जिसे घुमाकर उसे एक दम से जन जीवन के स्तर को ऊँचा कर दे। यह सब शनै शनै ही होगा। भारत सरकार भारतीय नागरिकों के जीवन को उन्नत बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। छठी पञ्चवर्षीय योजना में समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के छ करोड ५० लाख लोगों को विशेष सहायता दी जायगी, जिससे उनका जीवन स्तर भी गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सके। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत ३० से ४० करोड श्रमिक दिवस बढ़ाये जायेंगे, जिसमे ३० लाख परिवार लाभान्वित होंगे। ४६ हजार से भी अधिक गाँवों म बिजली लग दी जायेगी और लगभग १ करोड ६० लाख गाँवों मे, जहाँ पीने का साफ पानी नहीं मिलता, वहाँ यह सुविधा उपलब्ध कराई जायेगी। सातवीं योजना ग्रामोत्थान मे इससे भी अधिक सफल हुई है। पूर्व प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी आठवीं पञ्चवर्षीय योजना को किसी एक व्यापक स्तर पर बनाने के लिए दृढ प्रतिज्ञ थे परन्तु उनकी पार्टी १९८९ के सामान्य निर्वाचनों मे परास्त हो गई। कांग्रेस का स्थान राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने ग्रहण किया। आठवीं पञ्चवर्षीय योजना का प्रारूप प्रधानमन्त्री श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह की अध्यक्षता मे तथा योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री रामकृष्ण हेगडे न प्रस्तुत किया है। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार उसे साकार रूप देने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। मेरा यह विश्वास है कि निकट भविष्य म ही भारतवर्ष अपने पुरातन खोये हुये गौरव को पुन प्राप्त करके उन्नति के उच्च शिखर पर आसीन हो सकेगा। ●

२७ भारत धर्म-निरपेक्ष राज्य

एक समय था जबकि विश्व के जीवन पर धर्म तथा धार्मिक अन्धविश्वासों का अबाध साम्राज्य था। मानव-जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं था, जिसमें धर्म का हस्तक्षेप न हो। व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त भारत की राजनैतिक गतिविधियों पर भी धर्म का पूर्ण प्रभुत्व था। यूरोप में सबसे बड़ा धर्माधिकारी पोप होता था। उसकी सत्ता सर्वोपरि होती थी। राजाओं के राज्याभिषेक और उनकी अपदस्थता

उनकी इच्छा मात्र होती थी। सुना जाता है कि वह ईश्वर से मिलने और स्वर्ग में जाने के टिकट भी दिया करता था। यूरोप में कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बियों में बहुत समय तक संघर्ष चलता रहा और वे एक दूसरे को विनष्ट करने का प्रयत्न करते रहे। राज्य-धर्म महान् धर्म समझा जाता है। राजा की विवशतापूर्वक भक्त बनाई गई प्रजा उसी धर्म को स्वीकार करती थी, जिसे राजा स्वीकार करता था और यदि कोई स्वतन्त्र विचारक उस धर्म का अनुयायी होने में आना-कानी करता था, तो उसकी डण्डे से खबर ली जाती थी, वह राजद्रोह का अपराधी घोषित किया जाता था। इंग्लैण्ड के राजा प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्वी थे, वहाँ की प्रजा भी विवशतापूर्वक उसी धर्म को मानकर जीवित रहती थी। फ्रांस तथा स्पेन के राजा कैथोलिक थे तो प्रजा भी कैथोलिक थी। "यथा राजा तथा प्रजा" की कहावत शत-प्रतिशत चरितार्थ होती थी। यही दशा भारतवर्ष की थी, विजेता मुसलमानों ने यहाँ तलवार के बल पर अपना धर्म फैलाया। हिन्दू तथा मुसलमानों में धर्म के आधार पर बहुत समय तक संघर्ष चलता रहा। अशोक बौद्ध धर्म में दीक्षित था, अतः बौद्ध धर्म को राज धर्म कहा जाता था और राज्य द्वारा समस्त भारत में उसका प्रचार किया जाता था। अंग्रेजों ने लगभग दो शताब्दी तक भारत में राज्य किया। वे भारतीय भोली जनता को ईसाई बनाने में न चूके, स्थान-स्थान पर धर्म केन्द्र खोले गये, दरिद्र जनता को अभावों की पूर्ति का प्रलोभन देकर उन्हें ईसाई बनाया गया, इस प्रकार जब तक विश्व में राजाओं, सामन्तों और धर्म गुरुओं का प्रभुत्व काल रहा, तब तक राजनीति पर धर्म का भी आधिपत्य बना रहा। धर्म की सहायता से राज्य-वृद्धि भी होती रही और राज्य की सहायता से धर्म प्रचार भी होता रहा।

भारत धर्म-निरपेक्ष राज्य

१. प्रस्तावना (धर्म का अबाध साम्राज्य)।
२. धर्म निरपेक्षता का सिद्धान्त।
३. भारतवर्ष में धर्म निरपेक्षता।
४. उपसंहार।

युग बदला, चारों ओर परिवर्तन की पुकार सुनाई पड़ने लगी, समय ने करवट ली और अङ्गड़ाई लेकर उठ बैठा। व्यक्तिगत प्रभुत्व की प्रचण्ड अग्नि का स्थान प्रजातन्त्र की लहरों ने ग्रहण किया। युगों की सन्त्रस्त और सतप्त जनता ने शान्ति की साँस ली। मानवता का खोया हुआ शृंगार उसे फिर मिलने लगा। एक-एक करके राज्य-शक्तियाँ समाप्त होने लगी। बहुत दिनों की हाथों से छूटी शासन की बागडोर जनता के हाथों में फिर से आने लगी। राजनीति व धर्म का सम्बन्ध धीरे-धीरे पृथक् होने लगा। विचारकों ने स्वीकार किया कि धर्म मनुष्य की निजी सम्पत्ति है, इसका राज्य या शासन से कोई सम्बन्ध नहीं। व्यक्ति जिस धर्म को चाहे स्वीकार कर सकता है और जिस धर्म को चाहे छोड़ सकता है, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, उसमें हस्तक्षेप करने का किसी को भी अधिकार नहीं होना चाहिये।

धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त है कि धर्म किसी एक व्यक्ति की वस्तु नहीं है। उसमें किसी को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह चाहे जिस धर्म का अवलम्बन करे। राज्य का अपना कोई धर्म न हो और राज्य अपनी सीमाओं में रहने वाले सभी मतावलम्बियों की समान रूप से रक्षा करे। यूरोप में इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में भी कठिनाई उठानी पड़ी। भारतवर्ष तो प्रारम्भ से ही उदार और सहिष्णु है। यहाँ के विद्वानों

ने स्वयम् अपने धर्म का पालन करते हुए कभी दूसरे के धर्म को हेय दृष्टि से नही देखा। अशोक यद्यपि स्वय बौद्ध था, परन्तु भारत के अन्य धर्मावलम्बियो से घृणा नही करता था, अपितु प्रजा के समस्त धर्मों का समान रूप से सरक्षण करता था। भारतवर्ष मे अग्रेजो का पदार्पण हुआ। सन् १८५७ मे हिन्दू-मुसलमान दोनो जातियो ने अग्रेजो से डटकर टक्कर ली। परिणाम यह हुआ कि अग्रेजो के पैर उखड गये। उस भयानक विद्रोह को अग्रेज जाति ने किसी तरह दबाया पर यह निश्चय कर लिया कि इन दोनो जातियो को कभी एक न होने दिया जाए, तभी यहाँ राज्य करना सम्भव हो सकता है। पार्थक्य वृद्धि के लिए धर्म का ही आधार सबसे सरल था। अग्रेज धर्म की आड लेकर भारतीय जनता से खेल खेलने लगे। अग्रेजो की कूटनीतियो ने दोनो जातियो के बीच मे वह खाई खोदी, जो कभी न भर सकी। महात्मा गाँधी ने आजीवन दोनो जातियो को पास लाने का भगीरथ प्रयत्न किया, परन्तु वे भी पूरी तरह सफल न हो सके। स्वाधीनता सग्राम उत्तरोत्तर बढता गया। देश के समस्त अञ्चलो से असख्य नर-नारी विदेशी शासन को भयङ्कर भार समझकर उसे उतार फेंकने के लिए कटिबद्ध हो गये। अन्त मे अग्रेजो को जाना पडा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतवर्ष ने अपने को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य उद्घोषित किया। भारत की सीमाओ मे निवास करने वाले सभी नागरिको को यह आश्वासन दिया गया कि वे अपने-अपने धार्मिक क्षेत्रो में पूर्णतया स्वतन्त्र हैं, उनके धर्म के सम्बन्ध मे उनके ऊपर कोई भी प्रतिबन्ध नही होगा। राजकीय सेवाओ व राजनीतिक सम्बन्धों मे किसी के साथ कोई पक्षपात नही किया जाएगा। इस धर्म-निरपेक्षतापूर्ण उद्घोषणा से भारत का अन्य महान् राष्ट्रो की दृष्टि मे सम्मान बढा। विदेशी कूटनीतिज्ञो ने भारतीय प्रजातन्त्र प्रणाली की भूरी भूरी सराहना की, जबकि पाकिस्तान एक कूपमण्डूक की भाति कभी ऊपर उछलता है और कभी नीचे गिरता है। पाकिस्तान की धर्म-सापेक्षता के कारण ही आज वहाँ असख्य नर-नारियो का भीषण सहार होते हुये भी बङ्गला देश का निर्माण हुआ। आज भारतीय सरकार धर्म निरपेक्षता के नियम का बडी तत्परता के साथ पालन कर रही है। पग पग पर देखा जाता है कि कही अल्पसख्यको के हितो की हानि न हो जाये या उन्हे कोई धार्मिक ठेस न पहुचे। सरकार अपने लोकतन्त्रात्मक नियमो का कठोरता से पालन करती है। इसमे कोई सन्देह नही कि भारतीय सरकार ने देश की उन्नति के लिए कोई कदम बाकी उठा नही रखा।

भारतीय सविधान २६ जनवरी १९५० से लागू किया गया था। इस सविधान मे धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। इस धारा के अनुसार भारत का प्रत्येक नागरिक धार्मिक विश्वासो के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र है और सभी भारतीय नागरिको को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्त है। धार्मिक वैभिन्नय को समूल समाप्त कर देने के लिए पृथक मताधिकार प्रणाली को समाप्त करके सयुक्त मताधिकार प्रणाली आरम्भ कर दी गई है। पहले मुसलमान, मुसलमान प्रतिनिधि का निर्वाचन करता था और हिन्दू हिन्दू प्रतिनिधि का, परन्तु अब सामाजिक रूप से निर्वाचन होता है और वही व्यक्ति विजयी हो जाता है, जिसको सभी वर्गों और सम्प्रदायों के अधिकतम मत प्राप्त हो। धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त से देश मे पारस्परिक द्वेष, वैमनस्य, ईर्ष्या और कलह शान्त होते जा रहे है। जनता

में परस्पर सौहार्द और सद्-भावनाएँ उत्पन्न हो गई हैं। एक समय आएगा, जबकि देश में से अवशिष्ट मत वैभिन्नय भी सर्वदा के लिए समाप्त हो जायेगा। वैसे भी प्रजातन्त्र शासन प्रणाली मे धर्म-निरपेक्षता का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्मनिरपेक्षता के अभाव में कोई भी प्रजातन्त्र सफल और श्रेष्ठ प्रजातन्त्र नही कहा जा सकता। ●

२८　　　भारत में बेकारी की समस्या

"बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ।
क्षीणा नराः निष्करुणाः भवन्ति ॥"

भूखा मनुष्य क्या पाप नही करता, धन से क्षीण मनुष्य दयाहीन हो जाता है, उसे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विवेक नही होता है। वही दशा आज के युग में विद्यमान है। चारों ओर चोरी और डकैतियों की दुर्घटनायें, झीना-झपटी, लूट-खसोट और कत्ल के हृदयद्रावी समाचार सुनाई पडते हैं। कही बैंक-खजाने लूटने का समाचार अखबार में छपा हुआ मिलता है, कही गाड़ियो को रोकने व लूटने के हालात समाचार-पत्रों में पढने को मिलते हैं। आज देश में स्थान-स्थान पर उपद्रव और हड़तालें हो रही हैं। मनुष्य के जीवन से आनन्द और उल्लास न जाने कहाँ जाते रहे। उसे अपनी और अपने परिवार की रोटियो की चिन्ता है, चाहे उनका उपार्जन सदाचार से हो या दुराचार से। आज चाहे फावड़ा और कुदाली चलाकर रक्त-स्वेद-सिक्त रोटियाँ खाने वाले श्रमिक हों, चाहे अनवरत बौद्धिक श्रम करने वाले स्वास्थ्य के शत्रु विद्वान्, सभी बेकारी और बेरोजगारी के शिकार बने हुए हैं। निरक्षर तो किसी तरह अपना पेट भर लेते हैं, परन्तु पढ़े-लिखों की आज बुरी हालत है। इसमें अतिशयोक्ति अवश्य है, परन्तु मैं तो यही कहूंगा कि आज पैसे के सौ-सौ एम० ए० मिल जाते है। वे बेचारे क्या करे, कैसे जीवन चलाएँ, यह आज की बड़ी कठिन समस्या है। आज हम स्वतन्त्र अवश्य है, परन्तु अभी आर्थिक दृष्टिकोण से हम पूर्णतया सुखी और समृद्ध नही हैं। एक सुखी और सम्पन्न है, तो पचास दुःखी और दरिद्र हैं, जिनका जीवन-स्तर गिरा हुआ है। ऐसी बात नही कि स्वतन्त्र भारत में ही यह कोई नया जादू हो गया हो, यह समस्या भारतवर्ष मे बहुत दिनो से चली आ रही है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व बेकारी की समस्या विद्यमान थी, परन्तु महायुद्ध इस बेकारी के अभिशाप के लिये वरदान बनकर आया और सब श्रेणी के व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार कार्य मिल गया। सबको पेट भर रोटियाँ मिलने लगी, परन्तु युद्ध समाप्त होते ही युद्ध सम्बन्धी विभिन्न कार्यों में लगे हुए व्यक्ति फिर बेकार हो गए और बेकारी की समस्या फिर भारतवर्ष पर छा गई और अब तो अपनी चरम सीमा पर विद्यमान है।

बेकारी का रोमहर्षक चरमोत्कर्ष तो उस समय दिखाई पड़ा, जबकि रुड़की विश्वविद्यालय में पूर्ण प्रशिक्षित इन्जीनियर्स को उपाधि प्रदान करने हेतु १९६७ के दीक्षान्त समारोह में भारतवर्ष की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ज्योंहि भाषण देने खड़ी हुई, त्योंहि लगभग एक सहस्र इन्जीनियर्स ने खड़े होकर समवेत स्वर में कहा कि—"**हमें भाषण नहीं नौकरी चाहिए।**" प्रधानमन्त्री के पास उस समय कोई उत्तर नही था, इतने बड़े विकासोन्मुख देश मे बेकारी, की यह भीषण समस्या एक लज्जाजनक बात थी। इसके बाद तो अनेक इन्जीनियरिंग कालेजों के दीक्षान्त

समारोह में इस प्रकार का वाक आउट हुआ। एक समय था, जब पण्डित नेहरु कहा करते थे, "हमें देश के लिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी विशेषज्ञ चाहियें।" परन्तु इस देश में तकनीकी विशेषज्ञों की यह दुर्दशा थी। परन्तु आज स्थिति भिन्न है। हमारी विवेकशील सरकार के प्रयासों से अब यह समस्या हल होती जा रही है।

भारत में बेकारी की समस्या

१ प्रस्तावना—देश में बेकारी का प्रकोप।
२ देश में बेकारी के कारण—
 (क) उचित शिक्षा का अभाव।
 (ख) विभिन्न प्रशिक्षणों का बाहुल्य।
 (ग) उद्योग धन्धों का भुलाया जाना।
 (घ) बढ़ती हुई जनसंख्या।
 (ङ) झूठा स्वाभिमान।
 (च) सरकारी विभागों में छटनी।
 (छ) सामाजिक तथा धार्मिक मनोवृत्ति।
३ बेकारी से हानि।
४ बेकारी दूर करने के उपाय—
 (क) शिक्षा पद्धति में सुधार।
 (ख) उद्योग धन्धों का विकास।
 (ग) जनसंख्या में वृद्धि पर रोक।
 (घ) अकर्मण्यता का अन्त।
 (ङ) ग्राम विकास तथा कृषि सुधार।
५ उपसंहार।

इस बेकारी की दौड़ में अध्यापक भी पीछे नहीं रहे। पिछले दो तीन वर्षों से प्रशिक्षित अध्यापकों को भी घर बैठना पड़ता है और उन्हें एक दो साल तक नौकरी नहीं मिलती।

शिक्षित व्यक्तियों की बेकारी का मुख्य कारण उचित शिक्षा व्यवस्था का अभाव है। यह महान् दुःख की बात है कि लोग अपनी शिक्षा में इतना द्रव्य व्यय करते हैं, फिर भी उन्हें काम नहीं मिलता। इस बेकारी का सारा दोष उस शिक्षा व्यवस्था का है, जो लॉर्ड मैकाले द्वारा इसी ध्येय की पूर्ति के लिए प्रारम्भ की गई थी, जिससे इस देश में नौकर और गुलाम बनें। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा का नितान्त अभाव है। एक बार पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि—"प्रति वर्ष लाखों पढ़े लिखे लोग नौकरी के लिए तैयार हो जाते हैं, जबकि हमारे पास खाली नौकरियाँ सैकड़ों के लिए भी नहीं हैं। हमें बी० ए० नहीं चाहियें वैज्ञानिक और टैक्नीकल विशेषज्ञ चाहियें।" प्रधानमन्त्री का यह कथन निस्सन्देह हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति की त्रुटियों की ओर संकेत करता है।

आज के युग में शिक्षा के द्वार सभी के लिए खुले हैं। बिना उपयुक्त योग्यता के विद्यार्थी, वैज्ञानिक, इन्जीनियर और अध्यापक बनने के लिए प्रयत्नशील हैं। इतना ही नहीं ऊँचे से ऊँचा प्रशिक्षण प्राप्त तकनीकी विशेषज्ञ भी नौकरी तलाश करता है क्योंकि वह स्वयं धनाभाव के कारण कोई फैक्टरी नहीं चला सकता।

प्राचीन काल में हमारे देश के घर-घर में कुछ न कुछ उद्योग-धन्धा चलता था। कहीं कपड़े बुने जाते थे, तो कहीं चर्खा काता जाता था, कहीं गुड़ बनता था तो कहीं खिलौने। इसी प्रकार के हजारों छोटे-छोटे गृह उद्योगों से लोग अपना-अपना जीविकोपार्जन करते थे। परन्तु अंग्रेजों ने कुछ तो अपने देश की व्यापारिक समृद्धि के लिये यहाँ के गृह उद्योगों को नष्ट किया व ढाका और चन्देरी, आदि के

कारीगरो के हाथ तक कटवा दिये और कुछ हम स्वयं मशीनों के बाहुल्य के कारण अकर्मण्य हो गये। बाबू बनने की इच्छा तीव्रतर हो उठी। हम में आत्म निर्भरता समाप्त हो गई, सदैव के लिए परमुखापेक्षी बन गये।

देश की दिनों-दिन बढ़ती हुई जनसंख्या बेकारी की समस्या को और भी बढ़ा रही है। साधन की सुविधाएँ और उत्पादन तो वही रहा, परन्तु उपभोक्ता अधिक हो गए। जैसे घर में कमाने वाला तो एक हो, खाने वाले बहुत से हों और वे भी दिन पर दिन बढ़ते जायें, तो उस घर मे दरिद्रता अवश्य आ जाएगी। बस यही दशा भारतवर्ष की थी। अनेको अप्राकृतिक उपायों के बावजूद भी जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ रही है। सन् १९५१ मे भारत की ३६ करोड जनसंख्या सन् ११८१ मे लगभग ६८ करोड़ तक पहुँच गई है। यही बढती हुई जनसख्या बेकारी की समस्या को सुलझाने मे भयंकर विघ्न उपस्थित कर रही हैं। इसे रोकने के लिए यद्यपि सरकार की ओर से भी बहुत प्रयत्न किए जा रहे है।

क्या कारण है कि मनुष्य भूखों मरना पसन्द करता है, परन्तु खोमचा लगा कर चाट बेचना या मजदूरी करना पसन्द नहीं करता। बाबूजी रात को चोरी में शामिल हो सकते हैं, डकैती में शामिल हो सकते हैं, परन्तु दिन में मजदूरी की धूल मुँह पर नहीं पड़ने देना चाहते। कहते हैं कि दुनिया कहेगी पढ-लिखकर खोमचे में चाट बेच रहा है। यही मिथ्या स्वाभिमान मनुष्य को कुछ करने नहीं देता। पढ़ने-लिखने ने मजदूरी या व्यापार करने को मना तो नहीं कर दिया। इसी मिथ्या स्वाभिमान ने भारतवर्ष में अनेक कुरीतियों एव पतन को जन्म दिया है।

हमारे देश की सामाजिक व धार्मिक परम्परायें भी बेकारी की समस्या को प्रोत्साहित करती हैं। साधु सन्यासियों को भिक्षा देना पुण्य समझा जाता है। बहुत से आलसी और अकर्मण्य हृष्ट-पुष्ट शरीर वालों ने तो इसे भी एक व्यवसाय बना रखा है। भिक्षा न देना पाप समझा जाता है, अतः दानियों की उदारता पर मुग्ध होकर बहुत से स्वस्थ व्यक्ति भी भिक्षावृत्ति पर उतर आते हैं। इस प्रकार बेकारों की संख्या निरन्तर बढती जा रही है। दूसरी बात यह है कि हमारे यहाँ सामाजिक नियम भी कुछ ऐसे ही हैं, जैसे वर्ग-व्यवस्था के अनुसार विशेष-विशेष वर्गों के लिए विशेष-विशेष कार्य हैं। यदि वह मिले तो बेचारा करे अन्यथा हाथ पर हाथ रखकर घर मे बैठा रहे। यह सामाजिक व्यवस्था भी बेकारी को बढाने मे सहायक सिद्ध हो रही है।

बेरोजगारी के कारण युवा आक्रोश और असन्तोष ने समाज मे अव्यवस्था और अराजकता की स्थिति पैदा कर दी है। समाज के नियम और नागरिक कर्त्तव्य समाप्त होते-जा रहे है। यदि इस भयानक समस्या का समाधान शीघ्र ही न निकला, तो देश की सामाजिक स्थिति और अधिक भयानक हो जाने की सम्भावनायें हैं।

बेकारी की समस्या को दूर करने के लिए हमें अपनी शिक्षा पद्धति में परिवर्तन करना होगा। सैद्धान्तिक शिक्षा से काम नही चल सकता। शिक्षा व्यावहारिक होनी चाहिये। प्रारम्भ से ही विद्यार्थियों में स्वावलम्बन की भावना भरनी चाहिये। अन्य-देशों में विद्यार्थी कमाते हैं और पढ़ते भी हैं। इसलिए उन्हें भावी जीवन मे कोई कठिनाई नहीं उठानी पडती। भारतीय सरकार ने ऐसे शिक्षा केन्द्रो का प्रबन्ध किया है और उनमे इस प्रकार के प्रशिक्षण दिये जा रहे हैं, जिससे भारतीय नवयुक स्वावलम्बी और आत्म-निर्भर बन सकें।

विदेशी सरकार ने अपनी साम्राज्यवाद की लालसा से भारतवर्ष के उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया, अब इन्हे विकसित करना चाहिये, जैसे सूत कातना, कपड़े बुनना, शहद तैयार करना, कागज तैयार करना, इत्यादि। उचित व्यवस्था के अभाव के कारण गांव के बडे-बडे चतुर कारीगर आज बेकार हो रहे है। सरसों पैदा होती है गावो मे, तेल निकाला जाता है शहरो मे, कितने आश्चर्य की बात है।

देश की जनसख्या की वृद्धि रोकने से भी बेकारी की समस्या कुछ न कुछ सुलझेगी ही। इस बढती हुई आबादी को रोकने के तीन उपाय हैं। प्रथम मनुष्य को आत्मसंयम से रहना चाहिये। देश के कल्याण के लिये देशवासियो को इन्द्रिय सुखो मे कम करनी चाहिए। दूसरा, सन्तति निग्रह और तीसरा, विवाह की आयु का नियम द्वारा निर्धारण।

भारतीय कुछ अकर्मण्य और आलसी भी हो गये है उन्होंने शारीरिक परिश्रम करना बन्द कर दिया है। पकी पकाई रोटी खाने को सब तैयार हैं। पर पकाने को कोई तैयार नही, सभी सरल से सरल काम करना चाहते है। कठिन परिश्रम कोई नही करना चाहता। उद्योग और अध्यवसाय जैसी कोई वस्तु आजकल नही रही है। अत अपनी इच्छानुकूल काम न मिलने के कारण लोग बेकार रहने लगे।

बेकारी की समस्या जितनी नगर वालो के सामने है, उससे कही अधिक गाव वालो के सामने भी है। भारत गावो का देश है, यहां का किसान वर्षा पर आश्रित रहता है। वर्षा के अभाव मे अन्नोत्पादन सम्भव नही। कुटीर उद्योग धन्धो की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे कि वे अपने रिक्त समय म काम कर सकें। इससे देश की आर्थिक अवस्था दृढ होगी। ग्रामीण व्यक्तियो को गाव छोडकर नगर म नही आना चाहिये इससे बेरोजगारी बढती है। इस पर भी नियन्त्रण लगाना चाहिये। आजकल हजारो गावों के रहने वाले शहरो मे आकर बसने जा रहे है जिससे बेकारी की समस्या की वृद्धि हो रही है।

भारतवर्ष की राष्ट्रीय सरकार ने इस समस्या को सुलझाने के लिये काफी ठोस कदम उठाये हैं। स्नातक बेरोजगारो को भारत सरकार राष्ट्रीयकृत बैंकों से सरल किश्तो पर बीस हजार का ऋण दे रही है जिससे वे अपना स्वतन्त्र उद्योग स्थापित कर सकें। सरकार ने स्वयं भी हजारो नये बडे-बडे उद्योग स्थापित किये है जिनमें बेरोजगारो को खपाया जा सके। जो शिक्षित बेरोजगार कृषि मे रुचि रखते है उन्हे खाद, बीज एव अन्य यन्त्रो के लिये बैंको से ऋण की सुविधा उपलब्ध करायी गई है। यह सब २० सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की प्रेरणा का फल है। पचवर्षीय योजनाओं मे किसानो की स्थिति मे सुधार के लिये सरकार प्रयत्नशील है। देश निरन्तर आगे बढ रहा है, आशा है निकट भविष्य मे शीघ्र ही भारत मे बेकारी की समस्या दूर हो जायेगी, क्योंकि सरकार स्वय इस बात की इच्छुक है कि भारत म बेकारी की समस्या जल्दी से जल्दी दूर हो जाये। इसमे सन्देह नही कि भारतवर्ष में बेकारी की समस्यायें बहुत कुछ हद तक सुलझायी जा चुकी है। ●

२९ आधुनिक युग मे भारतीय नारी का आदर्श

भारतीय नारी सृष्टि के आरम्भ से अनन्त गुणो की आगार रही है। पृथ्वी की-सी क्षमता, सूर्य जैसा तेज, समुद्र की-सी गम्भीरता, चन्द्रमा की-सी शीतलता, पर्वतो की-सी मानसिक उन्नतता हम एक साथ नारी के हृदय म दृष्टिगोचर होती है।

वह दया, करुणा, ममता और प्रेम की पवित्र मूर्ति है और समय पड़ने पर प्रचण्ड-चण्डी भी। वह मनुष्य के जीवन की जन्मदात्री है। नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। वह माता के समान हमारी रक्षा करती है, मित्र और गुरु के समान हमें शुभ कार्यों के लिये प्रेरित करती है, बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त वह हमारी संरक्षिका बनी रहती है। नारी का त्याग और बलिदान भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। इस श्रद्धामयी नारी के विषय में प्रसाद जी लिखते हैं—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग-पग तल में।
पीयूष स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।"

पुरातनकालीन भारत में नारियों को उच्च स्थान प्राप्त था। वे केवल सन्तान की जन्मदात्री एवं भोजनालय की प्रबन्धकारिणी के रूप में ही प्रतिष्ठित नहीं थीं, अपितु पुरुषों के समान ही उन्हें सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक कृत्यों में भाग लेने का अधिकार था। याज्ञवल्क्य की सहधर्मिणी गार्गी ने "आध्यात्मिक धन के समक्ष सांसारिक धन तुच्छ है" सिद्ध करके समाज में अपना आदरणीय स्थान प्राप्त किया था। मनु महाराज ने मनुस्मृति में स्त्रियों का विवेचन करते हुये स्पष्ट लिखा है कि "जो पति है, वही अभिन्न रूप से पत्नी है, जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं, जहाँ उनकी प्रतिष्ठा नहीं होती वहाँ सब क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं अनेक कल्याणों की भाजन स्त्रियाँ पूजनीय हैं, ये गृह ज्योति हैं, जिनको प्रजापति ने प्रजा की उत्पत्ति एवं विस्तार के लिये इनकी सृष्टि की है, वे गृहलक्ष्मी के रूप में मान्य हैं, इत्यादि।" संस्कृत में भी कहा गया है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।"

आधुनिक युग में भारतीय नारी का आदर्श

१. प्रस्तावना।
२. पुरातन काल में भारतीय नारी
३. पराधीन भारत में स्त्री-जाति का पतन।
४. स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों का स्थान।
५. स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों के कर्त्तव्य।
६. उपसंहार।

प्राचीन काल में कोई भी धार्मिक कृत्य बिना पत्नी के सहयोग के पूर्ण नहीं होता था। धार्मिक कार्यों में ही नहीं, वे रणक्षेत्र में भी पति को सहयोग देती थीं। देवासुर संग्राम में कैकेयी ने अपने अद्वितीय कौशल से महाराज दशरथ को चकित कर दिया था। निश्चित ही प्राचीन काल में नारियों का व्यक्तित्व पूर्णरूप से सुरक्षित था। वे अपना जीवन साथी अपनी इच्छा से चुनती थीं, उनमें इतनी योग्यता थी कि वे अपना हानि-लाभ उचित प्रकार से समझ सकें। अपनी योग्यता, विद्वता और विवेकपूर्ण बुद्धि के बल से द्रौपदी की भाँति अपने पतियों को भी सत्परामर्श एवं शिक्षा देने को प्रस्तुत रहती थीं। गृहस्थाश्रम का सम्पूर्ण अस्तित्व नारी के बलिष्ठ कंधों पर आधारित था। न उन्हें आर्थिक परतन्त्रता थी, न दासता। पुरुषोपार्जित द्रव्य के व्यय और संचय की वह स्वामिनी थी। बिना गृहिणी के गृह की कल्पना भी नहीं की जाती थी। कहा गया है—

"न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं हि गृहिणीहीनम् अरण्यसदृशं मतम्।।"

भारत की परतन्त्रता के साथ-साथ स्त्रियों की परतन्त्रता का भी श्रीगणेश

हुआ। प्रेम और बलिदान की भावना कालान्तर में विष बन गई। उनका पुरातन सेवा-भाव उन्हीं के लिये घातक बन गया। उसने प्रेमवश अपने को समर्पित किया था, परन्तु निर्मोही पुरुष ने उसे बन्धनों में जकड़ दिया। तिरस्कार और उपेक्षा उत्तरोत्तर बढ़ती गई। वही नारी, जिसने मण्डन मिश्र की अर्द्धांगिनी के रूप में अपने पति की पराजय से क्षुब्ध होकर शंकराचार्य जी से कामशास्त्रों के तत्वों पर शास्त्रार्थ किया था, शनैः शनैः समय और विचारधाराओं में परिवर्तन हुआ। ज्ञात और अज्ञात कारणों से भारत की वीरांगनायें और विदुषियाँ घर की ऊँची-ऊँची चारदीवारियों में बन्द होकर अविद्य होकर अज्ञान के गहन गर्त में डुबकियाँ लगाने लगीं। उनका पग-पग पर अपमान होता, ठुकराई जातीं, परन्तु वे मृत्युपर्यन्त इन सामाजिक असह्य यातनाओं को मौन होकर मूक पशु की तरह सहतीं। छोटी-छोटी सुकुमार बालिकाओं को पत्नी का स्वरूप दिया जाता था। बेमेल विवाह होते थे। परिणाम स्वरूप देश में वैधव्य और भ्रष्टाचार बढ़ने लगा। विधुर हो जाने पर पुरुषों को अधिकार था दूसरा विवाह करने का, परन्तु विधवा जीवन भर रोती रह तरसती रहे, इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। स्त्रियों का जीवन पुरुषों की दया पर निर्भर रहने लगा। पर्दा प्रथा, विधवाओं की हीन दशा, कन्या पक्ष का नीचा समझा जाना, उच्च शिक्षा का बहिष्कार, अनमेल विवाह, उत्तराधिकार से वंचित होना तथा आर्थिक परतन्त्रता, आदि सामाजिक कुरीतियों ने पराधीन भारत में नारियों को इतना निम्न बना दिया कि वे अभी तक बार-बार चेताए जाने पर भी पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं हो सकीं।

देश में राष्ट्रीयता की भावना के उत्थान के साथ-साथ भारतीय नेताओं का ध्यान सामाजिक कुरीतियों की ओर गया। राजा राममोहनराय ने सती प्रथा को बन्द कराने का प्रयत्न किया। इस प्रथा के अनुसार मन से न चाहते हुये भी स्त्रियों को पति के शव के साथ चिता में जलकर भस्म होना पड़ता था। महर्षि दयानन्द ने शिक्षा और समानाधिकार का द्वार महिलाओं के लिये खोल दिया। उनके सत्प्रयत्नों से कन्या-गुरुकुलों की स्थापना की गई। पर्दा तथा बाल विवाह को रोकने तथा स्त्रियों में सामाजिक चेतना फैलाने में दयानन्द जी ने देश की अनुपम सेवा की। इसके पश्चात् महात्मा गाँधी ने स्त्रियों के उत्थान के लिये आजीवन प्रयत्न किया। उनके सतत प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही आज के स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करने की व्यवस्था संविधान में की गई है। केवल स्त्री होने के कारण ही कोई नारी किसी पद से वंचित नहीं की जा सकती। आज उन्हें पुरुषों के समान आर्थिक स्वतन्त्रता दी जा रही है। पिता की सम्पत्ति में लड़कों की तरह कन्याओं के भाग की भी व्यवस्था की गई है। भारतीय महिलाओं की अग्रगण्य श्रीमती सरोजनी नायडू ने उत्तर प्रदेश के गवर्नर के पद पर, श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित ने विदेश राजदूत के पद पर आसीन होकर तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने प्रधानमन्त्री पद को सुशोभित करके स्त्री-जगत् को पर्याप्त सम्मानित किया है। आज के स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों की शिक्षा की सुव्यवस्था पर भी भारतीय सरकार पूर्ण ध्यान दे रही है। उनकी शिक्षा के लिये बड़े-बड़े विद्यालयों की स्थापना की जा रही है। उनकी शिक्षा में पाकशास्त्र, गृह विज्ञान, शरीर-विज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा, सहचारिणी आदि विषयों को प्रधानता दी जा रही है। आज की स्त्रियाँ घर के सीमित क्षेत्र को छोड़कर समाज-सेवा की ओर आगे बढ़ रही हैं। उनके हृदयों में सामाजिक चेतना जागृत हो चुकी है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में पुरुषों के सहयोग में उन्होंने त्याग, बलिदान और

देश सेवा का परिचय दिया। आज भी भारतीय विदुषी नारियाँ गृहस्थी का कार्य-भार सभालते हुये सार्वजनिक कार्यों में भी सराहनीय योगदान कर रही हैं। आज उन्होंने मैथिलीशरण जी की निम्नलिखित पंक्तियों को चुनौती दी है। वे कहती है कि आंचल मे दूध अवश्य है पर अब आंखो मे पानी नही। गुप्त जी लिखते हैं—

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यहं कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।"

भारतीय सभ्यता का मूलमन्त्र "सादा जीवन उच्च विचार" था परन्तु आज की नारियाँ सादे जीवन से बहुत दूर हैं। आज के संक्रान्ति काल मे जब देश मे हजारों व्यक्तियो के पास न खाने को अन्न है और न पहनने को कपड़ा, अर्थ-संकट के भयानक रोग से देश ग्रस्त है, ऐसे संकट के क्षणों में राष्ट्र की सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग शृंगार के साधनो में लुटा दिया जाता है, जिनका कोई भी रचनात्मक मूल्य नही। आज की नारी तितलियो की तरह अपने पंख रंग कर, कपोलो मे मेंहदी का त्योहार रचाए, शारीरिक बाह्य सौंदर्य को सुरक्षित रखने मे सलग्न है। पुरुषो को मोहने के लिए अपने आपको सजाने और सवारने की पुरातन प्रवृत्ति को वह आज भी नही छोड़ सकी। नारी समस्याओ की प्रमुख लेखिका श्रीमती प्रेमकुमारी दिवाकर का कथन है, "आधुनिक नारी ने नि सन्देह बहुत कुछ प्राप्त किया है, पर सब कुछ पाकर भी उसके भीतर का परम्परा से चला आया हुआ कुसस्कार नहीं बदल रहा है। वह चाहती है कि रंगीनियो से सज जाए और पुरुष उसे रङ्गीन खिलौना समझकर उससे खेले, वह अभी भी अपने एक को रङ्ग बिरंगी तितली बनाये रखना चाहती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब तक उसकी यह आन्तरिक दुर्बलता दूर न होगी, उसके व्यक्तित्व का नव-सस्कार न होगा, उसका भीतरी व्यक्तित्व न बदलेगा, तब तक नारीत्व की पराधीनता व दासता के विष-वृक्ष की जड पर कुठाराघात न हो सकेगा और सच्चे अर्थों में नारी महत्व, शालीनता, प्रतिष्ठित न हो सकेगी।" स्वतन्त्र भारत मे स्त्रियो का यह भी कर्त्तव्य है कि देश की सामाजिक कुरीतियो का बहिष्कार करें। दहेज प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह, अनमेल-विवाह, आदि कुछ ऐसी भयानक कुरीतियाँ समाज मे चल रही हैं। यदि स्त्रियाँ चाहे तो अपने प्रयत्नों से इन्हें दूर कर सकती है।

तात्पर्य यह है कि स्वतन्त्र भारत की नारियों में आज नव-चेतना है, नव-जागृति है। वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं; परन्तु इसके साथ ही साथ कर्त्तव्य के प्रति भी ध्यान देना चाहिये। देश के उत्थान में उन्हे हाथ बँटाना चाहिये। वह समय निकट ही है जबकि वे जीवन के प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में पुरुष के समान समझी जायेंगी और अपनी प्रतिभा से देश को समृद्धिशाली बना सकेगी। ●

३० परिवार कल्याण

आज के युग के मानव के पास अपने पूर्वजो के उत्तराधिकार के रूप मे यदि कोई निधि है, तो वह है एक परिवार। परिवार मानव की वह संस्था है, जिसकी स्थापना उसने सृष्टि के प्रारम्भिक क्षणों मे सभ्यता के उदय के साथ-साथ की थी। वह अपना परिवार और उसकी वृद्धि देखकर प्रसन्नता मे खिल उठता था। रहीम ने लिखा है—

रहीमन यों सुख होत है बढ़त देखि निज गोत ।
ज्यों बडरी अंखियां निरखि, आंखिन को सुख होत ॥

परिवार मे उसे सुख और शांति प्राप्त होती थी और वह एक बार ससार को समस्त चिन्ताओं को भुला देता था। परिवार का वही प्राचीनतम स्वरूप आज भी भारत के पुराने घरानों मे देखने को मिल जाता है। एक साथ मिल जुल कर रहने मे, एक साथ भोजन करने मे कितना आनन्द है, वह वही लोग जानते हैं। परन्तु आज उसका स्वरूप अनियन्त्रित और अव्यवस्थित होता जा रहा है। ऐसा आधुनिक विद्वान स्वीकार कर रहे हैं कि परिवार-नियोजन का प्रश्न केवल परिवार के कल्याण के लिये ही नही अपितु देश के आर्थिक और सामाजिक स्तर को ऊचा उठाने के लिये भी अत्यन्त आवश्यक है।

परिवार कल्याण
१ प्रस्तावना – परिवार मानव की प्राचीनतम संस्था।
२ जनसख्या की वृद्धि।
३ परिवार नियोजन की आवश्यकता।
४ परिवार नियोजन से लाभ।
५ परिवार नियोजन मे भारतीय सरकार का सहयोग
६ परिवार नियोजन मे बाधायें।
७ उपसहार।

भारत मे पहले छोटे छोटे परिवार होते थे, जिनका नियन्त्रण और व्यवस्था सरलता से की जा सकती थी। यही दशा विदेशो मे भी थी। परन्तु आज इसके विपरीत दिखाई पड रहा है। एक आदमी के दर्जनो बच्चे होते हैं, उनका पालन पोषण करते-करते बेचारा मनुष्य जीवन से भी ऊबने लगता है। यही कारण है कि विश्व की जनसख्या उत्तरोत्तर आशातीत रूप से बढती जा रही है। आज से सौ वर्ष पूर्व जितनी जनसख्या थी, आज उससे दुगनी से भी अधिक है। जनसख्या के सम्बन्ध मे एक विशेषज्ञ विद्वान प्रो० कार साण्डर्स का अनुमान है कि ससार की जनसख्या मे १०% प्रतिवर्ष के हिसाब से वृद्धि हो रही है और यदि यह वृद्धि इसी गति से होती रही, तो पाँच सौ वर्ष पश्चात् विश्व की जनसख्या इतनी अधिक हो जाएगी कि मनुष्य को रहना तो दूर रहा, पृथ्वी पर खडे होने को भी स्थान नही मिलेगा। सम्भव है यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण हो परन्तु इतना तो स्पष्ट है ही कि यदि जनसख्या इसी गति से बढती गई, तो मानव का जीवन अब जितना सघर्षमय और अशान्त है, उससे भी कही अधिक अशान्त हो जायेगा। इङ्गलैण्ड के अर्थशास्त्र के विद्वान टामस माल्थस ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही इस ओर सकेत किया था। उनका विचार था कि एक निश्चित समय मे किसी स्थान की खाद्य-सामग्री के उत्पादन मे जितनी वृद्धि होती है, उससे कई गुनी अधिक जनसख्या मे वृद्धि हो जाती है, इसका परिणाम यह होता है कि जनता के लिए पर्याप्त रूप से खाद्य-सामग्री प्राप्त नहीं होती। इसलिये प्रकृति भी कभी-कभी अपने प्रकोप से जनसख्या मे कमी करती है।

ससार मे सभी प्राणी अपने जीवन को सुखी और शान्त बनाना चाहते हैं। अपने रहन-सहन के स्तर को उन्नत करना चाहते हैं। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि हमारा व्यय हमारी आय के अनुसार हो, हमारे आश्रितो की सख्या, जिनके भरण-पोषण, पढ़ाई लिखाई और सुख-सुविधा का भार हमारे ऊपर है, कम हो। कम आय वाले मनुष्य पर यदि अधिक आश्रित होंगे, तो उसका जीवन-

स्तर निम्न होगा और मुखिया परिवार के व्यक्तियों की सुख सुविधा के लिए सामग्री एकत्र करने में अपने को असमर्थ पायेगा। डॉ० कलर्क ने कहा है, "स्पष्ट ही है कि एक हजार पौंड प्रतिवर्ष आय वाले एक ऐसे व्यक्ति का, जिसके चार बच्चे हों, जीवन-स्तर एक समान आय वाले कुंवारे व्यक्ति के जीवन-स्तर से लगभग पाँचवां भाग के बराबर होगा, इसलिए जीवन को सुखी बनाने के लिए परिवार नियोजन परमावश्यक है।" यह सभी जानते हैं कि जिस व्यक्ति के ऊपर जितना उत्तरदायित्व अधिक होगा, वह उतना ही अधिक चिन्तित होगा, और उसकी मानसिक शान्ति उतनी ही अधिक क्षुब्ध होगी। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, उनके भावी जीवन के पथ निर्माण का उत्तरदायित्व माता-पिता पर ही होता है, इसीलिये जिस व्यक्ति के जितने बच्चे होंगे, उतनी ही चिन्ता उसे अधिक होगी। अतः मानसिक शान्ति की दृष्टि से भी परिवार-नियोजन कम महत्वपूर्ण नहीं है। परिवार-नियोजन में केवल एक व्यक्ति का और एक परिवार का ही कल्याण नहीं होता, अपितु उससे देश, समाज और मानवता का भी हित होता है। राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक स्थिति दृढ़ होने से विश्व के अन्य राष्ट्रों की दृष्टि में उसका मान होता है। दुर्भाग्य से एक तो निर्धनता ही भारत का पीछा नहीं छोड़ रही है, दूसरे जनसंख्या इतनी तीव्र गति से बढ़ रही है, जिसकी कोई कल्पना ही नहीं है। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था को दृढ़ और सुव्यवस्थित बनाने के लिये भी परिवार-नियोजन अत्यन्त आवश्यक है।

परिवार नियोजन से मनुष्य को अनेक लाभ होंगे। वह अपना जीवन सुखी, स्वस्थ और शान्त व्यतीत कर सकेगा। उसके रहन-सहन का स्तर ऊँचा होगा, वह अपने आश्रितों की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति करता हुआ उन्हें अधिक सुखी रख सकेगा। एक व्यक्ति के यदि छः पुत्र हैं, तो वह सभी की शिक्षा का न अच्छा प्रबन्ध ही कर सकता है और न उचित रूप से उनका भरण-पोषण ही। यदि उन छः के स्थान पर दो ही हैं, तो वह उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा देकर उनके जीवन का पथ प्रशस्त कर सकता है। दोनों भाइयों के रहने के लिए अलग-अलग गृह-निर्माण भी कराए जा सकते हैं जो छः के लिए बिल्कुल ही असम्भव है। इस प्रकार जीवन संघर्ष भी कम होंगे, न पारस्परिक द्वेष होगा और न वैमनस्य। घर में अधिक सदस्यों के होने पर लड़ाई अधिक होती है, क्योंकि सभी की रुचि और विचार भिन्न होते हैं और ऐसी स्थिति में बेचारे गृहपति की मुसीबत आ जाती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए तथा निर्धनता की उस जटिल समस्या के कलंक को सदैव के लिए भारत के मस्तक से हटा देने के लिए भारतीय सरकार प्रत्येक सम्भव पग उठा रही है। देश को समृद्धिशाली बनाने के लिए जहाँ उसने अन्य योजनाओं को जन्म दिया है, वहाँ उसने परिवार-नियोजन भी देशवासियों के लिए प्रस्तुत किया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में परिवार-नियोजन पर पैंसठ लाख रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गयी थी। यह द्रव्य जनता को परिवार नियोजन के विषय में शिक्षित करने में, स्वास्थ्य कर्मचारियों के प्रशिक्षण में तथा बर्थ कन्ट्रोल (सन्तति-निरोध) के सस्ते, अनिष्ट रहित तथा विश्वसनीय साधनों के अन्वेषण में व्यय किया गया था। इसी योजना के अन्तर्गत सरकार ने स्थान-स्थान पर ११५ परिवार-नियोजन केन्द्र तथा १८ अनुसन्धान योजनायें लागू की थीं, जहाँ पर नागरिकों को इस विषय में बिना किसी फीस के उत्तम परामर्श दिया जाता है। परिवार-नियोजन को सफल बनाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में करोड़ों रुपए की धन-

राशि व्यय की जा रही है। लगभग ३०० केन्द्र शहरों में तथा २,००० ग्रामीण केन्द्रों की स्थापना हुई है। दूसरे आयोजन में केन्द्रीय मण्डल ने परिवार कल्याण को सफल बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये थे—

(१) विस्तृत शिक्षा योजना का विकास, जिसमें सन्तानोत्पादन, विवाह एवम् बच्चों की शिक्षा भी सम्मिलित हो।

(२) परिवार नियोजन के सम्बन्ध में किए गये सभी प्रकार के कार्य की केन्द्रीय मण्डल द्वारा जाँच हो।

(३) जनसंख्या और सन्तान उत्पादन के सम्बन्ध में खोज।

(४) एक भली-भाँति आयोजित केन्द्रीय संगठन की स्थापना।

परिवार नियोजन योजना के प्रचार में जहाँ अन्य बाधायें हैं, वहाँ सबसे बड़ी बाधा अंधविश्वास की है। अधिकांश धार्मिक जनता सन्तानोत्पत्ति को परमेश्वर की कृपा मानती है और ईश्वर की गतिविधि में रुकावट डालना सबसे बड़ा पाप समझती है। वैसे भी उनकी धारणा रहती है कि जो ईश्वर की इच्छा होती है, वही होता है। प्रायः भारतीय महिलायें ज्योतिषियों तथा हस्त-रेखा विशारदों से पूछती देखी गयी हैं कि हमारे भाग्य में कितनी सन्तानें लिखी हुई हैं या कोई लड़का भी है या नहीं? धर्मभीरु जनता चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, सन्तति निरोध का विरोध करती है और उनके कृत्रिम साधनों को अनैतिक बतलाती है। ईसाइयों में भी कैथोलिक धर्म परिवार-नियोजन का विरोध करता है। परिवार-नियोजन योजना का अधिक प्रचार न होने का दूसरा कारण यह है कि अब तक जन्म निरोध के जिन साधनों का आविष्कार हुआ है, वे अधिक सन्तोषजनक नहीं हैं। प्रजनन क्रिया से सम्बन्धित अंगों पर काम आने वाले साधन कष्टदायी हैं तथा उन पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। कुछ लोग इस समस्या के समाधान के लिए ब्रह्मचर्य पर अधिक बल देते हैं। अतः परिवार-नियोजन के लिए सस्ते, सुलभ और विश्वसनीय साधनों का प्रयोग किया जाये। हमारे देश के वैज्ञानिक भी इस दिशा में नये आविष्कार करने में प्रयत्नशील हैं। आशा है कि निकट भविष्य में यह समस्या सरलता से सुलझ जायेगी।

लेकिन परिवार कल्याण का आन्दोलन देश में तभी सफलता प्राप्त कर सकता है, जबकि देश की जनता सुशिक्षित हो। भारतवर्ष में जब तक अशिक्षा और अज्ञान का साम्राज्य है तब तक देश में इस दिशा में अधिक सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। देश के भावी नागरिकों के लिए बचपन से ही यौन-शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये जिससे वे अनियोजित परिवार की कठिनाइयों तथा सुनियोजित परिवारों के लाभों से परिचित हो जायें। तभी यह योजना सफल हो सकेगी। ६ फरवरी, १९५९ को नई दिल्ली में पं० नेहरू ने परिवार नियोजन के छठे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्घाटन किया था। इस सम्मेलन में अमेरिका, इंगलैंड, हालैंड आदि २२ देशों के लगभग ७०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। परिवार-नियोजन के सम्बन्ध में पं० नेहरू ने कहा था—

'यदि परिवार-नियोजन को बढ़ाने की उत्सुकता में, हम आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के इस बड़े पहलू की उपेक्षा करेंगे तो हमारा आधार बिल्कुल अरक्षित रहेगा। जनसंख्या बराबर बढ़ती रही तो पंचवर्षीय योजना का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए परिवार-नियोजन भी योजना का अविभाज्य अंग है। हमारी लड़कियाँ स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षा पा रही हैं, जिससे स्वभाव और विचार में

परिवर्तन होंगे और कार्यकर्त्ताओं की अपेक्षा वे ही अधिकतर परिवार नियोजन का संदेश घर-घर तक पहुँचायेंगी।" देशवासियों ने, विशेष रूप से प्रबुद्ध वर्ग ने, यह अच्छी तरह समझ लिया है कि छोटे परिवार में ही बच्चों की देख-रेख, शिक्षा-दीक्षा एवं उनके भविष्य का सुन्दर निर्माण हो सकता है तथा देश को बरबादी से बचाया जा सकता है। इसीलिए देशवासी स्वेच्छा से नसबन्दी करा रहे हैं। यदि परिवार-नियोजन कार्यक्रम को सरकार इसी गति से चलाती रही तो निश्चित ही देश का बहुत बड़ा कल्याण होगा। वास्तव में,

"छोटा परिवार, सुखी परिवार" होता है।

जून १९७५ से देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा के साथ ही साथ परिवार-नियोजन की दिशा में सबल प्रयत्न प्रारम्भ हुए। नसबन्दी कराने वालों को सरकार की ओर से विशेष सुविधायें एवं आर्थिक सहायता प्रदान की गई। १९७६ में भारत सरकार ने ४३ लाख व्यक्तियों की नसबन्दी का लक्ष्य रखा था। वह लक्ष्य सात महीनों में ही पूरा कर लिया गया। राष्ट्रीय परिवार-नियोजन संस्थान के वार्षिक दिवस पर अपने अध्यक्षीय भाषण में ५ नवम्बर, १९७६ को केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार-नियोजन मन्त्री डॉ० कर्णसिंह ने कहा कि **'समूचे देश में पूरे वर्ष के लिये तय नसबन्दी का लक्ष्य सात महीनों में ही पूरा कर दिया गया है और इस प्रकार अब तक के सभी रिकार्ड भंग कर दिये गये हैं, वर्ष भर का यह लक्ष्य ४३ लाख ऑपरेशनों का था जिसके मुकाबले ४८ लाख व्यक्तियों की नसबन्दी कर दी गई है।"** इस शानदार सफलता के लिए स्वास्थ्य मन्त्री ने सभी कार्यकर्त्ताओं को बधाई दी। १८ दिसम्बर, १९७६ को स्वास्थ्य मन्त्री श्री कर्णसिंह ने मद्रास में घोषणा करते हुए बताया कि हमारा लक्ष्य पूरे वर्ष के लिए ४३ लाख ऑपरेशनों का था परन्तु अब तक हमारी सफलता ६० लाख तक पहुँच चुकी है। ११ नवम्बर, १९७६ को भारत के परिवार-नियोजन मन्त्री श्री कर्णसिंह ने श्री मैकानकारा को बताया कि सरकार को आशा है कि परिवार-नियोजन कार्यक्रमों से १९७४–७५ की २·१ प्रतिशत जन्म दर घटकर १९७९ में १·७ प्रतिशत और १९८४ में १·४ प्रतिशत रह जायेगी। जून, १९७७ में भारत की जनता सरकार ने परिवार-नियोजन कार्यक्रम को परिवार कल्याण कार्यक्रम में परिवर्तित कर दिया। जनता सरकार ने परिवार कल्याण कार्यक्रम की एक विस्तृत योजना भी बनायी। लेकिन राजनीतिक गुटबन्दी व नेताओं की स्वार्थप्रियता के कारण परिवार कल्याण योजना के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सका।

जनवरी, १९८० से स्थापित कांग्रेस (इ) की केन्द्रीय सरकार ने परिवार कल्याण कार्यक्रम को तेजी के साथ लागू करने के लिए दुराग्रह और दबाव के स्थान पर स्वेच्छा और सद्विवेक और संयम को स्थान दिया है। परिवार कल्याण पखवारे मनाये जा रहे हैं परन्तु बिना दबाव और दमन के। सरकार को इस दिशा में पर्याप्त सफलता मिली है। **सन् दो हजार तक १० करोड़ नये बच्चों की पैदाइश को रोकने का सरकार का लक्ष्य है। अभी जैसी स्थिति है उसमें नई शताब्दी के शुरू में भारत की आबादी १ अरब होने का अनुमान है।"** वर्तमान समय में परिवार कल्याण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए देश भर में, ७,००० से अधिक केन्द्र कार्यरत हैं, वन्ध्याकरण की अनेक सरल विधियाँ खोज निकाली गई हैं और जन-साधारण में हानि-रहित दवाओं का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। **तत्कालीन**

प्रधान मन्त्री राजीव गांधी के कुशल पथ-प्रदर्शन में एवं तत्कालीन केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्रीमती मोहसिना किदवई के सफल नेतृत्व में १९८६ में परिवार कल्याण का निर्धारित लक्ष्य प्राप्त किया जा चुका था। संचार के विभिन्न साधन परिवार कल्याण कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने में संलग्न हैं। देश की जागरूक जनता परिवार कल्याण की दिशा में स्वयं अग्रसर हो रही है और सोये हुओं को जगाया जा रहा है पर प्रेम से, क्योंकि इसी में अपने परिवार का और अपने देश का कल्याण निहित है। ●

३१ राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र निर्माण

"जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।"

जिन दिनों में भारत में एकात्मकता थी उन दिनों भारत का विश्व पर शक्ति में, शिक्षा में और शान्ति में एक-छत्र आधिपत्य था। हम महान् थे और हमारा राष्ट्र महान् था। हमारी कथायें कहकर और सुनकर हमारे आदर्शों से लोग शिक्षा लिया करते थे। हमारा एक राष्ट्र था, एक राष्ट्रीय ध्वज था, एक भाषा थी और एक राष्ट्रीय विचारधारा थी, परन्तु जब से वह एकता अनेकता में छिन्न भिन्न हो गई, तभी से हमें वे दुर्दिन देखने पड़े जिनकी आज हम कल्पनायें भी नहीं कर सकते। हम पराधीन और पदाक्रान्त होना पड़ा, अपने धर्म और संस्कृति पर कुठाराघात सहने पड़े। रोटियाँ, बेटियाँ छिनीं, मान-मर्यादायें लुटीं, हमारा राष्ट्रीय गौरव ध्वस्त कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि हमारा राष्ट्रीय जीवन जर्जर हो गया, हमारी सूत्र-बद्ध सामूहिक शक्ति सदैव-सदैव के लिए समाप्त हो गई और हम शताब्दियों तक के लिये परतन्त्रता के पाश में, इस प्रकार बाँध लिए गये कि उसमें से छूटने की कल्पना संदिग्ध होने लगी थी।

आज का अनिवार्य आवश्यकता
राष्ट्रीय एकता

१ प्रस्तावना।
२ राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता।
३ एकता में बाधक तत्व।
४ निराकरण के उपाय।
५ राष्ट्रीय एकता के अभाव से हानि।
६ उपसंहार।

आज हमें उसी अनिवार्य आवश्यकता का फिर से भयानक रूप अनुभव हो रहा है। एक सहस्र वर्ष की परतन्त्रता के बाद बड़े भाग्य से तो हमें यह देखने को मिला। आज हम कह सकते हैं कि हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं। इस आत्म-गौरव को प्राप्त करने के लिए हमें कितना मूल्य चुकाना पड़ा, कितने बलिदान और कितनी यातनायें सहनी पड़ीं, हमारी कितनी पीढ़ियाँ गुलामी में पैदा हुई और गुम-सुम समाप्त हो गईं। हमारी सभ्यता और संस्कृति ने दुर्दिनों के कितने भयानक थपेड़े सहे और फिर भी साँस लेती रही। सैकड़ों वर्षों की अनन्त साधनाओं और असंख्य बलिदानों के बाद जो अमूल्य शेष हम प्राप्त हुआ है, उसको आपसी फूट के कारण हम उसी तरह बरबाद करने में लग गये हैं, जैसे बन्दर किसी रत्न-माला को या गधा चन्दन के भार को। क्योंकि न बन्दर रत्नों की महार्घ्यता से परिचित है और गधा चन्दन के गुणों से, वह तो उस चन्दन लकड़ियों का बोझ मात्र समझे हुए है कहीं भी पलट कर आराम से रेत में लेट जाया लेगा। "यथा खरश्चन्दन भारवाही, भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य" कहने का आशय यह है कि धीरे धीरे पारस्परिक फूट के कारण विनाश के उसी कगार की ओर

बढ़ते जा रहे हैं जहाँ हमें कोई एक धक्का दे सकता है और हम उसी स्थिति में फिर फँस सकते हैं, जो आज से ४१ वर्ष पहले थी। अतः आज राष्ट्रीय एकता की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी जीवन के लिये रोटी की।

राष्ट्र की सार्वभौमिकता, अखण्डता और समृद्धि के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि देश राष्ट्रीयता की भावना से ओत प्रोत हो। देश के हित-अहित एवं मान-अपमान का प्रत्येक देशवासी चिन्तन और मनन करे। पिछले कुछ वर्षों से भारतवर्ष में कुछ विषैली हवा चल रही है, सब अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग गा रहे हैं। कुछ जातियाँ और कुछ लोग आपस में भिड़े जा रहे हैं, अपने-अपने स्वार्थ में अन्धों को यह नहीं सूझ रहा है कि जिसकी वजह से तुम्हें यह अस्तित्व प्राप्त हुआ है और जबान खुल रही है, जब वही खतरे में पड़ जायेगा, तब न तुम्हारी भाषा बचेगी और न धर्म। मुख्य रूप से देश में राष्ट्रीय एकता के अभाव के निम्न कारण हो सकते हैं—

प्रान्तीयता—प्रान्तीयता का विष धीरे-धीरे बहुत बढ़ता जा रहा है। बंगाली बंगाल की, मद्रासी मद्रास की, पंजाबी पंजाब की, गुजराती गुजरात की उन्नति चाहता है। उसे सम्पूर्ण राष्ट्र का न कोई ध्यान है और न अपना कोई दायित्व ही समझता है। किसी ने तमिलनाडु बना लिया है, तो किसी ने पंजाबी सूबा। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न सेनायें बनने लगी हैं।

भाषायी उन्माद—भाषा के नाम पर दक्षिणी भारत में पिछले दिनों इतने भयानक उपद्रव हुए थे कि केन्द्रीय सरकार को भी अपना भाषा-सम्बन्धी निर्णय बदलना पड़ा। राष्ट्रगीत तक को भी वे इसलिये नहीं गाते क्योंकि वह हिन्दी में है। कोई गीता के श्लोकों को और रामायण की चौपाइयों को मन्दिर में से इसलिए मिटा रहा है क्योंकि वे हिन्दी में हैं या हिन्दी वर्णमाला में। कोई उर्दू की आवाज बुलन्द कर रहा है तो कोई पंजाबी की। स्वार्थ भावना में वृद्धि से आज का कुल ऐसा वातावरण हो गया है, कि स्वार्थी नागरिक केवल अपने तक ही सोचता है, अपना कल्याण और अपनी उन्नति ही उसका ध्येय है। न उसे देश की चिन्ता है और न राष्ट्र की। चाहे देश छिन्न-भिन्न होता हो या देश की एकता, पर वह अपनी झूठी प्रतिष्ठा कायम करने के लिये कुछ भी कर सकता है और कुछ भी बयान दे सकता है।

संकीर्ण मनोवृत्ति का अभ्युदय—जनता में संकीर्ण विचारधारा बढ़ती जा रही है और व्यापक दृष्टिकोण का अभाव होता जा रहा है। यही कारण है कि भारतवर्ष की विश्व परिवार की भावना धीरे-धीरे अपने परिवार तक ही सीमित हो गई है। बहुत सोचा तो अपने प्रदेश की बात सोच ली। इससे आगे हम कुछ सोच भी नहीं सकते।

राष्ट्र-प्रेम का नितान्त अभाव—राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्र के लिये जो लगन अंग्रेजों के शासनकाल में भारत में थी वह आज उतनी नहीं पायी जा रही है। उस समय प्रत्येक नागरिक के मुख पर केवल एक ही नारा था 'हिन्दुस्तान हमारा है'। आज केवल मद्रास हमारा है, पंजाब हमारा है, उत्तर प्रदेश हमारा है। तात्पर्य यह है कि हम पहले अपने प्रदेश की और बाद में राष्ट्र की बात सोचने लगे हैं, जो बहुत घातक है।

साम्प्रदायिकता का फिर से उभरना—साम्प्रदायिकता का विष देश में फिर सिर उठाने लगा है। कुछ साम्प्रदायिक नेता इसे उभारकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे

हुए हैं। देश का हित या अहित उनकी दृष्टि में नहीं है। यह स्थिति राष्ट्रीय एकता के लिए घातक है। १९८८ के मेरठ, अहमदाबाद और वडोदरा (बड़ौदा) के दंगे इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

अलगाववादी प्रवृत्ति—पृथकतावादी शक्तियों का बढ़ना इस दिशा में और खाई खोदता है। कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञ तथा कुछ पड़ोसी देश भारत को समृद्धिशाली देख नहीं पा रहे हैं। इसीलिए गोरखालैंड, नागालैंड और खालिस्तान जैसी समस्यायें देश को विकास के मार्ग से हटाने के लिए प्रयत्नशील हैं। ये प्रवृत्तियाँ घातक हैं। इस देश की धरती पर रहने वालों को यह स्वयं सोचना चाहिये।

वास्तव में, बात यह है कि अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में साम्प्रदायिकता के जो जहरीले बीज बो दिये थे, जिन्होंने पाकिस्तान के रूप में फल तो दिया ही, परन्तु उनके अंकुर आज भी भारतवर्ष में फूट आते हैं। मोरारजी देसाई ने २०, २१, २२ जून, ६८ में हुए राष्ट्रीय एकता परिषद् के अधिवेशन में कहा था—"जहाँ तक मुझे याद है देश में १८६५ के पहले साम्प्रदायिक दंगे नहीं हुए। इस देश में सदियों से विभिन्न धर्मों के लोग मिलकर रहते आये हैं किन्तु केवल अंग्रेजों के शासनकाल में ही, कांग्रेस पार्टी बनने के बाद हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू हुए। ऐसा उनके आपसी मतभेदों के कारण हुआ लेकिन इसका लाभ ब्रिटिश सरकार ने उठाया। कभी उन्होंने हिन्दुओं का समर्थन किया, कभी मुसलमानों का और कभी ईसाइयों का। अन्त में विभाजन हुआ। अगर हम इस विभाजन को स्वीकार न करते, तो अंग्रेज अपने को बनाये रखते, क्योंकि हम मुसलमानों के लिए अलग मताधिकार स्वीकार कर चुके थे और हरिजनों को भी अलग मताधिकार देना चाह रहे थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे कुछ और सोचते कुछ और समुदायों के लिए अलग मताधिकार की बात को सोचते एवं और अधिक कठिनाइयाँ उत्पन्न करते।"

राष्ट्रीय एकता के लिए समय-समय पर काफी प्रयास किए गये। अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने इस एकता के लिए अपने प्राणों तक की बलि चढ़ा दी। श्रद्धानन्द का दिन दहाड़े दिल्ली के बाजार में बलिदान हुआ। महात्मा गांधी का पूर्ण जीवन राष्ट्रीय एकता के लिए रहा। वे एक-एक महीने का उपवास केवल एकता के लिए ही करते थे। गली गली में "हिन्दू मुस्लिम भाई भाई" के नारे लगाते थे। अन्त में उनका बलिदान भी राष्ट्रीय एकता के लिए ही हुआ। स्वतन्त्रता के १८ वर्षों में प० नेहरू ने भी अपने अथक प्रयासों से इस दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। परन्तु स्थिति वहाँ की वहीं रही। यह दूसरी बात है कि भारत की जनता प० नेहरू से बहुत प्यार करती थी इसलिए उनकी बात मानी जाती थी। चीनी आक्रमण के समय प० नेहरू ने राष्ट्रीय एकता परिषद् की स्थापना की उसमें कुछ सिद्धि भी हुई। देश में अभूतपूर्व भावात्मक एकता का वातावरण बना। उसके बाद एकता परिषद् को भंग कर दिया गया। शास्त्री जी ने भी अपने निर्मल चरित्र से इस दिशा में प्रयास किया पर स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस स्थिति को बदलने की बड़ी कोशिश की, वे केवल एक महिला प्रधानमन्त्री मात्र ही नहीं थीं, उनमें अपने पिता का आकर्षण और जादू भी था। उन्होंने स्थिति का पर्याप्त और कठोरता से नियन्त्रण में लाने के लिए कार्य शुरू कर दिया। २०, २१ और २२ जून १९६८ में उन्होंने पुनर्गठित राष्ट्रीय एकता परिषद् का सम्मेलन बुलाया जिसमें ... सभी धर्मों, सभी राज्यों के मुख्यमन्त्री ... विभिन्न दलों के नेता व देश के नामी

के विभिन्न नेताओं को आमन्त्रित किया गया। तीन दिन के अधिवेशन के बाद साम्प्रदायिकता को कुचलने के लिए महत्वपूर्ण निर्णय किये गये। उन्हें अमलीजामा पहनाने के लिये कानून बनाये गये। गृहमन्त्री चव्हाण तथा श्री मोरारजी देसाई ने तो यह स्पष्ट कह दिया कि इन सुझावों का देश में कठोरता से अनुपालन कराया जायेगा। मोरारजी ने तो यहाँ तक कहा कि—'**जब सरकार साम्प्रदायिकता को समाप्त करने में असफल रहे, तो उसे भी सजा मिलनी चाहिये और जिम्मेदार मन्त्री को पद त्याग करना चाहिए।**" एकता परिषद् के निर्णय और प्रस्तावों का क्या परिणाम निकला, यह आपके समक्ष है।

जब किसी देश में विघटनकारी और विध्वंसात्मक तत्त्वों को कठोरता से काट में नहीं लिया जाता है, तो देश छिन्न-भिन्न हो जाता है, अराजकता सर्वत्र छा जाती है। उस पर फिर आक्रमण होने शुरू हो जाते हैं और वह एक-एक करके पराधीन होता चला जाता है। इसलिए हमें भी पूर्ण समझदारी से काम लेना चाहिये जिससे जो स्वतन्त्रता हमने इतनी कठिनाइयों के बाद प्राप्त की है, वह सदा बनी रहे। यद्यपि भारतीय संविधान निर्माताओं ने, यही जानते हुए कि भारत में विभिन्न धर्मों के अनुयायी, विभिन्न जातियों के तथा विभिन्न भाषायें बोलने वाले लोग रहते हैं, यह देश बिना धर्म-निरपेक्षता के छिन्न-भिन्न हो जायेगा, विभिन्न वर्गों को एक सूत्र में बाँधने के लिये भारत को धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र-गणराज्य घोषित किया, पारस्परिक असमानता और असहिष्णुता को दूर करने का यही एकमात्र उपाय था। भारत में सब धर्मों के लोगों को भारतीय नागरिक के रूप से आज पूरे अधिकार प्राप्त हैं और वे राष्ट्र के अभिन्न अंग है, जबकि इस्लामी राष्ट्र पाकिस्तान में अल्पसंख्यक को अधिक से अधिक दूसरे दर्जे का नागरिक समझा जाता है। भारत में सब नागरिकों को प्रत्येक पद पाने का अधिकार है। देश का सबसे बड़ा राष्ट्रपति का पद किसी भी नागरिक को प्राप्त हो सकता है। विदेशों में अनेक वरिष्ठ राजनीतिक पदों पर सब धर्म के लोग हैं। देश की सशस्त्र सेनाओं में कोई धार्मिक भेदभाव नहीं। फिर भी हाय-हाय साम्प्रदायिकता, झगड़े, आगजनी और लूटमार।

उधर कुछ राज्य पृथकतावादी विचारधारा से ओत-प्रोत होकर अपना अलग ही राग अलाप रहे हैं। यह सब गलत दिशा में पदन्यास है। प्रत्येक राज्य को यह समझना चाहिये कि वह भारत संघ गणराज्य का आवश्यक अंग है उसे अपने राज्य। की प्रगति में चाहे कितनी रुचि है, पर उसे यह न भूलना चाहिये कि प्रत्येक राज्य की प्रगति अन्ततः सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रगति से ही सम्बन्धित है।

अतः प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति में अपने दायित्व का निर्वाह करे। सत्तारूढ़ और सत्ताहीन सभी राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों को सभी नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने का प्रयास करना चाहिए। राष्ट्रीयता की भावना से राष्ट्रीय एकता की प्रगति की प्रक्रिया में सहायता मिलेगी। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह संकीर्ण विचारों को छोड़कर समूचे राष्ट्र के लिए सोचे, मनन करे और उसकी समृद्धि के लिए प्रयत्न करे। यदि समय रहते हुए इस दिशा में ठोस कदम न उठाये तो देश अनेक टुकड़ों में बिखर जायेगा, इसीलिए बुद्धिमानी इसी में है कि समय रहते सभी को जाग जाना चाहिए। अतः सशक्त और समृद्ध राष्ट्र निर्माण के लिये राष्ट्रीय एकता नितान्त आवश्यक है।

किसी विद्वान् कवि ने कहा है कि-'गृहिणी गृहमित्याहु न गृहं गृहमुच्यते' अर्थात् गृहिणी से ही घर है बिना गृहिणी के घर को घर नहीं कहा जा सकता। गृह की यह परिभाषा अपने में नितान्त परिपूर्ण है। बिना गृहिणी के घर नहीं है और यदि घर हो भी तो उस घर में जाने को मन नहीं करता। गृहिणी गृहस्थ जीवन रूपी नौका की पतवार है, वह अपने बुद्धि-बल, चरित्र-बल, अपने त्यागमय जीवन से इस नौका को थपेड़ों और भंवरों से बचाती हुई किनारे तक पहुँचाने का सफल प्रयास करती है। गृहस्थी की सुख-शान्ति, आनन्द और उत्थान इसके सबल कन्धों पर आधारित रहते हैं। यदि गृहिणी चाहे तो, गृहस्थ जीवन को स्वर्ग बना सकती है और यदि वह चाहे तो इसे घोर नरक का रूप भी प्रदान कर सकती है। भारतीय गृहिणी का एक स्वरूप गृहलक्ष्मी का है और दूसरा विनाशकारी काली का। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि गृहस्थ जीवन रूपी गाड़ी के पति पत्नी दो आधारभूत पहिए हैं। इस गाड़ी को सुचारू रूप से अग्रसर करने के लिये दोनों ही पहियों का स्वस्थ और स्निग्ध होना चाहिये। यदि दोनों में से किसी एक पहिये में भी सूखापन या दरार आ गई तो निश्चय है कि वह पहिया चूँ-चूँ करने लगेगा और वह कर्ण कटुध्वनि शनैः-शनैः इतनी बढ़ जायेगी कि उसी मार्ग पर चलने वाले अन्य यात्रियों को अखरने लगेगी और स्वयं चलना तथा भार वहन करना तो नितान्त दुर्भर हो जायेगा। कौन जानता है कि वह पहिया किस समय गाड़ी में से निकल कर सड़क पर दूर जा पड़े और गाड़ी रेतीले मार्ग में जमकर बैठ जाये। जीवन को समृद्धिमय बनाने का पूर्ण श्रेय आदर्श गृहिणी को ही प्राप्त है।

आदर्श गृहिणी

१ प्रस्तावना—समाज में गृहिणी का महत्व।
२ आदर्श गृहिणी द्वारा समाज और देश का कल्याण।
३ आदर्श गृहिणी की मूलभूत आवश्यकतायें—
  (क) शिक्षा।
  (ख) गृहकार्य दक्षता (सीना काढ़ना, भोजनादि की व्यवस्था तथा शिशु-पालन आदि)।
  (ग) घरेलू एवं प्रारम्भिक चिकित्सा।
  (घ) स्वच्छता तथा सजावट।
  (ङ) पति सेवा एवं सहन शीलता।
  (च) मितव्ययता एवं मधुर भाषण।
  (छ) उज्ज्वल चरित्र।
४ उपसंहार।

आदर्श गृहिणी से केवल घर का ही उद्धार और कल्याण नहीं होता, वरन् वह समाज और देश की भी कल्याणकारिणी होती है। वह वीरप्रसू जननी के रूप में देश रक्षक वीर पुत्रों को जन्म देती है जो रण क्षेत्र में शत्रु के दांत खट्टे करते हैं और विजयी होकर घर लौटते हैं। यह भक्त माता के रूप में ऐसी आत्मज्ञानी सन्तान उत्पन्न करती है जो उस अपार और अगम्य ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए [illegible] सागर में डूबे हुए असंख्य प्राणियों का अपने ज्ञान और भक्ति के उपदेशों से उद्धार कर देते हैं। विदुषी माता उन मेधावी पुत्रों को जन्म देती है जो अपनी अलौकिक विद्वत्ता के समक्ष दूसरों को खड़ा नहीं होने देता है। त्यागी जननी ऐसे [illegible] को जन्म देती है जो अपना सर्वस्व देश, जाति और समाज के [illegible] लिए दे

कर देते हैं, और प्रतिफल में कुछ भी नहीं चाहते। देश के नागरिकों का सभ्य होना, सुशिक्षित होना, अनुशासनप्रिय होना, यह सब आदर्श गृहिणी पर आधारित है। बच्चे के लिये शिक्षा, सभ्यता, अनुशासन, शिष्टता आदि सभी विषयों की प्राथमिक पाठशाला घर ही है, जिसकी प्रधानाचार्या माता है, वह जो चाहे, अपने बालक को बना सकती है। भारत में जितने भी महापुरुष हुए हैं, इतिहास साक्षी है कि उनके जीवन पर उनकी माताओं के उज्ज्वल चरित्र की स्पष्ट छाप अंकित हुई है। सत्य-भाषिणी धर्मप्राणा पुतलीबाई के शुभ संस्कार ज्यों के त्यों उनके पुत्र मोहनदास में बचपन से ही दृष्टिगोचर होने लगे थे। भविष्य में वह बालक सत्य और अहिंसा का अनन्य उपासक हुआ जिसे आज भी समस्त विश्व मानवता का अमर पुजारी कहकर श्रद्धा से नतमस्तक होता है। इसी प्रकार छत्रपति शिवाजी की माता जीजाबाई ने घर की प्राथमिक पाठशाला में जो शिक्षा उन्हें दे दी वही जीवन के अंतिम क्षणों तक सम्बल बनकर उनके साथ रही। महादेवी वर्मा के बाल्यकाल में कबीर और मीरा के जो मधुर गीत उनकी माता ने धीरे-धीरे उनके कर्णकुहरों में गुनगुनाये थे, वे गीत आज उनकी विरह की पीर बनकर सहसा फूट निकले हैं। इस प्रकार के दो नहीं असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं; जिनके जीवन के उत्थान का श्रेय आदर्श गृह-लक्ष्मियों पर आधारित रहा है। समाज और देश के उत्थान और भावी समृद्धि के लिये एक गृहिणी जितना उपकार कर सकती है, उतना कोई दूसरा व्यक्ति नहीं।

आदर्श गृहिणी के लिए सर्वप्रथम शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा से मनुष्य की बुद्धि का परिमार्जन होता है, उसे अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान होता है। गुण और अवगुणों की पहचान होती है, जीवन का वास्तविक मूल्य समझ में आता है। मस्तिष्क की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। अतः यदि गृहस्थी के इतने बड़े भार को वहन करने वाला आधार स्तम्भ ही अशिक्षित है, तो फिर गृहस्थी सुचारुतापूर्वक नहीं चल सकती। वैसे तो कुत्ता भी घर-घर की फटकार खाता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता है, परन्तु जीवन, जीवन के लिए है, इसको अच्छे रूप में व्यतीत करना है, इसलिए यह परमावश्यक है कि गृह-लक्ष्मी सुशिक्षित हो, शास्त्रों में गृहिणी के कई स्वरूप बताये गए हैं। वह विपत्ति के समय सत्परामर्श से मित्र का कर्त्तव्य-पालन करती है, माता के समान स्वार्थ रहित साधन और सेवा में तल्लीन रहती है। सुख के समय वह पत्नी के रूप में अपने पति को पूर्ण सुख प्रदान करती है। गुरु की भाँति बुरे मार्ग पर चलने से अपने पति को और अपने बच्चों को रोकती है। बताइये, जिसके इतने महान् कर्त्तव्य हों और वही अशिक्षित हो तो फिर कैसे काम चल सकता है? अतः आदर्श गृहिणी के लिए शिक्षा की परम आवश्यकता है, परन्तु ध्यान रखिए कि आजकल जैसी दूषित शिक्षा की आवश्यकता नहीं है।

गृह-कार्य-दक्षता आदर्श गृहिणी के लिए नितान्त आवश्यक है। यदि वह गृह-कार्यों में कुशल नहीं है, तो वह घर को नहीं चला सकती। भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाकर अपने गृहस्वामी तथा परिवार के अन्य सदस्यों को खिलाकर आदर्श गृहिणी एक असीम आह्लाद का अनुभव करती है। लक्ष्मण जब राम के साथ वन चले गए तब उर्मिला को केवल यही दुःख था कि—

"बनाती रसोई, सभी को खिलाती, इसी काम में आज मैं मोद पाती।
रहा आज मेरे लिए एक रोना, खिलाऊँ किसे मैं अलोना-सलोना।"

भोजनादि की व्यवस्था करने में आदर्श गृहिणी को कभी कोई संकोच या

लज्जा नही होनी । यह तो आज की शिक्षा और स्वतन्त्रता का दुष्प्रभाव है कि स्त्रियाँ भोजन बनाने मे अपमान समझती हैं। भोजन की व्यवस्था के साथ, आय और व्यय का हिसाब भी गृहिणी को रखना चाहिए। आदर्श गृहिणियां सदैव अपने पति की आय से कम ही खर्च करती हैं और कुछ थोड़ा बहुत अपने विपत्ति के क्षणो के लिए आर्थिक संकट मे अपने पति की सहायता करने के लिए अवश्य बचाकर रखती हैं। कातने, सीने और पिरोने में गृहिणी की अभिरुचि आवश्यक है। इससे स्वावलम्बन और आनन्द की भावना का उदय होता है। आत्म निर्भरता मनुष्य मे सर्वश्रेष्ठ गुण है। आदर्श गृहिणियो को गृह-कार्य मे आत्म निर्भर बनाने के लिए ये सभी गुण आवश्यक हैं, जो गृह की उन्नति मे सहायक हो। पशु-पालन की बात पुरानी है, वह तो समय के साथ जाती रही, परन्तु शिशुपालन तो कभी नही जा सकता, इसलिए शिशु-परिचर्या तथा शिशु-कल्याण का ज्ञान आदर्श गृहिणी को पूर्ण-रूपेण होना चाहिए, यह तभी हो सकता है, जब वह शिक्षित हो।

प्रारम्भिक चिकित्सा का भी ज्ञान होना आदर्श गृहिणी के लिए आवश्यक है। पुराने समय में छोटे-छोटे रोगो का इलाज स्त्रियाँ घर मे कर लिया करती थी। पति-महाशयो को इसकी सूचना तक नहीं होती, परन्तु आज देखिए कि बच्चो को बगल मे दबाया और चल दिए डाक्टर के यहाँ। रास्ते में सहेली ने पूछा—कहाँ चल दी सुबह ही सुबह? उत्तर मिला—पप्पू को कल से सर्दी लग गई, उसी से थोडी खाँसी भी आ जाती है, डाक्टर के यहाँ जा रही हूँ। अब बताइए, इन छोटे-छोटे रोगो का इलाज तो आसानी से घर बैठे भी हो सकता है, आने-जाने की परेशानी से बचा जा सकता है और दस पैसे की दवा का डाक्टर जो एक रुपया ले लेता है, वह भी बच सकता है। आदर्श गृहिणी को ध्यान रखना चाहिए कि हमारे पति ने खून और पसीना एक करके, सुबह से शाम तक परिश्रम करके यह पैसा पैदा किया है, इसलिए मैं इसे पानी की तरह न बहाऊँ। घर मे बच्चो को कोई न कोई रोग होता रहता है। कभी खाँसी है, तो कभी जुकाम, कभी दस्त, तो कभी बुखार, कभी पेचिस है, तो कभी आव। कभी-कभी बच्चे आपस में खेलते-खेलते ही चोट मार लिया करते हैं, एक दूसरे को नोंच-खरोंच लेते हैं और खून निकलने लगता है। इन सभी बातो के लिए आदर्श गृहिणी को घर में ही थोड़ा-थोड़ा दवा इत्यादि का प्रबन्ध रखना चाहिये। दवा लगाना, पट्टी बाँधना, फोड़े-फुन्सी धोना आदि सभी छोटे-छोटे रोगो की चिकित्सा के लिए आदर्श गृहिणी को प्रारम्भिक चिकित्सा का ज्ञान होना चाहिए।

स्वास्थ्य के लिए स्वच्छता अत्यन्त आवश्यक है। गृहिणी को स्वच्छता का भी ध्यान रखना चाहिये। घर की स्वच्छता, बच्चो की स्वच्छता और अपनी स्वच्छता। पहिले स्वयं स्वच्छ रहना चाहिये। यदि गृहिणी गन्दी है, मैले-कुचैले कपड़े पहिने रहती है, तो बच्चे भी वैसे ही रहेंगे। देखने वाले घृणा करेंगे, इसके साथ-साथ जहाँ गन्दगी होती है वहाँ रोग आसानी से आ जाते हैं। घर भी साफ रखना चाहिए और उसे यथा-शक्ति सजा भी लेना चाहिए, जिससे स्वयं को अच्छा लगे और दूसरे व्यक्ति, जो आयें उनको भी अच्छा लगे। कुत्ता भी जहाँ बैठता है पूँछ से जगह साफ करके ही बैठता है। इस पर हम तो मनुष्य हैं, बुद्धिजीवी हैं।

आदर्श गृहिणी का आराध्य देव पति ही है पति ही उसके लिए ब्रह्मा है पति ही उसके लिये विष्णु है और पति ही उसके लिए महेश। वह समस्त देवताओं और तीर्थों का दर्शन पति में करती है। पति-सेवा ही उसके लिए भजन है, व्रत है

ञ है, दान है, और ज्ञान है। भारतीय पत्नी सदैव से पतिपरायणा रही है। पति-परमेश्वर की भावना ही उसे अन्धकार मे आशादीप बनकर प्रकाश प्रदान करती रही है। पतिव्रत धर्म ही उसके जीवन का सच्चा स्रोत रहा है। इसी धर्म-बल पर सावित्री ने यमराज से भी सत्यवान के प्राणों की रक्षा की थी। इसी भावना से प्रेरित होकर सीता राजसी उपभोगों का परित्याग कर राम के साथ वनवास के लिए चल पडी थी और कहा था—

"जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसेई नाथ पुरुष बिनु नारी।"

भारतीय गृहिणी सदैव अपने पति के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहती आई है। उसकी दूसरी महान् विशेषता "सहनशीलता" है। यह एक ऐसा गुण है, जो उसे श्रद्धा के चरम शिखर पर आसीन कर देता है। घर मे सभी व्यक्ति होते हैं, यह तो आवश्यक नहीं कि सभी एक जैसे स्वभाव के हों। कोई कटुभाषी होगा, कोई मधुर भाषी होगा, कोई उदासीन होगा और कोई झगडालू होगा। आदर्श गृहिणी को सहनशील होना चाहिये। यदि सहनशीलता में थोड़ा-सा भी अन्तर आ गया तो समझ लीजिए कि घर कलह का अड्डा बन जायेगा। अतः गृहिणी को सदैव शान्त और सहनशील होना चाहिये।

मितव्ययिता आदर्श गृहिणी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि पतिदेव महीने मे पचास रुपये पैदा करते है और उनमे से तीस रुपये की साड़ी खरीद लेती है तो घर का खर्च कैसे चल सकता है? एक तो आज के युग में स्त्रियाँ वैसे ही अधिक शौकीन हो गई है आज की स्त्रियों का जितना पैसा सौन्दर्य-प्रसाधनों पर व्यय होता है, उतना यदि पौष्टिक पदार्थों पर खाने मे व्यय हो, तो फिर बनावटी सुर्खी लगाने की कोई आवश्यकता न होगी। मुख का पीलापन स्वयं दूर हो जायेगा, फिर पाउडर की आवश्यकता न होगी। आँखों के गड्ढे स्वयं भर जायेंगे। अतः आदर्श गृहिणी को अपने घर को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, न कि फिजूल-खर्ची करके घर को नरक बनाने का। आदर्श गृहिणी के लिये दूसरा गुण मधुर-भाषण है। मधुर-भाषण मे श्रोता और वक्ता दोनों को ही सुख होता है, गृहिणी के मधुर-भाषण से घर के सभी सदस्य सुखी रहते हैं; कलह आगे बढने नहीं पाती। मधुर-भाषी के विषय में तुलसी ने लिखा है—

"कागा काको धन हरै, कोयल काकू देय।
तुलसी मीठे वचन ते, जग अपनो कर लेय।"

एक दूसरा भी दोहा है—

"ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपो सीतल होय।"

आदर्श गृहिणी को मधुर-भाषण का यह वशीकरण मन्त्र अवश्य याद रखना चाहिये। इससे परिवार में उसका मान और आदर बढ़ेगा, सभी व्यक्ति श्रद्धा और प्रेम का व्यवहार करेंगे।

चरित्र किसी एक विशेष गुण का नाम नहीं है। सभी गुणों के समन्वय को चरित्र की संज्ञा दी जाती है, जिसमे नम्रता, सत्यता, मृदुता, सदाचारिता तथा जितेन्द्रियता आदि गुणों का समावेश होता है। आदर्श गृहिणी का चरित्र भगीरथी के पवित्र जल की भाँति उज्ज्वल होना चाहिए। जो स्त्री अपने पति से भेद-भाव, छुपाव-छल, कपट, मिथ्या भाषण और दुर्व्यवहार रखती है, वह कभी आदर्श गृहिणी नहीं

बन सकती। गृहलक्ष्मी का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल होता है। चरित्र-बल से ही मनुष्य समाज में उन्नत और समादृत होता है।

आज की आदर्श गृहिणियाँ उपरिलिखित आदर्श गृहिणियों के कर्त्तव्यों से कोसों दूर हैं। आज उन्हें शिक्षा की इसलिए आवश्यकता है कि "फिल्मफेयर" पढ़कर नए फैशन बनाना सीख सकें और आकर्षण चेष्टा मे सडकों पर घूम सकें। आज उन्हें शिक्षा की इसलिए आवश्यकता है कि वे क्लबों में या पार्टियों मे जाकर अपने मित्रों का मनोरंजन कर सकें। शिक्षा से मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति वाली बात 'पुरानी पचड़े' कह कर छोड दी जाती है। आज भी गृह-कार्य-दक्षता केवल गाने-नाचने तथा अपने फैशन बनाने तक ही सीमित है। बडे-बडे पढ़े लिखे जब अपने लड़के के लिये लड़की देखने जाते हैं तो वे केवल गाना और डांस ही देखते हैं। वैसे लड़की देखने के लिए माँ-बाप के जाने वाली प्रथा अब समाप्त सी है। आज की आदर्श गृहिणी दाल रोटी बनाने में अपनी 'हेठी' समझती है। प्राथमिक चिकित्सा घरेलू इलाज मे तो वैसे भी हाथ गन्दे होते हैं। अगर बच्चे के फोड़े में मवाद निकल रहा है, तो डाक्टर के यहाँ भागी जाती है कि डाक्टर साहब जरा इसे साफ कर दीजिए यह कोई सफेद मोटा कीड़ा सा इसमें बैठा है। वे स्वच्छता और सजावट में अपनी जगह पर जरूर बरकरार हैं वह भी केवल अपने तक ही। पतिदेव चाहे गन्दे चीथड़ों में चौराहे पर सब्जी बेच रहे हों पर शाम को 'आदर्श गृहिणी' जब घूमने जायेगी तो फिर स्वच्छता और बनावट का कहना ही क्या। "पतिसेवा और सहनशीलता" जैसी कोई वस्तु कभी रही होगी, सुनने में तो आता है, पर आज के युग में तो इसे "स्त्रियों को गुलाम या दासी बनाना" कहा जाता है। 'मितव्ययिता' के स्थान पर अतिव्ययिता आ गई और मधुर-भाषण अपने और पराए में से पराए के जुड़ गया है उज्ज्वल चरित्र तो गधे के सिर पर सींग जैसा है। भारतवर्ष का भविष्य इस विषय में अन्धकारपूर्ण है और यही सामाजिक अवनति का मूल कारण है। यदि यही दशा रही तो निस्सन्देह देश एक दिन गर्त में जा गिरेगा। देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए महिलाओं की शोचनीय दशा में सुधार अत्यन्त आवश्यक है। ●

३३ भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति एवं समस्यायें

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"

प्राचीन भारत के इतिहास के पृष्ठ भारतीय महिलाओं की गौरवमयी कीर्ति से भरे पड़े हैं। हमारे पूर्वजों का कथन है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ सभी देवता निवास करते हैं। यहाँ पूजा से तात्पर्य केवल उनकी मान मर्यादा की रक्षा तथा उनके अधिकारों की रक्षा से है। उन्हें गृह-लक्ष्मी और गृह-देवियों के नाम से सम्बोधित किया जाता था। उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा मिलती थी, उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। परिवार में उनका पद अत्यन्त प्रतिष्ठापूर्ण था। गृहस्थी का कोई भी कार्य बिना उनकी सम्मति के नहीं किया जा सकता था। जीवन के अनेक अवसर ऐसे होते थे जिनमें वे पति से भी आगे रहती थीं। जीवन का बड़े से बड़ा धार्मिक कृत्य उनके अभाव में अपूर्ण समझा जाता था। धार्मिक या सामाजिक कार्यों में ही नहीं रण क्षेत्र में भी वे अपने पति की सहयोग देती थीं। देवासुर संग्राम में

कैकेयी ने अपने अद्वितीय कौशल से महाराजा दशरथ को चकित कर दिया था। अपनी योग्यता, विद्वत्ता और विवेकपूर्ण बुद्धि के बल पर ही द्रौपदी अपने पतियों को युद्ध एवं वनवास काल में भी सत्परामर्श देती थी। उन्हें अपनी योग्यता के अनुसार पति चुनने का अधिकार था। मैत्रेयी, शकुन्तला, सीता, अनुसूया, दमयन्ती, सावित्री आदि स्त्रियाँ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति एवम् समस्यायें

१. प्रस्तावना—प्राचीन काल में स्त्रियों का महत्त्व।
२. वर्तमान स्थिति।
३. आधुनिक युग में स्त्रियों की समस्यायें।
४. स्त्रियों की दशा में सुधार।
५. उपसंहार।

संसार परिवर्तनशील है। उनकी प्रत्येक गतिविधि में प्रत्येक क्षण परिवर्तन होता रहता है। देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ स्त्रियों की स्वतन्त्रता का भी अपहरण हुआ। 'स्त्रियों का प्रेम', 'बलिदान' और 'सर्वस्व-समर्पण' की भावना कालान्तर में उन्हीं के लिये विष बन गई। समाज की घृणित विचारधारा ने उन्हें पुरुषों के बराबरी के पद से हटा दिया। उनका स्थान समाज में गौण हो गया। उनको पर्दे में रहने के लिये विवश किया गया। उनकी शिक्षा का अधिकार भी उनसे छीन लिया गया। उनके सामाजिक जीवन का क्षेत्र सीमित कर दिया गया और स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। घोर आदर्शवादी एवं समाज-सुधारक गोस्वामी तुलसीदास जी जैसे लोग भी कहने लगे कि—

"जिमि स्वतन्त्र होहिं बिगरहिं नारी"

अथवा

"ढोल गँवार, शूद्र, पशु, नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी।"

आज भी उनकी स्थिति वैसी ही है, चाहे सैद्धान्तिक रूप में हम कुछ भी कहें, कुछ भी लिखें। आज भी अन्धविश्वास, अशिक्षा, कुबुद्धि, अस्वच्छता आदि सामाजिक दोष उनके जीवन में घर किये हुए हैं। आज भी उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं है। यदि है भी तो वह उन्हें एकदम गड्ढे में गिरा देने वाला है। आज की शिक्षा प्राप्त करके स्त्री गृह-लक्ष्मी नहीं बनती, अपितु गृह-राक्षसी बन जाती है। एक समय था जब उसे अपनी आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपने माता-पिता एवं पति पर निर्भर रहना पड़ता था और यदि दुर्भाग्य से कहीं विधवा हो गई तो फिर समाज में उसके लिये कोई स्थान था ही नहीं। उसे गृह-कलंक समझा जाता था और उसका मुख देखना भी लोग अपशकुन समझते थे। आज भी स्त्रियों के लिये पर्दा आवश्यक है। यद्यपि जब से पंजाबी भारतवर्ष के कोने-कोने में फैले हैं, तब से पर्दा-प्रथा, पंजाबियों की नकल के कारण दूर हुई है। परन्तु यह भी निर्लज्जता का विषय है। अंग-प्रत्यंग को अर्धनग्न अवस्था में रखकर बाजारों में तफरीह करना एक दिन महान् हानिकारक सिद्ध होगा। आज भी भारतीय पति की दृष्टि में स्त्री एक सेविका मात्र है। आज भी उन पर कठोरतम सामाजिक प्रतिबन्ध हैं, जबकि पति महोदय पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं। यह हमारे समाज का एकांगी न्याय-वितरण है। हमारे समाज का यह अंग निरन्तर चलता जा रहा है और भीतर ही भीतर सड़ता जा रहा है। यही कारण है कि स्त्रियों की समस्यायें उत्तरोत्तर दुरूह होती जा रही हैं और वे पतन के गर्त—

ओर बढ़ती जा रही हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्त्रियों में आठ अवगुणों का अहर्निश आवास बताया है—

"साहस, अनृत, चपलता, माया।
भय, अविवेक, अशौच, अदाया॥"

आधुनिक युग में स्त्रियों की अनेक समस्यायें हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख समस्याओं पर ही विचार किया जायेगा—

आर्थिक समस्या—भारतीय महिलाओं के समक्ष जीवन-पर्यन्त आर्थिक समस्या बनी रहती है। उन्हें मृत्यु-पर्यन्त दूसरों के आश्रित रहना पड़ता है। पराश्रित जीवन व्यतीत करना पड़ता है। भारतीय समाज उन्हें जीविकोपार्जन की आज्ञा नहीं देता। जीवन की कुछ विशेष परिस्थितियों में ही, उन्हें अपना कोई आश्रयदाता संसार में दिखाई नहीं देता, स्त्री अपने जीविकोपार्जन के लिये पैर आगे बढ़ाती है। इस देश में स्त्रियों को सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होने का अभी तक पूर्णाधिकार प्राप्त नहीं हुआ है।

अशिक्षा समस्या—आज के स्वतन्त्र भारत में भी स्त्रियों की शिक्षा का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है। कन्या विद्यालय या महाविद्यालय खोल देने से ही स्त्रियों की शिक्षा-समस्या हल नहीं हो सकती। आज के विद्यालय और महाविद्यालयों की शिक्षा तो उन्हें जीवन के अयोग्य बना रही है। वे भारतीय नारी के पवित्र आदर्श से गिरती जा रही हैं। उनमें धर्माचरण और सदाचरण के स्थान पर पाश्चात्यपन घर करता जा रहा है। स्त्रियों की शिक्षा के लिये उनके मानसिक धरातल के अनुकूल तथा आदर्श गृहदेवी-पद के अनुरूप पाठ्यक्रम की अपेक्षा गृह-विज्ञान और शिशु-विज्ञान की अधिक आवश्यकता है।

पर्दा समस्या—पर्दा-समस्या भी भारतीय नारी के लिये उन्नति के मार्ग में एक विघ्न बनी हुई है। प्राचीन भारत में भी पर्दा किया जाता था। परन्तु वह पर्दा नेत्रों की लज्जा का होता था, धोती या चादर का नहीं। आज नेत्रों की लज्जा अर्थात् आँखों की शर्म का पर्दा समाप्त हो चुका है, और वह बाहरी पर्दा जो भारत की स्वतन्त्रता के साथ-साथ समाप्त हो ही गया था, जिस पर्दे के पीछे घोर अनैतिकता अपना अड्डा जमा चुकी थी। लज्जा या सुशीलता का सम्बन्ध नेत्रों तथा हृदय से है, न कि मुँह पर पड़े हुए कपड़े से।

अस्वच्छता की समस्या—भारतीय स्त्रियाँ प्रायः अस्वच्छ रहती हैं, उनका स्वभाव और रहन-सहन गन्दा होता है इससे उनके स्वास्थ्य के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। जब स्वास्थ्य खराब हो जाता है, तो स्वभाव स्वयम् ही चिड़चिड़ा और क्रोधी बन जाता है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि उन्हें घर के काम काज करने पड़ते हैं जिनसे उनके हाथ, पैर और वस्त्र गन्दे और अशुद्ध रहते हैं परन्तु उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि जब तक वे घर का काम—रसोई इत्यादि करती हैं, तभी तक उन कपड़ों को पहनें। उनके पश्चात् तुरन्त साफ और स्वच्छ वस्त्र धारण कर लेने चाहियें। परन्तु ऐसा नहीं होता। इसका मुख्य कारण भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति है। बेचारी मध्य वर्ग की स्त्री को दो धोती नित्य पहनने के लिये ही मुश्किल से मिल पाती हैं। वह नित्य नये जोड़े कैसे बदल सकती है? परन्तु इतना निश्चित है कि चाहे एक कपड़ा हो, वह भी चाहे फटा हो उसे साफ करके पहना जा सकता है और स्नान तथा

हस्तपाद-प्रक्षालन से स्वच्छ रहा जा सकता है। बड़े दुख की बात है कि भारतीय स्त्री का स्वभाव ही गन्दे रहने का बन गया है।

प्रसूतिका-गृह की समस्या—हमारे देश मे प्रसूतिका-गृहों का अभाव भी एक महान् समस्या है। भारतवर्ष मे अनेक स्त्रियां बच्चे को जन्म देने में ही इस संसार से चल बसती हैं और बहुत सी जन्म देने के कुछ दिनो बाद। इसका कारण है प्रसूति के समय जच्चा की उचित देख-भाल तथा चिकित्सा सम्बन्धी उचित सहायता का अभाव। सरकार तथा स्वायत्त शासन को प्रत्येक वार्ड या मुहल्लों में एक-एक प्रसूतिका गृह स्थापित करने चाहियें, इनमे जच्चा तथा बच्चे की देख-रेख हो सकती है, और स्त्रियों को अकाल मृत्यु से बचाया जा सकता है।

आभूषण-प्रियता की समस्या—भारतीयो स्त्रियो का आभूषण-प्रेम भी हास्य की सीमा तक पहुंच गया है। वे अपने शरीर को सजाने के लिये आभूषणों तथा अन्य सौन्दर्य प्रसाधनो को परम आवश्यक समझती है। चाहे घर में खाने के लिये अनाज के दाने न हों, चाहे बच्चो को पीने के लिये दूध न मिले, पर उनके लिगे कानों में कुण्डल, हाथों में कंगन और होठो के लिये लिपिस्टिक जरूर चाहिये और यदि फरमाइश शाम तक पूरी न हुई, तो पति महोदय को शाम को चूल्हे में आग भी सुलगती नही मिलेगी। तेवर चढाये हुए, भौंहे ताने हुए पत्नी खाट पर मिलेगी। मुंह मे सीधे बात भी नहीं करेगी। हमारे देश की स्त्रियों की आभूषण-प्रियता ने, न जाने कितने भोले-भाले व्यक्तियों की जान ले ली होगी। भारत में 'सादा जीवन उच्च विचार' का सिद्धान्त समाप्त हो चुका है। वे ये भूल जाती हैं कि सौन्दर्य का सम्बन्ध स्वास्थ्य से है न कि आभूषणों या अन्य प्रसाधनो से। भारतीय परिवारों की निर्धनता के अन्य कारणों में से एक यह भी कारण हैं।

बाल-विवाह—बाल-विवाह भी भारतीय स्त्री समाज की अवनति का एक कारण हैं। छोटी अवस्था मे ही माता-पिता का स्नेहपूर्ण घर छोडकर बालिकाओं को अपरिचित दूसरे व्यक्तियों के घर जाना पड़ता है। अपरिपक्व अवस्था में ही माता बन जाना पडता है। इसका परिणाम होता है, अकाल मृत्यु या जीवन भर की अस्वस्थता और रुग्णता। भारतीय सरकार इसे बहुत कुछ रोकने मे सफल हुई है, परन्तु गांवों में अब भी १० या १२ वर्ष की लड़की का विवाह कर देना पुण्य का काम समझा जाता हैं और वे इस कन्यादान के पुण्य को लूटते है।

अनमेल विवाह—किसी प्रलोभन में आकर १५ वर्ष की लड़की को ४५ वर्ष या ५० वर्ष के व्यक्ति के गले में बांध देना, कहाँ का न्याय है और कहाँ की बुद्धिमत्ता है? वह अधेड़ उम्र का व्यक्ति न तो उसके जीवन का साथ ही निभा सकता है और न उसे सन्तुष्ट ही कर सकता है। अनमेल विवाह का सम्बन्ध अवस्था से ही नहीं है, स्वभाव, गुण और कर्म से भी है। दो विभिन्न स्वभाव के पति-पत्नी जीवन में एक होकर नही रह सकते। घर में बात-बात पर कलह होगी और डण्डे चलेंगे। इसलिए विवाह के सम्बन्ध में पर्याप्त छानबीन कर लेनी चाहिये तथा लडके व लड़की को इस विषय मे थोडी सी स्वतन्त्रता भी मिलनी चाहिए।

विधवा विवाह—भारतीय समाज की यह एक भयानक समस्या थी जो अब दूर होती जा रही है। जब दुर्भाग्य किसी नवयुवती के पति को उठा लेता है, तब जीवन अभिशाप बन जाता है। समाज उन स्त्रियों के मुंह देखने मे अपशकुन समझता है। जीवन काटना उनके लिए भार बन जाता है, क्योंकि भारतीय स्त्रियों में स्वाव-

सम्बन का तो नितान्त अभाव है, दूसरो पर आश्रित रहना उनका स्वभाव बन गया है। समाज की शुद्धता की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि उनका पुन विवाह किया जाये और उनके कोमल जीवन को नष्ट होने से बचाया जाये। सन्तोष की बात है कि इस देश मे अब विधवा विवाह होने लगे हैं, परन्तु समाज ने इस पद्धति को अभी पूर्णरूप से स्वीकार नही किया है। लोग विधवा को लेने और देने—दोनो में ही हिचकिचाते हैं।

बहु विवाह—बहु विवाह भी एक भयानक समस्या थी। एक पत्नी के होते हुए पुरुष दो-दो, तीन-तीन विवाह कर लेता था और अपने जीवन को नारकीय जीवन बना लेता था। घर कलह का अड्डा बन जाता था। प्रसन्नता का विषय है कि भारतीय सरकार ने इस विषय में कठोर नियम बनाकर समाज को नष्ट होने से बचा लिया है, परन्तु गांव म अब भी एक एक धनी चार-चार पत्नियो का स्वामी बना बैठा है। आशा है, कुछ समय मे गांवो से भी यह दोष दूर हो जायेगा।

तलाक की समस्या—हिन्दू कोड बिल के परिणाम स्वरूप घर घर तलाक की समस्यायें खडी हो गई। विवाह हुए अभी एक वष भी नही हुआ कि तलाक की दरख्वास्त अदालत मे पहुँचने लग ी हैं। थोडी सी विचार भिन्नता, थोडा सा पारस्परिक वाद विवाद थोडा सा पारस्परिक क्रोध का आदान प्रदान स्त्री-पुरुषो को कोट के दरवाजे तक पहुँचा देता है। सहिष्णुता, सहनशीलता, पारस्परिक समर्पण और संवेदना का भाव आधुनिक वातावरण की महिलाओ मे लुप्त होता जा रहा है। यह स्थिति सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए अच्छी नहीं है।

देश मे स्त्रियो की स्थिति म सुधार का प्रयास उत्तरोत्तर बढता जा रहा है। उन्हें स्वावलम्बी होने की सुविधायें दी जा रही हैं। सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए भी कानून बनाए जा रहे है। भारतीय स्त्रियो की सभी समस्यायें उचित शिक्षा द्वारा ही सुलझ सकती हैं। उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे वे सुगृहिणी बन सकें। इससे उनकी आर्थिक दशा के सुधार मे भी सफलता मिलेगी। आधुनिक ढग की शिक्षा ने उन्हे भारतीय जीवन के बिलकुल विपरीत बना दिया है वे पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध म फँस गई हैं। आज वे भारतीय परिवार में गृह-प्रबन्ध म अपने को अनुपयुक्त पाती हैं। अत स्त्रियो की शिक्षा-योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिये, जिससे उन्हें अपनी स्थिति, अपने अधिकार एवं अपने कर्तव्यों का पूर्ण ज्ञान हो सके। स्त्रियो को भी, पुरुषो के समान अधिकार मिलने चाहियें। वे अधिकार केवल सिद्धान्त मे कागज पर अंकित रहकर उनका कुछ कल्याण नहीं कर सकते, जब तक व्यावहारिक जीवन म उन अधिकारो के प्रयोग की उन्हे पूर्ण सुविधा न हो। इस दशा मे पुरुषो को अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। सबसे बडी आवश्यकता यह है कि उनके लिये उचित साहित्य तैयार किया जाये और उस साहित्य का स्त्री समाज में पूर्ण प्रचार एवं प्रसार हो, जिससे उनके मानसिक क्षितिज पर कुछ प्रभाव पड सकें। आजकल का साहित्य उन्हें निश्चित रूप से एक दिन ले डूबेगा। आजकल की स्त्रियाँ, नव युवतियाँ, प्रेम भरे उपन्यासों, कहानियो और मासिक पत्रिकाओ को पढकर अपने भावी जीवन की रूपरेखा तैयार करती हैं। अमुक कहानी की अमुक नायिका ने ऐसा किया था, मैं भी ऐसा ही करूँगी, यह विचार-धारा तुरन्त कहानी पढते ही उनके हृदय पर पड जाती है। हजार में से मुश्किल से दो स्त्रियाँ ऐसी होंगी जो रामायण म सीता और अनसूया के पवित्र आदरश की

शिक्षा ग्रहण करती हों। निःसन्देह सत्साहित्य और सत्‌शिक्षा द्वारा ही भारतीय स्त्रियों की कुरीतियाँ दूर हो सकती हैं।

हर्ष की बात है कि भारतवर्ष के नये संविधान में स्त्रियों की समस्या सुलझाने के लिये विभिन्न नियमों का समावेश किया गया है। उन्हें पुरुषों जैसी स्वतन्त्रता दी गई है, उनके लिए किसी प्रकार के काम पर रोक नहीं रखी गई है। काम और वेतन की समानता के विषय में संविधान में स्पष्ट निर्देश है, परन्तु यह नियम और निर्देश तभी सफल हो सकते हैं, जब इस पक्ष में जनमत तैयार हो। पुरुष हृदय से चाहें कि हमारे देश की स्त्रियाँ भी आगे बढ़ें और हमारे कन्धे से कन्धा मिलाकर हमें सहयोग दें। परन्तु जनमत तथा सत्साहित्य के अभाव में किसी विशेष लाभ की सम्भावना नहीं।

३४ भारत में हरित क्रान्ति

एक समय था जबकि—

"पराधं रत्निवेद ने दिया करस्थ थाल भी।
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि जाल भी॥"

गृह-द्वार पर अतिथि की वाणी सुनकर गृह-स्वामी भोजन लिए हुए दौड़ा चला आता था। भिक्षुक की दर्द भरी याचना पर दाता आतुर हो जाता था, उसकी झोली भरने के लिए। भारत की गृहिणी 'अतिथि देवो भव' इस वेद वाक्य का अक्षरशः पालन करने में अपना सौभाग्य और गर्व समझती थी। फिर एक समय ऐसा आया कि छोटों का तो कहना ही क्या, बड़े-बड़े घर के दरवाजों से भी भिखारी को खाली हाथ लौटना पड़ा। भिक्षुक और अतिथियों की गणना ही क्या, रिश्तेदारों और मेहमानों का स्वागत केवल चाय तक ही सीमित रहने लगा, मेजबान इस प्रतीक्षा में रहने लगा कि ये कब जायें, कहीं ऐसा न हो कि रात को यहीं ठहरने लगें, तो विवश होकर भोजन कराना ही पड़ेगा। हमारी प्राचीन परम्परा थी कि स्वयं नहीं खाते थे बल्कि दूसरों को खिलाने में प्रसन्नता का अनुभव करते थे। त्याग, दान और दया हमारी शुद्ध संस्कृति के महान् स्तम्भ थे, जो आज एक-एक करके सभी धराशायी हो गये। भिक्षुकों और मेहमानों की बात जाने दीजिये, स्थिति यहाँ तक आ गई थी कि कुत्तों को रोटियों के टुकड़ों के भी लाले पड़ गये। पहले इतना था कि हम खूब खाते थे और दूसरों को भी खूब खिलाते थे, पर एक समय ऐसा आया जब हमें अपने ही लिये ही पर्याप्त नहीं रहा, तो दूसरों को कहां से खिलायें?

> **भारत में हरित क्रान्ति**
> १. प्रस्तावना।
> २. खाद्य-संकट के कारण—
> (अ) प्रत्यक्ष।
> (आ) परोक्ष।
> ३. खाद्य-संकट को दूर करने के उपाय।
> ४. हरित क्रान्ति का प्रभाव।
> ५. उपसंहार।

कितनी लज्जा का विषय है कि जिस देश की अस्सी प्रतिशत जनता कृषि करती है और जिस देश का प्रधान राष्ट्रीय व्यवसाय कृषि हो, वहां के निवासियों को भूखा रहना पड़े या आधे पेट खाकर बचा हुआ बच्चों के लिए छोड़कर सो जाना पड़े। जो देश संसार के अन्य देशों का उदर पोषण करता रहा हो, वह अपनी

भूख मिटाने के लिए संसार के समक्ष मुँह फाड़े और हाथ फैलाए खड़ा हो ! यह कैसी विडम्बना है।

१५ अगस्त १९४७ से पूर्व जब तक विदेशी सरकार यहाँ रही, तब तक उनका भय और आतंक समाज को नियन्त्रित करता रहा। चाहे द्वितीय विश्व-युद्ध हुआ और चाहे कहीं तूफान और दुर्भिक्ष आया हो, समाज मे अव्यवस्था और अराजकता नही आने पाई। पर जैसे ही हम स्वतन्त्र हुए, समाज के सभी तत्वो ने स्वतन्त्रता की श्वास ली, चाहे वह अच्छे हों या बुरे, विचार भी स्वतन्त्र हुए, बातें भी स्वतन्त्र हुई, व्यापार भी स्वतन्त्र हुआ, किसानों पर भी रौनक आई और बाजार के भाव भी स्वतन्त्र हो गए। बिगड़ते बिगड़ते स्थिति यहाँ तक आ गई कि सन् १९६४ मे एक रुपये का १० और १२ छटाक अर्थात् ६०० और ७०० ग्राम गेहूँ मिलने लगा। लोगो ने दालें खानी बन्द कर दीं। पर प्रश्न यह था कि खायें तो क्या ? जनता तथा शासको पर थोड़ा बहुत अंकुश प० नेहरू का था उन्हें भी २७ मई १९६४ को विधाता ने अपने क्रूर हाथो से छीन लिया। प० नेहरू के निधन के बाद महगाई और भी बढ गई और अब तक देश मे खाद्यान्न की जैसी भयानक स्थिति थी, वह सबके सामने थी। लेकिन भगवान की कृपा से अब यह समस्या सुलझती जा रही है।

वर्तमान खाद्य सकट के कारण एक नही, अनेक हैं। हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। हमारी राष्ट्रीय आय का पचास प्रतिशत भाग कृषि पर आधारित है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमने अपने देश की उन्नति के लिए पचवर्षीय योजनायें प्रारम्भ की। उन योजनाओं की पूर्ति के लिए विदेशो से कुछ लेना पड़ा और कुछ देना भी पड़ा। कृषि से हमे खाद्यान्नो की प्राप्ति के लिए अतिरिक्त विविध उद्योगो के कच्चे माल का भी उत्पादन बढाना पड़ा। हमने कच्चा माल विदेशो को भेजा और उसके बदले मे अन्य वस्तुयें लीं। स्वभावत खाद्यान्नो के उत्पादन में कमी आने लगी। विविध प्रयासो के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों मे कुछ उत्पादन बढ़ा।

देश की ६८ करोड जनसख्या मे प्रतिवर्ष दो प्रतिशत की वृद्धि भी वर्तमान खाद्य-सकट का दूसरा प्रमुख कारण है। भूमि वही, उत्पादन वही, पर खाने वाले प्रतिवर्ष बढ जाते हैं, तो फिर आये कहां से, इसकी पूर्ति के लिए हमे विदेशो से सहायता लेनी पड़ती है। आस्ट्रेलिया और अमेरिका, आदि सम्पन्न देश निःसन्देह अन्न की सहायता से अपना अमूल्य सहयोग दे रहे हैं, पर प्रश्न यह है कि हम इस प्रकार कब तक याचक बने रहेंगे।

खाद्य-सकट का तीसरा कारण भारतवर्ष पर दैवी प्रकोप है। कोई वर्ष ऐसा नही जाता, जबकि हरी-भरी मुस्कराती लाखो एकड फसल बाढ में न बह जाती हो। एक प्रान्त मे यदि बाढ है, तो दूसरे मे सूखा। कहीं वर्षा है तो कहीं ओले, कहीं सूखा है तो कहीं फसल को नष्ट करने वाले कीटाणुओं की भरमार। इस प्रकार, प्रकृति भी भारतवर्ष के खाद्य-सकट का एक कारण बनी हुई है। अगस्त १९८२ की बाढ़ ने बिहार और उत्तर प्रदेश के पचासो गाँव उजाड़ दिये और लाखो एकड भूमि की कमाना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

खाद्य-सकट का सबसे बड़ा कारण भारतीयों का नैतिक पतन और उनमें राष्ट्रीयता का अभाव है। भारतीयों मे व्यक्तिगत सुख और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं का प्राधान्य है। उनमे सामाजिक लाभ और राष्ट्र-हित की भावना का नितान्त

अभाव है। इसका परिणाम यह है कि आपको बाजार मे कोई वस्तु उचित मूल्य पर प्राप्त नही हो सकती। वर्तमान खाद्य स्थिति की इस गम्भीरता का दायित्व मुनाफाखोर और काला बाजार मे माल बेचने वाले वर्ग पर है। अन्न का अभाव कर देना, अकाल की स्थिति पैदा कर देना, भावों को चढ़ा देना, भावो को उतार देना, यह सब कुछ उनके बायें हाथ का काम है।

प्रसन्नता की बात यह है कि सरकार इस ओर से उदासीन नही है और इन खाद्य-संकटों को दूर करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। कृषि उत्पादन बढाने के भी प्रयत्न किये जा रहे हैं। जिन स्थानों पर सिंचाई व्यवस्था नही थी, वहाँ से होकर नहरें निकाली जा रही है, जहाँ नहरें सम्भव नही हैं, वहाँ नलकूपो की व्यवस्था की जा रही है। किसानों को रासायनिक खाद दी जा रही है, जिससे नवीन उर्वरक सरलता से प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार की खाद के निर्माण के लिए सरकार की ओर से नई मिलें खोली जा रही हैं, सरकारी भण्डारो से किसानो को अच्छे बीज दिये जा रहे हैं। किसानो को प्रोत्साहन देने के लिए तथा कृषि में वृद्धि करने के लिए उन्हें सरकार की ओर से ऋण देने की व्यवस्था है। इसके साथ ही आज का किसान भी पहले की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक साधन जुटाने लगा है।

इतना ही नही, उत्तरोत्तर बढती हुई जनसख्या को रोकने के लिये भी सरकार प्रयत्नशील है। प्रत्येक प्रान्त मे, प्रत्येक नगर मे परिवार-नियोजन केन्द्र खुल गए हैं, जिनकी शरण में जाकर मनुष्य अपना भावी परिवार सीमित बना सकता है। सदाचार समितियों की स्थापना की जा रही है, जहाँ मानव को आत्म-संयम की शिक्षा दी जा रही है। नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा और भी कृत्रिम साधनों के नित्य नवीन प्रयोग किये जा रहे है। प्रकृति यद्यपि मानव के वश में नही है, फिर भी आज का वैज्ञानिक उसे अपने नियन्त्रण मे लाने के लिए प्रयत्नशील है, नदियों पर बाँध बाँधे जा रहे हैं और विभिन्न कृषि-नाशक कीटाणुओ की औषधियो का निर्माण किया जा रहा है।

यदि शासन वास्तव मे खाद्यान्न की महंगाई समाप्त करना चाहता है, तो उसे सर्वप्रथम खाद्यान्न वितरण व्यवस्था का राष्ट्रीयकरण करना होगा। बिना राष्ट्रीयकरण के समाज विरोधी तत्वो का उन्मूलन सम्भव नही। खाद्य-स्थिति की उत्तरोत्तर बिगड़ती हुई व्यवस्था को देखकर ही सरकार ने खाद्य निगम की स्थापना की है, निगम के द्वारा अन्न संग्रह का कार्य किया जा रहा है। वितरण व्यवस्था का वैज्ञानिक अध्ययन भी प्रारम्भ कर दिया गया है। परन्तु अभी तक इसे कोई अन्तिम रूप नही दिया जा सका है।

सन् १९६६ मे जब केन्द्रीय सरकार मे श्रीमती गाँधी ने जैसे ही जगजीवन राम को खाद्य मन्त्री बनाया, वैसे ही एक सफल किसान की भाँति उन्होंने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक कृषि के क्षेत्र में हरित क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। हरित क्रान्ति सफल हुई। सक्रान्ति के पश्चात् खाद्यान्न के विषय मे शान्ति स्थापित होना स्वाभाविक था। १९६८ मे गेहूँ की फसल को आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी। लगभग एक शताब्दी बाद यह स्थिति आयी थी। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के गोदामों में गेहूँ रखने के लिए स्थान नही रहा। गेहूँ ७० रुपये प्रति ४० किलो से उतर कर ३० रुपये प्रति ४० किलो बाजार में बिकने लगा। यद्यपि अधिक उपज

हुई परन्तु यह गेहू वह नहीं है जो पहले भारत मे बोया और खाया जाता था। यह विदेश से मगाया गया बीज था, जिसे किसानों को बोने के लिए दिया गया था।

सन् १९६९, ७० और ७१ मे इस हरित क्रान्ति ने देश को और भी हरा-भरा बना दिया और खाद्यान्न की उत्पत्ति मे भारत को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इसका श्रेय कृषि म वज्ञानिक उपकरणो, रासायनिक खादो और अच्छे बीजो के प्रयोग को है। भारतीय किसान ने जी तोडकर परिश्रम तो किया ही है, पर इस परिश्रम के साथ अब उसने वुद्धि का योग देना प्रारम्भ कर दिया है। सरकार किसानो को प्रशिक्षण दे रही है, उन्हें बराबर विभिन्न माध्यमो से पथ-प्रदर्शन कराया जा रहा है। सभाओ, गोष्ठियो और कृषि प्रदर्शनियो तथा आकाशवाणी के माध्यम से उनको प्रेरित और उत्साहित किया जा रहा है। "हरित क्रान्ति" की सफल योजना से नि सन्देह देश को अन्न के क्षेत्र मे आत्मनिर्भर बनाने के लिए एक सफल दिशा मिलती है। एक लाख पाक युद्धबन्दियो, बगला-देश के एक करोड शरणार्थियो, बगला-देश की खाद्यान्न सम्बधी सहायता तथा युद्धजन्य परिणामो के कारण १९७२ और ७३ मे देश मे कुछ खाद्यान्न की कमी फिर हो गयी थी। विवश होकर हमे १९७३ के अन्त मे रूस से खाद्यान्न की सहायता लेनी पडी। खाद्यान्न की अव्यवस्था एवम् अभाव को दूर करने के लिए तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती गाधी ने मार्च १९७३ मे अनाज के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिया। परिणाम यह हुआ कि देश मे अन्न का कृत्रिम अभाव जो बिचौलियो द्वारा उत्पन्न कर दिया जाता था, वह न हो सका, दूसरे खाद्यान्नो के भावो मे कमी आ गई। २६ जून १९७५ से देश मे आपातकालीन स्थिति की घोषणा के बाद से खाद्यान्नो के भावो म आश्चर्यजनक गिरावट आयी।

प्रसन्नता की बात यह है कि बाढ जैसे प्राकृतिक प्रकोपो के बावजूद आज देश कृषि उत्पादन के क्षेत्र मे आत्मनिर्भर है। ७८-७९ में सरकार ने कृषि उत्पादन का लक्ष्य १२ करोड ५० लाख टन का निश्चित किया था और पूरा हुआ। जनता सरकार ने दो वर्षों के शासन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए आकाशवाणी से प्रसारित जनता के नाम अपने सदेश मे २ अप्रैल १९७९ को प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा था—"सौभाग्य से अनाज की स्थिति कही भी चिन्ताजनक नही है और इस वर्ष की फसल के बाद देश के खाद्यान्न भण्डार और भर जायेंगे।" ११ अप्रैल १९७९ को नई भारत सरकार के कृषि मन्त्री ने घोषणा की कि ४ हेक्टेयर भूमि वाले किसानो को सब्सिडी दी जायेगी जो अब तक केवल १ हेक्टेयर भूमि व ले को दी जानी थी तथा देश म अब गोदामो का जाल बिछाने की योजना के अन्तगत ५ गाँवा के पीछे ढाई सा टन क्षमता का एक गोदाम बनाया जायेगा। सन १९८० के बाद से श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सरकार के अथक प्रयासो से हरित क्रान्ति के क्षेत्र मे आशा की स्वर्णिम रश्मियाँ प्रस्फुटित होती दिखाई पडी थी। अब १९८५ से ८८ मे प्रधान-मन्त्री राजीव गाँधी के उत्प्रेरक उद्घोषणो तथा सरकार द्वारा किसानो को सस्ता एव अच्छा खाद, बीज एव कृषि उपकरण मुहैय्या कराने से भारत ने निर्धारित लक्ष्य से भी अधिक उत्पादन किया है। हमारा कत्तव्य है कि हम भविष्य में भी इन वर्षों के माप-दण्ड को नीचे न गिरने दें तथा देश के स्वाभिमान की रक्षा एव देशवासियो को क्षुधा से परित्राण के लिए द्विगुणित उत्साह एवम् लगन से अधिक अन्न उत्पादन मे जुट जायें।

३५ भारत में सहकारिता आन्दोलन

"एकाकी बादल रो देते। एकाकी रवि जलते रहते।"

एकाकी जीवन, हिमगिरि के उतङ्ग शिखर पर साधना के लिए भले ही उपयुक्त हो, परन्तु संसार मे एकाकी जीवन का कोई महत्व नहीं है। मानव को दूसरो का आश्रय लेना पड़ता है और दूसरो को आश्रय देना भी पड़ता है। परस्परावलम्बन से ही सभी आगे बढ़ सकते हैं। एक तृण को वायु का साधारण सा झोका ही उड़ा ले जाता है, परन्तु उन्ही बहुत से तृणों को मिलाकर यदि बांट दिया जाये, तो उससे परम शक्तिशाली गणराज भी बंध जाते हैं। वास्तविक शक्ति सङ्गठन में ही निहित है। सहकारी समितियाँ भी मनुष्यों के सगठन का महत्वपूर्ण स्वरूप हैं।

सहकारिता का अर्थ है, एक-दूसरे की सहायता करना, मिल-जुल कर काम करना। जिन लोगो के पास अच्छे साधन नही, वे कोई भी काम सुचारु रूप से नही कर सकते। पहले छोटे-छोटे किसान और गाँव के मजदूर, महाजनों से कर्ज लेकर दब जाते थे तथा उस कर्ज पर ब्याज बढता जाता था। इस प्रकार वे घोर परिश्रम करने पर भी कर्ज से मुक्त नही हो पाते थे। यदि छोटे-छोटे किसान आपस मे मिल जाते और अपने साधनों को एक जगह मिला लेते, तो वे बहुत अच्छा काम कर सकते थे। इस प्रकार पारस्परिक सहयोग द्वारा मनुष्य कठिन से कठिन कार्य को सरल, सुगम और सुसाध्य बना सकता है। आज की सहकारी समितियाँ अन्य साधनो वाले श्रमजीवियों के लिए वरदान सिद्ध हुई हैं। सहकारी समिति के सदस्यो को श्रम कम करना पड़ता है और लाभ अधिक प्राप्त होता है। मान लीजिये कि किसी गांव में छोटे-छोटे किसानों के तीस घर हैं सभी के पास दस-दस बीघा भूमि है, तो एक किसान उस दस बीघा भूमि के लिए न ट्यूबवैल लगा सकता है, न ट्रैक्टर खरीद सकता है और न खेत की रक्षा के लिए नौकर ही रख सकता है। यदि वे तीस किसान आपस मे मिल जाते हैं, तब तीन सौ बीघा भूमि के लिए ट्रैक्टर भी खरीद सकते हैं और ट्यूबवैल भी लगवा सकते हैं। इसी प्रकार यदि तीस किसान मिलकर अपनी एक सहकारी समिति बना लेते हैं तो उनकी साख भी अधिक हो जाती है, उत्तरदायित्व भी विभक्त हो जाता है तथा थोड़े परिश्रम से लाभ भी अधिक होता है और हानि हो जाने पर समिति के सभी सदस्यों पर समान उत्तरदायित्व होता है। ऐसा नहीं होता कि एक भर-पेट खाना खा रहा है और दूसरा भूखा मर रहा है।

भारत में सहकारिता आन्दोलन

१. प्रस्तावना।
२. सहकारिता का अर्थ।
३. सहकारिता के प्रकार।
४. भारतीय सहकारिता का इतिहास।
५. सहकारिता द्वारा विभिन्न समस्याओं का अन्त।
६. भारत में सहकारी समितियों की कमी और उनके कारण।
७. उपसंहार।

सहकारी समितियाँ कई प्रकार की होती है लेकिन मुख्य रूप से दो प्रकार की समितियाँ होती हैं—पहली उत्पादको की सहकारी समितियाँ और दूसरी उपभोक्ताओं की सहकारी समितियाँ। उत्पादकों की सहकारी समितियाँ वस्तुओ के उत्पादन में सहयोग प्रदान करती हैं, जैसे—कृषि सहकारी समिति आदि। उपभोक्ताओ की

सहकारी समितियों में समिति के सदस्य काम में आने वाली वस्तुओं को मिलकर खरीद लेते हैं और अपने-अपने भाग के अनुसार परस्पर बाँट लेते हैं। मकान बनाने या ऋण लेने के लिये भी सहकारी समितियों की स्थापना की जाती है। इन समितियों से उनके सदस्यों को ब्याज पर ऋण मिल जाता है। कुछ बहु प्रयोजनी सहकारी समितियाँ भी होती हैं, जो एक साथ अनेक कार्य करती हैं।

सहकारिता आन्दोलन का सूत्रपात सर्वप्रथम जर्मनी में हुआ था। सन् १६०० के लगभग भारत में भी सरकार ने इस आन्दोलन को प्रोत्साहन देना आरम्भ किया और सन् १६०४ में भारत सरकार ने प्रथम सहकारी समिति अधिनियम पास किया था। सन् १६०६ में भारतवर्ष में कुल ८३३ सहकारी समितियाँ थीं, जिनकी पूँजी २४ लाख रुपये थी। सन् १६११ में इनकी संख्या १८७७ हो गई, जिनकी पूँजी २ करोड़ २६ लाख रुपये थी। सन् १६११ में एक अधिनियम बनाया गया, जिसके द्वारा सहकारिता आन्दोलन और भी सुदृढ़ एवं व्यवस्थित हो गया। प्रथम महायुद्ध के समय सहकारी आन्दोलन पर अच्छा प्रभाव पड़ा, परन्तु युद्ध के पश्चात् सन् १६२६ में घोर मन्दी आई जिससे सहकारी समितियों का काम लगभग समाप्त हो गया। किसानों को नुकसान हुआ और बहुत-सी समितियाँ बन्द हो गईं। सन् १६३६ में ११७०० सहकारी समितियाँ थीं। सन् १६४५ में इनकी संख्या १७११७० हो गई। देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् सहकारी आन्दोलन और भी अधिक बढ़ा, क्योंकि भारत सरकार सहकारी समितियों को अधिक से अधिक सुविधा प्रदान कर रही है। नागपुर के सन् १६५६ के कांग्रेस अधिवेशन में यह प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया गया था कि सहकारिता ही हमारा मुख्य लक्ष्य है।

वर्तमान भारत सरकार ने सभी योजनाओं में ग्रामीण समाज के अपेक्षाकृत निर्धन वर्ग के आर्थिक विकास के लिए सहकारिता पर विशेष बल दिया है। परिणाम-स्वरूप सन् १६६१–६२ की अवधि में साख, बिक्री, प्रोसेसिंग, कृषिगत सप्लाई व उपभोक्ता व्यापार के क्षेत्र में सहकारिताओं के विकास के लिये काफी प्रयत्न किये गये हैं। सभी दिशाओं में प्रगति सराहनीय रही है और कुछ में तो अत्यधिक प्रगति हुई।

आज हमारे देश के समक्ष अनन्त समस्यायें हैं। यदि हम सहकारी समितियों का निर्माण कर लें, तो बहुत-सी समस्यायें तो स्वयं ही सुलझ जायेंगी। सबसे बड़ी समस्या भोजन, वस्त्र और गृह की है। यदि गाँव के किसान सहकारी समिति बनाकर अपनी भूमि मिलाकर एक कर लें और सहकारी ढंग पर कृषि करें तो भोजन की समस्या सरलता से हल हो सकती है। इसी प्रकार यदि जुलाहों की सहकारी समितियाँ स्थापित कर दी जायें, तो वस्त्र का उत्पादन बढ़ सकता है और छोटे छोटे कुटीर उद्योग धन्धे भी इस श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। इसी प्रकार थोड़ी आय वाले व्यक्ति के लिये मकान बनाना एक बड़ी कठिन समस्या होती है। यदि गृह निर्माण के लिये भी सहकारी समितियाँ बना ली जायें, तो वह गृह निर्माण के लिये कम ब्याज पर रुपया उधार दे सकती हैं। इन रुपयों को धीरे धीरे किश्तों के रूप में चुकाया जा सकता है। सहकारी समितियों को सहकारी बैंकों से ऋण प्राप्त हो जाता है। ऋण की समस्या को भी महाजन की अपेक्षा सहकारी समितियाँ सरलता से हल कर सकती हैं। यदि वास्तविक रूप में देखा जाये, तो गाँव में बहुप्रयोजनी सहकारी समितियाँ होनी चाहियें, जो किसान की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

भारतवर्ष में गाँवो की संख्या छः लाख के लगभग है, जबकि सहकारी समितियाँ कुल सवा लाख ही हैं और जिनमे से अधिकांश शहरों में हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अभी भारतवासियो की सहकारी समितियों के प्रति रुचि कम है। इसके कई कारण है। प्रमुख कारण यह है कि देश की अधिकांश जनता अशिक्षित है, वह सहकारी समितियो के लाभो से पूर्णतया परिचित नही है, और न उसे समझाने का ही प्रयत्न किया गया है। ये समितियाँ सरकारी अफसरो द्वारा ग्रामीणों पर जबरदस्ती थोप दी जाती है। दूसरा कारण यह है कि जनता ने सहकारी समितियों के साथ पूर्ण सहयोग नही किया। समितियो के कारण जिनके व्यापार और आमदनी में बाधा पड़ती थी, उन महाजनों ने उन्हे समाप्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया। तीसरा कारण यह है कि सहकारी समितियाँ भी ऋण पर लगभग उतना ही ब्याज लेने लगी, जितना कि महाजन लेते थे। चौथा कारण यह है कि सहकारी समितियों से जिन्होने ऋण लिया उन्होने फिर कभी लौटाने का नाम भी नही लिया। ऋण भी प्रायः उन्ही को मिलता था, जो सहकारी समितियों के संचालको के रिश्तेदार या निकटतम व्यक्ति होते थे। अत. उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही भी नहीं की जा सकती थी, इस प्रकार समितियाँ समाप्त हो जाती थी। पाँचवां कारण यह है कि सहकारी समितियो के संचालक सरकारी अफसरो को प्रसन्न करने का ध्यान अधिक रखते थे। इन्ही सब विघ्न-बाधाओ के कारण भारत मे सहकारी आन्दोलन को आशातीत सफलता प्राप्त न हो सकी, परन्तु जितनी भी सफलता मिली है, वही बहुत है।

सहकारिता आन्दोलन भारत जैसे निर्धन देश के लिए परम आवश्यक है। भारत सरकार समस्त देश मे सहकारी समितियाँ स्थापित करने के पक्ष में है, क्योंकि इन्हीं के द्वारा समाजवादी समाज की स्थापना सम्भव है और देश का कल्याण हो सकता है। आशा है कि भविष्य में भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन और भी अधिक तीव्रगति से आगे बढ़ेगा, तभी देश समृद्धिशाली और स्वावलम्बी हो सकेगा। ●

३६ भारतीय कृषक

ब्रह्मा सृष्टि का निर्माण करते है, विष्णु पालन करते है तथा महेश संहार करते है। इस प्रकार सृष्टि-संचालन तीनो देवताओ मे विभक्त है। इस पर विश्वास करके यदि हम कृषकों को ही विष्णु कह दे तो इसमे कोई अतिशयोक्ति न होगी और न अध्याहास। विश्व का समस्त वैभव, उत्तुङ्ग प्रासाद, आमोद-प्रमोद सब कुछ कृषक के बलिष्ठ कन्धो पर आश्रित हैं। आकाश मे उड़ने वाले स्वतन्त्र पक्षी, पृथ्वी पर विचरण करने वाला मानव, यहाँ तक कि जलचर भी कृषकों पर ही आधारित है। तपस्या भरा त्याग, अभिमान रहित उदारता और क्लान्ति रहित परिश्रम का यदि चित्र देखना है, तो आप भारतीय किसान को देखिये। वह स्वयं न खाकर दूसरो को खिलाता है। स्वय न पहिन कर संसार को वस्त्र देता है, उसके अनुपम त्याग की समानता संसार की कोई वस्तु नही कर सकती। भारतीय किसान की आकृति से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई वीतराग सन्यासी हो, जिसे न मान का हर्ष है और न अपमान का खेद, न फटे कपड़े पहनने का दुःख है और न कभी अच्छे वस्त्र पहनने की प्रसन्नता, जिसे न दु.ख मे दुःख है और न सुख की कामना, जिसे न अज्ञानता से आत्मग्लानि होती है और न दरिद्रता से दीनता। किसान वह साधक है कि साधना करते हुए

जिसके हृदय मे कभी सिद्धि की इच्छा उत्पन्न नही होती। यह कर्मयोगी है जो फल प्राप्ति की इच्छा से रहित होकर कर्म करने मे तल्लीन रहता है। उसका छोटा-सा ससार इस ससार से अलग है। यह उसी मे पैदा होता है और कामना-रहित जीवन व्यतीत करके उसी मे समाप्त हो जाता है।

कडकडाते जाडो की भयानक रात, मनुष्य के शरीर को चीरकर बाहर लगने वाली सनसनाती हवा, चारो ओर घनीभूत अन्धकार, जिसमे निकट के वृक्ष भी ... त होने का सन्देह देते हैं जगली जानवरो के रोने की भयानक आवाजें, उल्लुओ की अशुभ ध्वनियाँ, थर-थर ... देने वाला शीत, ये सब एक तरफ और हाथ मे कसला लिए हुए खेत पर बैठा किसान एक तरफ। उसे सूचना मिली थी आज रात को दो बजे उसके खेत को बम्बे से पानी मिलेगा। पानी आया और अधेरे मे उसकी हसी बिखर उठी। ससार सो रहा था पर वह ससार के लिए जग रहा था, खेत मे पानी और उसके पैर उस वक्त जैसे पानी मे।

भारतीय कृषक

१ प्रस्तावना।
२ कृषक जीवन की कठोरता।
३ निर्बलता।
४ निरक्षरता।
५ शासन की ओर से सहायता।
६ उपसहार।

पक्षी प्यास से व्याकुल होकर इधर-उधर पानी की खोज मे उड रहे थे। सूर्य अपनी अग्नि जैसी किरणो से ससार को भूने डाल रहा था। गर्म हवा के झोको से शरीर झुलसा जा रहा था। अपने-अपने घरो के किवाड बन्द किये लोग आराम कर रहे थे। धनिको के दरवाजो पर खस की टट्टियाँ थी। ऊपर से जला देने वाली धूप और नीचे से पैरो मे छाले डाल देने वाली तपन। शरीर पर फटी धोती लपेटे, नगे पैर किसान अब भी खेत मे था। पशु पक्षी तक सघन वृक्षो की छाया मे विश्राम कर रहे थे, परन्तु हसते हुए किसान को यह ध्यान नही था कि धूप के अतिरिक्त कहीं छाया भी है।

बादल आए, उमडे-घुमडे, गरजे-लरजे और बरसने लगे, इतने बरसे कि गाँव मे गलियो मे घुटनो तक पानी हो गया। कडकडाती बिजलियाँ चमकने लगी। माताओ ने अपने अपने बच्चे बिजली के डर से घरो मे छिपा लिये। काली भैंसा के स्वामी अपनी अपनी भैंसो को खोलकर भीतर ले गये, इस भय से कि काली चीज पर बिजली जल्दी गिरती है, परन्तु किसान का धूप से जला हुआ काला शरीर अब भी खेत मे था। कही खेत मे अधिक पानी न हो जाय, इस भय से कही मेड तोडकर पानी को निकालता और कही वर्षा के थपडो से गिरे हुए पौधो को उठाता।

ससार में ऊषा की लालिमा फैलने से पूर्व ही किसान एक सजग प्रहरी की भाँति जग उठता है। घर मे नही जहाँ उसका मधुयन होता है वह वहाँ सोता है, न उसे पत्नी से प्रेम है और न बच्चो की ममता। उठते ही मधुवन की सेवा, इसके पश्चात् अपनी कर्मभूमि खेत की ओर उसके पैर स्वय ही उठ जाते हैं। खेत पर ही तो ऊषा उसका अभिनन्दन करती है। अब वह सध्या के अन्धकार तक घर नहीं लौटेगा। उसका स्नान, उसका भोजन और विश्राम, जो कुछ भी होगा वह एकान्त वनस्थली मे। बातो के लिये बैल हैं, हल है। जब मन आया उन्ही से हँस-बोल लिया। धन्य है रे मौन तपस्वी! तूने ससार के सभी वीतराग सन्यासियो मे पृथक् स्थान प्राप्त

किया है। तू सन्तोष की साकार मूर्ति है, तू त्याग और तपस्या का चिरसंचित वैभव है।

आज से ३० वर्ष पहले के किसान में और आज के किसान में कुछ अन्तर हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् किसान के बहते आँसू कुछ रुके हैं। अब कभी-कभी उसके मलिन मुख पर भी मुस्कराहट दौड़ने लगी है। जमींदारों के शोषण से तो उसे सर्वथा मुक्ति मिल चुकी है, परन्तु फिर भी वह संसार का अन्नदाता आज भी पूर्ण रूप से सुखी नहीं है। आज भी पच्चीस प्रतिशत किसान ऐसे हैं, जिनके पास दोनों समय खाने के लिए भर-पेट भोजन नहीं, शरीर ढकने के लिए स्वच्छ और मजबूत कपड़े नहीं। उनकी गृह-लक्ष्मियाँ फटी हुई धोतियों में अपनी लज्जा को छिपाये जीवन-यापन करती हैं। टूटे-फूटे मकान और टूटी हुई झोंपड़ियाँ आज भी उनके प्रासाद बने हुए हैं।

मूसलाधार वर्षा हुई, छत बैठने लगी, दीवार गिरने लगी किसान क्या करता, आकाश की ओर देखकर रो दिया और उस कृपाल से, अपनी रक्षा की याचना करने लगा, किसान की जीवन-सहचरी दरिद्रता मानो आज भी उसका साथ छोड़ने को तैयार नहीं। अन्य देशों के कृषक सुखी हैं, सम्पन्न हैं, धन-धान्य युक्त हैं, जीवन को सुखमय बनाने के सभी साधन उन्हें उपलब्ध हैं। उन देशों के नागरिकों और कृषकों के ज्ञान, मान, धन, सम्पत्ति सभी में समानता है। वे सुरक्षित होते हैं और सुसंस्कृत भी परन्तु भारतीय किसान अधिकांश रूप से अभी सुसम्पन्न नहीं हैं। सम्भव है, निकट भविष्य में उनकी स्थिति में कुछ और अधिक सुधार हो क्योंकि सरकार उनकी उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। मैथिलीशरण जी ने एक बार लिखा था—

'शिक्षा की यदि कमी न होती, तो ये गाँव स्वर्ग बन जाते।'

ग्रामीणों की निरक्षता उनके जीवन के लिये अभिशाप है। बिना शिक्षा के मनुष्यों का मानसिक विकास नहीं होता और वह कूप-मन्डूक बना रहता है। शिक्षित मनुष्य समाज के उत्थान में सहयोग देते हैं, परन्तु जो अशिक्षित होते हैं, उन्हें न समाज से काम है, न राष्ट्र से। तुलसीदास जी ने एक स्थान पर लिखा है—"सब तें भले विमूढ़, जिन्हें न ब्यापे जगत् गति"। परन्तु यह विमूढ़ता देश-हित के लिए घातक है। देश की स्वतन्त्रता का वास्तविक मूल्यांकन देश के सभ्य व सुशिक्षित नागरिक ही कर सकते हैं। पर जो अशिक्षा के गहन अन्धकार में डूब रहे हैं उन्हें इन सब बातों से क्या, और वास्तव में लोगों को ऐसा कहते सुना भी गया है—

'कोउ नृप होउ हमें का हानी, चेरी छाड़ि न हुई हैं रानी।'

परन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि भारतवर्ष में निरक्षरता और ज्ञान-शून्यता का प्रभाव है। भारतवर्ष की ग्रामवासिनी अस्सी प्रतिशत जनता आज भी अज्ञानान्धकार के गहन गर्त में डूबी हुई है। उसकी दृष्टि में न देश का मूल्य है, न समाज का, न संस्कृति का और न सभ्यता का। उसे केवल हल चलाना और खेती करना, इसके अतिरिक्त, और कोई काम नहीं। पराधीन काल की अपेक्षा आधुनिक काल में यद्यपि सरकार इस दिशा में घोर प्रयत्न कर रही, गाँव-गाँव और तहसील-तहसील में विद्यालय खोले गये हैं, ग्रामीण बन्धुओं को सुरक्षित करने का प्रयास अबाध गति से चल रहा है, फिर भी अभी पर्याप्त समय लगेगा उनकी खोई चेतना को पुनः लाने में। ग्रामीणों की अशिक्षा का प्रभाव शहर में रहकर नहीं, गाँव में जाकर देखिये। बातों ही बातों में डण्डे चलाना, किसी को मौत के घाट उतार देना, दिन-दहाड़े किसी को लूट कर

भाग जाना और उसको मारकर कहीं डाल देना, जब मन चाहा दस-बीस इकट्ठे होकर चल देना, और किसी दूसरे गाँव में आकर डकैती डाल देना, जब मन चाहा तभी किसी भी यात्रियों की मोटर को लूट लेना, पारस्परिक सामाजिक अश्लील सम्बन्ध से एक-दूसरे के घर में आग लगा देना, जरा-जरा सी बातों पर मुकदमेबाजी में हजारों रुपये खर्च कर देना, आदि यह सब ग्रामीणों की अशिक्षा का ही प्रभाव है। आज आपको गाँवों में पार्टी-बन्दियाँ मिलेंगी, जो कि समाज की एकता और अभेद के लिए घोर हानिकारक हैं। जातिवाद का अहंकार आज भी उनके हृदय में घर किये है। उनके इसी अहंकार की भयंकरता के कारण बेचारे छोटी जाति के लोग शहरों में आकर बस गये हैं, गाँव जाने का नाम नहीं लेते। आज भी नई रोशनी में जो गाँव के लड़के शहर में आकर चार अक्षर सीख भी जाते हैं वे जब गाँव को लौटते हैं, तो और भी व्यभिचार और दुराचार फैला देते हैं। आज के गाँव नहीं जिनके लिये मैथिलीशरण जी ने बड़े दयार्द्रभाव में ऊपर लिखी हुई पंक्तियाँ कही थीं, आज इनके विचारों और संस्कारों को परिष्कार की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कभी शिक्षा की थी। आज एक आवश्यकता पूरी नहीं होने पाई थी कि दूसरी आवश्यकता सामने दिखाई पड रही है।

किसानों की सर्वांगीण उन्नति के लिये सरकार आज प्रयत्नशील है। जैसे—बच्चों की शिक्षा के लिये विद्यालय, प्रौढ़ों की शिक्षा के लिये सायंकालीन विद्यालय, स्वास्थ्य के लिये चिकित्सालय, डाक की सुविधा के लिये डाक घर आदि। कृषि की उन्नति के लिये अनेक प्रकार के खाद, नवीन यन्त्र प्रदान किये जा रहे हैं, भिन्न भिन्न सर्वसाधारणोपयोगी संस्थायें आपको गाँव-गाँव में मिलेंगी। ग्राम और ग्रामीणों की सामूहिक उन्नति के लिये शासन की ओर से अनेक नये विभाग खोले गये हैं जिनमें काम करने वाले अधिकारी और कर्मचारी नित्य ग्रामीणों की सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए उन्हें उन्नति की ओर ले जा रहे हैं। तत्कालीन प्रधान मन्त्री मोरारजी देसाई ने जनता सरकार के दो वर्षों की सफलताओं की समीक्षा करते हुए २ अप्रैल १६७६ को जनता के नाम अपने सन्देश में कहा कि—"गाँवों के विकास का काम जिस स्तर पर हमने अपने हाथ में लिया है उतने जोर-शोर से ग्रामोन्नति के कदम पहले कभी नहीं उठाये गये। सरकार ने पाँच वर्ष में देश के एक लाख बीस हजार गाँवों में जहाँ पीने के पानी की सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं है, पेय जल उपलब्ध करने का बीड़ा उठाया है।"

सन्तोष की बात है कि किसानों में जागृति आई है। १६७८ में अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ। चौधरी चरणसिंह के जन्म-दिवस को कृषक-दिवस के रूप में मनाया जाने लगा है। परन्तु पहले युग में किसान, जितना भोला-भाला था आज के युग में वह उतना ही चालाक है, भले ही वह कठिन परिश्रमी हो, स्वामी हो, तपस्वी हो और देश का अन्नदाता हो। भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिली और ग्रामीण को वह भूलता। आज जितनी अराजकता, उद्दण्डता गाँवों में है, उतनी नगरों में नहीं। आज के गाँव न स्वर्ग हैं और न ग्रामीण किसान स्वर्गवासी देवता।

३७ जनतन्त्र और नागरिकों के अधिकार एवं कर्त्तव्य

प्रजातन्त्र प्रणाली के सफलतापूर्वक निर्वाह के लिए यह परम आवश्यक है कि उस देश के नागरिकों में नागरिकता की भावना पूर्ण रूप से विद्यमान हो। नागरिक शब्द का साधारण अर्थ नगर में रहने वाला होता है। इस परिभाषा से ग्रामवासी नागरिक किस प्रकार कहे जा सकते हैं? आजकल नागरिक का बहुत व्यापक अर्थ हो गया है। आज का नागरिक समाज का वह सभ्य व्यक्ति है, जो किसी राज्य का हो, चाहे वह नगर में रहता हो चाहे ग्राम में। उसे राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते है। वह चुनाव में स्वयं खड़ा हो सकता है। भारतवर्ष के नवीन संविधान ने सभी नागरिकों को सामाजिक अधिकार प्रदान किये हैं। १८ वर्ष या इससे अधिक अवस्था वाले व्यक्ति इन सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकारों का उपभोग कर सकते है, परन्तु पागल, कोढ़ी, दिवालिये तथा साधु-संन्यासी, आदि को इन अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। जहाँ नागरिक के अधिकार होते है, वहाँ उनके कुछ कर्त्तव्य भी होते हैं। अधिकार और कर्त्तव्यों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इसीलिये जहाँ नागरिकों को अधिकारों के उपभोग में प्रसन्नता होती है, वहाँ उन्हें कर्त्तव्य पालन का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

आदर्श नागरिक में कुछ गुणों का होना बहुत आवश्यक है। महात्मा ईसा-मसीह ने कहा है कि "अपने पड़ोसी को अपनी तरह ही प्यार करो।" हमारी भारतीय सभ्यता "बहुजनहिताय बहुजन सुखाय" के सिद्धान्तों पर आधारित है। "आत्मवत् सर्वभूतेषु" आदि वाक्यों पर जनता विश्वास करती है। आदर्श नागरिक वही है, जिसके हृदय में सहानुभूति, सहयोग की भावना है। लार्ड ब्राइस का कथन है कि "चमत्कार, सहानुभूति एवं आत्मसंयम आदर्श नागरिक के आवश्यक गुण हैं। आदर्श नागरिक की बुद्धि में चमत्कार होना चाहिये, उसकी बुद्धि में विवेक होना आवश्यक है। दूसरों के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना रखनी चाहिये। उसे आत्म-संयम रखना चाहिये। ईर्ष्या, क्रोध इत्यादि से दूर रहना चाहिये।"

जनतन्त्र और नागरिकों के अधिकार एवं कर्त्तव्य

१. प्रस्तावना।
२. आदर्श नागरिक के गुण।
३. नागरिक के अधिकार — (क) सामाजिक, (ख) राजनीतिक।
४. नागरिक के कर्त्तव्य — (क) राज्य-भक्ति, (ख) राज्य कर, (ग) कानून की रक्षा, (घ) देश-रक्षा, (ङ) शासन को सहयोग।
५. उपसंहार।

संविधान प्रत्येक नागरिक को अधिकार प्रदान करता है। बिना अधिकारों के नागरिक जीवन का कोई विशेष महत्व नहीं। ये अधिकार दो प्रकार के हैं— सामाजिक तथा राजनैतिक।

सामाजिक अधिकारों में सबसे प्रमुख अधिकार मनुष्य को जीवित रहने का अधिकार है। शासन की ओर से प्रत्येक नागरिक को इस प्रकार की सुविधा प्राप्त हो, जिससे वह निर्भीक और निश्चिन्त होकर अपना जीवन-यापन कर सके। जीवन

के साथ-साथ दूसरा सामाजिक अधिकार सम्पत्ति का है। यदि किसी मनुष्य ने न्यायोचित रीति से धनोपार्जन किया हो या किसी प्रकार की सम्पत्ति एकत्रित की हो, तो उससे वह सम्पत्ति छीनी नहीं जा सकती। यदि कोई व्यक्ति इस सम्पत्ति को छीनने या चुराने का प्रयत्न करेगा तो राज्य की ओर से उसे दण्ड मिलेगा। उसे रहने के लिए घर, पहिनने के लिए वस्त्र और भोजन के लिए अन्न की सुव्यवस्था भी होनी चाहिए। तीसरा सामाजिक अधिकार सामुदायिक जीवन का अधिकार है, उसे विवाह आदि की स्वतन्त्रता का अधिकार है। चौथा धर्म सम्बन्धी अधिकार है। धर्म पालन में उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। इसके अतिरिक्त उसे काम करने का अधिकार प्राप्त है, यदि कोई व्यक्ति बेकार है, तो शासन का कर्तव्य है कि उसको उसकी विद्या और बुद्धि के अनुसार कार्य प्रदान करे।

स्वतन्त्र देशों में विचार स्वातन्त्र्य तथा उनकी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता बहुत बड़ा अधिकार समझी जाती है। भारतीय संविधान अपने प्रत्येक नागरिक को विचार और भाषा की स्वतन्त्रता प्रदान करता है क्योंकि मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह केवल दूसरों की ही बात सुनना नहीं चाहता, अपितु अपनी भी दूसरों को सुनाना चाहता है। परन्तु इस भाषण स्वातन्त्र्य पर इतना प्रतिबन्ध अवश्य होता है कि कोई व्यक्ति ऐसे विचार प्रकट न करे, जो दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाते हों, या उस भाषण से समाज में साम्प्रदायिक द्वेष फैलता हो।

नागरिक के राजनैतिक अधिकारों में, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उसे मताधिकार प्राप्त है। वह प्रत्येक सार्वजनिक चुनाव में अपना मत दे सकता है। निर्वाचन की शर्तों को पूरा कर लेने पर उसे निर्वाचित होने का भी अधिकार प्राप्त है। वह अपनी योग्यतानुसार अपने को राज्य के ऊँचे से ऊँचे पद पर सुशोभित कर सकता है। उसे आवेदन करने का भी अधिकार प्राप्त है। यदि सरकारी कर्मचारी अपने कर्तव्य का यथोचित पालन नहीं करते, तो वह उनके विरुद्ध आवेदन कर सकता है। बाढ़, महामारी, दुर्भिक्ष आदि के कष्टों के साथ जनता द्वारा अपने विचारों का समर्थन प्राप्त कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो देश जितना उन्नत और समृद्ध होता है, उसके नागरिकों को उतने ही अधिकार प्राप्त होते हैं।

अधिकारों का संसार बड़ा मधुर होता है, वे बड़े सुन्दर और आकर्षक होते हैं, परन्तु अधिकारों की शोभा कर्तव्य-पालन से है। अधिकार प्राप्त करके जो अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, उससे अधिकार छीन लिए जाते हैं। नागरिक जीवन के अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्य भी लगे हुए हैं। अधिकारों के बदले में हमें समाज के प्रति कर्तव्य करने पड़ते हैं। बिना कर्तव्य के नागरिक के अधिकार सुरक्षित नहीं रह सकते। हमारा सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य राष्ट्र-भक्त रहना है। जो शासन हमारी सुख-समृद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है, उसकी रक्षा के लिए हमें सदैव सन्नद्ध रहना चाहिये। हमारा यह कर्तव्य है कि हम देश में अशान्ति और अव्यवस्था न फैलने दें। राज्य हमारी उन्नति के लिए जो कुछ करता है, उन कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती है। हमें राज्य द्वारा लगाये गये करों को प्रसन्नतापूर्वक देना चाहिये, जिससे राज्य की आर्थिक स्थिति बिगड़ने न पाये।

कानून की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्तव्य है। उसे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए जिससे सरकार के कानूनों का उल्लंघन होता हो। समाज

के कल्याण के लिए वैधानिक नियमों का पूर्ण रूप से पालन करना परम आवश्यक है। नागरिक का जीवन केवल अपने ही लिए नहीं है, अपितु अपने परिवार, अपने नगर, अपने देश तथा मानवता की रक्षा के लिये भी है। उसे सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि उससे कोई ऐसा काम न हो, जिससे दूसरों को कष्ट पहुँचे। देश की रक्षा के लिये उसे तन, मन, धन से सरकार की सहायता करनी चाहिए। जिस देश की धूलि में लेट-लेट कर हम बड़े हुए, जिसके अन्न, जल और वायु से हमारा पोषण हुआ है, उसकी रक्षा करना हमारा परम-धर्म है।

शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए श्रेष्ठ नागरिकों को सदैव सरकार की सहायता करनी चाहिए। प्रत्येक देश में भले और बुरे सभी प्रकार के व्यक्ति रहते हैं। जहाँ सज्जन होते हैं, वहाँ समाज विरोधी तत्व भी होते हैं। इनका दमन करना यद्यपि पुलिस और सरकार का काम है, परन्तु अकेली पुलिस तब तक अपना कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकती, जब तक उसे नागरिकों का पूरा सहयोग प्राप्त न हो। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि चोरों, डाकुओं तथा इसी प्रकार के अन्य अपराधियों का पता लगाने में सरकार की पूर्ण रूप से सहायता करें।

अब हमारा देश स्वतन्त्र है। इसकी शासन-सत्ता हमारे ही हाथों में है। देश का उत्थान-पतन हमारे ही कार्यों पर निर्भर है। कहीं ऐसा न हो कि हमारी यह स्वतन्त्रता उच्छृङ्खलता का रूप धारण कर ले, हमें सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये। स्वतन्त्रता के साथ-साथ हमें बहुत से उत्तरदायित्व भी मिले हैं, जिन्हें सत्यता के साथ निभाना हमारा परम धर्म है। हमें अपनी विभिन्न दलबन्दियों में बिखरी हुई शक्ति को संगठित करके देश के कल्याण में लगाना चाहिये। अभी हमारे देश में पर्याप्त शिक्षा का अभाव है, इसीलिये योग्य नागरिकों का अभाव है। परन्तु शनैः-शनैः यह कमी भी दूर होती जा रही है। ध्यान रखिये कि जो नागरिकों के कर्त्तव्य हैं, वे ही राज्य के अधिकार हैं और जो नागरिकों के अधिकार हैं वे ही राज्य के कर्त्तव्य हैं। अतः राज्य और नागरिक दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसलिए दोनों को ही अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये, तभी भारतवर्ष में जनतन्त्र और भी अधिक सफल हो सकेगा। जनतन्त्र की सुरक्षा और नागरिकों के अधिकारों के प्रति सरकार यथेष्ट सजग एवं जागरूक है। नागरिकों को भी अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये।

२८ ग्राम पंचायत-राज्य

जिस देश की पवित्र भूमि से यज्ञ का धुआँ उठकर आकाश को भी पवित्र और सौरभान्वित कर देता था, जिस देश में विप्र बटुकों की वेद पाठ की पवित्र ध्वनि से दिगदिगन्त भी पवित्र हो जाते थे, जिस देश में घर-घर में शंखनाद और घण्टावादन होता था, जिसकी भूमि के महान् आकर्षण ने परब्रह्म को राम और कृष्ण के रूप में भारत भूमि पर मानव लीला करने के लिये विवश कर दिया था, समय के प्रभाव से वह पुण्य भूमि विदेशियों से पदाक्रान्त हुई। शनैः-शनैः हम भारतीय अपनी पवित्र संस्कृति, पुण्यवती सभ्यता तथा ज्ञानमयी चेतना से हाथ धो बैठे। विदेशियों ने हमारे राजनीति, अर्थनीति और धर्मनीतियों पर कुठाराघात किये और यह छिन्न-

छिन्न हो गयी, बिखरी हुई कड़ियों के रूप में यद्यपि वह आज भी दृष्टिगोचर होती है। परतन्त्रता ने हमें अविद्या और दरिद्रता के गहन अन्धकार में धकेल दिया। दासता जब अपनी चरम सीमा पर थी, हमारे डूबने में कुछ ही समय शेष था, तभी भारतीय क्षितिज पर एक प्रकाश पुंज अवतीर्ण हुआ, जिसने न केवल युगों की दासता की शृंखलाओं को ही काटा, अपितु शताब्दियों से अन्धकार में भटकती हुई जनता को प्रकाश प्रदान किया। उसी महापुरुष का कथन था कि, "हमारा भारतवर्ष गांवों में बसता है गांव हमारी संस्कृति के केन्द्र स्थान हैं, जब तक भारत में सात लाख गांव उन्नत, स्वावलम्बी और समृद्धिशाली न होंगे, जब तक वहां से अविद्या का अन्धकार, दरिद्रता का दानव और ऊंच-नीच का भेद भाव नष्ट न होगा, तब तक स्वतन्त्रता अथवा स्वराज का भारत के लिये कोई मूल्य नहीं।" यह राष्ट्रदाता महात्मा गांधी थे।

सच्चे लोकतन्त्र की प्राण प्रतिष्ठा तभी सम्भव है जब, समाज सुखी और समृद्ध हो। भारतीय ग्रामों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी चाहे वह शिक्षा की दृष्टि से हो या आर्थिक दृष्टि से, चाहे वह स्वच्छता की दृष्टि से हो या चिकित्सा की दृष्टि से, चाहे वह भेद भाव की दृष्टि से हो या कलह की दृष्टि से। भारतवर्ष गांवों का देश है। जब तक गांवों की उन्नति नहीं होगी तब तक भारतवर्ष की उन्नति सम्भव नहीं। आज भी भारतीय ग्राम अविकसित हैं आज भी ग्रामीणों के चारों ओर भेद भाव, कलह, अज्ञान और मलीनता घेरा डालते हुए हैं। अतः ग्रामीणों के जीवन के सुधार तथा सर्वाङ्गीण उन्नति लाने के लिये भारत सरकार ने ग्राम पंचायतों की स्थापना की।

प्राचीन काल में पंचायतों का स्वरूप छोटे-छोटे प्रजातन्त्रों के स्वरूप में था, जिनका कर्तव्य जनता-स्तर उन्नत करना होता था। ये प्रजातन्त्र जनता पर शासन भी करते थे तथा शिक्षा एवं न्याय सम्बन्धी कार्य भी करते थे। इन प्रजातन्त्रों के अधिकार कुछ लिखित प्रतिज्ञा के रूप में होते थे और कुछ अलिखित होते थे। लेकिन संसार की परिवर्तनशीलता ने इस व्यवस्था को भी शनैः-शनैः लुप्त कर दिया। भारत के साथ-साथ इस लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का फिर से नया जन्म हुआ। गांधी जी की इच्छा थी कि भारत में राम-राज्य की स्थापना हो।

स्वतन्त्रता और स्वराज्य की वास्तविकता तभी सार्थक हो सकती है, जब इस देश के सात लाख गांवों को स्वराज्य का सन्देश पहुँच जाये। इसी स्वप्न को साकार रूप देने के लिए सन् १९४७ में सरकार ने एक पंचायत राज्य कानून बनाया और गांवों में एक नया युग प्रारम्भ हुआ। पंचायत राज्य कानून के अनुसार एक हजार या इससे अधिक आबादी वाले प्रत्येक गांव में एक ग्राम सभा स्थापित की गई। एक हजार से कम आबादी वाले गांवों के लिये यह नियम बनाया गया कि कुछ छोटे-छोटे गांवों को मिला कर ग्राम-सभा का संगठन होगा। गांव के सभी वयस्क स्त्री-पुरुष अर्थात् जिनकी अवस्था १८ वर्ष की हो चुकी हो, ग्राम सभा के सदस्य होंगे। केवल वे ही लोग इस सभा की सदस्यता से वंचित होंगे जो पागल हों या जिनको कोढ़ की बीमारी हो या जो दिवालिया घोषित हों या जो सरकारी नौकरी करते हों और बन्धक रहते हों या जो चुनाव सम्बन्धी अपराध में दोषी सिद्ध हो चुके हों। इसके अतिरिक्त, गांव में स्थानीय रूप से रहने वाले सब लोग ग्राम सभा के सदस्य बहुमत से अपने में से किसी एक योग्य व्यक्ति को सभा का सभापति और दूसरे को उपसभापति चुन लेते हैं। सभापति सभा के कार्यों का संचालन करता है।

साधारण स्थिति में, वर्ष में दो बार ग्राम-सभा की बैठक होती है, एक बार गर्मियों में जब लोग खेती का काम समाप्त कर लेते हैं और दूसरी बार खरीफ की फसल काटने के बाद। आवश्यकता पड़ने पर सभापति या कुल सदस्यों के पांचवें भाग के कहने पर ग्राम सभा की खास बैठक बुलाई जा सकती है। ग्राम सभा की बैठक तभी हो सकती है, जब उसके कम से कम १५ सदस्य उपस्थित हो। ग्राम सभा अपनी एक कार्यकारिणी समिति का निर्माण करती है, जिसे ग्राम पचायत कहते हैं। ग्राम सभा के सदस्य आबादी के हिसाब से ग्राम पंचायत मे ३० से ५० तक सदस्य चुन लेते हैं। ग्राम सभा के सभापति उपसभापति इस पंचायत मे भी प्रधान और उपप्रधान होते हैं। ग्राम पंचायत के सदस्यों का चुनाव तीन वर्ष के लिये होता है। पंचायत मे गाँव में रहने वाली सब जाति और सभी वर्णों के लोगो के प्रतिनिधि चुने जाते हैं।

ग्राम सभा की अनुमति से ग्राम-पंचायत सीर, खुदकाश्त, व्यापार, मकान आदि पर कर लगा सकती है। उसे दान स्वीकार करने का अधिकार है। आवश्यकता पड़ने पर वह कर्ज भी ले सकती है। इन कार्यों में उसे ग्राम सभा का आदेश मानना पड़ता है। इसके अतिरिक्त सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत करना, सफाई, रोशनी का प्रबन्ध करना, चिकित्सा और जच्चा-बच्चा की देख-रेख करना, छूत की बीमारियों को रोकने का प्रबन्ध करना, सभा की सम्पत्ति या इमारतों की रक्षा की व्यवस्था करना, जन्म-मरण का हिसाब रखना, ग्राम-पंचायत के मुख्य कार्य हैं। अपने क्षेत्र में मेला, बाजार, स्कूल, चरागाह, कुआँ, तालाब, बीज गोदाम का प्रबन्ध करना भी ग्राम पंचायत के अधिकार मे है। ग्राम से सम्बन्धित सरकारी कर्मचारियों के काम के विषय में ऊपर के अधिकारियो के पास प्रमाण के साथ अपनी रिपोर्ट भेजने का अधिकार भी ग्राम-पंचायत को है। ग्राम पंचायत की बैठक प्रति मास एक बार होती है। सदस्यों को बैठक की सूचना सात दिन पहले दी जाती है।

ग्राम-पंचायत-राज्य

१. प्रस्तावना।
२. पंचायत राज्य द्वारा ग्रामोत्थान।
३. प्राचीन भारत में पंचायत राज्य।
४. ग्राम-पंचायत राज्य का वर्तमान स्वरूप।
५. ग्राम पंचायत के कार्य।
६. पंचायत राज्य में न्याय प्राप्ति की सुलभता।
७. उपसंहार।

पंचायत राज्य द्वारा ग्रामीण जनता को न्याय सुलभता और सरलता से प्राप्त होता है। अंग्रेजी शासनकाल में न्याय केवल धनिकों तक ही सीमित था, निर्धन व्यक्ति के लिये यह न्याय यदि असम्भव नही तो कष्टसाध्य अवश्य था। छोटे-छोटे मामले उत्तरोत्तर अपील की व्यवस्था के कारण इतना भयानक रूप धारण कर लेते थे कि उनके निर्णय के लिए हाई-कोर्ट में शरण लेनी पड़ती थी। पंचायत राज्य की योजना के अनुसार ग्राम सभायें पंचायती अदालतों का निर्माण करती हैं। प्रत्येक अदालत में तीन से लेकर पाँच तक ग्राम सभायें होती हैं और प्रत्येक ग्राम सभा पंच चुनती है। इस प्रकार के तीन मण्डल में १५ से लेकर २५ पंचों तक की एक पंचायती अदालत बन जाती है। वे सब पंच अपने में से एक सरपंच चुनते हैं, जिनका पढ़ा लिखा होना जरूरी है। पंच का कार्यकाल तीन-तीन वर्ष का होता है। प्रत्येक मुकदमे के लिये सरपंच पाँच पंचों का एक पंच-मण्डल बनाता है, जिसमें एक पंच ऐसा होता है जो पढ-लिख सके और वादी के गाँव या पक्ष का हो और एक प्रतिवादी के पक्ष या गाँव का हो। ये ही पंच-मण्डल पंचायती अदालतों से आम मुकदमों का फैसला करते

हैं। कोई ऐसा पंच मुकदमे में भाग नहीं ले सकता जो वादी का रिश्तेदार हो। फौजदारी और दीवानी दोनों के साधारण मामले इन अदालतों में लाये जा सकते हैं। इन अदालतों को १०० रुपये तक जुर्माना करने का अधिकार प्राप्त है, लेकिन इन्हें कैद की सजा देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। दीवानी के मुकदमे में दो रुपया तथा फौजदारी में पच्चीस पैसे प्रवेश शुल्क लिया जाता है। पंचायती अदालतों में वकील पैरवी नहीं करते और न इनके निर्णय की आगे कोई अपील हो सकती है। इन दोनों नियमों के कारण ग्रामीण जनता का धन पानी की तरह बहने से बच जाता है।

ग्राम-पंचायत राज्य हमारे देश के लिये, जिसकी आत्मा गाँवों में निवास करती है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारत में जनतन्त्र को सफल बनाने के लिये ग्राम-पंचायतों का संगठन आवश्यक है। जनतन्त्र शासन को सफल बनाने के लिये सहकारिता का संगठन प्रयास, समाज की सेवा की भावना, सार्वजनिक कार्यों को अपना समझकर उनमें योग देना, बहुमत का आदर करना, विचार भिन्नता होते हुए भी मिल-जुलकर काम करना, नियन्त्रण में रहने का स्वभाव बनाना आदि गुण परम आवश्यक हैं। इन सब गुणों को प्राप्त करने के प्रशिक्षण का स्थान इस देश की जनता के लिए ग्राम पंचायत ही है। ग्रामीण जनता को इनसे उत्तरदायित्व पूरा करने की भी शिक्षा मिलती है। ग्राम पंचायत के संगठन से भारत के शासन के केन्द्रीयकरण का दोष भी बहुत अंशों में कम हो जायेगा। राज्य के किसी अधिकारी का जनता के कार्यों में तथा उनके जीवन में हस्तक्षेप का अवसर भी कम प्राप्त होगा। ग्राम पंचायतों के संगठनों से गाँवों में आत्मनिर्भरता का समावेश होगा, ग्रामीण समस्याओं के सुलझाने में तथा उनके प्रबन्ध करने में जितनी सुविधा ग्राम पंचायतों को होगी, उतनी किसी अन्य संस्थाओं को नहीं, क्योंकि वहाँ की जनता अपनी आवश्यकताओं, कमियों, शक्ति और समस्याओं से पूर्णरूप से परिचित है।

उपर्युक्त तर्कों पर विचार करके हम निःसन्देह यह कह सकते हैं कि भारतीय लोकतन्त्र शासन की सफलता में जन-जागृति, सुधार, निर्माण आदि कार्यों में ग्राम पंचायत से बढ़कर और कोई संस्था सहायता नहीं कर सकती। इसलिये भारतीय संविधान की ४०वीं धारा में कहा गया है कि—

"राज्य ग्राम पंचायत का संगठन करने के लिये अग्रसर होगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने में आवश्यक हों।"

सन्तोष की बात है कि राज्य सरकारों ने भारत सरकार के निर्देश पर १९८८ की जौलाई में सात वर्षों बाद ग्राम प्रधान एवं ग्राम पंचायतों के चुनाव सम्पन्न कराये हैं। इससे भारत में लोकतन्त्र की जड़ें और अधिक मजबूत होंगी और लोगों को अपने झगड़े अपने आप सुलझाने के लिये स्वर्णिम अवसर मिलेगा। ●

३९ भारत की पंचवर्षीय योजनायें

अब तक हमारे देश में पाँच पंचवर्षीय योजनायें पूरी हो चुकी हैं। पण्डित नेहरू ने देश में आर्थिक एवं औद्योगिक क्रांति लाने के लिये इन्हें बड़े चाव से प्रारम्भ किया था। वे योजना आयोग के स्वयं अध्यक्ष रहते रहे और देश के कल्याण के लिये बड़ी-बड़ी योजनायें बनाते रहे। वे इन योजनाओं के माध्यम से देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने में प्रयत्नशील थे। पण्डित जी के हृदय पर रूस की औद्योगिक

प्रगति का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। नियोजन के विगत प्रारम्भिक अठारह वर्षों में देश काफी आगे बढ़ा और हम अपने पैरों पर खड़े हुए। अगर १०० काम एक साथ शुरू किए जायें, तो निश्चित है कि उनमें से कुछ में तो हमें आशातीत सफलता प्राप्त होगी। कुछ में हम लक्ष्य तक पहुँच पायेंगे, कुछ में लक्ष्य से भी पीछे रहेंगे और कुछ ऐसे होंगे, जिनमें हमें असफल होना पड़ेगा। यही हाल इन योजनाओं के सम्बन्ध में है। योजना मन्त्री श्री अशोक मेहता ने चौथी पंचवर्षीय योजना की ड्राफ्ट रूप-रेखा में पिछली तीन योजनाओं के विषय में लिखा है—"पहली पंचवर्षीय योजना अधिक सफल हुई। दूसरी योजना भी असन्तोषजनक नहीं थी, किन्तु तीसरी योजना अच्छी नहीं रही।"

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के संक्षिप्त प्रारूप को यद्यपि १९६६ में अन्तिम स्वरूप प्रदान किया जा चुका था, तथापि विदेशी सहायता के पर्याप्त आश्वासन न मिलने, सूखे के गम्भीर संकट एवम् भारत-पाक तनाव की पृष्ठभूमि में इसे स्थगित कर दिया गया था। अतः १ अप्रैल, १९६८ से इसे पुनः नये रूप में क्रियान्वित किया गया। इस योजना का कुल व्यय २४ सौ करोड़ रुपये था।

उद्देश्य नये प्रारूप के अनुसार "नियोजन का उद्देश्य लोगों के जीवन-स्तर में तेजी से वृद्धि करना है और यह वृद्धि ऐसे उपायों से करनी है जो कि समानता एवम् सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने वाले हों। इस प्रकार, योजना जन साधारण, दुर्बल वर्ग और अन्य सुविधाओं वाले व्यक्तियों की भलाई पर बल देती है।"

पंचवर्षीय योजनायें

१. प्रस्तावना।
२. योजना के उद्देश्य।
३. योजना के लक्ष्य एवं इसकी विशेषतायें।
४. योजना के गुण-दोष।
५. उपसंहार।

लक्ष्य, विशेषतायें एवम् विकास कार्यक्रम –(१) प्रति व्यक्ति आय १९८०–८१ में १९६७–६८ की तुलना में ५५% अधिक हो जायेगी। राष्ट्रीय आय में प्रतिशत ५.५% वार्षिक वृद्धि की आशा की गई थी।

(२) कार्यक्षेत्र में प्रतिवर्ष कम से कम ५% की वृद्धि की जायेगी। कृषि उत्पादन में लक्ष्यों की प्राप्ति सघन कृषि पर निर्भर होगी। चुने हुए जिलों में छोटे किसानों की विकास एजेन्सी स्थापित की जायेगी।

(३) पशुपालन सम्बन्धी कार्यक्रमों का उद्देश्य दूध, मांस, अण्डा, ऊन, खाल, चमड़ा, आदि के उत्पादन में वृद्धि करना है। नये आधार ग्राम-खण्ड, पशु प्रजनन फार्म, शूकर विकास खण्ड, शूकर मांस कारखाने, पशु चिकित्सालय, ग्रामीण दुग्ध उत्पादन केन्द्र खोले जाने की व्यवस्था थी।

(४) वनोत्पादनों में वृद्धि के लिए जल्दी से उगने वाले तथा आर्थिक व औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बागात लगाने का प्रावधान था।

(५) कृषि सहकारी समितियों और उपभोक्ता सहकारी समितियों को सहकारिता के विकास कार्यक्रमों में केन्द्रीय स्थान दिया गया था।

(६) चौथी योजनावधि में ५७ लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई हो जाने की क्षमता पैदा करने की व्यवस्था की गई थी।

(७) बिजली उत्पादन क्षेत्र में २२ मेगावाट की शुद्ध स्थापित क्षमता प्राप्त हो जाने की आशा की गई थी।

(८) औद्योगिक उत्पादन में ८ से ७% तक वृद्धि करने का लक्ष्य था। प्रमुख उद्योगों के उत्पादन लक्ष्य निम्न प्रकार थे—इस्पात की सिल्लियों का उत्पादन १९६८–६९ में ६.५० मि०मी० टन से बढ़ाकर १९७३–७४ में १०.८० मि०मी० टन करना, कोयले का उत्पादन ९८.२ मि०मी० टन से बढ़ाकर ९३.५० मि०मी० टन, सूती वस्त्र का उत्पादन ४४०० लाख मि० मी० टन से बढ़ाकर ५१०० लाख मि० मी० और चीनी का उत्पादन २.६ मि० मी० टन से बढ़ाकर ४.७ मि० मी० टन करना।

(९) परिवहन के क्षेत्र में रेलों की भार वाहन क्षमता २०३० लाख मी० टन से बढ़ाकर २६०० लाख मीट्रिक टन, पक्की सड़कों की लम्बाई २६७ हजार कि० मी० से बढ़ाकर ३१७ हजार कि० मी० और जहाजी टन भार २१.४० लाख जी० आर० टी० से बढ़ाकर ३५ लाख जी० आर० टी० करने का लक्ष्य था।

(१०) इसमें परिवार नियोजन पर बहुत बल दिया गया था ताकि वर्तमान जन्म दर ३९ प्रति हजार को १९७३–७४ तक ३२ प्रति हजार पर लाया जा सके।

इस योजना के अधिकांश लक्ष्यों को एक बड़ी सीमा तक प्राप्त कर लिया गया था।

योजना आयोग ने सन् १९७४ से प्रारम्भ होने वाली पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का स्वरूप और प्रारूप तैयार कर लिया था। इस योजना में ५३४,११ करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था थी। योजना के प्रारूप में कहा गया था कि कीमतें बढ़ने के बावजूद निर्दिष्ट राशि में सिर्फ १२४६ करोड़ रुपये की वृद्धि करके ५.५ प्रतिशत वार्षिक विकास की दर को कायम रखा गया था। योजना राशि के कुल व्यय में ३७२५० करोड़ रुपये सरकारी क्षेत्र के लिए और १६१६१ करोड़ रुपये निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया था। सरकारी क्षेत्र के लिए ६८५० करोड़ रुपये अतिरिक्त साधनों से जुटाया गया था। इसमें से केन्द्रीय सरकार को ४३४० करोड़ रुपये तथा २२५० करोड़ रुपये राज्य सरकारों को जुटाना था। योजना के प्रारूप में साधन जुटाने के लिए जिन मुख्य मदों का उल्लेख किया गया था उनमें करारोपण, बाजार से ऋण लेने तथा सरकारी क्षेत्र के कारखानों के उत्पादन की मूल्य नीति में संशोधन करने की बात थी।

पाँचवीं योजना की अवधि में प्रतिवर्ष साढ़े ५ प्रतिशत [illegible] के लिए योजना के कार्यान्वयन पर अधिक बल दिया गया था। राष्ट्रीय [illegible] की ८ दिसम्बर, १९७३ की बैठक में पाँचवीं योजना में साढ़े ५ प्रतिशत विकास की दर की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित चार-सूत्री आर्थिक नीति का समावेश किया गया था।

(१) निजी क्षेत्र सहित विविध क्षेत्रों में समुचित पूँजी का विनियोग और उसका समुचित उपयोग। (२) निजी पूँजी विनियोग को सामाजिक दृष्टि से उपयोगी क्षेत्रों में लगाने के लिए प्रोत्साहन देना और अनुपयोगी या कम उपयोगी धन्धों से दूर रखने के लिए प्रोत्साहित करना। (३) उत्पादकता बढ़ाने के लिए संस्थाओं में सुधार करना तथा अतिरिक्त उत्पादन का अधिक न्यायपूर्ण वितरण करना। (

आर्थिक विकास के लिए मुद्रा प्रसार का ढंग न अपनाकर टैक्स व मुद्रा-सम्बन्धी नीतियों को अपनाना।

तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी ने राष्ट्रीय विकास परिषद् की ८ दिसम्बर ७३ की बैठक मे पाँचवी योजना के प्रारूप को पेश करते हुए कहा था—'योजना में निहित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अत्यधिक अनुशासन तथा उसके कार्यान्वियन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि "देश निष्काम कर्म" के सिद्धान्त से हटकर 'निष्कर्म काम' की ओर बढ़ रहा है। यह प्रवृत्ति न तो साम्यवाद है न समाजवाद और राष्ट्रवाद तो बिलकुल नहीं है। जब तक मेहनत, अनुशासन और एकता नहीं होगी, विकास नहीं हो सकता।" लेकिन विभिन्न राजनैतिक गतिविधियो तथा परिवर्तन के कारण पाँचवी योजना का सफल क्रियान्वयन नही हो पाया था।

छठी पचवर्षीय योजना के प्रारूप पर विचार करने के लिए बुलाई गई दो दिन की राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक को सम्बोधित करते हुए ३० अगस्त १९८० को प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी ने कहा—"अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति, साधनो की कमी और मुद्रा स्फीति काबू मे रखने की आवश्यकता को ध्यान मे रखकर योजना आयोग ने छठी योजना मे ५·३ प्रतिशत की विकास की दर प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया है और ९० हजार करोड रुपये की योजना तैयार की है, इस विशाल योजना के खर्च के लिए केन्द्र एव राज्यो को साधन जुटाने के लिए भारी प्रयत्न करने होगे। प्रधानमन्त्री ने कहा कि अनेक कठोर और अलोकप्रिय लगने वाले कदम उठाकर ही साधनो को जुटाया जा सकता है। वित्तीय अनुशासन कायम करना होगा और सभी जगह फालतू खर्चों को रोकना होगा।

राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति के लिए छठी योजना का जो प्रारूप पत्र ३० अगस्त १९८० की बैठक मे रक्खा गया, उसकी कुछ मुख्य बाते निम्न प्रकार हैं—

कुल योजना व्यय—१५ खरब ६० अरब रुपये।
सार्वजनिक क्षेत्र—९ खरब रुपये।
निजी क्षेत्र—६ खरब ६० अरब रुपये।
वार्षिक विकास दर—५ से ५·२ प्रतिशत।
अतिरिक्त साधन—१ खरब ९० अरब रुपये।

राष्ट्रीय विकास परिषद् की ३१ अगस्त १९८० की बैठक मे छठी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप पत्र को, जिसमे उसके उद्देश्य और लक्ष्य उल्लिखित थे, सर्वसम्मति से स्वीकृति दे दी तथा राज्यो से सलाह मशवरा कर छठी योजना का अन्तिम प्रारूप तैयार करने की अनुमति भी योजना आयोग को दे दी गई। तत्कालीन योजना मन्त्री नारायण दत्त तिवारी ने बताया कि योजना का अन्तिम प्रारूप राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष दिसम्बर १९८० से या जनवरी १९८१ मे रक्खा जायेगा। राष्ट्रीय विकास परिषद् की ३१ अगस्त १९८० की बैठक मे प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी ने अपने भाषण मे चेतावनी दी कि जनता सरकार ने जिन केन्द्रीय योजनाओ को राज्यो को सौंप दिया था, उनका क्रियान्वयन केन्द्र को वापस अपने हाथ मे लेना पड सकता है। इस सन्दर्भ मे श्रीमती गाँधी ने प्रेषण लाइनो के निर्माण, भू-सरक्षण

आदि परियोजनाओं का उल्लेख किया। वह चाहती थीं कि वनों का काटना बन्द किया जाये।

छठी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य

(१) अर्थव्यवस्था की संवृद्धि की दर में पर्याप्त वृद्धि, संसाधनों के उपयोग में दक्षता को संवर्धन और उन्नत उत्पादकता।

(२) आर्थिक और शिल्प-वैज्ञानिक आत्म निर्भरता को प्राप्त करने के लिए आधुनिकीकरण के प्रवतनों और गतियों को बढ़ाना।

(३) गरीबी और बेरोजगारी की स्थिति में उत्तरोत्तर कमी।

(४) ऊर्जा के देशीय समाधनों का तेजी से विकास, जिसमें ऊर्जा के उपभोग में संरक्षण और दक्षता पर उचित व्यय हो।

(५) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के जरिये आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से बाधाग्रस्त जनसंख्या के विशेष सन्दर्भ में सामान्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना। इस न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का समावेशन इस प्रकार से तैयार किया जाये जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि देश के सभी भाग एक निर्धारित अवधि के भीतर राष्ट्रीय दृष्टि से स्वीकृति मानक और स्तर प्राप्त कर लें।

(६) गरीबों के हित में सार्वजनिक नीतियों और सेवाओं के पुनर्वितरण आधार को बढ़ाना जिससे आय और सम्पत्ति की असमानताओं में कमी हो।

(७) विकास की गति में और शिल्प वैज्ञानिक लाभों के प्रसार में क्षेत्रीय असफलताओं में उत्तरोत्तर कमी।

(८) छोटे परिवार के मानक की स्वैच्छिक रूप से स्वीकृति के जरिये जनसंख्या की संवृद्धि को नियन्त्रित करने के लिए नीतियों को बढ़ावा देना।

(९) परिस्थितिकीय और पर्यावरणीय परिसम्पत्तियों के संरक्षण और सुधार को बढ़ावा देकर विकास के अल्पावधि और दीर्घावधि लक्ष्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करना।

(१०) उपयुक्त शिक्षा, संचार और संस्थागत कार्य नीतियों के जरिये विकास की प्रक्रिया में लोगों के सभी वर्गों की सक्रिय सहयोगिता को बढ़ावा देना।

सातवीं पंचवर्षीय योजना—

सातवीं पंचवर्षीय योजना में ११७९९ करोड़ से अधिक खर्च का अनुमान योजना आयोग ने लगाया है। यह अनुमान १९८८ तक पहिले तीन वर्ष के कार्य निष्पादन को देखते हुए लगाया गया है।

सातवीं योजना अवधि में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम पर प्रस्तावित ११ हजार ७९९ करोड़ रुपए से कहीं अधिक खर्च होने का अनुमान है।

इस कार्यक्रम का लक्ष्य आधारभूत सुविधायें और सेवायें जुटाकर गरीब जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना और विकास के मामले में क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करना है।

सातवीं योजना के पहले वर्ष में इस कार्यक्रम के लिए २०६४ २२ करोड़ रुपए आवंटित किये गये थे, जबकि १८४१ ४२ करोड़ रुपए खर्च हुए।

१९८६ ८७ में २२४१ ३३ करोड़ रुपए खर्च किये जाने थे जबकि २४०६ ९६ करोड़ रुपए खर्च होने का अनुमान है।

योजना आयोग के सूत्रों के अनुसार १९८७–८८ में इस कार्यक्रम पर ६६५.७५ करोड़ रुपए खर्च होंगे। सातवीं योजना अवधि के अन्तिम दो वर्षों में १९८८–८९ और १९८९–९० में भी खर्च अनुमान से अधिक होने की सम्भावना है।

इस तरह कुल खर्च ११७९९ करोड़ रुपए से अधिक हो ही जायेगा। सूत्रों ने बताया कि इस कार्यक्रम की व्यावहारिक प्रगति भी लक्ष्य से काफी निकट है।

पूरी योजना अवधि में छह से १४ वर्ष के दो करोड़ ५५ लाख ३० हजार बच्चों को औपचारिक शिक्षा के दायरे में लाने का लक्ष्य रखा गया था। पहले दो वर्ष में एक करोड़ आठ लाख बच्चे इस दायरे में लाये जा चुके हैं, जबकि १९८७–८८ में ५३ लाख बच्चे औपचारिक शिक्षा की परिधि में ले लिए जायेंगे।

सूत्रों ने बताया कि इस योजना अवधि के पहले दो वर्षों में एक करोड़ ४५ लाख ५० हजार प्रौढ़ों को अनौपचारिक शिक्षा की परिधि में लाया गया है, जबकि ८९ लाख प्रौढ़ १९८७–८८ में इसकी परिधि में आ गये होंगे। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना पर भी लक्ष्य के अनुरूप काम हो रहा है।

जहाँ तक ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल आपूर्ति का सवाल है १९८५–८६ में ४५ हजार २४८ गाँवों को पेयजल उपलब्ध कराया गया, लक्ष्य ३० हजार ६३७ गाँवों को पेयजल उपलब्ध करना था। अगले वर्ष ४८ हजार ३५० गाँवों को पेयजल उपलब्ध कराया जायेगा, जबकि लक्ष्य ३५ हजार ९३० गाँवों का था।

विद्युतीकरण के मामले में १९८५–८६ मे उपलब्धि लक्ष्य का १०२ प्रतिशत रही, जबकि अगले वर्ष सौ प्रतिशत रहने का अनुमान है।

१९८५–८६ में लक्ष्य का ९१ प्रतिशत पम्प सैट लगाये गये, जबकि अगले वर्ष १२० प्रतिशत लक्ष्य हासिल कर लिया जायेगा।

मकानों के लिए भूमि देने और मकान बनवाने में सहायता देने के मामले में भी उपलब्धियाँ लक्ष्य से अधिक रही हैं।

सातवीं योजना की सफल समाप्ति एवं पूर्ण उपलब्धियों के पश्चात् भारत सरकार आठवीं पंचवर्षीय योजना के स्वरूप निर्माण मे सक्रिय होगी। आठवीं पंचवर्षीय योजना तत्कालीन प्रधान मन्त्री राजीव गांधी की राष्ट्रोत्थान की अदम्य इच्छाओं के अनुरूप होगी। इसी सन्दर्भ में श्री राजीव गाँधी ने ३ मई १९८८ में जयपुर के सवाई मानसिंह स्टेडियम में कांग्रेस कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए कहा था कि—

अब से योजना स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित होगी तथा आठवीं योजना की खाका दिल्ली के दफ्तरों के बजाय गाँवों की चौपालों मे बनेगा।

गाँधी ने यहाँ सवाई मानसिंह स्टेडियम में कांग्रेस कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि इस उद्देश्य से देश को १६ कृषि जलवायु क्षेत्रों में बाँटा गया है।

प्रधान मन्त्री ने कहा कि उन्होंने योजना आयोग से आठवीं योजना गांव के स्तर से तैयार करने को कहा है ताकि योजना का लाभ गाँवों तक पहुँच सके।

उन्होंने कहा कि हम अपनी योजना की प्राथमिकताओं में गाँवों की उपेक्षा करते रहे हैं जिससे विकास में समानता नहीं आई।

बाद में कलक्टरों और जिला मजिस्ट्रेटों के तीन दिवसीय कार्यशाला के समापन सत्र को सम्बोधित करते हुए गाँधी ने जिला की योजना का एक नया स्वरूप विकसित करने की आवश्यकता पर जोर दिया :

गाँधी ने कहा कि निचले स्तरों पर लोकतान्त्रिक ढाँचे को मजबूत करने के लिए विविध ऐजेन्सियों को संगम करने की जरूरत है। उन्होंने खेद व्यक्त किया कि निचले स्तरों पर लोकतन्त्र बुरी तरह से कमजोर हुआ है।

गाँधी ने कहा कि हमें जिला योजना को विकसित करना है लेकिन यह काम कौन करेगा, उन्होंने कलक्टरों से कहा कि यह काम उन्हें ही करना है।

गाँधी ने कहा कि क्रियान्वयन के लिए जिला योजना का कोई आदर्श स्वरूप सामने नहीं आया है। उन्होंने कहा कि सांसदों और विधायकों जैसे निर्वाचित प्रतिनिधियों को सक्रिय रूप से शामिल कर अच्छी योजना बनाई जा सकती है।

आठवीं पञ्चवर्षीय योजना—

नवीं लोक सभा के गठन के बाद नयी केन्द्र सरकार ने आठवीं पञ्चवर्षीय योजना के पूर्व निर्धारित प्रारूप को स्थगित करके योजना आयोग को नया प्रारूप तैयार करने का आदेश दिया था। मई १९९० में योजना आयोग ने आठवीं योजना का प्रारूप तैयार कर लिया, जिसका अनुमोदन केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद ने भी कर दिया है। कुछ सप्ताह के अन्दर ही राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में इस प्रारूप को अन्तिम रूप दे दिया जायेगा।

योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री रामकृष्ण हेगड़े ने घोषणा की कि आठवीं योजना में आँकड़ों की अपेक्षा लक्ष्यों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जायेगा। आठवीं योजना के प्रारूप की प्रमुख बातें निम्नवत हैं—

१ वार्षिक विकास दर ५५ प्रतिशत प्रस्तावित की गई है। २ आगामी दशक में रोजगार वृद्धि की दर ३ प्रतिशत होगी। ३ सकल घरेलू उत्पाद का २२ प्रतिशत तक घरेलू बचत रखने का प्रयास किया जायेगा। ४ विदेशी संसाधनों की प्राप्ति सकल घरेलू बचत का १५ प्रतिशत होने का अनुमान है। ५ विदेशी व्यापार में १२ प्रतिशत तक की वृद्धि की जायेगी। ६ कृषि एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर संसाधनों का ५० प्रतिशत तक व्यय किया जायेगा। ७ भारतीय उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार लाया जायेगा ताकि वे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा में टिक सकें। ८ निजी उद्योगों के क्षेत्र का विस्तृत किया जायेगा। ९ उपसंरचनात्मक सेवाओं की कार्यकुशलता में वृद्धि की जायेगी। १० कठोर आर्थिक अनुशासन स्थापित किया जायेगा। ११ सार्वजनिक क्षेत्र के ऐसे उपक्रम हटाये जायेंगे, जो निरन्तर घाटा दे रहे हैं। १२ शिक्षा नीति में सुधार करके १९९० के दशक में निरक्षरता दूर की जायेगी। १३ स्वास्थ्य कल्याण योजनाओं का विकसित किया जायगा। १४ विकेन्द्रित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से सबको भोजन उपलब्ध कराया जायगा। १५ परिवार कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत महिलाओं के स्तर को ऊँचा उठाने, शिशु मृत्यु दर कम करने व महिलाओं की शिक्षा में विस्तार करने पर भी बल दिया जायगा न कि मात्र गर्भ निरोधक तरीकों के प्रचार व उपयोग पर। १६ औद्योगिक नीति का सरलीकरण होगा और उस पर नौकरशाही का नियन्त्रण कम किया जायगा।

राष्ट्र निर्माण के लिए इन योजनाओं का सफल क्रियान्वयन बड़ा आवश्यक

है। राष्ट्रवासियों को दूरदर्शिता से काम लेना चाहिये और अधिक से अधिक साधन जुटाने के प्रयत्न करने चाहियें। सम्भव है कि इस समय कुछ योजनाओं में कमी की कटौती करनी पड़े।

४०. नवीन २० सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम

उसके वादों का हमको भरोसा तो है,
'द्रोह' खुद ही न चाहें, तो वे क्या करें।

भारत में 'इन्दिरा युग' का सूर्योदय देश के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इस महान् सूर्योदय ने शासन और शासन तन्त्र की चिर निद्रा को भयंकर कार्य पथ पर आरुढ़ होने के लिये प्रेरित ही नही किया अपितु जागरण और कर्मण्यता के पवित्र मन्त्रो से भारत का जन-जीवन आलोकित हो उठा। श्रीमती गाँधी के हृदय में भारत की निरीह जनता की आपदाओं और विपत्तियो को दूर करने की अटूट भावना है। उनके विवेकपूर्ण दृढ़ निश्चयो ने समाजवाद की पृष्ठ-भूमि में भारत के चित्र को ही बदल दिया। वे 'करनी' मे विश्वास करती हैं, 'कथनी' में नही। 'इन्दिरा युग से पूर्व कितने वायदे हुये और कितने पूरे हुये और इन्दिरा युग में कितने आश्वासन किये गये और कितने अपूर्ण रहे, ये जनता की दृष्टि से छिपा हुआ नही है। निश्चय ही प्रधानमन्त्री श्रीमती गाँधी में अदम्य साहस और अपूर्व कार्यक्षमता है, जिनका लोहा विरोधी और विदेशी दोनों ही मानते हैं। देश मे हरित क्रान्ति, बैंको का राष्ट्रीयकरण, जीवन बीमा निगम का राष्ट्रीकरण, राजे महाराजो के प्रीविपर्स की समाप्ति, आई० सी० एस० अफसरो के विशेषाधिकारों की समाप्ति, अनाज के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण आदि कार्य महान् राष्ट्रनायक के रूप मे इन्दिरा जी की आज भी गौरव-गाथा गा रहे हैं। समाजवाद, धर्म निरपेक्षता और लोकतन्त्र के जागरूक प्रहरी के रूप मे श्रीमती गाँधी द्वारा घोषित २० सूत्री कार्यक्रम देश में व्याप्त निर्धनता, असमानता, अकर्मण्यता के समूलोन्मूलन की दिशा मे ठोस और प्रभावशाली कदम है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी का २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम

(१) प्रस्तावना।
(२) आपात स्थिति के कारण।
(३) घोषित २० सूत्री कार्यक्रम।
(४) देश की प्रतिक्रिया।
(५) २० सूत्री कार्यक्रम के लाभ।
(६) उपसंहार।

सहस्राब्दियो पूर्व श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता के माध्यम से कर्मयोग का उपदेश उस समय दिया था, जब अर्जुन मे कर्म के प्रति उदासीनता आ गई थी। कृष्ण ने कहा था—

कर्मणैव हि संसिद्धमास्थिग्ता जनकादयः।
लोक-संग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुं महंसि॥

इसलिये "योगस्थ. कुरु कर्माणि, सग त्यक्त्वा धनंजय।" उसी कर्मयोग का उपदेश आज श्रीमती गाँधी ने देश की ६८ करोड़ जनता को अपने २० सूत्री कार्यक्रम के माध्यम से दिया है। श्रीमती गाँधी ने देश की जनता को कठोर परिश्रम, दृढ़ निश्चय, दूर दृष्टि और आत्म-विश्वास का जो अमोघ सन्देश दिया है, निश्चय ही जनता अपने संकटो से उद्धार पा सकेगी। देश की जनता अडिग चट्टान की भाँति

आज भी प्रधानमन्त्री के साथ है। प्रधानमन्त्री ने सदैव जनता को सुना है, समझा है और उनकी करुण कहानियो से द्रवित हुई हैं। इतना अवश्य है कि घटनाओ और स्थितियो को उन तक पहुँचने मे समय लगता है।

प्रधानमन्त्री की प्रगतिशील नीतियो और समाजवादी निर्णयो का जनता ने सदैव हृदय खोलकर समर्थन किया परन्तु साम्प्रदायिक, अराजकतावादी एव रूढिवादी तत्वों ने सदैव विरोध किया और विघ्न उपस्थित किये परन्तु इन्दिरा जी अपने प्रगतिशील मार्ग पर हिमालय की भाँति अडिग रही। १६७४ और १६७५ के प्रारम्भ मे देश की अखण्डता, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र को छिन्न-भिन्न करने के लिये विरोधी तत्व हिंसा, हड़ताल, घेराव, बन्द आदि को भड़काकर देश मे अराजकता की स्थिति उत्पन्न करने के लिये प्रयत्नशील थे जिससे देश की प्रगति मे भयानक बाधा उत्पन्न होने का भय था। प्रधानमन्त्री ने ही स्थिति का मूल्याकन करते हुये उसका सही उपाय ढूढ़ निकाला। वह थी आपातकालीन स्थिति की घोषणा।

२६ जून १६७५ को देश मे आपात स्थिति की घोषणा कर दी गई। २७ जून को प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने राष्ट्र के नाम अपने सन्देश मे देश की जनता से एकता और अनुशासन की अपील करते हुये आशा व्यक्त की कि देश की जनता इस समय सरकार का साथ देगी, जिससे देश मजबूत बन सके और तेजी से प्रगति हो सके। उन्होंने अपने २० सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की जिसमे उन्होंने अग्रलिखित बातो का उल्लेख किया—

(१) आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओ के दामो मे गिरावट की प्रक्रिया को बनाये रखना, उत्पादन व उत्पादकता की गति को तेज बनाये रखना, आवश्यक उपभोक्ता पदार्थों की वसूली व वितरण व्यवस्था को प्रभावशाली बनाना तथा सरकारी खर्च मे कमी करना।

(२) कृषि भूमि की सीमाबन्दी को तीव्रता से लागू करना, अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनो के बीच बाँटना तथा भूमि सम्बन्धी प्रलेख तैयार करना।

(३) भूमिहीनो तथा समाज के कमजोर वर्गों के लिये आवासीय भूमि का शीघ्र आवटन करना।

(४) मजदूरो से जबरन काम करने को तुरन्त गैर कानूनी करार कर दिया जायेगा।

(५) ग्रामीणो के कर्जे की माफी, भूमिहीन मजदूरो व दस्तकारो से कर्जे की वसूली पर रोक लगाने के लिये कानून बनाया जायेगा।

(६) खेतिहर मजदूरो के निम्नतम मजदूरी सम्बन्धी कानूनो में सशोधन होंगे।

(७) पचास लाख हैक्टेयर भूमि मे सिचाई की व्यवस्था की जायेगी। भूगर्भगत जल का अधिकाधिक उपयोग करने के लिये राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाये जायेंगे।

(८) बिजली कार्यक्रमो मे तेजी लाई जायेगी, थर्मल स्टेशनो का केन्द्रीय नियन्त्रण।

(६) हथकरघा क्षेत्र के लिये नई विकास योजनायें चालू की जायेंगी।

(१०) नियन्त्रित मूल्य पर बिकने वाले कपडे की क्वालिटी सुधारी जायेगी और इसके वितरण की उचित व्यवस्था की जायेगी।

(११) शहरी भूमि व शहर बसने योग्य भूमि का समाजीकरण, अतिरिक्त खाली भूमि के स्वामित्व तथा निर्माण क्षेत्रों की अधिकतम सीमा का निर्धारण।

(१२) वैभवपूर्ण शहरी सम्पत्ति के मूल्यांकन व कर की चोरी व गलत सूचना देने वालों के विरुद्ध सरकारी तौर पर मुकदमा चलाया जायेगा। इस कार्य के लिये विशेष दस्तों की नियुक्ति की जायेगी।

(१३) तस्करों की सम्पत्ति को जब्त करने के लिये विशेष कानून बनाया जायेगा। उनकी अपने नाम की तथा बेनामी सम्पत्ति भी जब्त की जायेगी।

(१४) पूंजी निवेश प्रक्रिया को उदार बनाया जायेगा, लेकिन आयात लाइसैंस का दुरुपयोग करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही की जायेगी।

(१५) उद्योगों में कर्मचारियों के योगदान तथा उत्पादन कार्यक्रम सम्बन्धी योजनायें शुरू की जायेगी।

(१६) सड़क परिवहन के लिये राष्ट्रीय परिवहन योजना शुरू की जायेगी।

(१७) आयकर में छूट सीमा ६ हजार रुपये से बढ़ाकर ८ हजार कर दी जायेगी।

(१) छात्रावासों में छात्रों के लिये नियन्त्रित मूल्यों पर आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था की जायेगी।

(१९) विद्यार्थियों के लिये नियन्त्रित मूल्य पर पुस्तकें व लेखन सामग्री उपलब्ध कराई जायेगी।

(२) नवीन प्रशिक्षण योजना का प्रारम्भ तथा रोजगार व प्रशिक्षण के अवसरों में वृद्धि की जायेगी तथा इस कार्य में कमजोर वर्गों को विशेष प्रमुखता दी जायेगी।

उपर्युक्त २० सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन से देश को समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ाये जाने के प्रयास किये गये। इसी उद्देश्य से संविधान का ४२वां संशोधन किया गया जिससे मौलिक अधिकारों की व्यवस्था, राज्यों के नीति-निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन में बाधक न हो सके। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सत्ता कांग्रेस) के इस अवधि के शासनकाल में तस्करी, जमाखोरी, करों की चोरी, अनुचित मुनाफाखोरी, जन-जीवन में व्याप्त अनुशासनहीनता की अकर्मंण्यता तथा भ्रष्टाचारिता, समाचार पत्रों के मनमानेपन, समाज के वर्गों के पिछड़ेपन जैसी सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध सुनियोजित अभियान चलाया गया तथा मूल्यों की गिरावट, करों की अधिकाधिक वसूली, "अनुशासनपूर्ण जन-जीवन, कर्मचारीतन्त्र की सक्रियता, नियन्त्रित समाचार प्रसारण, पिछड़े वर्गों के कल्याण आदि के रूप में उसके कुछ स्पष्ट परिणाम भी निकले किन्तु यह सब आपात् स्थिति की छाया में हुआ।

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम पर सभी राज्यों में बड़ी तेजी से अमल किया गया और इसमें समाज के अधिकांश लोगों को लाभ हुआ। आपातकालीन स्थिति की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि इस बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम को कहा जा सकता है।

मार्च १९७ के छठी लोकसभा के निर्वाचन में श्रीमती इन्दिरा गांधी का आकर्षण एवं निपुण नेतृत्व सफल सिद्ध न हो सका। यह देश का दुर्भाग्य ही था। परिणाम स्वरूप केन्द्र व राज्यों में जनता सरकारें स्थापित हुई, जिनमें पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या और पद-लोलुपता की आग निरन्तर सुलगती रही। परिणाम-स्वरूप लगभग

ढाई वर्ष के बाद ही केन्द्र में जनता सरकार का पतन हो गया। तत्कालीन राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी ने एक अध्यादेश द्वारा सातवीं लोकसभा के चुनावों की घोषणा कर दी। फलस्वरूप ३ जनवरी और ६ जनवरी, १९८० को सातवीं लोकसभा के लिये समस्त भारत में मतदान हुआ। भारत की जनता ने एक बार पुनः श्रीमती इन्दिरा गाँधी के साहसपूर्ण नेतृत्व में अपनी अडिग आस्था व्यक्त की और दो-तिहाई बहुमत के साथ प्रधानमन्त्री के रूप में उन्हें देश की बागडोर सौंप दी। गैर-कांग्रेसी केन्द्रीय सरकार के चौंतीस महीनों के शासन काल में २० सूत्री कार्यक्रम को बड़ा आघात पहुँचा। १४ जनवरी १९८०, ई० को श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रधानमन्त्री होते ही बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम की सार्थकता की ध्वनि देश के एक कोने से दूसरे कोने तक गूँज उठी। सातवीं लोक सभा के संयुक्त अधिवेशन में नई सरकार के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की झाँकी प्रस्तुत करते हुए २३ जनवरी १९८० को अपने अभिभाषण में उन्होंने कहा, "सरकार समाज के कमजोर वर्गों के लिये अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत है। गरीबों, भूमिहीन लोगों, दस्तकारों, हथकरघा बुनकरों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों और समाज के दूसरे पिछड़े वर्गों के लिये बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम वरदान सिद्ध हुआ था, उसमें नई जान डालकर अब उसे कारगर तरीके से काम में लाया जायेगा।"

सुसंगठित, सुव्यवस्थित और सुनियोजित राष्ट्र-निर्माण में प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम पहले भी वरदान सिद्ध हुआ था, अब भी राष्ट्र के आर्थिक उत्थान में उपरोक्त बीस सूत्र स्वर्णिम एवं श्रेयस्कर सिद्ध होंगे।

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने अपने एक भाषण में कहा है "उनका दल महिलाओं, बच्चों, अल्पसंख्यकों तथा पिछड़े वर्गों के लिए, उनकी दशा सुधारने के लिए अनेक योजनायें बना रहा है और बीस-सूत्री आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम के माध्यम से उनके उत्थान के लिए कृत संकल्प है।" कांग्रेस (इ०) की एक चुनाव सभा को सम्बोधित करते हुए प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा कि "मेरी सरकार २० सूत्री कार्यक्रम के जरिये गरीबी हटाने के कार्यक्रम को सर्वोच्च प्राथमिकता दे रही है। २० सूत्री कार्यक्रम कांग्रेस सरकार के प्रारम्भिक दिनों में ही शुरू किया गया था।[1]

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का नवीन २० सूत्री कार्यक्रम

१४ जनवरी, १९८२ को घोषित नया बीस सूत्रीय कार्यक्रम—सन् १९८० में श्रीमती इन्दिरा गाँधी पुनः सत्तारूढ़ हुईं। प्रधानमन्त्री बनने के उपरान्त उन्होंने अपने पुराने बीस सूत्रीय कार्यक्रम को क्रियान्वित करते हुए देश की बहुमुखी उन्नति की ओर लगातार ध्यान दिया। १४ जनवरी, १९८२ को प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने राष्ट्र को एक नया बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम तथा 'श्रमेव जयते' का नारा प्रदान किया।

अपनी नई सरकार की दूसरी वर्षगाँठ के अवसर पर आकाशवाणी से राष्ट्र के नाम अपने सन्देश में प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा कि हमारा राष्ट्रीय

1 हिन्दुस्तान (दैनिक), नई दिल्ली १७ मई १९८० ई०।

आदर्श वाक्य है, 'सत्यमेव जयते'। हमें अपने दैनिक जीवन में एक और आदर्श वाक्य—'ऋनेव जयते' अपनाना चाहिए।[1]

प्रधानमन्त्री ने कहा कि अनेक लक्ष्य पूरे किए गए हैं, जनता के आर्थिक और सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन हुए हैं और नई चुनौतियाँ सामने आई हैं। अतः यह जरूरी हो गया है कि २० सूत्रीय कार्यक्रम को, जो पहले पहल सन् १९७५ में शुरू किया गया था, फिर से परिमापित किया जाए। उन्होंने कहा कि नया आर्थिक कार्यक्रम काफी सोच-विचार और सरकार से बात-चीत करने के उपरान्त ही तैयार किया गया है।

श्रीमती गाँधी ने कहा कि सन् १९७५ में बीस सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा करते हुए भी मैंने कहा था कि इसमें किसी चमत्कार की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आज भी गरीबी को दूर करने में कठोर श्रम, अनुशासन और दिशा बोध ही जादू का काम कर सकता है।

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा घोषित नया बीस सूत्रीय कार्यक्रम इस प्रकार है—

(१) सिंचाई क्षमता में और वृद्धि की जाये। सूखी जमीन पर खेती से सम्बन्धित तकनीकी ज्ञान और खाद्यान्नों का विकास एवं प्रचार किया जाए।

(२) दलहन और तिलहन के उत्पादन में वृद्धि के लिए विशेष प्रयास किया जाए।

(३ समग्र ग्रामीण विकास एवम् राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को सुदृढ़ एवं अधिक विस्तृत किया जाए।

(४) कृषि योग्य भूमि की हदबन्दी लागू हो। तमाम प्रशासनिक और कानूनी अड़चनों को दूर कर जमीन से सम्बन्धित रिकार्डों को एकत्र कर पूरे तौर से दुरुस्त किया जाए तथा हदबन्दी की सीमा से अधिक जमीन का बँटवारा भूमिहीनों के बीच किया जाए।

(५) कृषि कार्य में लगे मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी दिलाने से सम्बन्धित कानूनों की समीक्षा की जाये और इसे असरदार तरीके से लागू किया जाये।

(६) बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास की व्यवस्था की जाए।

(७) **अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विकास के कार्यों में तेजी**—गरीबी की रेखा के पार ले जाने हेतु हरिजन परिवारों और आदिवासी परिवारों के लिए क्रमशः ४००० करोड़ और २००० करोड़ की धनराशि का प्रावधान किया गया।

(८) **ग्रामीण अंचल में पेय जल व्यवस्था**—प्राथमिकता के आधार पर आन्तरिक भागों में दूर दराज स्थित दो लाख इकतालीस हजार गाँवों में सुरक्षित पेय जल की व्यवस्था कराई जायेगी।

(९) **ग्रामीण परिवारों के लिए आवासीय भू-खण्ड**—ऐसे ग्रामीण परिवारों को ऐसे भू-खण्ड दिये जायें जिनके पास मकान बनाने को जमीन नहीं है। हरिजनों के

---

१ अब आयकर में छूट की सीमा ८ हजार से बढ़ाकर १५ हजार रुपये कर दी गई है।

४८ लाखपरिवारों को ऐसे भू खण्ड प्रदान करने की व्यवस्था है, साथ ही १ ३६ करोड़ परिवारों को निर्माण सुविधायें उपलब्ध करायी जायेंगी।

(१०) **पिछड़ वर्गों की उन्नति**—झुग्गी-झोपड़िया के वातावरण म सुधार किया जायेगा। आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के लिये गृह निर्माण कार्यक्रम को लागू किया जायेगा और जमीन की कीमतों मे अप्रत्याशित जो वृद्धि हुई है उसे रोकने के प्रयत्न किये जायेंगे।

(११) **बिजली**—ताप बिजली घरा म सुधार किये जायेंगे। बिजली उत्पादन की वाय प्रणाली मे सुधार किये जायेंगे। नई इकाइयो की शुरुआत मे जल्दी की जायेगी तथा विद्युत मण्डलो की प्रबंधकीय दक्षता मे वृद्धि की जायेगी।

(१२) **वनारोपण तथा वैकल्पिक ऊर्जा**—ग्रामो मे परती जमीन, सड़को, नहरो रेल पटरियो के किनारे, जलाऊ लकड़ी के वृक्षा के पौधो को लगाया जायेगा, किसानो को बीज मुफ्त दिये जायेंगे, इसी के अन्तगत १००० सामुदायिक बायो गैस प्लांट लगाने की योजना है।

(१३) **परिवार नियोजन**—छोटे परिवार वालो को सन्देश फैलाने के लिये स्वय सेवी एजेन्सियो का उपयोग किया जायेगा। स्वेच्छा के आधार पर परिवार नियोजन को लोकप्रिय बनाने के लिये सावजनिक अभियान चलाया जायेगा।

(१४) **स्वास्थ्य रक्षा**—सामान्य प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा को ज्यादा बढ़ाया जायेगा। ग्रामो मे प्रति १००० की जनसख्या पर १ प्रतिशत मार्गदर्शन, हर ५००० की आबादी के पीछे एक स्वास्थ्य उपकेन्द्र, हर ३०,००० की आबादी पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह भी योजना है कि कुष्ट रोग और अन्धेपन को नियन्त्रित करने के लिए प्रयास किये जायेंगे।

(१५) **महिला एव बाल कल्याण**—महिलाओं तथा बच्चों के कल्याण हेतु किये जाने वाले कार्यक्रमों मे तेजी लायी जायेगी। एक करोड़ ४० लाख बच्चो को रोगो से सुरक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। साठ लाख बच्चों को पूरक पोषक आहार दिया जायेगा।

(१६) **शिक्षा प्रसार**- २ से ११ वर्ष तक के सभी बच्चो के लिये निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी। वयस्को की निरक्षरता दूर की जायेगी। लक्ष्य यह है कि पिछड़े वर्ग के परिवारों के साथ करोड़ों बच्चों को अगले दस वर्षों मे स्कूली शिक्षा उपलब्ध कराई जायेगी।

(१७) **उचित मूल्य की दुकानें**—जीवन के लिये आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराने हेतु उचित दर पर वस्तुएं बेचने वाली दुकानें अधिकतम सख्या में खोली जायेंगी। मार्च सन् १९८१ तक ऐसी साढे तीन लाख दुकानें खोलने का लक्ष्य है। श्रमिक क्षेत्र मे उचित मूल्य की चलती फिरती दुकानें स्थापित की जायेंगी।

(१८) **उदार पूंजी निवेश**—औद्योगिक नीति को नये साँचे में ढाला जायेगा। पूंजी निवेश की प्रक्रिया को उदार बनाया जायेगा। शोध और विकास कार्यों को वैकल्पिक टैक्नोलोजी की ओर मोड़ा जायेगा। बीमार औद्योगिक इकाइयों को पुनर्जीवित किया जायेगा।

(१९) **काला धन विरोधी अभियान**—तस्करों जमाखोरों और करों की चोरी करने वालों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही की जायेगी। इसके लिये भ्रष्टाचार

विरोधी तन्त्र और खुफियातन्त्र को मजबूत किया जायेगा। तस्करों पर काबू पाने के लिये पड़ोसी देशों से भी सहायता ली जायेगी और द्विपक्षीय व्यवस्था की जायेगी।

(२०) सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की कार्य कुशलता में वृद्धि—सार्वजनिक उद्यमों के प्रबन्ध तन्त्र की व्यवस्थाओं को ठीक किया जाये। इसमें आधुनिक तकनीकें लागू की जायेंगी तथा प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी में वृद्धि की जायेगी।

निश्चय ही, प्रधानमन्त्री द्वारा घोषित नवीन २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम से भारतीय जनसमूह के जीवन में एक आशा की किरण फूट उठी है। लोगों के मन में जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का आश्वासन सम्यता और साकारता की परिधि में आकर बैठता जा रहा है। विगत वर्षों में हमने यद्यपि अनेकानेक उपलब्धियाँ प्राप्त की फिर भी सामान्य जनता तथा मजदूर और भूमिहीन किसान अधिक न उठ सके। सरकार ने अपने आश्वासनों और नीतियों को पूरा करने के लिये जब-जब पूर्ण निष्ठा के साथ तत्परता दिखाई, तभी-तभी निहित स्वार्थ वाले व्यक्ति तथा दुराग्रही राजनैतिक दलों ने मार्ग में विघ्न और बाधायें खड़ी करना प्रारम्भ कर दिया और कभी-कभी संवैधानिक निर्णयों ने उन्हें पूरा करने से रोक दिया। आपातकालीन स्थिति के लागू होने के बाद सभी दिशाओं में सरकार का कार्य पूर्णरूपेण प्रशस्त हुआ। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के विषय में जनता के हृदय में भी विश्वास जाग उठा है। निःसन्देह राष्ट्र निर्माण के इन सत्प्रयासों से राष्ट्रीय जन-जीवन फिर से हरा-भरा हो उठेगा। परन्तु प्रत्येक भारतीय को इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि कार्यक्रम या प्रधानमन्त्री की घोषणा स्वयं में कोई जादू नहीं है इनके लिये प्रत्येक नागरिक को अनुशासन में रहकर निष्ठापूर्वक कड़ा परिश्रम करना है। जनता को श्रम और अध्यवसाय का मन्त्र देते हुए प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अपने आर्थिक कार्यक्रमों की घोषणा में ही कहा था—

"जनता को कोई नाटकीय परिणामों और जादुई हल की आशा नहीं करनी चाहिये। गरीबी हटाने का एक जादू है और वह कठोर परिश्रम, स्पष्ट कल्पना, मजबूत इरादा और कठोर अनुशासन। हमें अपने साथी नागरिकों के लिये अधिक से अधिक लाभ का काम करना चाहिये, केवल अपने लिये नहीं।"

सुसंगठित, सुव्यवस्थित और सुनियोजित राष्ट्र-निर्माण में श्रीमती गांधी का २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम पहिले भी वरदान सिद्ध हुआ था और आज भी राष्ट्र के आर्थिक उत्थान में ये २० सूत्र स्वर्णिम एवं श्रेयस्कर सिद्ध होंगे।

वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी की समस्त नीतियाँ श्रीमती इन्दिरा गांधी के २० सूत्री कार्यक्रम पर निर्धारित रहीं। १९८९ में पदारूढ़ नयी सरकार के नेतृत्व में भी समस्त प्रदेशों में प्रदेश सरकारें बीस सूत्री कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये कटिबद्ध हैं। प्रत्येक जनपद का जिलाधिकारी एवं प्रत्येक मण्डल का मण्डलायुक्त बीस सूत्री कार्यक्रम की प्रगति एवं उपलब्धियों पर अधीनस्थ अधिकारियों की मासिक मीटिंग ले रहे हैं। मण्डलायुक्तों की मीटिंग सम्बन्धित मन्त्री एवं मुख्यमन्त्री लेते हैं जिससे प्रगति एवं उपलब्धियों का सिंहावलोकन हो सके।

निश्चित ही भारतीयों की गरीबी उन्मूलन की दिशा में इस बीस सूत्री कार्यक्रम से पर्याप्त लाभ हुआ है। भविष्य में भी इस बीस सूत्री कल्याणकारी कार्यक्रम से भारत की जनता का उत्थान होगा।

४१ इन्दिरा गाँधी का बलिदान

सन् १९७५ मे भारत के अन्दर आपातकाल की घोषणा की गई थी। उस समय प्रधान मन्त्री के नाते श्रीमती इन्दिरा गाँधी का काफी विरोध हुआ था। प्रजातन्त्र के लिए आपातकाल की घोषणा उचित नहीं थी। परिस्थिति ऐसी बनी कि प्रधान मन्त्री को आपातकाल की १९७७ मे समाप्ति की घोषणा करनी पडी और लोकसभा के चुनाव मे श्रीमती इन्दिरा गाँधी को विजय नही मिली किन्तु १९८० मे पुन चुनाव हुए और श्रीमती इन्दिरा गाँधी और उनकी पार्टी कांग्रेस (आई) को जबर्दस्त बहुमत मिला और पुन देश का प्रजातन्त्र अपने मार्ग से विकास की ओर चल पडा। इसी मध्य पजाब मे सिक्खो ने अपनी कुछ माँगो को लेकर एक आन्दोलन खडा कर दिया जिसने आगे चलकर भयकर रूप धारण कर लिया। उग्रवादी औ आतकवादियो ने आधुनिक शस्त्रास्त्र एकत्र किये तथा निर्दोष लोगो की हत्या करनी शुरू कर दी। दैनिक पत्र 'पजाब केसरी' के लाला जगत नारायण जैसे निर्भीक पत्रकार की हत्या की गई। उनके पुत्र की भी हत्या की गई और उग्रवादियो के नेता के रूप मे सन्त भिण्डर वाले ने अमृतसर के पवित्र मन्दिर को इस आतकवाद का सचालन केन्द्र बनाया और उसे एक युद्ध शिविर के रूप मे परिवर्तित कर दिया। आतकवाद का दौर इतना भयानक हो गया कि बसो, रेलो, मार्गों और घरो पर उग्रवादियो द्वारा बडे पैमाने पर हत्याए की जाने लगी। पजाब धधकता ज्वालामुखी बन गया। जनजीवन असुरक्षित हो गया। व्यापार, उद्योग और कृषि का विकास रुक गया। पजाब अशान्त क्षेत्र बन गया और इन आतकवादियो ने देश के अन्दर तथा विदेशो मे भी भारत सरकार के विरुद्ध आन्दोलन चलाकर सरकार के समक्ष एक भयकर समस्या उत्पन्न कर दी।

रूप रेखा

१ प्रस्तावना।
२ हत्या से कुछ समय पूर्व।
३ हत्या की परिस्थितियाँ।
४ इन्दिरा गाँधी की महानता।
५ इन्दिरा गाँधी का बलिदान।
६ उपसहार।

स्थिति इतनी बिगडती गई कि कही भारत खण्डित न हो जाये और देश में ग्रह युद्ध न छिड जाये, इस आशका के कारण तथा पजाब और शेष देश मे भी शान्ति तथा कानून की व्यवस्था बनाये रखने के लिए 'ब्ल्यू स्टार' आप्रेशन के नाम से प्रधानमन्त्री को उग्रवादियो और आतकवादियो के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही का आदेश देना पडा और आतकवादियो के तानाशाह नेता सन्त भिण्डर वाले ने निराश होकर आत्म हत्या कर ली। कुछ का मत यह है कि वे बब्बर खालसा के एक युवक की गोली का निशाना बने। अनेक सैनिक तथा उग्रवादी मारे गये। सिक्ख के अनेक नेता जिनमें शिरोमणी गुरुद्वारा समिति के अध्यक्ष सन्त हरचन्द सिंह लोंगवाल तथा अन्य प्रमुख नेता सरदार टोहरा, बादल आदि थे, बन्दी बनाये गये। इस घट

में पवित्र मन्दिर को भी क्षति पहुँची। अब सिक्खों के अनेक संगठनों के कुछ उग्रवादी युवक केन्द्र सरकार और मुख्यतः प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी के कट्टर विरोधी बन गये और प्रधान मन्त्री तथा उनके परिवार की हत्या का षड्यन्त्र रचने लगे। प्रधान मन्त्री सतर्क तो बहुत थी किन्तु उनके अपने सुरक्षादल के लोग भी गद्दार और बेवफा हो सकते हैं, ऐसा उन्होंने कभी भी सोचा न था। प्रधान मन्त्री की हत्या के प्रयत्न तो कई बार हुए किन्तु ये षड्यन्त्र विफल हो गये थे। पंजाब और उससे बाहर देश तथा विदेश में भी उग्रवादी षड्यन्त्रकारी सिक्ख धर्म और खालसा पन्थ के नाम पर निरन्तर घृणा और हिंसा का प्रचार कर रहे थे। प्रधान मन्त्री राजनैतिक वार्ता द्वारा ही समस्या का हल करना चाहती थीं किन्तु वार्ताएँ होती रहीं और दूरियाँ बढ़ती रहीं। ब्रिटेन, अमरीका और कनाडा में रहने वाले विघटनकारी कुछ सिक्खों ने भी भारत और उससे बाहर भी उग्रवादियों की सहायता अनेक रूपों में की और खालिस्तान के एक तथाकथित नेता जगजीत सिंह चौहान ने तो बी० बी० सी० को दिये गये साक्षात्कार में श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या का अल्टीमेटम दे दिया।

प्रधान मन्त्री की सुरक्षा की कठोर व्यवस्था होने के उपरान्त भी तथा रुद्रपुर (नैनीताल) में तैनात एक युवा गुप्तचर की इस रिपोर्ट के बाद भी कि प्रधान मन्त्री की अक्टूबर में हत्या करने की गहरी योजना बन रही है, स्वयं प्रधानमन्त्री ने अपने सुरक्षा दल के संदिग्ध व्यक्तियों पर भी अविश्वास नहीं किया। कारण उन्हें अहिंसा, धर्म निरपेक्षता, प्रजातांत्रिक भावना तथा समाजवाद पर गहरी आस्था थी। श्रीमती इन्दिरा गांधी केवल भारत की ही प्रधान मन्त्री नहीं थीं, वरन् १०० से ऊपर गुट निरपेक्ष देशों के संगठन की प्रमुख होने के कारण उनकी नेता भी थी। उन्होंने अपनी गरिमा के अनुरूप विश्व के राजनीतिक मंच पर भारत और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के महत्व को रेखांकित किया था। उन्होंने बताया कि राष्ट्रीय आन्दोलनों के समय से ही भारत को उन देशों के लोगों के लिए बोलना पड़ा जिनकी आवाज को सुना नहीं जाता था और भारत की यह आवाज अनेक शक्तिशाली देशों को अच्छी नहीं लगती थी। श्रीमती गांधी ने हमारी प्रजातांत्रिक और समाजवादी प्रतिबद्धता को किसी देश विशेष की शासन प्रणाली या मॉडल के अनुरूप मानने से इन्कार कर दिया था। वे कहा करती थीं, "धर्म-निरपेक्षता का अर्थ धर्म की उपेक्षा या उदासीनता अथवा अलगाव नहीं है। ठीक समाजवाद को भी हमने इसलिए चुना कि हमें अपने समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को ऊपर उठाना है और हमारा प्रजातन्त्र हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की परम्पराओं का विकास है, हमारी जीवन पद्धति है।" ११-१२ सितम्बर ८४ को एक मीटिंग के समय उन्होंने कहा था, "जीवन एक यात्रा है, हम जहाँ छोड़ देंगे, वहाँ से फिर कोई और वह यात्रा शुरू करेगा।" उपर्युक्त वाक्यों में इन्दिरा जी की महानता के दर्शन होते हैं। जब से उन्होंने होश सम्भाला था तभी से वे देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में जुट गई थीं। उनकी महानता का निर्माण दादा मोतीलाल नेहरू, पिता जवाहर लाल नेहरू, महात्मा गाँधी, माँ कमला

नेहरू और आनन्दमयी माँ (आध्यात्मिक प्रेरक शक्ति) के द्वारा हुआ था। वे नटखट 'इन्दु' से प्रियदर्शिनी इन्दिरा, ममता मयी माँ, देश की महान् प्रधानमन्त्री, साहसी महिला, निर्भीक प्रशासक और अभिनव सूझ-बूझ वाली एक ऐसी वीरांगना बन गई थी जिनको अनुपमेय कहा जा सकता है। कठिन से कठिन समस्याओं का त्वरित हल, निर्णय लेने की अचूक क्षमता की वे धनी थी। विश्व के इतने बड़े देश जिसे उपमहाद्वीप कहा जाता है तथा जिसमें विविधताओं का भण्डार है और जो देश एक हजार वर्षों तक गुलामी की पीड़ा को सहन करता रहा, उस देश की, उस देश के वासियों की वे लोकप्रिय प्रधानमन्त्री, एकमात्र नेता थी। दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र का शासन चलाने की अद्वितीय क्षमता उनके चरित्र का सहज गुण था। वे विश्व की सबसे अधिक सतर्क, सावधान, कुशल, निर्भीक, आत्मविश्वासी और किसी की पीड़ा को समझने वाली महिला थी। कठिनाइयों में उनकी तेजस्विता और चेतना अधिक प्रखर हो जाती थी। वे भारत की आत्मा थीं, लोकप्रिय नेता थी।

इन्दिरा जी के अन्तिम भाषण में उनकी महानता के दर्शन इन शब्दों में होते हैं, "अगर मैं राष्ट्र की सेवा करते-करते मर भी जाती हूँ तो मुझे इस पर नाज होगा। मुझे विश्वास है कि मेरे खून का हर कतरा इस राष्ट्र के विकास में योगदान देगा और उसे मजबूत एवं गतिशील बनायेगा।" मानो एक महान् व्यक्तित्व अपने बलिदान से भी देश की जड़ों को ही सींचना चाहता है। उन्होंने एक अवसर पर कहा था, "मुझे इस तथ्य पर पूर्ण विश्वास है कि इन्दिरा गाँधी रहे या न रहे भारतीय कभी भी कायर को अपना नेता नहीं बनायेंगे, भारतवासी किसी भी ऐसे व्यक्ति को नेता नहीं स्वीकार करेंगे जो भारत को समाजवाद की राह पर न ले चले।" इस महान हस्ती ने एक-एक क्षण मानो अपने को देश के लिए हवन करके ही जिया है। वे कहा करती थीं, "मैंने पूर्ण जीवन जी लिया है और जो भी देशहित में सर्वोत्तम कार्य मैं कर सकती थी किया है। इन्दिरा का एक व्यक्ति के रूप में महत्व नहीं है।" और यह सच है कि उनके व्यक्तित्व में देश बसता था।

कुछ घटनाओं से ऐसा लगता है कि उग्रवादी सिक्खों ने इन्दिरा गाँधी की हत्या का षड्यन्त्र बड़े गहरे से रचा था। प्रधानमन्त्री के सुरक्षा गार्डों में से कुछ को धर्मान्धता का विश्वास दिलाकर खरीदा गया था। इन्दिरा जी की हत्या में शामिल बेअन्तसिंह ने ३१ अक्टूबर ८४ से पूर्व भी दो बार इन्दिरा जी की हत्या का प्रयास किया था। दीपावली के पटाखों के शोर में भी इन्दिरा जी को बम से उड़ाने की योजना बनाई थी। एक बार एक प्राणघाती सिलेण्डर उग्रवादी तत्वों द्वारा प्रधानमन्त्री के शयन कक्ष में रखने की योजना भी बनी थी। सतवन्तसिंह और बेअन्तसिंह को भारत विरोधी शक्तियों के ऐजेन्टों ने प्रचुर धनराशि देकर खरीद लिया था। सतवन्तसिंह दिल्ली सशस्त्र पुलिस में सब इन्स्पेक्टर था। ३३ वर्षीय बेअन्तसिंह चण्डीगढ़ के पास [redacted] एक गाव का रहने वाला था जो १६७१ में इन्सपेक्टर के रूप में

भरती हुआ था और सतवन्तसिंह १६८२ मे सशस्त्र पुलिस में भरती हुआ था। बेअन्तसिंह नार्वे में भारतीय उच्चायुक्त हरमिन्दर सिंह का रिश्तेदार था। स्वर्ण मन्दिर मे सैनिक कार्यवाही के समय हरमिन्दर ने उच्चायुक्त पद से त्यागपत्र देकर नार्वे मे राजनीतिक शरण ली थी। बेअन्तसिंह प्रधानमन्त्री के सुरक्षा गार्डों में एक विश्वस्त इंस्पैक्टर माना जाता था। इसकी पत्नी भी षड्यन्त्र में शामिल थी। इसी के द्वारा बेअन्तसिंह को ६५ हजार डालर की अग्रिम धनराशि दी गई थी। गुरुद्वारे में पवित्र गुरुग्रन्थ के सम्मुख दोनो पुलिस अधिकारियो ने प्रधानमन्त्री की हत्या करने की शपथ उठाई थी। सन्तवन्त को हाल मे ही कमान्डो ट्रेनिङ्ग भी दी गई थी। वह उन मार्गो पर तैनात किया जाता था, जहाँ से प्रधानमन्त्री आती जाती थी। सतवन्त इन्दिरा गाँधी के बलिदान के दो दिन पूर्व १५ दिन के अवकाश से लौटा था और ३१ अक्टूबर को प्रधानमन्त्री के आवास पर सिक्योरिटी ड्यूटी पर तैनात था। बेअन्तसिंह पास की हैज की झाड़ियो मे स्टेनगन के साथ छिपा था। प्रातः ६-१५ पर जैसे ही प्रधानमन्त्री जो पहली रात को उड़ीसा के दौरे से लौटी थीं और एक भाषण मे कहा था, "मेरे खून की एक-एक बूंद देश के लिये काम आयेगी", सहज रूप से पैदल ही सफदरजंग से अकबर रोड स्थित बंगले के कार्यालय मे जा रही थी। तीन जवान सामने से तेजी से दौड़ते आये, जो झाड़ियो की ओर से आये थे और आते ही स्टेनगन से गोलियाँ बरसाने लगे। एक के बाद एक-एक करके १६ गोलियाँ दाग दी गई। एक गहरी वेदना की ध्वनि के साथ प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी उसी मार्ग पर गिर पड़ी। पीछे ए० के० धवनत था दूर पीछे टी० वी० की कैमरा टीम भी थी। किसी को कुछ भी समझ मे न आया। सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे। प्रधानमन्त्री के गिरने पर स्टेनगन आग उगलती रही और तीन राउन्ड खाली कर दिये गये। पहली गोली चलाते समय सतवन्त थोड़ा झिझका था तो बेअन्त ने गुर्रा कर कहा था कि यदि वह अपना काम पूरा नही करेगा तो मेरा रिवाल्वर तेरा काम तमाम कर देगा। बेअन्त अब सतवन्त को समाप्त करना चाहता था किन्तु सुरक्षा गार्डों की गोली से मारा गया और सतवन्त घायल हो गया। श्रीमती सोनिया समाचार सुनते ही बदहवास सी दौड़कर आई और शीघ्र ही प्रधानमन्त्री के रक्त-रंजित शरीर को आयुर्विज्ञान संस्थान के इन्टैन्सिव यूनिट कक्ष मे पहुंचाया गया, जहाँ देश के विख्यात डाक्टरो ने कई घंटे अथक प्रयास किया किन्तु वे प्रधानमन्त्री को न बचा सके और २-३० बजे सरकारी तौर पर प्रधानमन्त्री की मृत्यु की घोषणा कर दी गई।

इन्दिरा जी के पार्थिव शरीर को जनता के दर्शनो के लिए तीन मूर्ति भवन में तीन दिन तक रखा गया। लाखो स्त्री-पुरुषो-बालकों ने अश्रुपूरित नेत्रों से दिवंगत नेता के पार्थिव शरीर के दर्शन किए, उन्हें मौन श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। देश के कोने-कोने से नर-नारी अपने प्रिय नेता के अन्तिम दर्शनों के लिए दिल्ली की ओर दौड़ पड़े। जो नही होना चाहिये था वह हो गया। एक अभूतपूर्व नेता, देश का प्रिय नेता, भारतमाता की लाडली बेटी का इस देश की रक्षा-सम्मान और शान के लिए अनोखा बलिदान हो गया। तीन दिन के बाद उच्चतम सैनिक सम्मान

के साथ लाखो नर-नारियो के शान्त किन्तु शोक विह्वल जलूस के रूप मे इन्दिरा जी की शव यात्रा निकली। लगभग १०० देशों के प्रतिनिधि और राजनीतिक इस शोक यात्रा में सम्मिलित हुए। श्री राजीव गांधी ने दाहसस्कार के रूप मे माता को अन्तिम विदाई दी और एक चिरस्थायी मूक वेदना लेकर इन्दिरा जी के बताये कर्म-क्षेत्र में कूद पड़े। ●

४२ भोपाल गैस काण्ड : एक त्रासदी

यूनियन कार्बाइड का यह कारखाना जिससे २ और ३ दिसम्बर की रात्रि में जहरीली गैस रिसी थी, भोपाल में बरसिया रोड, काली परेड मे लगा है। प्रारम्भ में कारखाना महज बैटरिया बनाने और कीटनाशक फार्मुलेशन के लिए लगा था, वहीं कालान्तर में मिक जैसी भयकर विषाक्त गैसो का उत्पादन होने लगा। १९६९ में यह कारखाना इस गैस के उत्पादन हेतु नहीं वरन् इस गैस के सूत्रीकरण हेतु लगाने की योजना का अग था। मिक का पूरा नाम है मिथाइल आइसो साइनेट (M I C.) गैस। इस फैक्ट्री का स्वामी यूनियन कार्बाइड (इण्डिया) लिमिटिड था जिसे यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन अमेरिका ने आवश्यक तकनीकी और सयन्त्र दिये। १९७७ में इस कारखाने मे कार्बोमाइजेशन, ७८ में अल्फानेथपाल सयन्त्र और ८० में मिक सयन्त्रों की स्थापना हो गई और मिक जैसी विषाक्त गैस का उत्पादन होने लगा। अमरीका की बहु राष्ट्रीय कम्पनी के सहयोग से विदेशी मुद्रा कमाने के लोभ में पडकर इस कारखाने की स्थापना की स्वीकृति दी गई थी। इस कारखाने के चारों ओर १९७५ से ही जो आबादी तेजी से बसनी प्रारम्भ हुई कि यह कारखाना सघन आबादी के मध्य आ गया। यद्यपि प्रारम्भ में सरकार से लाइसैंस लेने की शर्तों में अल्फानेथपाल का उत्पादन करने की बात कही गई थी। आज तक जिसका उत्पादन नहीं किया गया उल्टे कम्पनी विदेशी मुद्रा फूक्कर इस नेथपाल को अमरीका से आयात करती है।

सन् १९७९ में भोपाल के प्रशासक एक० एन० बुच ने इस कारखाने को भोपाल से हटाने का नोटिस दिया था किन्तु इस कारखाने का गैस्ट हाउस सत्ता पक्ष के नेताओं के लिए मौज मस्ती का आरामगाह है, अत कारखाना न हटाकर बुच स हब को ही भोपाल से स्थानान्तरित करवा दिया गया था। इसी गैस के दुष्प्रभाव से २६ जनवरी १९८१ में एक मजदूर की मौत हो गई थी और ८२ मे २५ व्यक्ति इसी गैस के शिकार होकर मौत की नींद सो गये थे। मध्य प्रदेश की विधान सभा में विरोधी पक्ष ने इस कारखाने की घटना पर प्रश्न उठाया था किन्तु बात आई गई हो गई थी। भोपाल की श्यामली पहाडी पर मुख्य मन्त्री आवास के समीप कम्पनी का आलीशान गैस्ट हाउस है जिसमे भूतपूर्व महाराजा, सासद, केन्द्रीय, मन्त्री, आला अफसर और बडे बडे नेता ठहरने मे गर्व का अनुभव करते हैं और उनका आतिथ्य कम्पनी की ओर से होता है। अत मौत के दानव के रूप में प्रस्थापित यह कम्पनी यहाँ पर शोभायमान है। तत्कालीन महा प्रबन्धक सी० एम० राय ने अपनी दान वृत्ति और पहुच के बल पर कारखाने की ओर किसी की टेढी नजर न उठने दी। ये कीट-नाशक गैस कितनी भयकर होती है इसका उदाहरण है १९३० मे बल्जियम, ४६ में पनसिल्वानिया, ५२ में लन्दन में तथा ८३ मे लखनऊ में गैस रिसन से कई सौ लोग मूर्छित हो गये थे १९८४ में मैक्सिको मे गैस लीक होने की घटना से ४०० व्यक्ति मृत्यु के शिकार हुए थे। किन्तु भोपाल के हादसे ने इन उपर्युक्त सभी घटनाओं को पीछे छोड

दिया था। भोपाल के इस कारखाने में मिक गैस के तीन स्टोरेज टैंक हैं जिनमें से प्रत्येक टैंक की क्षमता ५० से ६० टन गैस की है। दुर्घटना के समय एक टैंक खाली था शेष दोनों में ४० तथा ३० टन मिक शेष थी। भूमिगत इन टैंकों के मध्य मिट्टी की मोटी पट्टी है जो सीमेंट-कंक्रीट से ढकी है। ये टैंक स्वचालित रक्षात्मक कवच से युक्त हैं।

उस दुर्घटना की रात एक टैंक में किसी यांत्रिक खराबी के कारण कुछ पानी रिस कर रुला गया और गैस के दबाव तथा ताप के कारण टंकी के फटने का भय उत्पन्न हो गया। हाइड्रोथार्मिक क्रिया के कारण कंक्रीट की सतह तड़कने लगी। विस्फोट और उसके प्रलय के भय ने अधिकारियों के हाथ-पांव फुला दिया। अतः गैस को लीक करने का निर्णय लिया गया जिससे विस्फोट के द्वारा होने वाले महा विनाश से भोपाल को बचाया जा सके। सम्भावना यह थी कि कास्टिक सोड़ा स्क्रबर में से गुजरने के कारण गैस का जहर निष्क्रिय हो जायेगा किन्तु स्क्रबर संयन्त्र ने काम ही नहीं किया। अतः यह मिथाइल आइसो साइनेट चिमनी के रास्ते बाहर निकाली जाने लगी। सर्द रात होने के कारण यह गैस ऊपर जाकर हवा में विसर्जित न होकर घने कोहरे के साथ मिलकर नीचे बैठ गई और मौत का ताण्डव शुरू हो गया। एक समाचार के अनुसार एक सप्ताह पूर्व से ही टैंकों की सुइयां गैस के ताप और दबाव की सूचना दे रही थीं किन्तु कम्पनी के अधिकारियों की लापरवाही बरकरार रही। अतः अब ऐसी दशा में जिसने भी रिसन को रोकने का प्रयत्न किया वही मृत्यु का शिकार हुआ। सुपरवाइजर मि० शकील भी घटना के शिकार हुए। गैस तेजी से छह फुट ऊपर लगे सुरक्षा कपाट को तोड़ती हुई १५० फुट ऊँचे वेंट गैस पाइप से निकलने लगी और एक घण्टे में टैंक खाली हो गया। जान लेवा गैस फैलने लगी। वायु का प्रवाह उत्तर-पूर्व की ओर था अतः जो टंकी से दक्षिण-पश्चिम की ओर भागे उन्हें कम हानि हुई किन्तु जो वायु की दिशा में स्टेशन की ओर तथा सडकों पर भागे वे रास्ते में ही अपने प्राण गवां बैठे, घबड़ाहट में खतरेका सायरन भी नहीं बजा। अतः उस रात्रि के ४-५ बजे के बीच जो सो रहे थे, वे सोते ही रह गये, जो आँखों में गैस की चुभन से जगे, वे भी कुछ समझ न सके तथा होहल्ला मचने पर जो घरों से निकलकर भागने लगे, वे आँखों से अन्धे हो जाने के कारण टकरा कर कहीं भी गिर पड़ते थे। पशु-पक्षियों की भी यही दशा थी। बंधे हुए पशु तो खूंटे पर ही तड़प-तड़प कर मर गये।

रूप-रेखा

१. प्रस्तावना।
२. मिथाइल गैस का कारखाना।
३. गैस काण्ड की घटना कैसे घटी ?
४. घटना का परिणाम क्या हुआ ?
५. त्रासदी क्यों ?
६. उपसंहार।

भोपाल गैस चैम्बर बन गया था। गैस की रिसन का समाचार सुनकर लोग पैदल और जिसके पास जो वाहन था उससे अपने प्राण बचाने के लिए अकेले या दुकेले भाग रहे थे। भीषण नरसंहार का दृश्य था। भोपाल की कई सड़कें मुर्दा घाटी बन गई थीं। आँखों में जलन सीने में बेचैनी और भयानक पीड़ा लिये स्त्री-पुरुष भाग रहे थे, बच्चे दम तोड़ रहे थे, पक्षी छटपटा रहे थे किन्तु जहरीली गैस अपने भयानक होने और मौत के पंजे बस्तियों को अपनी लपेट में कस रहे थे। तीन बजे रात्रि में छोला रोड, हमीदिया नगर, टी० टी० नगर, कोटरा सुलतानाबाद तक में गैस रिसने का समाचार पहुँचने लगा था। लोग घरों को खुला छोड़कर बेतहाशा भाग रहे थे।

शहर से बाहर जाने वाली सड़कों पर लोग नंगे पाँव दौड़ रहे थे। साइकिलें, स्कूटर, घोड़े-ताँगे, कारें और जीप दौड़ रही थीं। कोई किसी की सुनता न था। पुलिस मुख्यालय भी सूना पड़ा था। प्रातः ५ बजे तक रोते-भागते-चिल्लाते लोग टकरा रहे थे, गिर रहे थे, दौड़ रहे थे और शवों में बदलते जा रहे थे। ३ दिसम्बर से ६ दिसम्बर ८४ तक स्थिति यह रही कि श्मशान और कब्रिस्तान लाशों से पट गये। जलाना या दफनाना सम्भव ही नहीं हो रहा था। घरों और सड़कों पर भी शव पड़े थे। लगभग तीन हजार स्त्री-पुरुष बच्चे मौत की गोद में सो गये और पचास हजार स्त्री-पुरुष-बच्चे-घातक बीमारी लेकर आज भी मौत से संघर्ष कर रहे, जिन्दगी पाने के लिए प्रयत्नशील हैं। श्मशान में जलाने को लकड़ियाँ ही नहीं रहीं। लाशें बिना कफ़न और ताबूत हाथ-ठेलों, टैम्पों, वैनों और गाड़ियों में आ रही थीं। झोंपड़ियों में कोई शव उठाने वाला था ही नहीं और पशु-पक्षियों, बिल्ली-कुत्तों, चूहों के मुर्दा शरीर खुले में पड़े सड़ रहे थे। और चारों ओर दुर्गन्ध का साम्राज्य था। मोती लाल विज्ञान महाविद्यालय के तीन छात्र जो तीन दिन तक लाशें उठाकर यथा स्थान पहुँचाते रहे थे स्वयं मृत्यु के पास में जकड़े गये। भय तथा आतंक का ऐसा आलम था कि पुलिस कर्मी और सरकारी अधिकारी फण्ड, क्रेन और गाड़ियों के आने की ही प्रतीक्षा करते रहे। ऐसे संकट के समय अनेक स्वयं सेवी संस्थाओं जिनमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, आर्य समाज, विश्व हिन्दू परिषद् तथा विद्यार्थी परिषद् आदि के लोग अधिकांशतः थे वे आगे बढ़कर शवों को पहुँचाने, औषधि की व्यवस्था करने राहत कार्य करने, शिविर लगाने और खाने-पीने का प्रबन्ध करने में सरकारी अधिकारियों से पहले आगे बढ़कर कर्तव्य का पालन किया। मुख्य मन्त्री के पहुँचने और दो दिन बन्द चुनावी दौर के बीच से प्रधान मन्त्री श्री राजीव गाँधी के भोपाल पहुँचने पर सरकारी मशीनरी भी जुटी। छोला रोड पर स्थित एक राहत शिविर में सेवा कार्य में लगे एक स्वयं सेवी संस्था के कार्य कर्त्ता ने श्री राजीव गाँधी से शिकायत की, "न यहाँ पुलिस की व्यवस्था है, न इलाज की। तीन हजार से ज्यादा लोग मर गये हैं। न नेताओं को फुरसत है न सरकार को।" ६ दिसम्बर को गैस पीड़ितों ने मुख्य मन्त्री भवन पर प्रदर्शन किया क्योंकि सरकारी शिविरों में न तो उन्हें खाना नसीब हो रहा था और न मुआवजे की राशि का ईमानदारी से बँटवारा हो रहा था। कुछ अधिकारी एक हजार रुपये की रसीद पर हस्ताक्षर कराकर केवल १०० रुपये ही पकड़ा रहे थे। इस हादसे के सन्दर्भ में भोपाल के दो नागरिकों ने अमरीका में १५ अरब डालर के मुआवजे के लिए मुकदमा दायर कर दिया है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय में भी मृत व्यक्ति के परिवार को पाँच पाँच लाख रुपये देने के लिए भी दावा किया जा चुका है। सरकारी स्तर पर भी अमेरिका सरकार से राजनीतिक स्तर पर तथा वहाँ की सम्बन्धित कम्पनी से हर्जाने के तौर पर उचित मुआवजा लेने के प्रयत्न चल रहे हैं। केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार ने भी मृतकों रोगियों तथा बेसहारा को सहायता दी है।

रेलवे स्टेशन और बस अड्डे से दो तीन किलो मीटर दूर इस मिक कारखाने ने रात के गहरे सन्नाटे में भोपाल को एक भयानक त्रासदी में बदल दिया। उस रात कौन, कहाँ तथा किस दशा में मरा, कोई हिसाब नहीं। विषैली गैस का प्रकोप इतना भयंकर था बच्चे, बड़े बूढ़े ही नहीं, नवजात और असंख्य शिशु तक मारे गये। पेड़-पौधे तक झुलस गये। भय का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि १२ दिसम्बर को जब शेष गैस का निष्प्रभाव बनाकर छोड़ने की घोषणा हुई तो सरकार तथा कम्पनी के अधिकारियों और विशेषज्ञों के आश्वासन के उपरान्त भी गैस काण्ड की रात के समान ही दिन में लोग भोपाल छोड़कर भागने लगे। उन्हें गैस सम्बन्धी किसी भी घोषणा

पर विश्वास ही नहीं रहा। अमरीका की बहु राष्ट्रीय निगम का भोपाल स्थित यह कारखाना अब सील बन्द है। उसके वर्क्स मैनेजर मुकुन्द, असिस्टैन्ट राय चौधरी संयन्त्र अधीक्षक के० पी० शेटी, प्लांट सुपर वाइजर, प्लान्ट इन्चार्ज चौधरी आदि सभी हिरासत में हैं। अध्यक्ष केशव महेन्द्र तथा प्रबन्ध-संचालक वी० पी० गोखले भी बन्दी बना लिए गए हैं। यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन, अमरीका के अध्यक्ष वारेन एण्डरसन को उस रोज हिरासत में तो लिया था किन्तु छह घण्टे बाद रिहा कर दिया गया और सरकारी विमान से उन्हें अमरीका भेज दिया गया क्यों ? रहस्यमय है।

भोपाल के गैस पीड़ितों को सीधी आर्थिक राहत प्राप्त होने के मार्ग में दुर्भाग्य अथवा संयोग से कोई न कोई अड़चन आ ही जाती है।

पांच वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के कारण भोपाल के गैस प्रभावित छत्तीस वार्डों के पीडितों को सरकार द्वारा प्रदान की गई दो सौ रुपए प्रति माह की अंतरिम राहत के वितरण का कार्य अचानक २ जून, १९९० को बैंक कर्मचारियों के आन्दोलन के कारण रुक गया।

अखिल भारतीय बैंक अधिकारी परिसंघ के आह्वान पर गैस पीड़ित पहचान केन्द्रों पर पर्याप्त स्टाफ और सुरक्षा व्यवस्था की मांग को लेकर अधिकारी एक जून १९९० को पहचान केन्द्रों पर नहीं गये तथा बैंकों की इन शाखाओं मे आज से राहत राशि बितरण शुरू होना था वो नही हो सका।

गैस पीडितों की पहचान का काम अन्य तकनीकी दिक्कतों के कारण एक महीना विलम्ब से शुरू हुआ और पूरे गैस पीडितों की पहचान होने में लगभग दो मास का समय लगने की सम्भावना है। इसके बावजूद अनेक गैस पीडित संगठनों द्वारा राहत राशि के वितरण की प्रक्रिया को लेकर अनेक आपत्तियाँ की जा रही हैं।

इसके पूर्व भी चार बार भोपाल के गैस पीडितों को राहत राशि निश्चित तौर पर मिलते-मिलते मौके पर कई कानूनी अथवा प्रशासनिक अड़चन आने पर रुक चुकी है।

सबसे पहले दो वर्ष पूर्व भोपाल जिला अदालत द्वारा गैस पीडितों के हक में ३५० करोड रुपये बतौर अंतरिम राहत के बाँटने का फैसला सुनाये जाने से गैस पीड़ितो मे उम्मीद जागी थी। फिर जबलपुर उच्च न्यायालय द्वारा राशि घटाकर २५० करोड रुपये कर दिये जाने से गैस पीडित राहत हासिल होने की उम्मीद करने लगे थे।

बाद में यूनियन कार्बाइड द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में इस फैसले के विरुद्ध अपील के कारण मामला खटायी में पड गया। फिर उम्मीद थी कि एक दो माह में अंतरिम राहत मिल जायेगी किन्तु इसी बीच भारत सरकार और कार्बाइड के बीच ७१५ करोड रुपये की राशि पर समझौता हो जाने से एक बार फिर से गैस पीड़ित आशान्वित हो गये किन्तु नवम्बर १९८९ मे केन्द्र मे सरकार बदलने और कुछ गैस पीडित संगठनो द्वारा समझौते का विरोध करने मे समझौता राशि एवं फैसले के बारे में नया दृष्टिकोण बनने से मामला फिर से अधर मे लटक गया।

इसी बीच केन्द्र सरकार द्वारा गैस पीडितों के लिए ३६० करोड़ रुपये की राहत राशि दिये जाने से गैस पीड़ित फिर से राहत की प्रतीक्षा में दिन गिनने लगे। ढेरों तकनीकी अड़चनों के बाद जब दो जून १९९० से राहत राशि का वितरण शुरू होने का मौका आया तो बैंक कर्मचारियो के आन्दोलन से फिर से वे राहत राशि के वितरण से वंचित हो गये। परन्तु भारत सरकार निरन्तर राहत देने के लिए प्रयत्नशील है।●

१ आकाशवाणी

आज के युग से कुछ युग पूर्व जब लोग कहते थे कि राम लंका से सीता को लेकर पुष्पक विमान द्वारा कुछ ही क्षणों में अयोध्या पहुँच गए या संजय कुरुक्षेत्र के महाभारत का आँखों देखा हाल धृतराष्ट्र को दिल्ली में बैठे-बैठे बताते रहे थे, तो श्रोतागण आश्चर्य चकित हो जाते थे और बुद्धिजीवी प्राणी कपोल-कल्पित ठहरा देते थे। प्रत्यक्षवादियों के लिये इन कथाओं पर सहसा विश्वास कर लेना कठिन ही नहीं नितान्त असम्भव था। परन्तु आज आकाश में सञ्चरण करते हुए जहाजों को देखकर, रेडियो पर मास्को और अमेरिका के समाचार सुनकर, टेलीविजन पर दिल्ली में हुए नृत्य को देखकर आज बुद्धिजीवी मानव का मन इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि प्राचीन काल में अवश्य ही इस प्रकार के वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग होता रहा होगा, भले ही वह सर्वसाधारण के लिये आज की भाँति सुलभ न रहे हों। बीसवीं शताब्दी के विज्ञान ने विश्व को चमत्कृत करके विस्मय में डाल दिया है। विज्ञान की शक्ति को हाथ में लेकर आज का युयुत्सु मानव ईश्वर की शक्ति को चुनौती देने से नहीं चूकता।

आकाशवाणी

(१) प्रस्तावना।
(२) विज्ञान का उपयोग।
(३) आविष्कार।
(४) विश्वव्यापी प्रभाव।
(५) लाभ।
(६) भविष्य।
(७) उपसंहार।

ईश्वर की महिमा की तरह मानव की बुद्धि की भी आज के युग में कोई सीमा नहीं। वह जन्म से ही अपने जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिये अनवरत प्रयत्न करता रहा है। आज हमारे शरीर, मन तथा प्राणों को अनन्त सुविधायें प्राप्त हो रही हैं, ये सब मानव के उन्हीं अनवरत साधनों का फल हैं जिन्हे वह जन्म से ही अपनी बुद्धि के सहारे करता आया है। आज उसे स्वर्ग जाने की इच्छा नहीं है। वह इस पुण्य-भूमि को ही स्वर्ग मानने के प्रयत्नों में रत है। आज के मानव का जीवन सुखी, सरल और सरस है। आज वह एकाकीपन का अनुभव नहीं करता। उसका सम्बन्ध विश्व के समस्त प्राणियों से है। वह अपने दुःख में संसार भर की संवेदनायें सुनता है और दूसरों के दुःख में अपनी शुभकामनायें प्रकट करता है। विज्ञान के उपयोग ने आज के मनुष्य को उन्नति के शिखर पर आसीन कर दिया है। उसे आज विज्ञान की सर्वांगीण बहुमुखी प्रगति और उन्नति पर आश्चर्य नहीं है। उसके बहुत से आविष्कारों में से एक अद्भुत आविष्कार में आकाशवाणी है।

आज के विज्ञान की महान सफलता रेडियो और वायरलैस के आविष्कार में निहित है। पहले समाचार तार द्वारा भेजे जाते थे। बिजली के वेग के कारण समाचार कुछ ही सैकिण्डों में हजारों मील दूर पहुँच जाते थे। परन्तु इतनी दूर तक तार लगाना और उन्हें ठीक अवस्था में बनाय रखना कोई साधारण काम नहीं था। आँधी तूफानों में तार टूट जाते थे या उपद्रवी लोग तार काट देते थे। वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में यह बात खटकी कि ऐसा भी कोई उपाय होना चाहिये जिससे कि बिना तार की सहायता के भी विद्युत तरंगें एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजी जा सकें। इस सम्बन्ध में, भारतीय वैज्ञानिक डा० जगदीश चन्द्र बसु और पाश्चात्य

वैज्ञानिक मार्कोनी ने अनेक परीक्षण किये। रेडियो के महान आविष्कार का श्रेय इटली के मार्कोनी को है। इस महापुरुष ने अपने अथक प्रयासों के द्वारा रेडियो का आविष्कार करके मानव जाति का महान उपकार किया। मार्कोनी ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य की ध्वनि में भी लहरें हैं, वे आकाश में उसी प्रकार संचालित होती हैं जैसे शान्त सरोवर में पत्थर का टुकड़ा फेंकने से लहरें। उसने बिजली के यन्त्रों द्वारा उन ध्वनी लहरों को पकड़ने के कई प्रकार के प्रयोग किये। रेडियो भी उन प्रयोगों में से एक सफल प्रयोग है। बड़े-बड़े नगरों में ध्वनि फैलाने के केन्द्र होते हैं इन केन्द्रों से संगीत, वाद्य, समाचार आदि ध्वनियों को ध्वनि-प्रसारक यन्त्र द्वारा आकाश में फैलाया जाता है। रेडियो इन ध्वनि तरंगों को पकड़ लेता है। मार्कोनी ने रेडियो का आविष्कार सन १९२१ में किया। आकाशवाणी का केन्द्र सर्वप्रथम इंगलैण्ड में स्थापित हुआ। इंगलैण्ड से न्यूजीलैंड तक समाचार भेजकर उसने अपने महान आविष्कार की धाक सारे संसार में जमा दी। उत्तरोत्तर इसका विकास होता गया। आज हम अपनी इच्छानुसार कहीं का भी प्रोग्राम सुन सकते हैं। आधुनिक आविष्कारों में रेडियो का स्थान सर्वोच्च है।

रेडियो के आविष्कार ने मानव-समाज की अनेक प्रकार से सेवा की है। विश्व के सभी राष्ट्र आज एक दूसरे के निकट हैं, वे आपस में एक दूसरे के हर्ष व शोक में उल्लास और संवेदना प्रकट करते हैं। इस प्रकार, आज समस्त विश्व बन्धुत्व और एकात्मकता की पुनीत धारा में प्रवाहित हो रहा है।

देश-विदेश में घटित होने वाली घटनाओं को आज हम तत्क्षण ही घर बैठे सुन लेते हैं। पं० नेहरू ने अमेरिका और रूस की यात्रा करके जो आनन्द प्राप्त किये थे उन-आनन्दपूर्ण समाचारों को हमने उन्हीं क्षणों में अपने-अपने घरों में सुन लिया। आज हमारे लोकप्रिय नेता लोग बोलते दिल्ली में ही हैं पर सारा विश्व कान लगाकर सुनता है। यह सब चमत्कार-रेडियो का ही है।

व्याख्यान और समाचार आदि के साथ-साथ रेडियो से और भी बहुत लाभ हैं। रेडियो के द्वारा हम बड़े से बड़े उपदेशों को मनोरंजन के माध्यम जनता तक पहुँचा सकते हैं। प्रातः से संध्या तक जीविकोपार्जन के संघर्षों में व्यस्त मानव जब परिश्रान्त होकर शाम को घर आता है तब रेडियो का मधुर संगीत कुछ ही क्षणों में उसे नवस्फूर्ति प्रदान कर देता है। आज का रेडियो केवल मनोविनोद की ही वस्तु नहीं है अपितु उसमें शैक्षणिक, सांस्कृतिक साहित्यिक और अन्य धारायें भी प्रभावित होती हैं। अतः रेडियो मानव के हृदय को ही स्पर्श नहीं करता, बल्कि बुद्धि को सन्तुलित भोजन भी प्रदान करता है। मनुष्य के बौद्धिक विकास और मानसिक परिष्कार के लिये रेडियो महत्वपूर्ण सेवा कर रहा है। रेडियो से देहाती, साहित्यिक, फौजी, प्रहसन, आलोचना आदि सभी प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। जहाँ समाचारों के प्रसारण का प्रश्न है, अब ऐसी व्यवस्था कर दी गयी है कि दिन में कई बार समाचार प्रसारित किये जाते हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति जब उसे समय और सुविधा मिले, प्रमुख समाचार सुन सके। उच्च कोटि के साधक कलाकारों को आकाशवाणी से बहुत प्रोत्साहन मिलता है। ललित कलाओं के विकास में रेडियो ने महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। भिन्न-भिन्न रुचि के मनुष्य अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कार्यक्रम सुनते हैं। व्यापारियों के लिये बाजार भाव, किसानों के लिये खेती की बातें, मौसम का हाल और देहाती प्रोग्राम, स्त्रियों के लिये बहिनों के प्रोग्राम में

घरेलू काम धन्धे की बात, परिवार को उन्नतिशील बनाने के उपाय, परिवार नियोजन की समस्या और बच्चों के लिये बच्चों का कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। समय-समय पर योग्य विद्वानों की सामायिक एवं बहुचर्चित विषयों पर वार्तायें और गोष्ठियाँ प्रसारित की जाती हैं। इनसे सभी रेडियोधारी लाभ उठा सकते हैं। दिल्ली, जालन्धर, लखनऊ, वाराणसी, मथुरा, वृन्दावन, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, आदि भारत के प्रमुख नगरों में इस समय जितने भी ध्वनि प्रसारक केन्द्र कार्य कर रहे हैं, इन सबका नियन्त्रण दिल्ली आकाशवाणी केन्द्र से होता है।

रेडियो की सीमा यहीं समाप्त नहीं हो जाती, इसका एक और भी आश्चर्यजनक रूप हमारे सामने है, जो कि रेडियो के सफल भविष्य की ओर संकेत करता है और वह है टेलीविजन, जिसके द्वारा हम वक्ता की मुखाकृति को भी देख सकते हैं। टेलीविजन मूल्य की अधिकता के कारण सर्वसाधारण के लिये अभी सुलभ नहीं है। भविष्य में सम्भवतः इसका मूल्य अपेक्षाकृत कम हो जायेगा और सर्वसाधारण इससे अपना मनोविनोद कर सकेंगे।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि रेडियो के द्वारा विदेशों के नवीन समाचार, प्रसिद्ध महाकवियों की रचनायें, गीत-शिल्पियों के मधुर गीत, नये विज्ञान और सूचनायें, सुन्दर कहानियाँ और एकांकी नाटक, आदि का लाभ प्राप्त करते हैं। हम जिन मनोविनोदों का आनन्द प्राप्त करने के लिये हजारों रुपये व्यय करते थे या दूर स्थानों पर होने के कारण उनसे वंचित रह जाते थे, वे आज मार्कोनी की कृपा के कारण सुलभ हो गये हैं। आजकल सरकार ने गाँवों में भी रेडियो यन्त्र रखने की व्यवस्था कर दी है कि यदि प्रत्येक गाँव में एक भी रेडियो हो तो उससे ग्रामवासी नित्य नवीन समाचार सुन सकते हैं और ज्ञान की ज्ञातव्य बातों को जान सकते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की समृद्धि बढ़ाने के साथ-साथ लोगों में कला के प्रति भी अभिरुचि बढ़ रही है। मानव रुचि के परिष्कार में रेडियो भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। आशा है कि रेडियो नवीन भारत के निर्माण में शिक्षण के माध्यम की दृष्टि से तथा विशुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से पूर्ण सहयोग देता रहेगा। परन्तु अब कुछ दिनों से रेडियो में इतने भद्दे अश्लील, कुवासनापूर्ण गाने प्रसारित किये जाने लगे हैं जिनका प्रभाव आज के नवयुवकों व नवयुवतियों के मस्तिष्क पर अच्छा नहीं पड़ रहा, कहीं ऐसा न हो कि एक दिन यह सिनेमा की तरह पतन की ओर ले जाने वाली वस्तुओं में अग्रगण्य हो जावे। प्रसारण अधिकारियों को ध्यान देना चाहिये कि जहाँ गानों को घर के सभी सदस्य बहू, बेटी, लड़का सभी सुनते और आनन्द ले रहे हैं, और वहीं पिता और पुत्री बैठकर रेडियो का कुरुचि और वासना का दुर्गन्धपूर्ण गायन सुन रहे हैं, क्या यह उचित है? पिछले वर्षों से आकाशवाणी के कार्यक्रमों में सुधार आया है तथा समाज-कल्याणकारी कार्यक्रम प्रसारित किये जाने लगे हैं जिनसे ज्ञानवर्धन होता है। ●

२ वैज्ञानिक चमत्कार

एक युग था जब मानव, प्रकृति से भयभीत होकर उसकी अर्चना करता था। आज का युग है कि प्रकृति मानव की क्रीत-दासी बनी हुई है। यह सब विज्ञान की आशातीत सफलता और उसके आश्चर्यजनक चमत्कारों का ही परिणाम है। आज किसी राष्ट्र का पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न होना जनसंख्या पर आधारित नहीं है अपितु उस राष्ट्र में हुये वैज्ञानिक आविष्कारों और वहाँ हुई वैज्ञानिक प्रगति पर निर्भर

है। आज छोटे से छोटा राष्ट्र भी विज्ञान की विनाशकारिणी शक्तियों का आविष्कार करके संसार के अस्तित्व को समाप्त करने की धमकी दे देता है। विज्ञान के अदभुत चमत्कारों ने विश्व में क्रांति-सी उत्पन्न कर दी है। एक ओर विज्ञान की चरमोन्नति से विश्व समाप्त हो रहा है और दूसरी ओर, उसकी वरदायिनी शक्ति संसार के निवासियों को सुखी बनाती जा रही है। विज्ञान के चमत्कारों का ही प्रभाव है कि आज वह विश्व के प्रत्येक घर में किसी न किसी रूप में प्रवेश पा चुका है।

आज विज्ञान का युग है। मानव समस्त भौतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करके आज खिलखिलाकर हंस रहा है। इन भौतिक शक्तियों में से मानव ने वाष्प, विद्युत, गैस, ईथर और एटम जैसी शक्तियों पर विजय प्राप्त करके रेल, तार, मोटर, हवाई जहाज, रेडियो, टेलीविजन, पारदर्शक यन्त्र, एटम बम और हाइड्रोजन बम बना डाले हैं, और एक बार नहीं अनेक बार चन्द्रमा पर जाकर उसने घण्टों सैर की है, भ्रमण किया है उसको उलट-पुलट कर देखा है कि यह है क्या?

प्राचीन काल का मानव एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करता था। उसे अपनी यात्रा पूरी करने में महीनो लग जाते थे। वह या तो पैदल जाता था या बैलगाड़ी, ऊंट-गाड़ी और घोड़ा-गाड़ियों से अपने मन्तव्य स्थान तक पहुँच पाता था। परन्तु अब वह मोटर, साइकिल और हवाई जहाज द्वारा वर्षों की यात्रा एक दिन में तय कर लेता है। समुद्र के व्यवधान के कारण एक दूसरे देश के निकट नही आ पाता था, परन्तु इस युग के वैज्ञानिक ने समुद्र के वक्षस्थल पर भी विजय प्राप्त की और समुद्री जहाज का निर्माण किया। इस प्रकार देशों में पारस्परिक मैत्री और सदभावना स्थापित करने में विज्ञान ने बहुत बड़ा योगदान दिया है। इन द्रुतगामी यानों से मनुष्य के अमूल्य समय की ही बचत नहीं होती अपितु अकाल, बाढ़, युद्ध आदि दैवी आपत्तियों एवं व्यापार और व्यवसाय मे भी ये साधन बड़े सहायक सिद्ध होते हैं।

जो समाचार पुरातन काल मे सन्देश वाहकों द्वारा भेजे जाते थे और जिनके उत्तर के लिये महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, लेकिन आज के युग में आप घर बैठे ही तार द्वारा समाचार भेज सकते है, कुछ घण्टो मे ही उसका जवाब भी ले सकते हैं। इसी प्रकार टेलीफोन द्वारा भी आप पलग पर लेटे-लेटे ही अपने मित्रो, सम्बन्धियो तथा अफसरों से विचार-विनिमय कर सकते हैं टेलीविजन द्वारा तो आप साक्षात् देख भी सकते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक आविष्कारों ने समय पर भी विजय प्राप्त कर ली है।

मनोविनोद के साधनों को भी विज्ञान ने अत्यधिक समुन्नत कर दिया है। चलचित्र, रेडियो, टेलीविजन, वीडियो, ग्रामोफोन आदि यन्त्र इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी विज्ञान ने प्रशंसनीय कार्य किया है। अमेरिका मे तो टेलीविजन द्वारा शिक्षा भी दी जाने लगी है। शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर प्रणाली का प्रयोग भी दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। भारतवर्ष में भी रेडियो स्टेशनों द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी कार्य-क्रम प्रसारित किये जाते हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं की शिक्षा रेडियो से दी जाने लगी है, जैसे तमिल, बंगला, संस्कृत सभी तरह के ज्ञान और विषय आज विज्ञान की सहायता से पढ़ाये जाने लगे हैं। सर्वसाधारण के लिये अमूल्य ज्ञान की पुस्तकें छाप-छाप कर सुलभ की जा सकती हैं। आज शिक्षा का कोई अंग ऐसा नहीं, जिसका वैज्ञानिक रीति से अध्ययन न हो सकता हो।

वैज्ञानिक चमत्कार

(१) प्रस्तावना

(२) विज्ञान के चमत्कार।

(क) आवागमन के साधन के रूप में, (ख) समय पर विजय के रूप में, (ग) मनोविनोद के साधन के रूप में, (घ) शिक्षा के क्षेत्र में, (ङ) दैनिक व्यवहार में, (च) रोग निवारण में, (छ) परख नली में जन्मदाता के रूप में, (ज) युद्ध भूमि में, (झ) कृषि क्षेत्र में, (ञ) परखनली पौधों के उत्पादन के रूप में, (ट) ब्रह्माण्ड व अंतरिक्ष के क्षेत्र में।

(३) वैज्ञानिक चमत्कारों का प्रभाव—(अ) लाभप्रद, (आ) हानिप्रद।

(४) उपसंहार

हमारे नित्य प्रति के कार्यों में भी विज्ञान हमारी सहायता करता है। समय की गति नापने के लिये उसने हमें घड़ियाँ दी हैं अन्यथा सूरज और चन्द्र की आकाश में स्थिति से ही समय का अनुमान करना पड़ता, जैसे कि हमारे पूर्वज करते थे। सरकण्डे की कलम बनाते-बनाते चाकू से हथेलियाँ और उंगलियाँ कटतीं और कलम भी लिखते लिखते कई बार टूटती, मानव की इस असुविधा को उसने पेन का आविष्कार करके सरल बना दिया। आँखों के चश्मे कितने लाभकारी हैं, इसका अनुभव तो आप उनसे पूछिए जिनकी नेत्र ज्योति क्षीण हो चुकी है और जिनके जीवन का आधार चश्मा ही है। यह भी तो मानव को विज्ञान की ही एक अनुपम देन है। इसी तरह, स्त्री और पुरुषों की सौन्दर्य प्रसाधन की अनेक वस्तुयें, बनावट और सजावट के बहुतेरे उपकरण बिजली का प्रकाश, गर्मियों में पसीने को एकदम सुखा देने वाले बिजली के पंखे और शीतकाल में बर्फ से ठण्डे कमरे को गर्म करने वाले हीटर, धुएँ और फौंकनी के बिना भोजन बना देने वाले गैस के चूल्हे और पाँच मिनट में दाल-भात बनाकर तैयार कर देने वाले प्रेशर कुकर। ये सब मानव को विज्ञान की ही अमूल्य भेंट हैं, जिन्हें पाकर मानव आज फूला नहीं समाता और अपने को उन्नति की चरम सीमा पर समझता है।

रोग निवारण के रूप में विज्ञान ने मानव की बहुत सेवा की है, यद्यपि वह अभी मृत्यु पर विजय प्राप्त नहीं कर पाया, इसके लिये भी वैज्ञानिक अनवरत प्रयत्न कर रहे हैं, चाहे वे मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकें या न कर सकें।

परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि देश में पहले जितनी मृत्यु होती थीं वे अब कम हो गई हैं। विज्ञान ने ऐसे ऐसे नवीन यन्त्रों का आविष्कार किया है कि मानव की बुद्धि उन्हें देखकर चमत्कृत हो उठती है जैसे एक्स रे, जिससे आपके शरीर के भीतर का चित्र आसानी से खींचा जा सकता है। आज प्रातः से संध्या तक वैद्य लोग हाथ पर हाथ रखकर क्यों बैठे रहते हैं, इसका कारण विज्ञान की सार्वभौम उन्नति ही है। डाक्टरों के पास ऐसे इन्जेक्शन हैं जिनके द्वारा रोगी जाते समय हँसने लगता है विद्युत तरंगों से मनुष्यों के नाना प्रकार के रोगों का निवारण किया जा सकता है, यहाँ तक कि वैक्यूम ट्यूब द्वारा विद्युत तरंगें मानव के शरीर में भी प्रवेश कराई जा सकती हैं, रोगी के शरीर पर विद्युत का चुम्बकीय

असर हो सकता है। तीव्रतम विद्युत तरंगें कीटाणु सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा में भी विशेष उपयोगी सिद्ध हुई हैं। राजयक्ष्मा, दमा, चर्म रोग, अस्थि-रोग और हृदय रोग भी इस वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति द्वारा दूर किये जा चुके हैं। प्लेग, चेचक, हैजा जैसे रोगों के इन्जेक्शन लगाकर करोड़ों व्यक्तियों के जीवन की रक्षा करके उन्हें अकाल मृत्यु से बचाया जा चुका है। यह विज्ञान का ही चमत्कार है कि आज के युग में जिनके दाँत उखड़ चुके हैं, वे भी चना चबा लेते हैं और जिनकी टाँगें नहीं हैं वे भी पार्क में घूमकर सैर का आनन्द ले लेते हैं।

मृत्यु दर पर ही विज्ञान ने नियन्त्रण स्थापित नहीं किया अपितु "परखनली शिशु" के रूप में जन्म के विषय में भी अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। २५ जोलाई १९७९ को इंगलैंड के वैज्ञानिकों ने जैसे ही यह वैज्ञानिक चमत्कार दिखाया वैसे ही ३ अक्टूबर १९७९ को भारतीय वैज्ञानिकों ने भी कलकत्ता में 'परखनली शिशु' को जन्म प्रदान किया। कलकत्ते के मेडीकल कालेज के डॉ० मुखर्जी, गायनोलोजी के संयुक्त प्रोफेसर डॉ० सरोजकान्ति भट्टाचार्य तथा प्रोफेसर मुखर्जी की देखरेख में यह दुर्गा नाम की लड़की पैदा हुई। वहाँ के एक वैज्ञानिक डॉ० सुभाष मुखर्जी ने इस शिशु को संसार का ऐसा प्रथम शिशु बताया जो ५३ दिन तक 'डीप फ्रीज' में संसेचित डिम्ब अवस्था में रहने के बाद जन्मा।

युद्ध-क्षेत्र में विज्ञान ने क्या किया, यह बात किसी से छिपी नहीं है। आजकल तो प्रश्न यह होना चाहिये कि विज्ञान ने क्या नहीं किया ? धनुष-बाणों और तलवारों का युग तो कई शताब्दी पूर्व ही समाप्त हो चुका। बन्दूक, मशीनगन, स्टेनगन और टामीगन तथा टैंकों की धड़-धड़ करती हुई भयानक आवाजें मनुष्य के हृदय को हिलाने तथा कुछ ही क्षणों में उसकी जीवन लीला समाप्त करने में पर्याप्त चमत्कार दिखा चुकी हैं। साधारण बम, एटम बम तथा इसी प्रकार के अन्य विध्वंसकारी बमों का आविष्कार विज्ञान की ही सफल कहानी सुना रहे हैं। राडार तथा अन्य मारक यन्त्रों से ही नहीं, अपितु और कई प्रकार से जैसे—सेनाधिकारियों के एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने, सैनिक सहायता भेजने, शत्रु-सैन्य निरीक्षण करने आदि कई प्रकार के अन्य कार्यों के रूप में भी विज्ञान ने युद्ध भूमि पर मानव की सेवा की है।

कृषि-उत्पादन-क्षेत्र में विज्ञान की अमूल्य सेवायें मानव को अनन्त काल तक चिरस्मरणीय रहेंगी। जो किसान धूप-तप में प्रातः से संध्या तक हल हाथ में लिये बैलों को पीटता हुआ थक जाता था और अपने भाग्य की दुर्दशा पर किसी वृक्ष की छाया में बैठकर पश्चाताप करता था, आज वह ट्रैक्टरों की छाती पर बैठा हँसता दिखाई पड़ रहा है। अन्न के अधिकाधिक उत्पादन में विशेष सहायक खाद की अनेक किस्में आज विज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रही हैं। कृषि सम्बन्धी और भी अनेक प्रकार के नवीन यन्त्र बाजारों से खरीदकर किसान आज सुख और शान्ति का श्वांस ले रहा है। कृषि के उत्पादन में ही नहीं, अपितु अन्य उत्पादनों, जैसे—सागर में से मोती निकालने, पर्वतीय वनों से अनेक प्रकार की लकड़ी लाने, खानों से सोना चाँदी व कोयला आदि निकालने, मिलों में वस्त्रोत्पादन आदि में भी नवीन यन्त्रों के रूप में विज्ञान निरन्तर मानव की सेवा में तल्लीन है।

१९७९ की परखनली शिशु के रूप में महान वैज्ञानिक उपलब्धि के पश्चात्

भारतीय वैज्ञानिकों ने परवलसी पौधे पैदा करने में भी सफलता प्राप्त की । इस नये आविष्कार का सम्पूर्ण श्रेय भारत के प्रसिद्ध भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र को है जिसने आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पौधों की परवलसी की सहायता से शानदार फसल प्राप्त करने की खोज में एक और कीर्तिमान स्थापित किया है। इस तकनीक का व्यवहारिक रूप से उपयोग भी प्रारम्भ कर दिया गया है। इसका सर्व-प्रथम उपयोग चन्दन के वृक्ष के लिये किया गया है। वास्तव में यह तकनीक ऐसे पौधे के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है जिनका निर्माण वनस्पति ढंग से सम्भव नहीं हो सका है। इस तकनीक द्वारा दस सप्ताह में ही इसी जाति के विकसित तथा सुन्दर पर्यावरणधारी अनेक पौधे प्राप्त किए जा सकते हैं।

ब्रह्माण्ड व अन्तरिक्ष के क्षेत्र में विज्ञान ने महत्वपूर्ण जानकारियाँ मानव जाति को प्रदान की हैं। विज्ञान के बल पर मनुष्य चन्द्रमा तक पहुँच सका है और मंगल, शनि आदि ग्रहों के विषय में बहुत कुछ जान सका है। इतना ही नहीं विज्ञान ने उपसचार प्रणाली का प्रचलन कर संसार को आश्चर्यचकित कर दिया है। भारत वर्ष के वैज्ञानिक भी इस दिशा में पीछे नहीं हैं। भारतीय वैज्ञानिकों ने आर्य भट्ट, रोहिणी, भास्कर प्रथम व द्वितीय तथा इन्सेट (ए) आदि उपग्रह छोड़कर देश को वैज्ञानिक प्रगति के शिखर पर पहुँचा दिया है।

इस प्रकार विज्ञान की वरदायिनी शक्तियाँ अनन्त हैं। अनेक रूप में आज यह जन-कल्याण का कार्य कर रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में प्राचीन काल की अपेक्षा मानव अपने को अधिक सुखी अनुभव करता है, वह एक नए संसार और नवीन सभ्यता की ओर मुड़ चुका है। परन्तु आज लोगों को यह कहते सुना जाता है कि विज्ञान से लाभ तो जो कुछ हैं वे हैं ही, परन्तु उसमें विश्व का विध्वंस भी अन्तर्निहित है। परन्तु विचारणीय बात यह है कि इसमें विज्ञान का क्या दोष ? आपके हाथ में चाकू है, आप इससे फल काटिए, कागज काटिए, समय पड़ने पर शाकन भी उसी से काट लीजिये पर आपसे यह किसने कहा कि आप अपनी नाक भी उसी से काट लीजिये। बस यही सीधी सी बात विज्ञान के सम्बन्ध में भी लागू होती है। हीटर कमरे को गरम करने के लिये है, न कि आप उस पर अपनी हथेली रख दें। हवाई जहाज से हजारों मील की दूरी घण्टों में पूरी की जाती है और उससे समय की भी बचत होती है, जीवन के अमूल्य क्षणों की बचत के लिये हवाई जहाज बनाये गये थे, परन्तु यदि इन्हीं जहाजों में आदमियों के बैठने की जगह पर आप बम रखकर ले जायें किसी शहर पर उन्हें नीचे डमेल दें, तो अपने आप ही विनाश हो जायेगा, इसमें विज्ञान का क्या दोष ? संसार के प्रत्येक पदार्थ में गुण भी है और अवगुण भी परन्तु यह उपभोक्ता की बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह उसके गुणों का उपयोग करे या अवगुणों का परन्तु—

सावधान, मनुष्य, यदि विज्ञान है तलवार
फाट फेंका जग, तीखी है बड़ी यह धार

विज्ञान मानव कल्याण के लिये और मानव कल्याण की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाकर नवीन आविष्कार करने के लिये है। दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक दूसरे के बिना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। लोग कहते हैं कि विज्ञान के नवीन चमत्कारों से विश्व में त्राहि-त्राहि मची हुई है, जन जीवन विनाश के मुख

की ओर अग्रसर हो रहा है, यह उनका भ्रम है। कुछ समय और रुकिये, आप न सही तो आपके बाल-बच्चे तो अवश्य ही चन्द्रलोक को जाया करेंगे और वहाँ के सितारों को छूकर एक नवीन सिहरन का अनुभव करेंगे, जैसे लोग बम्बई आकर वहाँ के फिल्मी सितारों को देखना चाहते हैं, इसी प्रकार, अन्तिम और अब तक की चन्द्र यात्राओं के 12 परमवीर वैज्ञानिकों के छः सफल चन्द्र विचरणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि चन्द्रलोक भी कुछ दिनों में बम्बई ही बन जायेगा।

आज के युग में कलुषित और दूषित विचारधारा के मनुष्य अधिक संख्या में हैं। उनकी युयुत्सु और स्वार्थी प्रकृति उन्हें युद्ध और विद्रोह के लिये विवश करती है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पना चाहता है और स्वयं पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न बनना चाहता है, यही भावना युद्ध और अशान्ति का आवाहन करती है। अब आप स्वयं निर्णय कीजिये कि इसमें बेचारे विज्ञान का क्या दोष, यह तो हमारी अपरिपक्व बुद्धि का परिणाम है। हमारी स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों की दुर्वासना ही हमें विनाश के गर्त की ओर खींचे लिये जा रही है, इसमें हम दोषी हैं या विज्ञान। उसके अभूतपूर्व चमत्कारों का स्वागत करना चाहिये, जिससे देश उत्तरोत्तर समृद्धिशाली औरधन-धान्य से पूर्ण होकर विश्व के अन्य राष्ट्रों के सामने गौरव से अपना मस्तक उन्नत कर सके।

३ चन्द्रमा पर मानव के बढ़ते चरण

चन्दामामा क्या पत्थरों या चट्टानों का ढेर मात्र है? बच्चे स्तम्भित थे। चन्द्रमुखियाँ और इन्दुबालायें अपनी गरिमा की क्षीणता के भय से भविष्य में इन नामों को सम्बोधित न करने के लिये अपने प्रियजनों से प्रतिज्ञायें लेने लगी थीं। छात्रों द्वारा तर्क की आशंका के भय से कलानिधि और सुधानिधि शब्दों का अर्थ बताने में अध्यापक हिचकिचाने लगते थे? कवियों की लेखनी का युगों का उद्दीपक अब उद्दीप्त नहीं कर पा रहा था। श्रद्धालु भक्तों के श्रद्धा के पहाड़ बालू की भीत की तरह ढह गये, चन्द्रमा पर पैर रखते ही उनकी प्रलय की आशंकायें निर्मूल सिद्ध होकर धूल-धूसरित हो चुकी थीं। ओषधिपति शब्द की वास्तविक व्याख्या, वैद्य लोग एक बार फिर ग्रन्थ उलट-पुलट कर देखने लगे थे। सधवा, सौभाग्यवती गृहलक्ष्मियों के करवा चतुर्थी के व्रत का आराध्य अब कैसे उनके स्वामियों के दीर्घ जीवन की प्रार्थनाओं को सुन सकेगा, बेचारी चिन्तित थीं। ईद मनाने के लिये अब किसी अन्य दूज के चाँद की तलाश थी। अब न उसमें चर्खा कातती हुई बुढ़िया थी और न हिरन। वहाँ केवल धूल थी, पत्थर थे और थीं अकेले में सिसकी भरती हुई मूक चट्टानें और जलते हुए ज्वालामुखी। अमेरिका के वीर सपूत नील आर्म स्ट्रांग ने जब इनका पहली बार घूँघट उठाया तो वह रोमांचित हो उठा, हृदय की धड़कन ७६ से १६५ तक बढ़ गई, परन्तु अपनी उसने बहादुरी से युगों-युगों से ढके आंचल में हाथ डाल ही दिया।

चन्द्रमा पर उतरने के साथ-साथ १२ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई अन्तरिक्ष यात्रा का एक स्वर्णिम अध्याय समाप्त हुआ। मानव के चिरसंचित स्वप्न और चिर-अभिलाषायें आज पूरी हुईं। न जाने वह कब से यह कहता आ रहा था कि हे अनन्त! हे रहस्यमय!! हे अज्ञात!!! तुम कौन हो?" अंग्रेजी की कविता, "Twinkle twinkle little star, How I wonder what you are." का उत्तर आज मिला

है। चन्द्रतल पर सर्वप्रथम मानव को उतारने का श्रेय यद्यपि अमेरिका को प्राप्त हुआ है फिर भी अन्तरिक्ष विज्ञान के पक्ष में रूसी सहयोग को नहीं भुलाया जा सकता। यह सफलता भी रूस और अमेरिका की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा का ही फल है। ४ अक्टूबर १९५७ को प्रथम रूसी कृत्रिम भू-उपगृह "स्पूतनिक–१" ने जिस अन्तरिक्ष अनुसन्धान युग का श्रीगणेश किया था, आज वह अपनी चरम सीमा पर है। इसके बाद से अन्तरिक्ष विज्ञान और टैक्नोलोजी की प्रगति पर्याप्त तेज हुई और अमेरिका चन्द्रमा की दौड़ में बाजी मार गया। फिर भी, इस दिशा में रूस की महान् उपलब्धियों को नहीं भुलाया जा सकता। रूस के अन्तरिक्ष यान "ल्यूना-२" ने १२ सितम्बर, १९५९ को चन्द्रलोक में प्रवेश किया और चन्द्रतल से टकराया। इस लोक में किसी वस्तु का चन्द्रमा के धरातल पर यह पहला आक्रमण था, फिर "ल्यूना ३" ने चन्द्रमा के पीछे उड़ान भरते हुए तब तक मानव के अदृश्य पृष्ठ भाग के चित्र टेलीविजन कैमरे से भेजे। "ल्यूना ९" ने पहली बार चन्द्रतल पर झटके के बिना उतरने में सफलता पाई उसने चन्द्रमा के धरातल से वहाँ की दृश्यावलियाँ भी भेजीं। पर मानव को अन्तरिक्ष मे भेजने की कल्पना तब साकार हुई जब अमरीका ने २८ मई, १९५९ को अन्तरिक्ष में दो बन्दर भेजे जो जीवित लौट आये। इससे पूर्व रूस ने अपने स्पूतनिक मे ३ नवम्बर, १९५८ को लाइका नाम की कुतिया भेजी थी, जो दुर्भाग्य से जीवित न लौट सकी। इसके बाद रूस ने १५ मई, १९६० को दो कुत्ते भेजे जो लौट आये और उन पर कोई बुरा प्रभाव नही पड़ा, तब मानव को भेजने की योजना परिपक्व हुई। सबसे पहले रूस ने मानव को अन्तरिक्ष मे भेजा। वे थे श्री गगारिन, जिन्होंने १२ अप्रैल, १९६२ को उड़ान ली। बाह्य आकाश की खोज में मानव जाति का यह पहला चरण था। युगों से पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में जमे और मिटे मानव के लिये ७ मील प्रति सैकिण्ड की रफ्तार से उड़ान और भार-हीनता की स्थिति में रहकर धरती पर फिर वापस आने का यह पहला अनुभव था। अब रूसी और अमेरिकी यात्री हजारों घण्टों की उड़ान कर चुके हैं। लेकिन गगारिन की १०८ मिनट की परिक्रमा अपनी जगह अंकित रहेगी, जिसका ३२वाँ चरण अपोलो–११ था।

चन्द्रमा पर मानव के बढ़ते चरण
(१) प्रस्तावना।
(२) अन्तरिक्ष यात्रियों का संक्षिप्त इतिहास।
(३) अपोलो—११ और नील आर्मस्ट्रांग।
(४) उपलब्धियाँ।
(५) भविष्य से आशायें।
(६) उपसंहार।

१६ जौलाई, १९६९ को भारतीय समय के अनुसार ७२ मिनट पर अपोलो ११ की ८ दिन की ऐतिहासिक उड़ान प्रारम्भ हुई, जिसमें नील आर्मस्ट्रांग, एडविन एल्ड्रिन तथा माइकेल कोलिन्स (चालक) तीन यात्री थे। आगे का सारा कार्यक्रम पूर्व सुनिश्चित था। कार्यक्रम इस प्रकार था, १६ जौलाई १९६९ को उड़ान भरने के बाद तीनों अन्तरिक्ष यात्री अपोलो-११ यान मे १९ जौलाई को चन्द्रमा के कक्ष में पहुँच जायेंगे। २० जौलाई को अन्तरिक्ष यात्री आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन अपने चन्द्रयान को

अपोलो यान से अलग करके चन्द्रमा पर उतरेंगे। २१ जोलाई को पहले आर्मस्ट्रांग और कुछ देर बाद एल्ड्रिन चन्द्रमा के धरातल पर उतरेंगे तथा २ घण्टा ४० मिनट तक पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार अनुसंधान कार्य करेंगे। फिर चन्द्रयान में लौटकर दोनों अन्तरिक्ष यात्री विश्राम करेंगे और कल-पुर्जों की जाँच करेंगे। उसके बाद पृथ्वी की वापसी यात्रा के लिये रवाना होंगे और २४ जोलाई को प्रशान्त महासागर में उतरेंगे। अन्तरिक्ष यान अपोलो-११ के चन्द्रयात्री अपने साथ चन्द्रमा की चट्टानों तथा धूल के जो नमूने लायेंगे, वह मनुष्य की सबसे मूल्यवान वैज्ञानिकी सम्पदा होगी। चन्द्रलोक के इन नमूनों के वैज्ञानिक परीक्षण का उत्तरदायित्व ह्यूस्टन अनुसंधानशाला के निर्देशक डा० उलबर्ट किंग (जूनियर) पर होगा, जो बाद में इनके अंशों को लगभग १५० वैज्ञानिकों में अनुसन्धान के लिए वितरित कर देंगे इनमें ४० विदेशी वैज्ञानिक भी शामिल हैं।

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जॉन कैनेडी का वह वचन १० जोलाई १९६९ को पूरा हुआ, जिसमें उन्होंने कहा था कि, "इस शताब्दी में आगामी चन्द्रमा पर उतर जाएगा और उसे सकुशल पृथ्वी पर वापस लाया जा सकेगा।" पृथ्वी के करोड़ों निवासियों की उत्कण्ठा, उल्लास और शुभकामनाओं के बीच रविवार २० जोलाई १९६९ को दो मानव नील आर्मस्ट्रांग और एडविन एल्ड्रिन रात को १·४८ बजे चन्द्रमा पर सकुशल उतर गए और इस प्रकार, मनुष्य का वह चिरपोषित स्वप्न पूरा हुआ, जिसे वह युगों से अपने हृदय में संजोए हुआ था। 'ईगल' नामक चन्द्र-यान चन्द्रमा के जल-विहीन प्रशान्त सागर में बड़ी शान के साथ अपने पंख फैलाए हुए उतरा। चन्द्रयान 'ईगल' के चारों यांत्रिक पग चन्द्रमा की क्रेटर युक्त ऊबड़-खाबड़ सतह पर पूर्ण विश्वास के साथ स्थिर हो गये। आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन को यह भव्य दृश्य देखने का मौका अधिक नहीं मिला क्योंकि ईगल के चन्द्रतल पर स्थिर होते ही उन्होंने अपने यान की व्यापक जांच पड़ताल शुरू कर दी, क्योंकि किसी बड़ी कठिनाई के पैदा होने पर उनका कोलिन्स के पास वापस लौटना कठिन हो जाता। तीसरे अन्तरिक्ष यात्री माईकल कोलिन्स मुख्य यान 'कोलम्बिया' में चन्द्रमा से ९६·५ कि०मी० दूरी पर परिक्रमा कर रहे थे। अन्तरिक्ष केन्द्र ने चन्द्र-यान प्रगति से सन्तुष्ट होने के उपरान्त अन्तरिक्ष यात्रियों को चन्द्रमा पर उतरने की तैयारी का संकेत भेजा। संकेत मिलते ही अन्तरिक्ष यात्री उतरने को तैयार हो गये। चन्द्रयान, अन्तिम बार, चन्द्रमा के पृष्ठ भाग में जाकर लुप्त हो गया। सम्पूर्ण मानव जगत साँस रोककर अभूतपूर्व चरम क्षण की प्रतीक्षा करने लगा। ह्यूस्टन नियन्त्रण केन्द्र से अनुमति प्राप्त होने पर उनका चन्द्रयान मुख्य यान से अलग हो गया। अन्तरिक्ष यात्रियों ने चन्द्रयान के इंजन को दागा तथा यान दो साहसी मानव पुत्रों को लेकर चन्द्रमा की ओर बढ़ चला। २ घण्टे की यात्रा के बाद चन्द्रयान अन्तरिक्ष यात्रियों को लेकर चाँद पर उतर गया, परन्तु २१ जोलाई को १२-४२ बजे तक उन्हें नियन्त्रण केन्द्र की आज्ञानुसार चन्द्रयान में ही रहना पड़ा।

पृथ्वी से २ लाख ४० हजार मील दूर चन्द्रमा पर बैठे हुये नील आर्मस्ट्रांग ने पहले शब्द कहे—"हम शान्त अड्डे से बोल रहे हैं, ईगल उतर गया।" २१ जोलाई को ८ बजकर २६ मिनट पर धरातल पर चरण रखने वाले आर्मस्ट्रांग प्रथम व्यक्ति थे। उनके कुछ देर बाद एडविन एल्ड्रिन उतरे। आर्मस्ट्रांग ने चन्द्र धरातल के बालू के कणों पर अपने पद चिन्हों का वर्णन किया। उन्होंने कहा, "यहाँ चलने

चिन्ह देने में कोई कठिनाई नहीं है।" इसके बाद आर्मस्ट्रांग ने चन्द्र धरातल की कुछ मिट्टी उठाई और अपनी अन्तरिक्ष पोशाक की जेब में रख ली। उनके यहाँ पहुँच कर प्रथम शब्द थे—"मनुष्य का यह पहला कदम मानवता के लिए बड़ी भारी छलांग है। चन्द्रमा का पृष्ठ सुन्दर और बालू से ढका है मैं उसमें अपने पद चिह्न देख सकता हूँ।" आर्मस्ट्रांग ने अपना पहला कदम ईगल की टांग के नीचे लगी तश्तरी पर रखा, इसके बाद वे चन्द्रमा पर उतरे। जब आर्मस्ट्रांग का बायाँ पैर चन्द्रमा की बालू में धंसता हुआ कैमरे के सामने आया तब वह चन्द्रमा की छायाओं को बड़ी ठण्ड में थे। आर्मस्ट्रांग ने कहा कि चन्द्रयान की टांगों के पैर धूल में सिर्फ एक या दो इन्च ही धंसे हैं। उन्होंने अपना पहला कदम बड़ी सावधानी से रखा क्योंकि चन्द्रमा का गुरुत्व, पृथ्वी की अपेक्षा छठा भाग है किन्तु उन्होंने तुरन्त रिपोर्ट दी कि उन्हें कोई कठिनाई नहीं है। नील आर्मस्ट्रांग जब चन्द्रमा पर उतरे तो उनकी हृदयगति १५६ प्रति मिनट तक पहुँच गयी थी, उस समय जब वे उतर रहे थे, वह गति ११० प्रति मिनट थी, लेकिन उतरने के पौन घण्टे बाद यह ९० प्रति मिनट हो गई थी।

इसके बाद उन्होंने जब चन्द्र पृष्ठ के पत्थरों और मिट्टी के नमूने के लिए जाँच की तो वे सूर्य के प्रकाश में चमकने लगे। उनकी सफेद पोशाक चौंधिया देने वाली थी। उनके कदम कंगारू की तरह पड़ रहे थे बार-बार वे अपने विभिन्न कार्यक्रमों के लिये चन्द्रयान की तरफ लौटे। चाँद पर उतरते ही चन्द्रयान ईगल के चालक एल्ड्रिन ने कहा कि मैं यहाँ हर किस्म की चट्टानें देख रहा हूँ। कुछ चट्टानें तो ६ फुट ऊँची हैं। आर्मस्ट्रांग ने भी बताया कि पहाड़ियों से शिखर दिखाई दे रहे हैं जो चन्द्रयान के उतरने की जगह से केवल डेढ़ किलोमीटर दूर हैं। हमारे चारों ओर ज्वालामुखियों की भरमार है। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि इन्हें गिनना सम्भव प्रतीत नहीं होता। इनका व्यास एक मीटर से १५ मीटर तक होगा।

अमेरिका के राष्ट्रपति श्री निक्सन ने व्हाइट हाउस से चन्द्रयात्रियों से बात करते हुए कहा—'मानव के सारे इतिहास में एक ऐसा अमूल्य क्षण है जबकि सारी पृथ्वी के लोग वास्तव में एक हो गये हैं।" चन्द्रलोक में से आर्मस्ट्रांग ने उत्तर दिया—'हमारे लिये यह बहुत बड़ी सम्मान की बात है कि हम यहाँ न केवल अमेरिका, अपितु सभी शान्तिपूर्ण देशों की जनता का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।" श्री निक्सन ने कहा—'मैं आपको बता नहीं सकता कि हमें कितना गर्व हो रहा है निश्चय ही सारे संसार की जनता हमारे साथ साथ इस बात को स्वीकार करेगी कि यह एक महान चमत्कार है।"

अन्तरिक्ष यात्रियों ने चन्द्र धरातल पर २ घण्टे ४३ मिनट विहार किया। भारतीय समय के अनुसार उन्होंने ८ बजकर २६ मिनट पर धरातल पर पैर रखे थे और १० बजकर ४० मिनट पर (प्रात) वे चन्द्रयान में लौट आये। इस बीच में नील आर्मस्ट्रांग ने चन्द्रमा की चट्टानों के कुल २७ किलो नमूने एकत्र किये। ये नमूने उनकी इस यात्रा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। अन्तरिक्ष यात्रियों ने एक सीमित क्षेत्र से विभिन्न प्रकार के नमूने इकट्ठे किए। आर्मस्ट्रांग ने चन्द्रमा पर कुछ ऐसी चट्टानें देखीं जिनमें भारी मात्रा में अभ्रक होने की सम्भावना है। उन्हें काफी मात्रा में, ग्रेनाइट चट्टानें (एक प्रकार की गहरे रंग की चट्टानें) भी दिखाई दी

हैं। कुछ ऐसी चट्टानों के नमूने भी चन्द्रयात्रियों ने एकत्र किये, जिनमें २ से ४ प्रतिशत तक पानी विद्यमान था। ये चट्टानें वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इस सन्दर्भ में, एक और महत्वपूर्ण बात मालूम हुई और वह यह कि चन्द्रमा की सतह वैज्ञानिकों की आशा से विपरीत काफी कड़ी पाई गई। नील आर्मस्ट्रांग ने नमूने एकत्र करते समय चन्द्रमा की सतह को खोदने की कोशिश की, मगर बहुत कोशिश करने के बावजूद भी यह तीन इन्च से अधिक नहीं खोद पाए।

अपोलो—११ की यह चन्द्र यात्रा वैज्ञानिकों के लिये कई दृष्टियों से महत्व-पूर्ण सिद्ध हुई है। अन्तरिक्ष यात्री अपने साथ जो सामग्री लाए हैं, उसके विश्लेषण किये जा रहे हैं। इन विश्लेषणों के बाद चन्द्रमा से सम्बन्धित अनेक रहस्यों के खुलने की सम्भावना है। इन विश्लेषणों के बाद यह भी मालूम हो सकेगा कि चन्द्रमा पर किसी प्रकार के जीवन की सम्भावना है अथवा नहीं। चन्द्रमा की उत्पत्ति कब हुई तथा चन्द्रमा का भीतरी भाग क्या पृथ्वी की तरह पिचका हुआ है अथवा नहीं? क्या चन्द्रमा पर भी पृथ्वी की तरह भूकम्प आते हैं और ज्वालामुखी फटते हैं? या फिर चन्द्रमा, एक मृत गृह है। अन्तरिक्ष यात्रियों ने चन्द्रतल पर एक बैंगनी रंग की चट्टान देखी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह चट्टान सैकड़ों मील दूर हुये किसी उल्कापात के कारण चन्द्रमा पर गिरी है। चन्द्रमा की सतह पाउडर जैसी है लेकिन इतनी सख्त है कि अन्तरिक्ष यात्रियों को अपना झण्डा गाड़ने में काफी कठिनाई हुई।

चन्द्रयात्रियों को लेकर चन्द्रमा पर उतरने वाला ईगल यान चन्द्र धरा से भारतीय समय के अनुसार २१ जौलाई, १९६९ की अपराह्न ५-५३ (जी०एन०टी०) पर पृथ्वी को वापसी के लिये उड़ा। चन्द्रयात्री अपने साथ ले जाये गये बहुत से कीमती सामान को वहीं छोड आये। अपोलो—११ का वजन उड़ान के समय ३१०० मीट्रिक टन था, परन्तु शुक्रबार २५ जौलाई, १९६९ को जब वापस हुआ तो उसका वजन केवल ६ मीट्रिक टन था। चन्द्रयात्रियो ने चन्द्रमा पर अमेरिकी झण्डा, अनेकों वैज्ञानिक उपकरण, अमेरिकी यात्रियों के चन्द्रमा पर आने सम्बन्धी अपने कार्ड तथा २५० हजार डालर का टेलिविजन कैमरा और बेशकीमती जुंक यार्ड छोड़ा, १० लाख डालर मूल्य के अन्य कैमरे, वहां सांस लेने के उपकरण भी छोड़ दिये, इन उपकरणों की कीमत ४५ हजार डालर है। अन्तरिक्ष यात्री ७३ देशों के नेताओं की शुभकामनाओं के सन्देशों का एक रिकार्ड बनाकर अपने साथ ले गए थे, जिसे चन्द्रमा पर ही छोड़ आए। सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तु जो उन्होंने वहां छोड़ी है, वे हैं अपने चरण-चिह्न। ये लगभग डेढ़ इन्च गहरे है जैसा कि नए हल चलाये खेत में किसी के चलने पर होते हैं। वे चरण-चिह्न सदियो तक इसी प्रकार बने रहेंगे। 'नासा' के भूगर्भ विशेषज्ञ डाक्टर अल्बर्ट किंग ने बताते हुए कहा कि—"चांद पर हवा, वर्षा या और कोई ऐसी चीज नहीं होती जिससे वे मिट जायें।" वहां उल्कायें गिरती हैं, चन्द्रमा पर पड़े मानव चरण-चिह्न इन्हीं उल्काओं से मिट सकते हैं, लेकिन इसमें पांच लाख साल लग सकते हैं। जहां तक अगले अपोलो चन्द्र अभियानों का प्रश्न है, उनके लिये अन्य स्थान चुने गये हैं, ताकि चन्द्रमा के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी मिल सके।

अपने निश्चित कार्यक्रम के अनुसार, अपोलो—११ साहसी चन्द्र विजयी मानव पुत्रों को लिये २४ जौला.ई., १९६९ को भारतीय समय के अनुसार रात के १० बजकर १९ मिनट पर प्रशान्त महासागर में नियत स्थल पर बड़े धीरे से उतरा। अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन, जो प्रसन्न मुद्रा में उस महान् यात्रा के सफल अवसान को दूरबीन से देख रहे थे एकदम खिल उठे, सब ओर आनन्द की लहर दौड़ गयी, खुशियाँ मनायी जाने लगीं, सीटियाँ बज उठीं, सिगरेट जल गयीं और अमरीकी झण्डे फहरा उठे। सारे विश्व ने खुशियाँ मनाकर आह्लाद प्रकट किया। पृथ्वी की ओर आने के लिये ईगल विमान के ईन्जन ने जैसे ही अपना काम आरम्भ किया था, आर्मस्ट्रांग कह उठा था—ईश्वर कितना सुन्दर है।"

चन्द्र यात्रा के सुखद अवसान के पश्चात् इन यात्रियों को २१ दिन तक अलग कक्ष में रखने का प्रबन्ध किया गया, जिससे इनके साथ चन्द्रलोक से कोई ऐसी धूल या कीटाणु न आये हों, जो विश्व-घातक हो जायें। ११ अगस्त, १९६९ को यह प्रतिबन्ध समाप्त हुआ। तीनों यात्री मुस्कराते और हर किसी से हाथ मिलाते हुए सलेटी रंग के उस दरवाजे से बाहर निकले, जिसने उन्हें शेष विश्व से अलग कर रखा था। इसके बाद वे अपने घरों के लिये चल दिये। १३ अगस्त, १९६९ को न्यूयार्क में चन्द्रयात्रियों का भव्य एवं अभूतपूर्व स्वागत किया गया।

अपने पति नील आर्मस्ट्रांग के द्वारा चन्द्रमा पर प्रथम चरण रखने के क्षण को जीवन का महानतम क्षण मानने से इन्कार करती हुई श्रीमती नील आर्मस्ट्रांग ने कहा—

'मैं चन्द्र पर मानव के पहुँचने को अपने जीवन का सबसे महान क्षण नहीं मानती। महानतम क्षण तो वह था आर्मस्ट्रांग से मेरा विवाह हुआ था।"

किन्तु उसके बाद उन्होंने कहा था—

"हमने चन्द्रमा पर पहुँचने में सफलता पा ली है यह बहुत शानदार बात है। चन्द्रयात्रियों के चन्द्रमा पर पहुँचने से मुझे इतनी खुशी हुई है कि मेरे आँसू निकल पड़े।"

(न० भा० २२ जोलाई, १९६९) श्रीमती आमस्ट्रांग

चन्द्रमा से लायी गयी सामग्री, ह्यूस्टन स्थित स्पेस फ्लाइट सेंटर के मैदान में बनायी गयी चन्द्र प्रयोगशाला में रक्खी गई थी। उच्च कोटि के वैज्ञानिकों द्वारा उसके परीक्षण और अनुसन्धान किये गये। चन्द्र प्रयोगशाला अपने आप में अब तक की सबसे भिन्न प्रयोगशाला है क्योंकि इसमें पहली बार किसी अन्य ग्रह के नमूने लाकर रक्खे गये थे। वैसे पृथ्वी पर उल्काओं के रूप में अन्तरिक्ष की सामग्री आती है, लेकिन इस बार के नमूने मानव ने स्वयं एकत्रित किये थे। प्रयोगशाला का एक ही महान् लक्ष्य है—'एकान्तवास'। यह इसलिये कि चन्द्रयात्रियों या सामग्री से पृथ्वी पर कोई चीज दूषित न हो, दूसरी ओर चन्द्र सामग्री पृथ्वी के वातावरण से दूषित या प्रभावित न हो। कहीं ऐसा न हो कि चन्द्रमा की धूल पृथ्वी की आक्सीजन के सम्पर्क में आने पर विस्फोट न कर बैठे। इससे बड़ी चिन्ता इस बात की थी कि कहीं चन्द्रमा के सूक्ष्म जीवों से पृथ्वी पर जीवन को खतरा पैदा न हो। सभी सावधानियाँ बरती गईं, साथ साथ सामग्री का विश्लेषण भी चलता रहा। इस कार्य में कुछ वर्ष लगे। लेकिन यह काम सम्भवतः वैज्ञानिकों के लिये सबसे दिलचस्प और उपयोगी हुआ। हो सकता है कि चन्द्र सामग्री से आशा से अधिक रहस्योद्घा-

टन हो और करोड़ों वर्ष पुरानी सामग्री कुछ ऐसी समस्यायें भी खड़ी कर दे, जिनका हाल वैज्ञानिक वर्षों तक खोजते रहें। इन खोजों और अनुसन्धानों में निःसन्देह मानव जीवन को अधिक सुखी और समृद्ध बनाने की भावना निहित है। अन्तरिक्ष अभियान के लिये की गयी वैज्ञानिक खोजों से अनेक ऐसे यन्त्र, सामान तथा युक्तियाँ हाथ लगी हैं, जो पृथ्वी पर मानव जीवन को बेहतर बना रही है।

अन्तरिक्ष की नितान्त अपरिचित परिस्थितियों में भी मानव को जीवित रखने के लिये आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को लम्बी यात्रा करनी पड़ी। अन्तरिक्ष यात्री की पोशाक एक वातानुकूलित कक्ष ही थी जिसमें सुरक्षा की पूरी व्यवस्था थी। हजारों मील दूर होने पर भी बैठे पृथ्वी पर चिकित्सक उसके शरीर की देखभाल करते रहते थे। अब यही पोशाक, खतरनाक उद्योगों में लगे कर्मचारियों तथा फायर ब्रिगेड के लोगों के लिये रूपान्तरित कर दी गई है। शीघ्र ही एक आक्सीजन परिवर्तक कैप्सूल तैयार हो रहा है, जिसे किसी धमनी मे फिट करके वही ऑक्सीजन को पैदा किया जा सकेगा। अर्थात् न बाहरी ऑक्सीजन की जरूरत रहेगी, न साँस लेने की जरूरत रहेगी और न फेफड़ों का कोई काम रहेगा। ऐसी अनेक खोजें कल के चिकित्सालयों में प्रवेश पाकर मानवता के कल्याण का श्लाघनीय कार्य करेंगी।

यह निश्चित है कि चन्द्र यात्रा ने धर्म के सम्पूर्ण क्षेत्र में मनुष्यों की भावनाओं को झकझोर दिया है। इस अभूतपूर्व अभियान से निःसन्देह मानव के अन्ध-विश्वास का नाश होगा और धार्मिक विश्वास को वैज्ञानिक दृष्टि मिलेगी। वह यह अनुभव करने लगेगा कि उसकी अर्चना और उपासना का विषय वे वस्तुयें नहीं है, जो इस अनन्त अन्तरिक्ष मे अनेक ब्रह्माण्डों और करोड़ों नक्षत्रों तथा ग्रह-उपग्रहों के रूप मे बिखरी हुई हैं, अपितु वह शक्ति है, जिसने उन सबको व्यवस्था और नियन्त्रण में कर रखा है।

चन्द्रमा पर आर्मस्ट्रांग के इस चरण ने चन्द्रमा के द्वार खोल दिये हैं। अब वह दिन दूर नहीं जब मानव चन्द्रतल पर स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करके सकुशल घर लौट आया करेगा। ह्यूस्टन से २५ जौलाई १९६९ को अन्तरिक्ष ऐजेन्सी के चन्द्र अवतरण कार्यक्रम निदेशक सेमुअल सी० फिलिप्स की घोषणा के अनुसार अपोलो—१२ के अन्तरिक्ष यात्री चार्ल्स कोनार्ड एवं एलनवीयन मध्य नवम्बर, १९६९ में चन्द्रमा के पश्चिमार्ध मे स्थित तूफानो के सागर पर चले। अपोलो—१२ की चन्द्रयात्रा १४ नवम्बर, १९६९ को शुरु हुई। इससे पूर्व अपोलो—११ के अन्तरिक्ष यात्रियो से पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली गई थी, जिन्होने चन्द्रमा के पूर्व स्थित 'शान्ति सागर' में विचरण किया था। ३९ वर्षीय कोनार्ड और ३६ वर्षीय बीन (दोनों नौसेना कमांडर) ने चन्द्रमा पर ३० से ३२ घण्टे गुजारे। वे अपने चन्द्रयान से तीन-तीन घण्टे के लिये दो बार बाहर निकले। ऊपर कमान यान में ४० वर्षीय नौ सेना कमांडर रिचर्ड गार्डन चन्द्रमा की कक्षा मे चक्कर काटते रहे। उन्हीं दिनों श्री फिलिप्स ने बताया कि अपोलो—१३, १४ और १५ की उड़ानें मार्च १९७० से शुरू होकर लगभग चार-चार माह के अन्तर से होंगी। अपोलो—१३ से लेकर आगे की उड़ानें पाँच मास के अन्तर से होंगी।

हर्ष का विषय है कि ह्यूस्टन की पूर्व घोषणा के अनुसार, १४ नवम्बर, ९ को पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार अपोलो—१२ की तीन चन्द्रयात्रियों—

चार्ल्स कोनार्ड, एलेन बीन तथा रिचर्ड गार्डन, को लेकर चन्द्रमा की ओर चल दिया। रिचर्ड गार्डन मुख्य यान अपोलो—१२ में रहे और कोनार्ड और बीन ने १९ नवम्बर, १९६९ को सफलतापूर्वक चन्द्रमा पर पदार्पण किया। इन लोगों ने निश्चित अवधि से भी अधिक वहाँ रुककर मानव मात्र के लिये अमूल्य चन्द्र स्मृति चिन्हों का संचय किया। वे सन् १९६७ में छोड़े गये सूत्रा—३ के भग्नावशेष भी अपने साथ लाये हैं। सूत्रा—३ उन्हें पड़ा मिला, जिसका वर्ण रश्मियों के प्रभाव से कुछ परिवर्तित हो चुका था।

इन दो सफल चन्द्र यात्राओं के पश्चात् अमेरिका ने अपोलो—१३ चन्द्रलोक भेजा। इस यात्रा से कुछ असाधारण तथ्य संग्रहीत होने की आशा थी। परन्तु खेद है कि चन्द्रमा की कक्षा में प्रवेश से पूर्व ही चन्द्रयान में ऑक्सीजन लीक होना शुरू हो गया। जेम्स लोवेल के नेतृत्व में तीनों यात्रियों का पृथ्वी पर सकुशल लौट आना यह एक ऐसी समस्या थी, जिसमें न ह्यूस्टन का नियन्त्रण केन्द्र ही सहायता कर सकता था और न वे चन्द्र यात्री ही। सारे विश्व की आँखें उनकी सकुशल वापसी पर लगी हुई थीं। सारा विश्व ईश्वर से उनकी कुशलता के लिये प्रार्थना कर उठा। नियन्त्रण केन्द्र ने एकदम लौटने का आदेश दिया। यान फिर पृथ्वी की ओर चल पड़ा। अन्त में तीनों यात्री पृथ्वी पर सकुशल आ पहुँचे। वास्तव में अपोलो—१३ से यात्रियों को जिस तरह पृथ्वी पर वापस लाया गया, वह भी अपने आप में एक महान् उपलब्धि थी।

इस असफलता से अमेरिका वैज्ञानिक हतोत्साहित नहीं हुये। ५ फरवरी, १९७१ को अपोलो—१४ चन्द्रतल पर जा उतरा (एलन शेपर्ड और एडगर माइकेल चन्द्रतल पर उतरे और स्टुअर्ट रूसा मुख्य यान में बैठे रहे)। यह मानव की तीसरी चन्द्रयात्रा थी। इन चन्द्रयात्रियों ने ८ फरवरी १९७१ को ह्यूस्टन स्थित अनुसन्धान केन्द्र के माध्यम से पत्रकार सम्मेलन में भाग लिया। विशेषता यह थी कि अबकी बार ये लोग अपने साथ चन्द्र रिक्शा भी ले गये थे जिसमें वहाँ चलकर उसमें चट्टानें और नमूने इकट्ठे किये, अन्त में उसे चन्द्रधरा को वहीं छोड़ आये।

२६ जौलाई, १९६९ को अमेरिका ने अपोलो—१५ चन्द्रलोक को फिर भेज दिया, जिसमें तीन यात्री थे, डेविड स्टाट, इर्विन और वोर्डन। ३१ जौलाई को प्रातः पौने चार बजे स्काट और इर्विन चन्द्र घाटी में जा उतरे। अब की बार ये लोग अपने साथ एक विद्युत चालित मोटर (रोवर १) भी ले गये थे जिसमें बैठकर उन्होंने १७०४ मील की यात्रा की और १७१ पौण्ड चन्द्र चट्टानें एकत्रित कीं। चन्द्र यात्री चन्द्रमा के जिस पहाड़ी स्थान में अब की बार उतरे वहाँ की चट्टानें इकट्ठी कीं, वे साढ़े चार अरब वर्ष पहले की समझी जा रही हैं। अब की बार भी यान में कुछ खराबी सामने आयी जैसे बिजली प्रणाली में खराबी या एक पानी के पाइप का रिसने लगना या टूटे काँच के टुकड़ों का मिलना आदि पर कुशल है कि चन्द्रयात्रियों ने चन्द्रमा के पहाड़ी इलाके में ६७ घण्टे बिताये और साढ़े १९ घण्टों का तीन बार चन्द्रमा पर विचरण किया।

१६ अप्रैल १९७२ को अपोलो—१६ चन्द्रयात्रा पर रवाना हुआ। यह मानव की अब तक की सबसे बड़ी यात्रा थी। मार्ग में आने वाली यान सम्बन्धी कठिनाइयों एवं बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हुए चन्द्रयात्री जान यंग और चार्ल्स ड्यूक २१ अप्रैल, १९७२ को चन्द्रमा पर उतरे। टामस मॅटिंगली अकेला मुख्यान में रहा।

यंग और ड्यूक चन्द्रमा पर अवतरण करने वाले नौवें और दसवें अमेरिकी यात्री थे। १० दिन की अदम्य साहसिक यात्रा के बाद ये चन्द्रयात्री २७ अप्रैल १९७२ को रात्रि के ३ बजकर १४ मिनट पर प्रशान्त महासागर स्थित क्रिस्टमस द्वीप के निकट सकुशल उतरे। यान के कमाण्डर ने कहा—"हमने पिछले १० दिनों में बहुत कुछ देखा, जितना अधिकतर लोग अपने १० जीवनों में भी नहीं देख पाते।"

अपोलो—१६ का मुख्य उद्देश्य चन्द्रमा तथा हमारे सौर मण्डल के रहस्य मालूम करना था। वीर चन्द्रयात्री अबकी बार चन्द्रमा केनार्ड क्षेत्र में उतरे थे और तीन दिन तक उन्हें चन्द्रमा की वीरान भूमि की खोज करनी थी। तीन दिनों में वे तीन बार चन्द्रयान से बाहर निकले और अनेकों घण्टों तक चन्द्रमा की खाक छानी। उन्होंने अनेक चट्टानें इकट्ठी की और अनेक वैज्ञानिक यन्त्र चन्द्रमा की भूमि पर स्थापित किए। दोनो चन्द्रयात्रियों ने अपनी चन्द्रकार में स्टोन पहाड़ तक की यात्रा की। स्टोन पहाड़ की ढलान अपोलो—१६ की खोज का मुख्य स्थल था। अनेक वैज्ञानिकों का कथन है कि चन्द्रमा के बनते समय मोटे पर्वत ज्वालामुखी लावा से बने हैं। पहाड़ की चोटियाँ चन्द्रयात्रियों के ऊपर नजर आ रही थी। अपने अन्तिम व तीसरे विचरण में चन्द्रयात्रियो ने सबसे गहरे क्रेटर को देखा, यह ४०० फुट गहरा उत्तरी किरन क्रेटर था। वैज्ञानिको ने आशा व्यक्त की है कि इस क्रेटर से भू-गर्भ विज्ञान सम्बन्धी सबसे अधिक रहस्य प्रगट होंगे। बड़े-बड़े शिलाखण्ड इस क्रेटर का व्यास २७०० फुट समझा जाता है। उन्होंने ऐसे स्थानों के भी नमूने एकत्र किये हैं, जहाँ चट्टान की ओर स्थायी रूप से छाया रहती है। वैज्ञानिकों की आशा है कि छाया के नमूनो को कभी भी सौर वायु का स्पर्श नहीं हुआ।

अपोलो—१६ की इस उड़ान के पश्चात् अपोलो—१७ की एक और उड़ान दिसम्बर ७२ मे हुई, जिसकी उपलब्धियाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। इस चन्द्र यात्रा के यात्री युजीन ए० सरनाम शेतैल्ड तथा हैरिसन स्मिट थे। इस बार चन्द्र यात्री चन्द्रमा के धरातल पर टारस लिट्रो नामक स्थान पर उतरे और इन्होंने वहाँ पर ७५ घण्टे गुजारे। १ विद्युत चालित गाड़ी द्वारा इन्होने चन्द्रमा पर भ्रमण किया। फिर अपने साथ ९० किलोग्राम के नमूने लेकर ये वापस पृथ्वी पर आ गये। मई ७३ के अन्तिम सप्ताह में अमेरिका ने अपनी आकाश प्रयोगशाला (स्काई लैब) मे तीन नभयात्री वैज्ञानिकों को भेजकर विश्व को एक बार फिर चमकृत कर दिया। इसके पश्चात् अमेरिका का चन्द्रमा पर 'मानवे' कार्यक्रम समाप्त हो गया और रूस ने शुक्र और मगल ग्रहों की जानकारी के लिये अनेकों उपग्रह छोड़े है जो उन ग्रहो की परिक्रमा करते हुये विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक जानकारी दे रहे हैं। भारत भी इस दिशा मे अपने प्रयासों में निरन्तर वृद्धिशील है।

निश्चित ही अमेरिका के चन्द्र अवतरण कार्यक्रम का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। आशा है ये अवतरण मानव जाति के लिये गंगावतरण के समान लाभप्रद एवं सार्थक होंगे। अमेरिका के वैज्ञानिकों के पास आज चन्द्र सम्बन्धी इतनी सूचनाएं एवं संग्रहीत सामग्री होते हुए भी, अभी यह नहीं कहा जा सकता कि चन्द्रमा का जन्म कब और कैसे हुआ और जन्म के बाद विकास की क्या प्रक्रिया रही। प्रत्येक यात्रा चन्द्रमा के रहस्यों को और गूढ़ बनाती जा रही है।

४ भारत का प्रथम अणु-विस्फोट

मञ्जिल मिले या न मिले इसका गम नहीं।
मञ्जिल की जुस्तजू में मेरा कारवाँ तो है॥

भारतीय वैज्ञानिकों का कारवाँ इसी उद्देश्य से अनुप्रेरित हो पच्चीस वर्षों से मौन तपस्वी की भांति अपने एकांत साधनों में रत था। न मन में उदासीनता थी और न मस्तक पर चिन्ता। निष्ठा के द्वीप में उत्साह की बातों को संजोये साधक, ज्ञान के गहन सागर में गोते लगाते और कोई न कोई अमूल्य मोती हाथ में लिये हुए मुस्कराते फिर ऊपर आ जाते। मोतियों की माला शनै शनै पूर्णता की ओर बढ़ती रही' हालांकि प्रेरक पथप्रदर्शक भी धीरे-धीरे उठते गए परन्तु भारत की नाभि में तो अमृत-कुम्भ है, भारत-भूमि जहां एक ओर वीर जननी है वहां दूसरी ओर वैज्ञानिक जननी भी।

डा० भाभा जैसे सफल माली के संरक्षण में पं० जवाहर लाल नेहरू के द्वारा लगाए हुए अणु अनुसन्धान के वृक्ष ने भारतीय युवा-वर्ग के चिरपोषित स्वप्नों को साकार करते हुये जब पहला ही एक मीठा फल दिया तो पं० जी की आत्मा स्वर्ग में सिहर उठी। अपने शिष्यों का चमत्कार देखकर स्वर्गीय डा०भाभा भी मौन न रह सके और मुस्करा उठे। धरती और आकाश अपनी निर्मलता पर प्रसन्न थे क्योंकि प्लूटोनियम की विषाक्त गैस ने उनकी चूनर और चादर को कलंकित न किया था, उनकी पवित्रता यथावत् थी। विश्व के सुधी और संत राष्ट्र भारत की इस अमर फल प्राप्ति पर हर्षातिरेक से प्रसन्न हो उठे परन्तु दुष्ट और दानव राष्ट्र ईर्ष्यावश खिन्न और क्षुब्ध थे, राम द्वारा हनुमान की भांति।

गर्वातिरेक से अपने को पंच परमेश्वर मानने वाले अणु शक्ति सम्पन्न पाँच राष्ट्रों अमेरिका, रूस ब्रिटेन, फ्रांस और चीन के एकाधिकार को समाप्त कर भारत ने हनुमान की भांति इन पांच राष्ट्रों की रावण की सभा में जब अपनी विजय पर अट्टहास किया तो ईर्ष्यालु राष्ट्रों के छक्के छूट गये। इधर-उधर 'त्राहि माम्' 'त्राहि-माम्' की आवाजें उठने लगीं। किसी ने संधि विच्छेद की दुहाई दी तो किसी ने अनुबन्ध विच्छेद की और किसी ने विधि विच्छेद की हालांकि भारत ने वही किया था, जो ये राष्ट्र आये दिन करते रहते हैं उन पर न कोई विधि-अवज्ञा का दोष लगता है न विधि-विडम्बना का। भारत के बाद १७ जून १९७४ को चीन ने वायु मण्डल में अपना सत्रहवाँ परमाणु विस्फोट किया और फ्रांस ने प्रशान्त महासागर में अपना विस्फोट किया, पर किसी ने कुछ नहीं कहा। बात यह है—

हम आह भी भरते हैं तो हो जाते हैं बदनाम,
वे कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होती।

गर्भवती साधना सहसा फलवती हो उठी। १८ मई १९७४ को प्रातः ८ बजकर ५ मिनट पर देश के पश्चिमी भाग में राजस्थान के बाड़मेर जिले की किसी समतल भूमि के १०० मीटर नीचे भारत ने जब अपना चिर प्रतीक्षित ऐतिहासिक प्रथम परमाणु विस्फोट किया तो देश का कण कण हर्षोल्लास से नाच उठा। लोग सगर्व कहते सुने गए कि 'अब भारत भी अणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र हो गया।"

भारत का प्रथम अणु-विस्फोट

(१) प्रस्तावना।
(२) भारत द्वारा शक्तिशाली प्रथम अणु-विस्फोट—
(अ) अणु-विस्फोट की विशेषता।
(ब) विस्फोट के स्थान की उपयुक्तता।
(स) विस्फोट का दृश्य।
(३) तत्कालीन प्रधानमन्त्री द्वारा भारत के वैज्ञानिकों को बधाई।
(४) विश्व के अधिकांश राष्ट्रों द्वारा भारत की वैज्ञानिक प्रगति की प्रशंसा।
(५) कुछ राष्ट्रों द्वारा आलोचना।
(६) प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी द्वारा आलोचक राष्ट्रों को मुँह तोड़ उत्तर।
(७) आणविक प्रगति से भारत को लाभ।
(८) उपसंहार।

निश्चित ही भारत ने उस दिन पाँच बड़े राष्ट्रों (अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन) के अणु-शक्ति एकाधिकार को छिन्न-भिन्न कर विश्व के छठे अणु-राष्ट्र के रूप में अपने को विश्व शक्तियों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। अणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष डॉ. एच० एन० सेठना के अनुसार, "१० से १५ किलो टन टी० एन० टी० शक्ति वाला यह विस्फोट एकदम सफल, १०० प्रति शुद्ध ईंधन तथा भारतीय सामग्री एवं तकनीक पर आधारित था, यह पूर्णतः नियन्त्रित सीमित विस्फोट था, इसका उद्देश्य गहराई तक धंसने और चट्टान तोड़ने की शक्ति मापना था जिसमें वह पूर्णतः सफल रहा।" इस प्रकार के भूगर्भीय विस्फोट अब तक केवल अमेरिका और सोवियत संघ ने ही किए है। यह अणु-विस्फोट १०--१५ किलो टन टी०एन०टी० की विस्फोट शक्ति का सम्भवतः द्वितीय विश्व-युद्ध में जापान के नागासाकी पर गिराये गये अणु-बम के बराबर था। अणु ऊर्जा विभाग की घोषणा के अनुसार इस बम को अन्तर्विस्फोट प्रणाली से विस्फोटित किया गया। इससे यह सिद्ध होता है कि भारत को इस तकनीक की आधुनिकतम जानकारी है। यह भारतीय अणु बम सन् १९४५ में हिरोशिमा पर गिराये गये अणु बम के आकार से भी छोटा बताया जाता है। हिरोशिमा का बम लगभग २० किलो टन का था। सन् १९६४ के चीन द्वारा किये गये अणु विस्फोट में प्रयुक्त बम का आकार भी लगभग इतना ही था। भारत ने प्लूटोनियम-प्रणाली का प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि आणविक तकनीक में वह किसी से पीछे नहीं है। प्लूटोनियम विश्व की एक सर्वाधिक विनाशक धातु है और इसका प्रयोग करने के लिये आधुनिकतम तकनीक की आवश्यकता होती है। ओजिस्टानल मैथड (सक्षेपी पद्धति) का बजाय अन्तर्विस्फोट भूमिगत पद्धति (इम्पलोजन टैक्नीक) में प्लूटोनियम पिंड को विखण्डित करना और भी कठिन है और इस बात का परिचायक है कि भारत ने इस क्षेत्र में इतनी जबरदस्त प्रगति की है।

अणु-शक्ति आयोग के अध्यक्ष डॉ० सेठना के अनुसार भारत के पहले शान्ति-पूर्ण अणु परीक्षण पर अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य के आधार पर लगभग ३० लाख रुपये खर्च

हुए जो ४ लाख अमरीकी डालर के बराबर हैं। डॉ० सेठना ने कहा— अणु-परीक्षण पूर्णत शांतिपूर्ण कार्य के लिये किया गया है। विस्फोट के लिये स्थान का चयन भी व्यापक अध्ययन के बाद किया गया, जिससे परीक्षण से प्राप्त ज्ञान का सीधा उपयोग ऐसे ही स्थानों में जहाँ तेल अथवा गैस निकालने की सम्भावना हो, परीक्षणों में किया जा सके।" अणु बम बनाने की कल्पना को उन्होंने निरर्थक और ज्वालामुखी पर बैठना जैसा बताया।

भाभा अणु अनुसंधान केन्द्र के निदेशक डॉ० आर० रामन्ना ने बताया कि अणु विस्फोट से विस्फोट स्थल के आस पास का दृश्य बदल गया। विस्फोट से एक कृत्रिम पहाड़ी बन गई, जिससे बड़ा सुन्दर दृश्य लगने लगा। डॉ० रामन्ना ने कहा कि जब विस्फोट हुआ तब मिट्टी, रेत, पत्थर बहुत जोरो से उछले। हमने यह सब ४ कि० मी० दूर से देखा। हमें सूचना मिली कि वहाँ बहुत कम रेडियोधर्मिता फैली। इसके बाद हम लोगो ने आगे बढ़कर विस्फोट स्थल से १०० मीटर दूर से यह सुन्दर दृश्य देखा। विस्फोट से जो गड्ढा हुआ, उसका अर्द्ध व्यास लगभग २०० मीटर था।

१८ मई, १९७४ को प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी ने केन्द्रीय मन्त्रि मण्डल की विशेष बैठक में इस आणविक महान् उपलब्धि की घोषणा की तथा विदेश मन्त्रालय को निर्देश दिया कि वह विश्व की महाशक्तियों को अणु-क्षेत्र में भारत की नवीनतम उपलब्धि व सफलता के सम्बन्ध में सूचित कर दें। उसी दिन शाम को बुलाये गये संवाददाता सम्मेलन में इस अद्वितीय वैज्ञानिक उपलब्धि पर असीम प्रसन्नता प्रगट करते हुए प्रधानमन्त्री ने अणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष डॉ० एच० एन० सेठना और उनके साथियों को बधाई दी। श्रीमती गांधी ने कहा कि इन वैज्ञानिकों ने अच्छा और व्यवस्थित काम कर दिखाया है। हमें और सारे देश को इन पर गर्व है। शान्तिपूर्ण कार्यों के लिये ही अणु शक्ति के प्रयोग की नीति को स्पष्ट करते हुये उन्होंने कहा कि यह अनुसंधान और अध्ययन के लिए है पर तु हम अणुशक्ति का उपयोग शान्तिपूर्ण कार्यों के लिये ही करने को संकल्पबद्ध हैं।

विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने भारत के अणु विस्फोट का स्वागत किया और भारतीय वैज्ञानिकों को बधाइयाँ दीं तथा इस परीक्षण को तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति का प्रतीक बताया। फ्रांसीसी परमाणु ऊर्जा आयोग ने भारत द्वारा किए गए सफल परमाणु परीक्षण पर भारतीय वैज्ञानिकों को बधाई दी तथा डॉ० सेठना को भेजे गये अपने संदेशों में कहा कि इससे भारतीय वैज्ञानिकों की प्रतिभा का पता चलता है। सोवियत संघ ने भारत के सफल अणु-परीक्षण पर प्रसन्नता प्रगट करते हुए सोवियत समाचार एजेंसी 'तास' के माध्यम से भारत के शान्तिपूर्ण इरादों पर जोर दिया। अर्जेन्टीना, ब्राजील, आस्ट्रेलिया तथा स्विटजरलैंड ने भी इस उपलब्धि का स्वागत किया। युगोस्लाविया ने भारतीय परमाणु परीक्षण का स्वागत करते हुए कहा कि, "मित्र देश भारत को विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में यह महान् सफलता है तथा इस परमाणु परीक्षण से यह सिद्ध हो जाता है कि भारत सरकार का यह आश्वासन सही था कि वह परमाणु शक्ति का उपयोग केवल शान्तिपूर्ण कार्यों के लिये ही करेगी। इस तथ्य का भी स्वागत किया जाना चाहिये कि भारत परमाणु तकनीकी के क्षेत्र में अब किसी से पीछे नहीं है, एक गुट निरपेक्ष तथा विकासशील देश ने अपने आप अपनी शक्ति से यह महान सफलता पायी है।

यूगोस्लाविया भारत के इस विश्वास का समर्थन करता है कि परमाणु परीक्षण शक्ति का उपयोग हथियार बनाने के लिये नहीं किया जायेगा।" पश्चिमी जर्मनी ने मध्य मार्ग अपनाते हुए कहा कि पश्चिमी जर्मनी भारत को अधिक सहायता देता रहेगा तथा भारत सहायता क्लब की बैठक में पश्चिम जर्मनी का दल भारत के पक्ष में रहेगा। ब्रिटेन ने भी भारत के अणु परीक्षण का स्वागत किया। १८ मई, १९७४ को बी०बी०सी० लन्दन ने कहा कि भारत विश्व का छठा अणु राष्ट्र हो गया। भारत अणु परीक्षण द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहता है, परन्तु पाकिस्तान इसे खतरा मानेगा। लन्दन के 'दी आब्जर्वर' ने लिखा कि पाँच बड़े परमाणु राष्ट्रों के क्लब में शामिल होने वाला भारत प्रथम विकासशील देश है। परमाणु क्षेत्र में भारत की क्षमता को कई वर्षों पूर्व स्वीकार कर लिया गया था। अणु-आयुध प्रसार निरोध सन्धि पर हस्ताक्षर करने से भारत के इन्कार के बाद यह परमाणु विस्फोट अधिक आश्चर्यकारी साबित नहीं हुआ है। अब सवाल यह है कि भारत इस दिशा में कितनी तेजी से प्रगति करता है। इस समय भारत में जितना प्लूटोनियम तैयार हो रहा है उससे प्रतिवर्ष ३५ छोटे बम तैयार हो सकते है अतः विशेषज्ञों का कहना है कि कुछ ही वर्षों में भारत के पास आणविक सैनिक शक्ति पर्याप्त हो जायेगी। १८ जून १९७४ को विदेश मन्त्रालय से सम्बद्ध संसदीय सलाहकार समिति की बैठक मेंभारत सरकार ने बताया कि एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका के गुट निरपेक्ष देशों ने भारतीय परमाणु विस्फोट का स्वागत किया है और इस बात पर खुशी प्रकट की है कि चीन के बाद भारत ने परमाणु विज्ञान के क्षेत्र में बड़ी ताकतों के एकाधिकार को समाप्त कर दिया है।

जहाँ विश्व की प्रतिक्रिया भारत जैसे विकासशील देश के पक्ष में हुई वहाँ कुछ राष्ट्र ऐसे भी थे जिनमें से किसी को दुःख हुआ, किसी को चोट लगी, कुछ पुराने दर्द से घबरा उठे और कुछ आज्ञा न लेने की अवज्ञा से अपने को अपमानित समझ धमकियाँ दे उठे। दुःख हुआ अमेरिका को, चोट पहुँची पाकिस्तान को, पुराना दर्द उभरा जापान का और सहायता बन्द करने की धमकियाँ दे बैठा कनाडा। पाकिस्तान के तत्कालीन एवं अब स्वर्गवासी प्रधानमन्त्री श्री भुट्टो ने १९ मई १९७४ को प्रेस कान्फ्रेंस में परमाणु विस्फोट पर टिप्पणी करते हुये कहा कि पाकिस्तान भारतीय उप-महाद्वीप में भारत की चौधराहट को स्वीकार नहीं करेगा तथा भारत की धौंस पट्टी का प्रतिरोध करने के लिये अपने राजनैतिक प्रयत्न जारी रखेगा। भुट्टो ने कहा कि भारत ने अणु-परीक्षण कर अणु अस्त्र प्रसार सन्धि की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। २१ मई, १९७४ को तत्कालीन विदेशमन्त्री श्री स्वर्ण सिंह ने पाकिस्तान की शंकाओं को निर्मूल तथा दुर्भाग्यपूर्ण बताते हुए कहा कि पाकिस्तान का यह आरोप निराधार है कि भारत किसी अन्य देश तथा क्षेत्र पर आधिपत्य जमाने या प्रभाव जमाने के लिये परीक्षण कर रहा है तथा घोषणा की कि भारत की परमाणु बम बनाने की कोई इच्छा नहीं है, हम परमाणु शक्ति का केवल शान्तिपूर्ण उपयोग ही करेंगे। २२ मई १९७४ को प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भुट्टो को पत्र लिखकर स्पष्ट किया कि पाकिस्तान की यह शंका पूर्णतः निर्मूल है कि भारत परमाणु-अस्त्र बनाकर पाकिस्तान को धमकी देगा और शिमला समझौते को रद्द करेगा। भारत ने परमाणु के शान्तिपूर्ण उपयोग के लिए ही परीक्षण विस्फोट किया है। श्रीमती गाँधी ने स्पष्ट कहा कि अन्य देशों पर चौधराहट जमाने का भारत का

कोई इरादा नही है और इस बारे मे पाकिस्तान की सभी आशकायें निर्मूल। इतने समझाने बुझाने के बावजूद भी पाकिस्तान अपनी विषाक्त विचारधारा से बाज नहीं आया।

"उनकी हर रात गुजरती है दिवाली की तरह,
हमने एक दीप जलाया तो बुरा मान गये।"

भारत के अणु विस्फोट से अमेरिका को इतना दु ख हुआ कि हमारी गरीबी की कहानी हमको ही सुनाने लगा, व्यग और आलोचनायें छपी, उधर कनाडा ने भारत की परमाणु सहायता इसलिये स्थगित कर दी क्योंकि वह यह जानना चाहता था कि भारत को विस्फोट के लिये प्लूटोनियम कहाँ से प्राप्त हुआ। पाकिस्तान के पेट में अकारण ही दर्द पैदा हो गया था और उसने अपनी हिमायत के लिये चीखना शुरू कर दिया था। इसी प्रकार की चिल्ल पों करने वाले अन्य राष्ट्रों को भी फटकारते हुए श्रीमती गाँधी ने २५ मई, १९७४ को अफ्रीकी एकता सङ्गठन के ग्यारहवें स्थापना दिवस पर आयोजित समारोह मे, जिसमें अनेक देशों के राजदूत भी उपस्थित थे, सिंहनी की भाँति गर्जना करते हुए कहा—"शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिये भारत के अणु-परीक्षण पर नाक भौं सिकोड़ने वाले क्या यह मानते हैं कि बड़े देशों को विध्वस के लिये अणु बम बनाने का अधिकार है और भारत जैसे विकासोन्मुख देश अपनी जनता की गरीबी तथा दूसरी मुश्किलों को हल करने के लिये भी अणु शक्ति का विकास नहीं कर सकते। उन्होंने कहा कि यह बात समझ में नहीं आती कि जिस चीज के लिये हम पिछले २५ साल से प्रयत्न कर रहे थे उस पर अब इतना शोर क्यों किया जा रहा है। हमने चोरी छिपे कुछ नहीं किया है जो कुछ किया है उसकी घोषणा बहुत पहले से कर दी थी। हम अब भी अपनी पुरानी बात पर अटल हैं कि अणु शक्ति का प्रयोग कृषि विकास, बिजली उत्पादन तथा चिकित्सा के क्षेत्र में ही किया जायेगा, विध्वस के लिये नहीं। भारत के इस परीक्षण से किसी को डरने की जरूरत नहीं है।" प्रधानमन्त्री ने कुछ देशो के इस तर्क को निराधार बताया कि भारत के अणु विस्फोट से विश्व मे एक नया तनाव पैदा हुआ है। उन्होंने कहा कि "भारत सरकार हमेशा से कहती रही है और मेरा भारत के सभी पड़ोसी देशों को पुन यह आश्वासन है कि अणु विस्फोट के बाद उन्हें भारत से किसी तरह डरने की जरूरत नहीं है। अणु शक्ति के क्षेत्र मे हम जो कर रहे हैं उसकी तकनीकी जानकारी हम अपने पड़ोसी देशों को बाँटने के लिये भी तैयार हैं। श्रीमती गाँधी ने कहा कि कुछ देश यह कह रहे हैं कि भारत जैसे गरीब देश को अणु शक्ति की दौड में नहीं पड़ना चाहिये। ऐसी बात तब भी कही गई थी जब हमने अपने यहाँ भारी उद्योगों की स्थापना की शुरुआत की थी। असल मे ये देश भारत को बहुत विकसित देखना नहीं चाहते। प्रधानमन्त्री ने कहा कि आज की दुनिया जिस तेजी से बदल रही है उसे देखते हुये हमारे लिये यह जरूरी हो गया कि हम विज्ञान व टेक्नोलोजी मे नई खोज देश के आर्थिक विकास तथा अपनी जनता का जीवन-स्तर उन्नत करने के लिये नये साधनों की तलाश करें।"

प्रधानमन्त्री ने २७ मई, १९७४ को अमेरिकी पत्रिका 'न्यूजवीक' के एक इन्टरव्यू में स्पष्ट कहा कि भारत को ऐसा समझ लिया गया है कि जब चाहा उसकी तारीफ कर दी और जब चाहा उसे लताड़ा अमेरिका जो सहायता देता है वह एक तरफा नही है, वास्तव में विद्वानों के रूप मे हम भी अमेरिका को कुछ

मदद तो देते ही हैं, अमेरिका किसी न किसी तरह हमारे कुछ श्रेष्ठ वैज्ञानिकों को यहाँ से ले ही जाता है। हमने जो परीक्षण किया है वह हमारे अनुसंधान कार्य का ही अंग है, हमने इस सम्बन्ध में कभी अपने को मजबूत बनाने, दूसरों में भय पैदा करने, प्रतिष्ठा या गर्व की दृष्टि से नहीं सोचा। १६ जून, १६७४ को प्रधानमन्त्री ने अमेरिकन ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन की एक दूर-दर्शन भेंट वार्ता में यह स्पष्ट कर दिया कि "भारत द्वारा परमाणु परीक्षण किये जाने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। जिन देशों ने महात्मा गांधी के जीते जी उनके बारे में कभी एक शब्द भी सराहना का नहीं कहा, वे अब हमें उपदेश दे रहे हैं कि महात्मा गांधी के सिद्धान्त क्या थे—जैसे कि वे हमसे ज्यादा महात्मा गांधी को जानते हों।"

२० जून, १६७४ को राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी में भाषण करते हुए इस सन्दर्भ में श्रीमती गांधी ने फिर कहा कि "विश्व के कुछ राष्ट्र दुरंगी नीति अपना रहे हैं। हमने एक परमाणु विस्फोट किया तो लोगों ने आसमान सिर पर उठा लिया जबकि अन्य राष्ट्र आये दिन ऐसा करते रहते हैं और कोई चिल्ल पुकार नहीं होती।" स्मरण रहे कि भारतीय परमाणु विस्फोट के १ मास बाद चीन ने वायु-मण्डल में तथा इसी के आस-पास फ्रांस ने भी प्रशान्त महासागर में परमाणु-विस्फोट किया था। शक्ति और सामर्थ्य वैषम्य की कितनी विचित्र विडम्बना है—

"एक हैं वे जब चाहें, जहाँ चाहें, जो चाहें कह दें,
एक हम हैं कि कह भी, कुछ तो कहीं सकते नहीं।"

यह सत्य किसी से छिपा नहीं है कि परमाणु विस्फोट करने वाले अन्य सभी देशों (अमेरिका, रूस, इंग्लैंड, फ्रांस तथा चीन) का घोषित उद्देश्य सैनिक उद्देश्य है। भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसका उद्देश्य शान्तिमय विकास है। भारत गरीब देश है यह अपनी गरीबी दूर करने के लिये ही परमाणु विज्ञान का उपयोग करना चाहता है। परमाणु बम से संहार के खतरे का जहाँ तक सम्बन्ध है वह सर्वविदित है। नागासाकी और हिरोशिमा में परमाणु बम से होने वाला लोमहर्षक संहार विश्व देख चुका है। परन्तु इस भारतीय परमाणु विस्फोट के साथ जो रचनात्मक शिव संकल्प जुड़े हैं, वही उसकी विशेषता है। अब तक परमाणु विज्ञान का उपयोग आसुरी उद्देश्यों एवं संहारक शस्त्रों के विकास के प्रयोजनों के लिये किया जाता रहा है परन्तु भारत ने इस विज्ञान को संहारक मार्ग से हटाकर मानवता की सेवा के लिये शान्तिमय प्रयोजनों की नई दिशा प्रदान की है जो भारतीय आदर्शों और प्राचीन काल से चली आ रही परम्पराओं के अनुकूल है।

भारत के द्वारा किये गये भूगर्भीय परमाणु विस्फोटों के द्वारा सरलता से नहरें खोदी जा सकती हैं जिनसे भारतीय कृषि जगत् में एक नया जीवन आयेगा। तेल और गैसें पृथ्वी में से सरलतापूर्वक निकाली जा सकती हैं। धातुओं की खानों का निर्माण हो सकता है, नदियों के बहाव को मोड़ा जा सकता है, बन्दरगाहों की सफाई की जा सकती है, मानव की जीवन-लीला समाप्त करा देने वाले रोगों से मुक्ति मिल सकती है और सबसे बड़ा लाभ यह है कि हम अपनी परमाणु सुरक्षा प्रणाली के विकास के लिये किसी अन्य देश पर निर्भर न रहेंगे। भूगर्भ में भी परमाणु विस्फोटों से चट्टानों की गर्मी द्वारा बिजली उत्पन्न कर सकेंगे। अमेरिकी वैज्ञानिक भी भूमि की गर्मी द्वारा बिजली तैयार करने के लिये भूगर्भ विस्फोट करने

पर विचार कर रहे हैं। भूगर्भ में जो कठोर चट्टानें छिपी हैं, उनमे बहुत विद्यमान है, परमाणु विस्फोट से भूगर्भ की यही चट्टानें फोड़कर उनकी दरारों से पानी का रास्ता निकाला जायेगा, चट्टानों की गर्मी इस पानी को भाप में बदल देगी, और यह भाप एक अन्य छेद से बाहर निकलकर टरबाइन जेनेरेटर चलाने के काम आयेगी जिससे बिजली पैदा होगी। भारत, खनन-उद्यमों के अतिरिक्त परमाणु बिजली परियोजनाओं के दूसरे चरण में प्लूटोनियम के अधिकांश उत्पादन का उपयोग बिजली के उत्पादन के लिये करेगा जिससे देश की आर्थिक समृद्धि मे तीव्रता आयेगी। इस परमाणु विस्फोट से एक मनोवैज्ञानिक तात्कालिक लाभ यह हुआ है कि भारतीयों का मनोबल ऊँचा हुआ है। अब भारत भी विश्व में अपना सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकेगा।

२७ नवम्बर, १९५४ को नई दिल्ली में एक सम्मेलन में, जिसमें डॉ० भाभा भी उपस्थित थे, प० जवाहर लाल नेहरू ने घोषणा की थी कि 'भारतीय परमाणु कार्यक्रम का उद्देश्य केवल शान्तिकालीन है।" उन्हीं पद चिन्हों पर चलते हुए वही घोषणा १८ मई, १९७४ को भारत के प्रथम परमाणु विस्फोट के बाद श्रीमती गांधी ने दिल्ली में की। उन्होंने कहा कि हम अणु-शक्ति का उपयोग शांतिमय कार्यों के लिये ही करने को संकल्पबद्ध हैं। २७ वर्ष पूर्व भारत मे स्वर्गीय होमी भाभा ने परमाणु विज्ञान के अनुसंधान की जो नींव डाली थी, यदि उसके साथ हमारे चिर-पोषित संकल्प जुड़े न होते तो सम्भव है, भारत यह विस्फोट अनेक वर्ष पहले ही कर चुका होता। किन्तु शान्तिमय प्रयोजनों के लिए प्रदूषण रहित भूगर्भीय प्रयोग के साथ बंधे होने से भारत को इस विस्फोट मे इतना समय लग गया। आशा है कि इस परमाणु विस्फोट से देश की दीन हीन, निर्धन और अभावग्रस्त जनता की दशा सुधारने मे योग देने वाले रचनात्मक कार्यों द्वारा एक समृद्ध गौरवशाली राष्ट्र के निर्माण में सहायता मिल सकेगी। विश्वास किया जाता है कि भारतीय वैज्ञानिक भविष्य में, जैसी कि भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती गांधी ने आशा प्रकट की है, इससे भी अधिक क्षमता के परमाणु विस्फोट करने में समर्थ होंगे जिनके गर्भ मे केवल मानव कल्याण ही निहित होगा।

मार्च १९७७ म नई केन्द्रीय सरकार की स्थापना के बाद अमेरिका के राष्ट्रपति जिमीकार्टर १ जनवरी से ३ जनवरी १९७८ तक भारत की राजकीय यात्रा पर आये। उन्होंने २ जनवरी १९७८ को संसद के संयुक्त अधिवेशन मे स्वागत के समय, स्पष्ट घोषणा की थी कि अणु शक्ति विकास मे भारत और अमेरिका का सहयोग जारी रहेगा और अमरिका भारत को आवश्यकतानुसार प्लूटोनियम देता रहेगा। परन्तु अमरिका लौटने पर वहाँ की संसद के विरोध के कारण श्री कार्टर को अपने वायदे को भूलना पड़ा। इस पर प्रधानमन्त्री श्री देसाई ने अनेक बार निर्भीकता से घोषणा की कि यदि अमेरिका अपने वायदे से मुकरता है तो हम भी अमरिका से बंधे नहीं हैं, हम कहीं से भी प्लूटोनियम लेने में स्वतन्त्र हैं। सन् १९८० म श्रीमती गांधी पुन देश की प्रधान मन्त्री बनीं और उन्होंने परमाणु शक्ति के विकास की ओर अपना ध्यान केन्द्रित रखा है। यद्यपि अमेरिका अपने वायदे को भुलाकर और १९६३ की परमाणु ईंधन सम्बन्धी संधि को तोड़कर भारत को प्लूटोनियम देने में आनाकानी कर रहा है लेकिन अगस्त, १९८२ मे भारत ने इस क्षेत्र म आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। अब भारत इस दिशा मे उत्तरोत्तर आगे बढ़

रहा है। सम्भव है कि भारतीय वैज्ञानिक निकट भविष्य में मानव कल्याण के लिये भूगर्भीय प्रदूषण रहित अणु-विस्फोट करने में समर्थ हो सके। लेकिन इतना अवश्य है कि आणविक शक्ति के क्षेत्र में भारत का भविष्य उज्ज्वल है। ●

५ "आर्यभट्ट"

—अन्तरिक्ष अनुसन्धान में भारत की प्रथम महान् उपलब्धि

१८ मई, १९७४ की प्रातः वेला में अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन रूपी पंच परमेश्वरों के दम्भ को दमन करते हुये भारत ने सफल प्रथम अणु-विस्फोट कर अपने को छठा अणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र सिद्ध कर दिया था। हमारे मित्र कहलाने वाले राष्ट्रों ने तब अपना असली रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया था—भर पेट आलोचनायें की थीं, कीचड़ उछाली थी और वे भारत के वृद्धिशील ऐश्वर्य को न देख सके थे परन्तु श्वानों का प्रलाप गजराज की मदोन्मत्त गति में कोई अन्तर न ला सका, वह अपने गौरवपूर्ण गन्तव्य की ओर बढ़ता गया और वे यथास्थान, यथास्थिति में ही रहे। तब भी भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने २९ मई, १९७४ को अफ्रीका एकता संगठन के ग्यारहवें स्थापना दिवस पर आयोजन समारोह में जिसमें अनेक देशों के राजदूत उपस्थित थे; कहा था—"शान्ति पूर्ण उद्देश्यों के लिये भारत के अणु परीक्षण पर नाक भौं सिकोड़ने वाले क्या यह मानते हैं कि बड़े देशों को विध्वंस के लिये अणु-बम बनाने का अधिकार है और भारत जैसे विकासोन्मुख देश अपनी जनता को गरीबी तथा दूसरी मुश्किलों को हल करने के लिये भी अणुशक्ति का विकास नहीं कर सकते।"

"आर्यभट्ट"

(१) प्रस्तावना।
(२) भारत ११वाँ देश।
(३) आन्तरिक्ष अनुसन्धान एवं उपग्रह संचार।
(४) 'आर्यभट्ट'—नाम निर्माण प्रस्थान एवं कार्य।
(५) आर्यभट्ट में गड़बड़ी।
(६) उपग्रह से लाभ।
(७) उपसंहार।

इस स्थिति की पुनरावृत्ति तब हुई जब १९ अप्रैल, १९७५ को मध्यान्ह १ बजे भारत ने अपना पहला उपग्रह 'आर्यभट्ट' अन्तरिक्ष कक्षा में स्थापित करके अन्तरिक्ष युग में प्रवेश किया। अणु विस्फोट के पश्चात् विज्ञान के क्षेत्र में भारत की यह दूसरी महान् सफलता थी। अन्तरिक्ष में सफलता से कृत्रिम उपग्रह छोड़ने वाला भारतवर्ष ग्यारहवाँ देश है। अब तक अमेरिका, रूस, पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, कनाडा, जापान और इटली इस विषय में सफलता प्राप्त कर चुके हैं, परन्तु विकासशील देशों में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है।

भारतवर्ष में 'भारतीय अन्तरिक्ष शोध संगठन' के अधीन अन्तरिक्ष अनुसन्धान का कार्य सम्पन्न हो रहा है। जून, १९७२ में देश में अन्तरिक्ष आयोजन की स्थापना की गई थी। अब तक 'थुम्बा (केरल में एक स्थान का नाम) ईक्वेटोरियल राकेट लांचिंग' स्टेशन से अनेक राकेट छोड़े भी जा चुके हैं। इस केन्द्र

का १९६८ में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिये राष्ट्रसंघ को समर्पित कर दिया गया था। आन्ध्र प्रदेश में 'श्री हरिकोटा' नामक स्थान पर "सैटेलाइट ट्रैकिंग स्टेशन" स्थापित किया गया है। 'आर्यभट्ट' उपग्रह का नियन्त्रण भी श्री हरिकोटा के भारतीय अन्तरिक्ष केन्द्र से ही किया जा रहा है। अन्तरिक्ष अनुसंधान क्षेत्र में तमिलनाडु के ऊटी' स्थान में संसार की सबसे लम्बी बेलनाकार रेडियो दूरबीन लगाई गई है।

उपग्रह संचार के लिये १८ फरवरी १९७१ को पूना से लगभग ८० किलोमीटर दूर 'आर्वी' में एक व्यापारिक उपग्रह भू-संचार केन्द्र स्थापित किया गया जिसका इन्टालेस्ट III उपग्रह द्वारा इंगलैंड के 'गुनाहिली' केन्द्र से सम्पर्क जोड़ दिया गया। इस केन्द्र की प्रथम वर्षगांठ के अवसर पर २६ जनवरी १९७२ को इस केन्द्र का नाम 'विक्रम भू-केन्द्र' रख दिया गया। देश का भू-उपग्रह संचार केन्द्र देहरादून से २० किलोमीटर दूर 'डोईवाला' में है।

"आर्यभट्ट" उपग्रह का नामकरण सुप्रसिद्ध भारतीय खगोलशास्त्री और गणितज्ञ के नाम पर किया गया है। आर्यभट्ट का जन्म पाँचवीं शताब्दी में पाटलिपुत्र (पटना) के निकट कुसुमपुर में सन ४७६ में हुआ था। इन्होंने २३ वर्ष की अवस्था में अपना पहला ग्रन्थ "आर्यभट्टीय" लिखा था। आर्यभट्ट ने पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमण, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि के व्यास के सम्बन्ध में गम्भीर अनुसन्धान किये थे और इन तथ्यों का महत्व सिद्ध किया था। इसके अतिरिक्त आर्यभट्ट ने आधुनिक बीजगणित (एलजबरा) की भी आधारशिला रखी थी तथा गणित के अनेक विषयों पर कार्य किया था। आर्यभट्ट ने ही सर्व प्रथम शून्य के महत्व पर बल दिया था। श्री आर्यभट्ट के विषय में तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी ने उनकी १५००वीं जयन्ती पर भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान एकेडेमी नई दिल्ली में आयोजित समारोह में २ नवम्बर १९७६ को उद्घाटन भाषण करते हुए कहा था कि—"आर्यभट्ट की प्रतिभा इतनी व्यापक थी कि हम पाँचवीं शताब्दी के इस खगोलशास्त्री को बीसवीं सदी का अर्थशास्त्री कह सकते हैं। आर्यभट्ट भारतीय इतिहास में एक महान् व्यक्तित्व के रूप में उभरे और उनके वैज्ञानिक दावों का प्रसार चारों ओर हुआ। हमें इस बात की प्रसन्नता है कि भारत के प्रथम उपग्रह का नाम आर्यभट्ट ही रखा गया, हमारा यह उपग्रह भारतीय वैज्ञानिकों की योग्यता तथा परिश्रम का प्रतीक था।" उसी महान् खगोलशास्त्री की स्मृति को हरा भरा रखने के लिये इस भारतीय प्रथम उपग्रह का नाम वैज्ञानिकों ने आर्यभट्ट रखा है। आर्यभट्ट का निर्माण बंगलौर के पास 'पीन्या' नामक स्थान पर भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। पूर्णरूप से स्वदेशी सामग्री से विनिर्मित यह उपग्रह रूसी राकेट के आगे लगाकर रूस की भूमि से ही छोड़ा गया था क्योंकि हमारे देश में अभी ऐसे शक्तिशाली राकेट का निर्माण नहीं हुआ है जो इस उपग्रह को अन्तरिक्ष में स्थापित कर सकता। इस उपग्रह का वजन ३६० किलोग्राम है तथा इसका रंग नीला बैंगनी है। इसके निर्माण में २६ महीने तक पाँच करोड़ रुपए व्यय हुए हैं। ११६ सेन्टीमीटर ऊँचे इस उपग्रह के तीन मुख्य कार्य हैं—१. इसकी शक्ति की एक्स रे का अध्ययन करना, २ न्यूट्रॉन तथा गामा किरणों की जाँच करना, तथा ३ इलेक्ट्रॉन और अल्ट्रावायलेट किरणों का पता लगाना और उनका अध्ययन करना।

उपग्रह योजना के निदेशक प्रो० यू० आर० राव के अनुसार 'आर्यभट्ट' मे बिजली की सप्लाई गड़बड़ी हो जाने से उपग्रह के जरिए किये जाने वाले, कई तरह के परीक्षण बीच में ही बन्द कर दिये गये। इस गड़बड़ी का पता उपग्रह छोड़ने के पाँचवें दिन ही चल गया था। उपग्रह को पृथ्वी का चक्कर लगाते हुए २४ मई, ७५ तक ३५ दिन हो चुके थे। प्रो० राव ने बताया कि बिजली की सप्लाई की गड़बड़ी से उपग्रह के कार्य मे कोई दोष पैदा नही हुआ। उपग्रह के अन्य अनेक कार्यों के लिये उसे बिजली मिल रही है। केवल परीक्षण करने वाली तीन कोठरियाँ बंद पड़ी हैं। उपग्रह से सूर्य के प्रकाश से बिजली बनाने की व्यवस्था की गई थी और बिजली को जमा करने के लिये बैटरी सैल भी लगाये गये थे। ये सैल विदेशों से मंगवाये गये थे और उनकी पूरी जाँच करके ही उनको उपग्रह में रक्खा गया था। प्रो० राव ने कहा कि अभी यह नहीं बताया जा सकता है कि बिजली की सप्लाई का पता कब तक लगा लिया जाएगा, अभी यह भी पता नही लग सका कि बिजली की गड़बड़ी को जमीन से भी ठीक किया जा सकेगा या नहीं। परन्तु इस छोटी सी कठिनाई के अतिरिक्त उपग्रह काफी सफल रहा है और छः महीने तक कार्य करता रहेगा।

६ जौलाई, ७५ को इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स मे भाषण करते हुए उपग्रह योजना के निदेशक डॉ० राव ने बताया कि उपग्रह की १४ बिजली लाइनो में से १३ लाइनें बहुत अच्छी तरह काम कर रही हैं। बिजली की एक लाइन में खराबी पैदा हो गई है फलतः एक्स-रे खगोल और सौर भौतिकी के तीनो वैज्ञानिक परीक्षण बन्द कर दिये गये थे। २२ जौलाई, ७५ के बाद वे पुनः शुरू हो सके। प्रो० राव ने आशा व्यक्त की कि अयण बदल जाने पर उपग्रह को अधिक बिजली सुलभ होने की सम्भावना है। एक टेपरिकार्डर जो बराबर बिजली प्राप्त कर रहा है ठीक कर दिया गया है। उपग्रह के सम्बन्ध मे अनेक भ्रांतियों को दूर करते हुए प्रो० राव ने कहा कि वह बहुत संतोषजनक ढङ्ग से कार्य कर रहा है। अब तक भेजे गये २५० आदेशों का पालन कर चुका है। सचार परीक्षण के तौर पर कुछ आवाजें श्री हरिकोटा से उपग्रह को भेजी गई थीं और बङ्गलौर मे वापिस रिकार्ड की गई। प्रो० राव ने कहा कि अब तक जितने भी उपग्रह छोड़े गये हैं उनमें आर्यभट्ट सबसे अधिक शक्तिशाली है। उपग्रह १०२० परिक्रमा कर चुका है और आशा है कि ६ माह के लक्ष्य से [illegible] तक कार्य करता रहेगा। उन्होने आशा व्यक्त की कि १९७७-७८ [illegible] उपग्रह तैयार हो जायेगा।

११ सितम्बर १९७५ को प्रातः परमाणु ऊर्जा, इलेक्ट्रोनिक और अंतरिक्ष विभागों से सम्बंधित संसदीय सलाहकार समिति -जिसकी अध्यक्षता श्रीमती गांधी कर रही थीं को सूचित किया गया कि भारतीय उपग्रह 'आर्यभट्ट' के संकेतों को अब तत्काल श्री हरिकोटा से बङ्गलौर और बङ्गलौर से श्री हरिकोटा भेजने मे भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान [illegible] के वैज्ञानिकों ने सफलता प्राप्त कर ली है। यह सफलता अपने मे एक महान उपलब्धि है जिसका लाभ दूर-दूर बसे ग्रामीणों को चिकित्सा सहायता पहुँचाने में मिलेगा। आर्यभट्ट ई० सी० जी० संकेतों को श्री हरिकोटा ने बङ्गलौर तत्काल भेजने का प्रयोग ९ और १० सितम्बर को सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ, लगभग १०० संकेत भेजे गए थे। सूचना मे यह भी बताया गया है कि ईंधन की खपत को देखते हुए यह विश्वास है कि "आर्यभट्ट" एक दो वर्ष तक कार्य करता रहेगा।

भारत के लिये शिक्षात्मक कार्यक्रम प्रसारित करने के उद्देश्य से ३० मई, १९७४ को केप केनेवरल से २०½ करोड़ डालर का एक अमरीकी उपग्रह छोड़ा गया था जो अब तक का सबसे बड़ा तथा शक्तिशाली उपग्रह है। भारत एक वर्ष तक टेलीविजन पर शिक्षा कार्यक्रमों के लिये इसका उपयोग करेगा। इसके द्वारा मौसम तथा मानसून के पूर्वानुमान भी लगाए जायेंगे। इस उपग्रह को 'उपग्रह शिक्षात्मक टेलीविजन प्रयोग" कहा गया है। इसमें आकाशवाणी भारतीय अंतरिक्ष संगठन, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, यूनेस्को तथा अन्तर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ सहयोग कर रहे हैं। भारत पहला एशियाई राष्ट्र है। १९७५ के अन्त तक भारत के गाँवों में २४०० टेलीविजन सेटों की व्यवस्था की जा रही है जो सीधे उपग्रह से कार्यक्रम ग्रहण करेंगे। ये कार्यक्रम अहमदाबाद स्थित भू स्टेशन से उपग्रह भेजे जायेंगे।

१७ अगस्त, ७५ में पत्रकारों का एक दल उपग्रहीय दूरदर्शन की वास्तविक जानकारी प्राप्त करने राजस्थान के जयपुर जिले में गया था। पत्रकारों का मत है कि जयपुर जिले के गाँवों में उपग्रहीय दूरदर्शन ने वास्तव में एक अच्छे शिक्षक का काम किया है। जयपुर से २० किलोमीटर दूर श्योपुर गाँव के प्राथमिक स्कूल में दूरदर्शन सैट के साथ गोल एन्टीना लगा था। पत्रकार ने गाँव वाले से पूछा कि इसे क्या बोलते हो? उसने कहा—छाता और टेलीविजन को—रेडियो मशीन। उपग्रह से सीधे संकेत छाते पर आकर टेलीविजन पर पहुँचते हैं, इसीलिये बहुत साफ आते हैं। ग्रामीणों के स्वास्थ्य, बीमारी से बचाव, कृषि कार्यक्रम तथा परिवार नियोजन के शिक्षात्मक कार्यक्रमों में उपग्रहीय दूरदर्शन लाभकारी सिद्ध हो रहे हैं।

भारत के भाल को ऊँचा उठाने में अहर्निश संलग्न भारत माता के लाल ये भारतीय वैज्ञानिक निश्चित ही एक दिन देश की दीन हीन, निर्धन जनता को सुख शांति, स्वास्थ्य और समृद्धि के मनमय ह र के दर्शन करा सकेंगे, ऐसा कुछ विश्वास जमता जा रहा है। एक ओर परमाणु अनुसन्धान चल रहा है तो दूसरी ओर अन्तरिक्ष अनुसन्धान। देश इन सभी अनुसन्धानों का उपयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिये ही करने को संकल्पबद्ध है। प्रसिद्ध ज्योतिषी तथा गणितज्ञ आर्यभट्ट प्रथम की १५००वीं जयन्ती पर २ नवम्बर, १९७२ को भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान एकेडेमी नई दिल्ली में उद्घाटन भाषण करते हुए भारतकी तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भारतीय वैज्ञानिकों को यही परामर्श दिया। उन्होंने कहा—'भारतीय वैज्ञानिकों को आर्यभट्ट से प्रेरणा लेनी चाहिये जिससे वे बड़ी बातें सोच सकें।" और विज्ञान की सेवा के लिये काम कर सकें।" श्रीमती गांधी ने कहा—'हमें ऐसे नये वैज्ञानिकों व दार्शनिकों की जरूरत है, जो नैतिकता के विकास में मानव की मदद कर सकें, जिससे मानव की विस्मयकारी शक्तियों का प्रयोग उन चीजों के नाश में न हो, जिसके निर्माण में हजारों साल लग गए हैं।"

सरकार अन्तरिक्ष अनुसन्धान क्षेत्र में प्रगति और प्रौढ़ता लाने के लिये सतत प्रयत्नशील है। ७८ में रूस के सहयोग से भारत ने एक उपग्रह आकाश में छोड़ा है जो निरन्तर आकाश में भ्रमण करते हुए वहाँ की जानकारी दे रहा है भारत की भूमि से छोड़ा गया रोहिणी उपग्रह १९८० की भारत की अन्तरिक्ष विज्ञान में महान् उपलब्धि है। आशा है सन् ८२ तक भारत को अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में और भी अधिक आशातीत सफलता प्राप्त हो सकेगी।

६ स्पुतनिक या बालचन्द्र

विज्ञान ने जब-जब करवटें बदलीं तब तब विश्व में एक तहलका मचा। विज्ञान ने अपने नवीन एवं अद्भुत आविष्कारों से संसार को सदैव चमत्कृत किया है। जब रेलगाड़ी का पहली बार आविष्कार हुआ लोग कौतूहल दृष्टि से उसकी ओर देखते के देखते रह जाते थे। उसके बाद जब पनडुब्बियाँ और विमान बने तो लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जनता उसे वैज्ञानिकों की वायु पर विजय कहने लगी। जब वैज्ञानिकों को परमाणु के विस्फोट करने में तथा उससे ऊर्जा प्राप्त करने में सफलता मिली तब विज्ञान के इतिहास में एक नया पृष्ठ खुला। जनता ने समझा कि चरम-सीमा सम्भवत: यहीं तक हो परन्तु आज के वैज्ञानिक की स्पुतनिक की सफलता ने अपने पिछले सभी चमत्कारी चित्रों की आभा को प्रभावहीन बना दिया है।

स्पुतनिक या बालचन्द्र

(१) प्रस्तावना।
(२) स्पुतनिक का अर्थ, आविष्कार और प्रयोग।
(३) रूस और अमेरिका द्वारा इस दिशा में प्रगति।
(४) उपसंहार।

स्पुतनिक का अर्थ है साथ चलने वाला, या सहयात्री। यह शब्द रूसी भाषा का है। वे लोग इसे कम्पेनियन या बालचन्द्र भी कहते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करता है, उसी प्रकार यह कृत्रिम उपग्रह भी पृथ्वी की परिक्रमा करता है। रूसी लोग इसे स्पुतनिक कहते है, क्योंकि यह सहयात्री है। ४ अगस्त १९५७ को रूस ने इसे पहली बार छोड़ा था। आधुनिक वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में बहुत दिनों से प्रयत्नशील थे कि चन्द्रमा तथा दूसरे ग्रहों तक किस प्रकार यात्रा सम्भव हो सकती है। इस यात्रा में सबसे बड़ी बाधा पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति थी। पृथ्वी अपने आस-पास के सभी पिण्डों को अपनी ओर खींचती है और इसलिये सभी वस्तुएँ पृथ्वी की ओर आकर्षित होकर उस पर पड़ती हैं। इस विषय में राकेटों के परीक्षण बहुत दिनों से प्रारम्भ हो गये थे और यह सोचा जा रहा था कि यदि किसी पदार्थ को प्रति सेकिण्ड ७ मील की गति से फेंका जा सके, जिससे वह ८०० मील दूर तक चलता जाए, तो वह पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पर विजय प्राप्त कर सकता है। द्वितीय विश्व-युद्ध मे जर्मनी ने वी-१ और वी० प्रकार के राकेटो का उपयोग भी किया था। इस प्रकार रूस का यह आविष्कार नितान्त नवीन नहीं था, बल्कि जिन राकेटो का उपयोग जर्मन कर चुका था उन्हीं को रूसी वैज्ञानिकों ने अधिक विकसित रूप में विश्व के समक्ष उपस्थित कर दिया।

रूस में इस स्पुतनिक का एक स्मारक भी बनवाया गया है। वह स्पुतनिक, जो आकाश मे प्रथम बार ४ अक्टूबर, १९५७ को रूस द्वारा फेंका गया था, गोलाकार था। उसका व्यास ५८ सेन्टीमीटर तथा वजन ८२·६ किलोग्राम था। इसमें दो रेडियो ट्रांसमीटर लगे हुए थे, जो आवश्यक सूचना प्रसारित करते थे। जिस कैरियर राकेट में रखकर इसे फेंका गया था, वह १ महीने तक पृथ्वी का चक्कर लगाता रहा और फिर आकाश मे ही नष्ट हो गया। रूसी भौतिक शास्त्रियों का कहना

था कि वह स्पुतनिक वास्तविक चन्द्रमा से आठ गुनी अधिक गति से घूम रहा था। जनवरी के प्रथम सप्ताह में यह नष्ट हो गया।

प्रथम स्पुतनिक की सफलता का अभी आश्चर्य समाप्त नहीं हुआ था कि रूसी वैज्ञानिकों द्वारा ३ नवम्बर १६५७ को दूसरा स्पुतनिक छोड़ा गया जिसका वजन आधा टन, यानि लगभग १४ मन अर्थात् १२०० पौंड था। इससे भारी उपग्रह को छोड़ने से विश्व के प्रमुख वैज्ञानिक और भी अधिक चिंतित हुए। इसमें लाइका नाम की एक कुतिया भी बैठा कर भेजी गई थी। यह उपग्रह पृथ्वी से ६२० मील की दूरी पर छोड़ा गया था। इसने एक घण्टे ४२ मिनट में पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण की थी इसकी गति एक सेकिण्ड में ८,००० मीटर थी। वह पृथ्वी से १,५०० किलोमीटर से भी अधिक ऊँचाई पर प्रति २४ मिनट में पृथ्वी की सम्पूर्ण परिक्रमा करता था। इस उपग्रह को रूस ने अपनी अक्टूबर क्रान्ति की ४०वीं वर्षगांठ के उपलक्ष में छोड़ा था। इस बालचन्द्र में जीवित कुत्ते को बैठाकर भेजने का प्रमुख ध्येय यह था कि यह जानकारी प्राप्त हो सके कि इतनी ऊँचाई पर आकाश में इतनी तीव्रता से यात्रा करने से जीवित प्राणी में क्या-क्या प्रतिक्रियायें हो सकती हैं। अपने इस अनुभव से रूसी वैज्ञानिकों ने यह निश्चित कर लिया था कि रूस चन्द्रलोक की यात्रा करने में शीघ्र ही सफलता प्राप्त कर लेगा, जिस दिन रॉकेट छोड़ा गया था, उससे ठीक छः दिन बाद उस कुत्ते की मृत्यु हो गई।

रूस और अमेरिका दोनों देशों में अपनी शक्ति बढ़ाने की होड़ सी है। रॉकेट का प्रयोग युद्ध काल में शत्रु के पूर्ण विनाश के लिये भी किया जा सकता है। अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेण्ट आइजनहावर ने अपने ७ नवम्बर १६५७ के रेडियो वक्तव्य में रूस की इस वैज्ञानिक प्रगति को स्वीकार भी किया। रूस के दो उपग्रह छोड़ने के पश्चात अमेरिका ने विशेष प्रयत्न किया। रूस के प्रथम स्पुतनिक छोड़ने के ठीक १७ सप्ताह पश्चात् १ फरवरी १६५८ को अमेरिका ने अपना कृत्रिम उपग्रह एक रॉकेट द्वारा छोड़ा। जिसकी गति १८४०० मील प्रति घण्टा थी। इसने पृथ्वी की पहली परिक्रमा १०६ मिनट में पूरी की। इसका वजन केवल तीस पौण्ड था। यह तोप के गोले के आकार का था। अमेरिका के वैज्ञानिक ने इसकी जीवन अवधि दस माह से ढाई वर्ष तक अनुमानित की थी।

इसके पश्चात् १७ मार्च १६५८ को अमेरिका ने अपना दूसरा उपग्रह छोड़ा। पृथ्वी से इसकी दूरी २,५०० मील से भी अधिक अनुमानित की जाती थी। यह १३५ मिनट में समस्त पृथ्वी की परिक्रमा कर पाता था, इसका वजन भी ३ पौण्ड ही था। इसमें दो ट्रान्समीटर और ६ स्पर्शयन्त्र थे। ये १०८ और ११८ ३ मेगसाइकल पर रेडियो से सन्देश दे रहा था।

इसके बाद १५ मई १६५८ को रूस ने अपना तीसरा बालचन्द्र आकाश में छोड़ा। इसकी लम्बाई ११ ६ फीट थी व इसका वजन 1½ टन था। रूस ने पहिले भी दो उपग्रह छोड़े थे, उनसे यह उपग्रह १०० गुना बड़ा था। बालचन्द्रों के इन परीक्षणों से पृथ्वी के तापमान के सम्बन्ध में भी कुछ नए तथ्य ज्ञात हुए हैं। वह यह है कि २०० किलोमीटर की ऊँचाई पर कहीं अधिक उष्णत्व है और पूर्व की अपेक्षा कहीं अधिक उष्णता भी है। इसके बाद अमेरिका ने एक और उपग्रह छोड़ा जिसका वजन चार टन था। इससे रूस के प्रभाव में कुछ कमी आती प्रतीत हुई।

इसलिये २ जनवरी १९५९ को रूसियों ने उपग्रह छोड़ा, जिसके सम्बन्ध में यह कहा गया कि वह चन्द्रमा तक पहुँचेगा परन्तु यह रॉकेट चन्द्रमा से ३००० मील दूर होकर सूर्य की ओर चला गया। रूस ने पहले जो स्पुतनिक छोड़े थे, वे केवल पृथ्वी की परिक्रमा करते थे, परन्तु इस रॉकेट से रूसियों ने सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने वाला उपग्रह भी तैयार कर लिया। रूस की इस महान् वैज्ञानिक सफलता पर विश्व के वैज्ञानिक आश्चर्यचकित हो उठे।

आज समस्त मानव जाति का ध्यान सोवियत संघ एवं अमेरिका के अन्तरिक्ष कार्यक्रमों पर केन्द्रित है। अन्तरिक्ष कार्यक्रम के क्षेत्र में ११ अप्रैल १९६१ को नवीन अध्याय का सूत्रपात हुआ, जब सोवियत संघ समानव एक यान अन्तरिक्ष में भेजने में सफल हुआ। सोवियत संघ द्वारा छोड़े गए इस उपग्रह के चालक मेजर यूरी गगारिन को प्रथम अन्तरिक्ष यात्री कहलाने का गौरव मिला। मानव समाज इस अभूतपूर्व सफलता पर सोवियत वैज्ञानिकों का अभिनन्दन कर ही रहा था कि ५ मई १९६१ को अमेरिका ने अपनी प्रतिभा का परिचय देकर संसार को विस्मित कर दिया। उस ऐतिहासिक दिन अमेरिका ने सफलतापूर्वक एक मानव यान अन्तरिक्ष में भेजा, जिसके चालक थे कमाण्डर एलेन शेपर्ड, जिन्होंने प्रथम अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्री होने का सम्मान प्राप्त किया।

12 अक्टूबर 1964 को सोवियत संघ ने वोस्खोद (Voskhod) नामक एक उपग्रह अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त किया। वोस्खोद का अर्थ है सूर्योदय (Sunrise) और वास्तव में इस परीक्षण की सफलता ने वैज्ञानिकों में आशा की नवीन किरणों के साथ-साथ आत्म-विश्वास का संचार किया। यह प्रथम अवसर था कि जब एक यान में एक से अधिक तीन अन्तरिक्ष यात्रियों ने 24 घण्टों 17 मिनट तक पृथ्वी की परिक्रमा की। इससे पूर्व सोवियत वैज्ञानिकों ने कुछ घण्टों के अन्तर पर दो यान अन्तरिक्ष में भेजे थे। 11 अगस्त को मेजर आन्द्रेय निकोलेव (Andrian Nicolayex) तथा १८ अगस्त 1962 को कर्नल पोपविच (P. Popvich) को सफलतापूर्वक अन्तरिक्ष में भेजा गया, जिन्होंने क्रमशः ६४ और ४८ बार पृथ्वी की परिक्रमा की। 16 जून 1963 को समस्त संसार स्तब्ध रह गया, जब यह समाचार दिया गया कि सोवियत महिला पृथ्वी की परिक्रमा कर रही है। वह सोवियत महिला थी वेलेन्तीना तेरेश्कोवा जिन्होंने पृथ्वी की ४८ परिक्रमा करके सोवियत संघ को एक महिला को अन्तरिक्ष में भेजने का गौरव दिलवाया।

सन् 1965 का वर्ष अन्तरिक्ष वर्ष कहना ही अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इसी वर्ष आकाश यात्रा और आकाश विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक उपलब्धियाँ अविस्मरणीय और महत्वपूर्ण रहीं। इसी वर्ष 18 मार्च को सोवियत अन्तरिक्ष यात्री कर्नल अलेक्सी लियोनोव (Alexi Leonove) अपने पृथ्वी परिक्रमा यान से बाहर निकल कर लगभग दस मिनट तक विमुक्त अन्तरिक्ष में तैरने के उपरान्त अपने यान में वापिस लौट गए। अमेरिका भी अन्तरिक्ष दौड़ में सोवियत संघ से पीछे नहीं रहा। ३ जून को अमेरिकी आकाशयात्री मेजर एडवर्ड ह्वाइट ने अपने यान जेमिनी ४ से बाहर आकर शून्य आकाश सागर में सञ्चरण किया। इसी वर्ष 15 दिसम्बर को अमेरिका ने चन्द्रलोक की यात्रा के स्वप्न को साकार रूप देने की दिशा में महत्वपूर्ण परीक्षण किया, जब अमेरिका के दो आकाश यान—जेमिनी-३ और जेमिनी-७ का आकाश में संगम हुआ और दोनों यान पृथ्वी की परिक्रमा करते

र परस्पर ६ फुट की दूरी तक चालकों द्वारा लाये गये। (गुरुत्वहीन आकाश के यानों के बीच यान से बाहर निकल कर तैरना और दोनों यानों का इतने समीप पहुँचना, दोनों ही कार्य भविष्य की आकाश यात्राओं के लिए अत्यधिक आवश्यक हैं क्योंकि वैज्ञानिक त्रिशंकुओं, यानी आकाश स्टेशनों का निर्माण इन्हीं पर निर्भर करता है।) इसी वर्ष अमेरिका और सोवियत संघ दोनों ही देशों ने चन्द्रमा की सतह की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया, क्योंकि चन्द्रमा ही आकाश यात्रियों की पहली मंजिल है। जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से अमेरिका ने रेंजर और सोवियत संघ ने लूना नामक अनेक उपग्रह छोड़े, जो अपने उद्देश्यों में आंशिक रूप से सफल रहे। इसके अतिरिक्त, अमेरिका और सोवियत संघ दोनों ने अपने उपग्रह क्रमश मंगल और शुक्र की ओर भी उड़ाये। इस तरह १९६५ अपने पीछे यह विश्वास छोड़ गया कि मानव का भविष्य पृथ्वी की कैद में न रहकर आकाश की असीमता में स्वतन्त्र है।

अब तक चन्द्रयानों से प्राप्त जानकारी के आधार पर यह अनुमान किया गया कि चन्द्रवदन कहकर जिस चन्द्रमा से सुन्दर मुखड़े की उपमा दी जाती थी, उसी चन्द्रमा का मुखड़ा बड़ा ऊबड़ खाबड़ और कठोर है। २४ दिसम्बर १९६६ को सोवियत यान लूना-१३ चन्द्रमा के धरातल पर दबे पाँव (Soft landing) उतरने में सफल हुआ। (चन्द्रमा से ६० कि० मी० दूर रहते ही इसने अपने रिट्रो रॉकेट चालू कर दिये ताकि वह आहिस्ता से बिना झटका खाये उतर सके) इस यान से जो सूचनायें प्राप्त हुई हैं वह अब तक प्राप्त समस्त सूचनाओं से अधिक तथ्यपूर्ण और अद्भुत हैं। भौतिक और यांत्रिक दृष्टि से चन्द्रमा की सतह की जानकारी विशेष वैज्ञानिक महत्व की है। इस यान से प्राप्त महत्वपूर्ण सूचना के अनुसार, चन्द्रमा का धरातल २० से ३० सेंटीमीटर की गहराई तक उतना ही कठोर है जितना पृथ्वी का, तथा उसमें स्थान स्थान पर गड्ढे एवं दरारें आदि हैं। अमेरिकी चन्द्र यान लूना और विटर ३ ने २४ फरवरी १९६७ को उन स्थानों का सफलतापूर्वक सर्वेक्षण समाप्त किया जहाँ अन्तरिक्षयान चालकों को चन्द्रमा पर उतारा जा सकेगा। यान द्वारा पृथ्वी पर भेजे गये चित्रों से चन्द्रमा के विषुवत रेखा के साथ-साथ ऐसे उपयुक्त स्थानों का पता चलता है, जहाँ अमेरिकी यान चालक सुगमता से चन्द्रमा पर उतर सकेंगे। ८५० पौंड के इस यान को केप कैनेडी (फ्लोरिडा) से ४ फरवरी १९६७ को आकाश में प्रक्षिप्त किया गया, जिसने १५ फरवरी को निश्चित कार्यक्रम के अनुसार चन्द्रमा के चित्र लेने आरम्भ किये और तीनों महाद्वीपों पर समाचित एक संचार प्रक्रिया (Telestar) के अन्तर्गत उन्हें पृथ्वी पर सम्प्रेषित किया गया। हाल ही में अमेरिका द्वारा अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त अन्तरिक्ष यान और विटर-४ ने पृथ्वी पर चन्द्रमा का प्रथम चित्र भेजा। इस चित्र में दक्षिणी ध्रुव के निकट का क्षेत्र अंकित है जो इससे पूर्व कभी नहीं देखा गया था। केप कैनेडी से छोड़े गए इस यान का उद्देश्य था चन्द्रमा के अग्रभाग का ८० प्रतिशत से अधिक और पृष्ठ भाग का ८० प्रतिशत भाग चित्रांकित करना।

अन्तरिक्ष कार्यक्रम का इतिहास मानव के संकल्प, अदम्य आत्मविश्वास तथा साहस और शोध का प्रत्यक्ष साक्षी रहा है। गत दस वर्षों में इस क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगतियाँ हुई हैं और आज भी प्रगति का चक्र अनवरत गति में है लेकिन यह प्रगति निर्विरोध नहीं है बल्कि अनगिनत ज्ञात अथवा अज्ञात बलिदानों

का संजोया रहस्य है। 26 जनवरी 1967 का दिवस एक तीव्र वेदना का करुण दिवस बन गया है, जिस दिन केप कैनेडी अपोलो—1 अन्तरिक्ष यान के प्रक्षेपण मंच पर एक परीक्षण के दौरान अत्यन्त आकस्मिक रूप से आग लगने के कारण तीन सदस्यों का समूचा चालक मण्डल अत्यन्त दुःखद अवस्था में मारा गया। मृत्यु का आलिंगन करने वाले चालक मण्डल के सदस्य थे—वर्जिल ग्रिसम, एडवर्ड व्हाइट और रोजर चेफी। अमेरिका के चन्द्रयात्रा कार्यक्रम के लिये यह भयंकर आघात था। यह आशंका भी व्यक्त की गई कि इस दुर्घटना का अन्तरिक्ष कार्यक्रम पर प्रतिकूल प्र[illegible] अवश्यम्भावी होगा। वैज्ञानिक और बुद्धिजीवी वर्ग दुर्घटना के भयंकर आघात [illegible] भूल भी न पाये थे कि उनके स्वप्नों पर एक और वज्रपात हो गया। 26 अप्रैल 1967 को सोवियत संघ ने सोयूज-1 अन्तरिक्ष यान छोड़ा, जिसका संचालक था ४० वर्षीय व्लादीमीर कोमारोव। कार्यक्रम के अनुसार, यान से निरन्तर संदेश मिलते रहे और संचालक भी पूर्ण स्वस्थ रहा, लेकिन पृथ्वी पर उतरते समय यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया, जिसमें संचालक कर्नल व्लादीमीर कोमारोव मारा गया। कर्नल कोमारोव की मृत्यु के समाचार ने हर्ष के वातावरण को विषाद एवं दुर्भाग्य में परिणत कर दिया और वैज्ञानिकों को विवश कर दिया कि उन्हें सम्पूर्ण योजना पर पुनः विचार करना होगा और आवश्यक परिवर्तन करने होंगे।

गत दस वर्षों से अन्तरिक्ष दौड़ में प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अमेरिका तथा सोवियत संघ रहे। आज भी वास्तविक प्रतिद्वन्द्वी यही दो राष्ट्र हैं, हालांकि अन्य कुछ राष्ट्र जैसे भारत और फ्रांस भी इस दौड़ के प्रारम्भिक युग में पहुँच गये हैं और एक दो राष्ट्र सम्मिलित होने के लिये प्रयत्नशील हैं। दोनों राष्ट्र इस क्षेत्र में सम्भव सहयोग और वैज्ञानिक जानकारी का आदान प्रदान करने के इच्छुक हैं। मास्को रेडियो से प्रसारित शोक सन्देश यह निःसन्देह प्रसारित करता है कि चाहे राजनैतिक सम्बन्धों में दोनों देशों में अनेक विवाद हों पर अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान में प्रत्येक राष्ट्र परस्पर सद्भाव की दृष्टि रखता है—वर्जिल ग्रिसम, एडवर्ड व्हाइट और रोजर चेफी के शौर्य का हम अत्यधिक सम्मान करते हैं और अन्य लोगों के साथ मिलकर हम भी उनकी स्मृति को अत्यधिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

हर्ष है कि 12 वर्ष पूर्व अभियान सम्बन्धी जो इतिहास का नवीन पृष्ठ रूस द्वारा खोला गया था उसका समापन विजय वैजयन्ती सहित अमेरिका द्वारा २० जौलाई 1969 में सम्पन्न हो गया। अमेरिका नागरिक श्री नील आर्मस्ट्रांग विश्व और मानव के इतिहास में प्रथम मानव थे, जिन्होंने अपना चरण चन्द्रमा के वक्ष पर प्रथम बार रखा। श्री नील आर्मस्ट्रांग विश्व के वीर एवं साहसी पुरुषों के इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे। 1979 तक सोवियत संघ अनेकों उपग्रह छोड़ चुका है जो कि भिन्न-भिन्न ग्रहों की जानकारी और गतिविधि के विषय में संदेश दे रहे हैं। अमेरिका और सोवियत संघ के महानतम प्रयासों द्वारा निश्चित ही अन्तरिक्ष विज्ञान का भविष्य उज्ज्वलतम है।

७ विज्ञान—वरदान या अभिशाप

आवश्यकता आविष्कारों की जननी है। मानव सभ्यता जैसे-जैसे विकसित होती गई, मनुष्य की आवश्यकतायें उतनी ही उत्तरोत्तर बढ़ती गयीं। नवीन सुख की खोज के लिये वह अनवरत प्रयत्न करता है। वह अपनी वर्तमान परिस्थिति से

असन्तुष्ट था। उसकी अतृप्त कामनाओं ने, उसकी कौतूहल और जिज्ञासा वृत्ति ने उसे नवीन आविष्कारों के लिये प्रेरित किया। कल तक वह रेल या मोटरकार से यात्रा करता था, आज उसे वायुयान से यात्रा करने में भी सन्तोष नहीं है। अब वह मंगल ग्रह की राकेट यात्रा के लिये राकेट में अपना स्थान पूर्वाधिकृत करा रहा है। आज सिनेमा का स्थान टेलीविजन ले रहा है, शीशे के वस्त्रों का प्रयोग किया जा रहा है, धातुओं के स्थान पर प्लास्टिक का प्रयोग हो रहा है। अखरोट में पीतल की वार्निश का आविष्कार हो रहा है। यह सब विज्ञान का वरदान है। विज्ञान ने आज हजारों आश्चर्यजनक परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं। आज से दो-तीन सौ वर्ष पूर्व का मनुष्य प्राचीन स्मृतियों और धारणाओं के साथ यदि आज के संसार में आ जाए तो यह परिवर्तित संसार उसे विस्मय से स्तम्भित किये बिना नहीं रह सकता। आज विज्ञान ने संसार को महान् शक्तियाँ प्रदान की हैं। विश्व द्रुतगति से आगे बढ़ता जा रहा है। विज्ञान जब अपनी शैशवावस्था में था, मानव जाति ने इसको मंगलमय समझकर इसका स्वागत किया था। परन्तु प्रौढ़ावस्था में आकर यह विनाशकारी सिद्ध होने लगा। आज का सारा विश्व विज्ञान के हाथ का खिलौना है, जब वह चाहे इसे तोड़-मरोड़ कर फेंक सकता है। आज बड़े-बड़े विचारक इस चिन्ता में हैं कि ऐसा कौन सा उपाय किया जाए, जिससे विज्ञान मानव जाति के लिये वरदान रहे, अभिशाप न बने। ध्यानपूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान का इसमें कोई दोष नहीं। विज्ञान तो एक शक्ति है, जैसे अग्नि को आप खाना पकाने के काम में भी ला सकते हैं और आग लगाने के काम में भी। इसमें दोष है मानव की स्वार्थलिप्सा का, कलुषित विचारधाराओं का। विज्ञान का वरदान या अभिशाप होना उसके प्रयोग पर निर्भर है।

विज्ञान—वरदान या अभिशाप

१ प्रस्तावना।
२ वरदान के रूप में।
३ अभिशाप के रूप में।
४ उपसंहार।

विज्ञान ने मानव को आधुनिकतम शस्त्र अस्त्रों से सुसज्जित कर दिया है, जिनसे समय पड़ने पर वह अपने देश के गौरव और स्वाभिमान की रक्षा कर सकता है, शत्रुओं से अपने देश की सीमाओं को सुरक्षित रख सकता है और अन्याय का मुँह तोड़ उत्तर दे सकता है, जैसे कि भारत को पिछले तीन युद्धों में पाकिस्तान को उत्तर देने पड़े। यही नहीं विज्ञान ने वरदान के रूप में मानव जाति की जो सेवा की है, वह अमूल्य है। मानव जाति कभी इससे उऋण नहीं हो सकती। विश्व का एक-एक कोना आज मनुष्य के लिये घर के आँगन के समान है। विज्ञान के अभूतपूर्व सफलताओं से चन्द्रमा पर मानव ३६-३६ घण्टे की सैर कर चुका है। लम्बी से लम्बी यात्रा हम थोड़े समय में ही कर सकते हैं। आज हमें पानी के जहाज, हवाई जहाज और गाड़ियाँ उपलब्ध हैं। आज मनुष्य नीलाकाश में पक्षियों की तरह विचरण करता है। विद्युत के आविष्कार ने तो मानो युग ही बदल दिया। अलादीन के चिराग की भाँति सारे सुख हमारे सामने हाथ बाँधे खड़े हैं। बटन दबाते ही सारा नगर आलोकमय हो जाता है, निर्मल ज्योत्स्ना जगमगा उठती है। रोटी पकाना,

पानी गर्म करने, कपड़े सुखाने, पंखा चलाने, बड़ी-बड़ी मशीनों को चलाने में विद्युत हमारी सहायक होती है। विद्युत की शक्ति के सहारे आपको शीत ऋतु में ग्रीष्म के और ग्रीष्म ऋतु में शीत के आनन्द प्राप्त होते हैं। रूस मे जहाँ गेहूं पैदा नही होता था, वहाँ आज विज्ञान के बल पर गेहूं के विस्तृत खेत लहलहा रहे हैं। बेतार के तार से घर बैठे-बैठे आप समाचार भेज सकते है और प्राप्त भी कर सकते हैं। पृथ्वी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक २३ घण्टे मे सन्देश भेजा जाना सुलभ हो गया है। अपने घर पर ही रहकर अपने विदेशी मित्रो से बात कर सकते हैं। टेलीविजन में तो आप अपने मित्रों की मुखाकृति भी देख सकते है। रेडियो द्वारा विश्व भर का सुललित सगीत सुनिये व विश्व भर के समाचार सुनकर अपना ज्ञान-विस्तार कीजिए। आज मुद्रण यन्त्रो के द्वारा हज़ारो पुस्तकें घण्टे भर मे छपकर तैयार हो सकती हैं। सारे विश्व के समाचार आप नित्य समाचार-पत्रो मे पढ़ते ही हैं। चलचित्रों द्वारा मनुष्य का आज मनोरंजन होता है। ज्ञान और मनोरंजन का आज ऐसा कोई क्षेत्र नही, जहाँ विज्ञान का प्रवेश न हो।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी विज्ञान ने मानव जाति की पर्याप्त सहायता की है। इंगलैण्ड में ओल्डहैम के ब्रितानी अस्पताल के दो विशेषज्ञ डाक्टरो ने परखनली से २५ जौलाई, ७८ को एक लड़की को पैदा करके विश्व के चिकित्सा क्षेत्र में वैज्ञानिक आविष्कारों के अध्याय में एक नया अध्याय जोड़ दिया। इस समाचार से विश्व जनमानस स्तम्भित रह गया। इस प्रकार सन्तानहीनो को सन्तान खिलाने का काम भी विज्ञान ने अपने हाथों में ले लिया है।

इंग्लैण्ड के तुरन्त बाद भारतीय वैज्ञानिकों ने भी कलकत्ते में ३ अक्टूबर, १९७८ को परखनली से शिशु को जन्म दिया। ये भारतीय वैज्ञानिक थे कलकत्ता मेडिकल कालेज के गायनोलोजी के संयुक्त प्रोफेसर डा० सरोजकान्ति भट्टाचार्य, डा० मुखर्जी तथा प्रोफेसर मुखर्जी।

८ अक्टूबर ७८ को कैलीफोनिया के स्टेनफोर्ड नगर में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के शल्य चिकित्सकों ने ४३ वर्षीय जेरोग जंग नामक व्यक्ति के तीसरी बार नया हृदय लगाया। इसी व्यक्ति के १२ मई १९७६ को पहली बार हृदय लगाया गया था।

सन्तति निरोध के लिये अब तक कोई सफल औषधि नहीं थी, अधिकांश औषधियो मे कुनैन की मात्रा अधिक रहती थी, जिससे आन्तरिक हानि की आशंका रहती थी। भारत सरकार द्वारा मटर के कैप्सूल बनाये जाने की योजना है, जिसकी लागत केवल १२ पैसे प्रति कैप्सूल पड़ेगी एव जिसके दोष रहित रहने की पूरी आशा है। कुक्कुर खाँसी के लिये अब तक कोई उपचार नही था। राष्ट्र के भावी नागरिक अल्पावस्था मे ही काल कवलित हो जाते थे। अब 'एरोस्पोरिन' नामक पदार्थ से इस रोग को पर्याप्त मात्रा मे दूर किये जाने की आशा है। यह पदार्थ इगलैण्ड के 'सरे' नामक स्थान की मिट्टी में उपलब्ध है। छूत के रोगों, जैसे—जुकाम, हैजा आदि को दूर करने के लिये मिट्टी के प्रयोग हो रहे है। 'क्लोरोमाइसिटीन' जैसी औषधि का निर्माण भी वेन्जुवाला के एक खेत की मिट्टी से हुआ है। कैंसर के रोगी की असह्य वेदना को शान्त करने के लिये मर्फीया के इन्जेक्शन दिये जाते थे, जो कि अफीम से बनते थे। इसके लिये अफीम से एक 'मीटोपोन' नामक औषधि का निर्माण किया गया है, जो मार्फीन से अधिक शक्तिशाली है। 'कैंसर' को दूर करने के लिये

रेडियम की किरणों से यह काम लिया जाता था, परन्तु अब उससे भी अधिक शक्तिशाली कोबाल्ट किरणों की जरा-सी झलक से ही भयंकर कैंसर दूर हो जाता है।

खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में चैकोस्लोवाकिया के वैज्ञानिकों ने एक नवीन अनुसन्धान किया है। ब्लाटल की 'बेहम वनस्पति अनुसन्धानशाला' में एक ऐसा आलू उपजाया गया है, जिसका स्वाद सेब के समान होता है। उसे आप सेब की तरह, कच्चा भी खा सकते हैं। इसमें विटामिन सी की मात्रा पर्याप्त है जो उसे उबालने पर समाप्त नहीं होती। भारत के प्रसिद्ध भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र ने परखनलों से पौधे पैदा करके विश्व के समक्ष एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। इनसे आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पौधों की परखनली की सहायता से शानदार फसल तैयार की जा सकती है। विचारशक्ति से पूर्ण 'रोबट' या मस्तिष्क सम्बन्धी यन्त्रों के विषय में पर्याप्त अनुसन्धान हो रहे हैं। ये 'रोबट' गणित, इतिहास तथा आधुनिक घटना सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। केनेथ फ्रायड नामक विद्यार्थी ने एक ऐसा रोबट बनाया है जो कागज उठा सकता है, पानी की बन्दूक से स्वयं की रक्षा कर सकता है, बच्चों से छेड़ छाड़ भी कर सकता है, अपने बालों को खड़ा करके बालकों को भयभीत कर सकता है। इसके अतिरिक्त सफर में काम आने वाली, एक्स-रे यन्त्र को परमाणु भट्टी से प्राप्त होने वाली सफरी तराजू वाली मशीनें भी बनी हैं। इसके द्वारा चलते फिरते रहने पर भी किसी भी स्थान पर रख कर यह पता लगाया जा सकता है कि इनमें कितना सामान भरा है। मानव के मनोरंजन के लिए बारह इंच के व्यास का एक ऐसा ग्रामोफोन रिकार्ड बनाया है जो निरन्तर आठ घंटे तक हमारा मनोरंजन कर सकता है। श्री डी पिक्चर्स द्वारा हम किसी दृश्य को उसके यथार्थ रूप में देख सकते हैं। प्रयत्न यहीं तक सीमित नहीं हैं। अब ऐसा भी प्रयत्न किया जा रहा है कि उपवन का दृश्य आने पर दृष्टा पुष्पों की सुगन्ध का भी आनन्द ले सकता है। इसके अतिरिक्त मानव जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में काम आने वाली मशीनों का निर्माण हो रहा है। मैनसिफ़ृत पोर्टलैंड की नादर पोर्टलैंड कारपोरेशन के हरमन कोहन ने एक फुट लम्बे कृषि यन्त्र का आविष्कार किया है जो जोतने, बोने, भूमि को समतल करने आदि कई कार्यों को एक साथ कर सकता है। सूर्य ताप चूल्हा तो भारत में भी बनाया जा चुका है।

(कुटिल और स्वार्थी राष्ट्रों की कलुषित भावनाओं के कारण विज्ञान का यह वरदान रूप आज अभिशाप में परिवर्तित होता दृष्टिगोचर हो रहा है। जिस विज्ञान का जन्म मानव की सुख शान्ति की वृद्धि के लिए हुआ था, वही विज्ञान आज विश्व की संस्कृति और सभ्यता को नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहता है। हीरोशिमा तथा नागासाकी का विध्वंस, अमेरिका की बर्बरता को आज भी सिद्ध कर रहा है। अणु बम और उद्जन बमों के निरन्तर प्रयोग चल रहे हैं। एक नया हैलीकॉप्टर भी बनाया गया है, जिसकी गति ७५ मील प्रति घण्टा है। इसका नाम 'जिन' है। इस पर दो आदमी बैठ सकते हैं। यह चारों ओर से खुला हुआ होता है। मशीन का अधिकांश भाग ऊपर की ओर स्थित होता है। यह पृथ्वी पर झटका देकर ऊपर उठता है और चारों ओर चक्कर लगाता है। इन सभी महारम्भ। यन्त्रों के अतिरिक्त विज्ञान ने मनुष्य को इतने सुख के साधन प्रदान कर दिए हैं कि मानव भोगवादी तथा अकर्मण्य होता जा रहा है। आज का मनुष्य अतृप्त और अशान्त है। मशीनों के कारण गृह-

उद्योग-धन्धे समाप्त हो गये हैं। देश में बेरोजगारी और बेकारी बढ़ती जा रही है। इस रूप में विज्ञान मानव के लिये अभिशाप रूप सिद्ध हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय योजनायें बन रही हैं, परन्तु दिखावे के लिये। आन्तरिक रूप से एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को आतंकित और भयभीत रखने की तैयारियाँ कर रहा है।

विज्ञान का अद्वितीय अद्भुत वरदान २० जौलाई, ६९ और नवम्बर ६९ में विश्व की जनता के सामने आया—वह था "चन्द्रतल पर मानव के चरण"। चन्द्रमा पर किये गये अन्तिम और जब तक के छः सफल अभियानों ने विज्ञान की अद्भुत शक्ति को वरदान के रूप में सिद्ध कर दिया है। चन्द्रतल से लाये गये अमूल्य पाषाण खण्डों एवं मिट्टी के नमूनों का विश्व के वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन एवं अनुसन्धान किया गया है। निःसन्देह इनसे जो निष्कर्ष निकले है वे मानव जाति के लिये अनेक रूपों में लाभप्रद होंगे। जिस चन्द्रमा को देखकर बड़े-बड़े मनीषी और बुद्धिमान केवल—

"Twinkle twinkle little star, How I wonder what you are".

कहकर सन्तोष कर लेते थे, परन्तु कौतूहल और जिज्ञासा ज्यों के त्यों बने रहते थे। मानव जाति की उस अतृप्त पिपासा को सहस्रों वर्षों के बाद आज विज्ञान ने शान्त कर दिया है। इस विजय से भ्रम, अन्धविश्वास आदि अनेकों सामाजिक दुर्बलतायें तो समाप्त हो ही गईं, भविष्य में अनेकों मानव-कल्याण भी सम्भावित हैं।

विज्ञान एक शक्ति है। इसका उपयोग कल्याण के लिये भी हो सकता है और संहार के लिये भी। अणु शक्ति का प्रयोग नरसंहार के लिये भी हो सकता है और कृषि सुधार तथा उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये भी। यह सब कुछ मनुष्य की विचारधारा पर आधारित है। आज के राजनीतिज्ञों को अपनी स्वार्थ भावना का परित्याग कर देना चाहिये, तभी वे विज्ञान के वरदानों का उपयोग कर सुखी और समृद्ध हो सकेंगे, अन्यथा नहीं।

८. परमाणु शक्ति पर मानव विजय

आज का युग परमाणु युग है। यह नाम इसके नवीनतम वैज्ञानिक आविष्कारों के आधार पर दिया गया है। इसी प्रकार पिछले समय को भी, जब मनुष्य ने पत्थर के औजारों का आविष्कार किया तो पाषाण-युग और लोहे के शस्त्रों का आविष्कार किया तो लोह-युग कहते थे। आदि-काल से समय का चक्र निरन्तर निर्विरोध गतिशील है। मानव मान्यतायें एवम् विचारधारा तथा मानव-सभ्यता व संस्कृति, जिनके आवश्यक पूरक तत्व हैं—विज्ञान और वैज्ञानिक अनुसंधान समय के साथ-साथ परिवर्तनशील रही है—स्वभाव से ही मानव चिन्तनशील प्राणी, जो समय-समय पर भाँति-भाँति की

परमाणु शक्ति पर मानव विजय

(१) प्रस्तावना।
(२) प्राथमिक परीक्षण।
(३) रूस तथा अमेरिका के महान प्रयोग।
(४) हीरोशिमा और नागासाकी का विध्वंस।
(५) अन्य दुष्परिणाम।
(६) उपसंहार।

कल्पनायें करता है। बहुधा मानव-कल्पना नितान्त काल्पनिक प्रतीत होती है, लेकिन इतिहास साक्षी है कि सर्वत्र मानव का कर्म असम्भव सत्य को सम्भव करना रहा है। उसी असम्भव कही जाने वाली कल्पना को मानव अपने परिश्रम से सम्भव बना देता है और कल्पना को केवल कल्पना के आवरण में से निकालकर वास्तविकता का स्वरूप प्रदान करने का सफल प्रयास करता है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक वेत्ता एल्बर्ट आइन्स्टीन ने अपने अनुभव व प्रयोग के आधार पर भविष्यवाणी की थी कि पदार्थ को ऊर्जा में और ऊर्जा को पदार्थ में द्रव्य ऊर्जा समीकरण ($E=mc^2$) द्वारा परिवर्तित करना सम्भव है। उनका विश्वास था कि विशेष प्रकार के एक औंस ईंधन से पन्द्रह लाख टन कोयले की शक्ति प्राप्त की जा सकती है। वह शक्ति अणु की शक्ति थी। द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में इस विज्ञानवेत्ता ने अपनी पूर्व धारणाओं को पुनः स्पष्ट किया और इस तर्क का जोरदार समर्थन किया कि एटमबम बनाना सम्भव है, पर इसके लिये कुछ विशेष धातुओं के साथ विशेष प्रक्रिया द्वारा जल की आवश्यकता थी, जिसे हैवी वाटर (Heavy water) के नाम से पुकारा जाता था (संसार में उस समय नार्वे में ही एकमात्र ऐसा संयंत्र था, जो इस जल तत्व का उत्पादन कर रहा था)।

वैज्ञानिकों के समक्ष ऊर्जा प्राप्त करने की विकट समस्या थी, जिसका उचित समाधान खोजने के लिये वे आतुर थे। यद्यपि पत्थर के कोयले, लकड़ी के ईंधन, मिट्टी के तेल और जल प्रपातों से विद्युत उत्पन्न करके उसे प्राप्त किया जा रहा था, फिर भी एकान्त के क्षणों में जब वैज्ञानिक सोचता कि यदि ये स्रोत समाप्त हो गये, तो क्या होगा? वह चिन्तित हो जाता था। सर्वप्रथम इस क्षेत्र में पदार्पण किया जर्मनी ने। आरम्भ में जर्मनी को सफलता मिली, लेकिन युद्ध के दौरान जर्मन वैज्ञानिक केवल परीक्षात्मक सफलता ही प्राप्त कर सके। उनका अथक परिश्रम व्यावहारिक सफलता की मंजिल तक से जाने में असफल रहा। लेकिन उद्देश्यपूर्ण परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। जर्मनी के परीक्षणों से एक महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध हुई, जो बाद में बम निर्माण का अनिवार्य सिद्धान्त माना गया। (यूरेनियम में गर्भित में अपार शक्ति संचित है तथा विखण्डन क्रिया यूरेनियम के परमाणु पर एक न्यूट्रॉन (Neutron) के प्रहार से यूरेनियम का नाभिक दो भागों में विभक्त हो जाता है और अपार शक्ति के साथ दो अन्य न्यूट्रॉन को जन्म देता है)। विज्ञान वेत्ता एल्बर्ट आइन्स्टीन से प्रेरणा पाकर तत्कालीन राष्ट्रपति फ्रैंकलीन डा० रूजवेल्ट ने इस दिशा में कार्य करने का ऐतिहासिक निर्णय किया। आरम्भ में काम हेतु ६ हजार डालर की राशि के लिये गुप्त-प्रतिरक्षा कोष से आवश्यक अनुदान की व्यवस्था करने की स्वीकृति दी गयी। परिणामस्वरूप सन् १९४० में एक समिति का गठन किया गया, जिसमें विश्व विख्यात वैज्ञानिक नील्स बोर, एनरिको फर्मि और डॉ० रोबर्ट ओपेनहाइमर विशेष उल्लेखनीय थे। विश्व विख्यात भौतिक विज्ञान-वेत्ता डॉ० रोबर्ट ओपनहाइमर को समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया, जो परमाणु बम का जनक माना जाता है। जर्मनी के अतिरिक्त यूरोप और अमेरिका के प्रमुख वैज्ञानिक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इसी महान् कार्य से सम्बन्धित थे। अन्त में वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम व सामूहिक प्रयासों के सम्मुख निराशा को आत्म-समर्पण करना पड़ा। परमाणु में अन्तर्निहित महाशक्ति के विकास की विधि का उद्भव किया और १६ जौलाई, १९४५ को एलामोगेडरो रेगिस्तान में बम

का परीक्षण कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। ठीक पाँच बजकर तीस मिनट पर इस ऐतिहासिक दिवस की सवेरे चकाचौंध ज्वाला के साथ गगन-भेदी विस्फोट हुआ (ज्वाला की तीव्रता सूर्य से भी अधिक थी)। कुकुरमुत्ते के आकार का एक विशालकाय बादल उठा, जो लगभग ४०,००० फुट ऊँचा था। ६ मील तक झुलसाने वाली गर्मी थी और एक मील की त्रिज्या के अन्दर जीव-जन्तु काल के दु:खद शिकार हो चुके थे। परीक्षण की सफलता से प्रोत्साहित होकर मानव ने मानव का संहार करने हेतु दो बमों का निर्माण करने का निश्चय किया। ६ अगस्त, १९४५ का दिवस वह करुण दिवस है, जो मानव के अविवेक और विजय के उन्माद से संहार की प्रबल इच्छा की अमिट छाप करोड़ों हृदयों पर छोड़ गया। मित्रराष्ट्रों ने जापान के सम्पन्न नगर हिरोशिमा पर पहला बम गिराकर समस्त संसार को स्तब्ध कर दिया। बम का प्रलयकारी प्रभाव हुआ और तीन लाख जनसंख्या का नगर क्षण भर में नष्ट-भ्रष्ट हो गया। एक बम के दृश्यों से पिपासा शान्त न हुई, बल्कि विजय-वाहिनी को शीघ्रातिशीघ्र आलिंगन करने के मद में ९ अगस्त को दूसरा बम नागासाकी पर गिराया गया। विज्ञान ने मानव के आत्मबल एवं आत्मविश्वास पर घातक प्रहार किया। मानव की क्रूरता के सम्मुख मानव के साहस व शौर्य को पराजित होना पड़ा। परिणामस्वरूप आत्मिक शक्ति का धनी जापान भौतिक दृष्टि से शक्तिहीन हो गया और पतन को अवश्यम्भावी जानकर आत्मसमर्पण करने का अन्तिम विकल्प स्वीकार करने को वह विवश हुआ।

हिरोशिमा तथा नागासाकी पर बम गिरने से समस्त विश्व अत्यधिक भयभीत व क्षुब्ध हो उठा। विध्वंसकारी परिणामों से केवल साधारण नागरिक ही नहीं, अपितु वैज्ञानिक भी चिन्तित थे। बम की ध्वंसलीला से बम के जन्मदाता डॉ० रोबर्ट ओपेनहाइमर की अन्तरात्मा अनुताप की तीव्र ज्वाला में दग्ध होने लगी। विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत मानवता के इस अनुपम सेवक ने स्वयं को निर्दोष व्यक्तियों की शोचनीय मृत्यु का उत्तरदायी मानकर अपने पद से त्यागपत्र देकर मानव-प्रेम का अमर सन्देश दिया। अफसोस ! विनाशकारी अस्त्रों की भूख का भूखा मानव उस मानवता के पुजारी का निःस्वार्थ त्याग अपने स्वार्थों में भूल गया। जनमत के प्रबल विरोध के बावजूद कुछ राष्ट्र अपनी सुरक्षा की ओट में तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के एकाधिकार की समाप्ति के बहाने इसके निर्माण कार्य में संलग्न रहे। सोवियत संघ प्रथम राष्ट्र था, जिसने १९४९ में परमाणु बम का सफल परीक्षण करके अमेरिका के एकाधिकार की चुनौती को समाप्त किया। इंग्लैंड ने १९५२ में तथा फ्रांस ने १९६० में सहारा के मरुस्थल में सफल परीक्षण करके परमाणु बम क्लब की सदस्यता प्राप्त की और अप्रत्यक्ष रूप से आणविक दौड़ को प्रोत्साहित किया। १९६४ अक्टूबर माह में जनवादी चीन ने अणुपरीक्षण करके साम्यवादी शिविर में अराजकता को जन्म दिया और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को अपनी वैज्ञानिक प्रतिमा के माध्यम से प्रभावित करने का प्रयास किया। अमेरिका ने एक कदम और आगे बढ़ाया। नवम्बर १९५२ में उसने हाइड्रोजन बम का सफल परीक्षण करके संहारक शक्ति में वृद्धि की। इस बम की संहारक शक्ति हिरोशिमा पर गिराये बम की संहारक शक्ति से एक-सौ पचास गुना अधिक थी। सोवियत संघ भी निरन्तर जटिल बाधाओं के विपरीत प्रगतिशील था। १९५६ में हाइड्रोजन बम का परीक्षण करके सोवियत संघ ने इस धारणा को जन्म दिया कि अमेरिका व

सोवियत संघ में आणविक दौड़ आरम्भ हो चुकी है, जो भावी विनाशकारी घटनाओं का केवल संकेत मात्र ही नहीं है, बल्कि मानव सभ्यता का अन्तिम चरण प्रतीत होती है।

परमाणु बम में तो भारी परमाणुओं को तोड़कर ऊर्जा प्राप्त की जाती थी, किन्तु हाइड्रोजन बम में छोटे परमाणुओं को परस्पर सम्मिलित करके परमाणु बनाया जाता है और इस प्रक्रिया में और भी अधिक ऊर्जा मुक्त हो जाती है। इन शस्त्रों का प्रयोग बहुत ही अमानुषिक और भयंकर होता है। इनसे केवल निरीह और निरपराध लोग ही नहीं मारे जाते या घायल होते हैं, अपितु पशु पक्षी भी काल कवलित हो जाते हैं। जो लोग तुरन्त मर जाते हैं वे,सस्ते छूट जाते हैं, परन्तु घायल व्यक्तियों का जीवन बड़ा कष्टमय होता है। साथ ही साथ जिन मनुष्यों पर तुरन्त ही कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं होता वे रेडियो सक्रिय कणों के स्पर्श के कारण भयानक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। परमाणु बम के विस्फोट के पश्चात् उसकी रेडियो सक्रिय धूल सारे संसार में फैल जाती है और यह प्राणि मात्र के लिए अत्यधिक हानिकारक होती है।

यह नितान्त सत्य है कि ये परमाणु शस्त्र जितने भी देशों के पास अधिक होंगे उतना ही विश्व का भय बढ़ता जायेगा। परमाणु युद्ध के विजित और विजेता समान रूप से नष्ट हो जायेंगे। इन युद्धों में केवल मानव सभ्यता ही नष्ट नहीं होगी, अपितु समस्त मानव जाति ही नष्ट हो जायेगी। अतः आज के वैज्ञानिक एक स्वर में यह मांग कर रहे हैं कि परमाणु शस्त्रों पर प्रतिबन्ध लगाना अत्यन्त आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में जेनेवा में आणविक शस्त्रों के प्रसार को सीमित करने व निःशस्त्रीकरण जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विचार विमर्श हुआ, लेकिन अभी तक आशातीत समाधान की दिशा में प्रगति नगण्य ही रही है। त्रस्त मानवता को कुछ राहत का अनुभव होना स्वाभाविक था। आणविक शस्त्रों की भयंकरता को कम करने के उद्देश्य से मास्को में एक सन्धि सम्पन्न हुई, तो प्रस्तावित संधि के अंतर्गत वायु व जल परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रस्ताव किया गया और केवल भूमिगत परीक्षणों की ही अनुमति दी गई। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक राष्ट्र इस सन्धि का निष्ठा से पालन करे तथा ऐसा पारस्परिक सद्भाव का वातावरण तैयार करने में सहयोग दे, जिसमें आणविक भय से सदैव-सदैव के लिए मानवता मुक्त हो सके।

६ भारत और परमाणु शक्ति

कुछ वर्ष पूर्व केवल अमेरिका, सोवियत संघ, इंग्लैंड, फ्रांस तथा चीन ही आणविक शक्ति सम्पन्न राष्ट्र थे। आज आणविक शस्त्रों का उत्पादन करना राष्ट्रीय सम्मान का सूचक बन गया है। दिन प्रतिदिन उन राष्ट्रों की संख्या में वृद्धि हो रही है, जो बड़ी से बड़ी कीमत चुकाकर भी आणविक अस्त्रों का निर्माण करने अथवा प्राप्त करने के लिये अधीर हैं। वास्तव में भारत व कनाडा दोनों ही प्रशंसा के पात्र हैं, जिन्होंने आणविक शक्ति का प्रयोग संहारक शक्ति के रूप में न करके शान्तिपूर्ण कार्यों के लिये करने का निर्णय किया है। भारत ही एकमात्र ऐसा अपवाद है, जो तकनीकी जानकारी तथा साधन सम्पन्न होते हुए भी संहारक अस्त्र के निर्माण के विरुद्ध है।

भारत और परमाणु शक्ति

(१) प्रस्तावना।
(२) प्रारम्भ एवं प्रगति।
(३) लक्ष्य-प्राप्ति।
(४) मानव-कल्याण के लिये प्रयोग।
(५) उपसंहार।

जनमत की इच्छाओं का समुचित सम्मान करते हुए भारत सरकार ने अणुशक्ति के शांतिपूर्ण उपयोग उद्देश्य की पूर्ति हेतु १९४८ में अणुशक्ति-आयोग की स्थापना करके सराहनीय कार्य किया। आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया विश्व प्रसिद्ध भारतीय विज्ञानवेत्ता डॉ० होमी जहाँगीर भाभा को जिन्होंने इस क्षेत्र में राष्ट्र को अपनी योग्यता एवम् कार्य कुशलता से अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान दिलवाया। आरम्भ में इस आयोग का एक दर्जा एक सलाहकार समिति तक ही सीमित था, लेकिन १९५४ में आयोग को एक उच्च सत्ताधिकार स्वतन्त्र विभाग के रूप में परिणत कर दिया गया। डॉ० भाभा के सुयोग्य नेतृत्व में इस आयोग ने उल्लेखनीय कार्य किया और अल्प काल में ही आयोग की देख-रेख में बम्बई के निकट ट्राम्बे में परमाणु शक्ति का एक महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित किया गया। डॉ० भाभा की अध्यक्षता एवम् निर्देशन में प्रथम परमाणु-प्रतिकार (रिक्टर) का निर्माण कार्य ट्राम्बे में अप्रैल सन् १९५५ में आरम्भ किया गया। ३० लाख रुपये की लागत से बनने वाले इस सयन्त्र का ४ अगस्त, १९५६ को आधुनिक भारत के निर्माता पंडित जवाहर लाल नेहरू ने विधिवत् उद्‌घाटन किया। विकास कार्यों के लिये विद्युत का महत्व सर्वविदित है जिसका उत्पादन परमाणु शक्ति के माध्यम से करना अत्यधिक सरल व सस्ता है। परमाणु शक्ति द्वारा विद्युत उत्पन्न करने के सिलसिले मे तारापुर में परमाणु बिजलीघर निर्मित किया गया जिसमें भारतीय वैज्ञानिकों के परिश्रम के फलस्वरूप अपनी क्षमता के अनुसार शीघ्र ही उत्पादन प्रारम्भ हो गया। राजस्थान तथा मद्रास राज्यों में भी परमाणु बिजलीघर स्थापित करने का प्रस्ताव था। भारतीय आणविक युग के जनक डॉ० भाभा का इस क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण योगदान के सम्मानस्वरूप १९५४ मे पद्म-भूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया। सोमवार २४ जनवरी, १९६६ को, गणराज्य दिवस से केवल दो दिन पूर्व शान्ति का यह महान् योद्धा वायुयान दुर्घटना में काल का शिकार हो गया। भारत का जन-जन विधि के इस आकस्मिक प्रकोप से काँप उठा। समस्त संसार ने नतमस्तक होकर इस महान् सपूत को भावभीने श्रद्धा-सुमन अर्पित करके दुर्लभ वैज्ञानिक प्रतिभा का न्यायोचित सम्मान किया।

डॉ० भाभा के स्वप्न को साकार करते हुए भारतीय वैज्ञानिकों ने १८ मई, १९७४ को प्रातः ८ बजकर ५ मिनट पर देश के पश्चिमी भाग में, राजस्थान के पश्चिमी भाग में, राजस्थान के बाड़मेर जिले की किसी समतल भूमि के १०० मीटर नीचे अपना प्रथम परमाणु विस्फोट कर अणु शक्ति सम्पन्न पाँच राष्ट्रों अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन के एकाधिकार को समाप्त करते हुये उन्हें चमत्कृत कर दिया। भारत आज छठवां अणुशक्ति सम्पन्न राष्ट्र है।

१९ अप्रैल १९७५ को मध्याह्न १ बजे भारत ने अपना पहला उपग्रह 'आर्यभट्ट' अन्तरिक्ष कक्षा में प्रतिस्थापित करके अन्तरिक्ष युग मे प्रवेश किया।

अन्तरिक्ष मे सफलता से कृत्रिम उपग्रह छोडने वाला भारतवर्ष ११वाँ देश है। अब तक अमेरिका, रूस, पश्चिमी जमनी, चीन, फ्रांस, ब्रिटेन, आस्ट्रिया, कनाडा, जापान और इटली इस विषय मे सफलता प्राप्त कर चुके थे, परन्तु विकासशील देशो मे चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है।

१ जनवरी १६७८ से ३ जनवरी १६७८ तक भारत की राजकीय यात्रा पर आए हुये अमेरिका के प्रेसीडेन्ट श्री जिमी कार्टर ने भारत की वैज्ञानिक प्रगति पर हर्ष व्यक्त करते हुये तारापुर परमाणु केन्द्र के लिये परिष्कृत यूरेनियम देने के रूप में अमेरिकी सहायता की घोषणा की थी। इस सन्दर्भ में भारत के प्रधानमन्त्री श्री देसाई तथा अमेरिकी प्रेसीडेण्ट जिमी कार्टर के बीच एक समझौता हुआ था। परन्तु श्री कार्टर के अमेरिका लौटने पर वह सहायता विवाद और विरोध के कारण एक वर्ष तक भारत को नही मिल सकी। तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री देसाई ने भी निर्भीक घोषणा की यदि अमेरिका अपने वायदे से मुकरता है तो हम कहीं से भी यूरेनियम लेने को स्वतन्त्र हैं। हर्ष की बात है कि अनेक बाधायें होते हुये भी अमेरिका ने अपने वायदे को पूरा किया है और १६ अप्रैल १६७६ को परिष्कृत यूरेनियम की बहु प्रतीक्षित पहली खेप विमान से भारत आ गई। परिष्कृत यूरेनियम की यह पहली खेप १६ ८ टन की थी। तारापुर परमाणु केन्द्र पर परिष्कृत यूरेनियम के अभाव मे उत्पादन में जो कमी आ गई थी वह इससे दूर हो गई। इसके बाद राष्ट्रपति कार्टर के अथक प्रयासों से सितम्बर १६८० के अन्तिम सप्ताह में सीनेट ने भारत को यूरेनियम खाद सप्लाई की पुन आज्ञा द दी। लेकिन जनवरी १६८१ में राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन अमेरिका के राष्ट्रपति बने, जिन्होंने भारत को परिष्कृत यूरेनियम देने का मामला खटाई मे डाले रखा है। श्रीमती इन्दिरा गांधी की हाल की अमेरिका यात्रा (अगस्त १६८२) इस प्रश्न को हल करने के लिये हुई थी। लेकिन अभी तक अमेरिका भारत को यूरेनियम देने में टाल-मटोल कर रहा है। अत अब भारत ने फ्रांस से परिष्कृत यूरेनियम लेने का निश्चय किया है और अमेरिका की अनुचित शर्तों को मानने से स्पष्ट इन्कार कर दिया है।

यह तो शक्ति एव राष्ट्र की चिन्तन शक्ति पर निर्भर करता है कि वह उस वस्तु का उपयोग किस प्रकार करता है। कोई वस्तु अपने में न बुरी या अच्छी नहीं होती, उसमें बुरे या अच्छे दोनो पक्ष विद्यमान रहते हैं। यह प्रयोगकर्ता की बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह उसके किस पक्ष का उद्घाटन करे। परमाणु शक्ति का प्रयोग आज तक विनाशकारी कार्यों के लिये ही किया गया है। परन्तु इसके विपरीत यदि शक्ति का उपयोग रचनात्मक कार्यों के लिये ही किया जाये, तो यह मानव के लिये सबसे बड़ा वरदान सिद्ध हो सकता है। परमाणु शक्ति द्वारा बहुत अल्प व्यय से पानी के जहाज और पनडुब्बियाँ चलाई जा सकती हैं। बिजली के कल-कारखाने तैयार किये जा रहे हैं, जिनमें परमाणु विस्फोट से अधिक मात्रा में सस्ती बिजली तैयार की जा सकती है। परमाणु के विस्फोट से नये-नये आइसोट्रोप तैयार किये जा रहे हैं जिनका उपयोग रोगी की चिकित्सा के लिये, खेती के उत्पादन को बढ़ाने के लिये, उद्योगों और व्यवसायों की पुरानी प्रणालियों में सुधार करने के लिये किया जा रहा है।

इसी प्रकार हाइड्रोजन बम का भी उपयोग किया जा सकता है और मनुष्य की ईंधन की समस्या बड़ी सरलता से हल हो सकती है। वर्तमान के आधुनिक युग में नियन्त्रित प्रक्षेपास्त्र (गाइडेड मिसाइल्स) का विशिष्ट महत्व है। नियन्त्रित

प्रक्षेपास्त्र का उपयोग शत्रु के नाश करने के लिये ही नहीं, वरन् मानव-कल्याण के लिये भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिये इसके द्वारा भोजन-सामग्री, औषधि तथा अन्य आवश्यक वस्तुयें ऐसे स्थानो पर पहुँचायी जा सकती हैं, जहाँ पर अन्य साधनो द्वारा पहुँचाना असम्भव है। पृथ्वी के ऊपरी वायुमण्डल अथवा अंतरिक्ष के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का साधन भी नियन्त्रित प्रक्षेपास्त्र बन सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परमाणु के रूप मे एक महान् राक्षस हमारे सामने है, यदि हमने इसे काबू मे कर लिया तो वह हमारे सुख के लिये सारे साज-सामान तैयार कर सकता है और यदि पारस्परिक अविश्वास, घृणा और सन्देह के कारण हमने उसे विनाश के लिये प्रोत्साहित कर दिया, तो वह बहुत ही अल्प समय मे सारी मानव-जाति को नष्ट भ्रष्ट कर देगा। अब यह प्रश्न विश्व के प्रमुख राष्ट्रो की बुद्धिमत्ता पर निर्भर है कि वे निर्माण पसन्द करते हैं या विनाश।

अत: यह निश्चित है कि बन्धुत्व और विश्व-शांति को दृष्टि में रखकर यदि परमाणु शक्ति का प्रयोग किया जाये तो इन शक्तियो से मानव का कल्याण हो सकता है। एशिया के अधिकांश राष्ट्र अपनी सदबुद्धि से इन शक्तियों का उपयोग जनहित के लिये कर रहे हैं। भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अनेकों बार अपनी निर्भीक घोषणाओ मे विश्व को यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत सदैव अणु शक्ति का प्रयोग केवल मानव कल्याण के लिये ही करेगा। आशा है कि विश्व के अन्य राष्ट्र भी अपनी चेतना को इसी दिशा में प्रेरित करेंगे। परन्तु खेद है कि बड़े-बड़े विकसित देशों के सिद्धान्तवादी राष्ट्रनायक इस शांति की दिशा की ओर पग बढाने मे झिझक अनुभव करते हैं अन्यथा अब तक परमाणु शस्त्र नि:शस्त्रीकरण की संधि पर विश्व के प्रमुख राष्ट्रों ने कभी के हस्ताक्षर कर दिये होते।

परन्तु—

भीम हो अथवा युधिष्ठिर, या कि हो भगवान्
बुद्ध हो कि अशोक, गांधी हो कि ईशु महान्,
सिर झुका सबको, सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
मात्र वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान
दग्ध कर पर को, स्वयं भी भोगता दु:ख-दाह,
जा रहा मानव चला अब भी पुरानी राह।

१० "रोहिणी

(अन्तरिक्ष अनुसन्धान में १९८० की एक ठोस उपलब्धि)

रोहिणी

(१) प्रस्तावना।
(२) रॉकेट का प्रक्षेपण।
(३) उपग्रहीय अन्य देश।
(४) नाम एवं देश।
(५) लाभ
(६) उपसंहार (भावी योजना)।

भारतीय वैज्ञानिक १९७५ मे 'आर्य भट्' और १९७९ में 'भास्कर' दो भारतीय उपग्रह पहले ही अन्तरिक्ष कक्ष में स्थापित कर चुके थे पर भीतर ही भीतर घुटन महसूस कर रहे थे क्योंकि ये उपग्रह रूस की धरती से और रूस के रॉकेटों द्वारा छोड़े गये थे। अनवरत श्रम और अथक अनुसन्धानो ने भारतीय वैज्ञानिको का गौरवपूर्ण वह दिन भी जल्दी ही दिखा दिया जबकि भारत की धरती से

और भारत के रॉकेटो द्वारा भारत के उपग्रह "रोहिणी" को आकाश की कक्षा मे स्थापित करने मे सफल एव समर्थ हो सके। इसके साथ भारत उपग्रह-देशो का छठवाँ सदस्य भी बन गया। अपने साधनो से उपग्रह छोडने वाले अन्य देश—रूस, अमेरिका, फ्रास, चीन और जापान हैं।

१८ जौलाई १९८० को मद्रास से सौ किलोमीटर दूर आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी तट पर स्थित श्री हरिकोटा से अन्तरिक्ष अनुसंधान सगठन द्वारा चार चरणो के रॉकेट से 'रोहिणी' उपग्रह को प्रात आठ बजकर चार मिनट पर उत्थापित किया गया। एम० एल० बी०-३ यान भीषण वेग से काले व सफेद धुयें की लकीर छोड़ता हुआ आकाश मे उठा। इसी पर सवार था ३५ किलोग्राम वाला उपग्रह रोहिणी। आठ मिनट बाद यह उपग्रह पृथ्वी की कक्षा मे स्थापित हो गया।

टेलीविजन पर केन्द्र के २००० वैज्ञानिक इस रॉकेट का छोडा जाना देख रहे थे। उडान के समय रॉकेट यान की रफ्तार २८ हजार मील प्रति घण्टा थी। उससे आग का जेट निकल रहा था। रॉकेट केन्द्र से हर्षित तकनीशियनो को निकलते देख कर पत्रकारो को सबसे पहिले सकेत मिला कि रॉकेट एस० एल० बी०-३ द्वारा उत्थापन सफल रहा है। यह रॉकेट विक्रम सारा भाई अतरिक्ष केन्द्र मे बनाया गया था। उपग्रह उत्थापन यान एस० एल० बी०-३ के प्रक्षेपण के पहिले अतरिक्ष शोध सस्थान मे वैज्ञानिकों ने पूजा की थी।

भारत को उपग्रह स्थापित करने मे सफलता दूसरे प्रयास में मिली है। गत वर्ष अगस्त १९७९ को एस० एल० बी० ३ की पहिले परीक्षण उडान की गई थी। इसमे भी एक देश भार को कक्षा मे स्थापित करने की कोशिश की जानी थी परन्तु उत्थापन यान बगाल की खाडी में गिर गया, रॉकेट के दूसरे चरण में खराबी पैदा हो गई। भारत ने अब अपने प्रयास से ही उपग्रह छोडा है। यह सम्भवत किसी भी देश द्वारा अपने पहिले प्रयास मे छोडे गये उपग्रहो मे सबसे छोटा है। इसका वजन ३६ किलो है। परन्तु इससे भारत का महत्व कम नहीं होगा।

चीन ने अपने पहले प्रयास मे सबसे भारी उपग्रह छोडा था, उसका वजन ३०८ किलोग्राम था। चीन ने द्रव ईंधन का इस्तेमाल किया था परन्तु भारतीय रॉकेट में चारों चरणो में १३ टन ठोस ईंधन का इस्तेमाल किया गया है। यह ईंधन अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों ने ही विकसित किया है। इन वैज्ञानिकों का यह दावा है कि इस प्रस्थापन यान एस० एल० बी० ३ को मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्र के रूप में बदला जा सकता है। यदि कोई देश ३६ हजार किलोमीटर ऊँचाई पर पृथ्वी की गति के साथ ही घूमने वाले उपग्रह को स्थापित कर सकता है तो माना जाता है कि वह अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र चलाने में समर्थ है। चीन ने १९७० में माध्यमिक दूरी के प्रक्षेपास्त्र और १९८० के आरम्भ मे अन्तर्महाद्वीपीय दूरी के प्रक्षेपास्त्र बनाने में सफलता पायी है। भारत भी अगले दशक में अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र क्षमता को विकसित कर पायेगा।

सोवियत सघ ने चार अक्टूबर १९५७ को जो स्पुतनिक-१ छोडा था उसका वजन ८५ किलोग्राम था और वह ९२ दिन कक्षा में परिक्रमा करता था। अमेरिका ने ३१ जनवरी १९५८ को जो एक्सप्लोरर-१ छोड़ा था वह स्पुतनिक से बडा था। फ्रांस ने अपना पहला उपग्रह १९६४ में छोडा। चीन ने ८ अप्रैल १९७० को अपना उपग्रह चीन-१ छोडा जो अन्य देशों के उपग्रहों की अपेक्षा भारी था। जापान

ने अपना पहिला उपग्रह १९७०. मे छोडा। वह भी भारत के उपग्रह से वजनी था। ब्रिटेन ने १९७१ मे उपग्रह छोडने का प्रथम और अन्तिम प्रयत्न किया। भारत ने १९६७ मे जो रॉकेट छोड़ा था वह पेंसिल के बराबर था। यह बहुत हल्की और विनम्र शुरुआत थी। इस रॉकेट मे ३५० ग्राम विस्फोटक पदार्थ थे इसका व्यास ७५ मिलीमीटर था। इससे हमें अनुभव का बहुत बडा लाभ हुआ। उसी ज्ञान के परिणामस्वरूप हम एस० एल० वी०-३ बना सके जिसका वजन १७ टन और ऊंचाई २२ मीटर थी।

हिन्दू पचाग के २६ नक्षत्रो में से चौथे नक्षत्र पर इस उपग्रह का नाम रोहिणी रक्खा गया है। इसका कारण यह है कि भगवान कृष्ण का जन्म भी रोहिणी नक्षत्र मे ही हुआ था। उपग्रह छोडने का मुख्य उद्देश्य रॉकेट की ४४ मुख्य प्रणालियाँ और ढाई सौ उपप्रणालियो को परखना और मूल्यांकन करना है। यह प्रणालियाँ इतनी जटिल है कि उनमे एक लाख पुर्जे और दस लाख जोड़ हैं। साथ ही इसका एक उद्देश्य यह मालूम करना है कि रॉकेट मे रोहिणी को अन्तरिक्ष मे ले जाने की कितनी गति और क्षमता है तथा उसे भावी कार्यक्रमो मे कितना और कैसे बढाया जा सकता है। इस परीक्षण का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि अब भारतीय वैज्ञानिको के समक्ष नयी-नयी राहे खुल गई हैं और नयी-नयी मजिलें दिखाई देने लगी हैं। वर्तमान परीक्षण के परिणामो के अध्ययन और आँकड़ो के विश्लेषण के बाद नई और बडी शृखलाओं के रॉकेट छोड़े जायेंगे। इनमे तरल ईंधन का उपयोग किया जायेगा।

भारत अपनी वैज्ञानिक प्रगति और उपलब्धियों को शान्ति और रचनात्मक कार्यों मे लगायेगा, सैनिक उपयोग मे नही। प्रधान मन्त्री श्रीमती गांधी ने १८ जोलाई १९८० को भारतीय वैज्ञानिकों को बधाई देते हुये लोकसभा मे कहा था, "मैं अपने वैज्ञानिको तथा औद्योगिको को इस सफलता पर बधाई देती हू। राष्ट्र को उन पर गर्व है। भविष्य मे भी उन्हें ऐसी ही सफलतायें मिले इसके लिये मेरी शुभ-कामनायें उनके साथ हैं।"

भारत मे अन्तरिक्ष कार्यक्रम से विविध लाभ प्राप्त हो रहे हैं। हवाई जहाजों के बनाने के उद्योग और इलैक्ट्रोनिक्स व्यवसाय को इससे निरन्तर सहायता मिल रही है। अन्तरिक्ष विभाग का कथन है कि उसने जो अनेक तकनीकी विधियाँ और प्रक्रियायें खोज निकाली हैं उनकी सूचना हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स लिमिटेड को दे दी गई हैं। नये उपग्रहो से भारत की भू-संरचना, समुद्रों, नदियों, बर्फ आदि साधनो तथा सम्पदा की महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त हुई है और हो रही हैं जैसा कि सरकार मे भेजे गये चित्रो से स्पष्ट है। इन सूचनाओ के आधार पर जन कल्याण की विभिन्न योजनायें और विकास कार्यक्रम तैयार किये जा सकते है। इन उपग्रहों के द्वारा मौसम वैज्ञानिकों को जो पूर्व सूचना मिलेगी उसके आधार पर बाढ़ों से होने वाला विनाश कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा, कृषि, डाक, तार, टेलीफोन तथा दूरदर्शन प्रसारण कार्यक्रमो को सुस्पष्ट बनाने के लिये उपग्रह बहुत सहायक सिद्ध हो सकते है।

भारत अब ६०० किलोग्राम का उपग्रह ५०० किलोमीटर दूरी तक स्थापित करने का प्रयास करेगा। इसके लिये वह द्रव ईंधन का विकास कर रहा है। फ्रांस ने द्रव ईंधन से इंजन बनाने की औद्योगिकी भारत को दी है। भारत ने तीन टर्न

बजन फेंकने की क्षमता वाले रॉकेट का परीक्षण कर लिया है। द्रव ईंधन इजनों तथा प्रनिस्थापित यानो के परीक्षण के लिये भारत एक विशाल केन्द्र बनाने जा रहा है। पूर्वी तट पर ५० लाख की लागत से उत्पादन केन्द्र बनाया जायगा। कुछ धातुओं और धातु मिश्रणों को छोड़कर अन्य सभी चीजों के मामले में भारत आत्मनिर्भर है। ईश्वर भारतीय वैज्ञानिकों की सहायता करे।

११ उपग्रह रोहिणी -डी-२

अथवा

अन्तरिक्ष के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियाँ

विश्व के प्रथम अन्तरिक्ष यात्री रूसी नागरिक यूरी गगारिन ने नवम्बर १९६१ में अपनी दिल्ली यात्रा के अवसर पर यह भविष्यवाणी की थी कि 'मुझे इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि एक दिन वह आयेगा जबकि अन्तरिक्ष यात्रियों के परिवार में भारतीय गणतन्त्र का एक यात्री भी शामिल होगा।" यूरी गगारिन की यह भविष्यवाणी २१ वर्ष बाद सन् १९८४ में सत्य प्रकाशित हुई और ३ अप्रैल, १९८४ ई० को रूसी अन्तरिक्ष यान सोयुज टी-११ में बैठकर स्क्वाडन लीडर श्री राकेश शर्मा भारत के प्रथम अन्तरिक्ष यात्री बन गये। यह भारत की अन्तरिक्ष के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण उपलब्धि है।

अन्तरिक्ष के क्षेत्र में भारतीय अनुसन्धान कार्य आरम्भ करने का श्रेय स्वर्गीय प० जवाहरलाल नेहरू को दिया जा सकता है। उनका कहना था कि "प्राचीन भारतीय ज्ञान को आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ समावेशित किया जाना चाहिये।' सन् १९६२ में प० नेहरू ने अन्तरिक्ष अनुसन्धान परिषद की स्थापना की, परन्तु भारत पर चीन का आक्रमण हो जाने से इस परिषद की गतिविधियाँ अवरुद्ध हो गई। सन् १९६७ में परमाणु ऊर्जा विभाग के अन्तर्गत अन्तरिक्ष अनुसन्धान परिषद का पुनर्गठन किया गया। सन् १९७२ में अन्तरिक्ष आयोग और अन्तरिक्ष विभाग अलग-अलग स्थापित किये गये और श्री हरिकोटा द्वीप में एक रॉकेट प्रक्षेपण केन्द्र स्थापित किया गया। वर्तमान में अन्तरिक्ष अनुसन्धान कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्न संस्थापन कार्यरत है—विक्रम साराभाई केन्द्र (वी० एस० एस० सी०, थुम्बा, केरल), इण्डियन साइंटीफिक सेटेलाइट प्रोजेक्ट (आई० एस० एस० पी०, पीण्या, बंगलोर), इण्डियन एप्लीकेशन सेन्टर (अहमदाबाद, गुजरात), फिजीकल रिसर्च लेबोरेटरी (अहमदाबाद, गुजरात), एक्सपेरीमेन्ट कम्यूनिकेशन अर्थ स्टेशन (आर्वी तथा देहरादून)। भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान तथा अन्तरिक्ष आयोग का मुख्य भवन बंगलोर में स्थित है।

भारत का वर्तमान अन्तरिक्ष अभियान सन् १९६३ में श्री विक्रम साराभाई के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। भारतीय वैज्ञानिकों और इन्जीनियरों के अथक परिश्रम व विलक्षण कार्य-कुशलता के कारण भारत निरन्तर अन्तरिक्ष के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कर रहा है। भारत ने अब तक आर्यभट्ट (१९ अप्रैल, १९७५), भास्कर प्रथम (७ जून, १९७९), रोहिणी आर० एस०-११ (१८ जुलाई, १९८०), एप्पल (जून १९८१), भास्कर द्वितीय (२० नवम्बर, १९८१), इन्सैट प्रथम-ए

(१० अप्रैल १९८२), इन्सैट प्रथम--बी (३० अगस्त, १९८३), भारत-सोवियत संयुक्त अन्तरिक्ष उडान (३ अप्रैल, १९८४), रोहिणी डी--२ (१७ अप्रैल, १९८३) नामक उपग्रह अन्तरिक्ष में भेजकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान और गौरव प्राप्त किया।

उपग्रह रोहिणी डी-२

१. प्रस्तावना।
२. भारत का अन्तरिक्ष कार्यक्रम।
३. अन्तरिक्ष के क्षेत्र में भारत की प्रारम्भिक उपलब्धियां।
४. रोहिणी-डी-२ का प्रक्षेपण व रचना।
५. रोहिणी-डी-२ से भारत को लाभ
६. उपसंहार।

भारत के मूर्धन्य वैज्ञानिकों और दक्ष इंजीनियरों ने १७ अप्रैल १९८३ ई० को श्री हरिकोटा अन्तरिक्ष अभियान केन्द्र से रोहिणी-डी-२ नामक उपग्रह अन्तरिक्ष मे प्रेपक किया और इसे वे पृथ्वी की कक्षा में निश्चित स्थान पर स्थापित करने मे पूर्णतया सफल हुये। रोहिणी डी-२ उपग्रह भारतीय वैज्ञानिकों ने स्वयं तैयार किया था और ४१·५ किलो वजन के इस उपग्रह को उन्होने चार खण्डीय एस० एल० वी० ३ राकेट से अन्तरिक्ष में छोड़ा था।

इस उपग्रह में भारतीय वैज्ञानिको ने एक विशिष्ट तकनीक का प्रयोग किया है, जिससे यह उपग्रह एक लम्बे समय तक पृथ्वी की कक्षा मे सुचारु रूप से कार्य करता रहेगा। इस उपग्रह की ताप नियन्त्रण प्रणाली विशिष्ट प्रकार की है, जिसकी सहायता से इसके सभी यन्त्र शून्य तापमान के नीचे ४०° सेन्टीग्रेड तक भली प्रकार कार्य करने में समर्थ है। इस उपग्रह में चालक शक्ति के हेतु १६ सौर ऊर्जा पैनल लगाये गये है और असामान्य स्थिति का सामना करने के लिये एक कैडमियम बैट्री भी लगाई गई है। उपग्रह के ऊपरी भाग में सौर ऊर्जा पैनल और एरियल लगे हुये हैं। मध्य भाग मे दूर संवेदन व नियन्त्रण सम्बन्धी यन्त्र तथा निचले भाग मे इं मुख्य रॉकेट से जोड़ने व उससे पृथक करने के यन्त्र लगे हुये हैं। इस उपग्रह मे दं प्रकार की संचार प्रणाली स्थापित की गई है। संचार प्रणाली का एक पैनल उपग्र की आन्तरिक दशा की सूचना प्रेषित करेगा और दूसरा पैनल पृथ्वी पर फोटो प्रतिबिम्ब भेजा करेगा।

रोहिणी-डी-२ का निर्माण लगभग आठ सौ वैज्ञानिकों व तकनीशियनों ने सात वर्ष की अवधि मे किया है। इस पर लगभग २२ करोड़ रुपया व्यय हुआ है इसकी कार्यावधि एक वर्ष है और यह उपग्रह ९७ मिनट मे पृथ्वी की कक्षा का एक चक्कर पूरा करता है। रोहिणी डी-२ के प्रेपण से भारत को तीन प्रमुख लाभ होंगे- अन्तरिक्ष के गूढ़ रहस्यों की जानकारी, भूमि के प्रतिबिम्बों की जांच व संचार के क्षेत्र विस्तारवादी योजनाओं का क्रियान्वयन।

रोहिणी डी-२ की सफलता से प्रेरित होकर भयभीत वैज्ञानिको ने अन्तरिक्ष अभियान का एक विस्तृत कार्यक्रम तैयार कर उसका निम्नांकित क्रियान्वयन किया—

अन्तरिक्ष कार्यक्रम की ११ वी शृंखला में भारत ने ए० एस० एल० वी० डी० (दो) उपग्रह प्रक्षेपक यान, १३ जौलाई ८८ मे २·४८ बजे रोहिणी उपग्रह के साथ श्री हरिकोटा से छोड़ा गया था लेकिन २५ किलोमीटर दूर जाकर इसमे अचानक खराबी आ गई। १५० किलोग्राम के स्रास-२ उपग्रह को लेकर इस यान ने

हरिकोटा केन्द्र से अपनी उडान सही ढग से शुरू की थी लेकिन १५० सेकिण्ड के बाद सारा ढांचा चरमरा कर समुद्र की गोद (बगाल की खाडी) में समा गया। २४ मार्च १९८७ को भी इसी प्रकार का ए० एस० एल० वी० डी० (एक) की उडान असफल सिद्ध हो गई थी। पिछले वर्ष की असफलता के बाद वैज्ञानिकों के अथक प्रयासों से परिष्कृत यह दूसरा प्रयास था।

इस हादसे के बाद बुरी तरह हतोत्साहित भारतीय अन्तरिक्ष सगठन के अध्यक्ष यू० आर० राव ने सवाददाताओ को इस असफलता की जानकारी देते हुये बताया कि पांच चरणो वाले इस रॉकेट के पहले चरण की मोटर में ही कोई खराबी आ गई थी।

वाहन छोडे जाने से पहले उलटी गिनती करते समय दो बार रुकावट आई, यह वाहन ढाई बजे छोडा जाना था लेकिन इसका प्रक्षेपण २.४८ बजे किया जा सका।

पृथ्वी से प्रक्षेपण के बाद वैज्ञानिको में हर्ष की लहर दौड गई लेकिन ताड के पेड़ों से आच्छादित इस सुरम्य द्वीप मे पलक झपकते भर मे शोक व्याप्त हो गया। बडी सख्या मे वैज्ञानिकों और तकनीशियनों ने पिछले अनेक सप्ताहों तक अहर्निश काम करते हुये पिछले वर्ष के विफल मिशन की पुनरावृत्ति रोकने के लिये अथक प्रयास किया था। वे सभी इस बार अपनी सफलता के प्रति आशान्वित थे।

४० टन वजन के इस सफेद और हरे रग के राकेट पर भारतीय वैज्ञानिकों की अनेक आशायें केन्द्रित थी। यह राकेट पृथ्वी की कक्षा के ४०० किलोमीटर की ऊँचाई पर रोहिणी शृंखला का साम-दो उपग्रह परिक्रमा के लिये छोडने वाला था।

उपग्रह में दो भार रखे हुए थे। एक भारत, जर्मन सहयोग से बना इलेक्ट्रो आप्टिक स्टोरियो स्कैनर और दूसरा, गामा किरण प्रयोग उपकरण। दूसरा उपकरण ब्रह्माण्ड में गामा किरणों के स्फुरण का अध्ययन करने वाला था।

ए० एस० एल० वी० डी०—२ के डिजाइन तिरुअनतपुरम् स्थित विक्रम साराभाई अन्तरिक्ष के [illegible] मे विकसित किया गया था। इसमें प्रमुख रूप से ५८ उप-प्रणालियाँ थीं।

इस मिशन में एक हजार से अधिक वैज्ञानिको और इन्जीनियरों का योगदान था।

प्रक्षेपण-क्षेत्र मे रोगों को हटा दिया गया था तथा खतरे के क्षेत्र में पोतों के आवागमन पर रोक लगा दी गई थी।

गत वर्ष २४ मार्च की अपेक्षा इस वर्ष कम सुरक्षा प्रबन्ध किये गये थे। पिछले वर्ष प्रक्षेपण देखने के लिये प्रधानमन्त्री यहाँ आये थे। प्रो० राव ने कहा कि भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन सभी तथ्यों के विश्लेषण के बाद ही तीसरी ए० एस० एल० वी० उडान पर विचार करेगा। मौजूदा जनशक्ति और सुविधाओं को देखते हुये इसमें लगभग एक साल लग सकता है।

प्रो० राव ने कहा कि आज की विफलता से ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान पी० एस० एल वी० कार्यक्रम पर कोई असर नही पडेगा। यह कार्यक्रम अलग-से चल रहा है।

भारत के अब तक के सबसे शक्तिशाली और वजनी राकेट वर्धित उपग्रह

प्रक्षेपण यान ए० एस० एल० वी० का आज असफल प्रक्षेपण भारतीय अन्तरिक्ष के इतिहास मे चौथी विफलता है।

श्री हरिकोटा से भेजा गया यह भारत का छटा राकेट था। १० अगस्त १९७९ को रोहिणी उपग्रह के साथ पहला राकेट एस० एल० वी०-३ छोड़ा गया था जो समुद्र मे गिर पड़ा था। एक साल बाद अगस्त १९८० में छोड़ा गया दूसरा राकेट सफल रहा।

३१ मई १९८१ को रोहिणी उपग्रह के साथ तीसरा राकेट एस० एल० वी-३ छोडा गया था, लेकिन उपग्रह नौ दिन बाद अन्तरिक्ष मे जलकर नष्ट हो गया। दो साल बाद १७ अप्रैल १९८३ को भेजा गया चौथा राकेट सफल रहा।

२४ मार्च १९८७ को स्नास-१ उपग्रह के साथ भेजा गया पाँचवाँ राकेट ए० एस० एल० वी० असफल रहा।

पन्द्रह महीने की अवधि में दो परीक्षण राकेटों में असफल हो जाने से लगता है कि भारत का २० करोड़ का ए० एस० एल० वी० सम्बन्धित उपग्रह प्रक्षेपण वाहन कार्यक्रम अपशकुन से प्रभावित हो गया है।

इस कार्यक्रम की लगातार दो असफलताओं ने भारतीय अन्तरिक्ष वैज्ञानिको को सोच में डाल दिया है ओर पहली पीढ़ी के एस० एल० वी०-३ राकेट की क्षमता में वृद्धि करने की प्रौद्योगिकी को लेकर शंका पैदा हो गयी है। इस प्रौद्योगिकी के जरिये इस राकेट से ५० किलोग्राम भार के बजाय १५० किलोग्राम वजन के उपग्रह को अन्तरिक्ष में स्थापित किया जाना था।

ए० एस० एल० वी० की पहली उडान पिछले मार्च मे हुई थी और उसके पहले चरण की मोटर के काम न कर पाने के कारण वह समुद्र में जा गिरा था। आज छोड़ा गया राकेट १५० सेकिण्ड बाद तीसरे चरण की मोटर के जलने से पूर्व समुद्र में गिरा, जबकि इस राकेट से ४५८ मिनट बाद उपग्रह को पृथ्वी की परिक्रमा में छोड़ा जाना था।

एक वर्ष की जाँच के बाद भी वैज्ञानिक ए० एस० एल० वी० की पहली उडान की असफलता के निश्चित कारणों का पता नहीं लगा सके थे। दूसरी उडान के लिये राकेट में जो भी सुधार किये गये थे सिर्फ सम्भावनाओं पर आधारित थे।

१२ जून १९९० को पूर्वाह्न ११ बजकर २२ मिनट पर एक बार फिर उपग्रह इनसेट-एक (डी) का सफल प्रक्षेपण करके अन्तरिक्ष विज्ञान में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। अमेरिका के एक डेल्टा राकेट ने केप केनवरल अपने प्रक्षेपक्ष के करीब एक घण्टे बाद पृथ्वी से २१० किलोमीटर ऊपर एक अस्थायी कक्षा में स्थापित कर दिया। इनसेट-एक (डी) भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह कार्यक्रम की पहली शृंखला का चौथा एवं अन्तिम उपग्रह है। इसे पिछले वर्ष (१९८८) राकेट से जोड़ने के दौरन प्रक्षेपण पट्टी पर हुई एक दुर्घटना के पहुँचे नुकसान और फिर उत्तरी कैलीफोर्निया में आये भूकम्प के कारण पूर्व निर्धारित समय से एक वर्ष के विलम्ब से अन्तरिक्ष में छोड़ा गया है। यह उपग्रह मध्य जोलाई १९९० काम करना शुरू कर देगा। यह उपग्रह मौसम सम्बन्धी जानकारियाँ तथा टेलीविजन और रेडियो प्रसारणों के लिए उपयोगी होगा।

भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन के वैज्ञानिकों ने इनसेट-एक (डी) की सफलता की खुशी से झूम-झूमकर स्वागत किया। पिछले कुछ वर्षों में दूरस्थ संवेदन उपग्रह आई० आर० एस० को छोड़कर संगठन की कोई परियोजना सफल नहीं हुई।

पड़ित भी उतारे १९७७ और १९८८ में असफल हो गए। इनसेट एक (सी) उपग्रह के १९८८ में छोड़ने के बाद शार्टसर्किट होने की वजह से दुर्घटना ग्रस्त हो गया था। इस दुर्घटना की वजह से इनसेट एक (डी) को एक वर्ष तक टाल दिया गया था।

प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने इनसेट एक डी के सफल प्रक्षेपण पर देश की जनता और वैज्ञानिकों को बधाई देते हुए इसे देश के वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम बताया। अन्तरिक्ष अनुसंधान की दिशा में निश्चय ही भारत का भविष्य उज्ज्वल है।

आज विश्व में अन्तरिक्ष विज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण अनुसंधान क्षेत्र बन गया है। विश्व की महाशक्तियाँ, जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ प्रमुख हैं, अन्तरिक्ष कार्यक्रम के प्रतिपादन से जबरदस्त प्रतिस्पर्धा कर रही हैं। जासूसी करने और सैनिक भेदों का पता लगाने का काम भी अन्तरिक्ष उपग्रहों की सहायता से किया जा रहा है। इन परिस्थितियों में भारत का अन्तरिक्ष क्षेत्र में अनुसंधान करना नितान्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। भारत जैसे विकासशील देश को अन्तरिक्ष के अनुसंधानों से महती सहायता मिल सकती है। ●

१२ भारत का प्रथम व्योम पुत्र राकेश शर्मा

बीसवीं शताब्दी में मानव ने विज्ञान के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों के बल पर जिज्ञासु मानव ने अन्तरिक्ष के गूढ़ रहस्यों को भी जानने का प्रयास किया है। दो दशक पूर्व अमेरिका और सोवियत संघ ने अन्तरिक्ष में अपने अनेक उपग्रह छोड़कर अनेक ग्रहों से विश्व को परिचित कराया और उसके बाद विश्व में अन्तरिक्ष की यात्रा की होड़-सी लग गई। इस दिशा में सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण सफलता तब प्राप्त हुई, जबकि २० जुलाई १९६९ को अमरीकी यात्री आर्मस्ट्रांग ने चन्द्रमा पर चरण रखे। इस सफलता से उत्साहित होकर सोवियत संघ के यात्री भी चन्द्रमा पर पहुँच गये और इसके बाद अन्तरिक्ष में नित नए अन्वेषण किये जाने लगे। आज के हजारों उपग्रह पृथ्वी की कक्षा के चक्कर लगा रहे हैं और संसार की जनता को नित नयी बातों की सूचना दे रहे हैं।

> **भारत का प्रथम व्योम पुत्र श्री राकेश शर्मा**
>
> (१) प्रस्तावना।
> (२) संयुक्त उड़ान कार्यक्रम।
> (३) अन्तरिक्ष यात्रा का प्रारम्भ।
> (४) प्रथम भारतीय की अन्तरिक्ष यात्रा के अनुभव।
> (५) अन्तरिक्ष में प्रयोग।
> (६) अन्तरिक्ष यात्रा से भारत को लाभ।
> (७) श्री राकेश शर्मा का जीवन परिचय।
> (८) उपसंहार।

अन्तरिक्ष की यात्रा का स्वर्णावसर सर्वप्रथम सोवियत संघ के यात्री यूरी गगारिन ने प्राप्त किया। अब तो सन् १९८४ में सोवियत संघ के सहयोग से भारत के स्क्वाड्रन लीडर श्री राकेश शर्मा ने अन्तरिक्ष की रोमांचकारी यात्रा करके देश को गौरवान्वित कर दिया है।

भारत सोवियत संयुक्त अन्तरिक्ष उड़ान कार्यक्रम की रूपरेखा काफी समय पूर्व से ही बन रही थी। सन् १९८० में सोवियत संघ के राष्ट्रपति श्री ब्रेझनेव ने अपनी भारत यात्रा के दौरान इस संयुक्त कार्यक्रम की औपचारिक स्वीकृति प्रदान कर दी थी।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सर्वप्रथम अन्तरिक्ष यात्रियों के चयन का ज्वलन्त प्रश्न उपस्थित हुआ। अतः भारतीय वायु सेना के प्रमुख अधिकारियों ने इस महानतम एवं विस्मयकारी यात्रा के लिये दो हवाबाजों का चयन किया। ये हवाबाज थे—विंग कमांडर रवीश मल्होत्रा और स्क्वाड्रन लीडर श्री राकेश शर्मा। इन दोनों हवाबाजों को सोवियत संघ में स्थित अन्तरिक्ष कार्यशाला में पूर्ण प्रशिक्षण के बाद भारतीय हवाबाजों को अन्तरिक्ष यात्रा के लिये पूरी तरह तैयार कर लिया गया।

३ अप्रैल, १९८४ के शुभ दिन को श्री राकेश शर्मा अपने सहयोगियों—रूसी कमाण्डर यूरी मालिशेव और उड़ान इन्जीनियर श्री गेन्नादि स्त्रेकालोव आदि के साथ बेकोनूर के अन्तरिक्ष स्टेशन पर पहुँचे और वहाँ पर स्थित ५० मीटर ऊँचे मीनार के निकट खड़े हो गये। इस मिनार के शिखर पर रूसी अन्तरिक्ष यान सोयूज टी-११ खड़ा हुआ था। श्री राकेश शर्मा अपने साथियों के साथ लिफ्ट की सहायता से अन्तरिक्ष यान में जाकर बैठ गये। इसके तुरन्त बाद यान छोड़ने हेतु उल्टी गिनती शुरू हुई। शून्य अंक आते ही मीनार के निचले हिस्से में एक नारंगी रंग की अग्नि प्रज्जवलित हो गई और एक तेज झटके व आवाज के साथ राकेट अन्तरिक्ष यान को लेकर आकाश में उड़ चला।

प्रथम भारतीय की अन्तरिक्ष की यह अविस्मरणीय यात्रा ३ अप्रैल, १९८४ ई० को भारतीय समय के अनुसार शाम को ६·३८ मिनट पर प्रारम्भ हुई। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को अन्तरिक्ष यान ने ३०० टन के एक रॉकेट की सहायता से बिना किसी कठिनाई के पार कर लिया और केवल १० मिनट की अवधि में ही अन्तरिक्ष यान पृथ्वी की कक्षा में पहुँच गया।

इस समय पृथ्वी की कक्षा में दो मास पूर्व छोड़े गये दो अन्तरिक्ष यान सोयुज टी-१० और सोयुज टी-७ चक्कर लगा रहे थे। सोयूज टी-११ अन्तरिक्ष यान लगभग २४ घण्टों के बाद रात्रि के ८·५ पर इन दोनों से जुड़ गया। इन यानों का सम्मिलन स्वचालित कम्प्यूटरों की सहायता से हुआ। सोयुज टी-१० व सोयुज टी-७ के तीन रूसी अन्तरिक्ष यात्रियों ने श्री राकेश शर्मा व उनके सहयात्रियों का जोरदार स्वागत किया और अब सोयुज टी ७ में ६ अन्तरिक्ष यात्री पहुँच कर अनुसन्धान कार्य में जुट गये।

अन्तरिक्ष यान की प्रयोगशाला से श्री राकेश शर्मा और रूसी यात्रियों ने अनेक प्रयोग व अनुसन्धान कार्य किये। भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने श्री राकेश शर्मा व रूसी यात्रियों से बातचीत भी की और उन्हें इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के लिये बधाई सन्देश भेजा। श्री राकेश शर्मा ने अन्तरिक्ष में योगासन भी किए और भारत के अनेक फोटो भी लिए। अन्तरिक्ष में भारहीनता के कारण मानव शरीर और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी जांच करके श्री राकेश शर्मा ने भारत की प्राकृतिक सम्पदा के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी भी प्राप्त की। श्री राकेश शर्मा अपने साथियों सहित सोयुज टी-१० में ११ अप्रैल १९८४ की सायं ४·१९ मिनट पर मकुशन अकालिक नामक स्थान पर वापिस आ गए।

श्री राकेश शर्मा ने अपनी यात्रा के दौरान भारत के अनेक चित्र खींचे हैं। इन चित्रों के द्वारा भारत की खनिज सम्पदा का ज्ञान प्राप्त होगा और उसका दोहन निकट भविष्य में सम्भव हो सकेगा। इस अन्तरिक्ष यात्रा का भारत के भावी आर्थिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ेगा और भारत की विपुल प्राकृतिक सम्पदा

देश की आर्थिक समृद्धि में व्यापक वृद्धि होगी। अन्तरिक्ष में किए गए इन प्रयोगों से भारत निकट भविष्य में अत्यधिक लाभान्वित होगा।

भारत के प्रथम व्योम पुत्र श्री राकेश शर्मा की अन्तरिक्ष यात्रा अविस्मरणीय, रोमांचक तथा अभूतपूर्व मानी जा रही है। उनकी कर्मठता, परिश्रम, योग्यता और कार्यकुशलता सराहनीय है। उन्होंने अपने साहसिक अभियान से भारत को विश्व में गौरवपूर्ण स्थान दिलाकर एक चिरस्मरणीय कार्य किया है। श्री राकेश शर्मा का जन्म १३ जनवरी १९४९ ई० को पटियाला में हुआ था। उन्होंने हैदराबाद में रहकर शिक्षा प्राप्त की और १९६६ में स्नातक की उपाधि लेकर उन्होंने राष्ट्रीय प्रतिरक्षा अकादमी, खड़कवासला में प्रवेश लिया। १९७० में उन्होंने कमीशन प्राप्त करके भारतीय वायु सेना में कार्यभार ग्रहण किया। अन्तरिक्ष यात्रा के समय वे बंगलौर में एयर क्राफ्ट एण्ड सिस्टम डिजाइन एस्टेब्लिशमेण्ट में टैस्ट पायलट के पद पर कार्यरत थे। उन्हें हण्टर, मिग, नैट, किरण, अजीत आदि लड़ाकू वायुयानों को चलाने का गहरा अनुभव है।

सोवियत संघ ने भारतीय अन्तरिक्ष यात्री श्री राकेश शर्मा को सोवियत संघ के सर्वोच्च सम्मान 'आर्डर ऑफ लेनिन' से विभूषित किया है। भारत सरकार ने भी श्री राकेश शर्मा को 'अशोक चक्र' से सम्मानित किया है।

सारांशतः श्री राकेश शर्मा की अभूतपूर्व अन्तरिक्ष यात्रा भारतीय युवकों के लिए एक आदर्श बन गई है। श्री राकेश शर्मा ने अपनी गौरवपूर्ण उपलब्धि से भारत को विश्व में १४वाँ ऐसा देश बना दिया है, जिसके नागरिक अन्तरिक्ष की यात्रा करने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं। भारत जैसे विकासशील देश को श्री राकेश शर्मा द्वारा अन्तरिक्ष में किए गए अनुसन्धान कार्यों से अत्यधिक लाभ होगा। निःसन्देह इस अन्तरिक्ष यात्रा ने भारत-रूस मैत्री के क्षेत्र में एक नये युग का प्रादुर्भाव कर दिया है।

१३ टेलिविजन और आधुनिक युग में उसकी उपयोगिता

विज्ञान ने मानव को मनोरंजन के अनेक साधन प्रदान किये हैं। टेलीविजन विज्ञान की मानव को एक नवीनतम देन है। टेलीविजन के माध्यम से हम सुदूर घटित होने वाले दृश्यों को तत्काल देख सकते हैं। टेलीविजन रेडियो का विकसित रूप है, जो आनन्द हमारे कानों को रेडियो से प्राप्त होता है, वही आनन्द हमारी आँखों को टेलीविजन से मिलता है। इस प्रकार टेलीविजन बेतार संवाद प्रेषण का नवीनतम चमत्कार है।

टेलीविजन का आविष्कार सन् १९२६ ई० में इंग्लैंड के वैज्ञानिक जान एल० बेयर्ड ने किया था, किन्तु भारत में टेलीविजन का प्रचलन सन् १९५९ ई० में हुआ, आजकल तो घर घर में टेलीविजन दिखलाई पड़ता है और इसकी लोकप्रियता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। टेलीविजन की कार्य प्रणाली काफी सीमा तक रेडियो की कार्यप्रणाली से मिलती जुलती है। टेलीविजन में जिस व्यक्ति अथवा वस्तु का चित्र प्रेषित करना होता है उसे एक विशेष कैमरे से प्रतिबिम्बित किया जाता है। फिर टेलीविजन कैमरे में बने चित्र को हजारों बिन्दुओं में विभ-

कर दिया जाता है। तत्पश्चात एक-एक बिन्दु के प्रकाश और अन्धकार को विद्युत तरंगों में परिणित कर दिया जाता है। इसके फलस्वरूप चित्र के प्रकाश के स्थान पर विद्युत तरंगें उत्पन्न होती हैं, किन्तु काले भाग में ऐसा नहीं होता। फिर ये विद्युत तरंगे रेडियो तरंगों में परिवर्तित कर दी जाती हैं। टेलीविजन का एन्टीना इन तरंगों को ग्रहण कर लेता है और टेलीविजन में लगे हुए यन्त्र उन तरंगों को विद्युत तरंगो में बदल देते हैं। इन विद्युत तरंगों द्वारा टेलीविजन में लगी एक नली (ट्यूब) में इलेक्ट्रॉन की धारा उत्पन्न हो जाती है। इस ट्यूब का सामने वाला चपटा भाग टेलीविजन की स्क्रीन (पर्दा) का काम करता है। इस ट्यूब के सामने वाले भाग में पीछे की ओर एक ऐसा पदार्थ लगा होता है, जो इलेक्ट्रॉन के प्रभाव से चमक उठता है। इस प्रकार टेलीविजन प्रेषण केन्द्र से जिस व्यक्ति या वस्तु का चित्र प्रसारित किया जाता है, एन्टीना की सहायता से उसका प्रतिबिम्ब दूर स्थित टेलीविजन सैट की स्क्रीन पर तत्काल दिखाई पड़ने लगता है। टेलीविजन कार्यक्रमों का प्रसारण ट्रांसमीटरों की सहायता से किया जाता है।

भारत में प्रथम टेलीविजन केन्द्र की स्थापना सितम्बर, १९५९ ई० को दिल्ली में हुई थी, परन्तु टेलीविजन का सार्वजनिक प्रसारण अगस्त, १९६५ ई० से प्रारम्भ हुआ। १ अगस्त, १९७५ ई० से देश में उपग्रह की सहायता से टेलीविजन कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाने लगा। वर्तमान समय में ११ टेलीविजन प्रसारण केन्द्र और १० रिले सेन्टर हैं। सितम्बर १९८४ तक देश के १२८ प्रमुख नगरों में टेलीविजन ट्रांसमीटर लगाये जा चुके हैं। सन् १९८२ से देश भर में रंगीन टेलीविजन अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है।

मुख्य संकेत

(१) प्रस्तावना।
(२) टेलीविजन का आविष्कार एवं कार्य प्रणाली।
(३) भारत में टेलीविजन का प्रसार।
(४) टेलीविजन की उपयोगिता।
(५) उपसंहार।

टेलीविजन की उपयोगिता मनोरंजन और सामूहिक शिक्षा की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। रेडियो से हम केवल समाचार व गाने आदि ही सुन सकते हैं और सिनेमा से हम यद्यपि देखने व सुनने दोनों सुख प्राप्त कर सकते हैं, फिर भी जो आनन्द अपने घर के कमरे में बैठकर टेलीविजन कार्यक्रम देखने में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

पाश्चात्य देशों में टेलीविजन ने शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रान्ति ला दी है। आस्ट्रेलिया में तो टेलीविजन शिक्षा प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गया है। ब्रिटेन में टेलीविजन की सहायता से लाखों विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। वहां लीड्स विश्वविद्यालय का टेलीविजन शैक्षिक कार्यक्रम काफी लोकप्रिय माना जाता है। कुछ देशों ने टेलीविजन द्वारा किसानों को कृषि सम्बन्धी महत्वपूर्ण बातों की शिक्षा दी है। इस दिशा में जापान का कृषि कार्यक्रम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विकसित देशों में टेलीविजन की सहायता से विद्यार्थियों को सर्जरी का ज्ञान दिया जाता है और विद्यार्थी किसी आपरेशन को प्रत्यक्षतः देखकर विपुल ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

समुद्र विज्ञान के क्षेत्र मे अन्वेषण के कार्य को टेलीविजन ने काफी सरल बना दिया है, क्योंकि टेलीविजन कैमरे की सहायता से समुद्र तल की वस्तुओं, पानी मे डूबे हुये जहाजो, समुद्री वनस्पति आदि का पता लगाया जा सकता है। अन्तरिक्ष का ज्ञान प्राप्त करने मे भी मनुष्य को टेलीविजन से बड़ी सहायता मिलती है। टेलीविजन की सहायता से मनुष्य ने सुदूर स्थित ग्रहो का ज्ञान प्राप्त किया है। इतना ही नहीं कृत्रिम उपग्रहो को भेजने और उन पर नियन्त्रण रखने का कार्य भी टेलीविजन की सहायता से सम्भव हो पाया है।

हमारे देश मे टेलीविजन की उपयोगिता काफी महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम तो भारतीय समाज मे टेलीविजन प्रतिष्ठा व सम्मान का प्रतीक माना जाने लगा है, आज जिन घरों मे टेलीविजन नहीं होता है, वे परिवार हेय दृष्टि से देखे जाते है। शादी के अवसर पर टलीविजन देना या लेना एक मामूली सी बात हो गई है।

प्रारम्भ मे लोगों का विचार था कि टेलीविजन की सहायता से भारत में व्याप्त निरक्षरता को दूर किया जा सकेगा। इसीलिये देश भर में टलीविजन केन्द्रों का जाल सा बिछा दिया गया, परन्तु विगत दो दशकों के अनुभवों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत मे टेलीविजन अपने लक्ष्यो की पूर्ति मे असफल रहा है। हमारे देश में टेलीविजन शिक्षा का माध्यम बनने के बजाय धनी वर्ग के मनोरंजन का साधन बन गया है। आजकल टेलीविजन पर प्रसारित अनेक कार्यक्रमो में चलचित्र, नाटक, नृत्य आदि ही मनुष्य के आकर्षण के केन्द्र हैं, जब कोई वार्ता, भाषण या शैक्षिक कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है, तो लोग टेलीविजन सैट बन्द कर देते हैं। वास्तव में यदि टेलीविजन के कार्यक्रमो को शिक्षाप्रद व लोकप्रिय बनाया जाये तो यह ज्ञान विज्ञान के प्रसार का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकता है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि सरकार टेलीविजन जैसे प्रचार के सशक्त साधन को अपने नियन्त्रण में रखना ही उचित समझती है। इसी के माध्यम से सरकार अपने कार्यक्रमों और सफलताओ से जनता को अवगत कराती है। लेकिन कभी-कभी सत्तारूढ़ दल अपने हितों की रक्षा हेतु इस प्रचार माध्यम की स्वतन्त्रता का हनन तक कर डालते हैं।

इन सब बातों के बावजूद भी आधुनिक युग में टेलीविजन की व्यापक उपयोगिता को भुलाया नहीं जा सकता। इसीलिये हमारे देश में टेलीविजन प्रसारण के विस्तार की एक विराट योजना बनाई गई है, जिसके फलस्वरूप निकट भविष्य में देश के प्रत्येक नागरिक को टेलीविजन कार्यक्रम देखने का अवसर मिल सकेगा। इस प्रकार टेलीविजन भारत में शिक्षा प्रसार, कृषि की उन्नति, स्वास्थ्य रक्षा व परिवार नियोजन आदि के प्रचार में एक भूमिका निभाने में सफल होगा। ●

१४ कम्प्यूटर का प्रयोग एवं महत्व

आज प्रत्येक की जबान पर कम्प्यूटर का नाम है। टी० वी० पर कम्प्यूटर का प्रचार खूब हो रहा है। रेडियो, समाचार पत्र और सिनेमा घरों में कम्प्यूटर पर एक चर्चा, विज्ञापन, प्रचार और बुद्धिजीवी के लिए चिंतन का विषय बन गया है। हमारे वतमान प्रधान मन्त्री ने जब से यह कहा है कि भारत को अपनी प्रगति और उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचने के लिये इक्कीसवीं शताब्दी मे प्रवेश करने का महत्वपूर्ण माध्यम होगा अर्थात् आज १९८९ में हमें आगामी १२ वर्षों की यात्रा

जिस तीव्र गति से करनी होगी जो विश्व में गर्व, गौरव और शान से जीवित रहने के लिये परमावश्यक है तो सामान्य या विशेष मानव मस्तिष्क नहीं वरन् कम्प्यूटर प्रणाली से आगे बढना होगा अर्थात् १५ वर्षों में आगामी १०० वर्षों की यात्रा करनी होगी और यह गति बिना कम्प्यूटर की सहायता के प्राप्त नही हो सकती। यही कारण है कि क्या शिक्षा क्षेत्र, क्या प्रशासनिक क्षेत्र सभी में कम्प्यूटर-प्रणाली को अविलम्ब प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी है। मनुष्य की व्यस्तता, विज्ञान की प्रगति के कारण चारों ओर ज्ञान का जो विस्फोट हो रहा हैं तथा विश्व के तीन शक्तिशाली देश जिस द्रुतगति से सृष्टि को अपनी मुट्ठी में बन्द करने के लिए लालायित है, उस दृष्टि से प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने, समृद्ध होने और अपने देश की अखण्डता तथा प्रभुसत्ता की रक्षा के लिए कम्प्यूटर का प्रयोग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य बन गया है।

कम्प्यूटर का प्रयोग एवं महत्व

१. प्रस्तावना।
२. कम्प्यूटर क्या है ?
३. कम्प्यूटर का उपयोग।
४. कम्प्यूटर और मानव मस्तिष्क।
५. उपसंहार।

प्रश्न उठता है कि कम्प्यूटर क्या है ? जिसने सृष्टि की सुन्दरतम रचना मानव की बुद्धि को भी धत्ता बता दिया है तथा जो अनेक प्रतिभाशाली मस्तिष्को का एकात्मक रूप-सा दिखाई पड़ता है, आखिर है क्या ? प्राचीन काल से ही मानव अकगणित का प्रयोग करता आ रहा है। अंकों के इस प्रयोग को सरल, सुलभ तथा आसान बनाने के लिए अनेक पूरक विधियों का विकास हुआ और ईसा से लगभग ४ हजार वर्ष पूर्व एक विधि "गणक पटल" का निर्माण हुआ। यह गणक पटल आयताकार होता था जिसमे कई तार समान्तर लगे होते हैं और तारों के बीच गोल दाने होते हैं। ये गोल दाने तार के इस सिरे से उस सिरे तक सरलता से खिसकाये जा सकते थे। आज भी गणक पटल बच्चों को गिनती और पहाड़े यादकरने के काम आता है। व्यवसाय का विस्तार और प्रगति जैसे-जैसे होती गई वैसे ही अंकगणित को आधुनिक बनाने की दिशा में भी वैज्ञानिकों का मस्तिष्क काम कर रहा था। सामाजिक जीवन और इंजीनियरिंग क्षेत्र में गणित की गिनतियाँ जटिल तथा विस्तृत होती गई। विचार आया कि युद्ध के समय बम वर्षक विमान, पनडुब्बी पर लगी अधिक रेंज वाली बन्दूके तथा टैंक किस विधि से शत्रु के निश्चित ठिकाने पर हमला करके भी शत्रु की मार से सुरक्षित रहे, ऐसे प्रश्न सामने थे। प्रश्न था कि भयकर शस्त्रों की मारक गति इतनी तीव्र तथा नियन्त्रित कैसे की जाये कि शत्रु के ठिकानो को अचूक रूप में नष्ट किया जा सके। अतः इस गति की गणना इतनी विस्तृत तथा जटिल हो गई कि मानव मस्तिष्क सप्ताहो तक गणना करके भी गति की गणना को सही नही कर सकेगा, साथ ही गणना सही है, उसमें कहीं रत्ती भर भी भूल नहीं हुई इसकी गारण्टी कौन ले। इस भागती हुई दुनिया को एक ऐसी मशीन की आवश्कता पड़ी जो अति तीव्र गति से सही गणना करके बस आवश्यकता को पूरा कर सके और मानव का लम्बा, कठिन श्रम बच जाये। गणना में त्रुटि होने से बच जाये। विश्वासपूर्वक सही की गारण्टी ली-दी जा सके। बस अनेक ऐसे मस्तिष्को का एक रूपात्मक तथा समन्वयात्मक योग और गुणात्मक घनत्व है जो तीव्रतम गति से न्यूनतम समय में सही गणना कर सके या यो कहिए कि त्रुटिहीन गणना कर सके। इस कम्प्यूटर मशीन के पाँच मुख्य भाग होते हैं—

१ मेमोरी या स्मरण यंत्र जिसमें सभी प्रकार की सूचनायें भरी जाती हैं। इन्हीं के आधार पर कम्प्यूटर गणना करता है।

२ कन्ट्रोल या नियंत्रण कक्ष—इस कक्ष के परिणाम से यह पता चलता है कि कम्प्यूटर अपेक्षित गणना को सही कर रहा है या कहीं त्रुटिपूर्ण गणना हो गई है।

३ अकगणित का अंग—इस हिस्से द्वारा गणना सम्बन्धी प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

४ इनपुट यन्त्र या आन्तरिक यंत्र भाग—इस भाग में ही सब प्रकार की जानकारियों या उससे सम्बन्धित निर्देश संकलित रहते हैं।

५ आउटपुट यंत्र—बाह्य यंत्र भाग—कम्प्यूटर प्रणाली मे इन चारों अंगों की प्रक्रिया के द्वारा जो सूचनायें संकलित हुई उनका विश्लेषण करना और सम्भावित परिणाम को बताना जिसको कि छाप कर घोषित किया जाता है।

सूचनायें एकत्र करने के लिए कम्प्यूटर में अलग भाषा और संकेत भरे जाते हैं, हिन्दी या अंग्रेजी अथवा अन्य किसी भी भाषा की वर्णमाला या अक्षर नहीं होते। अत सभी सूचनाओं को पहले कम्प्यूटर भाषा में परिवर्तित किया जाता है जो तकनीक दृष्टि से 'ऑफ', 'ऑन', शून्य तथा एक है जिनको द्विचर संख्या कहते हैं। इन 'बिट्स' के द्वारा ही भाषा को अंकों में बदलते हैं। कम्प्यूटर प्रणाली में ६ बिट्स को ६४ विधियों में प्रयुक्त कर सकते हैं। मान लीजिए कि हमें कम्प्यूटर में वर्णमाला या अंकों के लिए ६ बिट्स का प्रयोग करना है तो संख्या ३ को कम्प्यूटर शैली मे ०००००११ के द्वारा प्रगट करेंगे। उसी प्रकार संख्या ५ को ०००१०१ से प्रगट करेंगे। कम्प्यूटर के इन पुट उपकरण मे जिसे कि बोर्ड या कुंजीपटल कहते हैं, पर अंग्रेजी के २६ वर्णों, १० अंकों, आवश्यक विराम चिह्नों को गणित सम्बन्धी कुछ संकेतों से प्रगट करते हैं। यह जानकारी बिट्स मे बदल जाती है। अन्त में नियंत्रण उपकरण की सहायता से विश्लेषण तैयार होता है और अन्तिम परिणाम कम्प्यूटर टर्मिनल पर छपकर बाहर आ जाता है। कम्प्यूटर जटिल मस्तिष्कों की जटिल यान्त्रिक प्रक्रिया कहा जाता है।

कम्प्यूटर का प्रयोग अब हर बड़े व्यवसाय, तकनीकी संस्थान, बड़े बड़े प्रतिष्ठानों की गणनीय गणना, समूह रूप मे बड़े-बड़े उत्पादनों का लेखा जोखा, भावी उत्पादन का अनुमान, बड़ी-बड़ी मशीनों की परीक्षा और भविष्य गणना, गणना परीक्षाफलों की विस्तृत, विशाल गणना, वर्गीकरण, जोड़, घटाव, गुणा, भाग, अन्तरिक्ष यात्रा, मौसम सम्बन्धी जानकारी, भविष्यवाणियाँ, व्यवसाय, चिकित्सा और अखबारी दुनिया में आज कम्प्यूटर प्रणाली ही सर्वाधिक उपयोगी और त्रुटिहीन जानकारी देती है। सन् १९८४ का जा लोक सभा और १९८५ में जा विधान सभाओं का चुनाव लड़ा गया, उसके मूल मे कम्प्यूटर प्रणाली की भविष्यवाणी ही है जिसके विश्लेषण से यह पता लगाया गया था कि जनता का बहुमत किस पार्टी के पक्ष मे है और कांग्रेस आई की विश्लेषण का परिणाम जैसे ही अनुकूल लगा कि चुनाव की घोषणा हो गई। २३ जून १९८५ को भारत का एक बोइंग विमान 'कनिष्क' जो अपने ३२९ यात्रियों और चालक दल के साथ आकाश मे ही टुकड़े होकर अटलांटिक महासागर मे गिर कर पूर्णत नष्ट ही नहीं हो गया सभी यात्री कराल काल के गाल में समा गये। इस 'कनिष्क' जहाज के जिस 'ब्लैक बॉक्स' की तत्परता से खोज की जा रही है और जिसके मिलते ही दुर्घटना के कारणों का

स्पष्ट तथा सही पता चल जायेगा उसमें पूर्ण सुरक्षित और नियन्त्रित रूप में यह कम्प्यूटर विशेष रक्षात्मक धातुओं से संरक्षित है तथा फ्लाइट रिकार्डर में भी यह कम्प्यूटर ही कार्य करता है। विगत कई वर्षों से उत्तर प्रदेश का इलाहाबाद बोर्ड अपने परीक्षाफल कम्प्यूटर प्रणाली से ही तैयार करता है। परीक्षा संख्या की दृष्टि से यह बोर्ड (परिषद्) विश्व में सबसे बड़ा है जिसमें १० से १२ लाख तक छात्र-छात्राएँ परीक्षा देते हैं।

एक रोचक प्रश्न अवश्य उठता है कि मानव मस्तिष्क और कम्प्यूटर में क्या अन्तर है तथा दोनो में कौन श्रेष्ठ है ? निःसन्देह मानव मस्तिष्क ही श्रेष्ठ है क्योंकि कम्प्यूटर प्रणाली का निर्माण भी तो मानव मस्तिष्क ने ही किया है। मानव मस्तिष्क में खोज और आविष्कार की जो चेतना है, चिन्तन और विचार है, अनुभूति की क्षमता है, अच्छे-बुरे की परख है वह कम्प्यूटर में नहीं है, वहाँ तो आंकड़ों की गति युक्त गणना है और वे आंकड़े किसी परिस्थिति के प्रभाव के विश्लेषण की उपलब्धि हैं जिनकी गणना त्रुटिपूर्ण भी हो सकती है, भविष्य पक्ष गलत भी हो सकता है। वहाँ कठिन नियन्त्रण, एक वैज्ञानिक प्रक्रिया और जटिल गणना है, इस प्रक्रिया में बीच में किसी कारण तनिक भी त्रुटि हो गई तो सारी गणना का प्रतिफल ही उलट जायेगा। दूसरे मानव की कलात्मक कृति, संगीत, पेंटिंग रिझा सकती है, बोर कर सकती है, उसकी पसन्द नापसन्द हो सकती है। मनुष्य का ज्ञान, आम रुचि, अनुभव चिन्तन, विचार क्रिया को प्रभावित कर सकते हैं किन्तु कम्प्यूटर का मस्तिष्क इन सब से परे यान्त्रिक गति के नियन्त्रण में आबद्ध है। वह तो भावना शून्य होता है. मानव के समान निर्णय लेने की शक्ति उसमें नहीं है। कम्प्यूटर आदमी की तरह स्वयं कुछ भी नहीं सोच सकता। किन्तु इस पर भी मानव मस्तिष्क में अनेक त्रुटियाँ, कमियाँ है। वह थक सकता है, एक ही परिस्थिति में उसके निष्कर्ष भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, गणना में दोष रह सकता है। निरन्तर बिना थके एक ही गति से कार्य नहीं कर सकता आदि। अतः कम्प्यूटर मानव मस्तिष्क की इन त्रुटियों को दूर करता है। गणना लम्बी और जटिल हो, शुद्ध और जटिल गणना शीघ्र मानव मस्तिष्क नहीं कर सकता तब कम्प्यूटर ही काम करता है। कम्प्यूटर की स्मरण शक्ति असीमित है। मनुष्य बहुत प्रयत्न के बाद भी जब तथ्यों, नामों स्थानों और सूचनाओं को स्मरण नहीं कर पाता तब कम्प्यूटर ये सारे काम आनन-फानन में कर डालता है। नाम, तिथि, स्थल सरलता से कम्प्यूटर प्रणाली से ज्ञात और स्मरण हो सकते हैं।

आर्थिक कार्यों के करने की गति, इलेक्ट्रोनिक्स की प्रगति में कम्प्यूटर प्रणाली का सर्वाधिक योगदान है। आधुनिक कम्प्यूटर एक सेकण्ड में दस लाख तक की गणना सरलता से कर देता है। बिना थके, बिना ध्यान बटे शुद्ध गणना ही कम्प्यूटर की विशेषता है। आज आटोमोबाइल इण्डस्ट्रीज, चिकित्सा क्षेत्र, मौसम की आगामी सूचनाओं के सही संग्रह में कम्प्यूटर बेजोड़ है। कम्प्यूटर के कारण प्रत्येक क्षेत्र में विकास की गति १० गुणी से लेकर हजार गुणी तक बढ सकेगी। विज्ञापन के क्षेत्र में तो कम्प्यूटर ने एक क्रान्ति ला दी है। आटोमोबाइल उद्योग में तो दस व्यक्ति दस सप्ताह में चौबीस घन्टे कठिन परिश्रम करके जितनी गणना का कार्य करेंगे, कम्प्यूटर उसे एक घन्टे में कर देगा। चिकित्सा विज्ञान में उपचार क्षमता में वृद्धि तथा शोध के नवीन आंकड़ों की उपलब्धि में कम्प्यूटर का ही योगदान है। भविष्य में कम्प्यूटर मानव विकास का अचूक हथियार सिद्ध होगा। कम्प्यूटर अकल्पनीय बातों को साकार करेगा।

(च) माता-पिता में सन्तान के पथ-प्रदर्शन की अयोग्यता, अक्षमता अथवा समय का अभाव।

(छ) उत्तेजक पदार्थों का सेवन।

(ज) सिनेमा, गन्दे साहित्य, जासूसी उपन्यासों का कुप्रभाव।

(झ) निरंकुश स्वतन्त्रता उपभोग।

(ञ) राज-भय, पितृ-भय, समाज-भय का लोप।

(ट) कठोर दण्ड का अभाव।

(ठ) अध्यापकों में अपने दायित्व की उपेक्षा।

(ड) भ्रष्ट व्यक्तियों द्वारा गलत पथ प्रदर्शन।

(३) अनुशासनहीनता से हानि—

(१) ज्ञान की अप्राप्ति।

(२) राष्ट्रीय चरित्र का पतन।

(३) राष्ट्रीय जीवन का पतन।

(४) राष्ट्रीय सम्पत्ति की क्षति।

(५) अयोग्य नागरिक।

(६) देश में बेरोजगारी।

(७) राष्ट्र का अन्धकारपूर्ण भविष्य।

(४) सुधार के उपाय—

(१) माता-पिता समाज अध्यापक एवं राज्य की सामूहिक सतत् सतर्कता और जागरूकता।

(२) कठोरतम दण्ड की वैधानिक व्यवस्था।

(३) शिक्षा केवल विद्यार्थी के लिए।

(४) उपसंहार—अच्छे अनुशासित विद्यार्थी ही अच्छे राष्ट्र की दृढ़ आधार-शिला एवं राष्ट्र के भावी कर्णधार होते हैं। अतः उन्हें अच्छा बनना और बनाना भी आवश्यक है।

१०—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे'

(१) प्रस्तावना—उपदेश का महत्व, प्रभाव।

(२) उपदेशक का महत्व एवं गौरव—राष्ट्र-निर्माण, समाज सुधारक, पथ-प्रदर्शक, आकाश दीप की भाँति दिशा निर्देशक।

(३) उपदेशक की कथनी और करनी में साम्य की आवश्यकता—साम्य अभाववाली कृत्रिमता सारहीन।

(४) करनी के अभाव में उपदेशों की निर्जीवता—सजीव और निर्जीव उपदेश। सजीव उपदेश की सार्थकता।

(५) उपसंहार—उपदेश देना सरल है। आन्तरिक और बाह्य आचरण में साम्य रखते हुए उपदेश देना प्रभावपूर्ण होता है।

११—श्रम का महत्व

(१) प्रस्तावना—श्रम का महत्व।

(२) श्रम की आवश्यकता— व्यक्तिगत और राष्ट्रीय समृद्धि के लिए

(३) **श्रम से लाभ**—शारीरिक और मानसिक विकास। ऐहिक और पारलौकिक सुख, परम शान्ति, अन्तःकरण की शुद्धि, विचारो में पवित्रता।

(४) **अधिक श्रम से हानि**—शक्ति का ह्रास, शारीरिक अवनति, बुद्धि में शैथिल्य, विवेकशून्यता।

(५) **उपसंहार**—सुखी जीवन और समृद्ध राष्ट्र के लिए श्रम अपरिहार्य है।

१२—विज्ञान की देन

(१) **प्रस्तावना**—ज्ञान और विज्ञान का महत्व, अन्तर, महत्ता।

(२) **विज्ञान की आवश्यकता**—आधुनिक युग की समस्यायें, संघर्ष, सुख, शान्ति, ज्ञानार्जन आदि के लिये।

(३) **आधुनिक युग में विज्ञान की देन**—मनोरंजन, ज्ञान, यात्रा; युद्ध, रोग, दैनिक उपयोग, कृषि, जीवन आदि सभी अंग विज्ञान के आभारी।

(४) **विज्ञान की देन का प्रभाव**—

लाभप्रद—सुख, आनन्द, समय की रक्षा और अनन्त सुविधायें।

हानिप्रद—श्रमहीनता, अकर्मण्यता, बेरोजगारी एवं विनाश की प्रवृत्ति में वृद्धि।

(५) **उपसंहार**—बुद्धिमत्ता, कुशलता एवं कल्याणोन्मुख प्रवृत्ति।

१३—यदि मैं शिक्षा मन्त्री होता

(१) **प्रस्तावना**—शिक्षा मन्त्री का शिक्षा के क्षेत्र मे महत्व।

(२) शिक्षा मन्त्री बनने की लालसा एवं कल्पना।

(३) शिक्षा की सर्वाङ्गीण समृद्धि के साथ निम्न बातो पर अधिक बल देना—

(१) हर मूल्य पर अध्यापक की मान रक्षा।

(२) अयोग्य एव चरित्रहीन व्यक्तियो के शिक्षक बनने पर प्रतिबन्ध।

(३) अध्यापको को इतना वेतना मिले जिससे उन्हे ट्यूशन पढ़ने वालो का मुँह न देखना पडे।

(४) निर्धन एवं योग्य विद्यार्थियो को अन्त तक पूर्ण सहायता।

(५) व्यापार केन्द्र के रूप मे चलने वाली शिक्षा संस्थाओं पर प्रतिबन्ध

(६) अनावश्यक शिक्षा सस्थाओं के विस्तार पर पाबन्दी।

(७) महिला-शिक्षा में आमूल चूल परिवर्तन।

(८) विद्यालयो मे धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की परीक्षा और उसमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य है।

(९) विद्यार्थी के चरित्र, व्यवहार और अनुशासन के १०० अंक, प्रत्येक सम्बन्धित अध्यापक के पास जिसमें से ७५ अंक पाना अनिवार्य हो।

(१०) स्वयं जा-जाकर शिक्षा संस्थाओ का व्यक्तिगत निरीक्षण।

(४ **उपसंहार**—शिक्षा संस्थाओ की पवित्रता की रक्षा के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना।

१४—भारतीय नारी का आदर्श

(१) प्रस्तावना—सृष्टि मे नारी का महत्व।

(२) भारतीय नारी—श्रद्धा, शान्ति, सन्तोष, त्याग और तितिक्षा की प्रतिमूर्ति।

(३) भारतीय नारी के आदर्श—वीर बाला, वीर पत्नी, वीर माता, त्याग, सहनशीलता, प्रेम, बलिदान, समर्पण, दृढ़ता, पवित्रता, गृह-कार्यदक्षता, मिष्ट, शिष्ट, मितभाषिता, पवित्रता, धर्मप्राणा, समाज और राष्ट्र की कल्याण उन्नायिका।

(४) उपसहार—नारी के भारतीय आदर्शों मे ही देश का कल्याण समाया है।

१५—"परहित सरस धरम नहिं भाई"

(१) प्रस्तावना—धर्म की परिभाषायें। परहित सबसे बडा धर्म।

(२) प्रकृति और परहित—नदी, वृक्ष, मेघ आदि के उदाहरण।

(३) मनुष्य और पशु—पशुओ मे परहित का अभाव। परहित मानवीय विशेषता।

(४) मानव जीवन का चरम लक्ष्य—परहित, पर-कल्याण, पर-उपकार।

(५) परहित मे प्राणोत्सर्ग, भारतीय परम्परा—दधीचि, शिव, रन्तिदेव आदि के उदाहरण।

(६) उपसहार—परहित विश्व धर्म है। इससे महान् कोई दूसरा धर्म नही।

१६—विद्यालयों मे छात्र सघ (यूनियन) की आवश्यकता

(१) प्रस्तावना—सघ की शक्ति एव महत्व।

(२) लोकतन्त्र शासन प्रणाली मे सघो की आवश्यकता—सरकार तक अपनी बात, अपनी मॉंगें, अपनी कठिनाइयाँ पहुँचाने के लिए। प्रतिकूल निर्णयो का अहिंसात्मक माग द्वारा विरोध प्रदर्शन आदि।

(३) विद्यालयों मे छात्र सघ की आवश्यकता—लोकतन्त्र की पुष्टि, विद्यार्थियो की रचनात्मक शिक्षा, शासन व्यवस्था मे सहयोगी।

(४) छात्र सघ से लाभ—शासन व्यवस्था मे हाथ बटाना। मनोनुकूल निर्णय कराना।

(५) छात्र-सघ से हानि—समय का अपव्यय, लक्ष्य-भ्रष्ट होना, स्वेच्छाचारिता, आशोल्लघन, उपद्रव, अशान्ति, अव्यवस्था।

(६) उपसहार—मजदूर सघो की भाँति ही छात्र-सघो के कार्य-कलाप न छात्रो के हित मे है, न सस्था के और न देश के।

१७—म्यूनिख प्रतियोगिता

(१) प्रस्तावना—क्रीडा का महत्व। उसका आध्यात्मिक एव दार्शनिक पक्ष।

(२) ओलम्पिक क्रीडा प्रतियोगितायें—उद्भव, विकास।

(३) ७२ की म्यूनिख (जर्मन) प्रतियोगितायें—विश्व के राष्ट्रो का प्रतिनिधित्व, खेद-कूद प्रतियोगितायें, स्वर्ण, रजत एव कास्य पदक।

(४) अभूतपूर्व हृदय विदारक घटना—इजरायली खिलाडियो का अरब छापामारों द्वारा सहार, विश्व शोक मग्न।

(५) **ओलम्पिक खेलों से लाभ**—विश्व बन्धुत्व एवं विश्व परिवार की भावना का प्रयत्न।

१८—आधुनिक शिक्षा-पद्धति—गुण दोष

(१) **प्रस्तावना**—शिक्षा का महत्व।

(२) **प्राचीन शिक्षा-पद्धति**—ब्रह्मचर्याश्रम, गुरुकुल निवास, अहर्निश गुरु सान्निध्य, अध्ययन एवं सेवा। एक ध्येय, पूर्ण सफलता। सुदृढ़ आधारशिला का निर्माण। सक्रिय एवं रचनात्मक शिक्षा। शारीरिक एवं मानसिक विकास।

(३) **आधुनिक शिक्षा-पद्धति—गुण दोष**—निरुद्देश्य, अकर्मण्यशील। आलस्य और पुरुषार्थहीनता की प्रेरक। शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और चारित्रिक विकास में बाधक। उदरपूर्ति का साधन मात्र। शिक्षा, सत्शिक्षा का पर्याप्त।

(४) **उपसंहार**—परिवर्तन एवं सुधार राष्ट्र हित में आवश्यक।

१९—विश्व शान्ति के उपाय

(१) **प्रस्तावना**—विश्व का अशान्ति वातावरण तथा "अशान्तस्य कुतः सुखम्।"

(२) **विश्व शान्ति के उपाय**—

(क) व्यक्तिगत एवं सामूहिक चरित्र का उन्नयन।

(ख) इच्छाओं का अन्त।

(ग) सामाजिक तथा धार्मिक भेदभाव की समाप्ति।

(घ) आर्थिक शोषण की समाप्ति।

(ङ) आध्यात्मिक एवं भौतिक वातावरण।

(च) विश्व बन्धुत्व की भावना।

(छ) 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का दृष्टिकोण।

(ज) सयुक्त राष्ट्र-संघ के नियम एव निर्णयों के प्रति निष्ठा

(झ) निरस्त्रीकरण।

(ञ) परमाणु शक्ति का मानव कल्याण के लिए प्रयोग।

(३) विश्वशान्ति से लाभ।

(४) अशान्ति से हानि।

(५) उपसहार—राष्ट्रों का प्रयास।

२०—भारत में आरक्षण

(१) **प्रस्तावना**—आरक्षण की व्याख्या, विश्लेषण एवं प्रयोग।

(२) **आरक्षण के आधार**—विभिन्न विचारधारायें।

(क) जाति, (ख) आर्थिक विपन्नता।

(३) निरावधि आरक्षण एवं सावधि आरक्षण।

(४) आरक्षण से लाभ या हानि।

(५) उपसंहार।